वै० सिद्धान्तकौमुदी

कारक समास तद्धित [चातुरर्थिक] (द्वितीयो भागः)

टीकाकारः— डा० प्रभाकरमिश्र

श्री ग्रन्थमालायां चतुर्थं पुष्पम्

भट्टोजीदीक्षितकृता

सिद्धान्तकौमुदी

प्राभाकरीटीकायुता

कारक–समास–तद्धित [चातुरर्थिकान्त]

[संस्कृत–हिन्दीयुता भाषा]

(द्वितीयो भागः)

Sanjay Kumar Dubey
Surveyor
MRC, Sanskrit Deptt.
Dr.H.S.G.University Sagar (M.P.)

टीकाकारः— डा० प्रभाकरमिश्र एम. ए. व्याकरणाचार्यः
विद्यावारिधिः (पी. एच. डी.) व्याकरणविभागाध्यक्षः
(श्रीरामानुजसंस्कृतमहाविद्यालयः, मिश्रपोखरा,
वाराणसी)

प्रकाशकौ—अरविन्दमकरन्दमिश्रौ
अरविन्दमकरन्दप्रकाशन
बी ३७/४५ ए-२ बिरदोपुर (बैजनत्था)
वाराणसी–१०

गुरु—पूर्णिमा]
१९८६ ईस्वीये ।

[प्रथमसंस्करणम्

* पुस्तक प्राप्तिस्थान—

वाराणसी—चौक, कचौड़ी गलीकी प्रमुख दूकानें, चौखम्भाकी दूकानें,
दिल्ली—बँगलो रोड, नयी सड़क तथा अन्य प्रमुख दूकानें
हरिद्वार—पाण्डेय पुस्तक सदन, शंकर आश्रम, ज्वलापुर
अयोध्या:—मार्डन बुक डीपो, शृगारहाट
इलाहाबाद—१ श्याम पुस्तक भण्डार, बहादुरगंज
कानपुर—ग्रन्थं प्रकाशन, रामबाग

*

पता–

पं० श्रीप्रभाकर मिश्र
अरविन्दमकरन्द प्रकाशन
बी ३७/४५ ए-२ विरदोपुर (बैजनत्था मन्दिरके पीछे)
वाराणसी

पुनर्मुद्रणाधिकारः प्रकाशकाभ्यां स्वायत्तीकृतः ।

मूल्य- Rs. 50/-

मुद्रणस्थानम् :—
शुभकरण प्रेस विरदोपुर वाराणसी

* भूमिका *

व्याकरण क्यों पढ़ें :—

शक्तिग्रहं व्याकरणोपमान-कोशाप्तवाक्याद्व्यवहारतश्च । शब्दशक्ति ज्ञानके लिए । अस्य शब्दस्य अस्मिन्नर्थे शक्तिः रामशब्दकी रमण [अदन्दानुभूति] का आधार अर्थमें शक्ति(अतः अर्थवान् मानकर प्रा० संज्ञा) भजति शब्दमें भज की सेवा के अनुकूल - क्रिया अर्थमें शक्ति । भगवान प्रसन्न हो उसके अनुकूल सेवा पद्धति] तिका कर्ता काल सङ्ख्या प्रथमपुरुष अर्थमें शक्ति । भजति समुदायकी भक्त-कर्तामें प्रसन्नताके अनुकुल वर्तमान कालिक क्रिया अर्थमें । [मा गृधः कस्य चिद्धनम्] आशक्तलोभके अनुकूल क्रिया अथमें गृधधातुकी शक्ति । उस क्रिया का आधार अर्थमें अ प्रत्ययकी शक्ति । आशक्तलोभानुकूलक्रियावान् अर्थमें गृधः की शक्ति । किसीके धन पर उत्कट उत्सुक मत बनो । कृष्णश्रितः शब्दकी कृष्ण के शरणमें प्राप्त अर्थे शक्ति । गव्यम् शब्दमें गोर्विकारः पंचामृतमें शक्ति । गवां निवासः गोशाला अर्थमें । गवेहितं भुसा खलीं कराई आदि गव्य है हितकारी होने से । इस प्रकार लौकिक वैदिक शब्दो की अपने-२ अर्थोंमें शक्तिज्ञान के लिए व्याकरण पढ़ें । प्रयोग साधनिकामें प्रकृत्यर्थ प्रात्यार्थ खोलकर समुदायार्थ खोलनेके लिए पढ़ें । तभी वेदरक्षाकी भाष्योक्तप्रतिज्ञा सफल होगी । भगवान पतञ्जलि ने जिन प्रयोजनो को सुझाया, उनके पालनके लिए व्याकरण पढ़ें ।

कारक क्यों पढ़ें—पेज नं० १२७ पर देखें

प्रथमा (सु औ जस्) कारक कैसे :—

अभिहिते(उक्ते कारके)प्रथमा(प्रातिपदिक)का अर्थ कारक है । (कर्ता कर्म करण सम्प्रदान अपादान अधिकरण)के अर्थ प्रधान (प्रत्ययसे कारक अर्थ) कहा गया हो तब प्रथमा होती है । इसी आशयका वार्तिक है । अभिहिते प्रथमा] प्रत्ययका अर्थ उक्त प्रधान होने पर (तिङ् समानाधिकारणे)प्रथमा होती हैं । तिङ का अर्थ कर्ता से अभेद सम्बन्ध रहने पर प्रथमा हो । जैसे शिवः रामं भजते । इस वाक्यमें शिव कर्ता कैसे ?तिङका अर्थ कर्ता है ।उसका शिव के साथ अभेद सम्बन्धसे । कर्ता और शिव भजन क्रियाके समान अधार होनेसे । इसी क्रिया के आधारभूत कर्ता अर्थको स्पष्ट व्यक्त करनेके लिए सु (प्रथमा) आयी । सु औ जस-शब्दरूप वाचक है उनका अर्थ कारक वाच्य है । वाच्यवाचक सम्बन्ध तादात्म्य है । तयोः शब्दार्थयोः आत्मा सम्बन्धः तदात्मा । तस्य भावः तादात्म्यम् । योऽयं शब्दः (प्रथमा) सोऽर्थः यो अर्थः स शब्दः । जो शब्द है वही अर्थ है, जो अर्थ है, वही शब्द है । अभेदसम्बन्ध मान्य है । इस सम्बन्ध के

आधार पर प्रथमा कारक सिद्ध है। इसको वरदराजाचार्य विभक्ति का अर्थ कहे है। वहाँ भी उक्तविधिके अभेदसम्बन्धसे सिद्ध प्रथमा कारक है।

प्रथमा कर्ता कैसे—

क्रिया का (स्वतन्त्र) आधार होनेसे आश्रय कर्ता है। क्रियायां स्वातन्त्रेण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात्। जो भी कारक क्रिया का स्वतन्त्र आधार विवक्षित होगा वही कर्ता कारक बनकर रहेगा। लक्षण घटनेसे क्रियाके स्वतन्त्र आधार में ही प्रथमा होती है। कर्म करण सम्प्रदान अपादान अधिकरणमें स्वतन्त्र रूपसे क्रिया विवक्षिता हो, वक्ता को इष्ट हो, वहीं प्रथमा, उसी में कर्ता का स्वतन्त्र लक्षण भी घटता है, वह व्यापक है अन्य कारक व्याप्य है। कारकचक्र प्रयोक्ता कर्ता सभी कारको का संचालक, प्रेरक, शासक है। प्रातिपदिकका अर्थ प्रधान होने पर सभी प्रथमाके पात्र बनते हैं। इस आधार पर प्रथमाका कर्ताके साथ अभेद सम्बन्धः। प्रधान दशामें जो प्रथमा वही कर्ता,जो कर्ता है वही प्रथमा है। योऽयं शब्दः सोऽर्थः इस विधिसे प्रथमा कर्ता कारक सिद्ध है। यदि प्रत्यय से कर्ता उक्त नही है। प्रधानतया विवक्षित नही, तब कर्तरि तृतीया होगी। अनुक्त दशामें व्यापक नही रहेगा। उक्त दशामें सर्वत्र प्रभावी है उसका द्योतक या वाचक प्रथमा ही है। वागर्थौ सम्पृक्तौ-गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न। वन्दौ सीतारामपद।

समास क्यों पढ़े—

समासमें एकीभूत अर्थ ज्ञानके लिए। अनेक पदोंका (घीमें तेल, दूधमें पानी की तरह) मिला हुआ अर्थ समास है। वेद-पुराण—इतिहास—धर्मशास्त्र—निगम आगममें अनेकपद मिलकर एक पदवाले शब्द बहुत आते है, उनका एकार्थ विकसित खिला हुआ, स्फुट अर्थ ज्ञानके लिए। जैसे—शङ्कुलाखण्डः सरौतासे टुकड़ा करनेवाला देवदत्त। सोपाड़ी काटनेका साधन शंकुला-सरौता है। खाण्डयतीति खण्डः अथवा खण्डनं खण्डः अस्ति अस्मिन्, क्रियाका अधार, भाँजने वाला चैत्रः। दोनों पदके अर्थ अलग-२ स्थितः। जब समास होगा, दोनोंकी (एक अर्थ, एकपद) एकशक्ति होगी। इस प्रकार प्रत्येक समासपदका अर्थानुशासन के साथ साधनिका सही हो, तब समास पढ़ना सफल। शब्दमूलक सभी शास्त्र सुगम सुबोध होगें। रूपवती भार्या यस्य (सुन्दरी स्त्रीवाला पुरुष) यस्यका सम्बन्ध अर्थः। लावण्यवती भरणपोषणयोग्यासे सम्बन्धित पुरुष समासार्थः। बहुव्रीहिके पदोंमें अन्यपदार्थका अनुभव अत्यन्त आवश्यक। समासमें प्राति-पदिकसंज्ञासे विभक्तिका लुक् होता है। किस दशामें लुक् नहीं होता

उसको अलुक्समास कहता है। समास होनेपर कहाँ-कहाँ कौन-कौन कार्य विशेष होतें है समासाश्रय समझाता है।

तद्धित क्यों पढ़े—

तेभ्यो हिता:-प्रातिपदिकके अर्थ भरे शब्दोंके हितमें होने वाले प्रत्यय तद्धित है उनके सत्यार्थज्ञानके लिए। प्रातिपदिकशब्दोंमें पाँच अर्थ रहते है। जाति व्यक्ति लिङ्ग संख्या कारक इन्हीके उपकारक सभी प्रत्यय हैं। अपत्याधिकार जाति अर्थका सूचक (बोधक) है। क्योंकि जननात् जायते या सा जातिः। जन्मसे ही पुत्र पौत्र प्रपौत्र आदिका सम्बन्ध (अपत्य अर्थ) है। न पतन्ति पितरो येन तद् अपत्ययं, जिनके जन्मसे जलदान, पिण्डदानसे पितरोंका पतन नहीं होता किन्तु वे प्रसन्न रहते हैं वे पुत्रादि अपत्य=अपने पिताकी जनन योग्यता पुंस्त्वके सूचक है। अदितेः अपत्यं आदित्यः अदितिमें जनन (उत्पादक) योग्यता है इसका सूचक ण्य है। दक्षस्य अपत्यं (जनन योग्यता सूचक) इञ् दाक्षिः। दक्षका औरस पुत्र। यदि गोद लिया पुत्र हो, तब अपत्य अर्थमें प्रत्यय नहीं होगा, वैसा पुत्र जनक योग्यताका परिचायक नहीं। जातिका आधार द्रब्य ही है। रंगा हुआ वस्त्र, नक्षत्रसे युक्त काल, विकार आदि व्यक्ति के सूचक हैं। त्वातं क्लीबं तलन्तं स्त्रियांसें लिङ्ग सूचित। किं सर्वनामबहुभ्यः, एक, द्वि, (सर्वनाम है) से संख्या सूचित। ब्राह्मणस्य भावः कर्म वा धर्म क्रिया ब्राह्मण्यं है। इससे फल जननी-क्रिया-जनक कारक सूचित। इन अर्थोंमें प्रातिदिकके हितैषी सभी प्रत्यय तद्धित है, स्वार्थिक प्रत्यय भी इन्हीमें समाये है।

टीका का उद्देश्य—

शास्त्रपरम्पराकी रक्षा। वेदानां रक्षार्थं- वेदकी रक्षा जो इतिहास पुराण धर्म शास्त्र (ज्ञानमात्रका उपलक्षण है) की रक्षा करना है। अथशब्दानुशासनं मे शब्द अर्थ सम्बन्ध फल चारो प्रमेयों का अनुशासन (जो पूर्ण ज्ञान सुप्रयोग में उपयोगी पुण्यप्रदहै) उसका प्रचार प्रसार। मध्यकालमें शास्त्र परम्परा दवोच उठी। उसको प्रकाशमें लाना परम आवश्यक है। प्राचीन कालमें (षडङ्गो वेदोऽध्येयो गेयश्च छ अङ्ग (जिनमें प्रमुख व्याकरण है) के साथ वेद का अध्ययन मूलउद्देश्य रहा। अङ्ग सहयोगी रहे। सभी शब्दो का व्युत्पादन वर्ण स्फोटार्थ (प्रकृति प्रत्ययार्थ) पदास्फोटार्थ–सुबन्त तिङन्तका [साधनिकाके साथ] अर्थ खोलना। वाक्यस्फोटार्थ खोलना व्याकरण का मुख्य विषय है तभी सरसता आती है। उपयोग जान पड़ता है।

पढने उपयोग करने में मन लगता है या गुरुमुखसे पढ़ी विद्या-काल आगमकाल है। ततः स्वयं चिन्तन मनन उपयोगिता अनुपयोगिताका विचार कर ज्ञान आत्मसात्कर प्रवचनकालमे ही सत्य ज्ञान को समाज तक पहुचाना, सुधार करना, शास्त्र परम्परा रही। तभी व्यापक प्रचार था। श्री तिवारीजी, श्री महाशयजी, श्री देवनायकाचार्यजी, प्रातः स्मरणीय स्वामी करपात्रीजी श्री शिवकुमार शास्त्रीजी आदि पूर्ण विद्वान थे। ये षडङ्गका आचरण करते थें नीरसप्रक्रया शुष्ककोटि कल्पना मात्रमें सीमित नही रहे। प्रयोग साधे, अर्थ न खुले ऐसी साधनिका किस कामकी। सुप्रयोग न बनपानेसे पुण्य नही होता।शास्त्र **प्रक्रिया स्मरणपूर्वकप्रयोगे धर्मः** लिखा है। हम पूर्णज्ञानके साथ सुप्रयोग करें स्वर्गे लोके च प्रतिष्ठा प्राप्त करें। शब्दब्रह्म का रसास्वादन करें, तन्मय हो

अध्यापक और विद्वान् में अन्तर :—

महर्षि पाणिनिने तदधीते तद्वेद सूत्र पढकर भेद डाल दिया। पंक्ति पढ़कर गुरु मुखसे अर्थ सुनना कहना अध्ययन है इस क्रियाका आधार अध्यापक है। यह अधीतेका भाव है। अधि इ णिच् [पढ़ाने अर्थमें] अक-कर्तामें-पंक्ति-अर्थ वाचकः जब स्वतः समझकर प्रवचनसे विषयका प्रतिपादन करें समझाये वे विद्वान् हैं। यह वेत्तिका भाव भेद है। विद (ज्ञाने] क्वसुसे विद्वान बना है। विषयका मन्थनकर प्रवचनसे बोध कराने वाला(विकाशवादी प्रवृत्ति)इसमें पंक्ति वाचन आवश्यक नहीं, प्रमाण रूपमें पंक्ति प्रस्तुत की जाय। बालमनोरमाकार [पं० श्रीवासुदेव दीक्षित] ने गुरुमुखात् अक्षरानुपूर्वीश्रवणमध्ययनम् गुरुसे शब्दोच्चारण सुनकर सीखना, अध्ययन है [शब्दार्थ ज्ञानं वेदनं शब्द अर्थ समझाना वेत्तिका भाव है। उनके अनुसार उच्चारणशिक्षक, अध्यापक है। अर्थबोधक विद्वान् है। मेरी दृष्टिमें आगमकालेन—गुरुमुखसे आयी हुई विद्याका काल= उच्चारणपूर्वक शब्द अर्थ पढ़ानेवाला अध्यापक है, आगमकालिक ज्ञानमें सीमित है। स्वाध्याय, प्रवचन व्यवहारमें उतारनेवाला विद्वान है। आचार्य भी-आचिनोति शास्त्राणि आचार्यः। जो शास्त्रके विषयका आलोडन मन्थन कर नवनीत तत्व निकालकर समझावे श्रीपूज्यपाद स्वामीकरपात्री महाराज, एवं श्री देवनायकाचार्य श्रीतिवारीजी महाशयजीमें आचार्यत्व मिलता हैं। हम अध्यापक होकर आचार्य [विद्वान्] बनें, विषयका प्रतिपादन प्रमाणोंको चुन-चुनकर करें, एक स्थलमें सम्बद्धविषयों को समझायें, व्यापक बोध करायें। अतः व्याकरण पढ़े ॥

इति भूमिका

प्रकरण—सूची

क्रम सं०	प्रकरणम्	पृष्ठ सं०
१.	भूमिका	क—घ
२.	कारकप्रकरणम्	१—१२६
	कारक विभक्ति—	
	१. प्रथमा विभक्ति	१—७
	२. द्वितीया विभक्ति	७—४३
	३. तृतीया विभक्ति	४३—५२
	४. चतुर्थी विभक्ति	५२—७१
	५. पञ्चमी विभक्ति	७१—८८
	६. षष्ठी विभक्ति	८८—११२
	७. सप्तमी विभक्ति	११२—१२६
३.	कारकाभिज्ञानम्	१२६—१२८
४.	अव्ययीभावसमासप्रकरणम्	१२९—१५२
५.	तत्पुरुषसमासप्रकरणम्	१५३—२३६
६.	बहुव्रीहिसमासप्रकरणम्	२३७—२७८
७.	द्वन्द्वसमासप्रकरणम्	२७८—२९४
८.	एकशेषप्रकरणम्	२९४—३०३
९.	सर्वसमासान्तप्रकरणम्	३०४—३१२
१०.	अलुक्समासप्रकरणम्	३१३—३२१
११.	समासाश्रयविधिप्रकरणम्	३२२—३५३
१२.	अपत्याधिकारप्रकरणम्	३५४—४०७
१३.	रक्ताद्यर्थकप्रकरणम्	४०८—४३७
१४.	चातुरर्थिकप्रकरणम्	४३८—४४८

अथ कारकप्रकरणम्

(५३२) प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा ।२ । ३ । ४६ ।। नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः । मात्रशब्दस्य प्रत्येकं योगः ।

नत्वा मुनित्रयं शम्भुं वितनोति प्रभाकरः ।
कारकाच्चतुर्थान्तां टीकां प्राभाकरीं शुभाम् ॥

कारक (विभक्त्यर्थ) प्रकरणम्

अथः=अनन्तर प्रातिपदिक के अधिकारमें सु औ जस् आदि विभक्तियों का प्रवचन समाप्तिके बाद उनके अर्थ क्रियाजनक, क्रियाफलका साधक कारकप्रकरणका प्रारम्भ होता है । क्रियायें फल जननी होतीं हैं । या या क्रिया सा सा फलवती । कृधातु फलजनक क्रिया अर्थवाली सभी धातुओंका सूचक है । कर्ता अर्थ में अक, मिलकर 'कारक' बना । विभक्तियों का क्या अर्थ है ? किस अर्थ में वे हों, इसकी विशेष व्यवस्था पाणिनि ने प्रस्तुत की

५३२। **प्रातिपदिकार्थ इति । प्रातिपदिक अर्थ में, लिङ्ग अर्थ में परिमाण, संख्याअर्थमें ही प्रथमा हो ।** जो सभी कारकों का शिरोमणि है, अर्थप्रधानदशा में सबसे सब अर्थ में होती है । कर्ता कर्म करण सम्प्रदान आदिके उक्त होने पर प्रथमा होती है । पञ्चकं प्रातिपदिकार्थः—जाति व्यक्ति लिङ्ग संख्या कारकरूप प्रसिद्ध है । एकं द्विकं त्रिकं चतुष्कं पञ्चकं ये प्रातिपदिकार्थ मतभेद से शास्त्र में मिलते हैं । जाति अर्थ में प्रमाण मीमांसक है । 'जात्याख्यायां' सूत्रवक्ता पाणिनि हैं । मनुष्यः पशुः ब्रीहिः कथन से जाति अर्थ स्पष्ट है, अतः एकवचन । किसी के मत में जातिव्यक्ति दो प्रातिपदिकार्थ हैं, कोई लिङ्ग-सहित तीन, संख्यासहित चार, कारकसहित पाँच, पक्ष भाष्य में प्रसिद्ध हैं । त्रिकं चतुष्कं पञ्चकं स्वीकारपक्षमें लिङ्ग भी **प्रातिपदिकार्थ** है । तेन **प्रथमा सिद्धा, सूत्रे लिङ्गग्रहणं व्यर्थं, सिद्धे सति आरम्भविधिः नियमाय कल्प्यते** इस प्रामाणिकवचन से प्रातिपदिकार्थगर्भितलिङ्ग से भी प्रथमा सिद्ध, **लिङ्गं व्यर्थीभूय कल्पनां करोति, नियमं निर्धारयति अत्र नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थो मान्यः** । नियता—निश्चिता उपस्थितिर्ज्ञानं यस्य स, निपूर्व-यमधातुका सभीदेशकाल में (यत्र यत्र शब्द तत्र तत्र सो अर्थः) जहाँ जहाँ शब्द है वहाँ वहां वही एक अर्थ रहे, ऐसी उपस्थिति, बोध, ज्ञान प्राति-

प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्राद्याधिक्ये (परिमाण मात्रे) सङ्ख्यामात्रे

पदिकार्थ है। व्यापकीभूता निश्चिता उपस्थितिः ज्ञानं यस्य अर्थस्य सोऽर्थः। **यस्मिन्प्रातिपदिके उच्चारिते सति यस्यार्थस्य नियमेन व्यापकरूपेण ज्ञानं भवति** स प्रातिपदिकार्थः जैसे—रामशब्द प्रातिपदिकसंज्ञक है, उसके उच्चारण से राम रामत्व (गुण विशेषता धर्म कर्तव्य मर्यादा दशरथ पुत्र) जैसे अर्थ की उपस्थिति, (यत्र यत्र रामशब्दः तत्र तत्र) सभी देशकाल में है पुंस्त्व आदि भी, तत्र प्रथमा। गुरु का अज्ञानध्वंशपूर्वकज्ञान दान अर्थ **व्यापकः**। पिता का पालकत्व पोषकत्व, भारतं का 'भा प्रकाशे रतम् अर्थ **व्यापक**। यदि जिसका अर्थ (लिङ्ग) सभी देशकाल में व्यापक नहीं, वहाँ **लिङ्गमात्र** की अधिकता में प्रथमा हो। अतः लिङ्गको अलग पढ़ा।

सूत्र के अन्त में पढ़ा मात्रशब्दका वचन से ही सम्बन्ध है यह भ्रम मिटाने के लिए कहा—**मात्र शब्दका प्रत्येकं योगः** हर एक से सम्बन्ध जुड़ता है। क्योंकि सूत्र में **प्रातिपदिकार्थश्च लिङ्गञ्च परिमाणञ्च वचनञ्च** द्वन्द्व समासः। निर्धारण अर्थमें ही एवके साथ समास। न स्वपदेन विग्रहो यस्य सः, अस्वपदविग्रहः (मात्रं कार्त्स्न्येऽवधारणे च इत्यमरः) पूर्ण, दृढ़निश्चय अर्थ में मात्रशब्दः (मयूरव्यंसकादिसमास) **द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकं युज्यते**। द्वन्द्वसमास के अन्तमें सुना गया पद हर एक से जुड़ता है। अतः मात्र शब्द प्रत्येक से जुड़ा। प्रातिपदिकार्थमात्रे—व्यापकीभूत अर्थ में ही प्रथमा हो। **लिङ्गमात्र, परिमाणमात्र सङ्ख्यामात्र** अर्थ की अधिकता में प्रथमा हो।

यदि ऐसा है तब केवल लिङ्ग संख्या की उपस्थिति होगी ही नहीं, वे निराश्रित हैं, अमूर्त। निराधार को आधार चाहिए प्रातिपदिकार्थ जाति व्यक्ति ही उनके आधार हैं। अतः कहा **लिङ्गमात्राद्याधिक्ये प्रथमा। परिमाण**–नपना तौल मात्रा किलो क्विटंल-ग्राम-द्रोण खारी आदि अर्थ वाचक शब्दों से परिमाण अर्थमें प्रथमा हो। उसका आधार जाति व्यक्ति के रहते। **संख्यामात्र** जातिव्यक्ति के साथ संख्या अर्थ अधिक हो तो भी प्रथमा मान्य।

अन्यथा मात्रशब्द सीमितका सूचक है। कर्म आदि अर्थ अधिक होनेपर प्रथमा नहीं होगी। "जातिव्यक्ति" अर्थे सत्यपि यत्र लिङ्गस्य अधिकता,

च प्रथमा स्यात् । उच्चैः । नीचैः । कृष्णः । श्रीः । ज्ञानम् । अलिङ्गाः नियतलिङ्गाश्च प्रातिपदिकार्थमात्र इत्यस्योदाहरणम् । अनियत-

---

वचनस्य, अर्थस्य, परिमाणस्य, च अधिकता, तत्रापि प्रथमा भवतु ।

प्रथम प्रातिपदिक के अर्थमें प्रथमाका प्रमाण यथा **उच्चैः** (ऊँचा आधार) उर्ध्वभाग अर्थेन अर्थवान् उच्चैस् **अधिकरणशक्तिप्रधानेऽर्थे प्रातिपदिकार्थ-सूत्रेण प्रथमा । अव्ययादाप्सुपः** अव्ययसे परे सुप्का लुक् । एवं **नीचैः** (निचला आधार अधोभाग) अधः अधिकरणशक्तिः अर्थेन अर्थवतः प्रातिपदिकसंज्ञकात् **नीचैस्शब्दात्प्रातिपदिकार्थे प्रथमायाः एकवचनं सु । स्वरादिनिपातमव्ययसंज्ञा अव्ययादाप्सुपो' लुक्, सकारस्य रुत्वे विसर्गे नीचैः ।** यहाँ प्रातिपदिकसंज्ञाका यह फल स्वादिविभक्तिः, पदसंज्ञा । इसका फल, **ग्राम उच्चैस्तव स्वं, ग्राम उच्चैस्ते स्वं** तव स्थाने ते, मम स्थाने मे सिद्धयति ।

कर्षति भक्तानां मनः, नाशयति दुष्टान्वा इति **कृष्णः** भक्तों का मन खींचना, वसुदेव पुत्र, कृष्णव्यक्ति कृष्णत्व—लीलापुरुषोत्तामत्व पुंस्त्व आदिना-अर्थेन अर्थवतः कृष्णशब्दात्प्रातिपदिकार्थे प्रथमायाः एकवचनं सु, तस्य रुवि, **कृष्णः** । **श्रयति** हरिं, सेवते, पालयति, पोषयति वा लोकानिति **श्रीः** । स्त्रीलिङ्ग, पालकत्वपोषकत्वेऽर्थे लक्ष्मी व्यापिका । तेन कारणेन नियतोपस्थितिके प्रातिपदिकार्थे प्रथमायाः एकवचनं सु रुवि० । **ज्ञातमिति ज्ञानं**, भावे—ज्ञान-क्रिया अर्थमें ज्ञा धातुसे ल्युट् यु अन । **ज्ञानं** यह नित्य नपुंसक है, इसमें ज्ञानक्रिया नियत-व्यापक है, तेन कारणेन प्रातिपदिकार्थे प्रथमा सु अम् सामान्ये नपुंसकम् । जहाँ किसी लिङ्गका स्पष्ट निर्णय न रहे । वहाँ नपुंसक मान्य । यदि जाति व्यक्ति अर्थ हो तब कृष्णमें पुलिङ्ग, श्रीशब्द में स्त्री०, ज्ञानमें नपुंसक का बोधः अधिक होगा तब प्रातिपदिकार्थ का उदाहरण नहीं बनेगा, लिङ्ग अर्थकी अधिकतासे । अतः कथितं मूले **नास्ति नियतं सर्वस्मिन्देशे काले व्यापकं लिङ्गं येषान्ते अलिङ्गाः** मान्याः । यतः (क्योंकि वचन सङ्ख्या लिङ्ग में समान हो वह अव्यय है) **सदृशं त्रिषुलिङ्गेषु यन्नव्येति तदव्ययं**, यथा उच्चैः नीचैः । नियतं निश्चितं सर्वस्मिन्देशे काले व्यापकं लिङ्गं येषान्ते **नियतलिङ्गाः** कृष्ण-श्री-ज्ञान हैं । एक लिङ्ग जिनके

लिङ्गास्तु लिङ्गमात्राधिक्यस्य। तटः–तटी–तटम्। परिमाण मात्रे द्रोणो व्रीहिः। द्रोणरूपं यत्परिमाणं तत्परिच्छिन्नो व्रीहिरित्यर्थः।

नियत हो वे ही प्रातिपदिकार्थके उदाहरण। निश्चित व्यापक-कृष्णमें पुलिङ्ग, श्रीमें स्त्री, ज्ञानमें नपुंसकका नियम व्यापक, सर्वत्र निश्चित होने से प्रातिपदिकार्थके उदाहरण बननेमें बाधा नहीं। यद्यपि **'काला'** अर्थवाचक **कृष्णः पटः कृष्णा शाटी, कृष्णं वस्त्रं** काला कपड़ासे तीनों लिङ्ग सिद्ध, तथापि वासुदेव भगवान अर्थमें कृष्णशब्दपुलिङ्ग ही वक्ता को इष्टः। यहाँ प्रथमाका उपयोग क्या है, क्यों हो। अव्यय से प्रथमाका होना कोई फल नहीं। तब बोले **पदत्वार्थं**—पदसंज्ञाके लिए प्रथमादिका होना आवश्यक है। तत्रापि औत्सर्गिकमेकवचनम्। न नियतं सर्वत्र व्यापकं निश्चितं लिङ्गं येषान्ते **अनियतलिङ्गाः शब्दाः तटादयः। तटं त्रिषु** इत्यमरः। तटशब्द तीनों लिङ्ग में सभी देशकालमें एकलिङ्ग नहीं रहता, कही पुलिङ्ग, तटः, कहीं स्त्री तटी, कहीं नपुंसक तटम्। अनियतलिङ्ग होनेसे अधिकस्यभावः आधिक्यं, लिङ्ग एव लिङ्गमात्रं, तस्य आधिक्यं यस्मिन्शब्दे तस्य उदाहरणं तटः तटी तटं, तत्र लिङ्गमात्रे प्रथमा। द्विकं–जातिव्यक्ति पक्षमें यद्यपि प्रकृत्यर्थ है, तथापि यत्र यत्र तटशब्दः तत्र तत्र पुलिङ्ग इति वक्तुं न शक्यते। लिङ्ग नियत नहीं, प्रातिपदिकार्थे प्रथमा असम्भव। अतो लिङ्गमात्रादि-आधिक्ये प्रथमा।

परिमाणमात्रे इसका स्फोटार्थः-परिमीयते तोलनं क्रियते माप्यमापक भावो बोध्यते येन तत् परिमाणं तौलने से इतनी मात्राका साधन परिमाण है) तदेव तन्मात्र। द्रोण एक परिमाण है (धान नापनेका पात्र परिमाणे अर्थे सु। रुवि० **द्रोणो व्रीहिः**। (जाति अर्थे एकवचनं जात्या-ख्यायां (जाति अर्थ कहना हो तब बहुवचन भी एकवचन हो जाता है। धान्यराशि व्रीहि है) नहि एकस्याः व्रीहिव्यक्तेः द्रोणपरिमाणं सम्भवति। एक अन्नसे द्रोण कुठला नहीं भर सकता। **ननु द्रोण इत्यत्र द्रोण द्रोणत्व पुं० पुंस्त्व परिमाण पञ्च अर्थाः यत्र यत्र द्रोणः तत्र तत्र मिलन्ति। नियता उपस्थितिः अर्थस्य व्यापकं ज्ञानं, प्रातिपदिकार्थे प्रथमा सिद्धा परिमाणग्रहणं**

प्रत्ययार्थे परिमाणे प्रकृत्यर्थोऽभेदेन संसर्गेण विशेषणम्, प्रत्ययार्थस्तु परिच्छेद्यपरिच्छेदकभावेन व्रीहौ विशेषणमिति विवेकः। वचनं

किमर्थं, किं-फलं, प्रयोजनञ्च किं चेत् शृणु निपातातिरिक्त समानविभक्तिक नामार्थयोरभेदान्वयः। प्रातिपादिक अर्थमें द्रोण और व्रीहि दोनों से प्रथमा होगी, तब दोनों का अभेद सम्बन्ध होगा, दो प्रातिपदिकार्थके अभेदान्वय नियम से, वह न हो, **अतः परिमाणग्रहणम्।** यद्यपि द्रोणः भिन्नपदं व्रीहिश्च धान्यं भिन्नं परन्तु द्वयोः अभेदेन माप्यमापक परिच्छेद्यपरिच्छेदक भावो न वनिष्यति द्रोणः धर्मः, व्रीहिः धर्मी। तत्र भेदः सदा तिष्ठतु, अतः परिमाणग्रहणम्, अतएव, कथितं मूले **द्रोणरूपं यत्परिमाणं**—द्रोणरूप जो नपना है पात्रविशेष, **तत्परिच्छिन्नो** (उससे नापा तौला हुआ) धान्य भेदअर्थ आवश्यकः। एतत्तादा सम्भवति यदा द्रोण इत्यत्र परिमाणमात्रे प्रथमा व्रीहि इत्यत्र प्रातिपदिकार्थे प्रथमा स्यात्, तब अभेदान्वयके बाधसे ही परिच्छेद्य-परिच्छेदक सम्बन्ध बनेगा। **अत्रशङ्का**–द्रोणशब्दः तुला, पात्रविशेषः निश्चित-पुलिङ्गः तदा प्रातिपदिकार्थे प्रथमा, यदा, "अस्त्रियामाढ़कद्रोणौ" आढ़क और द्रोणके स्त्रीलिङ्ग नहीं होते हैं। अर्थात् पुं० नपुं० दो लिङ्ग है द्विलिङ्गता। लिङ्गाधिक्येन प्रथमासिद्धा परिमाणग्रहणं व्यर्थं तन्न, **प्रत्ययार्थे**= द्रोणपरिमाणसे सु प्रत्ययका भी अर्थ परिमाण है। क्योंकि परिमाणमात्रे प्रथमा सु है यह प्रत्ययका अर्थ, प्रकृतिका अर्थ भी परिमाण ही है। तव स्वार्थमें प्रथमा मान्य। चूंकि सु प्रत्ययार्थपरिमाणमें, प्रकृत्यर्थ द्रोणपरिमाण अभेदसम्बन्ध से विशेषण, अर्थात् द्रोण और सु के अर्थमें कोई भेद नहीं। यह सु प्रातिपदिकका अर्थ न कहकर परिमाण अर्थ कहेगा। अतः परिमाणमात्रे प्रथमा, न प्रातिपदिकार्थे। द्रोण का सु अर्थ के साथ अभेद सम्बन्ध। **प्रत्ययार्थस्तु**—सुप्रत्ययका अर्थ परिमाण है वह **परिच्छेद्य** माप्य **परिच्छेदक** मापक भाव से व्रीहिमें विशेषण। परिच्छेत्तुं योग्यः परिपूर्वकछिद् धातुका अन्यसे अलग करना अर्थः। कर्मणि ण्यत्। परिच्छिनत्ति अन्येभ्यः अन्यं पृथक्करोति परिच्छेदकः धर्मः द्रोणः। यदि अभेदसम्बन्ध होता, परिमाण अर्थ स्पष्ट न जान पड़ता। अतः परिमाण पढ़ा, जिसका परिमाण हुआ माप्य मापकभाव, भेदसम्बन्ध बना। द्रोणरूपपात्र से तौला हुआ धान इति

सङ्ख्या। एकः। द्वौ। बहवः। इहोक्तार्थत्वाद्विभक्तेरप्राप्तौ वचनम्।

विवेकः। पलद्वयं तु प्रसृतं, द्विगुणं कुडवं मतम्। चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थः, प्रस्थाश्चत्वार आढकः। आढकैस्तैश्चतुर्भिस्तु द्रोण इत्यभिधीयते। कुम्भो द्रोणद्वयं शूर्पः, खारीद्रोणास्तु (षोडशः)।'

प्राचीन आचार्यों ने वचनको सङ्ख्या कहा है। सूत्र में सङ्ख्यामात्रे प्रथमा अर्थलाभ। वाच्यवाचकके बीच अभेद सम्बन्ध। अत्रशङ्का— यथा अधिकस्यभावः आधिक्यं, लिङ्गएव लिङ्गमात्रं, तस्य आधिक्ये (तथा सङ्ख्यामात्राधिक्ये) प्रथमा कहें क्योंकि सङ्ख्या भी जातिद्रव्यकेबिना नहीं रहती है तन्न, समाधानम्—केवल लिङ्ग या परिमाण कही भी निराधार नहीं रह सकते, किन्तु एक द्वि बहुशब्दमें एकत्व द्वित्व बहुत्वकी नियत= व्यापक उपस्थिति ज्ञान है। यत्र-यत्र एक शब्दः तत्र-तत्र एकत्वं, यत्र द्विः-द्वित्वं विना द्रव्यके भी व्यवहार बन सकता है। भाष्यमें वचनका उदाहरण एकः द्वौ बहवः दिया, अन्य नहीं। अत्र शङ्का एकः द्वौ बहवः इत्यत्र एकत्वस्य द्वित्वस्य नियमेन उपस्थितिः तदा प्रातिपदिक अर्थे प्रथमा सिद्धा, वचनग्रहणं व्यर्थम्। उत्तरं मूले दत्तं यत् इह=अस्मिन्प्रसङ्गे उक्तार्थत्वात्=उक्तः कथितः प्रकटीकृतो अर्थः स उक्तार्थः, तस्य भावः तस्मात्। एकशब्दमें एकसङ्ख्या, द्विमें दो, बहुमें बहुतसङ्ख्या प्रकृतिका अर्थ। प्रत्यय सु में एक, औ में दो, जिसमें बहुतसङ्ख्या। जो अर्थ प्रकृति बोलती है उसी अर्थ को प्रत्यय भी बोले, तब पुनरुक्तिदोष होगा, इसीको उक्तार्थानामप्रयोगः कहते हैं। प्रथमा न प्राप्नोति अस्मात्करणाद् वचनग्रहणम्। यस्य प्रभावेण प्रथमा भवति। यद्यपि प्रयोगे तस्याः आवश्यकता नास्ति, तथापि शब्द साधुत्वार्थं पदसंज्ञार्थं अनुवादिका विभक्तिः आवश्यकी। केवल प्रकृति या प्रत्यय का प्रयोग प्रायः देखा नहीं जाता। भाष्ये 'न केवलाः प्रकृतिः प्रयोक्तव्या नापि केवल प्रत्ययः। इसी अभिप्राय से भाष्यमें उक्तेष्वपि एकत्वादिषु प्रथमा। मात्र ग्रहणसे कारक के अधिक भावसे प्रथमा नहीं होती। चतुष्कं प्रातिपदिकार्थ इतिकैयटः, त्रिकं पञ्चकमपि प्रातिपदिकार्थ इति भाष्यकारः। अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां—सङ्ख्या और कारक, विभक्तिके दो अर्थ हैं। तत्सत्वे तत्सत्वं (विभक्तिसत्वे सङ्ख्यासत्वम्) अन्वयः। विभक्ति न रहने पर सङ्ख्या,

(५३३) सम्बोधने च। २। ३। ४७॥ इह प्रथमा स्यात्। हे राम।

कारक का ज्ञान नहीं होता। अतः संख्या भी विभक्तिका अर्थ है। क्योंकि जाति व्यक्तिलिङ्ग तीन प्रातिपदिकार्थ वृत्तिकारको इष्ट है। यद्यपि दधि मधुमें विभक्ति लुक् होने पर भी एकसङ्ख्या उक्तकारकका ज्ञान होता है। वृक्षौ वृक्षाः में वृद्धि और दीर्घसे विभक्तिका अर्थ छिप जाता है। गर्गाःमें यञ्के लुक्से भी सन्तान अर्थका ज्ञान है। अतः सङ्ख्याकारकम्। अपत्य आदि अर्थ प्रकृतिके है। अविभः भेत्तासे कर्ताका ज्ञान होता है। अतः तीन प्रातिपादिकके अर्थ, सङ्ख्या कर्म दो विभक्तिके अर्थ,। जिनके मतमें द्विकं स्वार्थविशेषण, द्रव्यविशेष्य। लिङ्गवाचिका। (द्योतिका वाचिका वा स्युः दित्वादीनां) विभक्तयः।

५३३। **सम्बोधन** अर्थ अधिक होनेपर प्रथमा हो, संपूर्वक बुधधातुका ध्यानाकर्षण अर्थः। भावमें ल्युट्का क्रिया अर्थ, अभिमुखीकृत्य ज्ञापकं ध्यानाकर्षणं सम्बोधनं, तत्साधकं हे है अरे अबे धिङ् मूर्ख आदि। हे राम **मां पाहि**। यद्यपि राममें राम रामत्व **दशरथ** पुत्र आदिके व्यापक ज्ञान **से** प्रथमा सम्भव परन्तु मात्रग्रहणके नियन्त्रणसे, सम्बोधन अर्थके आधिक्यसे प्रथमा। अप्राप्त अतः सूत्र पढ़ा। हे राम **इत्यत्र सम्बोधने च सूत्रेण ध्यानाकर्षणे अर्थे अधिकेऽपि प्रथमा**। रामसम्बन्धि यत्सम्बोधनं तस्य विषयः, मत्कर्तृकं रक्षणं ज्ञाप्यं (राम से अपनी रक्षा के निवेदन के लिये उनका ध्यान खींचना) ब्रजानि देवदत्त, देवदत्तसम्बन्धिसम्बोधनविषयः मत्कर्तृकं गमनं रामं प्रति मद्रक्षणं ज्ञाप्यम्। यद्यपि हे राजन् सार्वभौम इति भव, यहाँ भी सार्वभौमशब्द से प्रथमा सम्भव, तथापि सम्यक् बोधनमेव सम्बोधनं सम् उपसर्गके बलसे आकर्षण पूर्णबोध। सार्वभोम विधेय है वह असिद्ध होगा, चक्रवर्ती होना ज्ञाप्य है। श्रोता राजा उद्देश्य है। उससे प्रथमा होगी, भव आशीर्वाद होना है, हुआ नहीं। विभक्ति नही आई। इति प्रथमा।

५३४। **कारके** का अधिकार। महतीसंज्ञा यत्र क्रियते तत्र संज्ञाशब्दस्य शब्दार्थः स्फोटार्थः अवश्यं घटेत। बड़ी संज्ञायें वहाँ होती हैं, जहाँ उनका अर्थ घटे, **संज्ञा च नाम यतो न लघीयः** (जो सबसे लघु छोटा हो, जैसे टी, घु, भ संज्ञा) **कुत एतत् लध्वर्थं हि संज्ञाकरणम्, तत्र महत्या**

(५३४) कारके । १ । ४ । २३ ।। इत्यधिकृत्य । **(५३५) कर्तुरीप्सिततमं कर्म । १ । ४ । ४९ ।।** कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं

संज्ञायाः करणे एतद् प्रयोजनम् अन्वर्थसंज्ञा विज्ञायेत इति । करोतीति कारकम् शक्तिबोधकत्वं संज्ञात्वं, कारकशक्तिका बोधकरानेवाली संज्ञा है। यह ६ प्रकार की है। कारणके भेदसे कार्यमें भी भेद ।

यथा **निमित्तभेदादेकैव भिन्ना शक्तिः** प्रतीयते ।
षोढा **कर्तृत्वमेवाहुः, तत्प्रवृत्तिनिबन्धनम्** । साधनसमुद्देश्यः ।।

इसके अनन्तर सभी सूत्रोंमे कारकका अधिकार जायगा पहले कारकसंज्ञा, ततश्च कर्मकरणादि संज्ञा । कारक में सप्तमी प्रथमाके अर्थमें है। **विभक्त्यन्तरयोगो हि यस्य तद्विषयान्तरे । विभक्त्यन्तरसम्बन्धः समर्थ्यादनुमीयते** । विभक्तिके विषयान्तरमें बदलना सम्बन्धके सामर्थ्यसे अनुमित है । प्रतिसूत्रं वाक्यं भित्वा कारकसंज्ञा विधीयते । यथा आपाये ध्रुवं कारकसंज्ञं सत्कारकम् अपादानसंज्ञं स्यात् । क्रिया से सम्बन्धितको कारकसंज्ञा होगी । वह आश्रयत्वसम्बन्ध हो या अन्य, क्योंकि क्रियाजनकं कारकं, क्रियाको जन्म देनेवाला, उसे बढ़ाकर अंकुरित पल्लवित पुष्पित फलित करनेवाला कारक है । अतः करोति क्रियां निर्वर्यति फलं साधयति क्रियाको फलवती बनाये । **क्रिया पत्नी है कारक पति**, फल पुत्र है, संसर्ग से सफलता । षष्ठी कारक नहीं उससे क्रियाका सम्बन्ध नहीं । गुरोः पुत्रं पश्य । दर्शनकियाका पुत्रसे सम्बन्ध गुरुसे नहीं ।

५३५ । **कर्तुः** । कारके का अधिकार । प्रथमा परिणाम । कर्तुः में कर्तरि षष्ठी, क्योंकि आप्तुमिष्यते अथवा इष्यमाणं-सम्बन्ध जोड़नेकी इच्छा हुई हो वह ईप्सितम्=आप्लृव्याप्तौ, आपधातुका सम्बन्ध जोड़ना अर्थ । उससे इच्छा अर्थमें सन् । सम्बन्ध जोड़नेके लिए इच्छाका विषय 'आप्ज्ञपृधामीत् आस्थाने ई । ईप्स उससे मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च वर्तमाने कर्मणि क्त इट् । मतिः इच्छा न तु वुद्धिः, पृथक् पढ़नेसे । सम्बन्ध जोड़नेकीं इच्छाका विषय । स्फोटार्थ—**अतिशयेन ईप्सितम् ईप्सिततमं** प्रसङ्गकी क्रियासे अत्यन्त सम्बन्ध कामनाका विषयकर्म (क्रियाफलका आश्रय) धातुकी क्रियाका

कर्मसञ्ज्ञं स्यात्। 'कर्तुः किम्? माषेष्वश्वं बध्नाति। कर्मण ईप्सिता

आधार कर्ता, वर्तमानक्रियासे उत्पन्न फलके आश्रयको कर्मसंज्ञा हो। इसीका फलित अर्थ।

कर्तुः क्रियया—क्रियाके स्वतन्त्र आधारको कर्ता कहते हैं। उसमें वर्तमान क्रियासे उत्पन्न फलको जोड़नेके लिए **आप्तुं=सम्बन्धुमिष्टतमम्=** अत्यन्त इच्छा कामना विषय उस कारकसंज्ञकको कर्मसंज्ञा हो। क्तप्रत्ययसे वर्तमानकाल इष्ट ही नहीं है। वह कटं कृतवान्में भूतकाल, कटं करिष्यति। चटाई बनाया या वनायेगामें भविष्यकाल का भी बोधक है। जैसे—**तण्डुलान्पचति** चावलको पकाता है। तात जलके भापसे चावलका अङ्ग-अङ्ग शिथिल मुलायम मृदु होना। उसके अनुकूल क्रिया पचका अर्थः। उस क्रियासे उत्पन्न फल विक्लित्तिका आश्रय अन्यन्तइष्टकारक (जो मुलायम हो रहा है) तण्डुलको कर्मसंज्ञा। **कर्तरि वर्तमाना या क्रिया तया जन्यम् उत्पन्नं फलं तस्य इष्टतम आश्रयः इच्छायाः विषयः, एतादृशं कारकं कर्म-संज्ञं स्यादिति** सूत्रार्थः।

अत्र शङ्का **"कारके" सूत्रस्य अधिकारश्चलति। तेन अधिकारेण कारक वृत्तिव्यापारप्रयोज्यफलाश्रयेच्छोद्देश्यं कर्म इत्यर्थस्वीकारेण कारकपदेन कर्तुः ग्रहणं सुलभं, सूत्रे कर्तुः किमिति प्रश्नः?** कारकशब्दसे कर्ता स्वीकृत उसकी क्रियासे उत्पन्न फलका अधिक इष्ट आधार कर्मसंज्ञक होगा ही कर्ता पढ़ना व्यर्थः तन्न, समाधानं-**माषेषु=माषक्षेत्रेषु** (उरद की खेतमें) **प्रसक्तेषु** तम् **अश्वं** (चरते हुए घोड़ेको) **बध्नाति**। उरदके खेतमें भूख से व्याकुल खाते हुए घोड़ेको (हानि न करे हरियाली नष्ट न हो) **अन्यत्र बध्नाति चैत्रः**। घोड़ा उरद खाता है उसे चैत्र अन्यत्र बाधता है। अत्र चैत्रः कर्ता अश्वः कर्म, बध्नातिक्रिया कर्तरि चैत्रे अस्ति। बध्नाति=**शङ्कुसंयोगनुकूल-व्यापारजन्यः शङ्कुसंयोगः फलं, तस्य आश्रय अश्वः कर्मसंज्ञकः, परन्तु अश्वः कर्मकारकमस्ति। अश्ववृत्तिव्यापारः कारकवृत्तिव्यापारो अस्ति। स च भक्षणानुकूलव्यापारः गलविलाधःसंयोगः फलं कर्मकारके अश्वे तिष्ठति** (खाने की क्रिया घोड़में है उससे उत्पन्न फल तृप्ति या गलेके नीचे उतारना) **फलं, तस्य फलाश्रयः माषः तस्य कर्मसंज्ञा प्राप्नोति। माषेषु न अनिष्यति**

माषाः, न तु कर्तुः । 'तमब्ग्रहणं किम् ? पयसा ओदनं भुङ्क्ते । 'कर्म

किन्तु माषं 'द्वितीया' भविष्यति । अयमेव दोषः । माषेषु इत्यत्र कर्मसंज्ञा मा भवतु एतदर्थं कर्तुर्ग्रहणम् । कर्तरि वर्तमाना क्रिया बन्धनक्रिया, न तु भक्षण-क्रिया, बन्धनफलाश्रयः अश्वः न तु माषः । अश्वस्य कर्मसंज्ञा भविष्यति, माषेषु इत्यत्र न भविष्यति । माषः नहि बन्धनफलाश्रय, तेन न दोषः । तेन कारणेन कर्तुः कथनमुचितम् । अतएव मूले कथितं कर्मणः ईप्सिता माषा न तु कर्तुः । कर्म (अश्व) को उरद इष्ट है । कर्ताको अश्वबन्धन इष्ट । बन्धनाश्रयस्य अश्वस्य माषाः इष्टाः न तु बन्धनकर्तुः अश्वात् रक्षणस्य अपेक्षितत्वात् । स्वस्वव्यापारं प्रति सर्वे कर्तारः

तमब्ग्रहणं किम् ? अतिशयेन ईप्सितम् ईप्सिततमम् अत्र अतिशयस्य अधिकस्य इष्टार्थवाचकस्य तमप्प्रत्ययस्य फलं पृच्छति ? **कर्तुरुद्देश्यंकर्म इत्येव सूत्रमस्तु ।** सूत्रमें अतिशय अर्थबोधक तमप-क्यों पढ़ा ? इसलियेकि **पयसा ओदनं भुङ्क्ते ।** दूधके लोभसे दूधसिक्त भात खाता है । पयसा मिश्रं भक्तं खादति । भुज धातोः भोजनक्रियां प्रति पयसः (दुग्धस्य) अधिकोप कारकत्वेऽपि भोजने प्राधान्यम् ओदनस्य (भक्तस्य) एव अस्ति । ओदनः ईप्सितमः तस्य भवति कर्मसंज्ञा । दुग्धस्तु ओदनस्य सिञ्चने संस्कारकः करणमस्ति । दूध से सना भात उद्देश्य है, केवल दूध या भात खाना नहीं । न केवलं दुग्धपानेन प्रसन्नो भवति । किन्तु पयः सिक्तेन । **पयसा इत्यत्र कर्मसंज्ञा मा भवतु, किन्तु हेतौ तृतीया, एतदर्थं तमब्ग्रहणं, यदाकृतभोजनोऽपि देवदत्तः पयोलाभलोभेन ओदनमात्रभोजने प्रवर्तते (नतु पयसः) तस्य गृहनयनकर्मत्वात् तदा इदमुदाहरणम् ।** दूधके लोभसे पुनः भोजन करना, तत्कालीन उदाहरण, जहाँ दूध ईप्सिततम्=अधिक अभीष्ट हो, वहाँ कर्मसंज्ञा होती है । भोजनक्रियाका ओदन-भात मुख्यकर्म है । उसमें मिलानेका साधन दूध गौण (विशेषण) है । जहाँ भोज्यत्व है वहीं ईप्सिततमत्व है वह पयमें नहीं । दूध ईप्सित है ईप्सिततम नहीं । ननु करोति क्रियाफलं धारयति कर्म । क्रियासे उत्पन्न फलको धारण करे वह कर्म है । **सूत्रमें अधिशीङ्स्थासां कर्म इति सूत्रात्कर्मपदस्य आगमनेन कर्म अर्थस्य लाभो भविष्यति** (इस सूत्रमें पूर्वसूत्रसे कर्मकी अनुवृत्ति होती ही, कर्मसंज्ञा अर्थ

इत्यनुवृत्तौ पुनः कर्मग्रहणमाधारनिवृत्यर्थम् । अन्यथा गेहं प्रविशतीत्यत्रैव स्यात् । **(५३६) अनभिहिते । २ । ३ । १ ॥** इत्यधिकृत्य । **(५३७) कर्मणि द्वितीया । २ । ३ । २ ॥** अनुक्ते कर्मणि द्वितीया

निकलता ही) **कर्मग्रहणं किमर्थं ?** समाधानं, मूले कथितम्, **आधारनिवृत्यर्थं** (निवृत्तिके लिए कर्म पढ़ा गया) अधिशीङ्-सूत्रम् आधारस्य कर्मसंज्ञां करोति। तत्र आधारः कर्मसंज्ञा च सहैव पठिते स्तः (एक साथ पढ़े गये हैं) **एकयोगनिर्दिष्टानां सहैव प्रवृत्तिः सहैव निवृत्तिः ।** (एक साथ पढ़े लोग एक साथ आते हैं एक साथ जाते भी है कर्मके साथ) कर्मणा सह आधारस्य आगमनं मा भवतु 'अतः सूत्रे कर्मग्रहणम् । जहाँ फलके साथ कर्ताका भी आधार हो। **अन्यथा गेहं प्रविशति इत्यत्रैव कर्मसंज्ञा स्यात् । भजति इत्यत्र न** स्यात्, नहि हरिः भजनक्रियायाः आधारः । यत्र फलाधारः तत्रैव कर्म भविष्यति (गृह आधार में प्रवेश) गेहं प्रविषति । मधुरं गायति । मुग्धकरं नृत्यति । क्रियाविशेषणानां कर्मत्वं नपुंसकलिङ्गता च क्रियामें जो विशेषण हो वे नपुंसक और कर्म मान्य है। उनकी कर्मसंज्ञा कर्तुरीप्सिततमं से है।

। ५३६ । **अनभिहिते** अभिधानम्=अर्थस्य प्राधान्येन कथनं, जो प्रातिपदिकार्थ तिङ्-कृत-तद्धित-प्रत्यय और समाससे उक्त अभिहित कथित जागृत प्रकाशित वाच्य हो। न अभिहितं जो अर्थ प्रत्ययादिसे वाच्य न हो उसे अनभिहितं तस्मिन् ।५३७। अनुक्ते=यस्मिन्प्रत्ययः स अभिहितः यस्मिन्न प्रत्ययः स अनुक्तः, जो अर्थ प्रत्ययसे न कहा हो, क्रियामें स्वतन्त्र न हो, उस कारकका अधिकार करके द्वितीयादि विधानका आरम्भ । यथा **हनुमान् हरिं भजति।** तिप्रत्ययका कर्ता अर्थः । उससे अभिन्न वाच्यकर्ता हनुमान् प्रधान—भजनक्रियाका स्वतन्त्र आधार बने, तब उक्त अर्थ हुए। कर्ममें प्रत्यय न होनेसे कर्म (हरि) में क्रिया स्वतन्त्र नहीं रही, अनुक्त हुई। किन्तु भजनक्रिया आवाहन से पुष्पाञ्जलिपर्यन्त क्रियाका फल प्रसन्नता प्रीति, आशीर्वादोन्मुखभाव, वह हरि आधारमें है, भगवान प्रसन्न हो रहे है। भजनफल प्रीतिका **आश्रय हरिः तत्र कर्तुरीप्सिततमं सूत्रेण कर्मसंज्ञा । अनुक्ते कर्मणि द्वितीया, अम्, हरिं भजति । पितरं सेवते, कथां शृणोति, संध्यां करोति, पुराणं प्रशंसति, वेदं वेत्ति ।** सर्वत्र कर्मसंज्ञा जायते।

स्यात् । हरिं भजति । अभिहिते तु कर्मणि 'प्रातिपदिकार्थमात्रे इति

क्रियाफलं धारयति कर्म । पूजादिना हरिं तोषयति तुष्टयनुकूला कर्तरि स्थिता या पूजा तस्याः तुष्टिरुपफलाश्रयत्वात् हरिः कर्म, तद्विशिष्टं भजनं, भगवानमें प्रसन्नताके अनुकूल एक देवदत्तमें वर्तमान भजनक्रिया निष्कर्षः । हरिः सेव्यतेका शाब्दबोध—शब्दसुननेसे स्पष्ट ज्ञान । क्रियाप्रधानं तिङन्तं, भावप्रधानमाख्यातम् । किसी वाक्यके वाक्यार्थमें क्रियाही प्रधान, शेष फल-कर्ता-कर्म-सङ्ख्या-काल अप्रधान विशेषण है । अत्र पश्य मृगो धावति । इति भाष्यवचनं प्रणाणं, दर्शनक्रिया प्रधान है । धावनक्रिया कर्म, प्रधानं दृशिक्रियैव । **सुबन्तं हि यथा अनेकं तिङन्तस्य विशेषणम्** । तथा **तिङन्तमप्याहुः तिङन्तस्य विशेषणम्** । जिस वाक्यमें दो तिङन्त हो, उनमें एक-प्रधान एकविशेषण । पुरीमवस्कन्द लूनीहि नन्दनं (नगरी ध्वस्त करो, नन्दन बन काटो) पचति भवति । पाकक्रिया भवतिसे क्रिया प्रधान शाब्दबोध ।

अभिहिते तु–जहां अभिहित-प्रत्यय, समास से कहा गया अर्थ उक्त है । ति, यक्, आत्मनेपद आदिसे– प्रातिपदिक का अर्थ प्रधान हो, खुल जाय, प्रकाशमें आये, वहाँ प्रातिपदिकके अर्थ जातिव्यक्तिलिङ्गसङ्ख्याकारक मात्रमें प्रथमा ही हो क्योंकि शक्तिः कारकं शक्तिमत्कारकं प्रातिपदिकार्थः । मूलमें कहा कि जहाँ कर्मअर्थमें प्रत्यय होगा वहाँ कर्म अर्थमें प्रथमा होगी । क्योंकि प्रथमाके विधानमें अनभिहितेका कोई अधिकार नहीं अपितु एक वार्तिक है कि "अभिहिते प्रथमा, जो भी कारक उक्त–वाच्य-प्रधान–प्रकट क्रिया में स्वतन्त्रः, होगा उसी अर्थमें प्रथमा होगी । अत्र शङ्का-**पक्वम् ओदनं भुङ्क्ते**, पक्वं शब्दमें कर्म अर्थ के उक्त होनेसे ओदन में प्रथमा होनी चाहिए, द्वितीया कैसे ? मैवं-ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि पक्वं में पचधातुकी कर्मशक्ति और भुज धातुकी कर्मशक्ति, दो शक्तियाँ प्राप्त हैं । प्रधानकी शक्ति प्रबल है । इस वाक्यमें भोजनक्रिया प्रधान होनेसे, उसकी कर्मशक्ति प्रबल पड़ी । ओदनमें द्वितीया । अत्र शङ्का-**भीष्मम् उदारं दर्शनीयं शोभनं कटं करोति** (चटाई बनाता है) कटमें कर्म उक्त है । **उक्ते प्रथमा** भवति । द्वितीया न प्राप्नोति तदा अभिधानस्य परिगणनं, सङ्ख्यानं क्रियते **अभिधानञ्चं प्रायेण**—प्रायः बहुधा,

प्रथमैव। अभिधानं च प्रायेण तिङ्कृत्तद्धितसमासैः। तिङ्–हरिः सेव्यते। कृत्–लक्ष्म्या सेवितः। तद्धितः-शतेन क्रीतः शत्यः। समासः -प्राप्तः आनन्दो यं स प्राप्तानन्दः। क्वचिन्निपातेनाभिधानम्।

विशेष करके तिङ् कृत्तद्धितसमाससे' प्रातिपदिकका अर्थ कारक (कर्ता कर्म आदि का) अभिधान मान्य।

तिङ् से अभिहित्ति-कारक (कर्ता कर्म क्रिया) के कथनका प्रदर्शन- **हरिः सेव्यते। लक्ष्मी हरिं सेवते।** भगवानकी सेवा करती है। कर्ता अर्थमें प्रत्यय। लक्ष्मी (सेवामें स्वतन्त्र) उक्त कर्ता है किन्तु **लक्ष्म्या हरिः सेव्यते** यक्, कर्मणि लकारः भावकर्मणोः आत्मनेपदं। हरिमें कर्मशक्ति, **अभिहिते तु**– उक्त कथित प्रकट हुई (उक्ते प्रातिपदिकार्थे) प्रथमा। लक्ष्मी से हरि सेवा पाते है। **तिङ्** से उक्त कर्म हरिमें न द्वितीया, किन्तु प्रथमा एव। इसका भी शाब्दबोध– **हरिनिष्ठप्रीत्यनुकूलः एकलक्ष्मीनिष्ठः वर्तमानो व्यापारः।** हरिं भजतिकी तरह वाक्यार्थ। कर्तृवाच्य कर्तामें प्रत्यय। कर्मवाच्य कर्ममें प्रत्यय। दोनोंका सम्मान वाक्यार्थबोध प्राचीनवैयाकरणकी रीति है। **शिष्यः पाठ्यते गुरुणा। पुत्रः पाल्यते पित्रा। शिशुः पोष्यते मात्रा। कृत**-अविभक्तिनिर्देशेन कृदन्तस्य उदाहरणं सूचितं, **लक्ष्म्याः सेवितः।** लक्ष्मी हरिं असेविष्ट। भूतकालमें भगवानकी सेवा की, लक्ष्मी कर्ता, हरि कर्म, भजन क्रिया। कर्तामें प्रत्यय, सेवनक्रियामें स्वतन्त्र। जब कर्ममें' क्तप्रत्ययः हरिमें सेवन क्रियाका कर्म प्रातिपदिकार्थः अभिहित-उक्त कथित प्रकट है **प्रातिपदिकार्थमात्रे प्रथमा** हरिः। कर्म प्रथमा लक्ष्मीमें वर्तमान परिचर्या पूजारूपक्रियासे उत्पन्न फल प्रसन्नताका अभिन्न आश्रय हरिः, **सत्वप्रधानानि नामानि। एवं नृपेण पूजितः विद्वान्। राष्ट्रपतिना पुरस्कृता रघुनाथ शर्मा।**

तद्धित=तस्मै प्रातिपदिकाय प्रयोगाय वा हितः तद्धितः। तस्य उदाहरणसूचनाय-**शतेन क्रीतः शत्यः।** सौ रूपये से खरीदा गया यन्त्र वस्त्र आदि। **तेन क्रीतं** सूत्रेण तृतीयान्तसमर्थशतशब्दात्कर्म अर्थे यत्। (शताच्च ठन्यतौ) यहाँ तद्धित यत्प्रत्ययसे कर्म (वस्त्र आदि) अर्थ उक्त हुए। उक्ते प्रथमा **शत्यः। समाससे** कर्म अर्थ उक्त=कहा गया हो, वहाँ

यथा–'विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतमित्यस्य हि युज्यत इत्यर्थः। (५३८) **तथायुक्तं चानीप्सितम्।१।४।५०।** इप्सितत-

---

भी प्रातिपदिकार्थमात्रे प्रथमा। **प्राप्त आनन्दो यं**=जिसको। यहाँ अन्य पदार्थ कर्म है। वह समाससे उक्त कथित है। उक्ते प्रथमा **प्राप्तानन्दः**। बहुव्रीहिसमाससे कर्म अभिहित मान्य। एवं प्राप्तमुदकं यं ग्रामं स **प्राप्तोदको ग्रामः**, बहुव्रीहिसमाससे ग्रामं का कर्म उक्तः। उक्ते प्रथमा **ग्रामः** (बाढ़ का पानी पहुंच गया जिस गाँव तक) **उपहृतः पशुः यस्मै** बहुव्रीहि-समाससे चतुर्थी उक्त हुई, प्रथमा। **पीतमबरं यस्य** समाससे षष्ठी अर्थउक्त। इदं परिगणनं प्रायिकमस्ति। अतिरिक्त कारणसे भी कर्मका अभिधान। तस्य फलं दर्शयति **क्वचित्**=यस्मिन्कस्मिन्स्थले **निपातेन** "अधि अपि प्रति परि" इत्यादि निपातशब्दके योग—सम्बन्धसे प्रातिपदिकके अर्थका अभिधान कथन हो, तब कर्म उक्तमान्य। यथा विष का वृक्ष भी **सम्बर्ध्य**= बढ़ाकर स्वयं अपने हाथोंसे **छेत्तुं**=काटना **असाम्प्रतम्**=असामयिकम् अनुचित। साम्प्रतं शब्दका युज्यते अर्थ करते है। युजिर्-योगे। युक्तम् उचितं सामयिकं (**युक्ते द्वे साम्प्रते स्थाने**) यद्यपि बर्धन क्रियाका कर्म वृक्ष है द्वितीया होनी चाहिए, किन्तु अपि इति निपातस्य योगे सम्बन्धे सम्बर्ध्य इत्यस्य यत्कर्म तत् उक्तम्। उक्ते प्रथमा न तु द्वितीया। वृक्षस्य कर्मत्वं निपातेन कथितम्। अपि शब्द निपात है उसने वृक्षकी कर्मशक्तिको उक्त-प्रधान बना दिया। प्रधाने प्रथमा वृक्षः, न तु वृक्षम्। **सङ्ख्या विभक्त्यर्थः** पक्षे अनभिहिते सूत्रमस्ति।

जो कर्म इप्सिततम=प्रधानक्रियासे सम्बन्ध नहीं रखता किन्तु अनीप्सित=अप्रधान क्रियासे सम्बद्ध है, उसकी कर्मसंज्ञा कैसे?

।५३८। **तथा**—तेन प्रकारेण **प्रयुक्तम्=ईप्सिततमवत्** (अत्यन्त इच्छा-विषयकी तरह) **क्रियया**=क्रियाजन्यफलेन युक्तं=सम्बन्धितम् अनीप्सितम (अनिच्छितम् उपेक्ष्यम् अनावश्यकम् उदासीनं च=अपि। ऐसे कारकको भी कर्मसंज्ञा, जिससे कही गयी, उसके साथ प्रयुक्त-सम्बद्ध अनिच्छित कारकको भी कर्मसंज्ञा हो। यहाँ अनीप्सित शब्दसे द्वेष्य द्वेष्टुं—योग्यं

भवत्क्रियया युक्तमनीप्सितमपि कारकं कर्मसञ्ज्ञं स्यात्। ग्रामं गच्छं-

---

दुश्मनीके लायक कर्म, उपेक्षितुं योग्यं उपेक्ष्यं की कर्मसंज्ञा। यथा **ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति।** सघन खेतीके बीचसे गाँव जाते हुए तृणका स्पर्श करता है। मुख्य क्रिया गच्छन् गाँव से संयोग वाली क्रियाका मुख्य कर्म ग्राम ईप्सिततम है, उसके साथ जुड़ा तृणं स्तृशति (तृण स्पर्श यह अनीप्सित अनिच्छित उपेक्ष्य अनावश्यक कारक है) **तत्र स्पर्शानुकूल क्रियाजन्यस्पर्शफलाश्रयः तृणमित्यत्र तथा युक्तं-सूत्रेण अनीप्सितस्य कर्मसंज्ञा भवति।** द्वेष्यकर्मका उदाहरण-**ओदनं भुञ्जानो** (भात खाता हुआ जहर खाता है) **विषं भुङ्क्ते।** अत्र अनीप्सितं कारकं विषं, तस्य कर्मसंज्ञा। यद्यपि विष तिरस्कार्य है तथापि **ओदन** भोजनके सम्बन्धसे अनीप्सित-कर्म मान्य।

अत्र शङ्का-जो पुरुष रोगग्रस्तः, प्रबल पीडासे व्यथित छटपटाती अन्त-रात्मा, मरना ही मङ्गल मानकर विष पीता है वह तो ईप्सित कर्म हुआ। जो भ्रमसे गुड़ दवा लड्डू समझकर भीमकी तरह खा ले, वह भी ईप्सित कर्म है। विषं भुङ्क्ते अनीप्सितका उदाहरण कैसे ? **यदा कश्चित् बलवता वैरिणा निगृह्यमाणः विवशः मरणकातरः पुरुषः विषं भुङ्क्ते।** जब यह ज्ञान हो कि दुश्मन दुर्गतिसे मारेगा तदा इदमुदाहरणम्। विषको द्वेषी प्राणघातक जानकर खाता है। भुज धातुका मुखमें प्रक्षिप्त वस्तुको गल-बिलमें प्रवेशके लिए हनुचलनादि=खाते समय दाढ़ी चलाना अर्थः। ईप्सित अनीप्सित दो कर्म हुए। प्रश्नः **धातूपस्थाप्य फलशालिकर्म** इस न्याससे धातुका अर्थ क्रियाके फलका आश्रय कर्म हो, ऐसा अर्थ करें तब स्पृशधातुकी क्रियाका फल स्पर्श, उसका आश्रय तृणकी कर्मसंज्ञा न्याससे होगी। कर्म के दोनों सूत्र न करें तत्र, **अग्नेर्माणवकं वारयति** अग्निसे बच्चे को बचाता है। बच्चा आग पकड़ना चाहता है दासी रोक रही है। स्पर्श के अनुकूल क्रियाके अभावके अनुकूलक्रिया वारिधातुका अर्थः। यहाँ माणवकमें वारणार्थानां-सूत्रसे अपादान प्राप्त, उसे बाधनेके लिए **कर्तुरीप्सितसूत्र** आवश्यक। तब द्वेष्य उदासीन के लिए '**तथा युक्तं**' भी आवश्यक। कुछ धातुओंके दो कर्म कैसे ?

स्तृणं स्पृशति। ओदनंभुञ्जानो विषं भुङ्क्ते। **(५३९) अकथितं च** ।१।४।५१।। अपादानादिविशेषैरविवक्षितंकारकं कर्मसंज्ञं स्यात्।

। ५३९। **न कथितं स्वकारणमिति अकथितं,** च-पदसे कारण ढूंढ़ते है। **अपादानादि**=अपादन सम्प्रदान अधिकरण, कर्म, करण हेतु (हैतौ तृतीया पञ्चमी च) सप्तकारकं ' जहाँ ये सभी कारक अकथित अविवक्षित हों, वक्ताकी इच्छाके आधीन हो कि पञ्चमी करें या न करें। ऐसे विवक्षाधीन कारककी कर्मसंज्ञा हो ' अर्थात् सामान्यसम्बन्धमात्रकी इच्छा हो तब। अपादान आदि कारककी विवक्षा न हो तभी कर्मसंज्ञा समझे। अत्र प्रश्नः- ननु **वाणः हस्तं शिरसि निदधाति** (वाणासुर सिर पर हाथ रखता है) सामान्य सम्बन्ध हाथ का सिर से भी है,। शिरसि में कर्मसंज्ञा क्यों नहीं। सम्बन्धात्मना क्रियान्वयी है। उभयत्र दोषनिवारणाय, अविवक्षितस्य (अकथितस्य) कर्मणः नियन्त्रणं परिगणनं, सङ्ख्यानं क्रियते। **दुहादीनां**-दुह प्रपूरणे खींचकर भरने अर्थमें दुहधातु अकथितं=दूहकी अवधि गायकी अपादान संज्ञा आदि न कहनी हो, ऐसा कारक कर्मसंज्ञकः। एवं याच्ञा माँगने अर्थमें याच् पकाने अर्थमें पच्, दण्ड निपातने दण्डा मारने अर्थमें दण्ड। निग्रह = पकड़ना दण्ड ग्रहण करना। आवरण आच्छादन, रोकने अर्थ में रुध, ज्ञींप्सा जानने की इच्दा अर्थं, प्रच्छ पूछना, चिञ् चयने चुनना, ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि स्पष्ट बोलना, अनुशासन अर्थमें शास्, अभिभव जीतने अर्थमें जि मन्थ विलोडने मन्थन, मुष स्तेये चोरी अर्थमें। ये बारह है तथा **नी आदि चतुर्णां** = चार धातु णीञ् प्रापणे पहुचाने लेजाने अर्थमें, हृञ् हरणे, कृष विलेखने, लाईन खीचना जोतना, वह प्रापणे ये चार नीप्रभृतिसे कथित है इनके प्रसङ्गमें कोई भी कारक **अविवक्षित**=कहने की ईच्छा न हो वह कर्मयुक् हो जाय। जिसका स्फोटार्थ **कर्मणा युज्यते** कर्म से जोड़ा जाय। करणे उपपदे कर्मणि अर्थे 'सत्सुद्विष'-क्विप्। यद्यपि अकथितश्च सूत्र पर श्लोकवार्तिक- **दुहियाचिरुधिप्रच्छिभिक्षिचिञामुपयोगनिमित्तमपूर्वविधौ। ब्रुविशासि गुणेन च यत्सचते तदकीर्तितमाचरितं कविना॥**

इसमें पचिमथि मुषि नहीं पढे गये, तथापि चकारसे उनका संग्रह। मुख्य कर्मके साथ सम्बन्धित कारक ही अविवक्षित होने पर कर्मसंज्ञक होंगे। इससे

दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रुशासुजिमथ्मुषाम् ।
कर्मयुक्स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम् ॥

'दुहादीनां द्वादशानां तथा नीप्रभृतीनां चतुर्णां कर्मणा यद्युज्यते तदेवाकथितं कर्म इति परिगणनं कर्तव्यमित्यर्थः। गां दोग्धि पयः।

सोलहधातु, दो कर्म वाली स्फुट हुई। कर्मयुक् होना, क्रियासे सम्बन्ध जुड़ना। इस परिगणन से **नटस्य गानं शृणोति** गानकर्मकं नटसम्बन्धि श्रवणं, लक्षण नहीं घटा, निर्दोष रहा। निदधाति–धा और श्रू गणना से बाहर हैं

गां दोग्धि पयः। गायसे दूध खींचकर भरते हैं। क्षरण पसीझना चुवाना, खींचकर भरना। दुह का क्षरण क्षारण दुहना दुहाना दो अर्थ। दुहना क्रिया गोप में है, गाय से दूध अलगकर मेटी, बाल्टी, पात्रमें भरता है। पय मुख्य कर्म गाय से दूध अलग होता है, गाय अपादान=विलगाव विश्लेषकारक उससे अपादान कहनेकी इच्छा नहीं हुई, सम्बन्ध मात्र कहनेकी इच्छा हुई, शेष षष्ठी को बाधकर कर्मसंज्ञा द्वितीया च भवति। अर्थ **गोसम्बन्धि पयः कर्मकं दोहनम्।** यदि अपादानकी इच्छा हो गयी हो तब **गोः पयो दोग्धि**, पञ्चमी ही होगी। गऊ से दूध दुह रहे हैं। यदि गाय दूधमें विशेषण है तब षष्ठी भी **गोः सम्बन्धीनि** पयांसि क्षारयति इति प्राचीनाः।

नवीनास्तु **कर्मत्वेन यद्विवक्षितं तत् अकथितं, बोधस्तु गोकर्मकं पयः कर्मकं दोहनं** ध्रुवम्। द्रव द्रव्य–पिघली वस्तुका अलगाव दोहनसे है जो गोप में है। इससे गो शब्द कर्म के रूपमें मान्य। दुहना का कर्म पय, दुहाना का कर्म गाम् इत्यत्र कर्मसंज्ञा।

अकथितञ्च सूत्रस्य किं प्रयोजन बलिं याचते वाणासुरका पिता असुरराज बलिसे वसुधाको याचते=माँगते है। **मह्यं देहि मुझे** दीजिए। ऐसी निवेदन क्रिया याचधातुका अर्थ, दानानुकूलः मह्यं देहि इति प्रयोगानुकूलो व्यापारः। बलिकर्ता, वसुधा कर्म दान प्रार्थना। वसुधा मुख्यकर्म, कर्ता बलिको कर्मकी इच्छा से द्वितीया, बलिसम्बन्धिवसुधाकर्मकं दानम्। **अविनीतं** दुर्बलघातकं **विनयं** कृपां **याचते**। अभ्युपगम स्वीकाराय प्रार्थना। अविनीत मुख्य कर्म, विनय कृपा वास्ते निवेदन। **अविनीतकर्मकं विनयकर्मकम् अनुनयं प्रार्थयति।** अविनीत शब्द की अविवक्षा से द्वितीया। कोई बलवान दुर्बलको

बलिं याचते वसुधाम्। अविनीतं विनयं याचते। तण्डुलानोदनं पचति। गर्गाञ्छतं दण्डयति। व्रधमवरुणद्धि गाम्। माणवकं पन्थानं

सताता है तब यह उदाहरण। कृपाके लिए प्रार्थना या याचका मुख्य कर्म विनय, अविनीत गौड़ कर्म। **तण्डुलान्-ओदनं पचति** चावलसे भात पकाता है ठोस चावलको तप्त जलके वाष्पसे शिथिल अवयव, मृदुल मुलायम विशद, फूला हुआ, फलं विक्लित्तिः। उसको पैदा करने वाली क्रिया पचका अर्थः। प्रकृति तण्डुल ही समवायसम्बन्धसे भात बना। शिथिल अवयव मुलायमपन मृदुता अभेद सम्बन्धसे चावलमें ओदन, जन्यजनक भाव, मुलायमपन फल है। उस फलका आश्रय ओदन प्रधान कर्म। उस ओदनका आधार तण्डुल अप्रधान अविवक्षितकर्म, तण्डुलान् **तण्डुलसम्बन्धिनी विक्लित्तिः**। अकथितञ्चेति कर्मसंज्ञा। **गर्गाञ्शतं दण्डयति** गर्गगोत्रवालो से सौ रुपये दण्ड लेता है। अपराध शमनार्थ, धनग्रहण आदिके अनुकूल क्रिया दण्डका अर्थः। दण्डसे मारना अर्थ नहीं। ताडनक्रियासे उत्पन्न फल धनग्रहणका विषय होनेसे **शतं दण्डयति** का प्रधान कर्म। गर्ग तो ग्रहणकी अवधि है। अकथितकर्म **गर्गान्**। पराये धन परसे उसके अधिकारको हटाकर अपना अधिकार स्वीकार करना। स्व अधिकार का अलगाव होनेसे गर्ग अवधि है। अपादानस्य अविवक्षया सूत्रेण कर्मता। **शतं ह्यत्र प्रधान कर्म, न तु गर्गाः। अर्थिनश्च राजानो हिरण्येन भवन्ति। व्रजमरुणद्धि गां** व्रजमें गाय रोकता है। निर्गम= निकलने का प्रतिबन्धक एकस्थानमें स्थिर, रज्जु, द्वारा बन्धनादिक्रिया रुध धातुका अर्थ। गायोंके निकलनेके विरुद्ध चिरकाल तक व्रजमें रुकना। बन्धनफलका आश्रय 'गां' मुख्य कर्म। अवरोधके आधारके अनादरसे कर्म **व्रजं**, व्रजसम्बन्धीगोकर्मक चिरकाल स्थिति के अनुकूल क्रिया। **माणवकं पन्थानं पृच्छति**। बालकसे रास्ता पूछता है। जिज्ञासित अर्थ ज्ञानके अनुकूलक्रिया पृच्छाका अर्थ। केन पथा गन्तव्यमिति। ज्ञानानुकूलव्यापारः रास्ताके ज्ञानरूपफलका आधार होनेसे पन्था मार्ग प्रधानकर्म। ज्ञानका-विषय (किस रास्तेसे जायँ) इस ज्ञानका जनक बतलाने वाला माणवक गौणकर्म अकथित है। तृतीयाका तिरस्कार। माणवकेन पन्थानं ज्ञातुमिच्छति रास्तेके विषयमें बच्चे से जाननाचाहता है। करण की अपेक्षाकर कर्म-

पृच्छति। वृक्षमवचिनोति फलानि। माणवकं धर्मं ब्रूते, शास्ति वा। शतं जयति देवदत्तम। सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति। देवदत्तं श

विधान।

वृक्षं=पेड़से फल तोड़कर फलको **अवचिनोति** इकट्ठाकरता है वृक्षात् फलानि संगृह्णाति। इष्टका-लोष्ठ-दण्डंप्रहारेण फलानि त्रोटयित्वा संग्रहानुकूलः चिञ् धातोः अर्थः। तोड़कर स्वीकारका विषय, फलं प्रधानं कर्म। तोड़ने की अवधि वृक्षमें अपादान कारकका अनादर कर, अकथित कर्मसंज्ञा। वृक्षसे च्युतफल का अपादान करना वाक्यार्थः **माणवकं धर्मं**-बालकके लिए धर्मका (उपदेश) शासन करते हैं। बोधके अनुकूल क्रियाका अर्थ **माणवकाय धर्मं बोधयति**। ज्ञानका विषय धर्मप्रधानकर्म। धर्मका ज्ञान किसके लिए माणवक के लिए। सम्प्रदानस्य उपेक्षां कृत्वा कर्मसंज्ञा **धर्मविषयकं माणवकसम्बन्धिनं ज्ञानं प्रकटयति**। शास धातु का **"तुम धर्म करो"** इस बोधके अनुकूलक्रिया अर्थः। शासनका विषयधर्मं प्रधान कर्म। **शतं जयति-देवदत्तसे** सौ रुपये जीतता है। जि अभिभवे, पराजयकर किसीको पीटकर विवश कर, धन लेनेके अनुकूलक्रिया जिधातुका अर्थः। शतं प्रधान कर्मं, देवदत्त गौणः **सुधांक्षीर निधिं मथ्नाति**। अकथित कर्म सुधा, अमृतके लिए दूध समुद्र को मथता है। **मन्थ विलोडने** द्रव द्रव्य दूधका मन्थनकर मक्खन निकालने (मन्थनदण्ड मथानी मन्दराचल भ्रमणजनित तीव्र क्षोभके) अनुकूलक्रिया अर्थः। मथानीके तीव्र भ्रमण द्वारा दूधसमुद्रसे अमृतको निकालना। क्रियाजन्यफलका आश्रयसुधा अमृत प्रधानकर्म। समुद्र अमृतनिकालनेके प्रति अपादानकारक। उसका अनादर कर अकथितञ्चेति कर्मसंज्ञा। समुद्रसम्बन्धिसुधायाः निष्कासनमर्थः। **देवदत्तं**-देवदत्तसे **सौ** रुपया घूस, चोरी ठगी अपहरण करता है। देवदत्तके सौ सिक्के देखते-देखते ले लिया। परायेके धनको अपनानेके अनुकूल स्वामीको पता न चलें, सेंध लगाकर चोरीके अनुकूल क्रिया, मुष-स्तेये का अर्थः। क्रियाजन्य अपहरणकी 'फल का' आश्रय **शतं** प्रधानकर्मं। अपहरणकी अवधि देवदत्तके अपादानकारकको अकथित करके कर्मसंज्ञा। **ग्रामम् अजां** गाँवमें बकरीको नयति पहुंचाता है। णिञ् प्रापणे एकस्थानसे दूसरे स्थानपर गमनकर पहुंचाना **अर्थः**। चलकर पहुंचनेसे

मुष्णाति। ग्राममजां नयति, हरति, कर्षति, वहति वा। अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा। बलिं भिक्षते वसुधाम्। माणवकं धर्मं भाषते, अभिधत्ते, वक्तीत्यादि। 'कारकं किम्? माणवकस्य पितरं पन्थानं पृच्छति। अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसंज्ञक

अजा ग्रामं गता एतादृशगमनक्रियायाः प्रधानकर्म अजा। (उस बकरी का) तस्य आधारस्य ग्रामस्य अधिकरणस्य अनादरं कृत्वा संयोगाश्रयत्वात् कर्मसंज्ञा। अजाकर्मकं ग्रामान्तर्गतं नयनम् 'अर्थः। एवं हरति एकदेशसे दूसरे देश तक हरण करके कन्धेपर ले जानेका अर्थः। रस्सीसे बाँधकर बलपूर्वक खींचना कृषतिका अर्थः। शकटगाड़ी ठेला पर रखकर एकदेशसे दूसरे देशमें ढ़केलकर ले जाना 'वह' का अर्थः। उसका प्रधान कर्म अजा। गौण कर्म ग्रामम्।

अर्थनिबन्धना=धातो अर्थः निबन्धनं कारणं यस्याः कर्मसंज्ञायाः सा। **अकथितं च** सूत्रसे कर्मसंज्ञा अर्थके अनुसार होती है। केवल दुह्याच्पचदण्डका स्वरूप देखकर ही नहीं **अर्थं निबध्नाति प्रेरयति** उन अर्थोंमें अन्यधातु मिलते हो, उनके अविवक्षितकारकको भी कर्मसंज्ञा हो। **स्थातुं रणे स्मेरमुखी** जगाद **मारीचमुच्चैर्वचनं महार्थम्।** दो कर्म वाले अनेक धातु हैं। यथा **बलिं भिक्षते वसुधां** राजाबलिसे पृथ्वी **पानेकी** भिक्षा माँगते हैं। भिक्ष भिक्षायां लाभे अलाभे च। लाभ हो या नहीं, इसके अनुकूल क्रियावाचक भिक्ष धातु याच् अर्थ में। इसीप्रकार **माणवकं**=बालक को धर्म सिखाता है, भाषते- भाषण देना, वक्ति-बोलता है अभिधत्त का भी उपदेश देना कहना समझाना अर्थः। **कारकं किं**-कारकको कर्मसंज्ञा क्यों? इसलिए कि जो कारक नहीं है, उसको कर्मसंज्ञा न हो। यथा **माणवकस्य पितरं पन्थानं पृच्छति** बच्चे के पिता से रास्ता पूछते हैं माणवक कारक नहीं, क्रियान्वयी न होनेसे। उसे कर्मसंज्ञा न हो, अतः कारक पढ़ा।

(वा०) **अकर्मकः=धातु का** अर्थ (क्रिया और फल) एक आश्रय में रहें उसे अकर्मक कहते है। ऐसे धातु के **योगे**=सम्बन्धे **देश**=मण्डल प्राप्त राष्ट्र **काल भाव**=क्रिया, गन्तव्य **अध्वा**=चालू रास्ता की कर्मसंज्ञा हो। यथा-**कुरून् स्वपिति।** कुरु देश में सोता है। स्वपिति अकर्मकधातुः, शयनस्य

इति वाच्यम् (वा ११०३–११०४)। कुरून् स्वपिति। मासमास्ते। गोदोहमास्ते। क्रोशमास्ते। (५४०) **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्मा-**

आधार: कुरून् (वह ईप्सित न होने से) **कर्तुः सूत्रेण कर्मसंज्ञा अप्राप्ता** (तथा युक्तं से भी प्राप्त नहीं) **अनीप्सितमपि न, अतो वार्तिकं पठितम्**। देशशब्दसे ग्राम नहीं लिया जायेगा। अतः **ग्रामे** स्वपिति में कर्म नहीं। अत्र प्रमाणम्– **अकर्मक धातुभिर्योगे देशः कालो**–वार्तिकेन **अधिशेते अधितिष्ठति वैकुण्ठं कर्म-संज्ञा भवेत् तदा अधिशीङ् सूत्रं व्यर्थ स्यात्तन्मा भवतु, अतः कुरुन् स्वपिति** इत्यत्र अकर्मकधातुयोगे देशवाचिनः कुरुशब्दस्य कर्मसंज्ञा-द्वितीया। **कुरुषु निद्रां करोति**। जनपद अर्थ में बहुवचनान्त कुरुमें अधिकरण को बाँधकर कर्मता। **मासमास्ते** महीनो ठहरता है महीना काल अर्थ में। कालवाचिमासशब्दस्य अधिकरण संज्ञां बाधित्वा वार्तिकेन कर्मसंज्ञा क्रियते। भाव का उदाहरण– **दोहनं दोहः** दुहने की क्रिया धातु का अर्थः। **गवां दोहः गो दोहः** श्री नारद जी को श्राप है कि **गोदोहमास्ते**, काल क्रिया रुप है कालः क्रियात्मकमाहुः। आधारकी अविवक्षा तिरस्कार कर कर्मका प्रचार। चालू रास्ताका निश्चित परिमाण एक कोश दो कोश है। इस अभिप्रायसे कि कोशभर पूर्ण व्यापक हो। उपवेशन क्रियाके योगमें **क्रोशको कर्मसंज्ञा, काल** और **अध्वा** से **अत्यन्त**=पूर्णसंयोगे सति कर्मसंज्ञा भवति। धातुके अनेकार्थक होनेसे भी सिद्ध। यदि स्वप् आदि धातुका स्वाप् शयन आदिमें वृत्ति है व्याप्तिपर्यन्त (पूर्ण) नहीं, तब **कुरुषु स्वपिति, मासे आस्ते** अधिकरण रह सकता है। अतः **समांसमां विजायते** के स्थानमें **समायां समायां विजायते** भी कहा। अतः **कलिङ्गेषु अवात्सीः नहि कलिङ्गान् जगाम**। उक्तं च-**काल भावाध्वदेशानां अन्तर्भूतक्रियान्तरैः। सर्वेरकमकैर्योगे कर्मत्वमुपजायते**। काल क्रिया रास्ता कर्मत्वं=कर्मसंज्ञाके पात्र होते है यदि अन्तर्भूतक्रियावाची अकर्मकधातुका सम्बन्ध हो।

। ५४०। गतिश्च-बुद्धिश्च प्रत्यवसानञ्च (गमन ज्ञान बोध भक्षण) **गतिबुद्धिप्रत्यवसानानि अर्थाः येषां धातुनां** (गमन ज्ञान भोजन अर्थ हो जिन धातुओंका और) **शब्दः कर्मकारकं येषां धातुनां** (शब्दः कारक हो जिस धातुमें) **अविद्यमान कर्म येषान्ते अकर्मकाः** (कर्म अलग न हो जिन

कर्मकाणामणि कर्ता स णौ । १ । ४ । ५२ ।। गत्याद्यर्थानां शब्दकर्मणामकर्मकाणां **चाणौ** यः कर्ता स णौ कर्म स्यात्। "शत्रनगमयत्स्वर्गं वेदार्थं स्वानवेदयत्।

धातुओंके) कर्मशब्दकारक अर्थमें है, क्रिया अर्थमें नहीं । **गतिबुद्धि प्रत्यवसानार्थाश्च शब्दकर्माणश्च अकर्मकाश्च धातवः तेषां द्वन्द्वः । गत्याद्यर्थानां**=गमन-ज्ञान-भक्षण अर्थवाले **शब्दकर्मकाणां**=शब्द हो कर्म जिनका और अकर्मक धातुओंके **अणौ अण्यन्तावस्थायां**=णिच् प्रत्यय न हुआ हो, अर्थात् नौगणीका कर्ता (भवति जुहोति अत्ति दीव्यति तुदति सुनोति क्रीणाति जैसी क्रिया के कर्ता) का कोई प्रेरक न हो उस अवस्था (शुद्ध धातुवाच्याक्रिया) का कर्ता, **स णौ**=वह कर्ता ण्यन्तावस्थायां=प्रेरणा अर्थमें णिच्प्रत्यय रहे, अर्थात् वही क्रिया ण्यन्त हो जाने पर वह कर्ता, कर्म हो जाय । एक एकका क्रमशः उदाहरण—**शत्रून्स्वर्गम् अगमयत्**" यह गति=गमन अर्थका उदाहरण–देवासुरसंग्रामे **मृताः शत्रवः स्वर्गम् अगच्छन्** (युद्ध में मारे गये शत्रु दिव्य लोक गये) **हरिः तान् प्रैरिरत्** भगवान उनको भेजे । मारकर प्रेरणा किये कि तुमलोग स्वर्ग जाओ । **अगच्छन्निति शुद्धः धातुः । अण्यन्तावस्थायाः क्रिया तस्याः कर्ता शत्रवः ।** यदा **गमधातोः प्रेरणाअर्थे णिच् शस्त्रशस्त्रघातेन स्वर्गमगमयत् हरिः तदा शत्रवः इत्यत्र गतिबुद्धित्यादिसूत्रेण कर्मसंज्ञा शत्रून्** इति । स हरिः भगवान् मम गतिः मोक्षस्य उपायः । जो शत्रु गमनक्रियाके प्रति कर्ता हैं, वही ण्यन्त होनेपर कर्म हुए । प्रेरकः शस्त्रघातयिता हरिः कर्ता, शत्रवः कर्म, हननक्रिया का फलाश्रय स्वर्ग, हरि प्रयोजक (प्रेरक) कर्ता भेजनेवाले । शत्रु प्रयोज्य प्रेर्य कर्ता, भेजे जानेवाले । अत्र शङ्का-**गमनक्रियां प्रति कर्ता शत्रुः ।** स्वर्गः ईप्सितः । एवं=ऐसे ही, प्रेरकहरिका इप्सिततम शत्रुओंका स्वर्ग जाना है । **कर्तुरीप्सितं सूत्रेण कर्मसंज्ञा सिद्धा, गतिबुद्धि० इति सूत्रं व्यर्थं सन्नियमाय भवतु ।** णिजर्थे प्रेर्यः कर्ता यदि **कर्मसंज्ञकः स्यात्तर्हि गत्याद्यर्थादीनामेव**=गमन ज्ञान भक्षण-शब्दकर्मक-अकर्मक धातुओंसे ही हो, अन्यसे न हो । तेन **पाचयति देवदत्तेन** देवदत्तः पचति, मित्रं तं प्रेरयति इति पाचयति देवदत्तेन अत्र कर्मता न । यहाँ प्रेर्य कर्ताको कर्मसंज्ञा नहीं हुई, किन्तु कर्तरि तृतीया देवदत्तेन । भर्तृहरि ने भी कहा है

आशयच्चामृतं देवान्वेदमध्यापयद्विधिम ।।
आसयत्सलिले पृथ्वीं यः स मे श्रीहरिर्गतिः ।

गुणक्रियायां स्वातन्त्र्यात् प्रेषणे कर्मतां गतः । नियमात्कर्मसंज्ञायाः स्वधर्मेणाभिधीयते । नवगणीक्रियाका स्वतन्त्र कर्ता प्रेरणार्थ में णिच् होने पर कर्म हो गया । नियमात्=गतिबुद्धि सूत्रके नियमसे कर्मसंज्ञा होगी । नियमके बाहर कर्मसंज्ञा नहीं होगी । किन्तु **स्वधर्मेण**=स्वं कर्ता, तस्य धर्मः तृतीया कर्तामें कर्तृकरणयोस्तृतीया होगी । वाक्यस्फोटार्थः **स्वर्गकर्मकशत्रुगमनः तदनुकूलो हरिनिष्ठो व्यापारः स हरिः मम मोक्षोपायः ।** बुद्धि=ज्ञानार्थकधातुका उदाहरण **हरिः वेदार्थं स्वान्अवेदयत् स्वे स्वीकीयाः** आत्मीयाः अपने लोग **वेदार्थमविदुः** वेदके अर्थका ज्ञान किये (अवेत् अवित्ताम् अविदुः) शुद्ध धातु विदका कर्ता स्वे=वह प्रेरणाक्रियाका कर्म बना गतिबुद्धि इत्यादि सूत्रसे कर्मसंज्ञा । **वेदार्थज्ञानकर्मक स्वनिष्ठं यद्वेदनं यन्निष्ठोव्यापारः स मे हरिः गतिः मोक्षोपायः ।** ब्रह्मा-मानसपुत्रः सनकादिगण भगवानके आत्मीय है । वेदका अर्थ जाननेके लिए प्रेरणा किये कि वे वेदार्थ जानें । प्रयोजककर्ता **हरि** प्रयोज्य कर्म **स्वान्** आत्मीय । मूलधातुका कर्ता प्रेरणा अर्थमें कर्म हो जाता है । कर्मत्व प्रधान द्वितीया । प्रत्यवसानं भक्षणं का उदाहरण-**देवाः अमृतम् आश्नन्,** देवता अमृतको पी गये, या खाये, गलबिलाधः संयोग किये । मूलधातुः अर्थ भोजन, उसका कर्ता देवाः । देवताओंको अमृतपीनेके लिए हरिकी प्रेरणा अर्थमें णिच् । **प्रेरको हरिः देवान् अमृतम् आशयत्** देवताओंको अमृत पिलाया । मूलधातोः कर्ता देवाः ण्यन्तदशायां गतिबुद्धि-कर्मसंज्ञा, **अमृतकर्मकं देवनिष्ठं यत् अशनं भोजनं तत्प्रेरकः हरिनिष्ठो व्यापारः** वाक्य स्फोटार्थः । शब्दकर्मका उदाहरण वेदार्थ वेदशब्दरूपः शब्दानां समुदायः । अध्ययनक्रियायाः कर्म शब्दरूपो वेदः । विधिः **ब्रह्मा वेदम् अध्यैत** ब्रह्माने शब्दरूपवेदका अध्ययन किया । भगवान् ब्रह्मा को प्रेरित किये थे । **हरिः तं प्रैरित् इति अध्यापयत्,** भगवान्ने ब्रह्मा को वेद पढ़ाया । मूलधातुः अधि–इ तस्य कर्ता विधिः ब्रह्मा । मूलधातुकी क्रिया जब प्रेरणा अर्थमें बदल गयी, तब **प्रयोज्य कर्तारं विधिं गतिबुद्धि-इतिसूत्रेण कर्मसंज्ञा,** दो कर्म । **वेदकर्मक विधिनिष्ठं यत अध्ययनं तस्य प्रेरकः हरिः मे गतिः, मोक्षोपायः ।**

'गति–इत्यादि किम् ? पाचयत्योदनं देवदत्तेन। 'अण्यन्तानां किम् ? गमयति देवदत्तो यज्ञदत्तं, तमपरः प्रयुङ्क्ते,, गमयति देवदत्तेन यज्ञदत्तं विष्णुमित्रः। 'नीवह्योर्न (वा ११०६)। नाययति, वाहयति वा भारं भृत्येन। 'नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः (वा १११०)। वाहयति

अकर्मकधातुका उदाहरण-**पृथ्वी सलिले आसीत्** पृथ्वी जलमें बैठी थी। आसु उपवेशने। अकर्मकधातुका कर्ता पृथ्वी, उसको भगवान ने जल पर ठहराया प्रयोज्य प्रेरणाके योग्य कर्ता पृथ्वीको गतिबुद्धि-सूत्रसे कर्मसंज्ञा। वह हरि मेरे लिए यह गति है। सूत्रमें **गतीत्यादि किं** ? गमन ज्ञान भक्षण शब्दकर्म अकर्म, ऐसा क्यों पढ़ा ? इसलिए कि **देवदत्तः ओदनं पचति** गुरुः तं प्रेरयति इति गुरुः **देवदत्तेन ओदनं पाचयति**। देवदत्तसे भात पकवाते हैं। यहाँ पर पच् धातुके शुद्धकर्ता **देव** दत्तको ण्यन्त (पाचयति) दशामें कर्म न हो जाय। गतित्यादि न पढ़ते, तब अण्यन्तके सभी कर्ता कर्म होते, देवदत्तेनमें कर्म हो जाता। पच्धातु पाँचोंमें नहीं आता, किन्तु प्रेरणा अर्थमें प्रयोज्य कर्ता अनुक्त रहेगा कर्तृकरणोस्तृतीया होगी। **अण्यन्तानां किं** ? णिच् न हुआ हो अण्यन्त के मूल धातुकी दशाका कर्ता ण्यन्त होनेपर कर्म हो, ऐसा क्यों पढ़ा। इसलिए कि ण्यन्त अवस्थाका कर्ता, ण्यन्तसे ण्यन्तदशामें कर्म न हो। यथा **छात्रः गच्छति गुरुः तं प्रेरयति इति गुरुः छात्रं गमयति** तं प्रभुः प्रेरयति। अण्यन्त अवस्थाका कर्ता छात्रको कर्मसंज्ञा हुई। परन्तु ण्यन्त अवस्थाका कर्ता गुरुः ण्यन्त दशामें कर्म न हो जाय। विष्णुमित्र ने देवदत्तसे यज्ञदत्त को भेजवाया।

(वा०) **उक्त नियमसूत्रका निषेध वार्तिक-नी और वह** धातु के अण्यन्तका कर्ता ण्यन्त दशामें कर्म न हो, णीञ् प्रापणे, वह प्रापणे, दोनोंका प्रापण पहुंचाना अर्थः, तथापि गति अर्थभी प्रापणमें समाया है। यथा **भृत्यः** (नौकर) **भारं नयति** ले जाता है वहति ढोता है। तं **परिचारकं कश्चन प्रेरयति** 'त्वं **नय**, तुम ले जाओ, प्रयोज्य अण्यन्तावस्था (नवगणी) का कर्ता भृत्यः तस्य गतिबुद्धिसूत्रेण कर्मसंज्ञा प्राप्ता वार्तिकेन तस्य निषेधः क्रियते। किन्तु कर्तरि तृतीया भृत्येन इति। निषेध वार्तिकका भी निषेध वार्तिक **नियन्त्रिकार्तृ०** नियन्ता पशुप्रेरकः सारथिः **दण्डः** कशा। प्रयोज्यकर्ताको प्राप्त कर्मसंज्ञाका

रथं वाहान्सूतः। 'आदिखाद्योर्न (वा ११०९)। आदयति, खादयति वा अन्नं बटुना। 'भक्षेरहिंसार्थस्य न (वा ११११)। भक्षयत्यन्नं बटुना। 'अहिंसार्थस्य किम्? भक्षयति बलिवर्दान्सस्यम्। 'जल्पति-

नीवह्योर्न वार्तिकसे निषेध किया गया, उस निषेधका भी यदि नियन्त्रण वह धातुका अर्थ हो, तब उसके कर्ताको **अनिषेधः**=नी वह धातुके प्रयोज्य कर्ताको कर्मका निषेध नहीं होता। **नियन्ता प्राजिता यन्ता, सूतः क्षन्ता च सारथिः** इत्यमरः। वहन्ति बलीवर्दाः, यवान्। **वाहयति बलीवर्दान् देवदत्तः** बलवान बैल जौ ढ़ोते हैं, देवदत्त ढुलाता हैं इस प्रमाणसे पशुप्रेरक अर्थ ही इष्टः **बहन्तीति वाहाः अश्वाः तान् सूतः प्रेरयति।** यहाँ सूतके द्वारा घोड़ों का नियन्त्रण इष्ट है, अतः **प्रयोज्यकर्तुः**=प्रेरितकर्ता के कर्मसंज्ञाके निषेध का निषेध किया अर्थात् कर्मसंज्ञा अभवत् **वाहान्** इति

(वा०) **आदिखाद्योर्न** अद भक्षणे, खादृ भक्षणे, खाने अर्थमें प्रेरितकर्ताको ण्यन्तदशामें कर्मसंज्ञा नहीं। **वटुः अन्नमत्ति** खादति वा। विद्यार्थी अन्न खाता है **पिता तं प्रेरयति'** (तुम खाओ) पिता वटुको खिलाता है भक्षण कराता है अण्यन्त दशाका प्रेरित कर्ता वटुको ण्यन्त दशामें भक्षणार्थक मानकर भक्षण अर्थे **गतिबुद्धिसूत्रेण कर्मसंज्ञा प्राप्ता वार्तिकेन निषिध्यते। अनुक्ते तृतीया वटुना** (वा०) **भक्षधातु अहिंसा**=किसीको आत्माको कष्ट न हो, तब प्रेरकसे प्रेरितकर्ताको (ण्यन्तदशामें) कर्मसंज्ञा न हो। यद्यपि भक्षधातुः चुरादिः स्वार्थे णिच् प्रेरणाअर्थो नहि, कथं कर्मसंज्ञानिषेधः। **निषेधप्रमाणेन गतिबद्धि सूत्रेहेतुमति च णिच् विवक्षितः, तथापि भक्षधातुविषये अण्यन्त** का ण्यन्त=प्रेरणादशामें कर्मसंज्ञक न हो। यथा **वटुः अन्नं भक्षयति स्वार्थे णिच्,** खादति-बेटा अन्न खाता है, पुरोहितः तं प्रेरयति, प्रेरणार्थे णिच् अन्न खाना हिंसा नहीं, किसीकी आत्माको कष्ट न होनेसे। प्रेरिक-कर्ता बटुको प्राप्त कर्मसंज्ञा का निषेधः। तथा **तृतीया वटुना।** उक्त वार्तिके **अहिंसा अर्थस्य ग्रहणं किमर्थं कृतं? यतोहि यत्र हिंसा भवेत् कस्यचित् आत्मनः दुःखं स्यात्कष्टं भवेत् तत्र अण्यन्तस्य कर्ता ण्यन्त दशायां कर्म न भवेत्, एतदर्थं अहिंसार्थस्य ग्रहणम्।** बलवान बैल **सस्यं**=हरी भरी खड़ी खेती खाता है। ऐसी खेतीमें प्राज्ञ जीव होनेसे उनका भक्षण हिंसा ही है

प्रभृतीनामुपसङ्ख्यानम् (वा ११०७)। जल्पयति भाषयति वा धर्मं पुत्रं देवदत्तः। 'दृशेश्च (वा ११०८)। दर्शयति हरिं भक्तान्; सूत्रे ज्ञानसामान्यार्थानामेव ग्रहणं, न तु तद्विशेषार्थानामित्यनेन ज्ञाप्यते।

अथवा खेतवालेको कष्ट होना हिंसा है। साँड़ के सस्य हरी खेती खाने से। **बलीवर्दाः भक्षयन्ति कश्चन दुष्टः तान् प्रेरयति** कोई दुष्ट खड़ी खेती खानेके लिए बदलेकी भावनासे बैलोंको प्रेरित करता है। प्रेरक दुष्टसे प्रेरित बलीवर्दको कर्मसंज्ञा। अहिंसा न कहते यहाँ भी निषेध होता।

(वा०) **जल्प-भाष-प्रभृतीनामित्यादि** धातुओंके अणौ यः कर्ता प्रेरितः स णौ कर्म स्यात्। **पुत्रः धर्मं जल्पति भाषते**। बालक धर्मके विषयमें बोलता है भाषण करता है। **देवदत्तः तं प्रेरयति त्वं धर्मस्य उपदेशं कुरु, भाषणं कुरु। अण्यन्तकर्ता प्रेरितदशायां यदा णिच् तदा पुत्रम् अत्र कर्मसंज्ञा।** यद्यपि शब्दकर्मक इति मत्वा पुत्रं कर्मसंज्ञासम्भवा, **इदं वार्तिकं व्यर्थं सत्कल्पयति—शब्दः कर्मकारकं येषामित्यर्थः अन्यथा वेदमध्यापयेद्विधिं कथं** सिद्ध्येत्। व्यवहरति वदति जल्पति विलपति आभाषते ये उदाहरणमात्र हैं। कोई परिगणन कहते हैं। जप जल्प व्यक्तायां वाचि। **पुत्रो धर्मं भाषते तं भाषयति देवदत्तः**। (वा०) **दृशिरप्रेक्षणे** सूक्ष्म निरीक्षणे समालोचना अर्थे च दृशधातोः अणौ यः कर्ता स णौ कर्म स्यात्। यथा **भक्तः हरिं पश्यति**। भक्त भगवान को देखता है। **गुरुः प्रेरकः तान् दर्शनार्थं प्रेरयति। यूयं दर्शनं कुरुथः, अत्र प्रेरितः कर्ता भक्त इति, प्रेरणादशायां 'दृशेश्च' सूत्रेण कर्मसंज्ञा** गुरु भक्तोंको भगवानका दर्शन कराते हैं। **अत्र शङ्का दृशधातुः बुद्धि** (ज्ञाने) **अर्थे वर्तते, गतिबुद्धि-सूत्रेण-भक्तान् इत्यत्र कर्मसंज्ञा सिद्धा दृशेश्च वचनं** किमर्थमिति प्रश्नः। समाधानं मूले कथितं—**गतिबुद्धिसूत्रे बुद्धि-शब्देन सामान्यज्ञानस्य ग्रहणं भवति। विद ज्ञाने, ज्ञा अवबोधने इत्यादिनानेव। 'दृशेश्च' विशेषज्ञानस्य बोधकः। सूत्रमें** बुद्धिसे सामान्यज्ञान-सभी प्रकारके ज्ञानमें उपयोगी है। दृशधातुका आँखसे दर्शनका विषय अर्थः। नहीं तो दृशेश्च वचनव्यर्थ होगा। **ज्ञानं च तत्सामान्यं**=इन्द्रियजन्य ज्ञानका जितना भी विषय हो। **तेषाम् अर्थानां ग्रहणं, न तु तद्विशेषार्थानाम्। चाक्षुष मात्र** प्रत्यक्षार्थानां **ग्रहणं न, इति दृशेश्च वचनं व्यर्थीभूय ज्ञापयति, तेन=ज्ञापनेन**

तेन स्मरति जिघ्रति इत्यादीनां न। स्मारयति घ्रापयति वा देवदत्तेन। 'शब्दायतेर्न (वा० ११५)। शब्दाययति देवदत्तेन। धात्वर्थसङ्गृहीतकर्मत्वेनाकर्मकत्वात्प्राप्तिः। येषां देशकालादिभिन्नं कर्म न सम्भवति तेऽत्राऽकर्मकाः, न त्वविवक्षितकर्माणोऽपि। तेन 'मासमासयति देवदत्तमित्यादौ कर्मत्वं भवति, 'देवदत्तेन पाचयति इत्यादौ तु

स्मरति-ध्यानार्थकः स्मृ (चिन्तन अर्थमें) इत्यादि धातुओंसे प्रेरित कर्ताको कर्मसंज्ञा नहीं हुई। यदि दृशका सामान्यज्ञान अर्थ न होता, तो यहाँ भी कर्म होता, यथा **देवदत्तः प्रियां स्मरति, अन्यः प्रेरयति, त्वं प्रियां स्मर।** देवदत्तः प्रेरितः कर्ता, तस्य दृशेश्च ज्ञापनेन कर्मसंज्ञा न, किन्तु तृतीया देवदत्तेन। एवं **चैत्रः चन्दनं जिघ्रति।** सूँघता है मैत्रः प्रेरयति चन्दनं जिघ्र, इति **चैत्रेण घ्रापयति** एवं प्रेक्षते इत्यादि।

(वा०) शब्दं करोति शब्दाययति शब्दवैरकलहा०, इति क्यङ्। दीर्घे शब्दाय इत्यस्य सनाद्यन्त धातुसंज्ञा शब्दायते देवदत्तः, कोलाहल करता है, कश्चन प्रेरयति त्वं कोलाहलं कुरु। यदा प्रेरणा अर्थे णिच् तदा प्रेरितः कर्ता देवदत्त इत्यस्य शब्दायतेर्न इति कर्मसंज्ञायाः निषेधे। अनुक्ते कर्तरि तृतीया। अणौ यः कर्ता स णौ कर्म न इत्यर्थः। **ननु गतिबुद्धि-इति सूत्रे शब्दकर्मक** इति पठितं **शब्दः कर्म यस्य स शब्दकर्मको धातुः, तस्य कर्मसंज्ञा प्राप्ता इति भ्रम निवारणाय अकर्मकत्वात्कर्मसंज्ञायाः प्राप्तिः इति स्थापनाय, मूले उच्यते** शब्दं करोति इति धात्वर्थः, तस्मिन् संग्रहीतः अन्भूर्ततः धातुमध्ये लीनः पठितः अतः शब्दाय इति क्यजन्तधातुः अकर्मकः। धात्वर्थाश्रयाद्बहिर्भूतः सकर्मकः। अतः अकर्मकत्वात्प्राप्तिः, नतु शब्दकर्मकत्वात्। **शब्दाययति सैनिकैः रिपून्** इति कर्म प्रयुञ्जानाः परास्ताः। अत्रशङ्का—**अकर्मकशब्दे कर्म वर्तते सकर्मकशब्देऽपि। कामनाविषयः कर्म इति उभयोः समानं, देशः कालश्च, सर्वेषां धातूनां समानं कर्म भवति। एवं सर्वे धातवः सकर्मकाः कर्म सहिताः, तर्हि अकर्मकस्य धातोः ज्ञानं केन प्रकारेण भविष्यति। तदुक्तं मूले —येषां धातुनां देशश्च कालश्च आदीनां भिन्नम् अतिरिक्तं कर्म न सम्भवति** (अर्थात् देशकाल रूप कर्मके अतिरिक्त अन्यकर्म न हो) **ते अत्र अकर्मकाः** वे ही अकर्मक माने जाँय। **अविवक्षितं कर्म येषांन्ते,** अकर्मक धातुओंके कर्म देश

न। **(५४१) हृक्रोरन्यतरस्याम्। १। ४। ५३।।** हृक्रोरणौ यः कर्ता स णौ वा कर्मसंज्ञः स्यात्। हारयति कारयति वा भृत्यं-भृत्येन वा कटम्। 'अभिवादिदृशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम् (वा १११४)। अभिवादयते दर्शयते देवं भक्तं भक्तेन वा। **(५४२) अधिशीङ्स्थाऽऽसां**

काल ही लिये जायँ। इसमे दुराग्रह नहीं। तेन एतादृश अकर्मक धातुस्वीकारे मासमासयति—इत्यादि उदाहरणोमें देवदत्त यहाँ कर्मसंज्ञा होती है। देवदत्त को महीनो ठहराता है। यतो अकर्मकः अतः कर्मसंज्ञा। देवदत्तेन पाचयति इत्यत्र कर्मसंज्ञा न भवति। यतः सकर्मकः पच् धातुः।

५४१। **हा च क्रा च हृक्रौ** हृञ् हरणे कृञ् करणे धातुः। **अणौ यः कर्ता**-अण्यन्तावस्था= नवगणी-विना णिच् दशाका कर्ता, प्रेरित होने पर प्रेरणादशामें णिच् हो तब विकल्पसे कर्मसंज्ञा। यथा **भृत्यः कटं हरति करोति** वा। परिचारक चटाई को ले जाता या बनाता है, **स्वामी तं-प्रेरयति त्वं कटं हर कुरु वा।** प्रेरणार्थे णिच् **हारयति कारयति** चटाईको मंगवाता है या बनवाता हैं। प्रयोज्य कर्ता भृत्य इत्यत्र कर्मसंज्ञा, पक्षे तृतीया भृत्येन हरण और करण क्रिया गतिबुद्धि सूत्रमें नहीं आता। अप्राप्त विभाषा। अन्य अर्थमें प्राप्तविभाषा। **अभ्यवहारयति सैन्धवान् सैन्धवैर्वा। विकारयति सैन्धवान् सैन्धवैर्वा।** अभ्यवहरति **भक्षण** अर्थमें विकारयति, अकर्मक मानकर प्राप्त विभाषा (वा०) **अभिपूर्वक** वद **धातु** और दृश धातु ण्यन्त हों, आत्मनेपद हो, तब अणौ यः कर्ता स णौ कर्म स्यात्। अणिका कर्ता णिजन्त होने पर कर्म होता है विकल्प से। वद संदेशे, वचने च। समाचार सुनाना वदका अर्थः (अभि उपसर्गसे अर्थ बढ़गया) अभिवदतिका **नमस्करोति देवं भक्तः** श्रद्धालु देवताको सिर झुकाते हैं कि मैं अल्पगुणवान् हूँ, आप प्रशस्त गुणवान है ऐसी क्रिया नमस्कारार्थः। गुरुः भक्तं प्रेरयति इति गुरुः **देवं भक्तं अभिवादयते।** क्रियाफलं कर्तृगामी। णिचश्च आत्मनेपद। भक्तको विकल्पसे कर्म। पक्षे तृतीया-भक्तेन। अप्राप्त विभाषा। **भक्तः शिवं पश्यति पुजारी प्रेरयति, त्वं शिवदर्शनं कुरु, अणि दशायाः कर्ता भक्तः, अभिवादिदृशोः** वार्तिकेन **तं कर्मसंज्ञा, पक्षे तृतीया।** भक्त दर्शन करते हैं (गुरु दर्शन कराते हैं) दृशेश्च कर्मसंज्ञा नित्यप्राप्ता विकल्पः।

५४२। **शीङ्स्वप्ने स्था** (ष्ठा) गति 'निवृत्तौ, आसु उपवेशने, किन्तु

कर्म । १ । ४ । ४६ ।। अधिपूर्वाणामेषामाधारः कर्म स्यात् । अधिशेते, अधितिष्ठति, अध्यास्ते वा वैकुण्ठं हरिः । **(५४३) अभिनिविशश्च । १ । ४ । ४७ ।।** अभिनीत्येतत्सङ्घातपूर्वस्य विशतेराधारः र्मक स्यात् । अभिनिविशते सन्मार्गम् । 'परिक्रयणे सम्प्रदानम्- (सू

अधिपूर्वाः शीङ् स्थासः विग्रहे शाकप्रार्थिवादिनाञ्च उत्तरपद पूर्वा इत्यस्य लोपे । अधिपूर्वमें हो **येषां**=शीङ् स्था आस धातुके आधारको कर्मसंज्ञा हो। अधिकरणसंज्ञाको बाँधकर । **अधिशेते** अधिकारपूर्वक शयनक्रिया । **अधितिष्ठति** वैकुण्ठमें अधिकारपूर्वक रहते हैं । सोते है बैठते हैं । **अध्यास्ते वैकुण्ठं-हरिः** । अधिशब्द आधारका प्रकाशक है अर्थात् **वैकुण्ठे शेते तिष्ठति आस्तेवा** । वैकुण्ठ में सोते है ठहरते है बैठते है **वैकुण्ठ इति उक्त क्रियाया आधारः अधिकरणसंज्ञा प्राप्ता, तां बाधित्वा अधिशीङ्स्थासां-सूत्रेण आधारस्य वैकुण्ठस्य कर्मसंज्ञा, कर्मणि द्वितीया ।**

५४३ । **अभि निपूर्वक** विश प्रवेशने धातुके आधारको कर्मसंज्ञा हो, अधिकरणको बाँधकर । पूर्वसूत्रसे आधार और कर्मकी अनुवृत्ति । 'अभिनि' इस समुदायपूर्वक बिशधातुका ग्रहण, **अभिनिविशते सन्मार्गम्** । उत्तमपथपर अप्रतिहतगतिसे प्रवेश करता है या सन्मार्गपर चलनेके लिए आग्रह करना । प्रवृत्तिका आधार सन्मार्ग, तत्र **अधिकरणसंज्ञां बाधित्वा अभिनिविशश्च सूत्रेण कर्मसंज्ञा । सन्मार्गमिति । सङ्घात**=समुदायके ग्रहणका फलं, जहाँ अभि न हो, केवल नि हो, वहाँ कर्म न हो । यथा-**निविशते यदिशूकखिखापदे** अत्र कर्म न भवति । नन्वेवम् **अभिनिपूर्वक विशधातोः आधारस्य कर्म-स्वीकारे, पापे अभिनिवेशः** पापमें प्रवृत्ति आग्रह अप्रतिहतगति है उसका आधार पापको **कर्मसंज्ञा, द्वितीया च सम्भविष्यति** तन्न, **परिक्रयणे सम्प्रदान-मिति, एकं सूत्रमस्ति तस्मात् इह=अस्मिन्स्थले अन्यतरस्यां- पक्षपातिः कल्पो विकल्पः इत्यस्य अनुवृत्तिं कृत्वा, व्यवस्थानुसारिणी विभाषास्वीकारात् क्वचित् यस्मिन्कस्मिन्स्थले कर्मसंज्ञा न भवति । अनेन कारणेन पापे इत्यत्र कर्मसंज्ञा** न **सन्मार्गमित्यत्र** कदाचित् विकल्पशङ्का नोदेति, अतो व्यवस्थित विभाषा कथिता । विविधा अवस्था, सा संजाता अस्येति व्यवस्थितः । **क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिद्प्रवृत्तिः, क्वचिद्विभाषा इति तात्पर्यम्** । अन्यतरस्यां

५८०) इति सूत्रादिह मण्डूकप्लुत्या अन्यतरस्यां ग्रहणमनुवर्त्य व्यवस्थितविभाषाश्रयणात्क्वचिन्न। पापेऽभिनिवेशः। (५४४) **उपान्वध्याङ्वसः। १।४।४८॥** उपादिपूर्वस्य वसतेराधारः कर्म स्यात्। उपवसति, अनुवसति, अधिवसति, आवसति वा वैकुण्ठं हरिः। **'अभुक्त्यर्थस्य न (१०८७)।** वने उपवसति।

की अनुवृत्ति क्रमशः न आकर, मण्डूक **प्लुत्या** मेढ़क की तरह उछल उछलकर आयेगी। इस प्रकारके आगमनमें प्रमाण-**एषु अर्थेषु अभिनिविष्टानां** समर्थ सूत्रका भाष्य प्रयोग है।

५४४। **उप** (समीप) **अनु** (पश्चात्) **अधि** (में) **आङ** ये उपादि है इनके पूर्व रहते वस निवासे धातुके आधारको कर्मसंज्ञा हो, सप्तमीको बाधकर। (अदादिक। शप् लुक् 'वस आच्छादने' नहीं लिया जायगा) क्योंकि वृत्ति में वसतेः पढ़नेसे भ्वादिका शप् वाला 'वस् निवासे' स्वीकृत है। ये उपसर्ग आधार अर्थको प्रकाशमें लाते है। **उपवसति** पासके आधारमें रहता है। **अनुवसति** वैकुण्ठ बननेके वाद निवास। **अधिवसति** आसक्तिपूर्णवैकुण्ठमें व्याप्त निवास। **वैकुण्ठ इत्यत्र अधिकरणसंज्ञा, सप्तमी प्राप्ता, तां बाधित्वा उपान्वध्याङ्-वसधातोः आधारस्य कर्मसंज्ञा, द्वितीया च।** अस्य सूत्रस्य विषये वार्तिकं=**वसेरश्यर्थस्य प्रतिषेधः** (वस् धातुका भोग उद्देश्य हों) वसः आधारस्य कर्मसंज्ञा भवतु। यदि **अश्यर्थः**=अशका भोजन अर्थ हो, भोग विलास न हो तब वसके आधारको कर्मसंज्ञा न हो। वार्तिकमें अर्थशब्दभोग निवृत्तिका वाचक है (**अर्थोऽभिधेय रैवस्तु प्रयोजन निवृत्तिः** इत्यमरः) अर्थशब्द अभिधेय=ज्ञानका विषय रै=धन, वस्तु सामग्री, प्रयोजन आवश्यकता, निवृत्ति-समाप्ति, अभाव, **भोगयोग्यस्य अर्थस्य निवृत्तिः यस्मात् प्रतीयते सो अश्यर्थः।** इसलिए वार्तिक पढ़ा। **अभुक्त्यर्थस्य**=भुक्तिः भोगसामग्री रूप अर्थ साधन न हो, यब भोजननिवृत्तिवाचकके आधारको कर्मसंज्ञा न। यथा **वने उपवसति** वनमें निवास करता है भोग सामग्री सुख आनन्द का हो। साधन न होनेसे उस निवासके आधार वनशब्दको प्राप्त कर्मसंज्ञाका निषेध। अतो अधिकरणे सप्तमी। **इतिद्वितीयाकारकविभक्तिः समाप्ता।**

'उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु।
द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते ॥ (वा १४४४)
उभयतः कृष्णं गोपाः। सर्वतः कृष्णम्। धिक् कृष्णाभक्तम्।

अथ उपपद विभक्तिरारभ्यते। पदं=पदस्य योग्यं मूलं कारणं प्रातिपदिकं ज्ञात्वा पदसम्बन्धे उत्पन्ना विभक्तिः। उपपदविभक्ति का केवल सम्बन्ध अर्थः। **उभसर्वतसोः**=उभशब्द, सर्वशब्दसे तस् हुआ हो, उसके प्रयोगमें उस तस् प्रत्यान्तसे प्रभावित शब्दसे द्वितीया विभक्ति हो। तस्प्रत्यान्त **उभयतः सर्वतः।** उभशब्दसे अयच् करके, धिक शब्दके प्रयोगमे धिक्कार अर्थसे प्रभावित शब्द से सम्बन्धमें द्वितीया हो। **प्रकृतिवत् अनुकरणं** सुपो लुक। **उपर्यादिषु**= उपरि अधि अधः सामीप्ये समीप अर्थ बोलें, **त्रिषु**-तीनों शब्द अव्ययही लिये जाँय। उनसे सम्बन्धित प्रभावितसे द्वितीयाहो। **आम्रेडितान्तेषु**=द्विरुक्तस्य परमाम्रेडितं, दो वार उच्चारण किये गये का पर-दूसरा भाग आम्रेडित संज्ञक हो **तदन्तेषु**=कृतद्विर्वचन का आम्रेडितसंज्ञक अन्तमेंहो, अर्थात् उपरि उपरि, अधि अधि, अधः अधः तीनों प्रयोगके प्रभावित शब्दसे द्वितीया हो। **ततः**=तत्पश्चात् उपपदविभक्तिके कथित कारणोंके अनन्तर **अन्यत्रापि**=अन्य स्थलमें भी द्वितीया देखी जाती है। इन उपपदविभक्तियोंके विषयमें प्रत्येक का उदाहरण प्रस्तुत करते है। यथा **उभयतः कृष्णं गोपाः।** कृष्णके दोनों तरफ **पार्श्वद्वयेऽपि उभयतः** गोपगण=गोपालवाल दोनो ओर है किसके ? कृष्णके। उभयतः शब्दसे कृष्ण प्रभावितः। **कृष्ण इत्यत्र,** वार्तिकेन **षष्ठ्यर्थे द्वितीया।** 'आद्यादिभ्यः' मानकर तस्। उभयोऽन्यत्र से अयच्। पञ्चम्यास्तसिल् **सर्वतः कृष्णं** (कृष्णस्य सर्वदिशासु चारो तरफ गोपाः) **तस् प्रत्ययान्त-सर्वतः शब्दयोगेन सम्बन्धेन प्रभावितः कृष्णशब्दः उभसर्वतसोः वार्तिकेन द्वितीया लभ्यते** धिक निन्दा धिक्कार उपेक्षा, अश्रद्धा अर्थसे प्रभावितशब्द कृष्णस्य अभक्तं **कृष्णाभक्तं, तस्य निन्दा धिक्कारेण प्रभावितः अभक्तो नास्तिकः वार्तिकेन द्वितीयां लभते, षष्ठ्यर्थे। केचित्प्रथमा अर्थे द्वितीया, सा निन्द्या। यदि** धिक्कारके योगमें उपपदविभक्ति मान्य है तब कथं धिङ् मूर्ख, धिक् के योगमें मूर्खसे द्वितीया क्यों नहीं, इसलिए कि वह सम्बोधनपद है, क्रियासे सम्बन्धित है। धिक्से नहीं, द्वितीया न, किन्तु सम्बोधने प्रथमा। अथवा

उपर्युपरि लोकं हरिः। अध्यधि लोकम्। अधोऽधो लोकम्। 'अभितः परितः समयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि' (वा १४४२ १४४३)। अभितः कृष्णम्। परितः कृष्णम्। ग्रामं समया। निकषा लङ्काम्। हा कृष्णाभक्तं। तस्य शोच्यते इत्यर्थः। 'बुभुक्षितंन प्रतिभाति

धिक् शब्दसे मूर्ख प्रभावित नहीं, अपितु उसका निषिद्ध आचरण प्रभावितः। सीता चोरी जैसा भ्रष्ट आचरणमें अन्वय। आचरणसे निन्द्य मूर्ख रावण। सम्बोधने प्रथमार्थे द्वितीया। **उपरि उपरि** लोकम्=अधि **अध्यसः सामीप्ये**= लोक संसारके समीप उप, सत्यलोकमें भगवान है। ऊपर उर्ध्व अर्थसे प्रभावित लोक, इत्यत्र द्वितीया, तर्हि **उपरि-उपरि बुद्धीनां चरन्तीश्वरवुद्धयः।** बुद्धिमानोंके ऊपर ईश्वरकी बुद्धि चलती है। उपरिके योगमें बुद्धीनां में द्वितीया क्यों नहीं ? यहाँ उपरिका उर्ध्व अर्थ है, आम्रेडित न होनेसे द्वित्व नहीं। **अध्यधि लोकं** लोकस्य समीपदेशे हरिः। अथवा अधिका अधिकरण अर्थः। लोकमें हरि अधिअर्थसे प्रभावित है। लोक इत्यत्र द्वितीया। **अधोऽधः लोकस्य** समीपे अधो भागे हरिः अस्ति। अधः योगे लोकमित्यत्र द्वितीया।

श्लोकवार्तिकमें ततो **अन्यत्रापि दृश्यते** पढ़ा। उसका सप्रमाण उदाहरण प्रपञ्च। **अभितः**=दोनों तरफ, **परितः**=चारो तरफ, **समया निकषा** समीप अर्थे, **हा** खेदे, **प्रतियोग**, प्रतिउपसर्ग का सम्बन्धार्थः। इनके सम्बन्धमें या इनके प्रभावितसे द्वितीया हो। **अभितः कृष्णं** कृष्णके दोनों तरफ गोप हैं। **परितः कृष्णं** (सर्वेषु पार्श्वेषु चारो तरफ) **गोपाः**। परि-अभिभ्यां तसिल्प्रत्यान्त **अभितः परितः** के अर्थसे प्रभावित कृष्णः इत्यत्र द्वितीया। **ग्रामं समया** निकषा आकारान्त अव्यय है। समीप अर्थ-ग्रामस्य समीपे गाँवके पास। समयासे प्रभावित ग्रामसे द्वितीया। **निकषान्तिसमयान्तिकमध्ययोः अमरः। विलङ्घ्य लंकां निकषा हनिष्यति।** लंका के पास वध करेंगे समुद्र लाँघकर, निकषा योगे द्वितीया। हा **कृष्णाभक्तं** कृष्णके अभक्त (खेदकी बात है कि) वे शोचनीय हैं जो कृष्णभक्त नहीं। हा-खेदसे प्रभावित अभक्त द्वितीयाभाक्। **हा-विषादेषु वर्तिषु।** विषाद सोच वीड़ा हा का अर्थः। प्रतिके योगमें प्रतिके प्रकाश्य अर्थके प्रभावित से द्वितीया हो। **बुभुक्षितं**=क्षुधार्त भूख से पीड़ित को किञ्चित् न प्रतिभाति कुछ भी नहीं सूझता। **यद्यपि भा दीप्तौ**

किञ्चित् '। (५४५) **अन्तराऽन्तरेण युक्ते** ।२।३।४॥ आभ्यां योगे द्वितीया। अन्तरा त्वां मां हरिः। अन्तरेण हरिं न सुखम्। (५४६) **कर्मप्रवचनीयाः** ।१।४।८३॥ इत्यधिकृत्य।

का प्रकाश अर्थः, तथापि प्रति- इस उपसर्गके बलसे असूझ अर्थ (बलादन्यः प्रतीयते) प्रतिशब्दयोगे सम्बन्धार्थे बुभुक्षितमित्यत्र द्वितीया,। यतो न लक्ष ां अतो न कर्मप्रवचनीयः। ५४५। **अन्तरा** आकारान्त अव्यय है (टाप अन्तमें नहीं) **अन्तरेण**=इति अव्ययं, तृतीयान्तं नहि। दोनो का मध्य अर्थः। **अन्तरा मध्ये** इत्यमरः। अन्तरेण पृग्विना, ऋत् हिरुक् नाना वर्जन अर्थे। **अन्तरा त्वां मां हरिः**। हमारे तुम्हारे बीच भगवान अन्तर-भेद हैं। अन्तराके योग से प्रभावित कारण त्वां मां में द्वितीया। **अन्तरेण हरिं** हरेः वर्जने- भगवानके विना सुख नहीं। **हलोऽन्तरा संयोगः, द्वयोश्चैवान्रा कश्चिद्** भाष्य प्रयोगौ युक्तग्रहणात् सिद्धचतः।

।५४६। **कर्म और प्रपूर्वक** वचधातुसे अनीयर। कर्ता अर्थे भूतकाले च बाहुलकात्। अग्रिम सूत्रोमें कर्मप्रवचनीयसंज्ञाका अधिकार चलाते हैं। **भाष्यमें-किमर्थं महतीसंज्ञा क्रियते** टि-घु-भ सदृश छोटीसंज्ञा न कर बड़ीसंज्ञा क्यों, इससे कल्पना करते हैं कि **अन्वर्थसंज्ञा विज्ञायेत**=कप्रर्मवचनीय शब्दका स्फोटार्थ, व्युत्पत्यर्थ, प्रकृत्यर्थ प्रत्ययार्थ शब्दार्थ जहाँ घटे, वहाँ कर्म प्र० संज्ञा हो' यथा-**कर्म क्रियां-प्रोक्तवन्तः प्रकाशयन्तः** जो क्रियाको प्रकाशित करें, वे निपात कर्मप्रवचनीय है। किं **पुनः कर्मप्रोक्तवन्तः** (कौन क्रियाको कह चुके, किस क्रिया को कहें) **ये सम्प्रति क्रियां नाहुः** जो उपस्थित क्रियाको कहते ही नहीं, किन्तु ये **अप्रयुज्यमानस्य क्रियामाहुः, जपमनु (निशम्य) प्रावर्षत्** अत्र निशम्य= सुनकर के, योग में प्रसंग प्राप्त निशम्यका लोप होनेपर सुनना निशम्य क्रिया अप्रयुज्यमान हो गयी। प्रयोग न किये गये क्रिया को (अनु) कहता है, इसलिए जो अप्रयुज्यमान क्रिया को बोले, उस क्रियासे की गयी विशेषता सम्बन्ध को प्रकाशित करें, वे **कर्मप्रवचनीयाः**। जप-कारण, वर्षा कार्य। अतः क्रियां प्रोक्तवन्तः। क्रिया **द्योतको नायं, सम्बन्धस्य न वाचकः। नापि क्रियापदापेक्षी सम्बन्धस्य तु भेदकः** इतिवाक्यपदीयम्। जपमनु प्रावर्षत् जप पूर्ण होते ही वर्षा हुई, अनुसे कोईक्रिया (जैसे **अनुभूयसे सुखम्** अत्र) अनु

(५४७) **अनुर्लक्षणे** । १ । ४ । ८४ ॥ लक्षणे द्योत्येऽनुरुक्तसञ्ज्ञः स्यात् । गत्युपसर्गसञ्ज्ञापवादः । (५४८) **कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया** । २ । ३ । ८ ॥ एतेन योगे द्वितीया स्यात् । पर्जन्यो जपम-

---

का क्रिया अर्थ नहीं है । वह अनु षष्ठीकी तरह सम्बन्ध अर्थ भी नहीं कहता, वह द्वितीयासे कह उठी । **प्रादेशं परिलिखति** एक वित्तापङ्क्ति लिखता है । **विमाय परिलिखति** । वि से मानक्रिया के आक्षेप की तरह क्रियान्तर का आक्षेप कारकविभक्ति की सम्भावना, तथापि (अनुसे) लक्ष्यलक्षणभाव सम्बन्धः प्रकाश्यते । **अस्य सूत्रस्य अधिकारः** प्रागनीश्वरात्पर्यन्तं चलति । यतोहि इयं संज्ञा द्योतकानां निपातानामेव भवति ।

५४७ । **लक्षण** अर्थ प्रकाशमेंलाने के लिए अनुको उक्त–कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो, लक्ष्यकी आकाङ्क्षा लक्ष्यलक्षण सम्बन्धका प्रकाशक अनु हो । **लक्ष्ये जायते अर्थो अनेन लक्षणम्** । किन्तु वह लक्षण हेतु भूतकार्यमें कारण अवश्य हो । वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत् की तरह परिचायक मात्र नहीं । यदि चिह्न मात्र लेंगे, लक्षणेत्थं भूताख्यानसे संज्ञा सिद्ध । इयं संज्ञा गतिसंज्ञाम् उपसर्ग संज्ञाञ्च बाधते । इस बाध्यबाधकभावसे क्रियाके सम्बन्धमें ही कर्मप्रवचनीय-संज्ञा सूचित । महासंज्ञासे स्फोटार्थ, अन्वर्थ प्रकृत्यर्थप्रत्ययार्थ घटे । अयमभि-प्रायः **क्रियां कथितवन्तः कर्मप्रवचनीयाः** (केवल क्रियाही नहीं) क्रियानिरूपितं सम्बन्धं प्रकाशयति । एवं अनुप्रति आदि क्रियाबोधक सम्बन्धका प्रकाशक होनेसे गति-उपसर्गसंज्ञा भी प्राप्त ।

५४८ । **कर्मप्रवचनीय** संज्ञाके युक्ते (युजिर् योगे क्तः) सम्बन्धसे प्रभावित शब्दसे द्वितीया हो । कदा **मेघाः अवर्षन्** कब बादलोंने वर्षा की ? इस प्रश्न पर उत्तर–**जपमनुप्रावर्षत्** जपपूर्णहोतेही बर्षा हुई । अनावृष्टि कालमें वर्षाके लिये जप कराया गया, वृष्टिकालका दुर्ज्ञान है ज्ञानके, लिये आधार (यथा **शाखाग्रं प्रति द्विकलश्चन्द्रः** । दूज का चाँद शाखा पर है । दुर्ज्ञेय चन्द्र के ज्ञानका सहारा शाखा है) उसका जप ही प्रज्ञान–मुख्यज्ञानका कारण है । जपके समय बादल बर्षा किये । बर्षाके लिये जप किया गया । बर्षाका कारण जप, लक्षण है । **पूर्वकालवृत्तित्वघटितत्वं हेतुत्वं** । पहले जप हुआ तब वर्षा हुई । वरुण देवताके मन्त्र जपके तुरन्त बाद, यह समाधान संगत है । यहाँ लक्षण

नुप्रावर्षत्। हेतुभूतजपोपलक्षितं वर्षणमित्यर्थः। परापि हेतो तृतीया अनेन वाध्यते, 'लक्षणॅत्थम्भूत—' (सू ५५२) इत्यादिना सिद्धे पुनः संज्ञाविधानसामर्थ्यात्। **(५४६) तृतीयार्थे। १।४।८५॥** अस्मिन्द्योत्येऽनुरुक्तसञ्ज्ञः स्यात्। नदीमन्ववसिता सेना। नद्या सह

और हेतु दोनों द्वितीयाके अर्थ अनुसे प्रकाशित ज्ञानके लिये ज्ञान विषयका परिचायक धर्म लक्षण। वृष्टिज्ञान के लिये जपका ज्ञान लक्षण, जपके कारण वर्षा हुई। इन्ही समस्त आशयोंको लेकर **हेतुभूतं जपं, तेन उपलक्षितं ज्ञापितं बोधितं बर्षणम्।** अनुर्लक्षणे सूत्रमें लक्षण पड़ा है हेतु नहीं, हेतुका लाभ कैसे ? हेतुकी विवक्षा से। ननु **वृक्षमनुविद्योतते** अत्र अनुर्लक्षणे सावकाशं, हेतौ सूत्रस्य तृतीया, धनेन कुलं सावकाशा, पर्जन्यः जपमनुप्रावर्षत् इत्यत्र द्वयोः प्राप्तिः। द्वयोर्मध्ये कतरेण भाव्य, को भवतु। विप्रतिषेधे परं कार्यं, परत्वात् हेतौ तृतीया प्राप्ता। अतो मूले कथितं **परापि हेतौ तृतीया अनेन बाध्यते।** हेतौ सूत्र भलेही पर हो, उसकी तृतीया कर्मप्रवचनीय द्वितीयासे बाधी जायेगी। तत्र किं प्रमाणं, कारणं दीयते—**जपमनु इत्यत्र लक्षण—इत्थंभूताख्यान भागवीप्सा-सूत्रेण द्वितीया सिद्धा, पुनः अनुर्लक्षणे सूत्रं किमर्थं ? व्यर्थं, ततश्च नियमं करोति, अनुर्लक्षणे सूत्रेण कर्मप्रवचनीयसंज्ञाविधानसामर्थ्यात् द्वितीयैव। हेतौ, तृतीया न।** वर्षामें कारण (लक्षण) से अनुको कर्मप्रवचनीय का लाभ होगा, उसके सम्बन्धमें द्वितीयासे हेतौ तृतीया बाधी जायेगी। एतेन हेतुत्वमपि शब्दबोधविषयः इति फलति। ५४९। **तृतीयाका** अर्थ साहित्य, सहभाव,—सम्बन्ध एक साथ है। यद्यपि कर्तृकरणयोस्तृतीयासे कर्ता और करण ही तृतीया का अर्थः, परन्तु वह तृतीया क्रियान्वयी होनेसे कारकविभक्तिर्बलीयसी हो उपपदविभक्ति को बाधेगी। **रामेण शरेण अनुहतो वाली, तृतीया** ही हुई। कर्मप्रवचनीयसंज्ञा का फल नहीं। कर्म क्रियां प्रोक्तवन्तः अर्थ नहीं घटा, तृतीयाके अनेक अर्थ है, किन्तु सहयुक्ते अप्रधानेके साथमें जुड़ा साहित्य द्वितीया का अर्थः। उसका प्रकाशक अनु है। **नदीम् अन्ववसिता सेना।** नदीके साथ जुड़ी सटी सम्बद्ध नदीका सेनाके साथ सहयोग सहभाव समीपसम्बन्ध है। न कहिये कि अवपूर्वक षो (अन्तकर्मणि) धातुका चिता पर जलाना अर्थः, अवसिता का सम्बन्ध अर्थ कैसे ? धातुसम्बन्ध अर्थ का लाभ कैसे ? तब

सम्बद्धेत्यर्थः। 'षिञ् बन्धने क्तः। (५५०) **हीने। १। ४। ८६॥** हीने द्योत्येऽनुः प्राग्वत्। अनु हरिं सुराः। हरेर्हीना इत्यर्थः। (५५१) **उपोऽधिके च। १। ४। ८७॥** अधिके हीने च द्योत्ये उपेत्यव्ययं प्राक्संज्ञं स्यात्। अधिके सप्तमी वक्ष्यते। हीने-उप हरिं सुरा। (५५२) **लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः। १। ४।**

बोले—षिञ् बन्धने धातुसे क्त। अव उपसर्ग के बलसे बन्धनार्थक सि धातुका सम्बन्ध अर्थः। षष्ठी की बाधिका। जो बार—बार लक्ष्यका ज्ञान कराये वही लक्षण नहीं, किन्तु (सकृत् ज्ञापकमपि) जो एकबार ज्ञान कराये वह भी लक्षण है। **यं कमण्डलना भवान् अद्राक्षीत् स छात्रः।** छात्रके हाथमें एक बार कमण्डलु देखा। उसका लक्षण सूचक कमण्डलु हो गया। इति अनुर्लक्षणे भाष्ये।

५५०। **हीने** 'ओहाक्' त्यागे। हा धातोः निष्ठातकारस्य नत्वं ईत्वे भूत-कालिक हीनता- न्यूनता कमी- निकर्ष अर्थ प्रकाशित होता हो (द्योत्ये अनुः) प्राग्वत् पूर्ववत् कर्मप्रवचनीय संज्ञक हो। अनु की आवश्यकता हीनता, निकृष्टता कमी प्रकाश मे लाने में हो। जहाँ उत्कृष्ट अच्छे, अपकृष्ट बुरे, कम छोटा अर्थ हो, वहाँ **उत्कृष्टादेव द्वितीया न तु अपकृष्टात्, शक्तिस्वभावात्।** यथा **अनु हरिं सुराः।** देवता हरि से हीन न्यून कम है। इस कमी का प्रकाशक अनु, उससे द्योत्य द्वितीयार्थसे (उत्कृष्टो) हरिः **प्रभावितः। हीने सूत्रेण कर्मप्रवचनीयसंज्ञा। तस्याः सम्बन्धे द्वितीया।** हरेः में षष्ठी प्रतियोगी अपेक्षा निकर्ष छोटे देवता हैं। ५५१। **उप** शब्दका अधिक अर्थः, चकारसे हीन अर्थका संग्रह। न्यून अधिक अर्थ का प्रकाशक उप, यह अव्यय प्राक्संज्ञं कर्म प्रवचनीयसंज्ञक हो। अधिक अर्थ का प्रकाशक उप को कर्मप्रवचनीयसंज्ञाका विधान, द्वितीयाके लिये नहीं किन्तु (अधिकेऽर्थे सप्तमी वक्ष्यते) यस्मादधिकं के प्रसङ्गमें कहेगें। हीन अर्थ उप का उदाहरण–उप **हरिं सुराः** देवता भगवानसे कम है। ५५२। **लक्षण– इत्थंभूताख्यान– भाग– वीप्सा** एषु अर्थेषु **विषय सप्तमी। अतः विषयभूतेषु कथितं** ये अर्थ प्रकट करने, समझाने की विषयवस्तु हों, युक्त हों, तब **प्रत्यादयः**=प्रतिपरि अनु अवको कर्मप्रवचनीय (अप्रयुज्यमान शब्द की क्रियाके सम्बन्धको कहनेवाली) संज्ञा हो। लक्ष्यते

९० ।। एष्वर्थेषु विषयभतेषु प्रत्यादय उक्तसञ्ज्ञाः स्युः। लक्षणे-वृक्षं प्रति, परि, अनु वा विद्योतते विद्युत्। इत्थम्भूताख्याने--भक्तो विष्णुं प्रति, परि, अनु वा। भागे-लक्ष्मीर्हरिं प्रति, परि, अनु वा। हरेर्भाग इत्यर्थः। वीप्सायां, वृक्षं वृक्षं प्रति, परि, अनु वा सिञ्चति।

कार्यं प्रकटीक्रियते अनेन (अर्थ प्रकाशित किया जाय जिससे) **लक्षणं ज्ञापकं बोधकं सूचकम्। यथा वृक्षं प्रति परि अनु वा विद्योतते विद्युत्।** वृक्षका प्रकाशमें आना द्वितीया का अर्थ है, **लक्षणं वृक्षः लक्ष्यं विद्युत्।** वृक्षके आगे पीछे चारों तरफ बिजली चमकती है। लक्ष्यलक्षणसम्बन्ध द्वितीयार्थः। उसका प्रकाशक प्रति–परि–अनु। घोर अन्धकार, घटा घेरी अंधेरी रातमें बिजली चमकनेसे वृक्ष दिखाई दिये, उनसे विद्युतका विद्योतन चमकना समझमें आया, जो उत्पन्ना विनष्टा, वह प्रकाश्य और प्रकाशक वृक्ष भी उत्पन्नविनष्ट इव, वृक्ष प्रकाशके तत्काल विद्युत् अभावसे अनुमानके योग्य हो गयी। वृक्ष प्रकाशित हुआ, तब विद्युत् ज्ञान हुआ। **वृक्ष** लक्षण, **विद्युत्** लक्ष्य भाव प्रकाशनाय प्रति परि अनु एतेषां लक्षणेत्थं सूत्रेण कर्म प्रवचनीय० तत्सम्बन्धे द्वितीया च। **इत्थंभूताख्यान=अयं प्रकारः इत्थंभूतः। कञ्चित् प्रकारं प्राप्तः सुप्सुपा समासः। आख्यायते अनेन आख्यानम् इत्थंभूतस्य आख्यानम्** इस प्रकारके विषयविषयिभाव उपास्**य** उपासकभाव, भक्त और भगवानमें आख्यान प्रसिद्ध है। उसका प्रकाशक प्रति परि अनु हैं।

यथा **भक्तो विष्णुं प्रति परि अनु।** भक्त भगवानके विषय में सब प्रकारसे तन्मयता व्याप्त (भज सेवायां, भक्तिः अस्ति अस्य) सेवा भाव भरा हो, मत्वर्थ अर्शआद्यच्। **भक्तसेवाविषयसम्बन्ध का प्रकाश करना द्वितीयार्थः। लक्षणेत्थं सूत्रेण उक्तसंज्ञा सम्बन्धे द्वितीया। विष्णुविषयक भक्तिमान् भक्तः** कञ्चित्प्रकारं विशेषभक्तिमय पुलकशरीरं, रोमाञ्चितस्वरूप को प्राप्तहोने से इत्थंभूतलक्षण घट गया। वह लक्षण विष्णुविषयकसम्बन्धका द्योतकः। **भागे**=हिस्सा अंश अवयव अंग **लक्ष्मी भगवान की अर्धाङ्गनी** है। आधा-भाग, स्वामित्व, द्वितीयार्थः। **लक्ष्मी रूपस्य भागस्य हरिणा सह स्वस्वाभि-भावः सम्बन्धः। उक्तसंज्ञा, द्वितीया च सूत्रेण वीप्सायां कात्स्न्यें। नहि सम्ब-न्धात्मिका (पूर्णरूपेण** इच्छति वीप्सति इच्छायाः) व्याप्तिः पूर्णता प्रकृति

अत्रोपसर्गत्वाभावान्न षत्वम्। एषु किम्। परिषिञ्चति (५५३) **अभिरभागे।१।४।९१।।** भागवर्ज्यं लक्षणादावभिरुक्तसञ्ज्ञः स्यात्। हरिमभि वर्तते। भक्तो हरिमभि। देवं देवमभिसिञ्चति।

अर्थ। यद्यपि वह नित्यवीप्सयोः के द्विर्वचन दो वार उच्चारणसे प्रकाश्य है तथापि प्रति परि आदि क्रिया से सम्बन्धित दशामें कर्मप्रवचनीयसंज्ञा, सम्बन्धे द्वितीया। प्रत्येक वृक्ष पूर्णरूपसे { कृत्स्नं वृक्षं सिञ्चिति) सींचना क्रियामें प्रति की कर्म प्र०संज्ञा योगे द्वितीया च। क्रिया के साथ स्वतः सिद्ध उपसर्गको कर्मप्रवचनीय संज्ञा क्यों ? अतः बोले **अत्र=अस्मिन्प्रसंगे उपसर्गसंज्ञां बाधित्वा कर्म०संज्ञा भवति।** तेन कारणेन उपसर्गसंज्ञा न। तेन कारणेन उपसर्गात्सुनोति सूत्रेण सिञ्चतेः सकारस्य षत्वं न। **एषु किं=पूरा सूत्र क्यों** पढ़ा। यदि न पढ़ते **अग्निं परिसिञ्चतीत्यत्र** परि इत्यस्य उपसर्गसंज्ञा अस्तु। यतोहि अत्र न लक्षणमस्ति, न इत्थं भूताख्यानं, तेन कारणेन कर्मप्रवचनीयसंज्ञा न। तेन कारणेन षत्वं भवति।

५५३। **अभि अव्यय है अभागे**=न भागः अंशः अभागः तस्मिन्। अंशः हिस्सा भाग अर्थ न हो, **लक्षणादौ**=लक्षण इत्थं भूताख्यान, वीप्सा अर्थ द्योत्ये प्रकट हो रहा हो, तब अभिको कर्मप्र०संज्ञा हो, गति उपसर्गसंको बाधकर। **लक्ष्यते ज्ञायते अनेन इति लक्षणं,** जिससे जना जाय। यथा जयः (विजयः) क्व ! कस्मिन्पक्षे वर्तते इति प्रश्ने,–उत्तरं **हरिमभिवर्तते।** भगवान के पक्षमें विजय गयी। हरि लक्ष्य हैं जय लक्षण अर्थ प्रकाशक अभिः। **अभिरभागे सूत्रेण कर्मप्रवचनीयो जातः, तस्य योगे सम्बधे द्वितीया अभूत्। लक्ष्यलक्षणभावो द्वितीयार्थः। अयं प्रकारः इत्थं भूताख्यानं,** इस तरह की प्रसिद्धि का उदाहरण –**भक्तो हरिमभि**=हरिविषयकभक्तिमान् (भक्तः) भगवान की भक्तिमें तन्मय। भगवतः विषये भक्तिविषयकसम्बन्धस्य प्रकाशको अभिः कर्मप्रवचनीयसंज्ञकः। तेन कारणेन अभिसम्बन्धे द्वितीया हरिम्। अर्थस्तु पूर्वोक्तः। पूर्णव्यापिका सर्वाङ्गीणसम्बन्धात्मिका वीप्सा प्रकृतिके अर्थमें पूर्ण व्याप्त यथा **देवं–देवमभिसिञ्चति** (सम्पूर्ण देवताओं पर जल चढ़ाता है) जल का सम्बन्ध सबके साथ समान है। **अभिशब्देन एषोऽर्थः प्रकाश्यते, अभिरभागे इति सूत्रेण कर्मप्रवचनीयसंज्ञा। तेन कारणेन द्वितीया। यतो नगतिसंज्ञा, न उपसर्ग**

अभागे किम्। यदत्र ममाभिष्यात्तद्दीयताम्। (५५४) **अधिपरी अनर्थकौ**। १।४।९३॥ उक्तसञ्ज्ञौ स्तः। कुतोऽध्यागच्छति। कुतः पर्यागच्छति। गतिसञ्ज्ञाबाधात् 'गतिर्गतौ' (सू ३९७७) इति निघातो न। (५५५) **सुः पूजायाम्**। १।४।९४॥ सुसिक्तम्, सुस्तुतम्।

संज्ञा, तेन कारणेन षत्वं न। अभागे किं सूत्रमें भाग अंशको छोड़कर अभि को संज्ञा हो, ऐसा क्यों? इसलिए कि **यदत्र**=बहुनां द्रव्याणां तण्डुलवस्त्रादिषु संसृष्टं सम्मिलितं तत्र **ममाभिष्यात्**=मम भागः अंशः मह्यं दीयताम्। मेरा अंश मुझे दीजिए, मेरा भाग अर्थ खुल रहा है। अतः अभिष्यात् इत्यत्र अभिशब्दो नहि कर्मप्रवचनीयः, अभागे इति विरोधात्। तेन कारणेन अभि-इत्यस्य उपसर्गसंज्ञा, प्रादुर्भ्यामिति षत्वम्।

५५४। **अधि** और **परि**, यदि **अनर्थक**=अर्थसे सम्बन्ध न रखते हो, तब कर्मप्रवचनीयसंज्ञक हो जांय। यथा **कुतोऽध्यागच्छति**। पञ्चम्यास्तसिल्, कस्मात्स्थानात् आगमनं भवति, अत्र अधिशब्दः परिशब्दः विशेषार्थं न प्रकाशयति तेन कारणेन अधिपरी अनर्थकौ सूत्रेण कर्मप्रवचनीयसंज्ञा। तस्याः किं फलमिति जिज्ञासायां कथितं मूले **गतिसंज्ञाबाधात्**=यदा कर्मप्रवचनीयसंज्ञा तदा गतिसंज्ञा न भवति, तदा गतिर्गतौ सूत्रेण निघातः सम्पूर्णस्य अनुदात्तश्च न भवति। यथा **प्रभवति' पराभवति, अनुभवति** इस स्थलमें प्र परा अनु किसी अन्य अर्थके प्रकाशक नहीं, तथापि धातुके अप्रसिद्ध अर्थके प्रकाशक है भवतिका होना अर्थः। अनु उपसर्ग से अनुभव अर्थ, सकर्मकता प्रकट है। परा उपसर्गसे हारखाना अर्थ प्रमाणित। अतः भाष्ये **अनर्थान्तरवाचिनौ** अधिपरी, किसी अर्थके प्रकाशक नहीं है। अतः धातुसे कही गयी गमन क्रियामात्र ही, **आहुः**=कहते है। **धातुनोक्तक्रियामेवाहुः**।

५५५। **पूजा**=सन्मान समादर स्वागत अर्थमें सु को कर्मप्रवचनीयसंज्ञा यथा–सुसिक्तम् अच्छी सिंचाई की। **सुस्तुतं** अच्छी प्रशंसा की। सन्मानपूर्ण अर्थ का प्रकाशक सु, तस्य कर्मप्रवचनीयसंज्ञा। उपसर्गसंज्ञा न भवति, तेन कारणेन उपसर्गात्सुनोति सूत्रेण न षत्वम्। **पूजायां किं** सूत्रमें समादर अर्थका प्रकाशक सु हो तब कर्मप्र० हो, ऐसा क्यों? इसलिए कि जहाँ सु निन्दा आक्षेप अर्थमें हो वहाँ उक्तसंज्ञा न हो। यथा किसी छात्रने फुलवाड़ी ठीकसे नहीं सींचा,

अनुपसर्गत्वान्न षः । पूजायां किम् ? सुषिक्तं किं तवात्र । क्षेपोऽयम् ।
(५५६) अतिरतिक्रमणे च । १ । ४ । ९५ ।। अतिक्रमणे पूजायां च अतिः कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञः स्यात् । अति देवान्कृष्णः ।

(५५७) अपिः पदार्थसम्भावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु । १ । ४ । ९६ ।। एषु द्योत्येष्वपिरुक्तसञ्ज्ञः स्यात् । सर्पिषोऽपि स्यात् । अनुपसर्गत्वान्न षः । सम्भावनायां लिङ् । तस्या एव विषयभूते भवने कर्तृ-

---

उसने कहा भी **सुषिक्तं किं तवात्र** । मैंने सीचा है तुम्हारी नाक क्यों सिकुड़ती है । **यतः तत्र निन्दा गम्यते, अतः कर्मप्रवचनीयसंज्ञा न । किन्तु उपसर्गसंज्ञा, तेन कारणेन उपसर्गात्सुनोति इतिषत्वम् ।**

। ५५६ । **अतिरति**-'अति' इस अव्ययको अतिक्रमण=मात्रा, बढ़चढ़कर अधिक अर्थ होनेपर, च=पढ़नेसे पूजा अर्थमें, अति शब्द हो, उसको भी कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हो जाय। दोनों अर्थका एक उदाहरण—**अतिदेवान् कृष्णः**=विश्वकल्याणके विषयमें देवताओं से भी अधिक कुसल समर्थ श्रीकृष्ण हैं। अथवा देवताओंके पूज्य हैं। **पूजायाम् अतिक्रमणे च अर्थे वर्तमानस्य अतिशब्दस्य कर्मप्रवचनीयसंज्ञा, तस्य योगे देवान् इत्यत्र द्वितीया। एवं अतिसिक्तम् अतिस्तुतमित्यादि** । अच्छी सिचाई, अच्छी स्तुतिकी ।

। ५५७ । **अपिशब्दः**—पदार्थश्च सम्भावनञ्च अन्ववसर्गश्च गर्हा च समुच्चयश्च एतेषां द्वन्द्वः . इन अर्थोको प्रकाशमें लानेके लिए उपस्थित अपिशब्दको कर्मप्रवचनीतसंज्ञा हो । अतः मूले कथितं **एषु द्योत्येषु**=अप्रयुज्यमानस्य पदान्तरस्य अर्थः पदार्थ, जो शब्द प्रयोग न किये गये (विन्दुशब्द) पदान्तर सर्पिष्से भिन्न विन्दुपद है उसके अर्थ, पदार्थका प्रकाशक अपिशब्दकी उक्तसंज्ञा। यथा **सर्पिषोऽपि स्यात्** (घीका विन्दुभी सम्भव है) जहाँ अति दुर्लभ अतिअल्प घी, आज्य, पात्र पोंछकर **भुञ्जानेभ्यः दीयते** खानेवाले को दिया जाता है। तत्र परिहासार्थमिदं वचनं घीका विन्दुहो सकता है। **घृतस्य विन्दुमात्रसम्भावना अर्थप्रकाशकस्य अपिशब्दस्य अपिः पदार्थ सम्भावना–सुत्रेण कर्मप्रवचनीसंज्ञा, तस्याः इदं फलं, यत् उपसर्गसंज्ञा न, तेन कारणेन उपसर्गप्रादुर्भ्या–सूत्रेण न षत्वम्।** अपिसे प्रकाश्य

दौर्लभ्यप्रयुक्तं दौर्लभ्यं द्योतयन्नपिशब्दः स्यादित्यनेन सम्बध्यते। सर्पिषः इति षष्ठी त्वपिशब्दबलेन गम्यमानस्य बिन्दोरवयवावयविभावसम्बन्धे। इयमेव ह्यपिशब्दस्य पदार्थद्योतकता नाम। द्वितीया तु नेह प्रवर्तते। सर्पिषो बिन्दुना योगो न त्वपिनेत्युक्तत्वात्। अपि स्तूयाद्विष्णुम्—सम्भावनं शक्त्युत्कर्षमाविष्कर्तुमत्युक्तिः। अपि

अर्थ विस्तार के लिए सम्भावनायां लिङ। **उपसंवादाशंकयोश्च** आशङ्का उत्कट अन्यतरकोटिकी शंका सम्भावना, जो प्रकृतिके अर्थमें है। **प्रत्ययानां प्रकृत्यर्थान्वितस्वार्थबोधकत्वं,** प्रत्यय प्रकृतिके अर्थसे समर्थित अपना अर्थ कहे। भवनक्रिया भूसत्तायां। अस भुविमें अस् धातुका भवन होना अर्थः। वह सम्भावनाका विषय हो, ऐसे अर्थवाचक अस धातुके कर्तामें लिङ् आदिः। इससे सम्भव अर्थ है। होना क्रियाका आश्रय कर्ता कौन ? प्रसङ्गसे घीका अवयवविन्दु ही कर्ता है। उसीको अपिशब्द प्रकट करता है। उसकी दुर्लभताका प्रकाशक अपिशब्द। विन्दु ही कर्ता दुर्लभ है, **तस्या एव**= दुर्लभताकी ही सम्भावनायाः निश्चयेन **विषयभूते=सम्भावनाविषये बोधे भवने कर्तृदौर्लभ्यं=दुःखेन लभ्यते इति दुर्लभः,** पात्र पोछने पर भी नहीं मिल रहा विन्दुः, **तस्य भावः दौर्लभ्यं, कर्तुः विन्दोदौर्लभ्यात्प्रयुक्तायां भवनक्रियायामेव**–घीके होनेमें 'यत् दौर्लभ्यं दुःखेन लाभः, तद्योतयन् तस्य अर्थस्य व्यञ्जकः अपिशब्दः स्यात्।' **ननु सर्पिः कर्ता भवतु, उच्चारितः शब्दः प्रत्यायको भवति, सर्पिष्का** उच्चारण है वही कर्ता हो जाय, तब बोले **'सर्पिषः अत्र षष्ठी तु** अपिशब्दके बलसे **गम्यमानस्य प्रतीयमानस्य विन्दोः अवयवावय विभावसम्बन्धोऽस्ति। विन्दुः अवयवः, सर्पिः अवयवी,** अतः धीका अवयव विन्दु घी अतिदुर्लभ। विन्दुकी सम्भावनामात्र बोध, **इयमेव**=यही भाव अपिशब्दसे पदार्थकी द्योतकता, विन्दुकी दुर्लभता अपिका अर्थ है। **तस्य कर्मप्रवचनीयसंज्ञा तस्य योगे सम्बन्धे सर्पिषः इत्यत्र द्वितीया कथं न भवति ? मूले कथितं** (द्वितीया यहाँ पर नहीं होती क्योंकि घीका सम्बन्ध विन्दुसे है अपिसे नहीं) **इति पदार्थद्योतकता। अथसम्भावना अर्थे**—अपि स्तूयात् (सम्भावने अलं चेति सिद्धाप्रयोगे) अपनी शक्तिसे अधिक उत्कृष्ट वर्णन सम्भावना है।

स्तुहि-अन्ववसर्गः कामचारानुज्ञा। धिग्देवदत्तम्। अपि स्तुयाद् वृषलम्—गर्हा। अपि सिञ्च, अपि स्तुहि—समुच्चये।

(५५८) **कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे। २। ३। ५॥** इह द्वितीया स्यात्। मासं कल्याणी। मासधीते। मासं गुडधानाः। क्रोशं कुटिला

वाङ्मनस्यगोचरं–माया गुन गोपार, प्रकृति पार प्रभु अज अविनाशी। विष्णु की भी स्तुति करता है। वाणीसे परे ब्रह्म की प्रशंसामें सामर्थ्य=शक्ति का उत्कर्ष प्रकट करना ही सम्भावना है, ऐसी स्तुति कोई कर नहीं सकता। अत्र **अपिशब्दस्य कर्मप्रवचनीयसंज्ञा तस्य फलं स्तूयात् इत्यत्र न षत्वम् उपसर्ग-संज्ञयाः बाधात्। अन्ववसर्गाः**=इच्छानुसारणी आज्ञा, **अपि स्तुहि**, स्तुति करो या न करो जैसी इच्छा। अपि को उक्तसंज्ञा से उपसर्गका बाध। षत्व का अभाव फल। **गर्हा**–निन्दा (गर्हायां लडपिजात्वोः) लट् को बाधकर लिङ वृषल–निन्द्यजाति, उसकी स्तुति भी निन्द्य है, उस अर्थका प्रकाशक अपिशब्द तुम वृषलकी स्तुति करते हो। एसे को धिक्कार। **समुच्चय**-अर्थमें **अपिसिञ्च, अपिस्तुहि**, सींचो भी स्तुति भी करो। दोनों का मिलित अर्थ ही समुच्चय। उसका द्योतक अपिको उक्तसंज्ञा, फलं षत्वाभावः।

५५८। **कालश्च अध्वा च** कालाध्वानौ। कालः=विपल-पल घटीप्रहर-दिनरात्रिसप्ताहमासवर्ष युगमन्वन्तर–कल्प आदिवाचक शब्द, अध्वा रास्ता मार्ग वाचीशब्दके अत्यन्त संयोगमें द्वितीया हो। **अन्तं विराममतिक्रान्तः अत्यन्तः**, विना विश्रामके, अवरोधका निरन्तर अभाव, अथवा **अन्तः विच्छेदः खण्डः अत्यन्तः अखण्डः**, स चासौ संयोगश्च गुण–क्रिया द्रव्य वस्तुके साथ विना विराम, गुण क्रियावाची शब्दका काल और रास्तासे थोड़ा भी विराम विच्छेद भेद न हो। किन्तु पूर्णकाल, पूर्णरास्ता पर संयोग सर्वावयवव्याप्तः, वह व्याप्तिकाल और मार्गके साथ ही श्रुत है। यथा **मासं कल्याणी त्रिंश द्दिनात्मको मासः**। पूरे तीस दिन अखण्डकीर्तन मङ्गलमय उत्सव त्रिंशद्दिन मविच्छिन्नम् अवरोधं विना कल्याणमासीत्। कालवाची मासभर=कल्याण रूपगुण पूरे तीस दिन रहनेसे अत्यन्त–संयोग अवच्छिन्नसम्बन्ध है। अतः मासमित्यत्र द्वितीया। क्रियाका निरन्तर पूर्णसम्बन्ध। **मासमधीते** (तीसो दिन पढ़ता ही रहता है) **त्रिंशद्दिनात्मकम् अविच्छिन्नम् अध्ययनम्** अध्ययन

नदी। क्रोशमधीते। क्रोशं गिरिः। अत्यन्तसंयोगे किम्? मासस्य द्विरधीते। क्रोशस्यैकदेशे पर्वतः। ——* इति द्वितीया *——

…—** अथ तृतीया **…—…— (५५९) स्वतन्त्रः कर्ता

क्रियायाः अत्यन्तसंयोगः पूर्णव्याप्तिः निरन्तर सम्बन्धसत्त्वे मासमित्यत्र कालाध्वनोः सूत्रेण द्वितीया। द्रव्यका निरन्तर सम्बन्ध। यथा मासं गुड़धाना महीनो-गुड़ धनिया बाँटती रही। मासे प्रतिदिनं निरन्तरं एकमपि दिनं विश्रामं विना गुड़धानाः दीयन्ते। द्रव्यवाची गुड़धनियांका पूरे महीने भर निरन्तर दान। कालस्य अत्यन्तसंयोगे द्वितीया। अतः परं **अध्वनः मार्गस्य** (रास्ते का) **अत्यन्तसंयोगे=पूर्णव्याप्तियोगे द्वितीया। क्रोशं कुटिला नदी** टेढ़ी मेढ़ी नदीकी कुटिलता पूरे कोशभर व्याप्त है। **अध्वनः मार्गस्य अत्यन्तसंयोगः तेन कारणेन द्वितीया। क्रोशमधीते** कोशभर लगातार पढ़ता है। अध्ययन क्रियासे व्याप्त क्रोश द्वितीयाका पात्र। **क्रोशं गिरिः** यह पहाड़ पूरे कोशभर व्याप्त है। द्रव्य की व्याप्तिसम्बन्ध। सूत्रमें **अत्यन्त संयोग क्यों** पढ़ा? पूरे कालमें पूरे रास्ते भरमें व्याप्त-गुण-क्रिया-द्रव्य ऐसा क्यों? यदि वैसा न कहते **मासस्य द्विःअधीते** ३० दिनके महीनेमें दो वार या दो दिन पढ़ता है। यहाँ अत्यन्त संयोग=पूरे महीनेका व्याप्त अध्ययन नहीं, बीचमें धारा टूट गयी। तेन कारणेन द्वितीया न। द्विःशब्दसे क्रियाकी आवृत्ति अर्थमें सुच् द्वित्रिःचतुर्भ्यः कृत्वोऽर्थप्रयोगे काले अधिकरणे। क्रियाकी आवृत्ति अर्थका प्रयोग हो। कालवाची, आधारवाची अर्थमें षष्ठी। **मासस्य शिवरात्रौ जागृयात्**। यहाँ अधिकरण इष्ट है। उपपद विभक्तियां शेषत्व सम्बन्धमात्रकी विवक्षामें होती है। ——* इति द्वितीया *—— …* अथ तृतीया *…

५५९। **स्वतन्त्रः**-तन्त्रणं (स्वस्य आत्मनः) तन्त्रः स्वाधीनः विचारः। कारकके अधिकारसे क्रियामें या क्रियासे फल की सिद्धि-उत्पत्तिमें जो स्वाधीन प्रधान हो। स्वतन्त्रता भी प्रधान (धातु का अर्थ) क्रियासे मान्य है। **प्रधान धात्वर्थाश्रयत्वं स्वातन्त्र्य** कथितमपि वर्तते **धातुनोक्तक्रिये नित्यं कारके कर्तृ-तेष्यते**। धातुसे कही गयी क्रिया कारको में कर्ता होकर रहती है जो पराधीन न हो। अतः इसी क्रियामें स्वतन्त्र प्रधान रूपसे विवक्षित=वक्तुः इष्टः, अर्थः

। १ । ४ । ५४ ।। क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात्। (५६०) **साधकतमं करणम्** । १ । ४ । ४२ ।। क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं कारकं करणसञ्ज्ञं स्यात्। 'तब्ग्रहणं' किम् ? गङ्गायां

कर्ता मान्यः । यदि क्रियायाः स्वतन्त्र आधारः कर्ता अस्ति, तर्हि विवक्षितः इति कथं कथ्यते, तस्य इदं कारणं **स्थाल्यां पचति** इत्यत्र स्थाली स्वतन्त्रो नास्ति, तथापि स्थाली पचति इति निगद्यते । यदि स्वतन्त्रता नास्ति स्थाली इत्यस्य कर्ता इति कथं कथ्यते, अतो कथितं **विवक्षातः कारकाणि भवन्ति ।** वक्ताकी इच्छासे भी परतन्त्र कारक कर्ता होते है । फलजननीक्रिया धातोः अर्थः, तस्य स्वतन्त्रः आश्रयः कर्ता ।

५६० । **साधकतमं**–साध्यते क्रियाफलसिद्धिः क्रियते अनेन, साधकं कारणम् अतिशयेन साधकं साधकतमं, फलसिद्धिमें सहायकको साधक कहते है जो अतिशय साधक हो साक्षात्प्रत्यक्ष फल पैदा करें, उस साधकतम का कारण करणकारक है । अतोऽसाधारणं कारणं (साक्षात्फल सिद्धिकर्ता) करणं, **क्रियासिद्धौ**=प्रधानधातु का अर्थ क्रिया उसके फलकी सिद्धिमें जो प्रकृष्ट साक्षात्प्रत्यक्ष सद्यः उपकारक अतिशायने तमप् का अर्थ है । उसको करणसंज्ञा हो । **यद्व्यापारादनन्तरं फलसिद्धिः तत्प्रकृष्टम् । उक्तं च क्रिया फलनिष्पत्तिः यद्व्यापारादनन्तरम् । विवक्षते यदा यत्र, करणं तत्तदा स्मृतम् ।** जिस व्यापार क्रिया के तुरन्त बाद फलकी सिद्धि हो, और विवक्षासे भी स्थाल्या आदि में हो उस करणमें स्मरण । आह च **तमप् किं ? साधकतममित्यत्र अतिशय अथ तमप्प्रत्ययः क्रियते, तस्य किं फलं ? प्रकृष्टोपकारक इत्यस्य लाभर्थ** (साक्षात्फलसाधक अर्थ लाभके लिये है) **यद्येवं तर्हि साधकं करणमित्येव सूत्रमस्तु, कारकाधिकारात् करण इत्यस्य लाभो भविष्यति ।** साधकं करणं च पर्यायः सान्धोति क्रियाफलं जनयति साधकं करणं, क्रियते अनेन इति करणं साधकं, दोनों का समान अर्थ है साधकग्रहणं साधकतमार्थ भविष्यति । साधकशब्द की व्यर्थतासे साधकतमं प्रकृष्टउपकारक, साक्षात्फलसाधक अर्थ निकल आयेगा। अतः जिज्ञासा जागर्ति **तमब्ग्रहणं कम् ? तद्व्यर्थो भूत्वा कल्पनां करोतिअस्मिन्कारकाधिकारे शब्द सामर्थ्यगम्यः प्रकर्षो नाश्रीयते ।** इस कारकके अधिकारमें शब्दकी शक्तिसे प्रकर्ष साक्षात् अर्थ (इस सूत्र को छोड़कर अन्यत्र) न लियाजाय । अथवा **गौण**

घोषः। **(५६१) कर्तृकरणयोस्तृतीया । २ । ३ । १८ ॥** अनभिहिते कर्तरि करणें च तृतीया स्यात्। रामेण बाणेन हतो बाली।

मुख्ययोर्मुख्ये कार्यसम्प्रत्ययः अप्रधान और प्रधान के बीच प्रधान को ही कार्य समझें। यह परिभाषा भी एतत्सूत्रादन्यत्र न प्रवर्तते **इदं ज्ञापनं तमप्प्रत्ययः करोति। तस्य उदाहरणं गङ्गायां घोषः** तट पर झोपड़ी है गङ्गाका प्रवाह धारा अर्थ मुख्य प्रधान हुआ। **तटं** (अर्थ गौड़, अप्रधान लाक्षणिकसंज्ञा) **गङ्गा इत्यस्य गौणो अर्थः यदि शब्द शक्तिसे प्रकर्ष अर्थ होगा तब गौणे** (अप्रधाने) **अधिकरणसंज्ञा न भविष्यति, यतोहि आधारो अधिकरणमित्यत्र अधिक्रियते अस्मिन्निति अधिकरणं (का भी) आधारो अर्थः। आधारग्रहणमाधारतमार्थं भविष्यति।** अधिकरण का शब्दार्थ स्फोटार्थसे केवल आधार अर्थ निकलेगा। पुनः **आधार ग्रहणम् आधारतमं=सम्पूर्णाधारे व्याप्तम् अधिकरणं भविष्यति। तस्य इदं फलं तिलेषु तैलं** (तिलके पूरे अवयवमें तेल) **दधनि सर्पिः** (दहीके पूरे भागमें घी) **इत्यत्र सप्तमी भविष्यति, गङ्गायां घोषः, कूपे गर्गकुलमित्यत्र न** स्यात्। क्योंकि झोपड़ी पूरे गङ्गाभर में व्याप्त नहीं, पूरे कूपमें गर्गकुल मेढक व्याप्त नहीं। गौण या मुख्य, पूर्ण आधार हो, या आंशिक दोनों स्थलमें सप्तमी हो,अतः तमप् ठीक है। शब्दके सामर्थ्य से पूर्ण व्याप्त ही नहीं लिया जायेगा। इदमेव **तमप्प्रत्ययस्य** फलम्।

। ५६१ । **कर्तृकरणयोः**। अनभिहिते=अनुक्ते जो प्रत्ययसे वाच्य अर्थ न हो, ऐसे कर्ता और करण अर्थमें तृतीया हो। यथा **रामेण बाणेन हतो बाली।** रामके बाणसे बाली मारा गया। हनन क्रियासिद्धिमें विवक्षितकर्ता रामको कर्तृसंज्ञा, उस हिंसाकी क्रियामें (बालीके प्राण वियोगरूप फलसिद्धिमें) साक्षात्सहायक बाणको साधकतमं मानकर करणसंज्ञा, कर्तृकरणयोः तृतीया अभूत्। बालीकर्म है। हतः में क्तसे कर्म अर्थ वाच्य, प्रधान विवक्षित उक्त हो गया। अनभिहितका अधिकार न होता तब हरिः **करोति, पाचकः, शब्दं करोति शाब्दिकः, शब्ददर्दुरं करोति** ठक्, **कृतं विश्वं येन** संसार बनानेवाला **कृतविश्वः** विश्वकर्मकक्रत्याश्रयः। जीवन्ति अनेन **जीवनः**, करणे ल्युट्। अत्रापि तृतीया स्यात्। (वा०) **प्रकृत्यादिभ्यः** यह आकृतिगण वार्तिक है

'प्रकृत्यादिभ्यउपसङ्ख्यानम्' (वा १४६६)। प्रकृत्या चारुः। प्रायेण याज्ञिकः। गोत्रेण गार्ग्यः। समेनैति। विषमेणैति। द्विद्रोणेन

आकृत्या स्वरूपेण गण्यन्ते शब्दाः यत्र आकृतिगणः। प्रकृतिआदि गणमें जितने शब्द हैं सबकी सिद्धिरूप फल देखकर समझें। तृतीयाका विधान यथायोग्य। सभी विभक्तियों को बाँधकर उपपदविभक्तिः। यथा **प्रकृत्या चारुः**—स्वभावसे मधुर, प्रकृतसे सुन्दर है। कर्तृ या करणसंज्ञाके अभावसे तृतीया अप्राप्त थी। **वार्तिकेन तृतीया, तस्याः सम्बन्धोऽर्थः प्रकृतिसम्बन्धिचारुत्ववान्। स्वभावेन अयम् अभिरूपः मनोमोहकः, न तु अलङ्कारादिना सुन्दरः। प्रायेण याज्ञिकः** बहुधा यज्ञ कराता है। प्रायः शब्द बहुलवाची आचरणसम्बन्धसे यज्ञकर्ता ज्ञाप्यज्ञापकभावसम्बन्ध। आचरणसे व्यवहारसे यज्ञ कराता है ऐसा लोग जानते हैं। **अत्र प्रायेण इत्यत्र प्रकृत्यादिभ्यः इति वार्तिकेन तृतीया। आचारेण सम्पन्ने अर्थे केवलं ज्ञाप्यसम्बन्धः, तदा इत्थंभूतलक्षणेन तृतीया सिद्धा। गोत्रेण गार्ग्यः, गर्गवंशी ज्ञायते, गोत्रेण इत्यत्र तृतीया।** यदि गोत्रहेतुसे ज्ञाप्य बोध्य गार्ग्यत्ववान् है तब इत्थंभूतलक्षणसे तृतीया। गोत्रेणाहं गार्ग्य इति इहापि तृतीया। **समेनैति** क्रियाविशेषण समतल या **विषमेण** एति-विषम= ऊँचा नीचा कुटिलमार्ग पर चलता है। सम विषमशब्दात्कर्मणि द्वितीया प्राप्ता वार्तिकेन तृतीया कृता। यदि सम विषम मार्गसे चलता है, तब साधन मानकर करणतृतीया। तृतीयायाः सम्बन्धो अर्थ। समविषमाभ्यां कर्मणि-द्वितीया प्राप्ता, यदा **समेन एति** (समतल मार्गसे चलता है) तदा करणे तृतीया। **द्वयोः द्रोणयोः समाहारः द्विद्रोणं धान्यं** (दो द्रोण चावल) पात्रा दिगण होनेसे स्त्रीलिंग। किन्तु त्रिलोकी इव ङीप् नहीं। द्विद्रोणसम्बन्धि धान्यं, दो द्रोण धान्यके माप द्विद्रोण है। **तेन क्रीणाति** (उससे खरीदता है) अर्थ होनेपर धान्यके खरीदनेमें साधन द्विद्रोणमें करण मानकर तृतीया। **सुखेन याति** मगनहो गमन करता है। **दुःखेन गच्छति** कष्टसे जाता है क्रिया विशेषण होनेसे, दुःख सुखमें द्वितीया प्राप्ता तां बाधित्वा वार्तिकेन तृतीया। **इत्यादि**=आदिपदेन **नाम्ना सुतीक्ष्णः** नामसे बहुत तीक्ष्णबुद्धिवालाका बोध होता है। यदि ऐसा है तब इत्थंभूतलक्षणसे तृतीया सिद्धा। धान्येन धनवान्‌में तृतीयाका अभेदअर्थ, धान्यरूप ही धनवान् है। **वह्नित्वेन वह्निं जानामि।**

धान्यं क्रीणाति। सुखेनदु:खेन वा यातीत्यादि। (५६२) **दिवः कर्म च। १।४।४३॥** दिवः साधकतमं कारकं कर्मसञ्ज्ञं स्यात्, चात्करणसञ्ज्ञम्। अक्षैरक्षान्वा दीव्यति। (५६३) **अपवर्गे तृतीया। २।३।६॥** अपवर्गः फलप्राप्तिः, तस्यां द्योत्यायां कालाध्वनो-

---

प्रभृति आदिप्राय, गोत्र, सम, विषम, द्विद्रोण पञ्चक सहस्र गण है।

।५६२। **दिव** धातुके क्रीडा-विजयकी इच्छा, व्यवहार स्तुति मोद मद क्रान्ति गति अर्थका साधन करण, उनकी क्रियाओं में साधकतमं प्रत्यक्ष, सद्यःफलदायक कारकको कर्मसंज्ञा हो। **चात्**=च पढ़नेसे साधककी करणसंज्ञा भी हो। दो संज्ञाओंका समावेश विकल्पका कारण है। यथा **अक्षैः अक्षान् वा** (पाशासे जूआ खेलता है) **दीव्यति दिवधातोः द्यूतक्रीडनेऽर्थे अक्षः** (पाशा) **अतिशयेन साधकमस्ति, ईदृशं कारकं 'दिवः कर्म च' सूत्रेण कर्मसंज्ञकं अक्षान् इति। चकारेण करणसंज्ञा अक्षैः** इति। कन्दुकेक कन्दुकं वा दीव्यति क्रीडति शास्त्रार्थेन वा दीव्यति जेतुमिच्छति।

।५६३। **अपवर्गे**=फलकी प्राप्ति ही अपवर्ग है **तस्यां**=वह फल प्राप्ति **द्योत्यां**=प्रकाशित होनेवाली हो। तब कालश्च अध्वा च कालाध्वानौ, कालवाची पल-विपल दण्ड-घण्टा-प्रहर-दिन,-सप्ताह-पक्ष-मास-वर्ष आदि वाचक शब्दसे तथा अध्वा-मार्ग-कोश-किलोमीटर वाची शब्दसे अत्यन्तसंयोग पूर्णव्याप्ति, जितने कालमें क्रिया कही गयी हो, उतने कालतक क्रियाका फल मिल रहा हो, या प्राप्त हो चुका हो, या होनेवाला हो, तब कालवाची रास्तावाची शब्दसे तृतीया हो। क्रियाकी फलप्राप्ति तक संयोग हो। अपवर्गः समाप्तिः (कर्मापवर्गे लौकिकाग्नयः) में अपवर्ग क्रियाकी समाप्ति अर्थ में पढ़ा गया है। प्रसङ्गमें फलप्राप्ति ही इष्ट है। कालाध्वनोः सूत्रमें द्वितीया को बाधकर **अह्ना क्रोशेन अनुवाकोऽधीतः** पूरे दिनभर या पूरे कोशभरमें **मन्त्रः कण्ठस्थीकृतः** (याद किया) यहाँ अध्यनक्रियासे दिनभरमें या कोशभरमें मन्त्र कण्ठकर लेना **अपवर्ग**=फलप्राप्ति है। उसके रहते **कालवाचिनः अहन्शब्दात् अपवर्गे तृतीया सूत्रेण तृतीया जाता। अपवर्गे किं?**=सूत्रमें क्रियाफलकी प्राप्ति अर्थ क्यों पढ़ा? इसलिए कि **यत्र फलस्य प्राप्तिर्नास्ति तत्र तृतीया मा भवतु। मासमधीतो नायातः** महीनो पढ़ा, कण्ठ किया,

रत्यन्तसंयोगे तृतीया स्यात्। अह्ना क्रोशेन वा अनुवाकोऽधीतः। अपवर्गे किम् ? मासमधीतो नायतः। (५६४) **सहयुक्तेऽप्रधाने। २। ३। १९॥** सहार्थेन युक्तेऽप्रधाने तृतीया स्यात्। पुत्रेण सहागतः पिता। एवं साकंसर्धसमंयोगेऽपि। विनापि तद्योगं तृतीया, 'वृद्धो यूना (सू ९३१) इत्यादिनिर्देशात्। (५६५) **येनाङ्गविकारः**

याद नहीं हुआ, दाल नहीं गली। महीनों श्रम करनेपर फलप्राप्ति न होनेसे मासंमें तृतीया नहीं हुई।

। ५६४। **सहयुक्ते**=सह (साथ) अर्थसे युक्ते=सम्बन्धुं जुड़नेपर। दोनोंमें जो अप्रधान है उससे तृतीया हो। सूत्रमें 'सहेन' पढ़ते, युक्त क्यों पढ़ा ? (यथा पृथग्विना नानाभिः सूत्रमें युक्त नहीं पढ़ा लाभ है,) इसलिए कि सह अर्थमें अन्य शब्दभी हों, उनके सम्बन्ध से प्रभावित शब्दोंके अप्रधानमें भी तृतीया हो। अतः सहार्थेन कहा। यथा **पुत्रेण सह पिता आगतः** पुत्रके साथ पिता भी आया। आगमन क्रियामें पिताका **शाब्दः**=साक्षात्सम्बन्ध, पुत्रके साथमें आनेसे आर्थः सम्बन्धः। वह अप्रधान है। **अतः पुत्रेण इत्यत्र युक्ते अप्रधाने अर्थे तृतीया।** यद्यपि पुत्र आगमन क्रियाका अनुक्त कर्ता है। पुत्र शब्दसे कर्तृकरणयोस्तृतीया सिद्ध, **अतएव महाभाष्ये पुत्रेण सह स्थूलः।** पुत्रके साथ मोटा हो रहा है। यही मुख्यउदाहरण दिया। युक्त शब्दसे अर्थग्रहण का क्या फल है। **सह, साकं, सार्धं समं योगेऽपि**—सम्बन्धमें भी अप्रधाने तृतीया हो। **मया साकं, त्वया सार्धं, तेन समम् अन्ते वासिनः अध्ययनमित्यादौ तृतीया।**

पुत्रेण आगतः पिता। शिष्येणागतः गुरुः। यहाँ सह शब्द नहीं पढ़ा गया, तृतीया कैसे ? तब बोले—**विनाऽपि तद्योगे**=सह उपस्थित न रहे। तब भी तृतीया होगी, सह अर्थकी प्रतीतिसे। अत्र प्रमाणं **वृद्धो यूना तल्लक्षणश्चेत्** युवसंज्ञाके साथ वृद्धका एक शेष हो। यदि युवका लक्षण वृद्धमें घटता हो तब सहशब्दके बिना भी तृतीया इष्ट है।

। ५६५। **येनाङ्ग**=जिस अङ्ग आँख, कान, दन्त हस्त पाद आदिके **विकृत**=खराब खोटा विगड़ जानेसे अङ्गानि सन्ति अस्य **अङ्गी** शरीरमें विकार काना लँगड़ा लूँजापन लक्ष्यते-दिखाई पड़ता हो **ततः**=उस विकृत

।२।३।२०॥ येनाङ्गेन विकृतेनाङ्गिनो विकारो लक्ष्यते ततः तृतीया स्यात्। अक्ष्णा काणः। अक्षिसम्बन्धिकाणत्वविशिष्ट इत्यर्थः। 'अङ्गविकारः किम्? अक्षि काणमस्य। (५६६) **इत्थंभूतलक्षणे** ।२।३।२१॥ कञ्चित्प्रकारं प्राप्तस्य लक्षणे तृतीया स्यात्। जटाभिस्तापसः। जटाज्ञाप्यतापसत्वविशिष्ट इत्यर्थः। (५६७) **सञ्ज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि** ।२।३।२२॥ सम्पूर्वस्य जानातेः

अङ्गवाची शब्दसे तृतीया। येन=सर्वनामसे प्रकृतिके अर्थका अवयव ही लिया जाय। अङ्गानि यस्य सन्ति अङ्गः शरीरम् (अर्शादि अच्) अङ्गस्य विकारः। **नहि अविकृतेन अङ्गेन अङ्गिनः विकारो लक्ष्यते।** यथा **अक्ष्णा काणः** आँखसे काना **काणमस्ति अस्य काणः काणत्वगुणवान्** शरीर देहधारी, **अत्र येनाङ्गविकारः सूत्रेण तृतीया। सम्बन्धः तृतीयार्थः काणत्वगुण** (कानापन) आँख सम्बन्धी है। दोनों आँख फूटनेसे अंधा। **तथापि अवयव धर्मस्य शरीरे व्यवहारो निरुढ़ः। द्वौ विप्रौ इतिवत्।** सूत्रे अङ्गका विकार क्यों पढ़ा? इसलिए कि **अक्षि काणमस्य** (आँख कानी है इसकी) यहाँ कानापनसे अङ्ग आँखमें विकार लक्षित है अङ्गी=शरीरमें नहीं, वाक्ययार्थः। शब्दः प्रमाणम्।

।५६६। **इत्थं=अयं प्रकारः इत्थं, तं भूतः प्राप्तः इत्थंभूतः।** इसप्रकार प्राप्त हुआ (भूप्राप्तौ चुरादिः) गत्यर्थाकर्मक सूत्रसे कर्ता अर्थमें क्त। **लक्ष्यते अनेन लक्षणं ज्ञापकं,** सूत्रके जटा लक्षणसे तपस्वी लक्षित होना। जटा तपस्वीका सूचक है। **कञ्चित्प्रकारं**=किसी स्वरूपको प्राप्त होनेपर लक्षण वाचकसे तृतीया हो। यथा **जटाभिस्तापसः।** जटाधारणसे तपस्वी, जान पड़ता है। जटा लक्षण, तपस्वी लक्ष्य। **तपः अस्यास्ति तापसः। तपः सहस्राभ्यां विनीनी अण्च। जटाभिः इत्यत्र इत्थभूतलक्षणे तृतीया।** जटासे ज्ञाप्य बोध्य जानने लायक तापसत्व तपस्वीका धर्म, उससे विशिष्ट सहित लक्ष्यसम्बन्धः तृतीयायाः अर्थः। **चन्दनचतुर्वन्दिभिः पण्डितः। अध्यापनेन अध्यापक। कमण्डलना साधुः।**

।५६७। **संज्ञो-**सम्पूर्वक ज्ञा अवबोधने ज्ञाने च अर्थे ज्ञा धातुका अनुकरण षष्ठीका एकवचनसंज्ञः। जनी प्रादुर्भाव नहीं, अकर्मक होनेसे। **अतः संपूर्वक जानातेः**=ज्ञा धातुके जानने क्रियाके कर्म अर्थमें तृतीया हो, विकल्पसे

कर्मणि तृतीया वा स्यात्। पित्रा पितरं वा सञ्जानीते। (५६८) **हेतौ** ।२।३।२३॥ हेत्वर्थे तृतीया स्यात्। द्रव्यादिसाधारणं निर्व्यापारसाधारणं च हेतुत्वम्। करणत्वं तु क्रियामात्रविषयं व्यापार-

द्वितीयाको बाँधकर। **पित्रा पितरं वा सम्यक् जानीते** पिताको ठीक जानता है। **सम्प्रतिभ्यामनाध्याने**=उत्सुकतापूर्णस्मरणे **अर्थे आत्मनेपदं संज्ञोन्यतरस्यां कर्मणि। पितरमित्यत्र तृतीया पित्रा इति। यत्र कृदन्तसम्बन्धः तत्र कर्तृ-कर्मणोः षष्ठी।** पितुः संज्ञाता। आत्मनेपद **अनाध्यान**=अनुत्कण्ठा, स्मरणे-परस्मैपदम्। **आध्याने गुरुणा गुरुं वा संजानीते। मात्रा मातरं वा संजानीते।** माताको बड़ी उत्कण्ठासे याद करता है।

।५६८। **हेतौ**=क्रियाफलकी सिद्धिमें जो हेतु कारण साधन है उसमें तृतीया हो। यहाँ लौकिक हेतु है। क्रियाफलका साधक करणका पर्याय ही वक्ताको **इष्ट है।** तत्प्रयोजको हेतुश्च का हेतु नहीं। स कृत्रिमः। जिसको चकारसे कर्तृसंज्ञा और कर्तरि तृतीया सिद्ध। **यदि हेतुः करणञ्च पर्यायः तर्हि करण=ज्ञानमात्रेण कर्तृकरणयोस्तृतीया सिद्धा हेतौ** सूत्रं **व्यर्थ, तन्न, हेतुः भिन्नः करणञ्च भिन्नं, भेदं** साधयति–**द्रव्यादिः**=आदि पदसे गुण क्रियाका संगृहीत द्रव्यगुणक्रिया का जो जनक उत्पादक, है तत्र **सर्वत्र विद्यमानं साधारणं हेतुत्वं निर्व्यापारसाधारणं=निर्गतः समाप्तः व्यापारः क्रिया यस्मात्तत्र साधारणं सर्वत्र विद्यमानं**, द्रव्य गुण क्रिया वाला हो, व्यापारसहित हो या व्यापाररहित हो, ऐसे साधनको हेतु कहते है। इसमें क्रिया दृष्ट हो या नहो। द्रव्यगुण क्रियारूप से जाना जाय वह हेतु है। **करणत्वन्तु=क्रियाजनकमात्रविषयं**= क्रिया सहितमें ही करणत्व रहेगा, क्रिया रहित में नहीं। **व्यापारनियतं**= क्रियावालोंमें व्यापक को करण कहते है। हेतु और करणके भेदसे एक दूसरेके अन्यथासिद्ध नही हो सकते। उक्तं च **द्रव्यादिविषयो हेतुः कारकं नियत क्रियम्। अनाश्रिते व्यापारे निमित्तं हेतुरिष्यते।** अनाश्रित=क्रिया का कारण हेतु है आश्रित क्रियाका कारण करण है। **निषादः बाणेन कौञ्चमवधीत्॥** हननक्रिया बाणके आश्रित है। द्रव्य के प्रति हेतु का उदाहरण–**दण्डेन घटः।** घट द्रव्य है उसका हेतु (कारण) दण्ड। **द्रव्यं प्रति हेतुः दण्डः।** हेतौ **सूत्रेण तृतीया।** दण्डमे क्रिया हो या न हो। किन्तु साक्षात्क्रियान्वयी न होने से करणे तृतीया न, किन्तु हेतौ। क्रियाके प्रति हेतु का उदाहरण–**पुण्येन दृष्टो**

नियतं च। दण्डेन घटः। पुण्येन दृष्टो: हरिः। फलमपीह हेतुः। अध्ययनेन वसति। 'गम्यमानाऽपि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिका। अलं श्रमेण। श्रमेण साध्यं नास्तीत्यर्थः। इह साधनक्रियां प्रति श्रमः

हरिः **दर्शनक्रियाके** प्रति पुण्य कारण (हेतु) है। धर्माचरणजन्य फलको पुण्य कहते है। यथा **यागादिना स्वर्गफलं, दर्शनक्रिया** की साक्षात् जनकता पुण्य में न होने से करण नही रहा, करणे तृतीया न। **अतो हेतौ तृतीया।** यदि यज्ञादिपुण्यशब्दसे हों तब क्रियाजनक मानकर कर्तृकरणयोस्तृतीया होगी। गुण के प्रति हेतुका उदाहरण–**पुण्येन गौरवर्णः, तेजसा ब्रह्मवर्चसं, सुखेन भाग्यवान्। जटाभिस्तापसः। लक्षणलक्ष्यभावः** यहाँ हेतु नही है। तृतीया के लिए इथंभूतलक्षणे का आरम्भ

फलमपीह=द्रव्यगुण क्रिया के साथ फल को **भी इह=अस्मिन्स्थले हेतुः कारणं, यथा अध्ययनेन फलेन वसति** काश्यां काशीमें निवास रूपफलका हेतु अध्ययन है। पढ़ने का अवसर होता तब निवास करने में आता। तत्र हेतौ तृतीया। **यद्यपि अध्ययनं निवासस्य फलं, तथापि निवासं प्रति हेतुरपि अस्ति। कथं हेतुः ? इष्टसाधनतया: ज्ञानस्य प्रवृत्तौ हेतुत्वात्।** अध्ययनफलका सम्भावित ज्ञान होनेपर ही निवास होगा। **यदि अध्ययनं फलम् अतएव निवासः, तदा चतुर्थी एव भवति। यथा अध्ययनाय वसति। अत्र अध्ययनं फलं नतु हेतु। अलं महीपाल तव श्रमेण प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात्।**

अलं श्रमेण परिश्रम मत करो, यहाँ किसी कार्यका सत्य ज्ञान होता नहीं करण और हेतु समझमें आते नहीं, तृतीया कैसे ? तब बोले **गम्यमाना= गम्यते प्रतीयते अनुभूयते या सा क्रिया अपि** (भी) **कारकविभक्तौ**=क्रियामें सम्बन्ध जोड़ने वाली विभक्तियों की **प्रयोजिका**=प्रेंरिका कारक बनती है। केवल **श्रूयमाणा** क्रिया विभक्तिमें कारण है ही। गम्यमाना अन्दाज से फिट होने वाली क्रिया भी विभक्ति में कारण है। अतएव **ऊषर क्षेत्रं परिष्कुर्वाणं प्रति इदं वाक्यं अलं श्रमेण अलं नञर्थः, निषेधे वर्तते। अलं भूषणपर्याप्ति शक्तिवारणवाचकमित्यमरः।** आभूषण पूर्णता शक्तिवारण निषेध (ऊषर खेत में श्रम करना व्यर्थ) साधितुं योग्यं **साध्यं** का अध्याहार कर, जो प्रतीयमान अध्याहार, सटीक जान पड़नेवाली क्रिया है। अतएव अलं श्रमेण इत्यत्र तृतीया। शीघ्र थकावट वाले कार्यमें प्रवृत्ति **श्रम हैं।** यद्यपि खेतमें श्रम

करणम्। शतेन शतेन वत्सान् पाययति पयः। शतेन परिच्छिद्येत्यर्थ। 'अशिष्टव्यवहारे दाणः प्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीया.(वा ५०४०)। दास्या संयच्छते कामुकः। धर्म्ये तु भार्यायै संयच्छति। -०- इति तृतीया -०-

...****... अथ चतुर्थी ...****...—— (५६९) कर्मणा

से साध्य अन्नोत्पत्ति फल है- स्पष्ट क्रियान्वयी नहीं, श्रमकी करणसंज्ञा कैसे? **अतोऽवदत् साधनक्रियां प्रति**—साधधातुः-**तदर्थः साधनक्रिया उपत्यनुकूल व्यापारः तं** (उस क्रियाके) **प्रति श्रमः करणम् गम्यमाना**—जान पड़ने वाली अध्याहार की हुई क्रिया भी कारकविभक्तिमें कारण है। इसका अन्य उदाहरण **शतेन**–सौ सौ बछड़ों को अलग अलग करके **पाययति** पिलाता है। वीप्सा अर्थ में द्वित्व एक२ सौ संख्या परिच्छिद्य—विभाग करके, यह गम्यमाना अध्याहार की हुई क्रिया है **शतेन इत्यत्र करणे तृतीया** प्रेरिका (वा०) **अशिष्ट—शिष्टः वैदिकमार्गानुयायी, न शिष्टः वेदमार्गाद् भ्रष्टः अशिष्टः** अधर्मी, तस्य व्यवहारः आचारः चरित्रं **तस्मिन्विषये दाणधातोः प्रयोगे**—असभ्य आचरण का विषय हो दाणधातु का प्रयोग हो, तब चतुर्थीके अर्थमें तृतीया हो। यह अर्थ **दाणश्च सा चेत् चतुर्थ्यर्थे**–से ज्ञापित, **दास्या संयच्छते**–कामुक व्यक्ति कामनानुकूल दासी को दे रहा है, रतिसुलभार्थम्। दासीके साथ रमण, धर्मशास्त्रके निषेधसे अशिष्टव्यवहारः **दाणस्थाने यच्छ आदेशे। चतुर्थी अर्थे तृतीया। कामी दास्यै ददाति अर्थम्। अशिष्ट पद क्यों** दिया! इसलिए कि जहाँ शिष्ट आचरण है वहाँ चतुर्थी हो तृतीया नहीं। यथा **भार्यायै संयच्छति** पत्नी को पूरा देता है। **अत्र न तृतीया, शिष्टव्यवहारात्। धर्मादनपेतं धर्म्यं,** धर्मपथि=अर्थन्याय से अनपेत अभ्रष्ट अच्युत युक्त अर्थमें यत्। इति तृतीया।

अथ चतुर्थी। ५६९। कर्मणा=कर्मसंज्ञकेन जिसको कर्मसंज्ञा हुई हो। धनी **छात्राय पुस्तकं ददाति** पुस्तकको कर्मसंज्ञा हुई उसको देनेके लिए **यम् अभिप्रैति**=जिसको चाहता है **शेषित्वेन भोक्तृत्वेन अध्यवस्यति स्वीकरोति** (पुस्तकका उपयोग जो करे) वह (छात्र) **सम्प्रदान सं०** है। महासंज्ञा करनेसे अन्वर्थ स्फोटार्थ शब्दार्थ=**सम्यक्प्रदीयतेऽस्मै** पूर्णरूपसे समर्पण किया जाय। इस आकाङ्क्षा परबोले-**दानस्य कर्मणा**-ददातिका कर्म कामनाका विषय पुस्तक उसे देनेके लिए कामनाविषय छात्रकी सम्प्रदानसंज्ञा, जो देय वस्तुका उद्देश्य।

यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् ।१।४।३२।। दानस्य कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानसञ्ज्ञः स्यात्। (५७०) **चतुर्थी सम्प्रदाने** ।२।३।१३।। विप्राय गां ददाति। अनभिहित इत्येव। दीयतेऽस्मै

कर्ता दानक्रियाके कर्मको जिससे सम्बन्धित करे वह कारक सम्प्रदानसंज्ञकः। दानक्रियाका फल होना आवश्यक, अतः **अजां नयति ग्रामं, हस्तं निदधाति वृक्षे** इत्यादिमें ग्राम या वृक्षको सम्प्रदानसंज्ञा नहीं हुई। दानक्रिया न होनेसे अजाका उद्देश्य गाँव, हस्तका उद्देश्य वृक्ष होने पर भी न चतुर्थी। **वृत्तिकारमते—स्वस्वत्वनिवृत्तिपूर्वकं परस्वत्वोत्पादनं दानम्**। अपना अधिकार समाप्तकर दूसरेका अधिकार स्थापित करना सम्प्रदान है। **रजकस्य वस्त्रं ददाति**। सम्प्रदानसंज्ञा नहीं होगी, अपना अधिकार समाप्त न होनेसे। भाष्यमतमें सम्प्रदानके स्फोटार्थ शब्दार्थ घटनेमें कोई आग्रह नहीं, कर्म (क्रियाफलका आश्रय) जिसके लिए हो, उसका उपलक्षण सम्प्रदान है **खण्डिकोपाध्यायः शिष्याय चपेटां ददाति** प्रयोगसे। **रजकस्य ददाति प्रयोगः**। उपभोगकी विवक्षामें रजकायभी होगा। यद्यपि अजां ग्रामं नयति। अजाका भोग्य ग्राममें अतिप्रसङ्ग होगा, अजाके प्रति ग्राम शेषी भोग्य नहीं है। **मीमांसकास्तु-अन्वर्थ-संज्ञाविज्ञानात् देयद्रव्यस्य उद्देश्यत्वे सति स्वीकारवत्वं सम्प्रदानत्वं**, दाताके दानको गृहीता स्वी कारकी स्वीकृति दे, तब सम्प्रदानसंज्ञा हो।

।५७०। **सम्प्रदानसंज्ञामें** चतुर्थी हो। **विप्राय गां ददाति** इत्यत्र कर्मणा= गां पदेन **यमभिप्रैति** उक्तं विप्रं वाञ्च्छति। विप्र इत्यस्य **सूत्रेण सम्प्रदानसंज्ञा सम्प्रदाने चतुर्थी**। अत्र विप्रः गोदानस्य उद्देश्यः। **सीतायै वार्ता प्रेषयति**। **अनभिहिते इत्येव**=अधिकार आनेसे अनुक्तसम्प्रदानमें चतुर्थी होगी जहाँ **उक्त**=प्रत्ययसे कहा गया सम्प्रदान है वहाँ उक्ते सम्प्रदाने प्रथमा ही होगी। यथा **दीयतेऽस्मै दानीयो विप्रः**। कृत्यल्युटो बहुलंके बहुलग्रहणसे सम्प्रदान अर्थमें अनीयर। उससे विप्र उद्देश्य उक्त हुआ, उक्ते न चतुर्थी किन्तु प्रथमा (वा०) **क्रियाया**=क्रियासे जिसको चाहते है। वह भी सम्प्रदानसंज्ञक हो। **सम्यक्प्रदीयते**=पूर्णरूपसे दान करनेपर ददातिका कर्म जिससे लिए हो उस उद्देश्यको सम्प्रदानसंज्ञा कही गयी। **पत्ये शेते** पतिके लिए (उद्देश्यसे) सोती है। यहाँ दानक्रिया है नहीं, सम्प्रदानसांज्ञा कैसे? यहाँ शयनक्रिया

दानीयो विप्रः। 'क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम् (वा १० ८५)। पत्ये शेते। 'यजेः कर्मणः करणसञ्ज्ञा सम्प्रदानस्य च कर्म-सञ्ज्ञा (वा १०८६)। पशुना रुद्रं यजते। पश रुद्राय ददातीत्यर्थः।

अकर्मक है, पतिके लिए है, अतः वार्तिककारने **क्रियाग्रहणमपि कर्तव्यम्।** अर्थात् क्रियाके उद्देश्यको भी सम्प्रदानसंज्ञा हो। अतः वार्तिकमपठत् क्रियया यमभिप्रैति। पूर्वसूत्रमें कर्मके उद्देश्यको संज्ञा कही गयी है। शयन-क्रियाका कर्म नहीं हैं। पतिको सम्प्रदानसंज्ञा अप्राप्त है, अतः वार्तिक पढ़ा। **यद्यपि पतिमनुकूलयितुं** पतिको वशमें करनेके लिए सोती है। इस अर्थपर **क्रियार्थोपदस्य च कर्मणि स्थानिनः** सूत्रसे अनुकूलयितुंका कर्म पतिको सम्प्रदान हो सकता है **चतुर्थी, पत्ये शेते** इति सिद्धम्। वार्तिकं न कर्तव्यं, परन्तु **भाष्य-कारमते=सन्दर्शनप्रार्थनाध्यवसाये श्राप्यमाणत्वात् क्रियाऽपि कृत्रिमं कर्म। कर्मणा यमभिप्रैतिसूत्रेण सम्प्रदानसंज्ञा सिद्धा वार्तिकं व्यर्थम्, अन्वर्थसंज्ञा न माननेसे। अन्वर्थसंज्ञापक्षे**=ददातिके कर्मके उद्देश्यको ही सम्प्रदानसंज्ञा। पक्षमें क्रियया यमभिप्रैति वार्तिक करना चाहिए। यदि क्रियाके उद्देश्यसे चतुर्थी होगी, तब कटं करोति, ओदनं पचति इत्यादि स्थले क्रियाका उद्देश्य चटाई है भात है, यहाँ भी सम्प्रदानसंज्ञा सम्भव होगी, **सभी कर्म क्रियाका उद्देश्य है सर्वत्र चतुर्थी हो**। तब कर्मसंज्ञा व्यर्थ होकर विकल्पके लिए वाध्य करेगी तन्न, **पत्येशेते** जैसे—अकर्मक स्थलमें सम्प्रदानसंज्ञा होनेसे उसकी शक्ति क्षीण होगी। सकर्मकस्थलमें कर्मसंज्ञा प्रबल पड़ेगी। अर्थात् अकर्मक क्रियाके उद्देश्यको ही सम्प्रदानसंज्ञा हो, सकर्मक स्थलमें कर्मसंज्ञा ही होगी। **हिताय एधते, व्रताय जागर्ति** इत्यादि। (वा०) **एक** वाक्यमें **कर्म** और **सम्प्रदानसंज्ञा**, दोनोंका समावेश हो, तब कर्मको **करणसंज्ञा**, और सम्प्रदानको **कर्मसंज्ञा** हो। यजधातुके विषयमें ही इसका उदाहरण मिलता है। जैसे—**पशुं रुद्राय ददाति**। पशु-जीवको शिवके लिए समर्पण करता है। इस अर्थमें दानार्थक यज् धातुके विषयमें वार्तिकसे कर्म-पशुको करणसंज्ञा सम्प्रदान—रुद्रको कर्मसंज्ञा। **पशुना रुद्रं यजते**। कैयट मतमें यह वार्तिक **छन्दसि**=वेदविषयक है। इसका कार्य व्यत्ययेन बहुलंसे भी सिद्धः।

।५७१। **रुचिः अर्थो येषान्ते रुच्यर्थाः, तेषां**, रुच दीप्तौ अभिप्रीतौ च। प्रकाश अह्लाद प्रसन्नताके अनुकूलक्रिया अर्थः। दीप्तिअर्थ अग्राह्यः, क्योंकि

(५७१) **रुच्यर्थानां प्रीयमाणः । १ । ४ । ३३ ॥** रुच्यर्थानां धातूनां प्रयोगे प्रीयमाणोऽर्थः सम्प्रदानं स्यात् । हरये रोचते भक्तिः । अन्य कर्तृकोऽभिलाषो रुचिः । हरिनिष्ठप्रतीतेर्भक्तिः कर्त्री । 'प्रीयमाणः

प्रियते असौ प्रियमाणः वर्तमाने लट् शानच् । जो प्रसन्न आह्लादित हो रहा हो, उस अर्थको सम्प्रदानसंज्ञा हो । दीप्तको नहीं । रुचधातुका अर्थ हो ऐसे धातुओंके प्रयोगमें **प्रीति जनकार्थानां समवायसम्बन्धेन प्रीयमाणः प्रीत्याश्रयः संज्ञां लभते । यथा हरये रोचते भक्तिः** भगवानको सेवा प्यारी है । **भक्तिः स्वविषयां प्रीतिं हरौ जनयति । भजनक्रियाजन्यफलं प्रीतिः प्रसन्नता आह्लादः, तस्य आश्रयः आधारः हरिः तस्य कर्मसंज्ञा प्राप्ता, तस्याः बाधकं सूत्रं रुच्यर्थानां प्रीयमाणः । तेन सम्प्रदानसंज्ञा चतुर्थी च ।** प्रीञ् तर्पणे प्रीणयति । अत्र शङ्का-यथा **हरये रोचते भक्तिः** अत्रप्रसन्नता**रूपफलस्य आश्रयो यथा हरिः तत्र सम्प्रदानसंज्ञा, तथा हरिः भक्तिमभिलषति** (भक्ति भी प्रीतिका विषय है) **अत्र सम्प्रदानसंज्ञा कथं न भवति । तत्र कारणं कथितं मूले अन्यकर्तृकः--अन्यः कर्ता यस्य**, कर्ता भिन्न हो, प्रीतिफलका आश्रय अन्यः भिन्न हो, दूसरा हो ऐसी अभिलाषा रुचधातुका अर्थ है । समवाय (अभेद) सम्बन्धसे प्रीति आह्लादका आधार हरि हैं । उनसे अन्य कर्ता—भक्ति है । ऐसी अभिलाषावाला रुच धातुः सकर्मकः फलाश्रय क्रियाश्रय **अन्य हो ऐसी प्रीतिके अनुकूलक्रिया रुचका अर्थः । प्रीति प्रसन्नताफल का जो आश्रय है, वही कर्ता भी हो ऐसी इच्छाके अनुकूलक्रिया अभिलष** (अकर्मक) **धातु** । प्रीतिका आश्रय हरि ही कर्ता उससे अन्यकर्ता कोई नहीं । अभिलषति और रोचते के अर्थ भेदसे न सम्प्र० संज्ञा । **प्रसङ्गे आश्रयो हरिः तदपेक्षया अन्यः कर्ता भवितः । सा एव कर्त्री एतादृशी प्रीत्यनुकूलाक्रिया रुच्यर्थः** । पुनः शङ्का-यथा हरिः प्रीतेः प्रसन्नतायाः आह्लादस्य आश्रयः आधारः तथैव भक्तिरपि विषयतासम्बन्धेन प्रीतेः आश्रयोऽस्तु (भक्ति प्रेमका विषय है । अतः प्रेम का आश्रय भी है । उससे अन्य कर्ता हरि है । रुचधातु का अर्थ घट गया) **भक्तेः सम्प्र० संज्ञा कुतो न भवति । तत्र हेतुः उच्यते, हरिनिष्ठा-भगवानमें** रहनेवाली प्रीतिका कर्त्री भक्ति है । अतः **प्रीयमाण कहा** प्रीयते असौ, जो प्रसन्न हो रहा हो (चेतन हरि प्रसन्न हो रहे है) भक्ति मे चेतनत्व प्रीयमाणत्व के अभावसे न सम्प्रदानसंज्ञा । भक्तिः हरिं प्रीणाति । तिङ् से भक्तिमें

किम्? देवदत्ताय रोचते मोदकः पथि। (५७२) **श्लाघह्नुङ्स्थाशपांज्ञीप्स्यमानः। १।४।३४॥** एषां प्रयोगे बोधयितुमिष्टः सम्प्रदानं स्यात्। गोपी स्मरात् कृष्णाय श्लाघते ह्नुते तिष्ठति शपते

कर्ता उक्त होनेसे प्रथमा, न चतुर्थी। नापि हरेः प्रथमा प्रीयमाणः इत्यस्य कर्मणि प्रयोगात्। **प्रीयमाणः** किं? प्रसन्न हो रहा हो ऐसा क्यों? देवदत्तको लड्डू रुचता रास्ते में, देवदत्तमें प्रीयमाणत्व है चतुर्थी हुई। **पथिमें प्रीयमाणत्व नहीं** है जड़त्वात्, न सम्प्र०संज्ञा। प्रीयमाण न होता पथसे चतुर्थी होती।

५७२। **श्लाघृ कत्थने** आत्मप्रशसा ह्नुङ् अपनयने छिपना, छिपाना ष्ठा गतिनिवृत्तौ, गमनक्रियाका अवरोध, शपउपालम्भे—शाप जैसा बचन बोलना, एषां द्वन्द्वः। इन धातुओं के प्रयोग होनेपर ज्ञातुमिष्यते ज्ञीप्स्यते इति ज्ञीप्समानः। ज्ञापने अर्थ ज्ञप् धातोः सन्नन्तात् कर्मणि शानच्। ज्ञापन=बोध कराने की इच्छाका विषय बोधयितुमिष्टः। जिसका ज्ञान कराया जाय, उसको सम्प्रदान संज्ञा हो। **कृष्णाय श्लाघते स्मरात्**। कामदेव मन्मथके मन मन्थनजन्य पीडा के बशीभूता गोपी अपनी प्रशंसाके द्वारा अपने विषयमें कुछ कहकर अपनी विरह वेदना कामज्वर कृष्णको समझाती है। कृष्णकी प्रशंसा करती है। श्लाघ क्रियाका कर्म **कृष्ण इत्यत्र द्वितीया प्राप्ता, तां बाधित्वा श्लाघ० सूत्रेण कृष्ण इत्यस्य सम्प्र० संज्ञा चतुर्थी** च। ज्ञीप्समान कृष्ण है। क्योंकि कृष्णमें अनुराग पैदा करने के लिए आत्मप्रशंसा प्रस्तुत करती है। यदि कृष्णकी स्तुति होती, तब द्वितीया हो जाती। **कृष्णाय ह्नुते** कामपीडासे व्याकुल गोपी **सपत्नीभ्यः कृष्णम् अपनेतुं**=सौतो से छिपाने के लिए छिपजानेका अपना आशय कृष्णको समझाती है। **स्वयमेव स्वविचारान् कृष्णं बोधयति**। या जिस किसीका छिपना कृष्णसे कह रही है। अत्र **ज्ञीप्समानः कृष्णः। सम्प्र०संज्ञा चतुर्थी च। कृष्णाय तिष्ठते। गन्तव्यमित्युक्ते स्थित्वा स्वाशयं कृष्णं बोधयति।** गोपी मन प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च आत्मनेपद, जो स्थाधातुका आशय प्रकाशन अर्थ कहता है। **कृष्णाय शपते**। शप उपालम्भे उलाहना देनेसे, अपने मतबल—भाव को कृष्ण से कहती है। **उपालम्भेन स्वकीयान्** कामान् तं **स्वयं बोधयति**। प्रत्येक वाक्यमें उक्त धातुओं के योगमें ज्ञीप्स्यमान ज्ञानकरानेके योग्य कृष्ण को सम्प्रदानसंज्ञा। सूत्रमें **ज्ञीप्स्यमानः किं** ज्ञानकरानेके लिए इच्छाका विषय अर्थ क्यों? इसलिए कि चेतनको बोध होता है, वहीं इच्छाका विषय वनें,

वा। 'ज्ञीप्स्यमानः किम्? देवदत्ताय श्लाघते पथि। (५७३) **धारेरुत्तमर्णः। १।४।३५॥** धारयतेः प्रयोगे उत्तमर्ण उक्तसञ्ज्ञः स्यात्। भक्ताय धारयति मोक्षं हरिः। उत्तमर्णः किम्? देवदत्ताय

उसीसे चतुर्थी हो। जड़ अचेतन शब्द से न हो। अतः **देवदत्ताय श्लाघते पथि।** पथ अचेतन–जड़ है। बोधकराने की इच्छा वाला नहीं, पथसे चतुर्थी न हो।

५७३। **धारेः** (धृङ अवस्थाने) लौटानेके लिए रखनेके अनुकूल क्रिया धृधातु का अर्थः। प्रेरणा अर्थ णिच्–इ, णित् परे मानकर आवृद्धि, धारि का षष्ठींनिर्देश **धारेः**। प्रयोगे का अध्याहार। **उत्तमं देयम् ऋणं यस्य स उत्तमर्णः।** ऋणदाता, धनस्वामी, **अन्यस्वामिकं द्रव्यं नियतकाले पुनः समर्पणार्थं गृहीतमृणं,** धनके स्वामीसे कार्यवश लौटाने के लिए,लिया हुआ धन ऋण है। उसका गृहीता अधमर्ण है। **अधमं स्वत्वरहितंगृहीतं ऋणं येन स अधमर्णः** ऋणलेता। **उत्तमर्णः उत्तमं स्वाधिकारसहितं देयं ऋणं यस्य अथवा प्रतिमासं देयं कुसीदं अधिकं प्राप्तं उत्तमं** (ब्याज) **ऋणं यस्य।** ऋणके सूदकी वृद्धि लेने वाला। **धारि धातु का प्रयोग रहने पर जो उत्तमर्ण है उसको सम्प्रदानसंज्ञा हो।** चतुर्थी का सम्बन्ध अर्थः। यथा–**भक्ताय मोक्षं धारयति हरिः।** भक्तसम्बन्धी मोक्ष (संसारबन्धनसे मुक्ति, अखण्डानन्द, नित्यसुखविशेष) का धारणकर्ता भगवान भक्तके लिए मोक्ष (अपरमित सुख) रखते है। भक्तका ऋण भगवानके पास रुका है। भक्त उत्तमर्ण है सेवा का फल भगवान के पास रखता है। हरि अधमर्ण है भक्त के किये हुए सेवा कर्मोंका फल (मोक्ष) लौटाने से। **मोक्षः धरते** (अकर्मकः अवतिष्ठते) मोक्ष रुकता है। **भक्तः तं प्रेरयति** इति **भक्तः मोक्षं धारयति** अवस्थापयति। भक्त भगवानके पास मोक्ष रखता है (मरने के बाद लौटाने के लिए) भक्त पुष्पधूप—दीप नैवेद्य तुलसीदल आदिसे पूजा करता है उस पूजाको पाकर प्रसन्न भगवान उसके बदले मोक्ष देकर (निष्क्रीणाति) ऋण चुकाते है। पूजाके बदले नित्य निरतिशय सुख देकर निर्भार होते है। पौराणिक वचन=**तोयं वा पत्रं वा यद्वा किञ्चित्समर्पितं भक्तया। तदृणं मत्वा देवो निःश्रेयसमेव निष्क्रयं मनुते। पत्रं पुष्पं फलं तोयं योमे भक्त्या प्रयच्छति। अत्र भक्तः** (ऋण् स्थापित करनेसे) **उक्त उत्तमर्ण तस्यसम्प्रदानसंज्ञा चतुर्थी भक्ताय** सम्बन्धे षष्ठीको बाधकर। **उत्तमर्ण किम्** ऋणदाताको **सम्प्रदानसंज्ञा** क्यों? इसलिए कि देवदत्तके लिए सौ रुपया गाँवमें रखा है

शतं धारयति ग्रामे। (५७४) **स्पृहेरीप्सितः। १। ४। ३६॥** स्पृहयतेः प्रयोगे इष्टः सम्प्रदानं स्यात्। पुष्पेभ्यः स्पृहयति। ईप्सितः किम्? पुष्पेभ्यो वने स्पृहयति। ईप्सितमात्रे इयं सञ्ज्ञा। प्रकर्षविवक्षायां तु परत्वात्कर्मसञ्ज्ञा। पुष्पाणि स्पृहयति। (५७५) **क्रुध**

यहाँ उत्तमर्ण न होनेसे ग्रामको सम्प्रदानसंज्ञा नहीं जो उत्तमर्ण है उसको सम्प्रदानसंज्ञा हुई देवदत्ताय।

। ५७४। **स्पृह** धातुके प्रयोगमें **ईप्सितः**=सम्बन्धुमिष्टः जिसकी अभिलाषा इच्छा हैं उसको सम्प्रदानसंज्ञा हो, स्पृह ईप्सायाम् आप्तुं सम्बन्धुम् इच्छा ईप्सा (पानेकी अभिलाषा) चुरादिः अदन्तः। स्वार्थे णिच् अल्लोपके स्थानिवत् से लघूपधगुण नहीं। षष्ठी **स्पृहे**=ईप्यते इति ईप्सितः लाभविषयः पुष्प-आदिः। प्रयोगका अध्याहार। यथा—**पुष्पेभ्य स्पृहयति इत्यत्र** स्पृहधातुके सम्बन्धमें लाभ विषय इष्ट **पुष्पशब्दात् चतुर्थी। बहुवचने भ्यस् पुष्पेभ्यः सिद्धं रूपं पुस्तकाय** लेखनीभ्यः **स्पृहयति**। सूत्रमें **ईप्सितः क्यों** पढ़ा-लाभके विषयको सम्प्रदानसंज्ञा क्यों? इसलिएकि लाभके लिए वनमें इच्छा करता है। यहाँ **वनको** सम्प्रदानसंज्ञा **न हो**। बन आधार-अधिकरणे सप्तमी। अत्र शङ्का-यथा **पुष्पेभ्यः** स्पृहयति **इति वनति, तथा पुष्पाणि स्पृहयति इत्यपि वनतु आवश्यकं, परन्तु** स्पृह **सम्बन्धे चतुर्थी भविष्यति। पुष्पाणि न वनिष्यति, तदा कथितं मूले ईप्सितमात्रे इयं संज्ञा**। साधारणरूपसे लाभकी इच्छाके विषयमें उक्तसंज्ञा **होगी**। जहाँ ईप्सिततम अतिशय, प्रबल, प्रकर्ष इच्छाका विषय हो **तं वर्ज्य**=छोड़कर, तत्र **कर्तुरीप्सिततमं सूत्रेण पद्वत्वात्कर्मसंज्ञा भवति। पुष्पाणि स्पृहयति इत्यपि वनति**। पर मानकर कर्मसंज्ञाका फल—परस्परेण स्पृहणीयशोभं, स्पृहणीयगुणैर्महात्मभिः। यहाँ कर्ममें अनीयर प्रत्यय हुआ, यदि ईप्सित नहीं कहेगें, सम्बन्धमात्रकी विवक्षा होगी, तब सम्बन्धे षष्ठी पुष्पाणां स्पृहयति वनेगा। **कुमार्य इव कान्तस्य त्रस्यन्ति च स्पृहन्ति च**। कुमारियोंकी तरह प्रियके केश घने हैं। वाक्यपदीमें स्पृहके भोगमें कर्मसंज्ञाकी बाधिका शेष षष्ठी हेलाराजसे समर्थित। उनके मतमें कर्मसंज्ञा अबाधिता। केचित्कान्ताय स्पृहयन्ति।

। ५७५। **क्रुध क्रोधे** मुखविकृति असहनके अनुकूल क्रिया, द्रुह द्रोहे—अपकारके अनुकूल क्रिया। दोनों दिवादि श्यन्-विकरणः। ईर्ष्य ईर्ष्यायां

द्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः । १ । ४ । ३७ ॥ क्रुधाद्यर्थानां प्रयोगे यं प्रति कोपः स उक्तसञ्ज्ञः स्यात् । हरये क्रुध्यति, द्रुह्यति, ईर्ष्यति, असूयति वा । 'यं प्रति कोपः किम् ? भार्यामीर्ष्यति । मैनामन्योऽद्राक्षीदिति । क्रोधोऽमर्षः । द्रोहोऽपकारकः । ईर्ष्या अक्षमा । असूया

जलन अक्षमाकी जननी क्रिया । असूञ् उपतापे, गुणमें दोष निकालना कण्ड्वादिः । इन धातुओंके अर्थ इव अर्थो येषां धातूनां क्रुध आदि अर्थवाचक धातुओंके प्रयोगमें (**यं प्रति कोपः**) **जिस पर कोप है क्रोध द्रोह ईर्ष्या असूया है उसको सम्प्रदानसंज्ञा हो** । यथा **हरये क्रुद्ध्यति** रावणः कंसः कश्यपुश्च । यहाँ क्रोध, अमर्ष, असहनके कारण हरिके प्रति कोप घातेच्छा **समनियतः**= चित्तवृत्तिविशेषः, मारडालनेकी भावना भरी चित्तवृत्तिको कोप कहते है ।

हरि इत्यत्र षष्ठी प्राप्ता, तां बाधित्वा क्रुधद्रुह-सूत्रेण सम्प्रदानसंज्ञा चतुर्थी हरये । हरिविषयकं कोपं करोति । हरये द्रुह्यति, द्रोहो अपकारः स्थूल बुद्धिसे चारों शब्दोके समान अर्थ । सूक्ष्मभेदके लिए शब्दार्थ प्रस्तुतिः । **हन्तुमिच्छा जिघांसा भी द्रोह ही है** । कोपात् हरिविषयकम् अपकारं करोति विकृत चित्तवृत्तिसे हरिकी हानि चाहता है (अकर्मकः) षष्ठीको बाँधकर उक्तसूत्रेण सम्प्रदानसंज्ञा चतुर्थी च । परस्य कष्टजनिका क्रिया **अपकारः हरये ईर्ष्यति रावणादिः** । कोपसे हरिको बर्दास्त नहीं कर सकते । कर्मणि द्वितीया बाधकर चतुर्थी । **परसम्पत्तिका असहन अक्षमा । हरये असूयति** कंस, भगवानके परोपकार गुणोंमें दोषका आरोप करता है । सत्य आचरणमें दम्भका आरोप । कोपात् **हरिं दुर्गुणं मन्यते** । हरिके प्रति कोपसे असूया । हरिं सम्प्रदानसंज्ञादिः । अत्र शङ्का क्रुध द्रुह आदि स्थाने **चित्तदोषार्थानां सम्प्रदान**, यहीं पढ़ देते तन्न, **यो स्मान्द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः** अत्र चतुर्थी वारणाय । **अनभिनन्दनं द्विषेः अर्थः** । अतः अचेतनमें उक्तसंज्ञा नहीं होती । **औषधं द्वेष्टि देवदत्तः** । औषधमें चित्तदोष होनेपर भी चतुर्थी नहीं । सूत्रमें **यं प्रति कोपः** जिसपर क्रोध हो उसीको उक्तसंज्ञा क्यों ? इसलिए कि **भार्याम् ईर्ष्यति**में भर्याको सम्प्रदानसंज्ञा न हो । भार्याके प्रति कोप नहीं अपितु उसकी आकर्षक सुन्दरतापर कोई लट्टू आसक्त मोहित न हो जाय, उस आसक्तिके प्रति ईर्ष्या है । **अन्यो न पश्येत् भार्यां, गुणेषु दोषारोपणं करोति, मा एनामन्यो अद्राक्षीत्** । इसको दूसरा कोई देख न ले । चारो धातुओंका

गुणेषु दोषाविष्करणम् । द्रोहादयोऽपि कोपप्रभवा एव गृह्यन्ते । अतो विशेषणं सामान्येन 'यं प्रति कोपः इति । (५७६) **क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म । १ । ४ । ३८ ।।** सोपसर्गयोरनयोर्योगे यं प्रति कोपः तत्कारकं कर्मसञ्ज्ञं स्यात् । क्रूरमभिक्रुध्यति, अभिद्रुह्यति वा । (५७७) **राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः । १ । ४ । ३९ ।।** एतयोः कारकं सम्प्रदानं स्यात्, यदीयो विविधः प्रश्नः क्रियते । कृष्णाय राध्यदि, ईक्षते वा ।

अर्थ समझाया गया । ये क्रुध द्रुह इत्यादि कोपप्रभवा विकृतिः । चित्तवृत्तिरूप कोपसे उत्पन्न हो, तभी सूत्रमें लिए जाँय । यदि कोप मूलक नहीं है । तब चतुर्थी नहीं । **प्ररुढ़ तीव्र कोप ही क्रोध है । नहि अकुपितः क्रुध्यति ।** विना कोपके क्रोध होता नहीं । यदि ऐसा **कुप्यसि कस्मैचित्** अत्र चतुर्थी कथं ? नहि कोप प्रभवः, **यद्यपि कुपिरत्र न द्रुहेरर्थः**, तथापि **पत्ये शेते** इतिवच्चतुर्थी । **क्रियया यम् अभिप्रैति वार्तिकेन । सं० संज्ञा । एवं क्रुध द्रुहोर्ग्रहणं चिन्त्यम् ।**

। ५७६ । क्रुध द्रुह धातुके विषयमें विशेष नियम, **उपसृष्टयोः का अर्थ सोपसर्गयोः करते** है । उपसर्ग सहित **अनयोः**=क्रुध द्रुह धातुके प्रयोगमें जिसके प्रति कोप हो चित्तमें विकृति आये, उस कारकको कर्मसंज्ञा हो, **सम्प्रदानको** बाँधकर । हरि या कूर, क्रोध या द्रोहका उद्देश्य नहीं, क्रियया यमभिप्रैति नहीं, तादर्थे चतुर्थी नहीं, क्रुध द्रुहके अकर्मक होनेसे । किन्तु शेषषष्ठीका बाधकसूत्र **क्रुरमभिक्रुध्यति** । कठोर निर्दयी व्यक्तिको देखकर क्रोध करता है । उपसर्गसहित अभिक्रुधके प्रयोगसे क्रूरको कर्मसंज्ञा । **हरिमभि द्रुह्यति** हरिके समक्ष अपकारकारिणी सूर्पणखा । अत्रापि हरिमित्यत्र द्वितीया ।

। ५७७ । **राध संसिद्धौ** शुभ चिन्तन सिद्धि, सफलताजननीक्रिया, **ईक्ष**= शुभाशुभनिर्णायिका क्रिया । **एतयोः**=इन दोनों धातुओंके कारकको सम्प्रदानसंज्ञा हो । **यस्य यद्विषयकः यदीयः** जिसके सम्बन्धमें जिसका **विप्रश्नः**=विविधः प्रश्नः सौभाग्य दुर्भाग्यके सम्बन्धमें नानाप्रकारकी जिज्ञासा हो । यथा— **कृष्णाय राध्यति ईक्षते** वा कृष्णकी सिद्धिसफलता भाग्यके विषयमें समालोचन हानि लाभ, शुभ अशुभका प्रदर्शन पर्यालोचन निर्णयकी समीक्षा । अत्र कृष्णविषयकः विविधः प्रश्नः राध, ईक्ष धातुका प्रश्न होनेपर शुभ अशुभका

पृष्टो गर्गः शुभाशुभं नर्यालोचयतीत्यर्थः। (४७८) **प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता। १। ४। ४०॥** आभ्यां परस्य श्रृणोतेर्योगे पूर्वस्य प्रवर्तनारूपस्य व्यापारस्य कर्ता सम्प्रदानं स्यात्। विप्राय गां प्रतिश्रृणोत, आश्रृणोति वा। विप्रेण मह्यं देहीति प्रवर्तितस्तत्प्रतिजानीते इत्यर्थः। (४७९) **अनुप्रतिगृणश्च। १। ४। ४१॥** आभ्यां गृणातेः कारकं पूर्वव्यापारस्य कर्तृभूतमुक्तसंज्ञं स्यात्। होत्रेऽनुगृणाति, प्रति-

---

निर्णय लेना अर्थः। यस्य विप्रश्नःके प्रमाणसे। तेन कृष्ण इत्यस्य **सम्प्रदानसंज्ञा चतुर्थी च कृष्णाय** इति। गर्गः नामकः ज्योतिषशास्त्रज्ञाता ऋषिः कृष्णसम्बन्धमें विविध प्रश्नका उत्तर देते है। प्रश्नविषयक धातुके अर्थमें शुभ अशुभके भी संगृहीत होनेसे अकर्मकः। अतः (श्यन्) राध्यति। अन्यथा (**राधेः अमर्मकात् वृद्धौ एव**) नियमसे श्यन् न होता। षष्ठीका बाधक है।

। ५७८। **प्रति, आङ्,** से दिशा अर्थमें पञ्चमी, परका अध्याहार। श्रू श्रवणे विशेषण। ेरणासे स्वीकार, पूर्वशब्द प्रेरणा क्रियाका प्रस्तावक **प्रतिआङ्से परे श्रुधातुकेयोग**=सम्बन्धमें **पूर्वस्य प्रवर्तनारूपव्यापारस्य**=कहकर कार्यमें प्रवृत्तिकरानेकीं क्रियाके कर्ताको सम्प्रदानसंज्ञा हो। प्रतिआङ्को अलग-अलग बोलना इष्ट है। अतः द्वितीया। **विप्राय**–ब्राह्मणको माँगनेपर गोदानके लिए प्रेरणा, कि **"मह्यं देहि"** मुझे दीजिए ऐसा वि से कहे जाने पर दानकी प्रतिज्ञा करते है। प्रेरणा करने पर दान करना। **प्रवर्तितः प्रतिजानीते,** उकसानेपर देता हे। **आश्रृणोति** प्रति या आङ्पूर्वक श्रु धातुके योगमें गोदान स्वीकारके लिए **प्रेरकस्य कर्तुः विप्रइत्यस्य सम्प्रदानसंज्ञा चतुर्थी विप्राय** इति। अत्र विप्रकर्तामें तृतीयाको बाँधकर **"गवादि द्रव्यं मह्यं देहि" इति विप्रेण पृष्टःसन् देवदत्तः तुभ्यं ददामि इति स्वीकरोति।**

। ५७९। **अनुप्रति** पूर्वक गृणधातुके कारकको **पूर्वव्यापारस्य**=प्रशंसा (कुछ कहना) क्रियाके कर्ताको सम्प्रदानसंज्ञा हो। "पूर्वस्य कर्ता" अनुवर्तते (गृ शब्दे) धातुसे श्ना, उसका अनुकरण **गृणः** षष्ठी। यहाँ गृधातुका प्रशंसा करनेवालेको प्रशंसा विषयक प्रोत्सान करना अर्थः। पूर्वमें प्रशंसा क्रियाके कर्ताको सम्प्रदानसंज्ञा। आभ्यांमें द्विवचन एक-एकका धातुसे सम्बन्ध।

गृणाति वा। होता प्रथमं शंसति, तमध्वर्यु: प्रोत्साहयतीत्यर्थः। (५८०) **परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम्। १। ४। ४४॥** नियत कालं भृत्या स्वीकरणं परिक्रयणम्, तस्मिन्साधकतमं कारकं सम्प्रदान

होत्रे अनुगृह्णाति। प्रथम होता=हवनकर्ता शंसति कुछ विषय कहता है। **अध्वार्युः यज्ञरक्षक**–होताको उत्तरोत्तर स्वाहा आदि बोलनेके लिए बहुत उसकता है। हे **होतः त्वदीय शंसनानन्तरं तुष्यामि**। प्रोत्साहनसे होता को **कर्म** संज्ञा प्राप्त। प्रथम शंसनके प्रति कर्ताको **उक्तसूत्रेण सम्प्रदानसंज्ञा होत्रे। ओ अथ मोदस्व इति प्रतिगरमन्त्रः अनुगरमन्त्रः, ओ इति**। सम्बोधने हे होता तुम्हारे मन्त्रोच्चारणसे 'मोदै बहुत प्रसन्न हूं। मोहक उच्चारण करते रहो। श्रौतसूत्रोमें यह प्रयोग आता है। यज्ञके प्रथम अधिकारी का उत्साह दूसरा अधिकारीं अध्वर्यु प्रशंसाकर बढ़ाता है।

५८०। **परिक्रयणे** निश्चित समयतक पैसाके लोभसे भृत्या=नौकरी स्वीकारो कराना परिक्रयण है। उसमें **साधकतमं**–प्रबल कारण साधनरूपकारककी सम्प्रदानसंज्ञा हो, **अन्यतरस्यां**= विकल्पसे। **तुभ्यमेतावद् वेतनं दीयते तत्स्वीकुर्वन् एतावन्तं कालं त्वं मम कर्मकरः सेवको भव**। तुम्हे इतना वेतन मिलेगा इतने समयतक कार्य करो। द्रव्य देकर निजींअधिकार स्वीकार करना क्रय है। जैसे-मकान **खरीदा** । जब परि उपसर्ग लगेगा तब किराये पर लेना भी अर्थ होगा। निश्चित काल तक नौकर रखना। यथा **शतेन शताय वा परिक्रीतः भृत्यः परिक्रयणे**=खरीदनेमें **साधकतमं शतम् अस्ति। तत्र सम्प्रदानसंज्ञा चतुर्थी यदा सा न, तदा करणे तृतीया शतेन** इति। चाहे सौ रुपये हो या सुवर्ण, पञ्चशतेन पञ्चशताय वा परिक्रिता गौः। (वा०) **तादर्थ्ये=तस्मै कार्यायइदं तदर्थं कारणम्**। किसी कार्यके लिए जो साधन है (अर्थके साथ नित्यसमान तदर्थस्य भावः (उस साधनके भावःसत्ता उपस्थितिः तत्वं) **तादर्थ्यं** ब्राह्मणादिगण मानकर ष्यञ्। जो भाव अर्थमें हुआ है, सम्बन्ध अर्थमें होंगे। **कृतद्धितसमासेभ्यः सम्बन्धभिधानं भाव प्रत्ययेन** कृत्तद्धित समाससे भाव विशेषण अर्थमें जो प्रत्यय हैं उनका सम्बन्ध अर्थः। वह सम्बन्ध अनेक प्रकारका है। केवल कार्यकारणभाव हो नहीं, किन्तु उपकार्य उपकारकसम्बन्धभी इष्ट है जो उपकारके योग्य है, उसीसे चतुर्थी उपकारकसे नहीं। भाष्य में **यूपाय दारुः, कुण्डलाय हिरण्यम्** उदाहरण।

संज्ञं वा स्यात्। शतेन शताय वा परिक्रीतः। 'तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या (वा १४५८)। मुक्तये हरिं भजति। 'क्लृपि सम्पद्यमाने च, (वा १४५९)। भक्तिर्ज्ञानाय कल्प्यते, सम्पद्यते, जायते इत्यादि।

यूप=स्तम्भ यज्ञका खम्भा, खूंटा उपकारके योग्य है। उससे चतुर्थी **यूपाय** दारु लकड़ी उपकारक साधन है उससे नहीं। सुवर्ण उपकारक हे किन्तु उपकार्य कुण्डलसे चतुर्थी। इसी भावका भावपूर्ण उदाहरण **मुक्तये हरिं भजति**। मोक्षके लिए भगवानको भजता हे। उपकार्य मुक्ति हैं। उपकारक भजन जन्यजनक सम्बन्ध भी तादर्थ्यका अर्थः। मुक्तिर्जन्या। **तादर्थ्ये चतुर्थी मुक्तये इति**। प्राप्यप्रापकसम्बन्धभी **दयालवे दधि दीयतां,** पेट विगड़ा है उपकारक दही है, प्रापक है और दयालु उपकार्य प्राप्यसे चतुर्थी। जिससे दयालुका उपकार कल्याण है। उपकारकसे चतुर्थी न होनेसे, दारु दधि हरि आदिसे चतुर्थी नहीं हुई। यदि ऐसा तब सभी उपकार्यसे वार्तिक द्वारा चतुर्थी होगी। चतुर्थी सम्प्रदानमें सम्प्रदानसंज्ञा विधान व्यर्थ होगा। तन्न-**हरये रोचते**के लिए आवश्यक। विप्राय गां ददातिमें भी तादर्थ्य चतुर्थी नहीं मिलेगी। (वा०) **क्लृपि=कल्पनं विकारात्मना उत्पत्तिः। सम्पदादिः भावे क्वपि**। बदलना क्रिया अर्थः। **सम्पद्यते**=सम्पूर्वक पदधातुका विकारात्मा अर्थः। जैसे=दूधका विकारात्मा **दधि, भक्तिका विकारात्मा** ज्ञान। च-से जायते प्रादुर्भाव अर्थ। क्लृपि धातुका प्रयोग होनेपर सम्पद्यमान अर्थ है, सम्पद्यते अभूत पूर्व प्रादुर्भाव हो जिसका, ऐसे विकाररुप या विकारवाचक शब्दसे चतुर्थी हो। प्रादुर्भवति उत्पन्न होता है। यथा **भक्तिः भजनभावः ज्ञानाय कल्प्यते–परिणमते**। ज्ञानके रूपमें बदलती है, या **भक्तिः सम्पद्यते** ज्ञानरूपविकारको प्राप्त हो रही है, या जायते ज्ञानरूपमें प्रादुर्भावको प्राप्त है। कल्पना, सम्पत्ति, जन्यता ज्ञानमें। उसीसे चतुर्थीका परिणाम ही मुख्य अर्थः। अन्यथा तादर्थ्ये चतुर्थी सम्भव था। जहाँ प्रकृति-विकृतिमें भेद इष्ट हो वहाँ विकृतिसे चतुर्थी। जहाँ अभेद हो वहाँ परत्वात्प्रथमा। वि तिषेधे परं कार्यम्। भक्तिर्ज्ञानं, ज्ञानमें चतुर्थी नहीं हुई, क्योंकि भक्तिज्ञानमें अभेद है। क्लृपि अर्थप्रधान है। अतः सम्पद्यते जायते भी कहा। (वा०) **उत्पातेन**–उत्पात् का अर्थ है। प्राणियोंके शुभ या अशुभ सूचक आकस्मिक अनायास भूतविकार

'उत्पातेन ज्ञापिते च' (वा०१४६)। वाताय कपिला विद्युत्। 'हितयोगे च' (वा १४६१)। ब्राह्मणाय हितम्। [५८१] **क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः २ ३ १४॥** क्रियार्था क्रिया उपपदं

क्षोभ, प्रकृतिमें रङ्ग बदलसे (ज्ञापिते सूचिते) शुभ अशुभ सूचक अर्थमें वर्तमान शब्दसे चतुर्थी कहें। प्रकृतिका स्वाभाविक रूप बदलना ही उत्पात है। उससे शुभकी सूचना मिलती है। यथा **वाताय कपिला विद्युत**=भूरेरङ्गका आकाश तूफानी आँधो झञ्झावातकी सूचिका। वातायमें चतुर्थी, जो उत्पात प्रकृतिमें विकारसे ज्ञापित सूचित है।

वाताय कपिला विद्युद्, आतपायाऽतिलोहिनी।
पीता वर्षाय विज्ञेया, दुर्भिक्षाय सिताऽभवत्॥

लोहिनी=लालरंगकी विजली आतपाय तीव्र धूप घोरघामके लिए। **पीली**—विजली वर्षाके लिए, **सितां** सफेद दुर्भिक्ष अकालकी सूचना देती है। (वा०) **हितयोगे**=हितशब्दके सम्पर्कमें जिसका हित सुख रक्षा होनी हो उससे चतुर्थी कहें। चतुर्थीतदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः सूत्रके समासविधानसे चतुर्थीकी कल्पना। यदि हितके योगमें चतुर्थी होगी तभी समास भी होगा। सूत्रकारभी **तस्मै हितं सूत्रमें** हितके योगमें तस्मै चतुर्थी कहे। **अरोचनिके हितं** भाष्यप्रमाणम्। **च**—पदसे बलिसुखरक्षितके सम्बन्ध में भी चतुर्थी। **प्रज्ञादिः ब्रह्मारण्स्य सुखकृत्।**

। ५८१ ।—**क्रियार्थां** क्रिया उपपद पूर्वसमीपमें 'रहे उसके स्थानीका अप्रयुज्यमान-प्रयोग न हुआ हो तब तुमुन्प्रत्ययके कर्म अर्थमें चतुर्थी हो। यथा—**फलेभ्योः याति** (फलोको लाने जाता है) उचित वाक्य **फलानि आहर्तुं याति** है। जानाक्रिया आहरण=फल लानेके लिए होनेसे क्रियार्था हुई। **फलेभ्योः याति**में तुमुन्स्थानी आहर्तुंका प्रयोग नहीं है। उसका कर्म फलानि उससे **फलानि इत्यत्र क्रियार्थोपपदस्य चतुर्थी फलेभ्यः। विशेषार्थः- क्रिया अर्थः प्रयोजनं यस्याः सा क्रियार्था** क्रियाका अध्याहार जाना, लाना, क्रियाके लिए है। गमनक्रियाका उद्देश्य (अर्थ प्रयोजन) फल लाना क्रिया है। फलजनक क्रियावाचक क्रियार्था=गमन क्रिया। वह उपपद हो। **उपोच्चारितं** समीपमें कहा पद उपपदं, तुमन्का विशेषण। यातिक्रियाके

यस्य तस्य स्थानिनोऽप्रयुज्यमानस्य तुमुनः कर्मणि चतुर्थी स्यात्। फलेभ्यो याति। फलान्याहर्तुं यातीत्यर्थः। नमस्कुर्मो नृसिंहाय। नृसिंहमनुकूलयितुमित्यर्थः। एवं 'स्वयम्भुवे नमस्कृत्य' इत्यादावपि।

पूर्वभागमें आहर्तुं पद उच्चारित है। तुमुन् उपपद। यद्यपि क्रिया उपपद हो यह सम्भव है तथापि क्रियावाचक शब्द द्वारा उपपद सम्भव। स्थानिनः भी तुमुन्में विशेषण, स्थानं प्रसङ्गः अस्ति अस्य स्थानी, तुमुन्का प्रसङ्ग, उसका स्थानी आहर्तुं या क्त्वा, उसका प्रयोग अदृष्ट है। प्रयुज्यते असौ=वाक्यमें प्रयोग हो, **न प्रयुज्यतेऽसौ अप्रयुज्यमानः तस्य**। प्रयोग न किये हुएके **तादृशस्य** तुमुनन्तस्य=ऐसे तुमुन्प्रत्ययान्त (आहर्तुं) के कर्मसे चतुर्थी हो। **तुमुन्ण्वुलौ** क्रियायां क्रियार्थायां सूत्रमें तुमन् विधानसे क्रियाफल हो जिसका, ऐसा उपपद (याति) क्रियावाची ही लभ्यते। स्थानिनःका व्याख्यान अप्रयुज्यमानस्य है। फलानि आहर्तुम्। तुमुन् प्रत्ययान्त फलेभ्यो यातिमें समझें। फल लेनेके लिए गमनक्रिया, द्वितीयाको बाँधकर चतुर्थी। यहाँ फल कर्मक आहरणक्रियाके लिए गमनक्रिया है। केवल फलार्था नहीं। ण्वुल् भी उपलक्षण है **फलानि आहर्तुं याति** फलेभ्यःका विवरण है। स्थानीका प्रयोग नहीं देखा जाता। क्योंकि वह आदेशसे अपहृत हो गया है। **युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः** में भी स्थानिन पदका अप्रयुज्यमान अर्थ लिया गया। (ई के स्थानमें यण होनेपर 'ई–य' प्रयुज्यमान है) यहाँ द्वितीयाको बाँधकर हुई चतुर्थीका आहर्तुं अर्थ सिद्ध हुआ। अन्य उदाहरण **नमस्कुर्मो नृसिंहाय**, नृसिंह भगवानको अनुकूल करनेके लिए हम सब दण्डवत् करते है। तुमुन्प्रत्ययान्तका अध्याहार दिखलाते है **नृसिंहम् अनुकूलयितुं** भगवानको अनुकूल करनेके लिए नमस्कार क्रिया क्रियार्था हुई। उसका उपपद अनुकूलयितुं जो प्रयोगमें अप्रयुज्यमान है दृष्ट नहीं। उसका कर्म नृसिंह, प्राप्तद्वितीयाको बाँध कर **उक्तसूत्रेण चतुर्थी नृसिंहाय। न चात्र नमः स्वति स्वाहा स्वधा सूत्रेण चतुर्थी भविष्यति, इदं सूत्रं किमर्थं तन्न, उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी-मुनित्रयं नमस्कृत्य** इतिवत्। एवं **स्वयंभुवे नमस्कृत्य स्वयम्भूवम् अनूकूलयितुं** स्वयं होनेवाले भगवानको अनुकूल करनेके लिए नमस्कार करके। प्रयोग न किये गये तुमुनन्त प्रत्यय अनुकूलयितुं के कर्म स्वयम्भुवंसे चतुर्थी। इस सूत्रका उदाहरण जहाँ तुमुन्प्रत्ययान्त शब्द हो किन्तु उसका अर्थ होता है।

[५८२] **तुमर्थाच्च भाववचनात् २ ३ १४ ।।** 'भाववचनाश्च, [सू० ३१८०] इति सूत्रेण यो विहितस्तदन्ताच्चतुर्थी स्यात्। यागाय याति। यष्टुं यातीत्यर्थः। [५८३] **नमः स्वस्तिस्वाहास्व-**

। ५८२। **तुमर्थात्=तुमुन्प्रत्ययस्य अर्थ इव अर्थो यस्य प्रत्ययस्य स प्रत्ययः तुमर्थः तस्मात्** भा**ववचनात्=भावः क्रिया, उच्यते अनेन वचनः भावस्य वचनः भाववचनः तस्मात्** । तुमुन्प्रत्यय भाव–क्रिया अर्थमें होता है। उसकी तरह अर्थ हो, जिस प्रत्यय का, घञ् ल्युट् भी क्रिया अर्थमें होते है। **क्रिया वाचिनः प्रत्ययात्**=तुमुन्ण्वुलौ **क्रियया क्रियर्थायां** सूत्र है जिसका अर्थ क्रियाके लिए क्रिया उपस्थित हो तब भविष्यकाल अर्थमें तुमुन्ण्वुलप्रत्यय हो। यथा **भोक्तुं व्रजति** खाने के लिए जाता है **भोजकः** खाने वाला व्रजति। भविष्यकालिक भोजन क्रियाके लिए गमनक्रिया। **उपपद=तथा च 'अव्ययकृतो भावे'** अव्ययशब्द और कृत्प्रत्यय भाव अर्थमें हों। इस सूत्रसे क्रिया अर्थ में तुमुन् का विधान तुमुन्से भाववचन अर्थ निकलता ही सूत्रमें पुनः क्यों पढ़ा ? किसी सूत्र निर्देश के लिए। भाववचनाश्च सूत्रपर संकेतके लिए भावेके अधिकारमें क्रियार्था क्रियाके उपपद रहते घञादिप्रत्यय। भाववचनाश्च सूत्रसे विधान किया गया प्रत्यय अन्तमें हो उससे चतुर्थी हो जाय। यथा **यागाय याति** का यष्टुं यज्ञ करनेके लिए जाता है। यहाँ गमन क्रिया क्रियार्था यज्ञ क्रियाके लिए। यागः शब्दसे भावअर्थमें **घञ्प्रत्ययः तदन्त याग इति, तुमर्थाच्च सूत्रेण चतुर्थी**। यागाय **यद्यपि तादर्थ्ये चतुर्थी सम्भवा, तथापि** तादर्थ्य–तुमुन् की तरह घञ् से भी प्रकाशित है। **उक्तार्थानामप्रयोगः** न्यायसे **चतुर्थी अप्राप्ता, प्रथमा प्राप्ता, तदा इदं सूत्रम्**। तुमर्थ क्यों पढ़ा ? पाकः त्यागः पचनं त्यजनं अर्थमें, घञ्भावेंके अधिकार में है चतुर्थी न हो। क्रियार्था क्रिया न होने से तुमर्थ अमान्य। भाव-वचन क्यों पढ़ा ? **पाचको व्रजति** पकानेवाला जाता है। यहाँ चतुर्थी न हो जाय। यद्यपि अक तुमर्थ है, किन्तु भावेके अधिकारमें न पढ़े जानेसे न चतुर्थी। तादर्थ्य चतुर्थी भी नहीं। किन्तु उक्ते प्रथमा। **इति चतुर्थीकारकम्**।

अथ पदसम्बन्धे चतुर्थी=पदके सम्बन्धमें होने वाली विभक्तियोंका प्रसङ्ग प्रस्तुत करते है। जिनका सम्बन्धमात्र अर्थः। जिन पदोंके सन्बन्धमें चतुर्थी होती है उनमें। ५८३। **नमः**=नमस्कार **स्वस्ति**=सु शोभनम् अस्ति मङ्गल हो,

धाऽलंवषड्योगाच्च । २ । ३ । १६ ।। एभिर्योगे चतुर्थी स्यात् । हरये नमः । 'उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी' (प १०३) नमस्करोति देवान । प्रजाभ्यः स्वस्ति । अग्नये स्वाहा । पितृभ्यः स्वधा ।

स्वाहा=देवताओंको दान का सूचक ध्वनि । **स्वधा**=पितरोंको देनेका सूचक शब्द । **अलं समर्थ शक्त** पूर्णनिषेध । **वषट्**=देवताओं को दान का शब्द । **एभिर्योगे**=नमः स्वस्ति आदि के सम्बन्धमें प्रभावित सम्बन्धी से चतुर्थी हो । युज्यते **सम्बध्यते असौ योगः सम्बन्धी विषयः ।** यथा **हरये नमः** हरि का उद्देश्यत्व सम्बन्ध से नमस्कार में अन्वयः । **अत्र नमः पदसम्बन्धे हरि इत्यत्र नमः स्वस्ति सूत्रेण चतुर्थी । क्रियाकारक सम्बन्धः, तादर्थ्ये**–हरि के लिए नमस्कार अर्थमें चतुर्थी क्यों नहीं होती ? उपकार्य उपकारक सम्बन्ध ही तादर्थ्य, तस्मिन्शेषत्व (सम्बन्ध) विवक्षामें षष्ठी निरोधके लिए चतुर्थी तादर्थ्यमें भी है । जब शुद्ध सम्बन्ध रहेगा, तब षष्ठी **गुरोः इदं गुर्वर्थम् ।** गुरु की वस्तु । वह तादर्थ्य शेषत्वकी विवक्षामें नमः स्वस्ति आदिपद के रहते चतुर्थी ही हो इसलिए सूत्र पढ़ा । अत्र सन्देहः **यदि नमः शब्दसम्बन्धे चतुर्थी कथ्यते, तदा नमस्करोति देवान्** इत्यत्र नमः **शब्दसम्बन्धे चतुर्थी प्राप्नोति** (जहाँ जहाँ नमः पद रहेगा वहाँ–वहाँ नमस्कार्यसे चतुर्थी प्राप्त है) **तदा कथितं मूले उपपदविभक्तेः (से) कारकविभक्तिर्बलीयसी । अतिशयेन प्रबला । पदान्तर्योगनिमित्तिका ।** दूसरे पदके सहारे होनेवाली विभक्ति उपपद है । उसकी अपेक्षा क्रियाके सम्बन्ध में होनेवाली कारकविभक्ति बलवती है । यह न्यायसिद्ध परिभाषा अन्तरा अन्तरेण युक्ते सूत्र पर पढ़ी गयी है । क्यों प्रबल है ? इसलिए कि क्रियाकारकका सम्बन्ध **अन्तरङ्ग**=परिवार रिश्तेदार जैसा है । **अन्तः अतिनिकटम् अङ्गं प्रयोजनं यस्य** यह सन्बन्ध स्पष्ट रहता है । केवल भावमात्र सम्बन्ध प्रदर्शन करनेवाली उपपदविभक्ति **बहिरङ्ग** है इति कैयटः । अन्य का मत है कि उपपद विभक्तिसे सामान्यसम्बन्ध होता है । विशेष सम्बन्ध प्रकरणके पर्यालोचनसे । कारकविभक्तिसे शीघ्र ही कर्मत्व आदि सम्बन्ध खुल जाते हैं , अतः सा **बलीयसी । देवान् नमस्करोति** सम्पुटित हाथको सिरसे लगाकर देवता को तुष्ट प्रसन्न करता है । **यतः कारकविभक्तिर्बलवती, अतः कर्मसंज्ञा द्वितीया च । बहुवचने शसिरूपं देवान् । नमः योगे चतुर्थी बाधित्वा । प्रजाभ्यः स्वस्ति**

'अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम्' [वा १४६२]। तेन दैतेभ्यो हरिरलं, प्रभुः, समर्थः, शक्त इत्यादि। प्रभ्वादियोगे षष्ठ्यपि साधुः। 'तस्मै प्रभवति —' [सू १७६५] 'स एषां ग्रामणीः, [सू १८७८] इति निर्देशात्। तेन 'प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य' इति सिद्धम्। वषडिन्द्राय चकारः पुनर्विधानार्थः। तेनाशीर्विवक्षायां परामपि 'चतुर्थी चाशिषि —' [सू ६३१] इति षष्ठीं बाधित्वा चतुर्थ्येव भवति। स्वस्ति

प्रजा सम्बन्धी कुशल कल्याण हो, **स्वस्ति योगे सम्बन्धे अर्थे चतुर्थी प्रजाभ्यः इति।** **अग्नये स्वाहा** अग्निको उद्देश्य करके हवन सामग्रीका दान। क्रिया-कारकसम्बन्ध। **पितृभ्यः स्वधा** पितरोंके लिए द्रव्यदान, स्वधायोगे सम्बन्धे अर्थे चतुर्थी। सूत्रमें अलंको पर्याप्ति अर्थमें वर्तमान समझना चाहिए। **दैत्येभ्योः हरिः अलं**, दैत्योंके लिए भगवान् पूर्ण, प्रभावी समर्थ तुलनेवाले सशक्त इनके सम्बन्धमें भी दैत्योंसे चतुर्थी। नहीं तो स्वं रूपं सूत्रसे अलंशब्द जहाँ रहे वहीं चतुर्थी होती तो कुमारीण ाम् अलङ्काराः। यहाँ जातिव्यक्तिमें दोष होता अलंकी तरह प्रभुः समर्थः शक्तके सम्बन्धमें भी चतुर्थीके लिए बोले-**अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम्**। **प्रभ्वादियोगे=प्रभुः समर्थः इत्यादि** शब्दसे प्रभावित सम्बन्धित से षष्ठी, अपि–भी शुद्ध है। चतुर्थी भी, **तस्मै प्रभवति**। प्रपूर्वक भूधातुसे सम्बन्धित 'तस्मै' में चतुर्थी। षष्ठी होनेमें सूत्रप्रमाण, स येषां ग्रामणीः समर्थः वाक्यमें येषां दर्शनसे। यदि ऐसा, तब **दैत्येभ्यः प्रभुः** आदिसे चतुर्थी न होकर षष्ठी हो जायगी। अलं शब्दके पर्याप्ति अर्थसे, अन्यअर्थ षष्ठी ही होगी अतः मूलमें कहा **तस्मै प्रभवतिके** प्रमाणसे चतुर्थी भी होगी। माघकविने (प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य) तीनों लोकका स्वामी प्रभावी बनना चाहता है। यहाँ भी प्रभुके प्रभावसे त्रयस्यमें षष्ठी दृष्ट है। **इन्द्राय वषट्**। वषट् अव्ययके योगमें चतुर्थी। जिसका इन्द्रके लिए हवनीयवस्तुका दान अर्थः इन्द्राय इति। **योगाच्चमें** चकार क्यों पढ़ा ? क्योंकि **स्वस्ति गोभ्यो भूयात्** आशीर्वाद वाक्यमें चतुर्थी इष्ट ही है, होगी ही तत्र, **चतुर्थी चाशिष्यायुष्य** इत्यादि सूत्रसे पर षष्ठीका प्रबल प्रसङ्ग होगा। उसके निरोधके लिए चकारः–पुनर्विधानमर्थः प्रयोजनं यस्य पुनः चतुर्थी विधानके लिए चकार पढ़ा। तेन=पुनर्विधान-सामर्थ्येन **आशीर्विवक्षायां** शुभ कल्याण कहनेकी स्थितिमें **परामपि**=चतुर्थीकी अपेक्षा षष्ठीका विधान, बिप्रतिषेधे परं कार्यके बलपर प्राप्त षष्ठीको बाँधकर

गोभ्यो भूयात्। [५८४] **मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु। २। ३। १७॥** प्राणिवर्जं मन्यतेः कर्मणि चतुर्थी वा स्यात्तिरस्कारे न त्वां तृणं मन्ये, तृणाय वा। श्यना निर्देशात्तानादिकयोगे न। न त्वां तृणं मन्वे। अप्राणिष्वित्यपनीय 'नौकाकान्नशुकशृगालवर्जेष्विति वाच्यम्, (वा १४६४)। तेन 'न त्वां नावमन्नं वा मन्ये' इत्यत्रा-

---

चतुर्थीएव-ही होगी।

। ५८४। **मन्यकर्मणि**। मन ज्ञाने, दिवादिधातुः श्यन्के कर्म (फलाश्रय) अर्थमें चतुर्थी हो **अनादरे=तिरस्कारे अपमाने। अनादरः परिभवः परीभावस्तिरस्क्रिया इत्यमरः। अप्राणिषु=प्राणः चेतनं अस्ति अस्मिन्निति प्राणी,** चेतन जीवात्मा, तेषु प्राणिषु, न प्राणिषु। वह कर्म जिसको चतुर्थी होनी है कोई चेतन न हो, द्वितीयाको बाँधकर पक्षे चतुर्थी। यथा **न त्वां तृणं**, हे मैत्र ! त्वां तृणत्वेनापि न मन्ये। तुझे तृण तुल्य, तिनकाके बराबर भी नहीं मानता। **त्वं तृणादपि अधमोऽसि। अतिशयतिरस्कारः फलितः।** यह अर्थ नञ्से निकला। यह सामान्य विशेष अर्थके लिए **मन्यकर्मण्यनादरे-सूत्रेण विकल्पेन चतुर्थी तृणाय।** वा से तृणसाम्यमेव प्रतीयते, तृणकी दरावरी खुलती है। उससे भी अपकृष्टत्व अधमता है। इसी अभिप्रायसे भाष्यमें नमः पढ़ा। अन्यथा तृणं त्वां मन्ये, तृणाय वा इतना ही पढ़ते। तृणकी तरह त्वां (युष्मद) से चतुर्थी क्यों नहीं? इसलिए कि तृणसे अनादरअर्थ प्रकाशमें आता है, त्वांसे नहीं। ठीक है, नञ प्रयोग के विषयमें अपकृष्य (**कुत्सित ग्रहणं कर्तव्यम्**) निकृष्ट अर्थमें चतुर्थी कहें। इस वार्तिकसे सिद्ध है कि जिससे चतुर्थी, उससे ी निकृष्ट अधम अर्थ कहना हो, कुत्सा या नञसे कहे गये हों, तब भी। तृके समान कहना हो तव नहीं। वैसी निन्दा नञके प्रयोग से शीघ्र खुलती है। **श्यना**=शपके स्थानमें श्यनका निर्देश उच्चारण होनेसे तनादिगणका मनु अवबोधने (समझमें आनेकी क्रियावाला) मन धातुके कर्मसे द्वितीया ही होगी, चतुर्थी नहीं। वह श्यन् दिवादिगण पठित सभी धातुओंका उपलक्षण बोधक भी है। यथा **तृणाय मत्वा रघुनन्दनोऽपि बाणेन रक्षः प्रधनान्निरास्थत।** भट्टि प्रयोगमें सङ्गति **न त्वां तृणं मन्वे।** यहाँ तृणमें चतुर्थी नहीं हुई। श-विकरण लट् उत्तमपुरुष एकवचन मन्वे। सूत्रमें अप्राणिषु

ऽप्राणित्वेऽपि चतुर्थी न। ,न त्वां शुने मन्ये' इत्यत्र प्राणित्वेऽपि भव, त्येव। (५८५] **गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि** । २ । ३ । १२ ॥ अध्वभिन्ने गत्यर्थानां कर्मण्येते स्तश्चेष्टायाम्। ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति। चेष्टायां किम् ? मनसा हरिं व्रजति।

इतना अंश अपनीय=अलग करके उसमें (वा०) **नौ**–नौका **काक**–कौआ **अन्न**=खाना शुक–तोता शृगाल इनको भी **वर्जेषु**=छोड़करके चतुर्थी हो। इसका फल यह हुआ कि **न त्वां नावं मन्ये**। नौका प्राणी नहीं है। फिर भी चतुर्थी नहीं, वार्तिकके निषेधसे। जीर्ण शीर्ण टूटी फूटी नौकाके प्रति यह वचन, द्वितीया ही हुई। कुत्सित अशुद्ध, कीड़े पड़े अन्नके प्रति **नत्वा अन्नं मन्ये** मै तुझे खाने लायक मानता ही नहीं। दोनों स्थलमें द्वितीया ही हुई। **चतुर्थ्याः** वार्तिकेन निषेधः। **हे मैत्र त्वां श्वदरेनापि** कुत्तेके बराबर भी नहीं मानता। यहाँ प्राणीके कर्म होनेसे वार्तिककी कृपासे अप्राणिषु निषेध नहीं लगा। इसीप्रकार **न त्वां काकं मन्ये, शुकं मन्ये, शृगालं मन्ये** में तुम्हें कौआ तोता सियारके बराबर भी नहीं मानता, क्योंकि तुम उनसे भी अधम हो। प्राणी चेतन होनेसे चतुर्थी न।

। ५८५। **गत्यर्थ**=शरीरका स्पन्दन चेष्टा ज्ञान-गमन-प्राप्ति मोक्षके अनुकूल क्रियाके कर्ममें प्राप्त द्वितीयाको बाँधकर चतुर्थी हो, द्वितीया भी। **चेष्टायां**=क्रियाशीलता बनी रहे। **अनध्वनि**=अध्वा मार्ग पगडण्डी, सड़कपर गमन क्रिया न हो तब। अतः वृत्तिमें कहा **अध्वभिन्ने**=रास्ता अर्थसे अलग कहीं, गति अर्थमें क्रिया हो, उसके कर्मको **ऐते स्तः**=ये दोनों हो, चेष्टायां= क्रियाशीलताकी दशामें। यथा **ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति** गाँवमें जाता है गमन-क्रियाका कर्म **ग्राम इत्यत्र चतुर्थी द्वितीया च भवतः**। ग्राम रास्ताका नाम नहीं है। गत्यर्थ न कहते—**ओदनं पचति**में चतुर्थी होती। कर्मणि कहनेका फल=**अश्वेन ब्रजति**में तृतीयाको बाधकर चतुर्थी का न होना। चेष्टा बाह्यक्रिया शीलता अर्थ क्यों ? इसलिए कि मनसा हरिं भजति, मनसे हरि भजन करता है। शरीरकी क्रिया न होनेसे हरिमें चतुर्थी नहीं, किन्तु द्वितीया यहाँ मनकी क्रिया है शरीरकी नहीं। अनध्वनिमें अध्वा शब्दका ही ग्रहण इष्ट नहीं। सप्तमोसे अर्थ भी लें, अर्थ ही कर्म सम्भव, शब्द नहीं। अध्वाके

अनध्वनि' इति किम् ? पन्थानं गच्छति । गन्त्राऽधिष्ठितेऽध्वन्येवायं निषेधः । यदा तूत्पथात्पन्था एवाक्रमितुमिष्यते तदा चतुर्थी भवत्येव । उत्पथेन पथे गच्छति　। —०— इति उपपदचतुर्थी —०—

_ अथ पञ्चमी *_*　(५६८) ध्रुवमपायेऽपादानम् १ । ४ ।

अर्थमें सभी शब्दोंसे कर्म निषेध, अतः **पन्थानं गच्छति** प्राप्नोति । अध्वाके अर्थमें पन्थानंमें चतुर्थीका निषेध हुआ । **आस्थितप्रतिषेधो वक्तव्यः** । क्रियाकी दशामें वर्तमान रहे तभी निषेध मान्य । किस वार्तिकका अर्थ बोल रहे है ? **गन्त्राऽधिष्ठिते**=गमनकर्तासे अधिष्ठित आक्रान्त आश्रयभूत अध्वा हो तभी निषेध यथा **पन्थानं गच्छति अध्वानं प्राप्नोति** गमन या प्राप्तिका आश्रय होनेसे चतुर्थीका निषेध । इस अर्थका फल क्या है तब बोले–**यदा तु**=जिसकालमें **उत्पथात्**=भ्रष्टमार्गात् (जैसे जौनपुर जाना था भ्रमसे काशी चले गये) **प्रत्युत मार्गान्तरं प्रविष्ट । पन्था एव आक्रमितुं**=पुनः सही रास्ते पर आना चाहता है तव चतुर्थी होतीं ही है, अनध्वनिके निषेधसे । यथा **तादृशं लक्ष्यं दर्शयति उत्पथेन पथे गच्छति** । भ्रष्ट मार्गपर जाता है जौनपुर पहुंचनेमें अशक्त असमर्थ है उस मार्गपर चल नहीं पा रहा है अनध्वनि निषेध नहीं लगेगा, चतुर्थी होगी ।

इस पाठमें सत्रह सूत्र आठ वार्तिक है । उनमें दश और एक सम्प्रदानसंज्ञा करते है किसी कर्मको सम्प्रदान विधान करते हैं' एक सूत्र सम्प्रदानको बाँधकर कर्मसंज्ञा, एक वार्तिक कर्मको करण, सम्प्रदानकी कर्मसंज्ञा, केवल चतुर्थीका विधान, ६ सूत्र ४ वार्तिक करते है सम्प्रदान कर्म करणमें एक–एक सूत्र चतुर्थी करते है चार सूत्र कारक विभक्तिके विधायक है, दो सूत्र चार वार्तिक उपपदविभक्ति के उपासक है　—०— । **इति चतुर्थी** । —०—

_ **अथ पञ्चमी विभक्तिः** *_* । ५८६ । **ध्रुवं=ध्रु–गतिस्थैर्ययोः** । गमन और स्थिरता वाचक ध्रुधातुसे पचादिः अच् कुटादिः ङित्, उवङ् **ध्रुवं का दो अर्थ गतिशील और स्थिर । कुड्यात्पततो अश्वात्पतति** दीवालसे गिरते घोड़ेसे गिरता है । दीवाल स्थिर ध्रुव है, घोड़ा गतिशील । ध्रुवको **अपाये**=अप=पृथक् अयनं भवनमपायः विश्लेषः विभागो वियोगः अलगाव **तस्मिन्साध्ये**=उस विभाग वियोग अलगावके रहते जो अवधि भूत ध्रुव स्थिर या गतिशील हो उस

। २४। अपायो विश्लेषः तस्मिन्साध्ये ध्रुवमवधिभूतं कारकमपादानं

कारक को अपादानसंज्ञा हो। एकस्थलमें दो वस्तु या व्यक्ति संयुक्त=संयोग सम्बन्धसे हों। एकके अलगावसे विभागकी स्थिति बनी। जिससे अलग होना है उसको ध्रुव कहते है। अथवा प्रकृत धात्वर्थानाश्रयत्वे **सति तज्जन्यविभागाश्रयत्वं ध्रुवत्वं**, प्रसङ्ग के धातुका अर्थ–क्रियाका आश्रय न हो, किन्तु उस क्रियाजन्य अलगावका आश्रय, सीमा, अवधि ध्रुव हो। **वृक्षात्पर्णं पतति**। पेड़ से पत्ती गिरती है पत धातुका अर्थ पतन–गिरनाक्रिया पत्तीमें है, पेड़में नहीं, किन्तु पेड़से पत्तीका अलगाव पतनक्रिया के कारण है अलगाव का आधार पेड़ ध्रुव हुआ। ध्रुवके विषयमें श्री भतृहरिकी कारिकायें प्रसिद्ध हैं यथा–**अपाये यदुदासीनं, चलं वा यादि वाऽचलम्। 'ध्रुवम्' एवाऽतदावेशात्तदपादानमुच्यते॥ पततो ध्रुवएवाऽसौ यस्मादअश्वात्पतत्यसौ। तस्याप्यश्वस्य पतने कुडयादिः ध्रुवमिष्यते॥ मेषान्तरक्रियाऽपेक्ष्यम् अवधित्वं पृथक्पृथक्। मेषयोः स्वक्रियापेक्षं कर्तृत्वं च पृथवपृथक्॥** अपाये=अलगाव–विभाग होनेकी दिशामें यदुदासीनम्= अनाधारः जो इष्टक्रियाका आधार नहीं है किन्तु अलगावकी अवधि सीमा है वह चल क्रियाशील गिरता घोड़ा अथवा अचल निष्क्रिय पर्वत दीवाल जैसा **ध्रुवमेव** उसे ध्रुव स्थिरसीमा या क्रियाशीलकी सीमा ही समझें। **अतदावेशात्** तस्याः कथनीयक्रियायाः आवेशः आधारः तदावेशः न तदावेशः, कथनीय क्रिया का आश्रय न हो, किन्तु अलगावकी सीमा हो, उसे अपादान (**अपादीयते पृथग्‌यस्मात्**) कहते है। **चैत्रः पर्वतात्पततः अश्वात्पतति**। पहाड़से गिरते हुए घौड़ेसे गिरता है। और घोड़ा दोनों पतनक्रिया का आश्रय है। घोड़ा या चैत्रके अपादान अलगावकी (पर्वत अचल) अवधि है। **उदासीन**=पतनक्रिया उसमें नहीं। घोड़में रहनेवाली पतनक्रिया की अवधि पर्वतको अपादानसंज्ञा पञ्चमी। घोड़ा चल क्रियाशील अवधि है। चैत्रकी पतनक्रिया की सीमा आरम्भ ध्रुव गतिशील अवधि अश्व को अपादानसंज्ञा। **पततो**=**धावतो अश्वात्पतति** दौड़ते हुए घोड़ेसे गिरता घोड़ा पतन क्रियाका ध्रुव गतिशील सीमा है जिस घोड़ोसे चैत्र गिरता है उस धोड़ेके पतनमें कुड्यादि भित्ती दीवाल ध्रुव स्थिर अवधि है, **अपादानसंज्ञापञ्चमी कुड्यात्**। **मेषान्तर**=परस्परान्मेषौ अपसरतः दो भेड़ाकी लड़ाईमें दोनों एक दूसरेके मस्तकमें जोरदार

स्यात्। (५८७) **अपादाने पञ्चमी । २ । ३ । २८ ।।** ग्रामादायाति। धावतोऽश्वात्पतति। 'कारकम्' किम् ? वृक्षस्य पर्णं पतति। 'जुगुप्सा-विरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्' (वा० १०७६)। पापाज्जुगुप्सते'

टक्कर मारते है फिर अलग होते है। उस दशामें परस्परात् रूप **स्वक्रियापेक्षं**-एक दूसरे क्रियाकी अपेक्षा दोनों भेड़ोमें अपसरण अलगावकी क्रिया हैं एककी अलगावक्रिया की अपेक्षा दूसरेमें अवधि मान्य होनेसे दोनों एक दूसरे की अवधि है। अतः **परस्परात्** में **पञ्चमी** सुगम। दोनों अलग कर्ता है। पञ्चमीका अर्थ अपादान, उसके अवधिका साथ अभेद सम्बन्ध।

५८७। **अपादान** अर्थ या अपादानसंज्ञा होनेपर उस अर्थकी वाचिका या प्रकाशिका पञ्चमीविभक्ति हो। यथा **ग्रामादायाति=कस्मात् आयाति ग्रामात्** आगमन क्रिया कहाँसे हुई इस आकाङ्क्षा का विषय **ग्राम अवधिः तस्य अपादानसंज्ञा। अपादाने पञ्चमी।** कस्मात्प्रश्नका समाधान ही अपादान है। **पश्चिमप्रदेशाः पूर्वप्रदेशेभ्यः आढ्यतराः अधिकधनवन्तः।** बुद्धिकल्पित भी अवधि मान्य। **अश्वात्पतति** अश्व स्वयं धावनक्रियाका आश्रय है तथापि **चैत्र** की पतनक्रियाके रहते **चैत्रः कस्मात्पतति** आकांक्षाका विषय हो, इस लक्षणसे घोड़ा ही ध्रुव। **अश्व इत्यस्य ध्रुवमपायेऽपादानं सूत्रेण अपादानसंज्ञा अपादाने पञ्चमी अश्वात्। कारकं किं ?** कारकको अपादानसंज्ञा क्यों कहा ! इसलिए कि **वृक्षस्य पर्णं पतति।** वृक्षसे पत्ती गिरती है पत्तीके पतन क्रियामें वृक्ष अवधि है, कारक नहीं, क्रियामें अन्वयी न होनेसे। यदि कारक न कहते वृक्ष भी ध्रुव होता। (वा०) **जुगुप्सा**=गोप्तुमिष्यते जुगुप्स्यते इति जुगुप्सा गुप्त रखने का विषय। निन्दा-विराम-विरति-तिरस्कार-प्रमाद, अनवधानता-आलस्य उपेक्षा-इनके अर्थवाचक धातुओंके सम्बन्धमें जो घृणा वैराग्य आलस्य के विषय हों, उनकी अपादानसंज्ञा। यथा **पापात् जुगुप्सते।** पापसे घृणा करता है रमता नहीं। घृणा अर्थवाचक गुगुप्सधातुका विषय-**पाप इत्यस्य अपादानसंज्ञा पञ्चमी, पापात् विरमति।** पापसे विराग रखता है नीरसताका विषय पापसे पञ्चमी। **धर्मात्**=धर्मसे प्रमाद अविवेक आलस्य मोह रखता है। प्रमोदका विषय धर्म उसकी अपादानसंज्ञा पञ्चमी।

। ५८८। **भीत्रा**—भय अर्थ वाले शब्दके। **त्राणार्थानां**=त्रैङ्पालने,

विरमति । धर्मात्प्रमाद्यति । (५८८) **भीत्रार्थानां भयहेतुः । १ । ४ । २५ ॥** भयर्थानां त्राणार्थानां च प्रयोगे हेतुरपादानं स्यात । चराद् बिभेति । चौरात्त्रायते । 'भयहेतुः, किम् ? अरण्ये बिभति, त्रायते वा । (५८९) **पराजेरसोढ़ः । १ । ४ । २६ ॥** पराजेः प्रयोगेऽसह्योऽर्थोऽपादानं स्यात् । अध्ययनात्पराजयते । ग्लायतीत्यर्थः । 'असोढः' किम्

जिससे रक्षा करनी हो ऐसे शब्द प्रयोगमें चोर आदिके रहते भय हेतु (डर का कारण) चोर आदिको अपादानसंज्ञा हो । जिससे भय हो उसीसे । इसलिए **कस्य विभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ।** इस रामायणके युद्धमें किस क्रोधितके युद्धमें देवता भी डरते है । यहाँ कस्यका युद्धसे सम्बन्ध है, भयका हेतु नहीं । अतः षष्ठी । संयुग-युद्धसे अपादानको बाँधकर अधिकरण-उसकी अविवक्षा हो तो पञ्चमी भी । **चोराद् बिभेति** चोरसे डरता है । भुशुण्डी या बर्छाका प्रहार न कर दे । भयका कारण हेतु चोर है । **हेतौ तृतीया प्राप्ता, तां बाधित्वा भीत्रार्थानां भय हेतुः इत्यनेन पञ्चमी चोरात्— त्रायते** (चोरसे चोट लगने, बध बन्धनसे वचनके लिए) आत्मानं रक्षति अपनेको वचाता है । **हेतौ तृतीयां बाधित्वा सूत्रेण पञ्चमी ।** यदि चोरसे भय दूर करना हो, अपनी रक्षा करनी हो, तब कल्पित विभागकी अवधि मानकर अपादान सिद्ध । भीत्रार्थ या भय हेतु क्यों पढ़ा ? व्याघ्रं पश्यति सर्कसमें बाघको देखा है । भय नहीं है, पच्चमी न हो जाय । उसकी बाधिका कर्म-संज्ञा नहीं होगी, क्योंकि कर्मकी अविवक्षामें शेषषष्ठीको बाँधकर पञ्चमीका आक्रमण । **अरण्ये बिभेति** जङ्गलमें डरता है अपनी रक्षा चाहता है । भयका कारण बाघ चोर पिशाच आदि हेतु स्पष्ट नहीं । अरण्यमें भयका कारण साफ नहीं उससे पञ्चमी न हो ।

। ५८९ । **पराजेः**=परा पूर्वक जिजये धातुका हार जाना अर्थः, उसका प्रयोग जहाँ हो और **असोढ़ः**=असह्य अर्थ हो तो अपादानसंज्ञा हो, सम्बन्ध अर्थमें । सह धातुः क्त, हस्थाने ध ढ़-ष्टु ढलोप होने पर **सहिवहोः अवर्णस्य** ओकोरे **सोढ़ः** । भूतकाल उपेक्षित है । **सोढुमशक्यः असह्यः**, सहन करनेमें असमर्थ यथा **अध्ययनात्पराजयते** पढ़ने (के कष्ट) से पराजित है, समझमें न आनेसे, या रुचि न होनेसे । पराजयका कारण अध्ययन असह्य कष्टदायक । हेतुतृतीया बाधकर, सूत्रेण पञ्चमी । **अध्ययनात्पराजेष्यते** हार जायेगें,

शत्रून्पराजयते। अभिभवतीत्यर्थः। [५९०) **वारणार्थानामीप्सितः** । १ । ४ । २७ ॥ प्रवृत्तिविघातो वारणम्। वाराणार्थानां धातूनां प्रयोगे ईप्सितोऽर्थोऽपादानं स्यात्। यवेभ्यो गां वारयति। 'ईप्सितः' किम्? यवेभ्यो गां वारयति क्षेत्रे। [५९१) **अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति** । १ । ४ । २८ ॥ व्यवधाने सति यत्कर्तृकस्यात्मनो दर्शनस्या-

---

असह्य ग्लानि होगी, यदि असहनीय क्रियासे अलगाव हो तब, ध्रुव मानकर **अपादान**। यद्यपि असोढ़ पढ़ना व्यर्थ है क्योंकि **शत्रून्पराजयते**में परत्वात्कर्मसंज्ञा होगी, अपादानको बाधकर, तथापि कर्मकी अविवक्षामें शेषषष्ठीको बाँधकर पञ्चमी न हो जाय अतः असोढ़ पढ़ा। **अभिभवति–तिरस्करोति**। शत्रुओंके तिरस्कारमें असह्य ग्लानि न होनेसे अपादान प्राप्त नहीं।

। ५९०। **वारणार्थानां**=संयोगनिवारण (रोकने) अर्थमें किसी धातुका प्रयोग हो तब **ईप्सित**=सम्बन्धित, इष्ट जिससे रोकना हो, उस अर्थको अपादानसंज्ञा। **प्रवृत्ति**=इच्छाका विघात रुकावट निवारण, विमुखीकरणको वारण कहते हैं। **यवेभ्यः**=जौके खेतमें जाती हुई गायको रोकते है, प्रवृत्तिमें बाधक बनते है। यहाँ ईप्सित-सम्बन्धित, इष्ट अर्थ **यवशब्दात्** (**सूत्रेण पञ्चमी यवेषु प्रवर्तितुं कामां गां प्रवृत्तिविमुखीकरोति**। संयोगपूर्वकविभाग न होनेसे ध्रुवमऽपायेसे अपादान प्राप्त नहीं, क्योंकि यवखानेके पहले ही गायको रोका है। जौ अपना हो या पराया उसका संरक्षण ईप्सित है। गाय परायेकी जो ईप्सित नहीं है उसको (तथायुक्तं) से कर्मसंज्ञा। यदि जौ दूसरेकी, गाय अपनी हो तब वारण असम्भव, इष्ट न होनेसे।

। ५९१। **अन्तर्धौ**=व्यवधाने सति छिपानेपर दीवाल या लताकी ओट आड़ होनेपर, **यत्कर्तृकस्य**=जिस कर्तासे **आत्मनः**में कर्मणि षष्ठी। अध्याहार, येनमें कर्तरि तृतीया कृदन्तके सम्बन्धमें षष्ठीको रोकनेके लिए। क्योंकि उभयप्राप्तौसे कर्ता कर्म दोनोंको प्राप्त षष्ठी कर्मसे ही हो यथा **मातुर्निलीयते** मातासे कृष्ण छिपाना (मातृकर्तृकदर्शनका अभाव) चाहते है। **मातृशब्दस्य अपादानसंज्ञा पञ्चमी मातुः**। कृष्ण इसलिए छिप रहे हैं (दीवालकी आड़ या लताकी ओटसे) कि माता मुझे देख न ले। लिङ्श्लेषणे। चिपकना छिपना कर्तृतृतीय या षष्ठीको बाँधकर। **अन्तर्धौ व्यर्थ** है, **चोरान्न दिदृक्षते परत्वात्कर्मसंज्ञा, चोराः आत्मानं मा अद्राक्षुः** चोर न देख लें। यहाँ इष्ट वृद्धिक-

भावमिच्छति तदपादानं स्यात् । मातुर्निलीयते कृष्णः । अन्तर्धौकिम् ? चौरान् न दिदृक्षते। इच्छतिग्रहणं किम् ? अदर्शनेच्छायां सत्यां सत्यपि दर्शने यथा स्यात् । (देवदत्ताद्यज्ञदत्तो निलीयते)। (५९२) **आख्यातोपयोगे** । १ । ४ । २९ । नियमपूर्वकविद्यास्वीकारे वक्ता प्राक्संज्ञः स्यात् । उपाध्यायादधीते । उपयोगे किम् ? नटस्य (गाथां) शृणोति । (५९३) **जनिकर्तुः प्रकृतिः** । १ । ४ । ३० ॥ जायमानस्य

लिपत अपादान । पक्षमें सूत्र व्यर्थ । चोरको नहीं देख रहा है । व्यवधान अर्थ न होता, तब चोरान्में भी पञ्चमी होती । **इच्छति क्यों पढ़ा** ? छिपनेकी इच्छा अर्थ इसलिए कहा कि **अदर्शनेच्छायां**=दर्शनकी इच्छा न होनेपर भी दर्शन हो गया हो, उस दशामें पञ्चमी कारकके लिए ।

। ५९२ । **आख्याता-आख्यायते प्रवचनं करोति, वक्ता प्रवक्ता गुरुः** । तृच् प्रथमा एकवचन । **उपयोगे उप=गुरोः समीपे योगः सम्बन्धः** । नित्य अध्ययन नियमपूर्वक प्रतिदिन अनवरत निरन्तर विना व्यवधानके विद्या-स्वीकारकी जाय, तब आख्याता, बक्ता, अध्यापयिता, को अपादान हो। यथा **उपाध्यायादधीते** उपेत्य अस्मात् अधीते **उपाध्यायः** । जिससे विद्या-स्वीकार करें । **उपाध्याय इत्यस्य अपादानसंज्ञा पञ्चमी** । **सूत्रमें उपयोग**= नियमसे विद्यास्वीकार होनेपर ही वक्तासे पञ्चमी हो, ऐसा क्यों ? इसलिए कि **नटस्य गाथां शृणोति** नटसम्बन्धिनी **गान** नाटक सुनता है । यह गाथा-गान कौवाली श्रवण नित्यनियमसे **नहीं** होता । यहाँ पञ्चमी न हो, नटस्य कारक भी नहीं है ।

। ५९३ । **जनि०**=जनन, उत्पत्तिः । जनी प्रादुर्भावे, प्रकट होना, अकर्मक दिवादिः, **'इञ्जादिभ्यः भावे इण्** । **जनिबध्योश्च वृद्धिनिषेधः** । **जायमानस्य=जायते असौ जायमानः तस्य**, उसकी प्रकृति करण, हेतुको **अपादानसंज्ञा** हो । **लटः शानच । ज्ञाजनोर्जा आनेमुक् । ब्रह्मणः प्रजाःप्रजायन्ते । हिरण्यगर्भात्**=ब्रह्मासे प्रजा पैदा होती है । जैसे घटकी उत्पत्तिमें कुलाल निमित्तकारण है, प्रजाकी उत्पत्तिमें कारण-हेतु-प्रकृति **ब्रह्मा इत्यस्य अपादान-संज्ञा पञ्चमी** । षष्ठीके साथ समास नहीं होता, तृजकाभ्यांके निषेधसे । यहाँ प्रकृतिशब्द सभी हेतु—कारकका स्मारक है । **पुत्रात्प्रमोदो जायते, गोमयात् वृश्चिकाः जायन्ते**, गोबरसे बिच्छू होते है । उपादानकरण प्रकृति है

हेतुरपादानं स्यात् । ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते । (५९४) **भुवः प्रभवः** । १ । ४ । ३१ ॥ भवनं भूः । भूकर्तुः प्रभवस्तथा हिमवतो गङ्गा प्रभवति । तत्र प्रकाशते इत्यर्थः । 'ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च; (वा १४७४–१४७५) । प्रसादात्प्रेक्षते । आसनात्प्रेक्षते । प्रासादमारुह्य,

---

ऐसा भाष्यकैयट मत । **वृत्तिमते** कोई भी कारण बुद्धिकल्पितविभाग हो तब ध्रुवमपायेसे पञ्चमी सिद्धा । **मायोपहितमीश्वरचैतन्यं गृह्यते, तदा सर्वकार्योपादानमिति वेदान्तिनः ।**

। ५९४ । **भुवः**=भवनं भूः, भावेक्विपि । पूर्वसूत्रमें समासके एक अंशमें स्वरित समझकर कर्ताकी अनुवृत्ति, तस्य भुवः । प्रकट करनेके कर्ताको, **प्रभवः=प्रभवति अस्मात्, प्रथमं प्रकाशते अस्मिन्प्रभवः । ऋदोरप्** । प्रथमप्रकाशस्थान या उत्पत्तिस्थान । परन्तु **हिमवतः गङ्गा प्रभवति** हिमालयसे पैदा नहीं होती, किन्तु प्रकट प्रकाशित प्रादुर्भूत होती है । उत्पत्तिकर्ता गङ्गाका प्रभव प्रकाशस्थान **हिमवतः इत्यत्र पञ्चमी । हिमवतो गङ्गा इत्यत्र जनिकर्तुः** सूत्रसे पञ्चमी सिद्ध थी यह सूत्र निरर्थक ? उसका **समाधान तत्रप्रकाशते**=प्रथमं दृश्यते यह अर्थ धातुके अनेकार्थतासे लब्ध । जनिः=अपूर्वप्रदुर्भावः, जो पहले नहीं था अब उसका होना जन्म है । दूसरे स्थानपर सिद्धका प्रथम लाभ प्रभव है । अर्थभेदसे सूत्र सार्थक । **भीत्रार्थानांसे लेकर सातसूत्रका प्रत्याख्यान भाष्यकारने क्रिया** काल्पनिक अपादान मानकर । **ध्रुवमपाये अपादानम् अपक्रामन्ति ताः यस्मात् आपः**, भट्टोजीदीक्षितने शब्दकौस्तुभमें मुख्यार्थ मानकर षष्ठीकी प्राप्तिबाधनेके लिए सातसूत्र कहा—इससे सिद्ध है कि गौणमुख्य आधारादिः सर्वत्र अपादान सम्भव । **हिमवतः प्रकाशते । विभेति भयान्निवर्तते त्रायते=रक्षणेन चौरेभ्यो निवर्तयति । पराजयते=ग्लान्या निवर्तते, वारयति=प्रवृत्ति निवर्तयति । निलीयते=निलयेन निवर्तते, अधीयते=अध्यापकमुखात् निःसरन्तं शब्दं गृह्णाति । प्रभवति=भवन्पूर्वकं निःसरणमर्थः ।**

(वा०) **ल्यब् लोपे** ल्यप्प्रत्यय (अपूर्णकालकी क्रिया) अन्तमें हो, **लोप**=अदर्शन अश्रवण अनुच्चारण अप्रयोग, विनाश हो किन्तु उसका अर्थ जान पड़ रहा हो **गम्यमान** प्रतीत हो, तब कर्ममें और अधिकरण अर्थमें पञ्चमी हो । ल्यप् शब्द अपने अर्थका बोधक है । यथा–**प्रासादात्प्रेक्षते आरुह्य**

आसने उपविश्य प्रेक्षते इत्यर्थः। श्वशुराज्जिह्रेति। श्वशुरं वीक्ष्येत्यर्थः। 'गम्यमानाअपि क्रिया कारकविभक्तीनां निमित्तम् (वा ५०४१) कस्मात् त्वम्? नद्याः। 'यतश्चाध्वकालनिमानं ततः पञ्चमी (वा १४७७)। 'तद्युक्तादध्वनः प्रथमासप्तम्यौ' (वा १४७६)। 'कालात्सप्तमी च वक्तव्या (वा १४७८)। वनाद् ग्रामो

महलपर चढ़कर देखता है। ल्यबन्त आरुह्य के लोपसे उसका कार्य प्रासादसे **पञ्चमी**। एवं **आसनात्प्रेक्षते** आसनपर उपविश्य—बैठकर देखता है। बैठनेका आधार आसनको अधिकरणसंज्ञा बाधकर पञ्चमी। क्त्वाके लोपमें भी ऐसी दशा। **श्वसुरको वीक्ष्य** देखकर लज्जित होता है कर्मबाधसे अञ्चमी अत्र शङ्का-मुख्य उदाहरणमें ल्यबन्त=आरुह्य उपविश्य वीक्ष्य प्रयोग अदृष्ट है। तब कर्म और अधिकरणका निर्णय कैसे? अतः कहा कि (वा०) गम्यमाना=प्रसङ्गवश जान पड़ रही, प्रतीत क्रिया भी कारकविभक्तियोंको जागृत करती है, कारण बनती है। यथा **कस्मात्त्वम्** इतना ही कहा, कहाँसे तुम? इस प्रश्नसे प्रतीयमान, जान पड़ने वाली क्रिया **आगतोऽसि** है, उसे मानकर यस्मात्का उत्तर मिला—**नद्याः आगतोऽस्मि**। **क्रियाप्रसङ्गसे जान** पड़ी, उसका **आधारः नद्याः तस्य पञ्चमी**। (वा०) **यतः इत्यत्र तृतीयार्थे तस** जिस अवधि सीमासे अध्वा–रास्ता, काल–समय–घण्टा–मिनट–दिन आदि **निमानं**=परिच्छेद मापदण्ड अत्र निश्चितपरिमाणः **गम्यते**=जान पड़े उससे पञ्चमी कहें (वा०) **तद्युक्तात्**=अध्वासे युक्त पञ्चम्यन्तसे अन्वित अध्ववाचीशब्दसे प्रथमा, सप्तमी कहें। कालशब्दसे सप्तमी भी कहें। तेन युक्तः तद्युक्तः, तस्मात् पञ्चम्यन्तसे युक्त, कालवाचीसे सप्तमी कहें। यथा **वनात्**=वनसे गाँव एकयोजन चार कोश तक है। रास्ता अध्वपरिमाण चार कोशका है, उसकी पूर्ण अवधि वनमें गाँवकी दूरी परिच्छेद माप योजन ही बतलाता है। उसकी पूर्व अवधि वन शब्दात्पञ्चमी। प्रथम वार्तिकसे पञ्चम्यन्त वनात्से सम्बन्धित योजन शब्दसे पञ्चमी, सप्तमी भी हुई। **कस्मादारभ्यः योजनमस्तु इति आकाङ्क्षा उदेति**, प्रथमा और सप्तमीका वन और गाँवके बीच अव्यवधान अर्थः। वनके बादही गाँवकी अवधि सीमा रहनेपर भी अलगाव स्पष्ट न होनेसे ध्रुव अपादान। कालसमयका उदाहरण–कार्तिक महीनेसे अगहन महीना अव्यवहित है। महीनेका काल परिमाण मास (तीस

योजनं–योजने वा। कार्तिक्या आग्रहायणी मासे। (५९५) **अन्या-रादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते ।२।३।२९॥** एतैर्योगे पञ्चमी स्यात्। अन्येत्यर्थग्रहणम्। इतरग्रहणम् प्रपञ्चार्थम्। अन्यो भिन्न इतरो वा कृष्णात्। आराद्वनात्। ऋते कृष्णात् पूर्वो ग्रामात्।

दिन) का कार्तिकसे परिच्छिन्न तीस दिन बाद **पूर्णमासी आग्रहायणी** अगहन-महीनेका कालवाचक शब्दसे सप्तमी। **मासे**।

।५९५। **अन्य**, आरात्, इतर, ऋते, दिक्शब्द अञ्च उत्तरपद, आच्, आहि इन आठशब्दोंके सम्बन्धमें पञ्चमी हो। युक्त आया। युज् धातुसे अन्य-शब्दके अर्थमें दूसरे शब्द आये हों, उनके योगमें पञ्चमी साधनके लिए बोले **अन्य–अर्थग्रहणमिति–भिन्ने अर्थे सम्बन्धे पञ्चमी**। यदि ऐसा तर्हि इतरशब्द पढ़ना व्यर्थ है अन्यअर्थमें आने से। तब **इतरशब्दः प्रपञ्चार्थः**। अर्थ विस्तारके लिए पढ़ा। **पचि विस्तारे** धातुसे पञ्च बना। पचिमें इकार इत् इदितो नुम् अनुस्वार परसवर्ण पञ्च। विस्तारके अनुकूलक्रिया **प्रपञ्च**, तात्पर्यग्राहक, विस्तार। **अन्यशब्द** भिन्न आदि अर्थको भी बोले। इस प्रयोजनका प्रकाशन इतरका विशेषफल **इतरस्त्वन्यनीचयोः**। इस अमरकोशे नीच अर्थके ग्रहणके लिए **इतरः अस्मात् तारो मन्द्रो वा** (इससे ऊँचा या हल्का) पञ्चमी सिद्ध अन्य, भिन्न, इतर शब्दोंका भेदवान् अर्थमें लक्षणा। अत उपलक्षमण। इनके योगे सम्बन्धमें पञ्चमी **कृष्णात्** इति **कृष्ण प्रतियोगिक भेदवान् कश्चन अन्यः भिन्नः इतरः पुरुषः**। कृष्णसे अतिरिक्त कोई है। षष्ठीको बाधकर सूत्रमें पढ़े गये शब्द अवधि नियम रहते हुए भी, इनका संयोग विभाग न होनेसे अपादानकारक असम्भव था, अतः वार्तिक पढ़ा, यद्यपि घटो न पटः, घड़ा वस्त्र नहीं है भिन्नः। नञ्का भेद अर्थः, तब घटः में पञ्चमी क्यों नहीं ? निपातन, द्योतक वाचक न होनेसे। **आरात् वनात्**=वनसे दूर या पास। **आराद्दूरसमीपयोः योगे सम्बन्धे वनात् इत्यत्र पञ्चमी**। **दूरान्तिकार्थेभ्यः** से प्राप्तषष्ठीको बाधकर। **ऋते कृष्णात्**=एकारान्त अव्यय वर्जन रोकने अर्थक ऋतेके सम्बन्धमें पञ्चमी। तृतीया कृष्णेन, कृष्णके बिना सुख नहीं। **वर्ष सुखं नास्ति**। यदि ऐसा तब (**ववकर्मप्रध्वंसः फलति पुरुषाराधनमृते**) शिवकी अर्चनाके विना कर्म बन्धन नष्ट होना फल कहाँ, अत्र ऋते योगे आराधनामें पञ्चमी अदृष्ट है साधु कैसे ? **आर्षः**=ऋषिप्रोक्त प्रयोग होनेसे। अथवा ततो

दिशि दृष्टः शब्दो दिक्शब्दः । तेन सम्प्रति देशकालवृत्तिना योगेऽपि
भवति । चैत्रात्पूर्वः फाल्गुनः । अवयववाचियोगे तु न । 'तस्य परमा-
म्रेडितम् (सू ८३) इति निर्देशात् । पूर्वकालस्य । अञ्चूत्तरपदस्य
तु दिक्शब्दत्वेऽपि' षष्ठ्यतसर्थ- (६०९) इति षष्ठीं बाधितुं पृथग्-

---

अन्यत्रापि दृश्यतेसे द्वितीया विकल्प (ऋते द्वितीया च) चान्द्रव्याकरणका सूत्र
दिक्—दिशावाची जैसे पूर्वपर दक्षिण उत्तर नीचे ऊपर आदि शब्द सम्बन्धमें
पञ्चमीका उदाहरण—**पूर्वो ग्रामात्** । दिशावाची शब्द पूर्व इति, अन्यतरके
सहचारके व्याख्यानसे भी, भिन्न अर्थमें न देखा गया हो, वही लिया जायगा ।
तस्य सम्बन्धे पञ्चमी ग्रामात् । पूर्वदिशामें वर्तमान गाँवसे आता हूँ । यदि
दिशावाची शब्द सम्बन्धसे पञ्चमी होगी तब **चैत्रात्पूर्वः फाल्गुनः अत्र पूर्वशब्दः**
कालवाचकः नहि दिशावाची, तस्य योगे चैत्रात् इत्यत्र कथं पञ्चमी ? तदा
अवदत् मूले दिशि=दिशाअर्थमें देखा गया शब्द ही दिक् लिया जाय । रूढ़ि
शब्द होनेसे दिशा विशेषका वाचक पूर्व आदि शब्द लिए जायेंगे । **ऐन्द्री—**
इन्द्रो देवता अस्याः नहीं ली जायगी । दिशासे भिन्न अर्थमें जो न देखा गया
हो वही लिया जानेसे ककुब् आदि बँच गये । **तेन**=सम्प्रति दिशा अर्थमें देखा
गया पूर्व आदि शब्द (देशका अर्थमें) **वृत्तिना**=वर्तमानशब्दके योगमें
भी पञ्चमी होती है । अतएव **चैत्रात्पूर्वः** काल समय महीना वाची चैत्र
शब्दसें पञ्चमी पूर्वके योगमें चैत्रसे पहले फाल्गुन है । **माघात्पूर्वः पौषः**
अवयववाची=यहाँ अवयव एक अंश आधा, पूर्वभाग—परभागवाचकशब्दके
योगमें पञ्चमी नहीं होती । यथा **तस्य द्विरुक्तस्य** दो वार उच्चारण किए
गए (**तस्य हि प्रसङ्गे द्विरुक्तं परामृशति परं**=दूसरा अवयव जिसको **आम्रे-**
डितसंज्ञा हुई हो । इस निर्देश उच्चारणसे परके योगमें 'तस्य' में पञ्चमी
अदृष्ट है, इससे सिद्ध है, अवयव अंश वाचक शब्दसे पञ्चमी नहीं होती ।
यथापूर्वं कायस्य शरीरस्य पूर्वावयवः देहका पहला भाग शरीरका यवयव है
पञ्चमी न । **अञ्चु धातुः उत्तरपदं परभागे स्थितं यस्य स अञ्चूत्तरपदः ।**
प्राङ् प्रत्यङ् उदङ् आदि दिशावाची शब्दके उत्तरभागमें अञ्च दृष्ट है । पूर्व
पश्चिम, उत्तर दक्षिण आदि दिशाअर्थ होना आवश्यकः । **अतः सह अञ्चति**
सध्यङ् योगे चौत्रेण इत्यत्र न पञ्चमी । साथ जाता है । दिशा अर्थ नहीं । न

ग्रहणम्। प्राक्–प्रत्यग्वा ग्रामात्। आच्–दक्षिणा ग्रामात्। आहि–दक्षिणाहि ग्रामात्। 'अपादाने पञ्चमी' (सू ५८७) इति सूत्रे 'कार्तिक्याःप्रभृति' इनि भाष्यप्रयोगात्प्रभृत्यर्थयोगे पञ्चमी। भवात्प्रभृति–आरभ्य वा सेव्यो हरिः। 'अपपरिबहिः–' (सू६६६) इति

कहिए कि अञ्च-उत्तरपदप्राङ् (पूर्व) प्रत्यङ् (पश्चिम) उदङ् (उत्तर) आदि शब्दकी दिक् शब्दसे सिद्ध होगी। **अञ्चू पद क्यों पढ़ा?** प्रयोजनफल बोले कि=दिशावाचीशब्द होनेपर भी **षष्ठचतसर्थेसे** प्राप्तषष्ठी बाधनेके लिए। जो परत्वात् प्राप्त है, अलग पढ़ा। यथा–ग्रामके प्राक्=गाँवके पूर्व, या प्रत्यङ् पश्चिम, अत्र अवधिः ग्रामः तेन कारणेन पञ्चमी। **आच् दक्षिणस्यां दिशि अदूरेभवा अर्थमें आच्प्रत्ययान्त दक्षिणाशब्दसम्बन्धे ग्रामात् इत्यत्र पञ्चमी।** सूत्रमें उच्चारितशब्दके सम्बन्धमें पञ्चमी होगी, तब **भवात्प्रभृति आरभ्य**=जन्म से लेकर **हरिःसेव्यः** भगवान्सेवाके योग्य है। यहाँ पञ्चमी कैसे? अतः मूले–अपादाने पञ्चमी सूत्रके भाष्यमें प्रभृति या प्रभृति अर्थवाले शब्दके सम्बन्धमें पञ्चमीका प्रमाण मिलता है। **यथा कार्तिक्याः प्रभृतिमें** पञ्चमीके प्रयोगसे प्रभृतिशब्दके योगमें भी पञ्चमी प्रमाणित। प्रभृतिके पर्यायके योगमें भी पञ्चमी। अतः तत् आरभ्यका प्रयोग कैयटने किया। **ततः—तस्मात् पञ्चमीस्थाने तसिः।** सब अभिप्रायोंसे उदाहरण दिया **भवात्प्रभृति आरभ्य वा।** आरम्भशब्दके सम्बन्धमें भी पञ्चमी पञ्जीकृत हुई। **भवः उत्पत्तिः तस्मात्** आरभ्य (सृष्टिका) आरम्भ, जो उत्पत्तिकी अवधि है। जो प्रभृति इस अव्ययका भी अर्थ है। सृष्टिसे लेकर जब तक सृष्टि चलती रहे तबतक भगवान् सेव्य है। **उत्पत्तिक्षणात् आरभ्य उत्तरकाले सर्वदा आमरणं हरिः सेव्यः।** यहाँ सेव्यका कर्म है (आरम्भक्रियाकी अपेक्षा कर्मकी विवक्षा हो) द्वितीया ही होगी। क्योंकि **उपपदविभक्तेः** (पदके सम्बन्धमें होनेवाली विभक्तिसे) **कारकविभक्तिर्बलीयसी** है। यथा **सूर्योदयमारभ्य अस्तमयात्** सूर्योदयसे सूर्यास्त तक **जपति**। कारकविभक्ति, द्वितीया हुई। सम्बन्धकी इच्छा हो षष्ठी बाधकर पञ्चमी। प्रभृति अर्थमें आरभ्यके सम्बन्ध में द्वितीया नहीं होगी। अवधि माननेपर क्रियाका आभाव होनेसे कारक नहीं। बहिशब्दके सम्बन्धमें पञ्चमी सिद्ध करके अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्याः इसके समासविधानसे बहिशब्दके प्रभावितसे पञ्चमी हो। यथा गाँवसे बहिर

समासविधानात् ज्ञापकाद् बहिर्योगे पञ्चमी । ग्रामाद् बहिः । (५९६) **अपपरी वर्जने** । १ । ४ । ८८ ॥ एतौ वर्जने कर्मप्रवचनीयौ स्तः । (५९७) **आङ् मर्यादावचने** । १ । ४ । ८९ ॥ आङ्मर्यादायामुक्त-सञ्ज्ञः स्यात् । वचनग्रहणादभिविधावपि । (५९८) **पञ्चम्यपाङ्-परिभिः** । २ । ३ । १० ॥ एतैः कर्मप्रवचनीयैर्योगे पञ्चमी स्यात् ।

अर्थमें बाहर होना क्रियासे प्रभावित ग्रामसे पञ्चमी **ग्रामात्** । भाष्यमें **करस्य करभो बहिः** हाथके करभ=मणिबन्धसे कनिष्ठिकाभागके बाहर है । ऐसा प्रयोग असाधु है । क्योंकि बहिः के सम्बन्धसे करभमें पञ्चमी होनी चाहिए । अथवा (**ज्ञापकसिद्धं न सर्वत्र**) ज्ञापनसे सिद्ध नियम व्यापक नहीं होता । कहीं नहीं भी लगता है । ऐसा कथञ्चित्समाधान करें । क्योंकि अप परि बहि सूत्रके **समास**विधानके ज्ञापनसे बहि शब्दके योगमें पञ्चमी मानी गयी, वह न सर्वत्र ।

। ५९६ । **अपपरि**=अप और परि शब्द वर्जन निवारण रोकने अर्थमें हो, तब दोनोंको कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हो । कर्मक्रियां प्रोक्तवन्तः ये ते कर्मप्रवचनीयाः का अधिकार द्विवचन । वर्जने (छोड़कर) ऐसा अर्थ क्यों कहे, इसलिए कि जहाँ अप या परिका वर्जन अर्थ न हो, वहाँ उक्तसंज्ञा न हो जाय । **परिषिञ्चति, सर्वतः सिञ्चति** चारो तरफसे सीचता है यहाँ परिका व्यापक चारो तरफसे अर्थः । वर्जनेऽर्थे परिकी उपसर्गसंज्ञा होनेसे उपसर्गात्सुनोति से षत्व । । **५९७** । **आङ्**=शब्द मर्यादा, सीमा अवधि परिमाण मात्रा अर्थमें, **उक्तसंज्ञः**=कर्मप्रवचनीयसंज्ञक हो । सूत्रमें वचन (उच्चारण) क्यों पढ़ा । मर्यादामें आङ्को कर्मसंज्ञा कहना पर्याप्त था । अतः वचनशब्द व्यर्थ होकर प्रभाव डालता है कि मर्यादाके साथ अभिविधि अर्थ भी लिया जाय । **मर्यादा शब्दो यत्र उच्यते तन्मर्यादावचनम्** । **आङ्मर्यादाऽभिविध्योः** मर्यादा (सीमा) अभिविधि=व्यापक अर्थमें आङ् देखा हो तब कर्मप्रवचनीयसंज्ञा

। ५९८ । **पञ्चमी** हो आङ् अप परि इनको कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हुई हो । तब इनके प्रभावितसे पञ्चमी हो यथा **अपहरेः संसार** भगवानसे अलग हरिको छोड़कर है । **परिहरेः संसारः । हरिं वर्जयित्वा जनिः, जन्म मृतिः मृत्युचक्रात्मकं पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, संसरणं, अपपरिशब्दौ** वर्जनेऽर्थे स्तः **तस्य कर्मप्रवचनीयसंज्ञा, अपपरि वर्जने सूत्रेण प्रभावितः हरिः शब्दः पञ्चमीमात्रम् । वृक्षं परि-**

अप हरेः, परि हरेः संसारः। परिरत्र वर्जने। लक्षणादौ तु हरिं परि। आ मुक्तेः संसारः। आ सकलात् ब्रह्म। (५९९) **प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः। १।४।९२॥** एतयोरर्थयोः प्रतिरुक्तसञ्ज्ञः स्यात्। (६००) **प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात्। २।३।११॥** अत्र

विद्योतते। वृक्षके चारो ओर विजली चमकती है। **भक्तो हरिं परि।** भक्त भगवानके चारो तरफ है। यहाँ लक्षण अर्थमें कर्मप्रवचनीयसंज्ञा, द्वितीयाको परत्वात्=(अपवाद होकर भी) बाधकर पञ्चाम्यङ्परिभिः पञ्चमी हो जायेगी। तब बोले–**पञ्चमी विधायकसूत्रमें** परिशब्दका वर्जन अर्थ है। **परेर्वर्जने वा वचनं**=वार्तिकसे वर्जन अर्थमें परिशब्दसे द्वितीया भी हो। पञ्चमी विधानमें वर्जनअर्थमें अपके साथ परि भी वर्जनार्थक ही लिया जाय। जहाँ लक्षण अर्थ लेना हो वहाँ द्वितीया ही होगी, **हरिं परि**–हरिसे परे संसारसे मुक्ति। मर्यादा अर्थमें आङ्का उदाहरण–**मुक्तिमर्यादीकृत्य**– संसारका जीवन मरणबन्धनकी मर्यादा सीमा-अवधि कहाँ तक है **मुक्ति–मोक्ष** तक। ब्रह्मलीनता, तप मोक्षके बाद संसारबन्धन नहीं रहता। अर्थका प्रकाशक **आङ् इत्यस्य आङ् मर्यादावचने सूत्रेण कर्मप्रवचनीयसंज्ञा। तस्य योगे पञ्चमी मुक्तेः। अभिविधि**= व्यापक अर्थमें आङ्का उदाहरण **आसकलात्**=सम्पूर्णम् **अभिव्याप्य ब्रह्म वर्तते** ब्रह्माण्डव्यापकता अर्थ प्रकाशक **आ इति कर्मप्रवचनीयसंज्ञां लभते, तदा तस्य योगे पञ्चमी सकलात्।**

।५९९। **प्रतिनिधि**=स्थानापन्न सदृश दूसरा व्यक्ति, **मुख्यस्य अभावे सति तत्सदृश उपादीयते, स्वीक्रियते प्रेष्यते, स प्रतिनिधिः। शिष्यः गुरोः प्रतिनिधिः। पुत्रः पितुः, दूतः देशस्य प्रतिनिधिः। प्रतिदान=दत्तस्य प्रतिनिर्यातनं** दिये हुएके बदलेमें देना। वस्त्रके बदले द्रव्य देता है। पुस्तकेभ्यः पुस्तकानि ददाति। जूटके बदले गेहूँ देता है। दोनों अर्थोंका प्रकाशक प्रतिको उक्त= कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हो।

।६००। **जिस व्यक्तिका जो प्रतिनिधि**, स्थानापन्न, बदलेमें हो, प्रतिदान जो दिया गया हो, उससे कर्मप्रवचनीयसंज्ञक प्रतिके सम्बन्धमें पञ्चमी हो। सूत्रमें 'यस्मात्' पढ़ा उससे (जिसका प्रतिनिधि, जिसका प्रतिदान हो) पञ्चमी कैसे? यहाँ षष्ठीके अर्थमें पञ्चमी मानें। **यस्मात्** इस पञ्चमी उच्चारणके ज्ञापनसे षष्ठीके स्थानमें पञ्चमी। परन्तु **ज्ञापकसिद्धं न सर्वत्र।**

कर्मप्रवचनीयैर्योगे पञ्चमी स्यात्। प्रद्युम्नः कृष्णात्प्रति। तिलेभ्यः प्रति-यच्छति माषान्। (६०१) **अकर्तर्यृणे पञ्चमी २।३।२४॥** कर्तृवर्जितं यदृणं हेतुभूतं ततः पञ्चमी स्यात्। शताद् बद्धः। 'अकर्तरि

किसीके व्यर्थ होकर ज्ञापनसे जो नियम बनता है वह सब जगह नहीं लगता। अतः **कृष्णस्य प्रतिनिधिः** भी साधु है। जिसका सम्बन्धी जिसका प्रतिदान हो उससे पञ्चमी प्रतिके योगमें है। प्रद्युम्नः युद्धादौ कृष्णसादृश्यवान् संग्राममें कृष्णके समान प्रद्युम्न हैं, जो कृष्णके प्रतिनिधि, सदृश, स्थानापन्न **कृष्ण-शब्दात् पञ्चमी। प्रतिशब्दस्य कर्मप्रवचनीयसंज्ञा तस्य योगे पञ्चमी, यस्य सादृश्यो अर्थः।** प्रतिशब्द समानता अर्थका प्रकाशक है, मुख्य (कृष्ण) से है। गौणसे नहीं। **तिलेभ्यः**=तिलके बदले **माषान्**=उरद देता है क्योंकि उधार लिया था। **ऋणत्वेन गृहीतान् तिलान्, तस्य स्थाने तस्य मूल्यात्मना माषान्प्रत्यर्पयति,** बदलेमें देता है। **प्रति इत्यस्य कर्मप्रवचनीयसंज्ञा, प्रतिदान-भूताः तिलाः, तस्मात्पञ्चमी तिलेभ्यः इति। गोभ्यः प्रति अश्वान् ददाति।**

।६०१। **अकर्तरि**=कर्तृसंज्ञा रहित हो, **यदृणं**=जो ऋण **हेतुभूतं**=बन्धन-क्रियामें कारण हो, तब ऋण वाचीशब्दसे पञ्चमी हो, तृतीयाको बाधकर। हेती आया। यथा **शताद्बद्धः** सौ रुपयेके कारण बाधा गया, कर्ज लिया, समय-पर दिया नहीं। बन्धनमें शतसुवर्ण कारण है नियत काल तक प्रत्यर्पण न करनेसे अधमर्ण ऋण लेता बद्धः। उत्तमर्ण ऋणदातासे बाधा गया। हेतु तृतीयाको बाँधकर **उक्तसूत्रेण पञ्चमी। शतसुवर्णात् बद्धः। क्षेत्राद् बद्धः। धनाद्बद्धः। अकर्तरि किं**=सूत्रमें बन्धनका हेतु कारण कर्तृसंज्ञक न हो, ऐसा क्यो ? इसलिए कि जिस हेतुको कर्तृसंज्ञा हुई हो उससे पञ्चमी न हो जाय। यथा **अधमर्णः** (ऋण लेता) **उत्तमर्णेन** (ऋणदातासे) **शतेन बन्धितः।** सौ मुद्राके कारण बधवाया गया। **अधमर्णः उत्तमर्णेन बद्धः अण्यन्तका अर्थ, शतेन ऋणेन प्रयोजकः कर्ता, उत्तमर्णेन प्रयोज्यकर्ता, बन्धनं कारितः अधमर्ण इति ण्यन्तस्यार्थः।** शत ऋण है प्रयोजक भी। उसको तत्प्रयोजको हेतुश्च कर्तृसंज्ञा, हेतुसंज्ञा भी। कर्तामें तृतीयाको बाँधकर पञ्चमी न हो जाय। अतः अकर्तरि=कर्तृसंज्ञासे रहित पढ़ा। यद्यपि शतबन्धनका हेतु है किन्तु कर्तृसंज्ञा से पञ्चमी नहीं हुई।

किं ? शतेन बन्धितः। (६०२) **विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्। २। ३। २५॥** गुणे हेतावस्त्रीलिङ्गे पञ्चमी वा स्यात्। जाड्यात्–जाड्येन वा बद्धः। 'गुणे' किं? धनेन कुलम्। अस्त्रियाम्' किं? बुद्धया मुक्तः। 'विभाषा' इति योगविभागाद्गुणे स्त्रियां च क्वचित्। धूमाद-

। ६०२। **विभाषा**=विभिन्ना भाषा। पञ्चमी तृतीया च, हेतौ आये। जो शब्द गुणवाची है, हेतु कारण भी है (बन्धनका) स्त्रीलिङ्ग नहीं है, उससे पञ्चमी विकल्पसे हो गयी। यथा **जाड्यात् जाड्येन बद्धः** मूर्खताके कारण बांधा गया। **जडस्य मूर्खतायाः भावः जाड्यम् अज्ञानं** जड़ताके गुणवाचक होनेसे **गुणवचन ब्राह्मणादिभ्यः ष्यङ्, जाड्यशब्दात् हेतुभूतात्स्त्रीलिङ्ग-रहितात् गुणवाचकात्पञ्चमी, तृतीया च।** सूत्रमें **गुणेति किं** गुणवाचकशब्दसे पञ्चमी क्यों? इसलिए कि जहाँ द्रव्य हेतु हो, उससे पञ्चमी न हो। यथा धनेन कुलं, यह वंश धनसे प्रतिष्ठित है। धन प्रतिष्ठाका हेतु है, किन्तु द्रव्य होनेसे पञ्चमी नहीं हुई। सूत्रमें अस्त्रियां=स्त्रीलिङ्गका न होना, ऐसा क्यों? इसलिए कि गुणवाचीशब्द यदि स्त्रीलिङ्ग हों, उसमें पञ्चमी न हो जाय। यथा **बुद्धयामुक्तः शशकः सिंहेन**। खरगोश सिंहसे बुद्धिसे मुक्त हुआ। **बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुधेस्तु कुतो बलम्।** मुक्तिमें बुद्धि हेतु गुण है, स्त्रीलिङ्ग भी है, अतो न पञ्चमी। अत्र शङ्का—**धूमादग्निमान्।** धूमसे अग्निवाला सिद्ध है। धूमात्में पञ्चमी कैसे? वह तो द्रव्य है। अतः मूलमें बोले कि–'विभाषा' अंशको **योगात्=सूत्रविभागात्** अलग पढ़नेसे। हेतौ आवेगा। हेतु अर्थमें पञ्चमी विकल्पसे हो, इतना ही अर्थ होगा। गुण हो या द्रव्य किसी हेतुसे पञ्चमी सम्भव। धूमात्में पञ्चमी साधु। ततः **गुणेऽस्त्रियां**=इस दूसरे विभागमें विभाषा आयेगी। **जाड्यात्** बद्धः इत्यादि। विभाषासे ही विकल्प सिद्ध था, गुणे अस्त्रियां व्यर्थ होकर प्रमाण बनेगें कि जो गुण नहीं, द्रव्य है, जो स्त्रीलिङ्ग है वहाँ भी कदाचित्पञ्चमी हो। अगुणका उदाहरण **धूमात्**=धूमसे अग्निवाला, अग्निज्ञानमें धूमहेतु है द्रव्य हैं। ततः पञ्चमी, स्त्रीलिङ्गसे पञ्चमीका प्रमाण। **नास्ति घटः** घड़ा नहीं है क्योंकि दिखाई नहीं पड़ता **उपलब्धिः प्राप्तिः दर्शनं, विज्ञानं तस्या अभावः अनुपलब्धिः अलाभः** नञ्= तत्पुरुष हेतु स्त्रीलिङ्ग है पञ्चमी हुई **अनुपलब्धेः। बाहुलकं प्रकृतेस्तनुः दृष्टेः वार्तिकं प्रमाणम्।**

ग्निमान्। नास्ति घटोऽनुपलब्धेः। (६०३) **पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम्। २। ३। ३२॥** एभिर्योगे तृतीया स्यात् पञ्चमीद्वितिये च। अन्यतरस्यां ग्रहणं समुच्चयार्थम्। पञ्चमीद्वितीया चानुवर्तते। पृथग्रामेण–रामं वा। एवं विना, नाना। (६०४) **करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्यासत्त्ववचनस्य। २। ३। ३३॥** एभ्यो-

---

। ६०३। **पृथक् विना** नाना (अलग), अभाव, अनेक अर्थवाचकशब्दके योग सम्बन्धमें तृतीया हो, उसके अभावपक्षमें पञ्चमी द्वितीया भी। अपादाने पञ्चमी, षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन, ऐनपा द्वितीया, पृथक् विना, ऐसा सूत्र पाठक्रम है। स्वरितकी प्रतिज्ञा न होनेसे षष्ठी नहीं आयेगी। पञ्चमी द्वितीया। अत्र शङ्का—सूत्रे **अन्यतरस्यां किमर्थं ? यतोहि यदा तृतीया न, तदा द्वितीया एव भविष्यति, सन्निहितत्वात्,** समीपमें हैं, पञ्चमी दूर है। षष्ठ्यतसर्थकी अनुवृत्ति नहीं। अतः पञ्चमीका संग्रह हो। **समुच्चयार्थम्=एकत्रीकरणार्थम्।** एक स्थलमें तीनों विभक्तियोंके संग्रहके लिए **अन्यतरस्यामिति अपठत्। अथवा मण्डुकप्लुत्या पञ्चमी संग्रहार्थं तत्। अथवा अन्यतरस्यां** गुरुयत्नसे व्यवधानमें मण्डूकप्लुतिसे संग्रहके लिए। यथा **पृथग्रामेण** रामसे अलग, रामप्रतियोगिक भेदवान् रामका अभाव अथवा उनसे भिन्न अर्थमें **पृथग्शब्दसम्बन्धे उक्तसूत्रेण तृतीया रामेण। पञ्चमी रामात्। द्वितीया रामम्।** इन विभक्तियोंका अर्थ भेद है। **पृथग्विनानाना त्रयो भेदार्थकाः। एवं विना रामेण, नाना रामं। रामस्य वर्जने** (विना) **नानासुखं नास्ति।** तोनोंमें योगमें भेद अर्थवाली विभक्ति **पृथग्विनान्तरेणार्थे हिरुग्नाना च वर्जने। विना नारी निष्फला लोक यात्रा। नो लाइफ विदाउट वाइफ,** नारीके विना नीरस संसार, अथवा **नाना नारी निष्फला लोकयात्रा।** बहुपत्नी बीहड़ संसार।

। ६०४। **करणे। स्तोक** (अनायास कम न्यून थोड़ा) अल्प, **कृश** (पतला-हल्का) **कृच्छ्र** (कठिन विकट असहनीय) **कतिपय,** ये चारो असत्व**वचनस्य=सत्वं द्रव्यं न वक्ति असत्ववचनः** जो द्रव्य अर्थ न कहे उनसे करण अर्थमें तृतीया हो, 'पञ्चमी भी। इस सूत्रमें अन्यतरस्यां आया, पञ्चमी भी। अतः पञ्चमीका विधान, पक्षे तृतीया सिद्धा एव। यथा **स्तोकेन** अनायासेन **स्तोकात् अल्पप्रयासात् मुक्तः बन्धनरहितो जातः।** आयास क्रियारूप है, न द्रव्यम्, **असत्ववाची स्तोकशब्दात्पञ्चमी। यदा न पञ्चमी तदा हेतौ तृतीया।**

ऽद्रव्यवचनेभ्यः करणे तृतीयापञ्चम्यौ स्तः। स्तोकेन स्तोकाद्वा मुक्तः द्रव्ये तु स्तोकेन विषेण हतः (६०५) **दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च** ।२।३।३५।। एभ्यो द्वितीया स्याच्चात्पञ्चमीतृतीये च। प्रातिपदिकार्थमात्रे विधिरयम्। ग्रामस्य दूरम्-दूरात्-दूरेण वा, अन्तिकम्—अन्तिकात् अन्तिकेन वा। असत्त्ववचनस्य इत्यनुवृत्तेर्नेह,

मुक्तिमें प्रयत्न कारण है थोड़े परिश्रमसे छूट गया। **अल्पेन अल्पात्तृप्तः। कृच्छ्रात्कण्ठः अभ्यसनं, कतिपयात्, कतिपयेन सम्मेलनं, द्रव्ये तु**=द्रव्य, वस्तु अर्थमें वर्तमान स्तोक अल्प आदिसे तृतीया ही होगी, पञ्चमी नहीं। यथा **स्तोकेन विषेण हतः**। थोड़े जहरसे मारा गया। हननका हेतु थोड़ा विष है, वहाँ द्रव्य अर्थमें विशेषण, द्रव्यरूप होनेसे स्तोकेन तृतीया हुई, पञ्चमी नहीं। **अल्पेन द्रव्येण मुक्तः कृच्छ्रेण=लौहदण्डेन ताडितः, कतिपयेन रूप्यकेण प्रीतः। कृत्स्नेन साधनेन न क्रीतः।**

।६०५। **दूर**=विप्रकृष्ट अर्थ और **अन्तिक**=समीपार्थवाचक शब्दसे द्वितीया हो, **चात्**=चकार पढ़नेसे पञ्चमी तृतीया भी। सन्निहित षष्ठी नहीं, व्याख्यानसे। इस सूत्रकी अनुवृत्ति 'सप्तमीअधिकरणे' च सूत्रमें होनेसे अधिकरणवाची शब्दसे भी विभक्तिचतुष्टय हों, यथा **दूरादावसथान्मूत्रं त्यज, दूरात्पादावनेजनम्** इस भाष्य प्रयोगसे अधिकरण अर्थमें ये (विधियाँ द्वितीया, तृतीया पञ्चमी, सप्तमी) चल पड़ीं। **आवसथ**=बस्ती निवासस्थानसे दूर मूत्र त्यागे। पाद-पैरका अवनेजं=प्रक्षालन भी दूर करे। आवसथ, दूर, पाद अधिकरण हैं, पञ्चमी प्रयोगसे सभी विधियाँ निर्णीत। **प्रातिपदिकार्थ**=जातिव्यक्तिलिङ्ग-संख्याकारक अर्थमात्रमें **अयं विधिः**=द्वितीया, तृतीया, पञ्चमीका व्याख्यान मान्य, प्रथमाको बाँधकर। क्योंकि प्रातिपदिकार्थमात्रे प्रथमा प्राप्त है। यथा **ग्रामस्य दूरं (गच्छति) दूरात् आयाति, दूरेण दूरे व्रजति**। ग्रामें प्रादिपदिकं तत्र **प्रथमा प्राप्ता, तां बाधित्वा दूरान्तिकार्थेभ्यः द्वितीया पञ्चमी तृतीया च**। दूर गुण है प्रधान है द्रव्यरूप नहीं, अतः कार्य हुए। **एवं समीपेऽर्थे अन्तिक-शब्दात् द्वितीया, तृतीया पञ्चमी ग्रामस्य अन्तिकं** गच्छति, **अन्तिकात् आपतति, आन्तिकेन, प्रभवति, आन्तिके तिष्ठति**। यदि दूरसे विभक्ति लायेगें, तब दूरः पन्थामें विभक्तियाँ क्यों नहीं आतीं ? **असत्ववचनस्य**=**सत्वं द्रव्यं लिङ्गसङ्ख्यान्वयि। न सत्वमुच्येते असत्ववचनः तस्य। गुणवाची है,** क्रिया-

दूरः पन्थाः। —०— इति पञ्चमी —०— ** अथ षष्ठी **—

(६०६) **षष्ठी शेषे। २। ३। ५०॥** कारकप्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादिसम्बन्धः शेषः। तत्र षष्ठी स्यात्। राज्ञः पुरुषः।

वाचीसे विभक्तियाँ हों, द्रव्यवाचीसे नहीं। पन्था द्रव्यवाची है उसका विशेषण दूरशब्द भी द्रव्यरूप है दूर कौन है पन्था ही। दूर द्रव्यमें विशेषण है **इति पञ्चमी।**

अथषष्ठी। ६०६। **शेषे**=अवशिष्टे-बाकी बचे अर्थमें षष्ठी हो। **उक्तादन्यः शेषः**, कहे गये कर्मणि द्वितीया आदिविधि सूत्रोंमें **कर्म** फलका आश्रय, **कर्ता**-क्रियाश्रय, **करण**-क्रियाफलसिद्धिमें सहायक, **सम्प्रदान**-क्रियाके फलाश्रय कर्मका उद्देश्य अर्पण जिसको हो, **अपादान**=क्रियाका जिससे अलगाव हो, **अधिकरण**-कर्ताकर्मके सहारे क्रिया कर्मके आधार हों, आदि कहे जा चुके हैं प्रथमाके विधानमें प्रातिपदिकार्थ मात्रे=जाति व्यक्ति लिङ्ग सङ्ख्याकारक परिणाम आदि कहे गये है। यह अर्थ **कारक** कर्ता कर्म आदि **प्रातिपदिकार्थसे व्यतिरिक्त**=बँचा हुआ, शेषका सम्बन्ध अर्थः। स्वस्वामी-(कृष्णस्य भक्तः) अन्यजनक (पितुः पुत्रः) आधार आधेय (कटे आस्ते) प्रतियोगि अनुयोगि (राज्ञः पुरुषः) उपमान उपमेय (चन्द्रस्य सदृशं मुखं) गुरु शिष्यः गुरोः शिष्यः (सेवक सेव्य) गोविन्दस्य सेवकः (उपकार्य उपकारक) आश्रमस्य रक्षकः आदिके सम्बन्ध शेषका अर्थ है। **एकशतं षष्ठयर्थाः इति भाष्यम।** यह सामान्य सम्बन्ध है, कारकसम्बन्ध विशेष है। **असति बाधके सम्बन्धो विशेषरूपेण सामान्यरूपेण च भाषते। नहि निर्विशेषं सामान्यमिति। निर्गतः अनपेक्षित कर्मकरणादिविशेषार्थो यस्मात्तत्सामान्यम्** जहाँ कारकसम्बन्ध स्पष्ट न हो। केवल सम्बन्ध ही समझमें आता हो, शेष षष्ठी। **मातुः स्मरति देवदत्तः।** जहाँ माताका स्मरणमात्र होगा तब कर्मणि द्वितीया होगी। राज्ञः पुरुषः में स्वामिसेवकभाव खुलनेसे विशेषसम्बन्ध। जहाँ सेवकस्वामि, जनकजन्य न जान पड़े, किन्तु सम्बन्धमात्र हो उस सामान्य सम्बन्धसे षष्ठी हो। यथा **राज्ञः पुरुषः।** राजाका पुरुष। स्वामीका सेवक, सेव्यसेवक, स्वस्वाभिभाव सामान्य निर्विशेष सम्बन्धअर्थमें षष्ठी राज्ञः। राजाके आश्रयमें स्वामित्व है सेवकत्व सम्बन्धका आश्रयः पुरुषः। आश्रयत्वकी आकाङ्क्षासे ज्ञातपुरुष प्रधान, विशेष्य मुख्य है। राजा आधारः, सम्बन्ध उसमें विशेषण आधेय है।

कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव । सतां गतम् । सर्पिषो

प्रत्ययार्थ प्रकृत्यर्थके प्रति प्रधान है । **प्रकृतिप्रत्ययौ सहार्थं ब्रूत तयोः प्रत्यार्थः प्रधानम्** । वह सम्बन्ध पुरुषमें विशेषण । इसका फल है कि पुरुषशब्दसे षष्ठी न होना । **अप्रधानं शेषश्च न, शुक्लः घटः, पीतः पटः, श्यामः,** इत्यादिके सभी विशेषणमें षष्ठी होने लगेगी । पुरुष विशेष्य है, राजा विशेषण जो स्वामि-सेवक सम्बन्धका प्रतियोगी आश्रय । **प्रति=उद्दिश्य युज्यते सम्बध्यते इति प्रतियोगी** । सम्बन्धका जो उद्देश्य है । पुरुष अनुयोगी । अनु पश्चात् युज्यते सम्बध्यते प्रतियोगीसे षष्ठी । यदि पुरुषको सम्बन्धका आधार मानें । स्वामित्वरूप सम्बन्धका आश्रय राजा हो, तब पुरुषस्य राजा सम्भव । **कर्मादीनमपि** कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान आदि कारकोंका भी केवलसम्बन्धमात्र अर्थ समझमें आये, विशेषकी विवक्षा न हो, तब षष्ठी होती ही है । जो कारक नहीं । भाष्यमें **कर्मत्वादीनामविवक्षा शेषः** । यथा **सतां गतं सज्जनसम्बन्धि-गमनं**, सज्जन व्यक्तिका गमनक्रियाके साथ केवल सम्बन्धमात्र अर्थः, अतः षष्ठी । यदि गमनक्रियाका कर्ता सत्पुरुष हो, तब कर्तरि तृतीया, **सद्भिर्गतं, कृदन्त सम्बन्धे षष्ठी न, न लोकाव्यय इति निषेधात्** । **सन्तः तिष्ठन्तिका** कर्ता अर्थ, क्रियाकारकसम्बन्धमात्र नहीं है । अतः उक्ते कर्तरि प्रथमा सन्तः । **सर्पिषो जानीते** (दालमें) घी पड़ा है यह जानकर **सर्पिषा उपायेन प्रवर्तते** । घीके लोभसे खाता है । सर्पिः करण है केवल सम्बन्धअर्थमें षष्ठी **सर्पिषः** । घी सम्बन्धिनी इच्छा । **केचित्कर्मणः शेषत्वविवक्षायां षष्ठी** । घीसम्बन्धिज्ञानं, **मातुः स्मरति** माँकी याद करता है स्मरणक्रियाका कर्म माता । केवल सम्बन्ध अर्थ खुल रहा हैं, तब **षष्ठी मातुः** । **देवदत्तकर्तृकं मातृसम्बन्धिस्मरणम् एधोदकस्य, एधांसि च दकं च उपस्कुरुते** लकड़ियां जलके गुणको ग्रहण करतीं है । दक शब्द उदकका पर्याय, **भुवनममृतं जीवनं स्यादृकञ्च** । सकारान्त **काष्ठदारु ईन्धनं त्वेधः इध्मेधः समित्स्त्रियाम्** । **एधः** । **दकस्य** । **यथा एधांसि समिद्धोऽग्निः** हलायुधः । अथवा एधाः **पक्ष्यन्ते** लकड़ियाँ पकायेंगी । भाष्य प्रमाणसे **अकारान्त एधः** । **एधाश्च उदकानि च अनयोः समाहारः जातिरप्राणि-नामकेवद् एधोदकं**, लकड़ी जल दोनों एक दूसरेके गुणको ग्रहण करते हैं । **शोषणगन्धः द्रव्यधनादिना परिष्कुरुते** । **गन्धनआदि सूत्रसे आत्मनेपद** । उपा-

जानिते । मातुः स्मरति । एधोदकस्योपस्कुरुते । भजे सम्भोश्चरणयोः । फलानां तृप्तः । (६०७) **षष्ठी हेतुप्रयोगे । २ । ३ । २६ ॥** हेतुशब्द प्रयोगे हेतौ द्योत्ये षष्ठी स्यात् । अन्नस्य हेतोर्वसति । (६०८) **सर्व-नाम्नस्तृतीया च । २ । ३ । २७ ॥** सर्वनाम्नो हेतुशब्दस्य च प्रयोगे

त्प्रतियत्नेसे सुट् । एधः कतृं उदकं परिष्क्रियते । सम्बन्धमात्रकी इच्छासे षष्ठी । **निम्बकरञ्ज चन्दन तिक्त विशेष । प्रज्वलिते तप्तोकदस्य गुणविशेषः ।** यदि शेषत्व=सम्बन्धमात्र विवक्षामें षष्ठी होगी तब **ज्ञोऽविदर्थस्य करणे अधिगर्थ-दयेशां कर्मणि, कृञः प्रतियत्ने, आशिषिनाथः,** इत्यादि सूत्र व्यर्थ होगे, शेषषष्ठी होनेसे तन्न' उनका फल सर्पिषो ज्ञानं, मातुः स्मरणम् में समासनिषेध है । क्योंकि **प्रतिपदविधाना षष्ठी न समस्यते ।** इष्टके अनुरोधसे षष्ठी समाप्त नहीं होगी । **कारकैर्व्यपदिष्टे च श्रूयमाण क्रिये पुनः । प्रोक्ता प्रतिपदं षष्ठी समासस्य निवृत्तये ।** कारकका व्यवहार सूत्रमें बना हो, क्रिया उच्चारित हो, वह षष्ठी प्रतिपदविधाना है । समास रोकनेके लिए । **पदं पदं प्रति पदं** सूत्रमें उच्चारित धातुके योगसे विधानकी गयी । शेषकी इच्छामें सर्पिषो ज्ञानं मातुः स्मरणं होता ही है । **हरिः स्मरणम्** इत्यादिमें शेषकी अविवक्षा करके समाससामान्य । **भजे शम्भोश्चरणयोः ।** शिवके चरणोंका भजन सेवन करता हूँ । चरण भजन क्रियाका कर्म है, केवल सम्बन्धकी इच्छामें षष्ठी । शिवचरण सम्बन्धी अर्थ । **फलानां तृप्तः**=फलोंसे पेट पूर्ण हुआ । तृप्तिमें करण (साधन) फल है उसमें केवल सम्बन्ध अर्थकी इच्छा होनेसे षष्ठी **फलानां** (फलसम्बन्धिनी) तृप्तिः ।

। ६०७ । **षष्ठी** हेतु प्रयोगे । हेतौ अनु० । वाक्यमें हेतुशब्दका प्रयोगकरके हेतु-कारण अर्थ प्रकाशित करना हो, तब हेतुभूतशब्दसे षष्ठी हो । हेतौ तृतीया को बाँधकर । यथा **अन्नस्य हेतोर्वसति ।** अन्नके कारण निवास करता है, इस वाक्यमें हेतुशब्दका प्रयोग है, अन्न निवासका हेतु है, उसे प्रकाशित करनेके लिए अन्नस्य षष्ठी । यदि हेतुशब्दका प्रयोग न हो तब षष्ठी नहीं । यथा अन्नेन वसति । हेतु अर्थ प्रकाशित हो, ऐसा क्यों ? अन्नस्य हेतोः तुभ्यं नमः । इस वाक्यमें तुभ्यंके युष्मदसे षष्ठी न हो जाय ।

। ६०८ । **सर्व**—सर्वनाम और हेतुशब्दका प्रयोग हो, तब—हेतु कारण प्रकाशिका तृतीया हो षष्ठी भी । किससे हो ? **सन्निहित** समीपस्थ सर्वनाम और हेतुवाचक शब्दसे । यथा **केन हेतुना वसति ।** किस कारणसे ठहरा है ।

हेतौ द्योत्ये तृतीया स्यात् षष्ठी च । केन हेतुना वसति । कस्य हेतोः । 'निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम्' (वा १४७३)। किं निमित्तं वसति, केन निमित्तेन, कस्मै निमित्ताय इत्यादि । एवं किं कारणम्' को हेतुः, किं प्रयोजनम् इत्यादि । प्रायग्रहणादसर्वनाम्नः प्रथमाद्वितीये न स्तः । ज्ञानेन निमित्तेन हरिः सेव्यः । ज्ञानाय निमित्ताय इत्यादि

(६०९) **षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन । २ । ३ । ३० ।।** एतद्योगे षष्ठी स्यात् ।

केन—किं सर्वनामसे बना है, हेतुशब्दका प्रयोग भी है तृतीया केन, पक्षे षष्ठी कस्य हेतोः वसति । षष्ठी और तृतीया दोनोंसे कारण अर्थ प्रकाशित । **सर्वनाम्नः**-यहाँ षष्ठी है, यदि पञ्चमी होती तब हेतुशब्दसे षष्ठी न हो पाती (वा०) **निमित्तकारण हेतु** प्रयोजन **अर्थ**, । इन पर्यावाची शब्दोंका प्रयोग होनेपर भी **समानाधिकरण**=समानविभक्तिके लिए निमित्तके पर्यावाची सभी **शब्दोंसे** सभी विभक्तियोंका प्रायः **दर्शन** होता है । कही नहीं भी होता । **यथा किं** (प्रथमा) **निमित्तः निवासः**, (रुकनेका क्या कारण है) अर्थे द्वितीया । किस करणसे, केन निमित्तेन-तृतीया कस्मैनिमित्ताय किस मतबलके लिए । **कस्मात् निमित्तात्** किस अर्थसे, कस्य निमित्तस्य, कस्मिन्निमित्ते सप्तमी निमित्तशब्दके प्रयोगसे सभी विभक्तियाँ सर्वनामसे प्रदर्शित हुई । पर्याय ?ड़नेका प्रयोजन फल बोले—**एवं किं कारणं, न पठसि । केन कारणेन, कस्मै** कारणाय, **कस्मात्कारणात्, कस्य कारणस्य कस्मिन्कारणे । एवंको हेतुः कं हेतुं, केन हेतुनां, कस्मात् हेतोः, कस्मिन्हेतौ । एवं किं प्रयोजनं, केन प्रयोजनेन कस्मै प्रयोजनाय** इत्यादि । वार्तिकमें **प्रायः क्यों पढ़ा** ? इसलिए कि जहाँ सर्वनामका प्रयोग न हो वहाँ प्रथमा द्वितीया विभक्ति न हो । यही प्रायः ग्रहणका फल है । जैसे **ज्ञानेन निमित्तेन**-भावुकताके कारण भगवान (सेवितुं योग्यः सेव्यः) पूजनीय है । इस वार्तिकके व्यापकप्रभावसे पूर्वके दो सूत्र गतार्थ है । **ज्ञानायमें चतुर्थी । ज्ञानात्, ज्ञानस्य ज्ञाने** । प्रथमा द्वितीयाका न होना फल ।

। ६०९ । **षष्ठी** अतसर्थप्रत्ययके योग—सम्बन्धमें षष्ठी हो । दिक्शब्देभ्यः-सूत्रसे प्राप्त दिशायोग पञ्चमीको बाँधकर । **सप्तमी पञ्चमी-प्रथमाभ्यः दिग्देशकालेषु स्तातिः" सूत्रसे लेकर "अाहि च दूरे" उत्तराच्च** सूत्र तक दिशा देश-

'दिक्शब्द–, (सू ५६५) इति पञ्चम्या अपवादः । ग्रामस्य दक्षिणतः, पुरः, पुरस्तात् उपरि, उपरिष्टात् । (६१०) **एनपा द्वितीया ।** २ । ३ । ३१ ॥ एनबन्तेन योगे द्वितीया स्यात्, एनपा, इति योग-

---

काल अर्थमें वर्तमानशब्दसे स्वार्थमें प्रत्यय कहे गये । उनके बीच **दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच्** (अतस्) प्रत्ययका अर्थ अतसर्थ है । यद्यपि अतसर्थ प्रत्ययोमें अस्ताति प्रथम है तथापि लाघवानुरोधसे अतसर्थ ही पढ़ा । **अन्यारादि**–इस सूत्रके दिक् शब्दसे कही हुई पञ्चमीका बाधक है । **पश्चात्त्स्यते** भाष्य प्रयोगसे पञ्चमी भी साधुः । **ग्रामस्य दक्षिणतः** दिशावाची दक्षिणशब्दात्सप्तमी, पञ्चमीं, प्रथमा अन्तमें ऐसे दिशा काल अर्थमें वर्तमान दक्षिणशब्दसे **अतसुच्** । **दक्षिणतः** । जिसका अर्थ **दक्षिणस्यां दक्षिणस्याः दक्षिणा वा दिक्** । इस प्रकार देशकालवाची शब्दकी उपस्थितिमें **ग्रामस्य इत्यत्र षष्ठी, उक्त सूत्रेण जातः । पुरः ग्रामस्य**, गाँवके पूर्वदिशामें, पूर्वदिशाका, पूर्वदिशा । **पूर्वशब्दात् अस्तातिः (दिशादेशकाल) अर्थे पुतस्तात् पूर्वाधरावराणामसिपुरधवश्चैषमिति असि प्रत्यये । पूर्वास्थाने** पुर **आदेशे पुरस रु० वि० पुरः पूर्वस्याः । ग्रामस्य पुरस्तात्** अर्थ पूर्ववत् । पूर्वशब्दसे अस्तातिप्रत्यय पूर्वस्थाने पुर आदेशः । ग्रामस्य पुरः । गाँवका पूर्वदेशमें, देशका पूर्वदेश अर्थः । गाँवके पूर्वकालमें, कालका पूर्वकाल अर्थः । **ग्रामस्य ऊपरि**=गाँवके उर्ध्वायां दिशि, उर्ध्वायाः दिशः, उर्ध्वादिक् । ऊपर दिशामें, दिशाका' उर्ध्वदिशा अर्थः । **ऊपरि–उपरिष्टात् सूत्रेण रिष्टातिल्प्रत्यये** । अथवा **रिल्प्रत्यये । उर्ध्वस्थाने उप आदेशे रिल् । उपरि रिष्टातिल् उपरिष्टात्** । उपरिदेश स्वर्गलोक, गोलोक वैकुण्ठलोक आदिमें, का उर्ध्व देश । एवं उर्ध्वकालमें, कालका, उर्ध्वकाल अर्थ :

। ६१० । **एनपा** अदूर—समीप अर्थवाचक एनप्प्रत्ययान्त शब्दके योग–सम्बन्धमें द्वितीया हो । षष्ठी अनु०, पूर्व सूत्रात् । यद्यपि षष्ठ्यतसर्थ–सूत्रसे प्राप्त षष्ठी नित्य है, द्वितीया कैसे ? तब बोले–**एनपा** के **योग**=सूत्रविभाग, अलगावसे एकविभागका अर्थ होगा, **एनबन्तेन योगेषष्ठी स्यात्** एनप्प्रत्ययान्तके सम्बन्धमें षष्ठी हो । द्वितीया–दूसरेभागमें एनपा आया अर्थ होगा कि **एनबन्तेन योगेन द्वितीया स्यात्** किसी भी एनप्प्रत्यायान्तके सम्बन्धमें द्वितीया एवं षष्ठी दोनों हों । **दक्षिणेन**=गाँवके दक्षिण भागके **अदूर**=समीपमें ।

विभागात्षष्ठ्यपि। दक्षिणेन ग्रामं-ग्रामस्य वा। एवम् उत्तरेण। [६११] **दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम्। २। ३। ३४॥** एतैर्योगे षष्ठी स्यात्पञ्चमी च। दूरं निकटं ग्रामस्य-ग्रामाद्वा। (६१२) **ज्ञोऽविदर्थस्य करणे। २। ६। ५१॥** जानातेरज्ञानार्थस्य करणे शेष-

---

समीपका दक्षिण तरफ, **एनबन्यतरस्याम् अदूरेऽर्थे एनप्। दक्षिणस्याम् अदूर** इत्यर्थः। **एवमुत्तरेण ग्रामं ग्रामस्य वा।** गाँवके उत्तरदिशाके पासमें, का। अदूर अर्थमें एनप्, **उत्तरेण** उत्तरस्याम् उत्तरदिशाके पास। देशकालमें एवं **पूर्वेण ग्रामं ग्रामस्य** (गाँवके पूर्वदिशाके पासमें) पूर्वस्यां दिशि अर्थः। दिशाशब्दसे एनप् हो तब भाष्यमें षष्ठीको असाधु कहा। कारण एनपा द्वितीयाके बाद षष्ठचतसर्थ सूत्र पढ़ा। अनुवृत्ति नहीं होगी।

। ६११। दूर-विप्रकृष्ट **अन्तिक**-समीपअर्थवाचक शब्दोंके सम्बन्धी शब्द से षष्ठी हो, अन्यतरस्यां=विकल्पसे। षष्ठीके अभावमें अपादाने अर्थे पञ्चमी (अनुवृत्तिकर्तृ) होगी। यद्यपि एनपा-द्वितीया पृथग्विनानाना की तृतीया, सन्निहित है, उनकी अनुवृत्ति नहीं होगी, व्याख्यानसे। यथा **ग्रामस्य ग्रामद्वा** दूरं निकटं, गाँवसे दूर या पास अर्थवाचक शब्दनिकट **सम्बन्धे षष्ठी ग्रामस्य पञ्चमी ग्रामात्।** यद्यपि **तत्रागारं धनपति गृहादुत्तरेणास्मदीयं, दूराल्लक्ष्यं सुरपति धनुः चारुणा तोरणेन।** उत्तरेणमें तृतीया कैसे? एनप् नहीं है। तोरणेनके साथ समानताके लिए।

। ६१२। **ज्ञः अविदर्थस्य** ज्ञाधातुका अनुकरण षष्ठीका एकवचन ज्ञः ज्ञानका, अर्थ। **विद् ज्ञानमर्थो यस्य स विदर्थः।** ज्ञान अर्थवाला स न भवति। ज्ञान अर्थ न हो **अविदर्थः, तस्य ज्ञानार्थकभिन्नस्य**=ऐसे ज्ञा धातुके जो अज्ञानार्थक है उसके करणमें **शेषत्वेन**=सम्बन्धकी (विवक्षा सञ्जाता अस्य विवक्षितः) इच्छा होनेपर षष्ठी हो। यथा **सर्पिषो ज्ञानं** घीके कारण प्रवृत्ति अर्थः, ज्ञान अर्थ नहीं, **अविदर्थः**=ज्ञान अर्थ रहित है। किन्तु प्रवृत्ति अर्थ होनेसे प्रवृत्तिका करण घी है। **सर्पिषः षष्ठी। वस्तुत करणस्थानापन्न सर्पि तत्सम्बन्धिनी प्रवृत्तिः।** अविदर्थ कहनेसे ज्ञा अवबोधने धातुका लक्षणासे ज्ञानपूर्वकप्रवृत्ति अर्थः। यद्यपि "षष्ठी शेषे" सूत्रसे षष्ठी सिद्ध थी, यह सूत्र क्यों पढ़ा? **समाधान**--प्रतिपदविधाना षष्ठी न समस्यते, वचनसे षष्ठीसमास

त्वेन विवक्षिते षष्ठी स्यात्। सर्पिषो ज्ञानम्। (६१३) **अधीगर्थ-दयेशां कर्मणि। २। ३। ५२॥** एषां कर्मणि शेषे षष्ठी स्यात्। मातुः स्मरणम्। सर्पिषो दयनम्, ईशनं वा। (६१४) **कृञः प्रति-**

रोकनेके लिए। इसी तरहसे अन्यसूत्रोंका प्रयोजन परखें। क्योंकि ये सूत्र व्यर्थ होकर नियम करेगें कि उनसे हुई षष्ठीका लोप समास द्वारा न हो। अतः सर्पिषो ज्ञानं आदि स्थलमें ग्यारह सूत्रोंसे विहित षष्ठीके साथ समास नहीं होता। **प्रोक्तं प्रदिपदं षष्ठी समासस्य निवृत्तये।** ग्यराह सूत्रोंकी षष्ठी प्रतिपद-विधाना मानी गयी, उसका मूलकारण समासनिवृत्ति है। अतः वार्तिक पढ़ा? यदि उन उदाहरणोंमें कारकोंकी शेषत्व विवक्षा न हो, तब कर्तृकर्मणोः क्षादिकी षष्ठी समस्त होगी। ऐसे पदोंमे कृद्योग षष्ठी मान्य। यथा **हरि-स्मृतिः सर्वविपत्तिनाशिनी लोकेश-चैतन्यमयादिदेव। हरेः स्मृतिः, लोकानामीशः षष्ठी समासः सिद्धः।**

। ६१३। **अधीगर्थ**–ईश, क्रमशः स्मरण दान गति रक्षण हिंसा कथ इनके कर्ममें शेषे=सम्बन्ध अर्थकी इच्छामें षष्ठी हो। अधिपढ़नेका फल **"इङ्-इकौ" अधिउपसर्गं न व्यभिचरतः।** स्मरणार्थक इक् धातु अधिपूर्वक नित्य है **तस्य अर्थ इव अर्थो यस्य सो अधीगर्थः।** षष्ठी शेषे अनु०। यथा **मातुः स्मरणम्।** माताका स्मरण। स्मरणक्रियाका माता कर्म है। उसमें सम्बन्ध-मात्र अर्थकी इच्छा हुई तदा सूत्रेण षष्ठी मातुः। कर्मीभूतमातृसम्बन्धी स्मरण। कर्म न कहते तब करणमें षष्ठी होती, **मातुर्गुणस्मरणं,** गुणकरण उससे षष्ठी न हो जाय। शेष षष्ठी हो, समासके लिए। **सर्पिषोदयनं** घी-सम्बन्धी पर दया, नष्ट न हो जाय, दयन=दयाक्रियाका कर्म सर्पिष उससे सम्बन्ध अर्थमें षष्ठी। दयधातु दान-गति-रक्षण हिंसा आदान दया अर्थमें विराजमान है। कर्ममें षष्ठी यद्यपि **दीनान्दयते** दुःखियोंपर दया करते हैं। **दुखात् दूरीकर्तुमिच्छति। परदुःखापहरणस्य, इच्छा दया। ईशनं ईश ऐश्वर्ये,** ईश्वरभाव स्वामित्व। अधिकार अर्थक ईशधातुके कर्म सर्पिषःमें षष्ठी, शेष अर्थे' वस्तुतः कर्मीभूतसर्पिः सम्बन्धी यथेष्टविनियोग पर भी इच्छानुसार अधिकार। यह सूत्रभी समासनिषेधके लिए। लोकान् ईष्टे। **स्वेच्छया अनु-शासनं करोति।**

। ६१४। **कृञः।** कर्मणि शेष अनु०। **प्रतियत्नः** विपरीतक्रिया (गुणग्रहण

यत्ने । २ । ३ । ५३ ॥ प्रतियत्नो गुणाधानं कृञः कर्मणि शेषे षष्ठी स्याद् गुणाधाने। एधोदकस्योपस्करणम् । (६१५) **रुजार्थानां भाववचनानामज्वरेः । २ । ३ । ५४ ॥** भावकर्तृकाणां ज्वरिवर्जितानां रूजार्थानां कर्मणि शेषे षष्ठी स्यात् । चौरस्य रोगस्य रुजा। 'अज्वरिसन्ताप्योरिति वाच्यम्' (वा १५०७] रोगस्य चौरज्वरः

या गुणस्थान) कृञ् धातुके कर्म (उत्पत्तिरूपफलका आश्रयवाचक शब्दसे ऐसे शेषे=सम्बन्धे अर्थे षष्ठी हो। यदि गुणका आधान स्थापन या ग्रहण होता हो। यथा **एधश्च दकञ्च एधोदकं,** सान्त। या अकारान्तपुलिङ्ग एधश्च उदकश्च द्वन्द्वः। **एधोदकं तस्य उपस्करणम्।** उपपूर्वककृधातुका एक दूसरेका गुणग्रहण अर्थः। खश या चन्दनकी लकड़ीका गुण जल ग्रहण करता है। जलका गुण उष्णता शीतलता लकड़ी ग्रहण करती है। उपस्करणमें कृका कर्म एधोदक है सम्बन्धे अर्थे षष्ठी । गुणाधान फलका आश्रय एधोदक=लकड़ीजल-सम्बन्धी परिष्करण स्थापन ।

। ६१५ । **रुजा रोगः पीडा इत्यर्थो येषां भाववचनानां, वक्तीति वचनः।** बोलनेवाला, कर्तरि लट्, कर्ता अर्थ इष्ट नहीं है। भाव. क्रिया (धातुका अर्थ) **वचनः कर्ता येषां भावकर्तृकाणां**=धात्वर्थक्रिया ही कर्ता हो, **अज्वरे=ज्वर-वर्जितानां** बुखाररूप रोगरहित व्याधि पीड़ा भय, कम्पन, चिन्ता घबराहट, खाँसी आदि रोगके अनुकूल क्रिया वाचक रुजधातुके कर्ममें शेषे सम्बन्धेअर्थे षष्ठी हो। सूत्र भी समासाभावार्थ है। यथा **चौरस्य रोगस्य रुजा। व्याधिकृत सन्ताप आदिः पीडा उच्यते। रोगः चौरं सन्तापादिना पीडयति।** खाँसी दमा रूप रोग चोरको तड़फाकर कष्ट देता है। **रोग कर्तृका पीडा अथवा पीडाश्रय भूत चौर गत** सन्तापादिः। भावघञन्तसे वना रोग शब्द शरीरक्षय आदि विकार विवक्षित है। वह रोग रुजका अर्थ है। कर्ता भी उसका कार्य चौर। **शेषत्व- विवाक्षायां षष्ठी।** जहाँ शेषे षष्ठी वहां समास नहीं। **रोगस्य चौररुजा अत्र समासो न भवति।** व्याधिसे सन्ताप पीडा व्यथा रुजा का अर्थ (वा०) **अज्वरि**=ज्वर-रोग सन्ताप आतङ्क पीडाको छोड़कर रुज धातुके अर्थक्रिया (रोगानुकूलव्यापर) रोग खाँसी श्लेष्माके अनुकूलक्रिया हो, तबकर्ममें शेष षष्ठी मान्य। **रुजो भङ्गे** भिदादिपाठ, निपातनसे अङ् टाप् **रुजा व्याधि पीडा** रोगसे हुआ। चोर सम्बन्धीज्वर या सन्ताप पीडा। **चौरस्य ज्वरः**

चौरसन्तापो वा । रोगकर्तृकं चौरसम्बन्धि ज्वरादिकमित्यर्थः । **(६१६) आशिषि नाथः । २ । ३ । ५५ ॥** आशीरर्थस्य नाथतेः शेषे कर्मणि षष्ठी स्यात् । सर्पिषो नाथनम् । 'आशिषि इति किम् ? माणवकनाथनम् । तत्सम्बन्धिनी याच्ञेत्यर्थः । **(६१७) जासिनिप्रहण-**

चौरज्वरः । शेषषष्ठी होकर समास होता ही है । **चौरस्य सन्तापः चौरसन्तापः** यहाँ भी शेषे षष्ठी होने पर समास । 'रुजार्थानां' से षष्ठी नहीं होगी । यदि अज्वरिसन्ताप्योः न कहते तब रुजार्थानां भाववचनानां सूत्रसे कर्म अर्थमें चोर शब्दसे षष्ठी होती, तब प्रतिपदविधाना षष्ठीके साथ समासका निषेध होता । **रोगकर्तृकः चोरसम्बन्धी ज्वरः सन्तापो वा ।** चोरी करने आया चोर खांसी दमासे पीड़ित हो रहा है । उस पीडाका कर्ता रोग है चोर कर्म है । ज्वर सन्ताप रुजार्थक, रोगात्मक भावकर्तृक होनेसे उनके कर्ममें शेषषष्ठी नहीं हुई, किन्तु **कर्तृकर्मणोः कृतिः**से षष्ठी या **शेषे षष्ठी** । अतः **चौरज्वरः चौरसन्तापः**में समास होता ही है । **भावकर्तृक क्यो कहा ? श्लेष्मणः=रोगकर्तृकः चोरसम्बन्धिनी पीडा । मायुः पितः कफः श्लेषमः ।** उक्तसूत्रेण यहाँ षष्ठी होती, समास न होता ।

। ६१६ । **शेषे** कर्मणि अनु० । **आशीः**=फल प्राप्तिके लिए पर प्रेरणा शुभकामना अर्थवाचक, नाथ धातुके कर्मसे सम्बन्धे अर्थे षष्ठी । जो समासाभावके लिए है । यथा **सर्पिषो नाथनम्** । आशीर्वादार्थक नाथ धातुसे भावे ल्युट् यु-अन् । **इदं सर्पिर्मे भूयात्** । यह घी मेरे पास हो जाय, ऐसी इच्छा आशासन मनोरथसिद्धि हैं । **तदेव आशीः नाथतेरर्थः । कर्मीभूतसर्पिः । आशासनं** नाथका कर्म **सर्पिष इत्यस्मात्सम्बन्धेऽर्थे षष्ठी** क्यों कहा ? इसलिए कि याञ्चा——मागने अर्थमें नाथधातुके कर्ममें षष्ठी न हो । **माणवकस्य नाथनं** बालकसे मांगना, यह नाथका अर्थः । आशीः अर्थ नहीं प्रतिपदविधाना षष्ठी नहीं हुई । किन्तु षष्ठी शेषे, अतः समास हुआ । माणवक सम्बन्धिनी याञ्चा ।

। ६१७ । **जासि नि प्रहरण**, नाट, क्राथ, ये धातु हिंसा अर्थमें विराजमान हों, तब इनमें शेषे षष्ठी हो । जसु ताडने, जसु हिंसायां चुरादिः स्वीकृत, हिंसार्थक होनेसे । जसु मोक्षणे दिवादि नहीं, हिंसार्थक न होनेसे । जासि

नाटक्राथपिषां हिंसायाम् । २ । ३ । ५६ ॥ हिंसार्थानामेषां शेषे कर्मणि षष्ठी स्यात् । चौरस्योज्जासनम् । निप्रौ संहतौ विपर्यस्तौ व्यस्तौ वा । चौरस्य निप्रहणनम्–प्रणिहननम्–निहननम्–प्रहणनं वा । 'नट अवस्कन्दने' चुरादिः । चौरस्योन्नाटनम् । चौरस्य क्राथनम् । वृषलस्य पेषणम् । 'हिंसायाम्' किम् ? धानापेषणम् । (६१८) **व्यवहृपणोः समर्थयोः** । २ । ३ । ५७ ॥ शेषे कर्मणि षष्ठी स्यात् ।

ण्यन्त निर्देशसे । यथा **चौरस्य उज्जासनं चोरसम्बन्धिनीहिंसा,** उजाड़ना (सफाई करना) उत्पूर्वक ताडन-हिंसार्थक जस धातुसे ल्युट् आदि, **उज्जासनस्य, कर्म चौरः शेषविवाक्षायां षष्ठी । यस्य फलं समासस्य न भवनम् । निप्रहरणं निप्रौ**=हन धातुके पूर्वमें नि और प्र **संहतौ**=संयुक्त, एक साथ रहें, निप्र हन्के वीच समास हुआ हो । अथवा **विपर्यस्तौ**– प्र नि बदलकर उलटकर हो । अथवा **व्यस्तौ**=अलग-अलग केवल प्र, नि भी लिए जाँय, व्याख्यानसे । क्रमशः उदाहरण–प्रथम समस्त–सङ्घातका उदाहरण **चौरस्य निप्रहणं चोरसम्बन्धी** हननक्रियाका कर्म चोर, उससे उक्तसूत्रेण षष्ठी । हन्तेरत्पूर्वस्य षत्वं, निपूर्वकहन्धातोः भावे ल्युट् (अने) विपर्यस्त क्रमबदल **प्रणिहनन, चौरस्य** नेर्गदनदपतपद–सूत्रेण णत्वं, हन्के नको ण नहीं हुआ । अट्-कुप्वाङ्के नियमसे । व्यस्त अलग-अलग उदाहरण–**चौरस्य निहननं चौरस्य प्रणि हननं** चोरसम्बन्धी हिंसा सभीका अर्थ । नट अवस्कन्दने । सूत्रमें नाट पढ़नेसे उपसर्गबलात् हिंसार्थक नटधातु लिया जायगा । नट नृत्तौ नहीं, दीर्घ निर्देशसे । **चौरस्य उन्नाटनं** चोरोंका उजाड़ना अर्थे कर्ममें षष्ठी । **चौरस्य क्राथनं** चोर सम्बन्धी हिंसा (क्रथ हिंसायां घटादिः मित्) तथापि मितां ह्रस्व नहीं, दीर्घ निपातनसे । **वृषलस्य पेषणं** शूद्रसम्बन्धी हिंसा, पेषण-पीसना क्रियासे (पिष्लृ पेषणे) कर्म, षष्ठीसे समासनिषेध । सूत्रमें हिंसा अर्थ क्यों ? जासिनि-आदि सूत्र हिंसा अर्थ रहनेपर ही कर्ममें षष्ठी स्वीकार करते है ऐसा क्यों ? कि **धानापेषणं** धानकी पिसाई आटा पीसना, यहाँ पेषण क्रिया है । किन्तु हिंसा प्राणवियोग परपीडाके अनुकूलक्रिया अर्थ नहीं । अन्नके अचेतन खाद्य होनेसे हिंसा नहीं । समास निषेध के लिए षष्ठी न हो जाय, अतः हिंसा पढ़ा ।

। ६१८ । **व्यवहृ**=वि अव पूर्वक हृधातु और (पण स्तुतौ व्यवहारे च

द्यूते क्रयविक्रयव्यवहारे चानयोस्तुल्यार्थता। शतस्य व्यवहरणं, पणनं वा। 'समर्थयोः, किम्। शलाकाव्यवहारः। गणनेत्यर्थः। ब्राह्मणपणनं स्तुतिरित्यर्थः। **(६१९) दिवस्तदर्थस्य। २। ३। ५८॥** द्यूतार्थस्य क्रयविक्रयरूपव्यवहारार्थस्य च दिवः कर्मणि षष्ठी स्यात्। शतस्य

व्यवहारे अर्थे पणधातु, **समर्थयोः समौ=समानौ तुल्यौ सदृशौ अर्थौ ययोस्तौ समर्थौ तयोः, शकन्ध्वादिः।** उक्तदोनों धातु समान अर्थवाले हों, दोनोंका ही व्यवहार अर्थ हो, शेष अर्थकी विवक्षामें षष्ठी हो। इसका प्रयोजन समासाभावः। यद्यपि पणधातुका स्तुति भी अर्थ है। समान अर्थ कैसे? स्पष्टार्थ बोले दीव्येत्=अक्षैः क्रीडने=पाशासे जूआ खेलने, क्रयविक्रयव्यवहारे=खरीदने वेचनेके विषयमें मूल्यकी चर्चा हो, **अनयोः व्यवहृपणोः** दोनों धातुकी एकार्थकता मानलें तब मूल्य, सम्वादविषयक व्यवहार लिया जायगा। केवल व्यवहारार्थक अकर्मक है। यथा **शतस्य व्यवहरणं पणनं वा।** सौ रुपये, दाँव पर लगाना, खरीदना वेचना अर्थः। **व्यवहृपणोः समर्थयोः सूत्रेण षष्ठी।** केवल व्यवहार अर्थ होता, तब अकर्मक हो जाता। कर्म वना शत सम्बन्धी पाशा फेरना क्रयविक्रयविषयकमूल्य अर्थः, **समर्थयोः किं?** सूत्रमें दोनों धातुका समान अर्थ क्यों? **व्यवहारार्थकयोः** किमर्थम् इसलिए कि **शलाकाव्यवहारः**=यहाँ व्यवहारका गणना अर्थ है। द्यूत या क्रय-विक्रय नहीं। कर्म वना शलाका सम्बन्धी गणना अर्थ। प्रतिपदविधाना षष्ठी न होनेसे समास-निषेध नहीं। **ब्राह्मणपणनं** यहाँ पणधातुका स्तुति अर्थः, व्यवहार नहीं। ब्राह्मणकी स्तुति अर्थका कर्म वना ब्राह्मणके साथ समास ही है।

। ६१९। दिवः, **तयोः=व्यवहृपणोः अर्थ एव अर्थौ यस्य तस्य तदर्थस्य।** यह अर्थ तत् शब्दसे आया। दिवधातुका क्रीडा, विजयकी इच्छा व्यवहार स्तुति मद मोद कान्ति गति इतना अर्थः। इनमें **द्यूतार्थस्य=द्यूतं अक्षक्रीडनं** पाशा फेककर खेलना अर्थ है और **क्रयविक्रय विषयकसम्बादो अर्थौ यस्य।** खरीदने वेचनेके विषयमें लेन देन अर्थ है, ऐसे दिवधातुके कर्ममें षष्ठी हो। शेष नहीं आया, व्याख्यानसे। यहाँ कर्ममें शेषकी बिवक्षा ही नहीं, शेषे षष्ठी **असम्भव।** अतः इस सूत्रका कृदन्तके संसर्गमें समासनिवृत्ति भी फल नहीं, इस आशयसे बोले **शतस्य दीव्यति,** जूए में सौ रुपया जीतता है। क्रय विक्रय व्यवहारमें सौ रुपयेकी लेन देन करता है। **दिव धातोः कर्म (शतं) शत**

दीव्यति। 'तदर्थस्य' किम् ? ब्राह्मणं दीव्यति। स्तौतीत्यर्थः। (६२०) **विभाषोपसर्गे** । २ । ३ । ५६ ॥ पूर्वयोगापवादः। शतस्य शतं वा प्रतिदीव्यति। (६२१) **प्रेष्यब्रुवोर्हविषो देवतासम्प्रदाने** । २ । ३ । ६१ ॥ देवतासम्प्रदानेऽर्थे वर्तमानयोः प्रेष्यब्रुवोः कर्मणोर्हविषो

दिवस्तदर्थस्य सूत्रेण षष्ठी, शतस्य। तदर्थस्य किं=तयोः अर्थः तदर्थः, द्यूतक्रीड़ा क्रयविक्रय व्यवहार दोनों अर्थ क्यों पढ़ा ? इसलिए कि **ब्राह्मणं दीव्यति** स्तौति प्रशंसा अर्थ के कर्ममें षष्ठी न हो, किन्तु द्वितीया हो।

। ६२० । **विभाषा=विविधा पक्षपातिनी भाषा** विकल्प। उपसर्गे सति व्यवहृ और पण (व्यवहार अर्थवाला) दिवधातुके कर्ममें विकल्प षष्ठी हो। यथा **शतस्य (शतंप्रति) दीव्यति**। सौ रूपया बदलेमें जीतता है। प्रति उपसर्गसे दिवधातुका कर्म शतमें षष्ठी विकल्प हुई **शतस्य, पक्षे शतम्**।

। ६२१ । **प्रेष्यश्च ब्रुवश्च प्रेष्यब्रुवौ तयोः हविषः**=हवनीय वस्तुका। यह शब्दपरक नहीं है' किन्तु इसका अर्थबोधक अन्य शब्द भी लिये जाँय, व्याख्यानसे। देवता उद्देश्यसे दानक्रियावाची प्रेष्य और ब्रुक्रिया का कर्म बना जो हविविशेष, हवनकी वस्तु–वाचक शब्दसे षष्ठी हो। शेषकी अनुवृत्ति नहीं व्याख्यानसे। द्वितीयाका बाधक। **इष** गतौ, गमन अर्थ, दिवादिः श्यन्। प्रउपसर्ग बलसे प्रेरणा भेजना अर्थः। अधीगर्थसे कर्मणि आया, षष्ठयन्त हो गया। यथा **अग्नये** (अग्नि के लिए) **छागस्य हविषः** (छाग सम्बन्धी हवनीय वस्तु) **वपायाः मेदसः** वपानामक (वस्त्रखण्डके समान मांस विशेष) **प्रेष्य**= भेज दो। यह वचन मैत्रावरुणके प्रति अध्वर्यु का हैं। हे मैत्रावरुण। **अग्नि— उद्देश्येन प्रदर्श्यमानं छागसम्बन्धि यत्–हविः वपानामकं रूपद्वयं वस्त्रसदृशं मांसं प्रेष्य**। यहाँ प्रेष्य शब्द देवतासम्बधी दान अर्थमें आया। उसका कर्म हवि, वपा, मेदस् है। उस अर्थमें षष्ठी हविषः मेदसः। **होता यदग्निं छागस्य वपायाः मेदसो जुषतां हविः**। होतः यज्ञ प्रेरणासे प्रकाशित करें। यद्यपि कल्पसूत्रमें हविषः पाठ नहीं है तथापि भाष्य उदाहरणसे किसी शाखामें अवश्य है। **प्रपूर्वक इष धातोः मध्यमपुरुषस्य एकवचने** प्रेष्य इति। देवताओंको देना अर्थः। षष्ठीका सम्बन्धसामान्य अर्थ। प्रेष्यके स्थानमें अनुब्रूहि पढ़ दें। हे **मैत्रावरुण अग्नि** के उद्देश्यसे देने योग्य छाग सम्बन्धिवपा नामक (वस्त्र तुल्यमांसखण्ड रूप) हवि हैं। उसे **पूरोऽनुवाक्यासे** प्रकाशित करना, यह अनु-

वाचकाच्छब्दात् षष्ठी स्यात् । अग्नये छागस्य हविषो वपाया मेदसः प्रेष्य अनुब्रूहि वा । (६२२) **कृत्वोऽर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे । २ । ३ । ६४ ।।** कृत्वोऽर्थानां **प्रयोगे** कालवाचिन्यधिकरणे शेषे षष्ठी स्यात् । पञ्चकृत्वोऽह्नो भोजनम् । द्विरह्नो भोजनम् । 'शेषे' किम् ? द्विरहन्य-

---

ब्रूहि का अर्थ है । अनुपूर्वक ब्रूधातुसे लोट्, मध्यम पुरुष, एकवचन । देवताको देना अर्थ । सूत्रमें **प्रेष्य क्यों पढ़ा** ? इसलिएकि **जुहुधि का** प्रयोग होनेपर कर्ममें षष्ठी न हो । **अग्नये छागस्य हविर्वपां,** षष्ठी नही हुई । **हविषः क्यों** पढ़ा ! इसलिए कि देवता को देय वस्तु अर्थवाचकशब्दसे षष्ठी न हो । **अग्नये गोमयानि प्रेष्य** (अग्निके लिए गायका कण्डा भेजो) **गोमयसे** षष्ठी न हो, क्योंकि देवता को देय वस्तु नही है । **देवता सम्प्रदाने क्यों** पढ़ा ? **बालकाय बलिं प्रेष्य** । यहाँ देवता नहीं बालक है, बलिमें षष्ठी न हो । यदि हविष प्रस्थितमें विशेषण हो, तब निषेध करें । **इन्द्राग्निभ्यां छागस्य हविः वपां मेदः प्रस्थितं प्रेष्य अव्यक्तम् ।**

। ६२२ । **कृत्वः=कृत्वसुच् प्रत्ययस्य अर्थएव अर्थों येषान्ते कृत्वोऽर्थाः ।** क्रियाकी बार-बार आवृत्तिकी गणना अर्थमें कृत्वसुच् और सुच् होते है । उसके अर्थकी तरह अर्थहो जिन प्रत्ययोंका **तेषां प्रयोगे**=उपयोग हुआ हो, तब **काले**=पल विपल घटी-प्रहर दिन सप्ताह मास वर्ष आदिवाचक शब्द **अधिकरण**=आधार बननेपर **शेषे**=सम्बन्ध अर्थमें षष्ठी हो । शेषकी अनुवृत्ति रुक गयी थी, **मण्डूकप्लुति**=मेढ़कउछालन्यायसे आ गयी, व्याख्यानसे । यथा **पञ्चकृत्वोऽह्नो** दिनका **भोजन** पाँच वार है । भोजन क्रियाकी **अभ्यावृत्ति**= पुनः प्रवृत्तिः वार वार खानेकी सङ्ख्या अर्थमें कृत्वसुच् **पञ्चकृत्वः पञ्चवारं तस्य अधिकरणम् अह्नः सम्बन्धेऽर्थेषष्ठी । मण्डूकप्लुतिका** समास न होना भाव है । **द्विः अह्नोः** भोजनं, दिनमें दो वार खाना । द्वित्रि—से कृत्वोऽर्थ वार-वार क्रियाकी गणना अर्थमें सुच् है, उस गणनाका आधार दिन है, **अहन्शब्दात् शेषत्वविवक्षायां षष्ठी । सूत्रमें शेष क्यों** पढ़ा ? शेषत्वविवक्षा अर्थ क्यों ? इसलिए कि—**अह्नि द्विः अध्ययनं**, दिनमें दो वार पढ़ना, यहाँ द्विः कृत्वसुच्में वर्तमान अर्थवाचक सुच् है, कालवाची अधिकरण अह्न भी है, किन्तु सम्बन्ध की विवक्षा न होनेसे षष्ठी नहीं हुई । अधिकरणकी विवक्षा है सप्तमी हुई शेष षष्ठी केवल सम्बन्धमात्रकी विवक्षार्थमें षष्ठीका प्रसङ्ग पूर्ण हुआ ।

ध्ययनम्। (६२३) **कर्तृकर्मणोः कृति। २। ३। ६५ ॥ कृद्योगे** कर्तरि कर्मणि च षष्ठी स्यात्। कृष्णस्य कृतिः। जगतः कर्ता कृष्णः। 'गुणकर्मणि वेष्यते' (वा ५०४२)। नेता अश्वस्य स्रुघ्नस्य स्रुघ्नं

अब कारकषष्ठी कृद्योगाका अध्याय आरम्भ। अतः शेषकी निवृत्ति (क्योंकि कर्तरि च कृत् सूत्रमें च पदसे अधीगर्थ–सूत्रसे लेकर चतुर्थ्यर्थे बहुलं तक, कर्मणि आया, उक्त सूत्रमें भी आ जाता, पुनः कर्म क्यों पढ़ा, **शेषनिवृत्तिके लिए) में व्याख्यान ही शरण है।**

। ६२३। **कृदन्तपरे** रहते अनुक्तकर्ता कर्म अर्थमें षष्ठी हो, कर्ताकर्ममें षष्ठी क्यों कहा? इसलिए कि करण आदिमें षष्ठी न हो। **शस्त्रेण भेत्ता।** तृच्के योगमें तृतीयाको बाधकर षष्ठी नहीं हुई। कर्तामें षष्ठीका प्रमाण **कृष्णस्य कृतिः।** कृष्णकी रचना संसार, गीता। फलजनकक्रियावाचक कृसे भावे–क्रिया अर्थमें स्त्रियांक्तिन् स्त्रीलिङ्गबोधक ति। कृतिः **रचना, तस्य कर्ता कृष्णः कृद्योगे=सम्बन्धे कर्तरि=कर्ता अर्थे षष्ठी कृष्णस्य** (कृष्णसे बनी हुई सृष्टि) **कृष्णकर्तृका।** जब अनुक्तकर्ता, अनुक्तकर्म हो। तब षष्ठी भावमें। प्रत्ययसे कर्म अनुक्त भी है। भावे रचना। कर्मणि षष्ठीमें प्रमाण—**जगतः कर्ता कृष्णः** संसारका रचयिता कृष्ण। कृ– धातुसे कृत्प्रत्यय तृच्, निर्माणके अनुकूलक्रियाका आश्रय कृष्ण–कर्ता, निर्माणफलका आधार कर्म जगतः। **अत्र कृत्सम्बन्धे कर्तृकर्मणोः सूत्रेण षष्ठी।** अनुक्तकर्मसे षष्ठी। **विश्वस्य पालकः परमात्मा। गुणकर्मणि वा इष्यते, गौण**=अप्रधान कर्ममें षष्ठी विकल्पसे होती है। कुछ धातुके दो कर्म, एक प्रधान कर्म है। वार्तिकसे अप्रधानकर्ममें विकल्प षष्ठीकी सूचनासे सिद्ध है कि प्रधानकर्ममें नित्यही षष्ठी। इयं वार्ता **अकथितञ्च सूत्रे भाष्ये।** तत्र **अजां ग्रामं नयति।** अजा **प्रधानकर्म,** गाँव गौणकर्म। नयतिकी जगह नेता कह दें तब ग्राममें विकल्प षष्ठी, अजामें नित्य, तदनुसार **नेता अश्वस्य।** स्रुघ्नदेशमें घोड़ेको ले जानेवाला। नीधातुसे कर्ता अर्थमें तृच् नेता-नयनकर्ता, पहुंचाने वाला। **कृद्योगे अनुक्ते अप्रधाने कर्मणि षष्ठी। स्रुघ्नस्य, पक्षे द्वितीया स्रुघ्नम्। अश्वः प्रधानकर्म नित्य षष्ठी, स्रुघ्नः गौणकर्म** कृति। **किं?** सूत्रमें कृदन्त परे कर्ता **कर्मस्थाने षष्ठी क्यों?** कर्ताकर्मसे क्रियाका आक्षेपः। क्रियावाची धातु ही होगा, उससे दो प्रत्यय **कृद्तिङ्।** तिङन्तपरे न हो इसलिए। कृद्ग्रहण करें। ओदनं पचति ति (ल्

वा। 'कृति' किम्? तद्धिते मा भूत्। कृतपूर्वी कटम्। (६२४)

स्थाने आदेश है) लादेशके योगमें न लोकाव्ययनिष्ठा–निषेध करेगा। ओदनंमें षष्ठी नहीं होगी, **शतेन क्रीतः शत्यो अश्वः**। सौ रुपये से खरीदा गया घोड़ा। तद्धितसे कर्म अश्व उक्त है। षष्ठी नहीं होगी। शेषकी विवक्षामें षष्ठी होती ही है, कोई बाधा नहीं। सूत्रे कृतिग्रहणं किमर्थं ? उत्तर बोले–**तद्धिते**= तद्धितप्रत्ययका सम्बन्ध कृदन्तके साथ जुड़ गया हो, वहाँ षष्ठी रोकनेके लिए कृति पढ़े। यथा **कृतपूर्वीकटं, कटः पूर्वं कृतो अनेन लौकिकविग्रहे** कृत्का पूर्व के साथ सुप्सुपासे समासे। कृत्का कर्म कट, कृधातुसे कर्ममें क्त कृतः (बनायी गयी चटाई) कृतका पूर्वके साथ समास, **कृतपूर्वः कृतः पूर्वः अस्ति अस्य कृतपूर्वी 'सपूर्वाच्च' इनि प्रत्यये** यहाँ तद्धित कृदन्तसे हुआ है। एकार्थीभाव हो जानेसे तद्धितप्रत्ययका अर्थ अधिक हो गया। **तद्धिताधिक्ये षष्ठी माभूत् एतदर्थं कृद्ग्रहणम्। ननु कर्तुः कर्मणश्च ज्ञानेनक्रियाज्ञानं भवति, क्रियावाचिनः धातवः सन्ति। धातोश्च द्वौ प्रत्ययौ भवतः, तिङ् कृत्, तत्र लङ्योगे कटं करोति कट इत्यत्र षष्ठी न भविष्यति, तस्याः न लोकाव्यय–सूत्रेण निषेधात्। कृदन्तः अवशिष्यते, तस्य योगे षष्ठी अवश्यं भविष्यति, व्यर्थं कृद्ग्रहणमिति प्रश्नः– उत्तरमाह-कृतपूर्वीकटम्। अत्र कटम् अनुक्तं कर्म, कटस्य कर्मसंज्ञा प्राप्नोति। तद्धिते=तद्धितप्रत्ययस्य आधिक्ये षष्ठी मा भवतु एतदर्थं कृद्ग्रहणं, ननु कृतः कटः पूर्वमनेन इति विग्रहे कृधातोः कर्मणि विधानेन उक्ते कर्मणि द्वितीया न भवति, अतएव षष्ठी न भविष्यति। कृत इति कटसापेक्षः समासो दुर्लभः। अतएव तद्धित इनि प्रत्ययोऽपि न, तन्न, पूर्वं कृतमनेन विग्रहे भावे क्तप्रत्यये, कर्मणः विवक्षाबलेन, षष्ठी भविष्यति, अतएव कृतशब्दः नहि कटसापेक्षः। समासतद्धितौ भवतः। कृद्योगे तद्धितप्रत्ययाधिक्ये षष्ठी मा भवतु एतदर्थं कृद्ग्रहणमावश्यकम्। ननु भट्टिकाव्ये—ददैर्दुःखस्य मादिभ्यो: मादृग्भ्यो: धायैरामोदमुत्तमम्। लिम्पैरिव तनोः वातैः चेतयः स्यादज्वलोन्वकः।** विरह व्याकुल रामका वाक्य–**दुखस्य** और **तनोः** में कर्मणि षष्ठी। **मादृग्भ्यः**=मुझ जैसे लोगोंकी दुखं ददैः दद्भिः देते हुए, फूलोंके आमोद परिमल सुगन्धि धायैः=पोषकैः तनोः शरीरस्य लिम्पैः पुष्पकी सुगन्धसे घिराशरीर लिप्तहोनेसे कहा है कि चेतयः=कौन सा प्राणी विरहमें न जलने लगेगा। यहाँ आमोदस्य, उत्तमस्य, ऐसी कर्मणि षष्ठी होनी चाहिए क्योंकि धायैः=पोषणार्थक है

उभयप्राप्तौ कर्मणि । २ । ३ । ६६ ।। उभयोः प्राप्तिर्यस्मिन्कृति तत्र कर्मण्येव षष्ठी स्यात् । आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन । स्त्रीप्रत्यययोरकाकारयोर्नायं नियमः' (वा १५१३) भेदिका बिभित्सा वा रुद्रस्य जगतः । 'शेषे विभाषा' (वा १५१४) । स्त्रीप्रत्यये इत्येके । विचित्रा

णप्रत्ययसे कृदन्तयोगमें षष्ठी क्यों नहीं ? उत्तम और आमोदका पुष्पादिना गृहीत्वा ऐसा अर्थ अध्याहार करके द्वितीया ।

। ६२४ । **कर्ता** और **कर्म** दोनोंको षष्ठी प्राप्त हो जिस कृदन्त परे, वहां कर्ममें ही षष्ठी हो, कर्तामें नहीं । इससे सिद्ध है कि दोनोंकी प्राप्ति दशामें कर्तामें षष्ठीका निषेध । **पूर्वसूत्रेण सिद्धेः नियमार्थं सूत्रं=कर्मण्येव षष्ठी न तु कर्तरि ।** कर्तामें षष्ठीनिषेधका फल है । **गवां दोहोऽगोपेन** आश्चर्य है कि जो अगोपेन=गोपालन नहीं, करता, वह भी गाय दुहता है । अगोपकर्ता गायकर्म, दोहनक्रिया [अगोपमें कर्तरि षष्ठी] **गवाम्, अत्र कर्मणि षष्ठी प्राप्ता, कृतिपरे दोहः, कृदन्तसम्बन्धे कर्मणि षष्ठी गवाम् ।** अनुक्ते कर्तरि तृतीया **अगोपेन** । अतएव **ओदनस्य पाकः ब्राह्मणानाञ्च प्रादुर्भाव** इत्यत्र **कर्मण्येव**=कर्ममें ही षष्ठी । बहुव्रीहिसमासका फल है । एक ही कृदन्त शब्दपरे हो । तभी कर्मणि षष्ठी । जहाँ भिन्नक्रिया हों, भिन्न-भिन्न कृदन्त हो वहां यह नियम नहीं लगता । अतएव **द्विदलस्य पाकः क्षत्रियाणां प्रादुर्भाव इत्यत्र नियमो न लगति** । तत्पुरुषसमासमें नियम सम्भव है । (वा०) **स्त्रीप्रत्यय**= स्त्रियां क्तिन् के अधिकारमें विधान किये गये स्त्रीलिङ्ग अर्थबोधक प्रत्ययोंमें 'अक' और (अ) प्रत्ययवाले प्रयोगके योगमें कर्मण्येव षष्ठी, ऐसा नियम नहीं, कर्तामें भी सम्भव हो । अतएव **भेदनं भेदिका** धात्वर्थ निर्देशे ण्वुल् । वुको अक टाप् प्रत्ययस्थात् इत्वे । भेत्तुमिच्छा **बिभित्सा** सन्नन्त विभित्स धातुसे अप्रत्यय टाप । क्रमशः अक और अ—का उदाहरण । **रुद्रस्य** (कर्तामें षष्ठी) **जगतः** (कर्ममें षष्ठी) रुद्रकर्तृक जगत्कर्मक भेदन या भेदनकी इच्छा प्रलय । यहां कर्ता और कर्म दोनोंमें षष्ठी दृष्ट है । **कर्मण्येव**—नियम नहीं लगा (वा०) **शेषे =अवशिष्टे अर्थे अक** और अ प्रत्ययके सम्बन्धमें उक्त नियम निषेध हुआ, किन्तु उससे बचे हुए स्त्रीअर्थबोधक प्रत्ययके योगमें—विकल्पसे नियम लगे । अयं विकल्पः स्त्रीप्रत्ययसम्बन्धे, इति केचिन्मतं, परन्तु कर्तामें

जगतः कृतिर्हरेः– हरिणा वा। केचिदविशेषेण विभाषामिच्छन्ति शब्दानामनुशासनमाचार्येण—आचार्यस्य वा। (६२५) **क्तस्य च वर्तमाने**। २। ३। ६७॥ वर्तमानार्थस्य क्तस्य योगे षष्ठी स्यात्। 'न लोक—, (सू ६२७) इति निषेधस्यापवादः। राज्ञां मतो बुद्धः

विकल्प षष्ठी मान्य। कर्ममें विकल्प नहीं। अतः कर्तामें विकल्पका उदाहरण **भगवानकी जगत रचना विचित्र** है। यहां रचना क्रियाका कर्ता हरि हैं। विकल्पसे षष्ठी **हरेः**। पक्षे अनुक्ते कर्तरि तृतीया **हरिणा**। कृसे स्त्रियां क्तिन् कर्ममें विकल्प नहीं **केचित्**=कोई व्यक्ति अविशेषेण स्त्री प्रत्ययकी विशेषता भेद न मानकर किसी भी कृदन्तयोगे विकल्प षष्ठी हो। अतएव **आचार्योंसे शब्दोंका अनुशासन**। आचार्यकर्ता-शब्दकर्म-अनुशासनक्रिया। **अनुशिष्यन्ते असाधु शब्देभ्य साधुशब्दाः पृथक्कृत्य बोध्यन्ते अनेन** करणे ल्युट्। अपभ्रंश शब्दोंसे साधुशब्दो को अलग करके समझें, उसका साधन व्या. अनुशासन है। ल्युट् स्त्रीके अधिकार में नहीं है। उसके प्रयोगमें विकल्प षष्ठी **आचार्यस्य**। पक्षे तृतीया **आचार्येण**।

। ६२५। **क्तस्य** वर्तमानकाल अर्थमें क्त प्रत्ययके सम्बन्धमें षष्ठी हो। यद्यपि कर्तृकर्मणोः कृतिःसे षष्ठी सिद्ध है यह सूत्र क्यो पढ़ा ? तब बोले 'न लोकाव्ययनिष्ठा—सूत्रसे षष्ठीनिषेधको बाधनेके लिए। यथा **राज्ञां मतः राजकर्तृकवर्तमानकालिक इच्छाविषयः**। मन् अवबोधने, वुध अवगमने, पूजा अर्चायां धातुसे **मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च सूत्रेण मनधातोः वर्तमानकाले कर्मणि अर्थे क्त, नकारलोपे राज्ञां मतः**। मतिका इच्छा अर्थः बुद्धिके पृथक् पढ़नेसे राजा अनुक्त कर्ता वर्तमाने क्तप्रत्ययान्तस्य, मतः इत्यस्य योगे कर्तरि षष्ठी। **राज्ञां बुद्धः**। राजा कर्ता यस्य, राजकर्तृक वर्तमानकालिक ज्ञानविषय, राजासे समझा हुआ। **राज्ञा पूजितः** राजगुरुः **राजा कर्ता यस्य एतादृशः वर्तमानकालिकस्य पूजनस्य आश्रयो गुरुः**, राजासे वर्तमानमें पूजागया ज्ञानी। क्तप्रत्ययान्तः पूजितः (के संसर्गसे) **क्त तस्य च वर्तमाने सूत्रेण षष्ठी**। अत्र **शङ्का-पूजितो यः सुरासुरैः त्वया ज्ञातो घटः**। देवता दैत्य दोनोंसे पूजा किये गये। तुमसे घड़ा ज्ञात हुआ। पूजितः और ज्ञातःके योगमें सुरासुरैः त्वया, अत्र षष्ठी कथं न भवति ? भूतकाले अर्थे अस्ति, न तु वर्तमाने। अतो न षष्ठी। मतिः बुद्धिः। भूतकालमें क्तका बाध नहीं होगा। तेन=अधिकारमें उपज्ञाते प्रमाणसे अबाधका निर्णय।

पूजितो वा। (६२६) **अधिकरणवाचिनश्च** । २ । ३ । ६८ ॥ क्तस्य योगे षष्ठी स्यात्। इदमेषामासितं शयितं गतं भुक्तं वा। (६२७) **न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्** । २ । ३ । ६९ ॥ एषां प्रयोगे षष्ठी न स्यात्। लादेश-कुर्वन्-कुर्वाणो वा सृष्टिं हरिः। उ-हरिं दिदृक्षुः-

---

६२६। **अधिक्रियन्ते अस्मिन्न धिकरणम् आधारः तं वक्ति अधिकरणवाची** आधारअर्थमें वर्तमाने क्त प्रत्ययके सम्पर्कमें षष्ठी हो, यह सूत्रभी न लोकाव्यय के निषेध का बाधक है। यथा **एषाम् आसितं** यह इनका आसन, बैठनेका आधार है। **आस्यते उपविश्यते** (आसु उपवेशने बैठने अर्थमें) **अस्मिन् आसितम्** आसधातोः अधिकरणे अर्थे क्त इट् (च के संसर्गमें) कर्ता अर्थे षष्ठी। **एषां शयितं**। शेते अस्मिन् शीङ (स्वप्ने शयनार्थक) धातोः अधिकरणे अर्थे क्त शयितं, विस्तरा पर्यङ्क आदि योगे ऐषां कर्तरि षष्ठी।

यह इन लोगों का तोषक क्रिया है सकर्मक धातुसे कर्ता कर्म दोनों में षष्ठी। **इदं एषां भक्तस्य भुक्तं**' यह इन लोगों के भात का भोजन है। भुज-धातोः **प्रत्यवसानार्थके** (भक्षणे) **अर्थे क्त, भुक्तं क्तस्य सम्पर्के एषां कर्तरि षष्ठी। भक्तस्य कर्मणि षष्ठी। अत्र उभय प्राप्तौ कर्मणि षष्ठी नियमस्तु न लगिष्यति, मध्येऽपवादन्यायात्** कर्तृ**कर्मणोः** कृतिः सूत्रनियम का विषय है।

६२७। **न लोक-उश्च उकश्च ऊकौ, लश्च उकौ**, च=ल, उ, उक्, अव्यय, निष्ठा, खलर्थ, तृन् **एषां प्रयोगे**=इन सबों का उपयोग हुआ हो, तब सम्बन्धमें षष्ठी नहीं होती। उ उक् सवर्ण दीर्घे ऊक्, ल-ऊक् आद्गुणे **लोक्**। **लादेशाः** =ल स्थाने आदेश सूचनार्थ। लट् लिट् आदि का ग्रहण लकारोंका प्रत्यक्ष प्रयोग न मिलनेसे उनके आदेशही मान्य। यथा कुर्वन् कुर्वाणः हरिः भगवान सृष्टि को बनाते हुए हैं। लट् के स्थानमें **शतृ-कुर्वन्**। वर्तमान कालिकी क्रिया। **शानच् कुर्वाणः** कर्मसे प्राप्त षष्ठी का न लोकाव्यय—सूत्रसे निषेध अतः द्वितीया। सृष्टिम् अनुक्त कर्म। उ का उदाहरण—**हरिं दिदृक्षुः**। द्रष्टु-मिच्छति दिदृक्षति इति **दिदृक्षु सन् आशंस भिक्ष उः**। सन्नन्त से कर्ता अर्थ में उ। व्यवहार भाव से उकारान्त। हरिदर्शनकी इच्छावाला। **हरि कर्मक-दर्शनेच्छावान्। कृद्योगे षष्ठी प्राप्ता, न लोक—इत्यनेन निषिध्यते। अत द्वितीया हरिम्। हरिमलङ्करिष्णुः। अलङ्करणं शीलं स्वभावो अस्य** [भगवानकी

अलङ्कारिष्णुर्वा । उक–दैत्यान्घातुको हरिः । 'कमेरनिषेधः' (वा १५१९)। लक्ष्म्याः' कामुको हरिः । अव्ययम्–जगत्सृष्ट्वा । सुखं कर्तुम् । निष्ठा–विष्णुना हता दैत्याः । दैत्यान्हतवान्विष्णुः । खलार्थाः

सजावटका स्वभाववाला] तस्य शीले अर्थे कृधातोः इष्णुच् इत्यस्य सम्बन्धे षष्ठ्याः निषेधः, अथ च द्वितीया । उक् प्रत्यय भी सूत्रके उदाहरणका सूचक । यथा दैत्यान्घातुकः=दैत्यानां हननं शीलं स्वभावो अस्य विग्रहे आक्वेस्तच्छील-तद्धर्मतत्साधुकारिषुः ! उसका शील, उसकी कुशलता, उसका धर्म, अर्थके अधिकारमें लष्-पत्-पद-स्थाभूवृषहनकमगमसृभ्यः उकञ् । हनधातुसे कर्ता अर्थमें उकञ्--उपधावृद्धिः । हो हन्तेः--हस्य घः । हनस्तोऽचिण्णलोः इति नस्य त घातुकः । हननशीलः हननधर्मा हननक्रियाकुशलःके योगमें कर्तृकर्मणोः कृतिः सूत्रसे प्राप्त षष्ठीका निषेध, नलोका—सूत्रेण । अतः द्वितीया दैत्यानिति (वा०) कम धातुसे उकञ्प्रयय हुआ हो, उसके योगमें अनिषेधः=नलोकाव्य सूत्रसे षष्ठीका निषेध नहीं होता । यथा लक्ष्म्याः कामुकः । लक्ष्मीका लोभी भगवान् है । इच्छा अर्थे कम धातो लष–पत–पद–उकञ् उपधावृद्धिः, कामुकः इच्छा=जिसका कर्म लक्ष्मी कृद्योगे षष्ठीका निषेध नहीं, वार्तिककी कृपासे अव्ययके संसर्गमें षष्ठीका निषेध–यथा जगत्सृष्ट्वा हरिः आस्ते । संसारकी सृष्टि करके भगवान बैठे हैं । सृज्धातुसे समानकर्तृकयोः पूर्वकालेऽर्थे क्त्वा त्वातोसुन्कसुनः अव्ययसंज्ञा, उसका कर्म जगतमें षष्ठी प्राप्तिका न लोकाव्यय से निषेध । हरिः सुखं कर्तुं भक्तस्य प्रभवति । भगवान भक्तका सुख बढ़ानेमें समर्थ है । तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायां तुमुन् । कृन्मेजन्तः से अव्ययसंज्ञा कर्तुंके योगमें षष्ठीका निषेध, अतएव द्वितीया, सुखमिति । केवल कृदन्त ही गाह्य, देवदत्तं हिंसा तत्कर्मकं वर्जनम् निष्ठासंज्ञक प्रत्ययके उदाहरणका सूचकक्तक्तवतु निष्ठा क्त और क्तवतु दो प्रत्यय निष्ठासंज्ञक हैं । इनके योगमें प्राप्त षष्ठीका निषेध हो । विष्णुना हताः, भगवानसे दैत्य मारे गये । हन धातुसे भूतकालिक प्राणवियोगका आधार अर्थमें कर्मणि क्त । हतः हतौ हताः विष्णुना । कर्तरि षष्ठीका न लोकाव्यय-सूत्रसे निषेध । अतएव तृतीया । दैत्यान्हतवान् विष्णुः । विष्णुने दैत्योंको मार डाला । भूतकाले कर्ता अर्थे, हन धातोः तवत्–हतवान् । कृदन्त सम्बन्धे अनुक्त कर्म अर्थमें न लोकाव्यय-

–इषत्करः प्रपञ्चो हरिणा। तृन् इति प्रत्याहारः 'शतृशानचौ, इति तृशब्दादारभ्य आ तृनो नकारात्। शानन्–सोमं पवमानः। चानश्–आत्मानं मण्डयमानः। शतृ–वेदमधीयन्। तृन्–कर्ता लोकान्। द्विषः

सूत्रेण षष्ठी निषेधः अतो द्वितीया। **खलर्थाः** खल् प्रत्ययके अर्थवानसे अन्य-प्रत्ययभी उदाहरण संभव। उनके योगमें षष्ठीका निषेध, **ईषत्करः**। भगवानसे प्रपंचकी रचना अतिसरल है। **कृधातोः ईषद् दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्।** कठिनता और सरलता अर्थ बोधक खलप्रत्यय अतिसरलतया **क्रियते इति करः** कर्मणि खल् अनुबन्धलोपे। कृ—अ गुणे करः: के योगमें अनुक्त कर्ता हरिसे प्राप्त षष्ठीका उक्तसूत्रसे निषेध। अतः तृतीया खल् अर्थ कहनेसे **आतो युच्** भी स्वीकार। **ईषत्पानः सोमो भवता।** आपसे सोमरसका थोड़ा पान, पा धातु से अतिसरलतया या कठिनाईसे पेय अर्थमें युच्। युस्थाने अन। भवता इत्यत्र षष्ठीनिषेधः, किन्तु तृतींया। तृनां-सूत्रमें पढ़े तृनशब्दसे प्रत्यय नहीं प्रत्याहार समझें। **तृन् इति प्रत्याहारः**। कहाँसे कहाँ तक माना जाय। "**लटः शतृशानचौ**" सूत्रके शतृके तृसे लेकर तृशब्दादारभ्यः–तृन् सूत्रके नकार तक तृन्प्रत्याहार हैं। इसमें शानच् और चानश् भी आ जाते। शानच् लादेश है केवल तृ अप्रयुक्त। सम्बोधने च तो **ससूपूङ्जोः शानन्** (ताच्छील्य **वयोवचन शक्तिषु चानश**) **इङ्धार्योः शत्रकृच्छ्रिणि द्विषो श्रमि** सुञोयज्ञसंयोगे अर्हप्रशंसायाम् आक्वेः तच्छील तद्धर्मतत्साधुकारिषु तृन् ये सूत्रक्रम है। शानन् उदाहरण **सोमं पवनानः** सोमरसको छानता हुआ, पू धातुसे शानन्, अनुबन्धलोप, पूआन शप गुणे अवादेशे मुम्। सोममें प्राप्त षष्ठीका निषेध क्योंकि पवनक्रियाके अनुक्तकर्म सोमसे षष्ठी प्राप्तिका निषेध, **आत्मानं**= अपनेको मण्डयमानः अलंकृत कराता हुआ। **मडि भूषायां**, अलंकारअर्थमें मण्डधातुसे ताच्छील्य वयोवचनअर्थमें चानश्। मण्डनक्रियाके अनुक्तकर्म आत्मन्से प्राप्तषष्ठीका निषेध। अतः कर्मणिद्वितीया **आत्मानम्**। शतृ–उदाहरण–**वेदमधीयन्** वेद पढ़ता हुआ।

इङ् धार्योसे शतृ कर्ता अर्थे। अधीयन् शब्दप्रयोगे अध्ययन क्रियायाः अनुक्ते कर्मणि अर्थे वेदशब्दात् षष्ठी निषेधः अतः कर्मणि द्वितीया यहां परस्मैपद न समझें, उसकी व्यवस्था लस्थाने आत्मने आदेशहोने पर है।

शतुर्वा, वा १५२२। मुरस्य-मुरं वा द्विषन्। सर्वोऽयं कारक-षष्ठ्याः प्रतिषेधः। शेषेषष्ठी तु स्यादेव। ब्राह्मणस्य कुर्वन्। नरकस्य जिष्णुः। (६२८) **अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययो । २ । ३ । ७० ॥** भविष्यत्यकस्य भविष्यदाधमर्ण्यार्थेनश्च योगे षष्ठी न स्यात्।

चानश शानृनके विषयमें आत्मनेपद न मानें। तृन्-**कर्ता लोकान्**। संसारको बनाना शील स्वभाव धर्म कुशलता अर्थमें कृ धातोः तृन्। शानन् अदि की तरह तृन् भी प्रत्याहारमें आता है। लादेशमें नहीं। लोकान्में षष्ठीका निषेध (वा०) **द्विष अप्रीतौ** दुःख अप्रीति शत्रुताके अनुकूल क्रियावाचक द्विषधातुसे **अमित्रे**=दुश्मनी अर्थमें शतृप्रत्यय हुआ हो तब उसके योगमें विकल्पसे षष्ठीका निषेध हो। यथा—**मुरस्य मुरं वा द्विषन्** मुर नामक दैत्यसे दुश्मनी करता हुआ अर्थ। द्विषधातोः शत्रुअर्थे कर्तरि शतृप्रत्यये, तृन्के प्रत्याहारमें प्रविष्ट होनेसे नित्य निषेध प्राप्त, विकल्प प्राप्तनिषेध विकल्पे। **द्विषन्** योगे मुरस्य इत्यत्र षष्ठीकारकं, पक्षे द्वितीया, **मुरं सर्वोऽयं** निषेधः कारक षष्ठी के होते हैं। **यत्र शेषे षष्ठी तत्र न निषेधः। अनन्तरस्य विधिर्भवति प्रतिषेधो।** विना व्यवधानमें उपस्थित नियमका विधान या निषेध होता है। जैसे कर्तृक-र्णोः कृतिः से होनेवाली षष्ठीका निषेध समीपस्थ नलोकाव्यय, करता, उसी कर्ताकर्ममें शेषत्व—सम्बन्धमात्रकी इच्छा होनेपर शेषषष्ठी सर्वत्र होगी, जो दूरस्थ है, निषेध नहीं पहुंचेगा। यथा **ब्राह्मणस्य कुर्वन्**, ब्राह्मणको बनाते हुए हरिः। कृसे लट् शतृ, उसके कर्ममें सम्बन्धमात्रकी इच्छामें षष्ठी। ब्राह्मण-सम्बन्धी सृष्टिजनकक्रियावान्। षष्ठी। कर्म अर्थकी इच्छा हुयी **तब द्वितीया,** निषेध नहीं हुआ। **नरकस्य जिष्णुः** नरकासुरको जीतना जिसका स्वभाव, धर्मकुशता है। जि जये। जीतने अर्थमें जिधातुसे **ग्लाजिस्थश्चग्स्नुः** सूत्रसे शील आदत धर्म, निपुण अर्थमें स्नु षत्वे णत्वे जिष्णुः। नरकसम्बन्धी विजयवान् **नरकस्य**—अत्र षष्ठी निषेधो न, कर्मणः इच्छायां द्वितीया।

। ६२८। **अकेनोः** अक, इन्प्रत्यय भविष्य अर्थमें हो। **इन् आधमर्ण्ये च**। अधमर्ण=ऋणलेनेवाला अर्थ अधिक हो तब, अक और इनके प्रभावमें षष्ठी नहीं। **अकश्च इन्‌च् अकेनौ तयोः, भविष्यश्च आधमर्ण्यञ्च तयोः द्वन्द्वः। यथासंख्यं नेष्यते।** क्रमिकगणना इष्ट नहीं। अकसे आधमर्ण्यका सम्बन्ध नहीं।

सतः पालकोऽवतरति। व्रजं गामी। शतं दायी। (६२९) **कृत्यानां कर्तरि। २। ३। ७१॥** षष्ठी वा स्यात्। मया–मम वा सेव्यो हरिः। कर्तरि इति किम्? **गेयो** माणवकः साम्नाम्। '**भव्यगेय**–'(सू २८९४)

भविष्यका है। इनमें दोनोंका अन्वय तुमुन्ण्वुलौ वु को युवोरनाकौसे अक आवश्यक। आधमर्ण्ययोः णिनि और औणादिक इन् दोनों मान्य। यथा **सतः पालको अवतरति** सज्जनोंका रक्षक अवतार लेता है। **सजजनान्पालयिष्यन् हरिं प्रादुर्भवति** रक्षण अर्थे पालधातोः तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायां सूत्रेण भविष्येऽर्थे ण्वुल् (अक) पालक शब्दके योगमें पालनक्रियाके अनुक्तअर्थ सतःमें सूत्रसे षष्ठी निषेधः, सतः इति **द्वितीयाबहुवचने शशिरूपम्। भविष्यतिगम्यादयः** भविष्य अर्थ आया। **श्रोदनस्य पाचकः** में ण्वुल है जहाँ **भविष्यकाल अर्थ** नहीं, वहां षष्ठीका न निषेधः। **पुत्र-पौत्राणां दर्शकः, व्रजं गामी** (गोशालामें जानेवाला) **गम्** धातुसे उणादिके गमेरिनिः सूत्रसे भविष्य अर्थमें इन्। **गामी**–जानेवाला **गोष्ठं गमिष्यति**। षष्ठी निषिद्धचते। गमनक्रियाके अनुक्त-कर्म व्रजमें प्राप्तकारक षष्ठीका निषेध, अतः द्वितीया। गामीमें वृद्धिविकल्प भी **शतं दायी** (१०० रुपया ऋण देनेवाला) ऋणत्वेन गृहीतं शतं प्रत्यर्पयति **श्रावश्यकाधमर्ण्ययोः अर्थे णिनिः दायिन्** प्रयोगके दानक्रियाके अनुक्त कर्म शतं **तत्र प्राप्ता कारकषष्ठी न भवति, सूत्रेण निषेधात्। यतोहि अत्र इन् आधमर्ण्ये अर्थे** ऋणदाता अर्थमें है।

। ६२९। **कृत्यानां**=कृत्या० सूत्रके अधिकारमें विधान किये गये कुछ कृत्यसंज्ञकप्रत्यय जैसे ण्यत् यत् अनीयर आदिके प्रभावमें कर्ताअर्थमें **विकल्प** षष्ठी हो। कर्तृकर्मणोः से नित्यषष्ठीको बाधकर। यथा **मया मम वा सेव्यः** मुझसे सेवाके योग्य भगवान हैं। सेवृ सेवायां, सेवा अर्थक सेवधातुसे हलन्त **ऋहलोर्ण्यत्**। कर्मणि अर्थे। सेव्यः सेवनीयः सेवनक्रियायाः अनुक्तकर्ता अस्मद्, तत्र नित्यषष्ठी प्राप्ता। **कृत्यानां कर्तरि वा पक्षे अनुक्ते कर्तरि तृतीया-मया। सूत्रमें (कर्तरि किम्?)** कर्ता अर्थ क्यो पढ़ा, इसलिए कि **कर्ममें** प्राप्तषष्ठीं का विकल्प न हो। **ज्ञेयः माणवकः साम्नां** वेदगानेवाला। गा धातुसे **भव्यज्ञेय** सूत्रसे कर्ता अर्थमें यत् हैं। कर्म अर्थमें नहीं। इसलिए **गान** क्रियाका अनुक्त कर्म सामन्शब्द से षष्ठी **साम्नाम्**। कर्म अनुक्त है अनुक्ते कर्मणि षष्ठी।

इति कर्तरि यद्विधानादनभिहितं कर्म। अत्र योगो विभज्यते। कृत्यनां उभयप्राप्तौ इति न इति चानुवर्तते। तेन नेतव्या व्रजं गावः कृष्णेन। ततः कर्तरि वा। उक्तोर्थः। (६३०) **तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयान्यरस्याम्। २। ३। ७२॥** तुल्यार्थैर्योगे तृतीया वा स्यात्पक्षे षष्ठी।

ननु **नेतव्याः व्रजं गावः कृष्णेन**, गायें कृष्णसे व्रजमें लायी जाँय। कर्म अर्थमें कृत्यसंज्ञक तव्यत्प्रत्यय। नेतव्याःके प्रभावमें उभयप्राप्तौ कर्मणिको बाँधकर कृष्णसे विकल्प षष्ठी हो जायगी। व्रजशब्दसे कर्तृकर्मणोः कृतिः नित्यषष्ठी होगी, जो अशिष्ट है। समाधानमें बोले—**अत्र योगो विभज्यते।** यहाँ योग सूत्र (कृत्यानां कर्तरि वा) का विभाग करके (भाष्ये) एक विभाग **कृत्यानां** होगा। उसमें उभयप्राप्तौ कर्मणि और न, आयेंगे। अर्थ होगा कि कृत्यसंज्ञक (तव्य आनीयर यत् ण्यत् आदि) प्रत्ययके प्रभावमें कर्ता कर्म अर्थमें प्राप्त षष्ठी न हो। **तेन**=इस कारण से **गुणकर्मणि वा इष्यते**। यह वार्तिक व्रजशब्दसे विकल्प षष्ठी नहीं करता। 'उभयप्राप्ति'—कृत्यसंज्ञकप्रत्यय रहित स्थलमें चरितार्थ है। यथा **नेता अश्वस्य स्रुघ्नं स्रुघ्नस्य वा। दोग्धव्याः गाः पयः कृष्णेन।** इन स्थलोंमें गौणकर्म गाः में षष्ठीको विकल्प कहा गया जो प्रधान कर्ममें चरितार्थ है जो परत्वात् बाधा जायगा। उक्त विभागसे षष्ठी नहीं हुई। **ततः**=दूसरा विभाग—**कर्तरि वा।** कृत्यानां की अनुवृत्ति। कृत्यसंज्ञक प्रत्ययके प्रभावसे कर्ता अर्थ में षष्ठीविकल्प हो। जहाँ उभयप्राप्ति विषय नहीं है वहाँ यह विभाग लगेगा। यथा मम मया वा सेव्यो हरिः **इति कारकषष्ठी॥**

अथ उपपदषष्ठी। पदके प्रभावमें षष्ठीका विधान शेष=सम्बन्ध अर्थमें नित्य है, उसी अर्थमें तृतीया विकल्पके लिए बोले—

६३०। **तुल्यार्थैः=तुल्यः समानः धर्मः समानता अर्थ सादृश्यं येषान्ते तुल्यर्थाः** तैः। **अतुलोपमाभ्यां=तुला च उपमा च तुलोपमे,** तुला (तराजू) उपमा उपमेंव भाव को छोड़कर, जितने तुल्यसमानता वाले शब्द है, उनसे प्रभावित शब्दसे तृतीया, पक्षमें षष्ठी भी। यथा—**तुल्यः सदृशः समः** कृष्णके समान है यह बालक। यहाँ किसी धर्मकी चर्चा नहीं है। इसलिए तुला बराबरी नही। किसी शक्ति की न उपमा, न किसी धर्मकी समानता ही। किन्तु साधारण समानता है। तुल्य आदि शब्दके प्रभावमें कृष्ण से तृतीया

तुल्यः सदृशः समो वा कृष्णस्य कृष्णेन वा। 'अतुलोपमाभ्यां' किम् ? तुला उपमा वा कृष्णस्य नास्ति। (६३१) **चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः। २। ३। ७३॥** एतदर्थैर्योगे चतुर्थी वा स्यात्पक्षे षष्ठी आशिषि ? आयुष्यं चिरञ्जीवितं कृष्णाय–कृष्णस्य वा भूयात्। एवं मद्रं भद्रं कुशलं निरामयं सुखं शम् अर्थः प्रयोजनं हितं पथ्यं वा

कृष्णेन। पक्षमें षष्ठी कृष्णस्य। अतुलोपमाभ्यांमें **पर्युदास तद्भिन्न** तत्सदृश अर्थः। तुला, उपमा भिन्न, किन्तु उपमा तुलाके सदृश अर्थ **तुल्यार्थ** हैं। अथवा तुल्यैः के बहुवचनसे पर्यायवाची शब्दकी मान्यता है। **अर्थग्रहण पदान्तर–निरपेक्ष तुल्यर्थता**के लिए। **गौरिव गवय** इत्यादि में तृतीया, षष्ठी नहीं ईहु। अतुलोपमाभ्यां शब्दसे अव्ययरहित स्थलमें यह लगे। अतः इव के प्रभाव में सूत्र नहीं लगा। कथं तर्हि–तुलां **यदाऽऽरोहति दन्तवाससा**। दातके वस्त्र ओष्ठ की तुलनापर जब आरुढ़ होती है। इति कालीदासः। तुतीया कैसे ? **स्फुटोपमं भूतिसितेन सम्भुना** इतिमाघः। सह **युक्तेऽप्रधाने** तृतीया। **विनाऽपि तद्योगं** तृतीया। सूत्रमें अतुलोपमाभ्यां क्यों पढ़ा ? जिस वाक्यमें तुला उपमा शब्द पढ़ा हो वहाँ तृतीया न हो जाय। यथा **कृष्णस्य तुला नास्ति**। कृष्णकी तुलना सादृश्य नही है। यहाँ तुला उपमा शब्दका उच्चारण है, तृतीया नहीं हुई। उपमाका सम्बन्ध होनेपर भी तृतीया नहीं आयी। तोलनं तुलना उपमितिः उपमा आतश्चोपसर्गे अङ्।

६३१। **चतुर्थी। आशिषि**=आशिर्वाद अर्थमें आयुष्य लम्बी आयु चिरञ्जीव दीर्घजिविता भद्र–मङ्गल भद्र–भला, कुशल—आरोग्य, सुख—अनुकूल अर्थ प्रयोजन हित लाभ, इन शब्दोंके अर्थवाचक सभी शब्दोंके योगे=प्रभावमें चतुर्थी विकल्पसे हो, पक्षमें षष्ठी भी। समुच्चयार्थक च शब्द षष्ठीका संग्राहक। विधेय चतुर्थी, सिद्ध षष्ठी यथा **आयुष्यं चिरञ्जीवितं**, कृष्णकी आयु लम्बी हो (दीर्घकालतक जीयें के) योगमें चतुर्थी **कृष्णाय,** पक्षे षष्ठी **कृष्णस्य। एवं**=इसीप्रकार आयुष्यके योगमें चतुर्थी और षष्ठीकी तरह चिरञ्जीवितं है कुशलं निरामयं निरोग मद्र भद्रके पर्याय सुख का प्रयोजन, अर्थका पथ्यं, हित का पर्याय, हितयोगे च नित्य चतुर्थी। आशीः अर्थमें नहीं होती। **कृष्णस्य कुशलं भूयात्। बालकाय निरामयं, भृत्याय सुखं, राष्ट्रस्य** इन्द्रियेभ्यः इन्द्रि-

भूयात्। आशिषि किम्? देवदत्तस्यायुष्यमस्ति। व्याख्यानात्सर्वत्रार्थ ग्रहणम्। मद्रभद्रयोः पर्यायत्वादन्यतरो न पठनीयः। –०–इति षष्ठी–०–

*****अथ सप्तमी***** (३३२) **आधारोऽधिकरणम्। १।४।४५॥** कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरणसंज्ञः स्यात्।

यार्थः। पथ्यं हितं भूयात्। उन शब्दोंके प्रभावमें चतुर्थी–षष्ठी–स्वीकृत। **आशिषि किम्?** आशीर्वाद अर्थमें चतुर्थी का विधान क्यों! इसलिए कि जहाँ आशीर्वाद अर्थ नही उसके प्रभावमें चतुर्थी न हो जाय। यथा देवदत्तकी आयु है। आशिषि अर्थ नहीं, आयुष्य के योगमें चतुर्थी भी नहीं।

ननु **स्वंरूपं**–परिभाषा सूत्रबल पर आयुष्य आदि शब्द ही लिए जाँय। तब बोले, नहीं, व्याख्यानसे। सब जगह अर्थ ही लिया जायगा मद्र और भद्र दोनों पर्याय समानार्थक है। अनयोः अन्यः अन्यतरः, दोनों में से एक न पढ़ा जाय। **इति षष्ठी** चार प्रकार की अनुभूत हुई। सामान्य सम्बन्ध, शेषे षष्ठी कारक सम्बन्धे षष्ठी, कृदन्तयोगे कारक षष्ठी, **इति उपपदषष्ठी।**

अथ सप्तमी (ङि ओस सुप्) का अर्थ आधार है। आधीयते सम्बध्यते किया परम्परया अस्मिन्निति आधारः, क्रिया जिसमें रहे, आधेय बने। आङ् पूर्वक धृ धातुसे अध्यायन्यायसूत्रमें अवहार, आधार पढ़े जानेसे अधिकरणे अर्थे) घञ्।

६३२। **आधारः**=को अधिकरण संज्ञा हो **अधिक्रियते** अधिकारपूर्वकं निवासं करोति यस्मिन्तत् **अधिकरणम्**। कस्य आधारः कारके सूत्रके अधिकार में कारकमिति प्रथमान्तः। **कैसा** आधार हो! कारक रूप हो। कारक क्या है क्रियाजनक या क्रियान्वयी सम्बद्ध है। जब शङ्का हो, तब लक्षणसे क्रिया का आधार ले, अधिकरण साक्षात्क्रियाका आधार सम्भव नहीं, अतः परमपरया आधार। कर्ता कर्म द्वारा क्रिया आधारमें अनुभूत है। अतः वृत्ति में कहा कर्तृ-**कर्मद्वारा**=कर्ता कर्म के माध्यमसे **तन्निष्ठ**=कर्ता कर्ममें रहने वाली क्रिया के आधाररूप कारक को **अधिकरण** संज्ञा हो। **कर्तृकर्मान्यर व्यवधानेन क्रियाश्रयः समर्थयति भर्तृहरिः–कर्तृ कर्मव्यवहितां असाक्षाद्धारयत्क्रियाम्। उपकुर्वत् क्रिया सिद्धौ शास्त्रेऽधिकरणं स्मृतम्।** कर्ताकर्मके द्वारा परम्परया क्रिया धारण करे। फल सिद्धमें उपकारक को शास्त्रमें अधिकरण मान्य।

(६३३) **सप्तम्यधिकरणे च । २ । ३ । ३६ ॥** अधिकरणे सप्तमी स्यात्, चकाराद् दूरान्तिकार्थेभ्यः । औपश्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेत्याधारस्त्रिधा । कटे आस्ते । स्थाल्यां पचति । मोक्षे इच्छास्ति । सर्व

६३३ । **सप्तमी**=जिस आधारको अधिकरणसंज्ञा हुई हो । उससे सप्तमी हो । सूत्रमें च- पढ़नेसे दूर और अन्तिक (समीप) अर्थः । द्वितीया च, दूर और अन्तिकका अनुकर्षण । इस आधारके तीन भेद है । **औपश्लेषिक** आधार, **वैषयिक, अभिव्यापक** आधार । नद्याम् आस्ते के आधार पर सामीपिक अधिकरण चौथा भी केचित् । उप समीपे श्लेषः संयोगादिसम्बन्धः उपश्लेषः तत्कृतम् अधिकरणम् औपश्लेषिकम् । आधार-आधेयसम्बन्ध, प्रथम-यथा **कटेआस्ते** देवः चटाई पर बैठा है । चटाई आधार हैं देव आधेय, बैठना क्रिया देवदत्तमें है । क्योंकि देवदत्त बैठे है, चटाई नही । साक्षात्-क्रियाका आधार नहीं, किन्तु बैठना क्रिया देव में, देव चटाई पर, परम्परासे आधार, संयोगसम्बन्धं पुरस्कृत्य देवद्वारा आधारः । अतो अधिकरणे सप्तमी च । यह कर्ता द्वारा क्रियाका आधार है ।

अब कर्मद्वारा आधार सुनिये, **स्थाल्यां पचति** पत्तीली या भगोना बटुली में पकाता है (चावलोंको) स्थाली पाकक्रियाका परम्परया (तण्डुल के माध्यम से) आधार है । तण्डुलरूपकर्म द्वारा पाचनक्रियां प्रति संयोगसम्बन्धं पुरस्कृत्य स्थाल्याः अधिकरणत्वं, रूपे समवायेन रुपत्वमस्ति,शरीरे चेष्टा अस्ति । **इति औपश्लेषिकाधारः । वैषयिक**—विषयः साधनीयो अर्थः तेन निवृत्तं सिद्धमधिकरणं **वैषयिकम्** । शब्द अर्थ सम्बन्ध तींनों विषय है । **यथा—मोक्षे** इच्छाऽस्ति । विषयसप्तमी । मोक्षके विषयमें इच्छा, उसमे सत्ता क्रिया । **मोक्ष** विषयतासम्बन्धसे इच्छामें (का विषय) है । इच्छा द्वारा अस्ति क्रिया का आधार मोक्ष होनेसे अधिकरणसंज्ञा, सप्तमी च **मोक्षे । अभिव्याप्नोति सर्वावयवमिति अभिव्यापकः** । जो प्रत्येक भागमें भरा हो जैसे **तिलेषु, तैलं** तिल के प्रत्येक अवयव में तेल है । यथा **सर्वस्मिन्नात्माऽस्ति** । आत्मा चेतन ब्रह्म सबमें, सर्वाङ्ग में व्याप्त आधार । सर्वस्मिन्=सबमें आत्मा है । आत्मा कर्ता उसमें रहने वाली सत्ता अस्ति क्रियाकी व्यापकता आगे कर आत्माद्वारा सत्ता क्रिया का आधार **सर्व इत्यस्य अधिकरणसंज्ञा तेन कारणेन सप्तमी । वनस्य दूरे अन्तिके** । दूर और अन्तिके, चकारसे अनुकृष्ट है । उससे सप्तमी (प्रातिपदिकार्थ मात्र में) दूरान्तिकार्थेभ्यः के बहुवचन से तीन विभक्तियोंका स्मरण द्वितीया

स्मिन्नात्मास्ति। वनस्य दूरे अन्तिके वा दूरान्तिकार्थेभ्यः-(सू६०५) इति विभक्तित्रयेण सह चतस्रोऽत्र विभक्तयः फलिताः। क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसङ्ख्यानम्' (वा १४७५)। अधीती व्याकरणे। अधीतमनेनेति विग्रहे –'इष्टादिभ्यश्च' (सू१८८८) इति कर्तरीनिः। 'साध्वसाधुप्रयोगे च,

---

तृतीया पञ्चमी मिलकर चार विभक्तियों का लाभ।

वस्तुतस्तु उप–समीपे श्लेषः समीपसम्बन्धः तत्कृतम्=उससे सिद्ध किया गया अधिकरण औपश्लेषिक है। इससे सामीपिक आधार मान्य। अतएव भाष्ये **अधिकरणं नाम त्रिप्रकार औपश्लेषिकं वैषयिकमभिव्यापकं शब्दस्य शब्देन सह को अन्यः सम्बन्धो भवितुमर्हति उपश्लेषाद्विना। संहितायां सूत्रे भाष्ये। इको यणचि–अत्र अचि–उपश्लिष्टस्य–अच्परे समीपोच्चारितस्य** ऐसा अर्थ कैयट ने किया, जिसका फल (**मासे अतिक्रान्ते दीयते**) महीना बीतने के समीपमें ही देता है मासे में अधिकरण समीपार्थक है। **तत्र च दीयते कार्य भववत्**। अतएव तदस्मिन्नधिकं दशान्ताड्ड इत्यत्र एकादशमाषाः अधिकाः अस्मिन् काषापणशते, इत्यत्र अधिकानामेकादशानां कथम् अधिकरणशते इति। तत्र व्यापकं=व्यापक और वैषयिक आधार भी सम्भव, औपश्लेषिक भी, **कटे आस्ते**, एकदेश आधार गौण। व्यापक पूर्णतम आधार मुख्यः। वैषयिक औपश्लेषिक आधार भी गौणः भाष्यसम्मतः। स्वरितेनाधिकारः सूत्रे भाष्ये **आचार्यः अधिकरणं किं मन्यते यत्र पूर्ण आधारात्मा व्याप्तो भवति। यथा तिलेषु तैलं दध्निः सर्पिः**। तिल और दहीके पूरे अवयवमें तेल या घी व्याप्त है। अधिकरण सम्भव। **गङ्गायां घोषः** तट पर घोषला झोपड़ी महल, कूपे गर्ग **कुलं** कुयेंमें मेंढ़क परिवार। गङ्गा या कूपके पूर्ण आधारमें घोष या मेढ़क वंश व्याप्त नहीं है अभिव्यापक आधार कैसे? **मुख्ये आधारे कार्यं भवति** तथापि स्वरितेन अधिकं कार्यं भवति, तमभ्रह्लाच्च न दोषः, गौण अधिकरण भी सप्तमीका अर्थ है।

(वा०) **क्तस्य इन्विषयस्य**=क्तप्रत्यय होनेपर, इन् का विषय बना हो, ऐसी क्रियात्मा शब्दके कर्ममें सप्तमीका उपसंख्यान आचरण व्यवहार करें। विषयः शब्दः प्रकृतिरूपो अर्थः 'इन' की प्रकृति हो इन्प्रत्ययान्त प्रकृति क्तप्रत्ययान्तके कर्ममें षष्ठी। यथा **अधीती व्याकरणे**। व्याकरणका अध्ययनकर्ता अधिभावे क्त **अधीतीशब्दात् इष्टादिभ्यश्च कर्ता अर्थे इन्। अधीती अध्ययन**कर्ता क्रियाका कर्म व्याकरणसे सप्तमी, द्वितीयाको बाँधकर। **कि**

(१४८६)। साधुः कृष्णो मातरि, असाधुर्मातुले। 'निमित्तात्कर्मयोगे,
(१४९०)। निमित्तमिह फलम्। योगः संयोगसमवायात्मकः।

"चर्मणि द्वीपिनं हन्ति, दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्।
केशेषु चमरीं हन्ति, सीम्नि पुष्कलको हतः॥" इति भाष्यम्

मधीतवान् कर्मकी जिज्ञासा उचित है जो अनुक्त है द्वितीयाको बाधकर। मासमधीते। इत्यादि स्थलमें अकर्मक धातुके योगमें कालकर्म बहिरङ्ग होते हैं। मासं द्वितीया, न सप्तमी। व्यक्तिपक्षमें (वा०) साधु (हितकारी परकार्य साधक) और असाधु (परहितध्वसंक) से शेष षष्ठी बाधकर सप्तमी समझें। यद्यपि साधुनिपुणाभ्यां सूत्रसे अर्चा पूजा आधार अर्थमें सप्तमी सिद्ध, साधुग्रहण अनर्चा, पूजारहितके लिये है। यत्र अर्चा न विवक्षिता किन्तु सत्यकथनमात्रमस्ति, तत्रापि सप्तमी भवति। एतदर्थं। साधुग्रहणम् कृष्णः मातरि साधुः हितकारी, आज्ञापालकः। साधुशब्दप्रयोगे मातरि इत्यत्र सप्तमी। असाधुर्मातुले। मामाके लिए अहितकारी। मातुले इत्यत्र सप्तमी साधुः भृत्योः राज्ञः राजाका सच्चा सेवक सत्य बोलना मतलब। साधु निपुणाभ्यांमें साधु पढ़नेका फल बोले—निमित्तात्=कर्मके सम्बन्धमें हेतु-वाचकशब्दसे सप्तमी हो। यदि ऐसा तब जाड्येन बद्धः जड़ता मूर्खता वश बाधा गया। बन्धन क्रियामें हेतु निमित्त जाड्यसे सप्तमी हो सकती है। तब बोले निमित्तमिह फलं, नतु कारणं, फलवाचक शब्दसे सप्तमी हो इष्ट साधनताज्ञान (फल) ही प्रवृत्तिमें हेतु है। सम्बन्ध क्या होगा? जन्यजनक आदि सम्बन्ध रोकनेके लिए योगः=सम्बन्धः संयोगः समवायश्च अयुतसिद्धयोः सम्बन्धः समवायः अवयवावयवी रूपः। अन्यका सम्बन्ध संयोग है।

यथा—चर्मणि द्विपिन हन्ति, चर्मके लिए बाघकी हिंसा करता है। चर्मका बाघके साथ अवयव अवयवी सम्बन्ध अयुतसिद्ध है। समवाय सम्बन्ध है। व्याघ्रवधका हेतु (फल) चर्म है। उससे सप्तमी चर्मणि। दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्। दाँतलाभके लिए हाथीकी हिंसा करते है। कुञ्जरदन्त-का समवाय सम्बन्ध। दन्त अवयव-हाथी अवयवी, बधका निमित्तफल दोनों दाँत दन्तयोः इत्यत्र सप्तमी। द्विवचने ओस्। केशेषु चमरीं हन्ति। चमरीं गायके पुच्छका बाल घने होनेसे चँवरके लिये उस गायका वध करते हैं। जिसका फल केशलाभ। उससे सप्तमी। केशेषु। हेतौ सूत्रेण तृतीया प्राप्ता,

हेतुतृतीयाऽत्र प्राप्ता। सीमा अण्डकोशः। पुष्कलको गन्धमृगः। योगविशेषे किम्? वेतनेन धान्यं लुनाति (३६४) **यस्य च भावेन भावलक्षणम्। २। ३। ६७॥** यस्य क्रियया क्रियान्तरं लक्ष्यते, ततः सप्तमी स्यात्। गोषु दुह्यमानासु गतः। 'अर्हाणां कर्तृत्वेऽनर्हाणाम-

---

तादर्थ्ये चतुर्थी प्राप्ता, दोनोंको बाधनेके लिए सप्तमी। **सीम्नि पुष्कलको हतः।** सीमा **अण्डकोशः। सीमाघट्टस्थितिः क्षेत्रेषु अण्डकोशेषु च स्त्रियाम्।** कस्तूरीगन्धवाला मृग पुष्कलक है। **अथ पुष्कलको गन्धमृगे** क्षणपकीलपा इति **मेदिनी।** सीमाका समवायसम्बन्धः। कस्तूरी (सीमाफल)-के लिए मृग मारा गया। सीमन्शब्दात्सप्तमी **सीम्नि। हरदत्तमते** ग्रामप्रान्तदेश मर्यादा ज्ञानके लिए पुष्कलकः शङ्कु खूंटा, निखात, गाड़ा गया संयोग सम्बन्ध। वार्तिकमें **योगे**=संयोग समवाय सम्बन्ध अर्थ **क्यों** पढ़ा? इसलिए कि वेतनं भृतिद्रव्यं (मजदूरी) **तदर्थं लुनाति।** पैसेके लिए धानका लवन कटाई करता करता है। वेतनका धान्यके साथ। **तादर्थ्य सम्बन्ध** है। संयोग या समवाय नहीं। अतो न सप्तमी किन्तु तृतीया।

। ६३४। **यस्य भावेन** क्रियया (भावका क्रिया अर्थ है) जिस उपस्थिति (निर्ज्ञात) क्रियासे भावः लक्षणं, भावः अनिर्ज्ञातकाला क्रिया (दूसरी क्रियाके समयका ज्ञान न हो) उस क्रियाके ज्ञान करानेका लक्षण सूचक बोधक लक्षण क्रिया हो। कर्ता कर्ममें रहनेवाली क्रियाके वाचक शब्दसे लक्ष्यलक्षण अर्थ प्रकाशिका सप्तमी हो। जिस क्रियासे क्रियान्तरं दूसरी क्रिया लक्ष्यते सूचित हो, जान पड़े, उससे सप्तमी। एक क्रिया लक्षक है। जो कर्तामें कर्मके आश्रयमें रहती है। **ब्राह्मणेषु अधीयानेषु गतः** कदा गतः, का उत्तर है। जब ब्राह्मण पढ़ रहा था तब गया। गतः में कर्तरि क्त। ब्राह्मणमें अध्ययन क्रिया लक्षक है गमनक्रिया लक्ष्य, अत्र सप्तमी। कर्ममें क्रियाका उदाहरण–**देवदत्तः कदा गतः** इति प्रश्ने **गोषु दुह्यमानासु** गतः गाय दुही जा रही थी, गोषुमें लक्ष्यकत्वसम्बन्धे अर्थे **सप्तमी।** शेषषष्ठीको बाँधकर। लक्ष्य गमनक्रिया, वर्तमानगोदोहनकालिकाभिः **गोभिः ज्ञाप्यगमनवान्देवदत्तः।** गोदोहनक्रिया जो गायसे है, गमनक्रियाका बोधक है। गोदोहन दशायां गतिः। जब दुग्धासु कहेगें, तब भूतकालिक गोदोहन क्रियासहित गायसे गमन क्रिया जानी जायगी। **यस्य भवेन भावलक्षणं सूत्रेण लक्षकेऽर्थे सप्तमी। अत्र अवश्यं**

कर्तृत्वे तद्वैपरीत्ये च ' (वा १४८७—१४८८)। सत्सु तरत्सु असन्त आसते। असत्सु तिष्ठत्सु सन्तस्तरन्ति। सत्सु तिष्ठत्सु असन्तस्तरन्ति

पुनर्लक्ष्यं तदेव लक्षणं किन्तु एकबारं बोधकं ज्ञापकमपि लक्षणम्। यं कमण्डलुपाणि भवान् अद्राक्षीत् स छात्रः। जिसके हाथमें कमण्डलु आपने देखा था वह छात्र है। एकबार देखा तबसे कमण्डलुपाणि लक्षण हो गया। छात्र लक्ष्य। **उदिते आदित्ये जुहोति।** यहाँ समीपे आधार सप्तमीका अर्थ सूर्योदयके समीपकालमें अर्थ। **उपरागे स्नायात्**—ग्रहणमें स्नान करे, उपरागका आश्रय काल अर्थ सप्तमी। **अर्हणां**=जिस क्रियाके फलका पात्र जो उचित हो, उसे अर्ह कहते हैं। **यस्यां क्रियायां ये उचिताः ते अर्हाः।** उनमें कर्ताकी विवक्षा होनेपर सप्तमी वाच्य हो जिस क्रियाका जो कर्ता होना अनुचित है। उनसे अकर्ताकी विवक्षामें भी सप्तमी हो। यह **अनर्हणां** कर्ताके अयोग्यकी विवक्षामें सप्तमी। **तद्वैरीत्यें**=विपरीत उल्टा अर्थ। जो क्रियाका कर्ता हो सकते है, उनके अकर्ता होने अर्थमें सप्तमी। जों कर्ता नहीं हो सकते उनके कर्ता होनेमें सप्तमी। चारोंका क्रमिक उदाहरण **सत्सु तरत्सु असन्तः आसते।** सज्जन तर गये दुष्ट रह गये। सन्त तरणक्रियाके अर्हः योग्यकर्ता अधिकारी अर्थकी प्रकाशिका सप्तमी। **अनर्ह**=अयोग्यके कर्ताक। उदाहरण—**असत्सु तिष्ठत्सु**=असज्जन बैठे रह गये सन्त तर गये। तरण क्रियाके अनर्ह अयोग्य कर्ता असन्त अर्थमें सप्तमी। **तरणक्रियायाम् असतां अनर्हत्वं कर्तृत्वं प्रकाशयति सप्तमी।** **विपरीत** उदाहरण—**सत्सु तिष्ठत्सु** सज्जन सीधे साधे रह गये, असन्तः दुष्ट, हरामी तर गये। असज्जनका तरना अनुचित है। तथापि उनका कर्तृत्व सप्तमीसे प्रकाशित है। असज्जन तर गये सन्त रह गये सप्तमीसे अर्थ ज्ञापित। यद्यपि इस वार्तिकका प्रयोजन यस्य च भावेन सूत्र से **सिद्ध** तथापि जहाँ लक्ष्य लक्षणभाव न हो। वहाँ सप्तमीके लिए वार्तिक मान्य। कोई व्यर्थ ही मानते हैं। इस भाव लक्षणा सप्तमीका **सति सप्तमी** भी नाम है। **सूर्योपरागे सति दानम् उदिते सति** सूर्ये पानं, सतिकी सप्तमी। स तु पुंल्लिगः,सत्यां स्त्रीलिंगः। **सतीषु सत्सु चौरे समागते सति अहमजागरम्।** आगमनक्रियासे जागरणक्रिया लक्षित हुई। तीनों काल में भावलक्षणाक्रियासे क्रियाका ज्ञानकरानेवाली क्तक्तवतुसे भूतकालका ज्ञान। यथा—**प्राप्ते वसन्तसमये काकः काकः पिकः पिकः। भुक्तवति**

असत्सु तरत्सु सन्तस्तिष्ठन्ति (६३५) **षष्ठी चानादरे। २।३।३८॥** अनादराधिक्ये भावलक्षणे षष्ठी सप्तम्यौ स्तः। रुदति रुदतो वा प्राव्राजीत्। रुदन्तं पुत्रादिकमनादृत्य सन्न्यस्तवानित्यर्थः। (६३६) **स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च। २।३।३९॥** एतैः सप्तभिर्योगे षष्ठीसप्तम्यौ स्तः। षष्ठ्यामेव प्राप्तायां पाक्षिकसप्त-

---

परिजने गृहिणी भुञ्जीत्। एष सदाचारः लोग खा लें तब घरवाली खाय। वर्तमानकाल शतृ शानच्से। यथा–**जीवत्सु तात्पादेषु नवे दारपरिग्रहे। मातृभिश्चिन्त्यमानानां ते हि नो दिवसा गताः** पिता जीवित थे, नई बहू थी, मातायें ख्याल करती थीं वे दिन चले गये। **अधीयानेषु छात्रेषु राजाश्रमपदं प्राप्स्यति** राजा आश्रममें पहुंचे **गोषु धुक्ष्यमाणासु गमिष्यामि।** गाय दुही जायगी तब जाऊँगा, भविष्यकालिकक्रिया कृत्प्रत्ययसे सूचित होगी, क्रियमाणेषु **भृत्येषु दास्यामि** ऐसे उदाहरणोंसे संस्कृतवाङ्मय भरा पड़ा है।

।६३५। **षष्ठी च अनादरे**–विषय सप्तमी। तिरस्कार अपमानका विषय हो, पूर्वसूत्र पूरा आया। अनादर तिरस्कार या अपमानका आधिक्य चरमसीमा हो, तब जिस क्रियासे अन्य क्रिया लक्षित हो, समझमें आये, उससे षष्ठी सप्तमी दोनों हो। यथा कदा सन्यस्तवान् कब त्यागी बना, यदा **रुदति** (सप्तमी) **रुदतः** (षष्ठी) **वा प्राव्राजीत्।** रोते हुए पुत्र पत्नी माता पिताका अनादरकर, त्याग किया, निर्मोही सन्यासी बना। अनादर करके क्रिया करना (गमनरूप) क्रिया धात्वर्थ है। उसका प्रकाशक षष्ठी, सप्तमी भी। रुदन क्रिया **लक्षण,** सन्यास **लक्ष्य।** अनादर अधिक है। रुदनका आश्रय आदि विषय है। **ज्ञापक** सन्यास **ज्ञाप्य** अनादर पूर्वक गमन।

।६३६। **स्वामी** रक्षकः **ईश्वरः** प्रभुः समर्थः **अधिपतिः** स्वामि स्वसम्पन्न **दायाद** (पिता पितामहकी सम्पत्तिके अधिकारी) **साक्षी** गवाह, प्रमाणकर्ता **प्रतिभू** झट उत्तरदाता, प्रत्युत्पन्नमति, जबाबहाजिर, और **प्रसूत** इन सात शब्दोंके सम्बन्धमें षष्ठी सप्तमी दोनों हो, चकारके प्रभावसे। यद्यपि शेष षष्ठी हो सकती है, सूत्र क्यों पढ़ा? तब मूल बोले कि **षष्ठ्यामेव**=षष्ठी अर्थमें ही प्राप्त है। पक्षमें सप्तमी भी हो इसलिए सप्तमी पढ़ा। यथा **गवां गोषु वा स्वामी** गायोंका अधिपति, **गवां गोषु वा ईश्वरः गवां गोषु वा अधिपतिः, गवां गोषु वा दायादः पुत्रादिभिः गृहीतुं योग्यः** पिता पितामह से

भ्यर्थं वचनम्। गवां—गोषु वा स्वामी। गवां—गोषु वा प्रसूतः। गा एवानुभवितुं जात इत्यर्थः। (६६७) **आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम्। २। ३। ४०॥** आभ्यां योगे षष्ठीसप्तम्यौ स्तस्तात्पर्येऽर्थे। आयुक्तो व्यापारितः। आयुक्तः कुशलो वा हरिपूजने—हरिपूजनस्य वा। आसेवायाम्, किम्? आयुक्तो गौः शकटे। ईषद्युक्त इत्यर्थः। (६३८) **यतश्च निर्धारणम्। २। ३। ४१॥** जातिगुणक्रिया-

---

अर्जित धन **दाय** है **दायमादत्ते दायादः पुत्रपौत्रादिः। आतो अनुपसर्गे कः** दायके सम्बन्धका उत्तराधिकारी। गवां **दायेऽन्वयः नित्यसाकांक्ष्य दायरूप अंशग्रहणकर्ता। क्वचित् दायादशब्दः श्वान् पर्यायः।** गवां गोषु वा साक्षी द्रष्टा **प्रतिभूः प्रतिनिधिः प्रसूतः भोक्तृत्व सम्बन्धः।** जितने सूत्रमें शब्द पढ़े गये क्या, हाथी बकरी कुत्ता सबके लिये है। तब बोले **'गा एव'** गायके सम्बन्धमें ही उक्त अर्थोंका अनुभव होना चाहिए। अन्य महिष वृषभसे नहीं। सभीसे अधिक षष्ठीका प्रयोग अनादर अर्थमें मिलता है, **आयुर्नश्यति** पश्यतां प्रतिदिनम् देखते-देखते आयुक्षीण हो रही है अनादर प्रकट, पश्यतां जनानां= चोर अन्तर्धान, आँखमें धूल झोकता हुआ गायब हो गया। **कुक्कुराणां भुक्कतां गजाः गच्छन्ति** कुत्तोंके भौकनेका अनादरकर हाथी जाते हैं। **पश्यतोहर** देखते हर लिया बुद्धू बनाया, अनादरकी अधिकता इस षष्ठीका अर्थ।

। ३३७। **आयक्त** युक्तः कार्यं पूर्णप्रवृत्तः आयुक्त (कमिश्नर) नियुक्त और कुशल चतुर निपुणके योग—सम्बन्धमें षष्ठी सप्तमी हो। यदि तात्पर्य आसमन्तात्—पूर्ण तत्परतासे कार्य करना। आसेवाका अर्थ उत्सुकतासे तात्पर्य घटे। **तत्परे प्रसितः सक्ताः अविष्टार्थो युक्त उत्सुकः** इत्यमरः। आयुक्त शब्दका अर्थ **प्रवर्तितः।** भगवानकी पूजामें लगाया। कुशलः हरिपूजनका विषय, अधिकरण अर्थमें षष्ठी सप्तमी दोनों हो गयी। वैषयिक अधिकरण से केवल सप्तमी प्राप्त थी, सम्बन्धकी विवक्षामें षष्ठी प्राप्त दोनों विधानके लिए सूत्र। **आसेवा अर्थ क्यों पढ़ा।** इसलिए कि जहाँ आयुक्त कुशलका तात्पर्य रहे वहीं दोनों हों। अन्यत्र न हों। **आयुक्तो गौः, गाड़ीमें बैल** थोड़ा-जोड़ा गया। **आईषद् अर्थे।** युजिरयोगे, थोड़ा जुड़ा हुआ। **शकटमें** सप्तमी ही हुई। **गुरुसेवने, गुरुसेवनस्य पितृभक्तेः।**

६३८। **यतश्च।** पञ्चमी अर्थमें तस् **यतः** ततः जातिगुणक्रियासंज्ञा के जिस समुदाय से एकदेशस्य=किसी एक भाग अपनेसे इतरको अलग कर किसी एक

संज्ञाभिः समुदायादेकदेशस्य पृथक्करणं निर्धारणं यतस्ततः षष्ठी-सप्तम्यौ स्तः। नृणां-नृषु वा द्विजश्रेष्ठः। गवां-गोषु वा कृष्णा बहु-क्षीरा। गच्छतां-गच्छत्सु वा धावञ्छीघ्रः। छात्राणां-छात्रेषु वा मैत्रः पटुः। (६३९) **पञ्चमी विभक्ते। २। ३। ४२॥** विभागो विभक्तं।

धर्म गुण विशेषता का ज्ञान कराना **निर्धारणका** अर्थ है। समुदाय वाचक शब्द से षष्ठी, सप्तमीं हो। **यतस्ततः** जिससे उससे। जातिरूप समुदायसे अलग होनेका उदाहरण **नृणां नृषु वा श्रेष्ठः** मनुष्योंमें द्विज बड़े है नृ शब्द मनुष्य समुदाय अर्थमें है। जातिपक्ष में एकवचन न कहकर बहुवचनक्यों कहा! इसलिए कि समुदायके अवयवों में भेद की विवक्षा उद्भूत प्रकट हो। क्योंकि एकजातिकी विशेषता बतलानी है। जातिके अभिप्रायसे द्विजः एकवचन षष्ठी, सप्तमीका अवयव अवयवी भावसम्बन्ध। मनुष्य समुदायका एक अंश एकदेश एकभाग द्विज है। जो त्याग तप वेद ज्ञानसे मनुष्यों में अपनेको श्रेष्ठ सिद्ध कर अन्यकी व्यावृत्ति करते है। मनुष्योमें ब्राह्मण की श्रेष्ठताका निर्धारण अर्थकी प्रकाशिका षष्ठी **नृणां**, सप्तमी **नृषु**। गुणसमुदायसे अलगका उदाहरण **गवां गोषु**=गायों में कृष्णा गाय बहुत दूध वाली है। बहुत दूध देना गुण है। ऐसी गऊओं में बहुक्षीरत्वरूप धर्मसे इतर पशुओं की व्यावृत्ति। बहुक्षीर धर्मसे **निर्धारणेऽर्थे षष्ठी गवां, सप्तमी गोषु**। गो समुदायका एक देश कृष्णा गायका श्रेष्ठत्व बहुत दूध देनेसे सिद्ध है। **क्रियासे, क्रियाविशिष्ट समुदाय से पृथक्करण गच्छतां गच्छत्सु** चलने वालोमें दौड़नेवाला शीघ्रधर्मा है। क्रियावानोंके समुदायके एक देश धावन् शीघ्रगमनक्रिया अलग करती है। धावन क्रिया विशिष्ट शीघ्रता रूप विशेषता ज्ञानके लिए **षष्ठी, सप्तमी** दोनों समर्थ हैं। **संज्ञाविशिष्ट समुदायसे पृथक्करण-छात्राणां छात्रेषु** छात्र समुदाय का एक सदस्य मैत्र अपने पटुत्व चातुर्य कुशलता से धर्मवान है, अन्यसे, विशेषता पूर्ण है। संज्ञावाचक मैत्रसे अन्यका पृथक्करण। समुदायवाचक छात्र शब्द से पञ्चमीस्थाने निर्धारणे अर्थे षष्ठीसप्तम्यौ भवतः।

६३९। **पञ्चमी हो, विभक्ते**:=भेद रहने पर विपूर्वक भज धातुसे भाव अर्थ में क्तिन या क्त विभक्तिका भेद अर्थ। अतः मूलमें कहा **विभागो विभक्तं**, यतश्च निर्धारणे: अनु०। समुदायसे किसी विशेष गुण क्रिया जाति धर्मसंज्ञाविशिष्ट

निर्धार्यमाणस्य यत्र भेद एव तत्र पञ्चमी स्यात्। माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्यः आढ्यतराः। (६४०) **साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः। २। ३। ४३॥** आभ्यां योगे सप्तमी स्यादर्चायाम् न तु प्रतेः प्रयोगे। मातरि साधुर्निपुणो वा। 'अर्चायाम्, किम्? निपुणो राज्ञो भृत्यः। इह तत्त्वकथने तात्पर्यम्। 'अप्रत्यादिभिरिति वक्तव्यम्'

का **अलग होना निर्धारण** है। उसकी अवधि मनुष्य इत्यादि जो निर्धारणके योग्य द्विज आदि है। उनका सामान्य मनुष्यत्व धर्म जातिगुणक्रियासे अभिन्न है। **विशेषात्मना** सबसे श्रेष्ठता का भेद भी स्थित है। इनमेंसे भेदका ही **निर्धारण** विभक्ति पदसे इष्ट है। जहाँ निर्धारणकी अवधिसे निर्धारण किये जाने वाले का भेद हो, अभेद सम्भव न हो, वहीं सूत्र लगे, इसलिए कहा कि जहाँ जिसका जिससे निर्धारण हो, वहाँ भेद अर्थ बोलने वाली पञ्चमी हो। समुदायके एकदेशसे मतलब नहीं असम्भावनासे। **मथुरायां भवाः मथुराः** मथुराके लोग **पाटलिपुत्रकेभ्यः** पटनाके लोगोंसे **आढ्यतराः** अतिशय धनवान् है। अतिशयेन आढ्याः पञ्चमी का अवधि अर्थ। जैसे गोत्व अश्वत्व भैंसा हाथी से अन्तर करता है वैसे ही मथुराके लोग पटनाके लोग में अभेद नहीं। निर्धारणस्य अवधिः पाटलिपुत्रकः **तस्मात्पञ्चमी विभक्तेः** (अलगाव) अर्थे (यह सूत्र बुद्धि कल्पित अपादानसे) गतार्थः, अत एव व्यर्थः।

६४०। **साधु**=परकार्यसाधकः निपुण चतुर (**पुण्यकर्मणि शुभे च**) कर्म और कल्याण अर्थमें निपूर्वक पुण धातुसे इगुपधा लक्षण 'क'। **निपुणः** **कुशलः**। इन दोनोंके योगमें सप्तमी हो। **अर्चायां**=पूजा आदर स्वागत सम्मान, साधुवाद अर्थमें अर्च पूजायां, **गुरोश्च हलः** अ, टाप्। **न तु प्रतेः**=प्रतिशब्दका प्रयोग न होने पर। यथा **मातरि साधुः**माताके लिए हितकारी कुशल सेवामें साधु और निपुणका प्रयोग रहते मातृशब्दसे प्राप्त शेषषष्ठीको बाधकर **सूत्रेण सप्तमी, मातरि**। जिसका माताकी सेवा या हित में सफल अर्थ है। सूत्रमें **अर्चायां किं**? यदि साधु या निपुणका प्रयोग है ही, तब अर्चाके विना भी सप्तमी सम्भव, क्योंकि वार्तिक है **साध्वसाधुप्रयोगे च**। असाधुके योगमें भी सप्तमी स्वीकृत है। **अर्चाग्रहण क्यों**? इसलिए कि **"निपुणो राज्ञो** भृत्यः" राजाका सेवक चतुर है। यहाँ **तत्वकथने**=सत्य कहनेमें तात्पर्य है केवल प्रशंसामात्र अभीष्ट नहीं। निपुणके सम्बन्धमें भी राजन्से षष्ठी, न तु सप्तमी। साधुका फल यह है कि अर्चा पूजा अर्थमें प्रतिका प्रयोग

(वा १४६३)। साधुर्निपुणो वा मातरं प्रति परि अनु वा।

(६४१) **प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च। २। ३। ४४॥** तृतीया स्यात् चात्सप्तमी। प्रसित उत्सुको वा हरिणा–हरौ वा। (६४२) **नक्षत्रे च लुपि। २। ३। ४५॥** नक्षत्रे प्रकृत्यर्थे यो लुप्संज्ञया लुप्यमानस्य प्रत्ययस्यार्थस्तत्र वर्तमानात्तृतीयासप्तम्यौ स्तोऽधिकरणे 'मूलेनावाह-

---

हो, तब सप्तमी न हो। (वा०) **अप्रत्यादिभिः**=सूत्रमें प्रतेः पढ़े, पर्युदास नञ्, **अप्रति**=प्रतिशब्द न हो। **आदिभिः**=परि अनुका योग न हो, तभी सप्तमी हो। यथा साधुः कृष्णः भगवान् माताके प्रति परि, अनु, साधु संरक्षक निपुण कर्मकुशल शुभ माङ्गलिक है। प्रति परि अनुके निषेधसे **मातरं** में सप्तमी न। लक्षणेत्थं भूताख्यान भागवीप्सासु से प्रति परि अनु आये **कर्मप्रवचनीयसंज्ञा, द्वितीया च।**

। ६४१। **प्रसित। कार्यमें** रुचि तत्पर, उत्साहपूर्ण अर्थवाचक **प्रसित और उत्सुक** शब्दके योगे–प्रभावमें तृतीया हो, सप्तमी भी। विषयः आधारो यस्य **वैषयिक** सप्तमीमें ही प्राप्त होनेपर यह सूत्र। **तत्परे प्रसिताः शक्तौ इष्टाथोद्युक्तः उत्सुकः** इत्यमरः। उत्सुक अर्थमें प्रसितके प्रभावमें दोनोंका विधान। **उत्सुकसाहचर्यात्प्रसितोऽपि तत्पर एव। यदा प्रकर्षेण सितः** (बहुत सफेद शुक्ल) **अर्थः, तदा तृतीया न,** यथा हरिणा हरौ **वा प्रसितः। सेवायां सँल्लग्नः।** हरि सेवामें मगन है। **प्रसित योगे सूत्रेण तृतीया हरिणा, सप्तमी हरौ।** एवम् उत्सुक शब्दके सम्बन्धमें दोनों हुई, जिसके प्रति तत्परता होगी उसीसे वे होगीं।

। ६४२। नक्षत्र—नक्षत्रवाचक शब्द प्रकृति हो। नक्षत्र अर्थ निकलनेपर **लुप्संज्ञया**=लुप शब्दसे प्रत्ययलोप हुआ हो (अर्थ विशेषमें लाक्षणिक लुप है) **लुप्यमानस्य**=लोप हुए प्रत्ययका अर्थ वहाँ वर्तमान रहे, तब अधिकरण अर्थमें तृतीया हो, सप्तमी भी। **सप्तम्यधिकरणे** च सूत्रसे मण्डूकप्लुत्या मेंढ़क की तरह उछल कर अधिकरण आया। अधिकरण न कहते, तब **मूलं प्रतीक्ष्यते, मूलाय स्पृहयति** यहाँ भी तृतीया सप्तमी होती। **मूलेन अवहयेदेवीं** श्रवणेन विसर्जयेत्। मूल नक्षत्रमें देवीका आवाहन- श्रवणमें विसर्जन। मूल और श्रवण नक्षत्र है, **मूलनक्षत्रयुक्तः** कालः आवाहनका आधार **मूलशब्दात् नक्षत्रेण युक्तकालः** से **अण् लुबविशेषे** सूत्रसे अणःलुक्। लुप्त हुए प्रत्ययका अर्थ युक्तकाल, आधारभूत समय उसमें वर्तमानशब्द मूल और श्रवणसे तृतीया, **श्रवण** नक्षत्र युक्तकालमें। क्योंकि **यः शिष्यते सलुप्यमानाभिधायी भवति।** जो शेष है वह लोपहुएके **अर्थको** ही कहता है, प्रकृति ही स्वार्थ

येद्देवीं श्रवणेन विसर्जयेत्। मूले श्रवणे इति वा। लुपि किम् ? पुष्ये शनिः। (६४३) **सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये। २। ३। ४६॥** शक्तिद्वयमध्ये यौ कालाध्वानौ ताभ्यामेते स्तः। अद्य भुक्त्वाऽयं द्व्यहे द्व्यहाद्वा भोक्ता। कर्तृशक्त्योर्मध्येऽयं कालः। इहस्थोऽयं क्रोशे–

प्रत्ययार्थ भी कहेगी। अतः नक्षत्रवाचक शब्दसे ही तृतीया सप्तमी। यदा सप्तमी तदा **मूले** (मूल नक्षत्रसे युक्तकालके आधारमें आवाहन) श्रवण नक्षत्र युक्तकालके आधारमें विसर्जन। **लुप् किं** ? नक्षत्रवाची शब्दसे हुए प्रत्ययका लोप हुआ हो ऐसा क्यों ? इसलिए कि **पुष्ये शनिः**पुष्य नक्षत्रसे प्रत्यय लुप्त नहीं, अतः तृतीया भी नहीं किन्तु शनिका आधार पुष्यसे सप्तमी। **अधिकरणे किं** ? आधार अर्थ क्यों कहा, **मूलं प्रतीक्ष्यते**, मूल नक्षत्रको जोह रहे हैं। मूल आधार नहीं, तृतीया सप्तमी भी नहीं। **नक्षत्र क्यों** पढ़ा ? **पाञ्चालेषु तिष्ठति** पंजावमें रहता है जो रहनेका आधार है (जनपदे इति लुप्) देशवाची है, नक्षत्र नहीं, तृतीया न हो।

। ६४३। **सप्तमी** और **पञ्चमी** विभक्ति काल=पल-विपल घटी प्रहर दिन मास वर्ष इत्यादि अध्वा=रास्ता क्रोशसे हो, यदि **कारकमध्ये शक्तिद्वयमध्ये**=दो कारक **शक्ति** हो, कर्ता या कर्म उनके वीचका कालवाची अध्वावाची शब्दसे **एते**=सप्तमी पञ्चमी हो। 'कालाध्वनोः'-की अनुवृत्ति पञ्चमी अर्थ। सूत्रमें कारकशब्दका **कर्तृत्व** (कर्ताकी शक्ति) **कर्मत्व** (कर्मकी शक्ति) अर्थः। केवल कर्ता या कर्म नहीं, व्याख्यान ऊहापोह विचारसे। मध्य वही है जो आगे पीछे शक्तिसे घिरा हो, अतः **कारकयोर्मध्ये** कहा। यथा **अद्य भुक्त्वा अयं–द्व्यहे** आज खाकर दो दिनके बाद **भोक्ता**–खायेगा। दोदिनके पहले भुक्त्वामें क्त्वासे कर्ता [आजकी कर्ता शक्ति] दो दिनके बादकी भोक्ता (खानेवाला) कर्ताकी शक्ति, दोनों शक्तियोंके बीच **द्व्यहशब्दात् सप्तमी द्व्यहे, पञ्चमी द्व्यहात्**। समीप अधिकरण सप्तमी प्राप्त थी, और दो दिनके बादके समीपकालमें भोक्ता **अद्यतन भोजनक्रियया प्रकाशिता कर्तृशक्तिः द्विदिनपश्चात्, भोजनक्रियया प्रकाशिका** कर्तृत्वशक्ति, यदि कारकका अर्थ कर्ता कर्म ही होता तब उक्त उदाहरणमें सूत्र न लगता। क्योंकि क्त्वाका कर्ता के एकवचन अर्थमें विधानसे। **भोजनक्रियाके** कालगत भेदसे दोशक्तिभेद अतः **कर्तृशक्त्योर्मध्ये अयंकालः** कहा। कर्ताकी शक्तिकर्मकी शक्ति दोनोंके बीच अध्वाका उदाहरण **इहस्थोऽयं**=यहाँ बेठे-बैठे कोश (मील ३ किलोमीटर)

क्रोशाद्वा लक्ष्यं विध्येत्। कर्तृकर्मशक्त्योर्मध्येऽयं देशः। अधिकशब्देन योगे सप्तमीपञ्चम्याविष्येते। 'तदस्मिन्नधिकम्–' [सू १८४३] इति 'यस्मादधिकम्–' (सू ६३५) इति च सूत्रनिर्देशात्। लोके–लोकाद्वा अधिको हरिः। (६४४) **अधिरीश्वरे। १। ४। ६७॥** स्वस्वामिसम्बन्धे अधिः कर्मप्रवचनीयसंज्ञः स्यात्। (६४५) **यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी। २। ३। ६॥** अत्र कर्मप्रवचनीययुक्ते सप्तमी स्यात्। उप परार्धे हरेर्गुणाः। परार्धादधिका

के बाद तक लक्ष्यका भेदनकर सकता है। इह देशके समीप आधारमें **क्रोशोत्तर समीप देशे इषुणा लक्षं विध्येत, अस्मिन्स्थाने** लक्षभेदकी कर्ताशक्ति भिन्न है। एक कोशके बाद लक्षवेधमें शक्ति भिन्न है, दोनोंके बीचका अध्वा **क्रोशशब्दात् सूत्रेण सप्तमी क्रोशे, पञ्चमी कोशाद्।** शक्ति अर्थ न लेकर कर्ता कर्म अर्थ लेते तो यहाँ होता। **अद्यभुक्त्वा अयं**, यहाँ न होता। इसका सूचक उदाहरण दिया कर्ताशक्ति कर्मशक्तिके मध्यका देश क्रोश है। **लोके लोकाद्वा।** हरिः। हरिका आधार लोक होनेसे, अथवा संसारसे अधिक महत्त्वपूर्ण हरिभगवान् है। अधिककी अवधि लोक है, सीमाका सम्बन्धः। शेषषष्ठी ठीक लगती है। तब बोले —**अधिकशब्देन योगे**=यदि अधिक शब्दका सम्बन्ध हो, तब सप्तमी पञ्चमी ही **इष्यते**=इच्छाके विषय हैं। **तदस्मिन्नधिकं** सूत्रमें, अधिकंके साथ अस्मिन्, सप्तमी पढ़नेसे, **यस्माद्धिकं**—सूत्रमें अधिकंके साथ यस्मात्में पञ्चमी पढ़नेसे, अधिको हरिःके योगमें **सूत्रेण** सप्तमी– **लोके**, पञ्चमी— **लोकात्।** दोनों विभक्तियोंका अर्थ सीमा सम्बन्धः। लोकापेक्षया श्रेष्ठः।

। ६४४ । **अधि** शब्दको **ईश्वरे**=स्वस्वामिसम्बन्धे अर्थ अधिकार किया गया कर्मप्रवचनीयसंज्ञक हो, ईश्वरत्व सम्बन्ध स्वस्वामिभावका बोधक।

। ६४५ । **यस्मात् अधिकं** जिससे अधिक हो जिसका ईश्वरवचन श्रेष्ठता हो, उससे कर्मप्रवचनीयसंज्ञाके योगमें सप्तमी हो, शेष षष्ठीको बाधकर। **उपपरार्धे**=अन्तिमसङ्ख्यासे भी अधिक भगवान्के गुण है। **यस्मादधिकं गणनीयं नास्ति तत्परार्धम्।** इसकी उपेक्षा अधिक गुण। **उप इत्यत्र अपोधिके च इत्यनेन कर्मप्रवचनीयसंज्ञा, तद्योगे परार्धे इत्यत्र सूत्रेण सप्तमी। यस्य ईश्वरवचनं**=जिसके सम्बन्धमें ईश्वर भाव हो उससे सप्तमी हो। **स्वस्वामि**= स्वम् आधारः भूवि, स्वामी–ईश्वरः रामः। दोनोंको पर्यायेण क्रमसे सप्तमी हो। यत्का स्वम् अर्थ, स्ववाचकसे सप्तमी हो, ईश्वरशब्दभावप्रधान है।

इत्यर्थः। ऐश्वर्ये तु स्वस्वामिभ्यां पर्यायेण सप्तमी। अधि भुवि रामः। अधि रामे भूः। 'सप्तमी शौण्डैः' (सू ७१७) इति समासपक्षे तु रामाधीना। 'अषडक्ष–' (सू २०७६) इत्यादिना खः। (३४६) **विभाषा कृञि। १। ४। ९८।** अधिः करोतौ प्राक्संज्ञो वा स्यादीश्वरेऽर्थे। यदत्र मामधिकरिष्यति। विनियोक्ष्यत इत्यर्थः। इह विनियोक्तुरीश्वरत्वं गम्यते। अगतित्वात् 'तिङि चोदात्तवति' (सू ३९७८) इति सप्तमी विभक्तिः।

—०— इति कारकप्रकरणम् —०—

ईश्वरत्वसे सप्तमी हो। यह दूसरा अर्थ जिसमें ईश्वरत्व हो उससे सप्तमी। इससे स्वामीवाचकसे सप्तमीका लाभ। इस भावसे मूलमें कहा **ऐश्वर्ये तु**=स्व और स्वामीसे क्रमशः सप्तमी यथा **अधिभुवि रामः। अधिरीश्वरे सूत्रेण अधि इत्यस्य कर्मप्रवचनीयसंज्ञा तस्य योगेभुवि इत्यस्य सूत्रेण सप्तमीसिद्धा।** सम्बन्धे सप्तमीका अर्थ। **भुवः स्वामी रामः।** पृथ्वीके अधिपति, यहाँ स्ववाचकसे सप्तमी। अधि **रामे भूः।** रामकी अपनी भूमि अधि–स्वका पर्याय **सम्बन्धे अर्थे सप्तमी रामेः स्वामिवाचकात् सप्तमी।** यदि अधिका रामके साथ समास हो। क्योंकि अधि शौण्डादि **गण**में पढ़ा ही है। सुपो धातुसे सुपः लुक्। शौण्डादिगणमें अधिशब्दके पाठमें सप्तम्यन्तके साथ समासः। **अषडक्षाशितङ्ग्वलङ्कर्मा अलंपूर्वाध्युत्तरपदात्खः,** ख प्रत्यये ईनादेशे **रामाधीना भूः। रामः स्वामी यस्याः रामस्वामिका।** यदि विभक्तिके अर्थमें अधिके साथ अव्ययीभावसमास करोगे। तब **अधिरामं भूः** बनेगा **रामाधिकरणिका भूः।** उत्तरपदमें अधि नहीं तब खप्रत्यय भी नहीं।

। ६४६। **विभाषा** अधिपूर्वक कृ धातु हो, अधिको कर्मप्रवचनीयसंज्ञा है, **ईश्वरे**=स्वस्वामिभावेऽर्थे। यथा **यदत्र (अधिरीश्वरे अनु) अत्र अधिः विभाषा कृञ् सूत्रेण कर्मप्रवचनीयसंज्ञकः। तस्य सम्बन्धे द्वितीया माम्।** जहाँ मुझे नियुक्त करोगे, अधिकरिष्यतिका अर्थ विनियोक्ष्यते है। नियुक्त करनेवालेका ईश्वरत्व, स्वामिभाव सिद्ध होता है। परन्तु कर्मसंज्ञासे भीं **मां** में द्वितीया सिद्ध है। यह सूत्र क्यों पढ़ा? तब बोले–**अगतित्वाद्**–कर्मप्रवचनीयसंज्ञा विशेष है। उससे गतिसंज्ञाका बाध होगा। उसका फल तिङ् चोदात्तवति। उदात्तवाला तिङ् परे रहते गतिसंज्ञकको **निघात**=सर्वानुदात्त हो। करिष्यतिका तिङन्त

उदात्त है। तिङ्तिङःसे सर्वानुदात्तका 'निपातैर्यदि'-से निषेध, तब अधि को गतिसंज्ञा होकर सर्वानुदात्त न हो, इसलिए कर्मप्रवचनीयसंज्ञा पढ़ा। 'अधि' को सर्वानुदात्त रोकनेके लिए इदं सूत्रम्।

॥ इति प्रभाकरमिश्रविरचितायां प्राभाकरीटीकायां कारकप्रकरणं परिपूर्णम् ॥

॥ अथ कारकाभिज्ञानम् ॥

क्रियाजनकं सत्—फलसाधनं कारकं (विश्व फलाकांक्षी है) फलजननी-क्रियाका जनक कारक, जिनके सहयोगसे फलकी सिद्धि होती है फलके सहायक कारकोंका पूर्णज्ञान सुप्रयोगसे पुण्य लोक परलोकको सिद्धि होती है। **प्राचीनाचार्य क्रियान्वयिकारकं** कहते है। परन्तु कारकाणां–क्रियान्वयिनां क्रियान्वयः से कारकके उद्देश्यविधेय (जो क्रियान्वयी उद्देश्य है वही विधेय हो) तब वे एक होंगे दोनों एक दूसरेसे सम्बन्धित हैं। सन्देह निवृत्तिके लिए **नवीनाचार्य –क्रियाजनकं कारकं** कहते हैं जन्यजनकसम्बन्धसे संदेह निवृत्त। अतः **करोति क्रियया सह सम्बन्धितं सत् क्रियां निर्वर्तयति, फलं साधयति, जनयति अन्वेति वा कारकम्**। कृ धातुसे कर्तामें अक वृद्धिः। क्रियावाची जितनी धातु है, सब का प्रतिनिधि उपलक्षण प्रत्यायक बोधक कृधातुः। उनकीक्रियायोंको फलवती बनानेका साधन कारक है। वाक्यपदीयमें कारक लक्षण :—

स्वाश्रये समवेतानां तद्वदेवाश्रयान्तरे।
क्रियाणमभिनिष्पत्तौ सामर्थ्यं साधनं (कारकं) विदुः॥

स्वस्याः क्रियाया आश्रये आधारे–क्रिया अपने आश्रय कर्तामें समवाय सम्बन्धसे हो, **तद्वत्एव**–उसीप्रकारसे ही (अन्यः आश्रयः आश्रयान्तरं तस्मिन आश्रयान्तरे) दूसरे आधारकर्म करण सम्प्रदान अपादान अधिकरणमेंस **समवेतानां**=सम्बद्धानां समवाय या परम्परा सम्बन्धसे विराजमान हुयीं **क्रियणां**=

धातुका–अर्थ क्रियाकी **अभिनिष्पत्तौ**= फलसिद्धिमें जो सामर्थ्य(शक्तिकारकम्) है ?वह साधन कारक, शक्तिमत्पक्ष क्रियाफलंसाध्यते येन तत्साधनं कारकव षड्विध

कर्ता कर्म च करणञ्च सम्प्रदानं तथैव च ।
अपादानधिकरणं च कारकं षट् प्रकीर्तितम् ॥

हेतुकारक षष्ठीकारक भी चिन्त्य । कारिकासे छः कारक सिद्ध । सभीक्रियाजन्यफलकी सिद्धिमें साक्षात् या परम्परासाधक—सहायक है । समवेतानां=सम्बद्ध क्रियाके कर्तामें हैं । जो समस्त कारकोंका प्रेरक संचालक नायक है । अन्यकारककर्ताके अधीन हैं । क्रियते फलं निष्पाद्यते अनेन करण व्युत्पत्या: व्यापार: क्रिया, क्रियते निष्पाद्यते या सा क्रिया फलम् । यथा– **रामः गुरुं सेवते** । सेवा क्रिया आश्रयतासम्बन्धसे [राममें जो स्वतन्त्र आश्रय है] क्रियाका फल प्रसन्नता, गुरुरूप आश्रयमें समवाय सम्बन्धसे निष्पन्न होगी । इस फल सिद्धिका साक्षात्साधक राम **कर्ता** कारक है । सेवाजन्यफल (प्रीति, प्रसन्नता, आशीर्वादोन्मुख भाव) का आधार गुरु **कर्म**कारक है । (फलसिद्धिका साधन) गुरु (आश्रय) विना क्रियाफलकी सिद्धि होगी ही नहीं । आश्रयरूपसे फलका साधक **कर्मकारक** ।

करणकारक — भी फलसिद्धिमें साधन असाधारण कारण है । यथा—**अर्जुनेन बाणेन हतो भीष्मः** हननक्रियाका फल भीष्मका प्राणवियोग वध, है । उस हिंसाकी सिद्धिका साक्षात्साधक बाण हननव्यापाराश्रय है । अर्जुनः वधकर्ता प्राणवियोगरूप फलसिद्धिमें परम्परया साधक अनुक्तकर्ता, तृतीयाका पात्र, अर्जुनेन ।

सम्प्रदान—ङेभ्यांभ्यस् चतुर्थीकारक फलसिद्धिमें सहायककर्ताकी कामना का विषय (उद्देश्य) क्रियाफलकी सिद्धिमें सहायक साधन कैसे ? यह सुनें– **धनी छात्रेभ्य वस्त्रं ददाति** । दानक्रियाका कर्ता धनी, कर्म वस्त्र, (दान फलका आश्रयसे सम्बन्धित कामनाका विषय छात्र उसको **स्वस्वत्वनिवृत्ति**=अपना अधिकार समाप्तकर **परस्वत्व** स्थापनं दूसरेका अधिकार स्थिर करना सम्प्रदान है यथा—क्रियाफलका आश्रय (वस्त्र) आदिसे अपना अधिकार हटाकर दूसरे (छात्र) का अधिकार होनेके लिए कामनाका विषय **'अयं छात्रः कर्मवान्** (वस्त्रवान्) **भवतु** कपड़ेवाला हो जाय । छात्र सम्प्रदान तथा

चतुर्थीका पात्र। कर्म और सम्प्रदान दोनों कामनाका विषय है तथापि भेदस्तु इयान् **फलाश्रयत्वप्रकारक इच्छोद्देश्यं कर्म। कर्मवत्वप्रकारक—इच्छोद्देश्यं सम्प्रदानम्** इच्छाका विषय फलका आधार कर्म है जब कर्म सम्बन्धी होते हुए इच्छाका विषय बने तब सम्प्रदान है। यथा—दानं प्रति **फलाश्रयत्व प्रकारक इच्छोद्देश्यं वस्त्रं तादृशकर्मवत्वप्रकारक इच्छायाः विषयः छात्रः** सम्प्रदानम् दानक्रिया—जन्यत्वसम्बन्धसे फलमें, फल आश्रयिता सम्बन्ध से वस्त्रमें, वस्त्र स्वीकृतकामनोद्देश्वत्वसम्बन्धसे छात्रमें, दीर्घपरम्परा सम्बन्धसे क्रियाफलका सहायक साधन चतुर्थीकारक। अथवा क्रियाजन्य फलका आश्रय कर्म जिसके लिए हो कामनाका विषय हो, स्वत्वनिवृत्ति हो या न हो वह सम्प्रदान। **सम्यक्प्रदीयते क्रियाजन्यफलाश्रयः यस्मै तत्। विप्राय गां ददाति** दानक्रियाका फलाश्रय गां जो विप्रके लिए है। विप्रको सम्प्रदानकारक। **सीतायै वार्तां प्रेषयति** भेजन क्रियाफल विप्रका आश्रय वार्ता, जो सीताके लिए है, चतुर्थी।

पञ्चमी कारक अपादीयते पृथक् क्रियते कर्ता क्रिया च यस्मात् तत् अपादानम्। अलगावकी अवधि फलसिद्धिमें कारण साधन कैसे ? इतिचेत् शृणु **स्वर्गात् त्रिशंकुः अपतत्** पतनक्रिया अधः संयोग-नीचे गिरनेकी अवधि-सीमा आरम्भ स्वर्ग है। पतन फलका साक्षात्कारण स्वर्ग, अपादान सिद्ध। क्रियाका अवधित्वसम्बन्धस्वर्गमें है। **स्वदेशाद्विदेशं गच्छति।** गमनक्रियाकी सफलता में स्वदेश, अपादान कारक है। **षष्ठी कारक नहीं है,** क्रियाजननी न होनेसे। यथा **राज्ञः पुरुषः।** परन्तु **कारकषष्ठीको** कर्तृकर्मणोः कृतिः की वासनासे कारक मान सकते हैं। **कर्तृकर्मान्यतरार्थवाचिका षष्ठी कारक।** चैत्रस्य पाकानुकूला क्रिया, कर्तामें षष्ठी। ओदनस्य पाकः' कर्मणि षष्ठी। शेष षष्ठीमें कारकत्व नहीं। **आधारो-अधिक्रियते आश्रयीभवति कर्तृकर्ममाध्यमेन क्रिया अस्मिन्निति अधिकरणम्।** जब कोई आधार कर्ता या कर्मके सम्बन्धसे क्रियाका आश्रय बने, फल सिद्धिमें साधन हो वह अधिकरण है। **पर्यङ्के शेते देवदत्तः** कर्ताके माध्यमसे शयनक्रिया चटाई पर गयी, इसप्रकर शयन फलमें सहायक साधन अधिकरण॥

॥ इति कारकाभिज्ञानसक्षप्तिः॥

६४७ समर्थः पदविधिः । २ । १ । १ ॥ पद सम्बन्धी यो विधिः स

अथसमासेषु अव्ययीभावः ।

समसनम्=अनेकपदानाम् अर्थसहितानां मिलित्वा एकपदीभवनं सम्बद्धार्थीभवनम् एकार्थी, संश्लिष्टार्थी, सङ्गतार्थीभवनं समासः । सम्पूर्वक असधातोः भावे घञ् । अनेक पदोंका परस्पर सम्बन्ध जुड़ा अर्थः एकपद एकशक्ति सङ्गत (घृतं तैलेन इव) घी तेलमें लीन हो मिल गया, एक हुआ । संसृष्टं जलं दुग्धेन इव, पानी दूधमें एकीभूत हो गया इसप्रकार एकशब्द दूसरेशब्द के साथ शास्त्ररीतिसे सम्बद्ध, किसी सम्बन्धसे बँधे पदोंके अर्थोमें निजी सत्ता व्यक्तित्वका बना रहना व्यपेक्षा समासः । यथा गुरोः शिष्यः, सम्बद्धार्थ है । अनेक अर्थवाचक पदोंका मिलकर एक होना एकार्थीभावः अतिरिक्तशक्तिः परार्थाभिधान समुदायार्थ है । स्फोटार्थः—अस्यते प्रक्षिप्यते अर्थो येन असनं शब्दः निजी अर्थका प्रक्षेपण फेकना खोजना तथा मिलकर, एकार्थीभावको प्रकाशमें लाना । या समानं स्वसत्तास्थापनपूर्वकम् आसनं, परस्पर सम्बन्धित-अर्थके साथ निजी अर्थको सुरक्षित रखना व्यपेक्षावाद है । सम्पूर्वक उपवेशनार्थक आसधातुः, पदार्थ मिलकर एकार्थ हो गये हों, निजी अर्थ न हो, घी-मधुमिलकर तीसरी शक्ति हो, तब समासनं समासाः तेषु समासप्रकरणेषु अव्ययीभावः । व्ययंविकारः विपूर्वक इणधातुका विकृत होना, रूप बदलनाअर्थः । न व्येति विकारं न प्राप्नोति अव्ययं, लिङ्गसङ्ख्यावचनकारकसे किसी प्रकार का विकार, अन्तर, परिवर्तन रूपबदल न हो । न अव्ययं अनव्ययं=लिङ्ग-सङ्ख्याकारकका विकार अन्तर हो रूपबदले भेद हो । अनव्ययं (लिङ्ग सङ्ख्या अन्वय वाला) अव्ययं (निर्विकारो) भवति स अव्ययीभावः । प्रतिलिङ्गं प्रतिवचनं स्वरूपं न व्येति यत्तदव्ययम् । लिङ्गवचनसे भेद, विकारशून्य होना । जैसे–कृष्णः कृष्णा कृष्णं (विकारी) तस्य समीपं उपकृष्णम् । यहाँ कृष्णशब्द अव्ययीभाव हो गया, तीन लिङ्ग तीनवचन सातविभक्तिका विकारी प्रभाव नहीं पड़ा (विशेष सूत्र तृतीयासप्तम्योर्बहुलंको छोड़कर) ।

पूर्वप्रकरणसे विभक्तिका अर्थज्ञान हुआ, तदाश्रितसमासनिरूपणके लिए समासका उपोद्घात–आधारभूमिका–

। ६४७ । समर्थः का दो अर्थ, संपूर्वक अर्थशब्दका सङ्गत, मिलित

एकीभूत अर्थ र्धाशहद एकीभूत होकर तृतीयाशक्ति, अतिरिक्त अर्थ हो गये। यह विशिष्टार्थ है। दूसरा अर्थ समः समानः अर्थः समर्थः। पदोंका निजीअर्थ अलग रखते हुए सम्बद्ध आकांक्षित अर्थ समर्थः। (शकन्ध्वादिपररूप) तस्य भावः सामर्थ्यं **समर्थाश्रित**=परस्परसम्बद्ध अर्थके साथ बोध्य समझें। **पदविधिः**–विधीयते (जिसका विधान किया जाय) विधिः कार्यं, पदस्य पदयोः पदानां वा विधिः पदविधिः। सम्बद्ध अर्थ रहते समास। अतः वृत्तिमें बोले–**पदसम्बन्धी जो विधिः** (कार्य समास आदिः) **वह समर्थाश्रित**=सम्बद्धअर्थके आधीन हों। जहाँ पदोंके परस्पर सम्बन्ध न हो, वहाँ पद सम्बन्धी कार्य न हो। सूत्रमें **पदग्रहणं किं**–क्यों किया, इसलिए कि जहाँ केवल वर्णको विधि कार्य हो रहा हो, वहाँ समर्थसूत्र न लगे, (**वर्णविधौ समर्थपरिभाषा मा भवतु**। **तिष्ठतु दध्यानय तक्रं**, दही रहने दो मट्ठा लाओ। इ स्थाने यण्विधि में समर्थपरिभाषा नहीं लगी। अन्यथा जहाँ परस्पर एकार्थीभाव रहेगा वही सन्धि होगी, वह तो व्यपेक्षामें भी होती है। जैसे–रामश्चिनोति। विधिग्रहणका फल **पदस्य विधिः पदयोर्विधि पदानां विधिः**। अनेकके साथ समास लाभाय। पदस्य इतना ही कहते तब उपपदमतिङ्में ही सूत्र लगता।

सामर्थ्यं द्विविधं–व्यपेक्षा एकार्थीभावश्च। स्वार्थसंरक्षण पूर्वक पदानां परस्परम् आकांक्षा-योग्यता-सन्निधिवशात् सम्बन्धः, **व्यपेक्षासामर्थ्यं**, **विशिष्टा सम्बद्धा विशेषणस्य अपेक्षा व्यपेक्षा**। इसको सम्बद्धार्थः समर्थः कहते हैं। यह लौकिक वाक्य जैसे–**राजपुरुषः** में ही रहता है। ऐसे वाक्यमें **ऐकैकस्य शब्दस्य यो यः** सन्निहितो योग्यश्च तेन तेनान्वयो **भवति**। एक-एक शब्द जो जिसके समीपमें है। उसके योग्यता सम्बन्ध भी है तब उनका उनके साथ सम्बन्ध होता है जैसे राज्ञः पुरुषो अश्वश्च। राजाका आदमी घोड़ा भी। दोनोंके स्वामीकी योग्यता राजामें है। राज्ञो देवदत्तस्य च पुरुषः। राजाका देवदत्त का भी पुरुषकी योग्यता, एक अर्थ, एकपद, एकशक्ति। राजपुरुष, जैसे समास में ही है। लौकिकविग्रहमें सम्बद्ध अर्थ होनेपर भी अलग सत्ता बनी रहती है। उसमें ऋद्धस्य राज्ञः विशेषण जुड़ सकता है। राजपुरुषः समासमें एकशक्ति एक अर्थ, एकपद, होनेसे राजमें विशेषण नहीं जुड़ेगा, क्योंकि **पदार्थः पदार्थेन अन्वेति, न तु पदार्थैकदेशे**, राज एक देश है। यदि ऐसा तब **देवदत्तस्य गुरुकुलं** (गुरु का वंश) गुरोः कुलं गुरुकुलं, समास होनेपर देवदत्तस्य विशेषण कैसे ?

समर्थाश्रितो बोध्यः। (६४८) **प्राक्कडारात्समासः । २ । १ । ३ ।** 'कडाराः कर्मधारये' (सू ७५१) इत्यतः प्राक् समास इत्यधिक्रियते। (६४९) **सह सुपा । २ । १ । ४ ।।** 'सह, इति योगो विभज्यते। सुबन्तं

अथवा देवदत्तस्य गुरोः कुलं कहने पर समास कैसे। सविशेषणां वृत्तिर्न वृत्तस्य विशेषण योगो न। सापेक्ष, साकांक्ष, जिज्ञासाका विषय होनेसे समास। प्रमाणन्तु **कस्य गुरोः** कुलमिति जिज्ञासा, अथवा **सम्बन्धिशब्दः सापेक्षो नित्यं सर्व समस्यते। वाक्यवत्सा व्यपेक्षाहि वृत्तावपि न हीयते।** परस्पर सम्बन्धितशब्द एक दूसरेका मुख देखें अपेक्षा करें, आधीन हों ऐसे सभी नित्यसमास मान्य। वाक्यमे जैसी सम्बद्धता रहती है वह समासमें भी ठहरती है एकदेशमें भी विशेषण बनती है, जिज्ञासा होनेपर। **समुदायेन सम्बन्धो येषां गुरुकुलादिना। संस्पृश्यावयवांस्तेस्तु युज्यन्ते तद्वता सह।** गुरुकुल आदि समुदायके साथ जिनका सम्बन्ध है। वे अवयवका स्पर्शकर जुड़ते है। यथा **शिवस्य भगवतो भक्तः** अर्थमें **शिवभागवतः** भी होता है। अतः अजहत्स्वार्था वृत्ति भी इष्ट है। वृत्तिके विषयमें प्रत्येक पदको अनर्थक नहीं माना जा सकता, **महाबाहुः सुपन्थाः** आदिमें आत्वके प्रमाणसे। अतः **जहत्स्वार्था तु तत्रैव यत्र रुढिः विरोधिनी।** यथा **अश्वकर्ण मण्डपः।** सूत्रमें समर्थक्यों? **पश्यकृष्णं श्रितो रामं मित्रम्** यहाँ कृष्ण और श्रितका परस्पर एकार्थीभाव नहीं, समास न हो जाय।

। ६४८। **प्राक्**—आकाडारात्सूत्र ही पढ़ते, अर्थ वही निकलता, कि कडाराः कर्मधारय इस सूत्रके पहले समासका अधिकार है। सूत्रमें **प्राक् क्यों** पढ़ा? इसलिए कि एकसंज्ञाके अधिकारमें दो संज्ञाओंका समुच्चय,संग्रह हो सके। **समाससंज्ञा** होकर **अव्ययीभाव** या **तत्पुरुष** आदि संज्ञाए भी हों। **समास शब्दार्थ**-समसनं अनेकपदस्य एकपदीभवनं, समासः भावे घञ्। अथवा सम्पूर्वक अस्धातुका एकीकरणके अनुकूलक्रिया अर्थः। **समस्यते इति समासः** कर्मणि घञ्। **अन्वर्थ-स्फोटार्थ-व्युत्पत्त्यर्थ घटनेवालीसंज्ञा।**

। ६४९। **सुबामन्त्रित** सूत्रसे सुप् आया तब तदन्तविधि। सुबन्तका सुबन्त के साथ उच्चारण होने पर सामर्थ्य सम्बद्ध अर्थ होते समाससंज्ञा हो। एकपद एकअर्थ, एकशक्ति। अत्र शंका सुबन्तका सुबन्तके साथ समास हो जायगा, तिङन्तके साथ समास कैसे? तब बोले—**सह योगो विभज्यते।** सह सुपा

समर्थेन सह समस्यते । योगविभागस्येष्टसिद्ध्यर्थत्वात्कतिपयतिङन्तोत्तरपदोऽयं समासः। स च छन्दस्येव। पर्यभूषयत्। अनुव्यचलत्। 'सुपा'। सुप्सुपा सह समस्यते। समासत्वात्प्रातिपदिकत्वम्। (६५०) **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः। २।४।७१॥** एतयोरवयवस्य सुपो लुक्

सूत्रका विभाग होगा, पहला **'सह'** दूसरा **'सुपा'**। 'सह' भागमें सुपा आवेगा तब अर्थ होगा कि सुवन्तका समर्थके साथ समास हों। जिस किसीका सम्बद्ध अर्थ रहनेपर समास होगा। सम्पूर्वक असुधातुसे समास क्रियाके प्रति सुबन्त कर्म है। **समस्यते एकीक्रियते प्रयोवतृभिः, समाससंज्ञां लभते।** यदि सुबन्तं कर्तृसमर्थेन समस्यते तत्र, बाहुलकात् भावे कर्मणि वा घञ् मान्यः। **अत्र शङ्का** समर्थके साथ समासनियमसे **घटो भवति** में क्रियाकारक सम्बन्ध अर्थ है। समास होकर **'घटभवति'** हो, तब कहा कि–**योगस्य सूत्रस्य विभागः।** सूत्रके दो भाग करनेकी इष्टसिद्धि, सफलताके लिए जहाँ प्रयोगसिद्धि इष्ट हो, समास आवश्यक हो, उसके लिए योगविभाग है। अतः **कतिपयानि तिङन्तानि उत्तरपदानि** यस्य, कुछ तिङन्तके उत्तरपद रहते समास हो, सभी तिङन्तोंके साथ नहीं। वह भी **छन्दस्येव** वेदमें ही। यदि लोकमें समास होता तब **यत्प्रकुरुते** में सु, आयेगा दोष होगा कि **सामान्ये नपुंसकं ह्रस्वश्च नपुंसकलिङ्ग** ह्रस्व होना दोष। **देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषयत्।** आपने देवताओंको यज्ञसे पूर्ण अलंकृत किया। समासका फल स्वरव्यत्यय और समासान्तोदात्त, शेषनिघात सर्व अनुदात्त। **वि अचलत्** समासे, **अनुव्यचलत्।** ततः समासे। समासका फल पूर्ववत्। एक साथ अनु–वि का समास न होनेमें प्रमाण–**महिष्याः अजायाश्च क्षीरं,** क्षीरके साथ दोनोंका समास नहीं हुआ। **दूसरा विभाग 'सुपा'**—सुप् आया। समासका अधिकार अर्थ **सुबन्तका सुबन्तके साथ समास** हो। यथा **पूर्वभूतः भूतपूर्वः** प्राचार्यः। **पूर्वअम् भूत सु।** 'सुपा' **सूत्रेण समासे समासत्वात्कृतद्धितसमाश्च, प्रातिपदिकसंज्ञा, यस्याः फलं**—

।६५०। **सुपो।** धातुश्च प्रातिपदिकञ्च तयोः अवयवषष्ठी। धातुसंज्ञक का अवयव और प्रातिपदिक सुप्का लुक् है। **ण्यक्षत्रियार्ष** से लुक् अनु०। **सुप्** प्रत्याहारः, केवल सप्तमी बहुवचन सुप् नहीं, अत्र प्रमाणं **पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः** सूत्रमें पञ्चमींका अलुक् विधान। यदि सप्तमी ही ली जाती तब पञ्चमीका अलुक् कैसे करते। **सुपोधातु–सूत्रेण सुपोलुक् पूर्वभूत। सुवन्तं**

स्यात्। 'भूतपूर्वे चरट्' (सू १९९९) इति निर्देशाद् भूतशब्दस्य पूर्वनिपातः। पूर्वं भूतो भूतपूर्वः। 'इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च' (वा १२३६,१३४१)। जीमूतस्येव। (६५१) **अव्ययीभावः। २। १। ५॥** अधिकारोऽयम्। (६५२) **अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसाकल्यान्तवचनेषु। २। १। ३॥** 'अव्ययम्' इति योगो विभज्यते। अव्ययं

सुबन्तेन समस्यते। समासशास्त्रमें दोनों प्रथमासे उच्चारित। **उपसर्जनसंज्ञा पूर्वनिपात** किसका हो, विनिगमना—पक्षपातिनी युक्ति **'भूतपूर्वे चरट्' सूत्र** के निर्देश उच्चारण प्रमाणसे भूतशब्दका पूर्वनिपात, भूतपूर्व। **एकदेशविकार न्यायसे** समुदायसे यथा योग्य सुप् **भूतपूर्वः।** (**वा०**) **इवेन**–इव इस अव्ययके साथ सुवन्तका समास एकार्थीभाव एकपद हो। **विभक्तेः अलोपः**=सुपोधातु से सुपका लुक् न हो, समासस्वर नहो। सह सुपासे समास होता ही वार्तिकसे समास क्यों! पूर्वनिपात निवारणके लिए। **जीमूतस्येव** बादलकी तरह श्यामः। अत्र **जीमूत 'ङस्' इव अलौकिक विग्रहे, वार्तिकेन समासे सुपः अ–लोपे** विभक्तिका लोप नहीं हुआ। **उद्बाहुरिव वामनः** बौनाके भुजा उठाकर लपकने की तरह। **हरीतकीं भुङ्क्ष्व राजन्मातेव हितकारिणीम्,** हर्रको खाओ माताकी तरह माङ्गलिकी है। इसमें **मातेव** की जगह **मातरमिव तिङ समानाधिकरणे प्रथमा** या **अभिहिते प्रथमा** होती है, कारक होनेसे क्रियाका सम्बन्ध आवश्यक माताका मातृसदृशीम् अर्थ असाधुः **मातरमिव** कहना ठीक है।

।६५१। अव्ययीभावसंज्ञाका अधिकार सूत्र हैं। एकसंज्ञाके अधिकारमें अव्ययीभाव संज्ञासे समाससंज्ञा बाधित नहीं होगी। प्राक्कडारात्सूत्रमें कहा गया है।

। ६५२। **अव्ययं**— अव्ययपदका **विभक्ति** (कारकशक्ति) **विभज्यते प्रातिपदिकार्थः 'कर्ता', 'कर्म', करणादि, अनया।** विभक्त्यर्थादिषु=समीप समृद्धिः इत्यादि अर्थ कहे जाँयगे, उनके साथ समास हो। सूत्रमें द्वन्द्व समास। अत्र शङ्का–**अपदिशम्** आदिप्रयोग जिनका अर्थ **दिशयोर्मध्ये** दिशाओंके बीच है। वे 'विभक्तिसमीप' आदिमें नहीं आते, उनको समास कैसे? तब बोले–**अव्ययमिति**–बड़े सूत्रका विभाग करेगें, **'अव्ययं'** अंशमें समर्थः आवेगा। अर्थ होगा कि अव्ययका समर्थ सम्बद्ध अर्थके साथ समास एकार्थीभाव, एकपद, एकशक्ति हो, वह अव्ययीभाव, पूर्वपदार्थपधान समास मान्य। **दिशयोर्मध्ये** अस्वपदविग्रह, **दिशाओस् अप।** मध्य अर्थ वाला 'अप' इस अव्ययका

समर्थेन सह समस्यते। सोऽव्ययीभावः। (६५३) **प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्।१।२।४३॥** समासशास्त्रे प्रथमानिर्दिष्टमुपसर्जनसंज्ञं स्यात्। (६५४) **उपसर्जनं पूर्वम्।२।२।३०॥ समासे** उपसर्जनं प्राक्प्रयोज्यम्। (६५५) **एकविभक्ति चापूर्वनिपाते।१।२।४४॥** विग्रहे यन्नियतविभक्तिकं तदुपसर्जनसंज्ञं स्यात्, न तु तस्य पूर्वनिपातः

समासे=संक्षेपीकरण, एकार्थीभाव हो, अव्ययीभावसंज्ञाभी। **समासत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञा। सुपो धातु-सूत्रेण विभक्ति लुक्। दिशा अप इति दशायां उपसर्जन** संज्ञाविधायकसूत्र···

।६५३। **प्रथमा** विभक्तिसे **निर्दिष्ट**=उच्चारित शब्द समासशास्त्रे=समासविधायकसूत्रमें हो, उसको उपसर्जनसंज्ञा हो जाय। यदि **समासे चिकीर्षिते** कहें, तब कृष्णं श्रितः में **श्रितः** को उपसर्जनसंज्ञा पूर्वप्रयोग होने लगेगा। अतः '**द्वितीयाश्रितातीत**'—सूत्रमें द्वितीया प्रथमासे उच्चारित है, एवं बड़ें सूत्रमें 'अव्ययं' प्रथमासे उच्चारित, उपसर्जनसंज्ञकका फल पूर्वप्रयोग।

।६५४। **उपसर्जनं**=समास में जिसकी उपसर्जनसंज्ञा हुई हो, उसका पूर्वमें प्रयोग हो। 'समास' प्रथमान्त है योग्यतासे सप्तमी। प्रसङ्गमें 'अप' अव्ययको उपसर्जन तथा पूर्वप्रयोग सिद्ध। **अपदिशा इति स्थितं।** दिशा-शब्दको **उपसर्जनसंज्ञाके** लिए सूत्र···

।६५५। **एकविभक्ति**। प्रथमा निर्दिष्टसे समास और उपसर्जन आये। विग्रह वाक्यका सूचकसमास। **एकैव विभक्तिर्यस्य तत्।** एका नियतविभक्तिः। विग्रहवाक्य में जो नियत स्थिर एकरस रहे, ऐसी विभक्तिवालेको उपसर्जन-संज्ञा हो। **अपूर्वनिपाते**=उसका पूर्वनिपात पूर्व योग न हो। **उपसमीपे सृज्यते स्थाप्यते इति उपसर्जनम्।** परन्तु इस उपसर्जनका फल शास्त्रीय, अप्रधानअर्थ नहीं, अतः **कुमारी इव आचरन्ब्राह्मणः कुमारीमें** ह्रस्व नहीं हुआ। यथा काश्याः **निर्गतः निष्काशि। काश्याः** निर्गतं निष्क्रान्तेन, निर्गताय, निर्गतस्य, निष्क्रान्ते, आदिविग्रह में निरादयः क्रान्ताद्यर्थे समासे **निष्काशिः निष्काशि निष्काशिना** इत्यादि। काशीशब्द एकविभक्ति वाला है। उपसर्जन संज्ञाका पात्र बना। समास विधायकमें पञ्चम्याः पढ़ा, प्रथमा नहीं, प्रथमा-निर्दिष्टसे उपसर्जन अप्राप्त, अतः यह सूत्र। प्रसङ्गमें **दिशयोर्मध्यः, मध्यं, मध्येन**, मध्याय, इत्यादि विग्रहमें दिशाशब्द निश्चित विभक्तिक है, उसको उपसर्जनसंज्ञा जिसका फल···

(६५६) **गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य । १ । २ । ४८॥** उपसर्जनं यो गोशब्दः स्त्रीप्रत्ययान्तं च तदन्तस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः स्यात् । 'अव्ययीभावश्च' (सू ४५१) इत्यव्ययत्वम् । (६५७) **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः । २ । ४ । ८३॥** अदन्तादव्ययीभावात्सुपो न लुक्, तस्य तु पञ्चमीं बिना अमादेशश्च स्यात् । दिशयोर्मध्येऽपदिशम् । क्लीबाव्ययं त्वपदिशं दिशोर्मध्ये विदिक् स्त्रियामित्यमरः । (६५८) **तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् । २ । ४ । ८४ ॥** अदन्तादव्ययीमावात्तृतीयासप्तम्यो-

---

। ६५६ । **गोस्त्रियोः**, ह्रस्वः प्रातिपदिकस्य अनु० । उपसर्जन—गो स्त्रियोंमें विशेषण । एक एकके अभिप्रायसे एकवचन । स्त्रीसे स्त्रीप्रत्यय, तदन्त विधि । उपसर्जनसंज्ञक गो शब्द या स्त्रीप्रत्ययान्त हो अन्तमें ऐसे प्रातिपदिक को ह्रस्व, एक मात्रा हो । स्त्रीप्रत्ययान्त—दिशा अन्तमें हो, ऐसा प्रातिपदिक **अपदिशा**, उसके आ को ह्रस्व **अपदिश । अव्ययीभावश्च** से अव्ययीभावसंज्ञा **सुप का अव्ययादाप्सुपः** से लुक्प्राप्त हुआ । 'अम्' विधायक, लुक्-निषेध सूत्र···

। ६५७ । **नाव्ययी**––अम्––तु––अपञ्चम्याः । **ण्यक्षत्रिय०** से लुक् आया । 'अव्ययादाप्' से 'सुप्' । अदन्त अव्ययीभावसे सुप्का लुक् न हो, इससे लुक् का निषेध हुआ । **अम् तु—अपञ्चम्याः** का अर्थः लुक् न हुये सुप्के स्थानमें सभी विभक्तिको अम् आदेश हों । केवलपञ्चमीको अम् न हो । सार यह है कि सुपका लुक नहो । पञ्चमीको छोड़कर, सब सुप्को अम् आदेश हो, पञ्चमीका लुक् और अम् दोनों न हों । इसका सूचक **तु** शब्द है । **इति सूत्रेण अम् आदेशे अपदिशं**, पूर्वपदार्थप्रधान अप्का मध्य अर्थ । दिशाओंके मध्यमें **अपदिशं गच्छामि ।** अपदिशं गच्छ । इस अम्से सभी विभक्तियोंका अर्थ निकलेगा । **अपदिशात् आनय** (दिशाओंके बीचसे लाओ) यह प्रयोग नपुंसक ह्रस्वसे भी सम्भव था, तथापि चित्रगुः अतिखट्वः के भाष्यमें अदृष्ट है तथापि योग विभागसे समर्थित अपदिशम् । अत्र **बृद्धसम्मतिः** क्लीवे== नपुंसक लिङ्गमें अव्यय अपदिशं है जिसका स्फोटार्थः दिशयोर्मध्ये है । स्त्रीलिङ्गमें **विदिक्** । सूत्रमें **अतः क्यों** पढ़ा **अधिहरि** में अम् न हो ।

। ६५८ । **तृतीया**=अदन्त अव्ययीभाव समाससे तृतीया और सप्तमीका बहुल इच्छानुसार सुप्के स्थानमें अम्की इच्छा नहीं हुई तब विभक्तिका अलुक्, **नाव्ययीभावसे दिशयोंमध्ये दिशा टा अप समासादिः, प्रातिपदिकसंज्ञा**

बहुलमम्भावः स्यात् । अपदिशम्–अपदिशेन । अपदिशम्–अपदिशे । बहुलग्रहणात् सुमद्रम् उन्मत्तगङ्गमित्यादौ सप्तम्याः नित्यमम्भावः । 'विभक्ति' इत्यादेरयमर्थः । विभक्त्यर्थादिषु वर्तमानमव्ययं सुबन्तेन सह समस्यते, सोऽव्ययीभावः । विभक्तौ तावत् । हरौ इत्यधिहरि । सप्तम्यर्थस्यैवात्र द्योतकोऽधिः । हरि ङि अधि इत्यलौकिकं विग्रह-

---

समुदायसे तृतीया टा । **तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् अम् आदेशे अपदिशं**, यदा **नअम्** तदा टा स्थाने इन गुणे **अपदिशेन** । एवं दिशयोर्मध्ये **अपदिशे** । अपदिशम् । **दिशाङि अप** समासादिः । यद्यपि वा ग्रहणसे विकल्प सिद्ध था, **बहुल क्यों** पढ़ा ? इसलिए कि नित्य अनित्य पक्ष विपक्ष आदि अनेक अर्थ बहुलके हैं । जिसका फल **सुमद्रं**, मद्राणां समृद्धिः, **उन्मत्तगङ्गम्** उन्मत्ता गङ्गा यस्मिन्देशे इत्यादि स्थलमें सप्तमी स्थाने नित्य अम् हो ।

दूसरा विभाग **विभक्तिसमीप** आदि हैं । विभक्तिका अर्थः । उच्चन्ते इति वचनाः । विभक्तिसमीप आदि सोलह शब्दोंका द्वन्द्वः । ते च ते वचनाश्च । विभक्तिके अर्थमें, समीप अर्थमें, सम्पत्ति, नाश, अर्थका अभाव, ध्वंस, सम्प्रति नहीं, शब्दका प्रकाश, पश्चात्, यथाअर्थ, आनुपूर्वी, एकसाथ समानता सम्पत्ति, सम्पूर्ण, अन्त । इन अर्थोमें वर्तमान अव्यय अधि, उप, सु, दुर, निर, अति, इति, अनु, प्रति, यथा, सह, इत्यादिका सुबन्तके साथ समास पूर्व पदार्थप्रधान एकार्थ हो । समासके अधिकारमें तावच्छद्वः क्रमार्थः । विभक्तिके अर्थमें उदाहरण–**हरौ इति अधिहरि** संसारः । भगवानमें, विश्व है जितना जानते हैं सब भगवान्में, यह समासार्थ । **हरिङि अधि** । अदिशब्द हरि ङि (के साथ) । **अव्ययं विभक्ति सूत्रेण समासे प्रातिपदिकसंज्ञायां सुपो लुक् समासविधायक** सूत्रमें **अव्ययं प्रथमासे उच्चारित उपसर्जन संज्ञा, पूर्वप्रयोगे, एकादेश विकारन्यायसे** प्रातिपदिकसंज्ञा सुप् । तस्य लुक् अव्यादाप्सूत्रेण ? **अधिहरि** । अदन्त नहीं **अम्न** । लौकिकशब्दमें अधि क्यों नयीं पढ़ा ? तब बोले **सतम्यर्थका ही द्योतक,** अधिकरण अर्थ प्रकाशक अधिशब्द है । अतः सप्तमीका ही आधार अर्थ । अतः अधिशब्दको अलौकिक विग्रहमें नहीं पढ़ा, **नित्य समासमें स्वपदविग्रह** अनुचित है । ननु **हरौ इति परिनिष्ठत सन्धिकार्य** होनेपर समासमें औ का 'सुपो' से लुक् होकर रेफमें इकार कैसे ? तव कहा कि **हरिङि अधि** ऐसा अलौकिक विग्रह वाक्य है । हरौ इति ऐसा नहीं, सन्धिकार्यके पहले समास है । प्र० जब अधिसे आधार अर्थ उक्त है सप्तमी

वाक्यम्। अत्र निपातेनाभिहितेऽप्यधिकरणे वचनसामर्थ्यात्सप्तमी। **(६५६) अव्ययीभावश्च। २। ४। १८॥** अयं नपुसंकं स्यात्। 'ह्रस्वो नपुसंके प्रातिपदिकस्य' (सू ३१८) गोपायतीति, गाः पातीति वा गोपाः तस्मिन्नित्यधिगोपम्। समीपे—कृष्णस्य समीपमुपकृष्णम्। समया ग्रामं, निकषा लङ्काम्, आराद्वनादित्यत्र तु नाव्यायीभावः 'अभितः परितः—' [वा १४४२] 'अन्यारात्—' [सू ५९५] इति द्वितीया—

कैसे ? तब बोले **अत्र निपातेन**=यहाँ अधिसे अधिकरण अर्थ अभिहित उक्त है। तब भी वचन सामर्थ्यसे सप्तमी। क्योंकि सुपाकी अनुवृत्ति आती है, सुबन्तके साथ समास विधानके सामर्थ्यसे सप्तमीका होना अनिवार्य। यद्यपि अधिकरण उक्त है **उक्ते प्रथमा** होनी चाहिए तथापि अधिका द्योत्य अर्थ सप्तमी है प्रथमा नहीं। **विषवृक्षोऽपि सम्बर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतमित्यत्र एष्टव्यम्।**

। ६५९। **अव्ययीभावसमास** नपुंसक है। स नपुंसकम्। उसका फल बोले **ह्रस्व— नपुंसक**लिङ्गमें वर्तमान प्रातिपदिकको ह्रस्व हो। **गोपायति रक्षति** गुपू रक्षणे विच्। **आयादयः आर्धधातुके,** आय, लोपो व्योः से यलोप, **वेरपृक्तस्य** वलोप। गोपाः अथवा **गाः पाति** गोपा क्विप्। उपपदसमास, तस्मिन् **अधिगोपम्।** गाय रक्षकों में। **गोपाङि अधि अलौकिकविग्रहे विभक्त्यर्थे अव्ययीभावसमासे-समासत्वात्प्रा० संज्ञा, सुपो लुक्=नपुंसकसंज्ञा ह्रस्वे,** एकदेश **विकृतन्यायेन सु,, नाव्ययीभावात्—अम् पूर्वरूपे** स्त्रीप्रत्यान्त नहीं, गोस्त्रियोः भी नहीं। समीप अर्थमें समासका उदाहरण **कृष्णस्य समीपं** लौकिकवाक्ये। समीप अर्थमें उप अव्यय है नित्यसमासमें अस्वपदविग्रह उचित। अतः **कृष्ण ङस् उप। अलौकिक विग्रहे अव्ययं विभक्तिसमीप- सूत्रेण समासे, समासत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञा** सुपो धातुप्रातिपदिकयोः **लुक्। पुनः सु अव्ययादाप्सुपः लुकि प्राप्ते तस्य नाव्ययीभावात् निषेधे, किन्तु अमादेशे उपकृष्णं** तिष्ठ कृष्णके पास बैठो। **उपकृष्णात् आगच्छामि, उपकृष्णे पुस्तकानि सन्ति।** समीप अर्थमें समया, निकषा, आरात् वनात् आदि शब्द है। **ग्रामं समया, जनपदं निकषा वनात्** आरात् अव्ययीभावमें पूर्वनिपात का नियम है। तब बोले अव्ययीभाव समास न हो, क्योंकि **अभितः परितः समया निकषा** योगमें द्वितीयाविधान सामर्थ्यसे। आरात् वनात्में **अन्यारादितरर्ते**—सूत्रसे पञ्चमीविधानके सामर्थ्यसे समास ही होगा, पूर्वप्रयोग नहीं : ग्रामस्य समीपे तेषामर्थाः। उपशब्दः तन्मात्रवाची **उपकृष्णं भक्ताः।** कृष्णसामीप्यवन्तः। **मद्राणां समृद्धिः** इति

पञ्चम्योर्विधानसामर्थ्यात्। मद्राणां समृद्धिः समद्रम्। यवनानां व्यृद्धिर्दुर्यवनं, विगता ऋद्धिः व्यृद्धिः। मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकम्। हिमस्यात्ययोऽतिहिमम्। अत्ययो ध्वंसः। निद्रा संप्रति न युज्यते इत्यतिनिद्रम्। हरिशब्दस्य प्रकाशः इतिहरि। विष्णोः पश्चादनुविष्णु।

विग्रहे मद्रासियोंकी प्रभूतसम्पत्ति। सम अव्यय का अर्थ समृद्धि सम्मद्रम् : नित्यसमासमें भिन्नपदके साथ विग्रह। **मद्र आम् सम्** समासादिः पूर्ववत् पूर्वपदका अर्थ प्रधान है। यदि उत्तरपद प्रधान होगा समृद्धाः मद्राः सम्मद्राः (कुगति प्रादयः समास) धनी। मद्रादि–बड़े सूत्रमें वचन पढ़नेके सामर्थ्यसे अव्यय पूर्वपदका अर्थ प्रधानसमास मान्य। **यवनानां वि–ऋद्धिः**। नष्टसम्पत्तिः **दुर्यवनं** है, दुरका अर्थ विगत ऋद्धिः। न कहिए कि अर्थाभावमें गतार्थ होगा तन्न, जिसके साथ समास है उसका अभाव इष्ट है। यहाँ यवनका अभाव इष्ट नहीं, उसकी वृद्धिका अभाव इष्ट है। **यवन आम् दुर्** समासादिः। अव्यय अर्थ दुरका प्रधान बोध। अर्थाभावका उदाहरण –**मक्षिकाणामभावः** मक्खियोंके सम्पर्कका अभाव निर्शब्द कहेगा। **संसर्गाभावे अयं समासः नतु अन्योन्याभावे**। **मक्षिक आम् निर्** इति दशायां समासादिः। निर्मक्षिकम् घटः पटो न, अव्ययीभाव नहीं होगा अत्यन्त अभाव इष्ट, अर्थ ग्रहण प्रमाणसे **हिमस्य अत्ययः ध्वंसः** नाशः अर्थको अति कहता है। अर्थाभाव जान पड़नेसे पुनरुक्ति दोष दूर किया। अर्थाभावसे अत्यन्त अभाव इष्टः। वर्फका पिघलना रिसना चट्टान गिरना। **हिम ङस् अति** अव्यय अर्थं प्रधान, वर्फका नाश। **अतिनिद्रं** का स्फोटार्थ **निद्रा सम्प्रति न युज्यते**। इस समय नींद नहीं आती। **यह** असम्प्रतिका अर्थ है। (**एतर्हि सम्प्रति इदानीम्** अमरः) नञ क्रियामें लीन एकार्थीभावसे नञ् समास। निद्रा सम्प्रति न युज्यते। यह लौकिकविग्रह निद्रा सु अति समासादिः। नञ्का क्रियामें अन्वय, उसीका निषेध। अधिकरण शक्तिकी प्रधानतासे सूत्रमें शब्दप्रादुर्भावका प्रकाश अर्थ। अतः बोले **हरिशब्दस्य**—हरि शब्दका **प्रकाश** अर्थ। इति यह अव्ययप्रकाश अर्थमें है। हरि ङस् इति विग्रहे शब्दप्रकाश प्रधाने अर्थे समासादिः। **विष्णोपश्चात् अनुविष्णु**। अनु यह अव्यय पश्चात् अर्थमें है। **विष्णु ङस् अनु, समासादि** असमानता अर्थमें ही यथा का समास हो, **तेनेह** न=जहाँ समानता है वहाँ समास नहीं। **यथा हरिः वै तथा हर!** जैसेविष्णु सेगुणवान् शङ्कर, समास **अनुविष्णु** पठामि (विष्णुके बाद पढ़ूँगा) **अनुमित्रं** गच्छामि। **अनुमकरन्दं**

पश्चाच्छब्दस्य तु नायं समासः। 'ततः पश्चात्स्रंस्यते ध्वंस्यते' इति भाष्यप्रयोगात् योग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्थाः। अनुरूपम्, रूपस्य योग्यमित्यर्थः। अर्थमर्थं प्रति प्रत्यर्थम्। प्रतिशब्दस्य वीप्सायां कर्मप्रवचनीयसंज्ञाविधानसामर्थ्यात्तद्योगे द्वितीयागर्भवाक्यमपि। शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति। हरेः सादृश्यं सहरि। वक्ष्यमाणेन सहस्य सः। ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येणेत्यनुज्येष्ठम्। चक्रेण युगपदिति

खादामि। पश्चात् शब्दके साथ समास नहीं। अचः परस्मिन्सूत्रे—ततः पश्चात्स्रंसते, बादमें गिरता है समास नही किया। यदि समास होता पश्चात्-शब्द का पूर्वनिपात हो जाता। **यथा**—अर्थमें वर्तमान अव्ययका समास लाभके लिये चार अर्थः। **योग्यता**—धर्म, **वीप्सा**—**पुनरुक्ति**, **पदार्थानतिवृत्ति**—शक्ति का उल्लघन न करना, **सादृश्य**—समानता ये यथा के अर्थ है। **रूपस्य योग्यम् अनुरुपम्**। अव्यय (अनु) योग्यता अर्थमें। अतः यथा अर्थमें (कन्यारूपके योग्य वर) **रुपङस् अनु**। समासादिः पूर्ववत्। **कुलस्य योग्मनुकूलम्**। अर्थमें-अर्थ प्रति। लौकिक विग्रहे वीप्सायां द्विर्वचने **लक्षणेत्थंभूत** से एक एक के अर्थ प्रकाशक प्रति की **कर्मप्रवचनीयसंज्ञा** उसके योगमें द्वितीया। **अर्थ अम् प्रति**। अलौकिकवाक्ये समासादिः। **समासमें दो** बार उच्चारण नहीं, उसका भाव समासमें यथा के अर्थ वीप्सा से ही खुल जाता है, प्रति उसका प्रकाशकः। **यद्यपि** नित्यसमास होनेसे, अर्थम् अर्थ प्रति लौकिकविग्रहका प्रदर्शन असम्भव है। तब बोले—**प्रतिशब्दस्य**=प्रतिशब्दके वीप्सा दोबार उच्चारण अर्थमें कर्म-प्रवचनीयसंज्ञाके विधान सामर्थ्य से **तद्योगे**=उसके सम्बन्धमें द्वितीयागर्भवाक्य भी रहता है। **शक्तिमनतिक्रम्य** सामर्थका उल्लघन न करके, **यथाशक्ति** इस अव्ययका उदाहरण **परावरयोगे क्त्वा**। **शक्ति अम् यथा** समासादिः। **यथाक्रमः यथाधनं, यथाबलम्**। **हरेः सह** जो सादृश्य अर्थमें है। भगवानके समान **सहरि**। **हरि ङस् सह समासादिः वक्ष्यमाणेन=अव्ययीभावे चाकाले** सूत्रसे सह स्थाने स। गुरोः सादृश्यं **सगुरु**। भ्रातुः सदृशः **सभ्रातृ**। **ज्येष्ठस्य अनुपूर्वस्य भावः आनुपूर्व्यं** कार्यं कृतम्। वड़ेके **अनुकूल** कार्य किया या **पूर्वस्य क्रमेण अनुपूर्वम्** स्वार्थे ष्यञ्। **ज्येष्ठ अस् अनु** आदिः **चक्रेण युगपत्**। जो सह साथ अर्थमें है। इति विग्रहे **चक्रके** साथ हो वह **सचक्रम्**। **सविशेषं, चक्र टा सह समासादिः**। सह स्थान स। तत्सूत्रम्...

विग्रहे। [६६०] **अव्ययीभावे चाकाले।** ६।३।८१॥ सहस्य सः स्यादव्ययीभावे, न तु काले। सचक्रम्। काले तु सहपूर्वाह्णम्। सदृशः सख्या ससखि। यथार्थेत्येनैव सिद्धे पुनः सादृश्यग्रहणं गुणभूतेऽपि सादृश्ये यथा स्यादित्येवमर्थम्। क्षत्राणां संपत्तिः सक्षत्रम्। ऋद्धेराधिक्यं समृद्धिः, अनुरूप आत्मभावः संपत्तिरिति भेदः। तृणमप्यपरित्यज्य सतृणमत्ति। साकल्येनेत्यर्थः। नत्वत्र तृणभक्षणे तात्पर्यम्। अन्ते अग्निग्रन्थपर्यन्तमधीते साग्नि। [६६१] **यथाऽसादृश्ये**

।६६०। **अव्ययीभावसमासमें** सह स्थाने स हो काल वाचक शब्द परे न हो तब सहको स न हो। युगपतके सथा समास नहीं, सूत्रसे पढ़े जानेसे। **चक्रेण युगपत्प्रयुक्तम्** ।कालअर्थमें **पूर्वाह्णेन युगपत्**। समीप अर्थमें सहके साथ समास। दिनके पहले भागके साथ। सदृशसे स्वार्थमें ष्यञ्, सादृश्य अर्थमें अव्ययीभाव। **सदृशः सख्या ससखि**। मित्रके समान। सह अव्ययका सदृशअर्थः। **सखि टा सह** समासादिः **समित्रम्**। यह प्रयोग **यथा** का सादृश्यसे सिद्ध था, बड़ें सूत्रमें पुनः सादृश्य क्यों पढ़ा? तब बोले-**गुणभूतेऽपि**=बड़े सूत्रके अन्तमें वचनशब्दसे अव्यय अर्थ प्रधान समासका निश्चय है। जो गौण अप्रधान, सादृश्यमें नहीं होते। गौणमें भी समास हो, इसलिए पुनः सादृश्य पढ़ा। क्षत्रियोंका अनुकूलकर्म सम्पत्ति **सक्षत्रं** है। सह अव्यय सम्पत्ति अर्थमें। **क्षत्र आम् सह** आदिः सम्पत्ति और समृद्धिका अन्तर बोले--**ऋद्धेः**=धनधान्यम्, ऐश्वर्य वीरता आवश्यकता से आधिक्यं अधिक समृद्धिः। अनुरूप=भोग भरका आत्मभाव-स्वभाव उचित आवश्यक धनधान्य सम्पत्ति है। तृण भी न छोड़कर तृणसहित खाता है। **सतृणमत्ति** 'परावरयोगे' क्त्वा, परावरत्वं बोध्यम्। सह शब्द अपरिवर्जने पूरा खाने कुछ भी न छोढ़ने अर्थमें। तृणसहित खानेमें नहीं। **पात्रे परिविष्टं सकवं भक्षयति** पत्तालखानेमें मतलब नहीं। **तृण अम् सह**। **अन्तेः** का उदाहरण— सूत्रमें अन्तशब्द किसी अंश या पूरेका अन्तिमभाग तकका साहित्य अभिप्रेत है अतः अग्निग्रन्थपर्यन्त पढ़ता है। अग्निचयन प्रतिपादक एक ग्रन्थ है। उसमें वेद कल्प सूत्रका आदि भाग है। **अग्निग्रन्थेन सहितं साग्निः**। **अग्नि टा सह** आदिः।

।६६१। **यथा** शब्द असादृश्ये=तुल्यता समानता अर्थमें न हो, किन्तु **योग्यता वीप्सा शक्तिका** अनुल्ङ्घन अर्थमें वर्तमान हो, तब समास एकार्थीभाव हो। यह अर्थ यथार्थ से सिद्ध था, सूत्रने नियम बनाया, **असादृश्ये एत्र**=

।२।१।७।। असादृश्य एव यथाशब्दः समस्यते। तेनेह न। यथा हरिस्तथा हरः। हरेरुपमानत्वं यथाशब्दो द्योतयति। तेन 'सादृश्य' इति वा 'यथार्थ' इति वा प्राप्तं निषिध्यते। (६६२) **यावदवधारणे** ।२।१।८।। यावन्तः श्लोकास्तावन्तोऽच्युतप्रणामाः यावच्छ्लोकम्। (६६३)**सुप्प्रतिना मात्रार्थे** ।२।१।९।। शाकस्य लेशः शाकप्रति। मात्रार्थे

नहीं हुआ। यद्यपि **येन प्रकारेण यथा**--प्रकार अर्थमें थाल् है सादृश्य अर्थमें समास कैसे? तब बोले हरिका **उपमानधर्म यथा** शब्द प्रकाशित करता है, सामान्य धर्मका भेदक विशेष धर्म ही प्रकार है उस अर्थमें थाल्। यद्विशेषधर्मवान् हरिः तद्विशेषधर्मवान् हरः! जो गुण विशेषता मोक्षदान विष्णुमें वही शिवमें। यत्तत् शब्दसे दोनोंकी विशेषतामें भेद न होनेसे, उपमानधर्म सिद्ध है। **तेन**=इस कारण चाहे सादृश्य अर्थसे प्राप्त हो या यथा अर्थसे प्राप्त समासका निषेध होता है। **सादृश्ये वर्तमानं यथार्थे वा वर्तमानमव्ययं न समस्यते। अन्यार्थे वर्तमानं तु समस्यते।**

। ६६२। **यत्परिमाणमेषां ते यावन्तः।** इयत्ता परिच्छेदकः। इतना परिमाण मात्राका अवधारण ज्ञान होता हो तब यावत् इस अव्ययका सुबन्तके साथ समास अव्ययीभाव हो। जितने श्लोक हैं (भागवतके) उतने भगवानके प्रमाण है। परिमाण अर्थमें **यत्तदेतेभ्य वतुप्। यावत् जस् श्लोक जस्**स मासादिकार्य। नित्यसमासमें अस्वपदविग्रह उचित। **अवधारणे** किं मात्राका निश्चय अर्थ क्यों? इसलिएकि **यावद्दत्तं तावद्भुक्तं** जितना दिया उतना खाया। **कियद्दत्तं कियद्भुक्तमिति नावधारयति समासो, मा भवतु।**

। ३६३। **सुप् प्रतिना**=तृतीया है, मात्रा-लेश किञ्चित=अर्थमें वर्तमान प्रति, इस अव्ययका सुबन्तके साथ समास एकार्थीभाव हो। सूत्रमें सुपासे सुप् आता ही, पुनः सुप् क्यों पढ़ा? वह अव्ययकी निवृत्तिके लिए प्रमाण बनेगा। इसी भावको स्पष्ट खोलनेके लिए उदाहरण **शाकस्य लेशः** (सागकी कुछ मात्रा अर्थमें) **शाक ङस् लेश सु** इति अलौकिक विग्रहे। मात्रा अर्थ में प्रतिके साथ **शाक ङस्** इस सुबन्तका समास एकार्थ। समासविधिसूत्रके सुप्में प्रथमा है, उसको उपसर्जनसंज्ञा, पहले प्रयोग। 'प्रतिना'में तृतीया पढ़नेसे प्रतिका पूर्वप्रयोग नहीं। **सुप् न** पढ़ते, दोषा**मन्यमहः** (रातके समान दिन) **दिवामन्या रात्रिः** इस प्रवृत्तिके विषयमें एवमात्रा अर्थमें प्रतिका स्मरण हो, तब **दिनस्य--लेशो दिनप्रति** दोषायाः लेशो **दोषाप्रति** इत्यादि

किं वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत्। **(६६४) अक्षशलाकासंख्याः परिणा ।२।१।१०॥** द्यूतव्यवहारे पराजय एवायं समासः। अक्षेण विपरीतं वृत्तमक्षपरि। शलाकापरि, एकपरि। **[६६५] विभाषा ।२।१।११॥** अधिकारोऽयम्। एतत्सामर्थ्यादेव प्राचीनानां नित्यसमासत्वम्। 'सुप्-

---

उदाहरण ही बनते। सूत्रमें **मात्रा अर्थ क्यों** ? पढ़ा इसलिए कि जहाँ मात्रा अर्थ न हो वहाँ समास न हो। यथा **वृक्षं प्रति**–पेड़के चारो ओर विजली चमकती है, यहाँ प्रतिका लेश या किञ्चित अर्थ न हो समास नहीं।

। ६६४ । **अक्ष**=जूआ खेलनेका पाशा **शलाका** गणनाक्रम **सङ्ख्याशब्द** का परिके साथ समास हो, परन्तु **द्यूतव्यवहारे**=जूआ खेलनेकी विधिमें पराजय अर्थ समाससे प्रकाशित होता हो तब। **पूर्वपदपदार्थ प्रधानमान्य। पञ्चभिः अक्षैः शलाकाभिः** पराभवति। **यदि सम्पूर्णाः अक्षाः शलाका वा उत्तानाः उर्ध्वमुखं वा पतन्ति तदा पातयिता जयति। अन्यथा पराजयते।** यथा **अक्षेण** (कर्तरि तृतीया, पाशा फेननेसे) **विपरीतं वृत्तं** (उल्टा अर्थ निकला) वृतु वर्तनेसे क्रिया अर्थमें क्त, **पूर्वं जये यथा वृत्तं** पहले विजय जैसे हुई **तथा न वृत्तं** वैसा नहीं हुआ, हार गये। **अक्ष टा परि** अक्षशलाका–सूत्रेण समासादिः **शलाकया विपरीतं वृत्तं** शलाकापरीक्षामें हार गये। **शलाका टा परि** समासादिः। **एकपरि एकेन विपरीतं वृत्तम्।** एकसे पराजय हुआ समासार्थ द्वाभ्यां विपरीतं **द्विपरि**। त्रिभिः विपरीतं वृत्तं **त्रिपरि**।

। ६६५ । **विभाषा** अधिकार सूत्र। उत्तर भागमें समस्तसमासमें अनुवृत्ति (विभाषा अपपरिबहि–सूत्रका विभाग है। परन्तु इस विभाषा (पक्षपातिनी भाषा या विविधा भाषा विकल्प) को 'सह सुपा' से पहले क्यों न पढ़े ? तब बोले **एतत्सामर्थ्यात्**=मध्यमें विभाषाका अधिकार चलानेके प्रभावसे। इतः **प्राचीनानां**=यहाँसे पहले पढ़े गये समासको नित्य समझें। प्राचीनोंके विकल्प में प्रमाण न होनेसे नित्य सिद्ध था, विभाषाधिकारसे द्विर्बद्धसुबद्धन्यायेन विभाषाका दृढ़ीकरण। यदि ऐसा तब 'सुप्सुपा' भी नित्यसमास होगा, तब **पूर्वभूतः** यह लौकिक वाक्य नहीं बनेगा **विष्पष्टंपटुः** भाष्य प्रयोग विरुद्ध होगा, तब कहा कि सप्सुपा नित्यसमास नहीं करता। तत्र प्रमाणम्, अव्ययं विभक्ति आदि बड़े सूत्रसे समासका विधान। यदि सुप्सुपानित्यसमास होता, अव्ययं विभक्ति' सूत्र क्यों पढ़ते। वह व्यर्थ होकर अपनेसे पहले विधियोंको विकल्प घाषित करता है कि क्वाचित्क। **इवेन समास** भी क्वाचित्क। **उद्रा**

सुपा' इति तु न नित्यसमासः'। अव्ययम्' इत्यादिसमासविधानाज्ज्ञापकात्। [६६६] **अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या । २ । १ । १२ ॥** अपविष्णु संसारः–अप विष्णोः । परिविष्णु परिविष्णोः । बहिर्वनं बहिर्वनात् । प्राग्वनं प्राग्वनात् । [६६७] **आङ्मर्यादाऽभिविध्योः । २ । १ । १३ ॥** एतयोराङ्पञ्चम्यन्तेन वा समस्यते सोऽव्ययीभावः । आमुक्ति संसारः-आ मुक्तेः । आवालं हरिभक्तिः–आ वालेभ्यः [६६८] **लक्षणेनाभिप्रती**

हुरिव वामनः समास नहीं हुआ । यद्यपि नित्य समासाधिकारे 'कुगति प्रादयः' पर भी 'इवेन' पढ़ा है । तथाऽपि सुप्सुपा सूत्र पर भी स्मरण ।

। ६६६ । **अप परि बहि** अञ्चू इनका पञ्चम्यन्तके साथ पूर्वपदार्थप्रधान-समास । पूर्वपदमें उत्तरपद मिल गया दूधमें जलकी तरह । **पञ्चम्याङ्परिभिः** से अप परिके योगमें पञ्चमी । **'अन्यारादितर'** से अञ्चु परे पञ्चमी । **ज्ञापकसिद्धं न सर्वत्र । अपविष्णु** विष्णुंवर्जयित्वा संसरणं संसारः भगवानसे वञ्चितका जन्म मृत्यु पपञ्च है । **विष्णु ङस् अप** समासके विकल्पसे अस्व-पदका नियम नहीं । **अव्ययीभावसमासे सुपो लुक्** प्रथमासे उच्चारित अपका पूर्वनिपात । समुदायसे सुप् उसका 'अव्यादाप्सुपः' से लुक् । इसी प्रकार **परिविष्णु** । विष्णु ङस् परि । विवेकपूर्वक समास विकल्पसे, वाक्य भी । **बृहिर्वनम्** वनसे बाहर **सेना तिष्ठति** । सूत्रके ज्ञापनसे बहिःके योगमें समास । **वन ङस् बहिः** समासादिः । अदन्त होनेसे लुक्को बाधकर अम् । **प्राग्वनम्** । वनसे पहले **वनङस् प्राक्** प्रकर्षेण अञ्चति समासे पूर्ववत्कार्यम् । पक्षमें वाक्यभी ।

६६७ । **आङ् मर्यादा**=धर्मकी सीमा **अभिविधि**=व्यापक' आरम्भसे अन्त तक) इन दो अर्थोंमें विराजमान आङ्का' पञ्चम्यन्तके साथ अव्ययी भाव समास हो । मर्यादाका उदाहरण—संसारकी मर्यादा अन्तिम सीमा मुक्ति है, अन्तिम सीमा **अर्थ** समासार्थ । **आङ्** का **मुक्ति ङस्**के साथ सूत्रेण समासादिः । अदन्त नहीं, अम् नहीं, किन्तु अव्ययात्से सुपः लुक् । **अभिविधि** का उदाहरण, आबालं–बालपनसे लेकर अखण्ड जीवनके अन्त तक भगवानका भजन । **आ बालेभ्यः । बाल भ्यस् आ** सूत्रेण सासादिः । पक्षसे वाक्य भी, **आङ् मर्यादा वचने**, दोनों स्थलमें कर्मप्रवचनीयसंज्ञा पञ्चमी ।

। ६६८ । **लक्षणेन=चिह्नं लक्ष्यं च लक्षणम् अमरः** । चिह्न अर्थमें लक्षण-शब्द । यहाँपर अभि और प्रतिशब्द लक्ष्यलक्षण और अभिमुख सम्मुख अर्थके

आभिमुख्ये ।२ । १ । १४ ॥ आभिमुख्यद्योतकावभिप्रती चिह्नवाचिना सह प्राग्वत्। अभ्यग्नि शलभाः पतन्ति, अग्निमभि। प्रत्यग्नि' अग्निप्रति। [६६९] **अनुर्यत्समया** ।२।१।१५। यं पदार्थं समया द्योत्यते तेन लक्षणभूतेनानुः समस्यते सोऽव्ययीभावः। अनुवनमशनिर्गतः। वनस्य समीपं गत इत्यर्थः। [६७०] **यस्य चायामः** २ । १। १३ ॥ यस्य

प्रकाशक हैं। उनका चिह्नवाचिनः=लक्षण या अभिमुखवाचीके साथ समास हो। **अग्निमभि**। **शलभाः क्षुद्रजन्तुविशेषाः स्थूलमक्षिकाः** फतिङ्गे सम्मुख पतन अर्थमें अभिशब्दः। **अग्नि अम् अभि**। **अभिरभागे** और **'लक्षणेत्थंभूत'**से अभि और प्रतिको कर्मप्रवचनीयसंज्ञा योगे द्वितीया। **अग्निज्ञाप्यं तदभिमुखं च शलभपतनं समासार्थः**। अग्निकी तरफ पतिङ्गे टूट रहे है। **लक्षणेनाभिप्रती**—सामासादिः। पक्षे वाक्यमपि। अग्निज्ञाप्य लक्षण पतन **अग्नि प्रति अग्नि अम् प्रति**। सूत्रेण समासादिः। **प्रत्यग्नि**। **लक्षण क्यों** पढ़ा ? स्रुघ्नं प्रतिगतः, जहाँसे आया वहीं गया। स्रुघ्नं कर्म है लक्षण नहीं, नहिसमासः। **अभि प्रति क्यों** पढ़ा ? **येन अग्निः, तेन गतः** जिस मार्गसे अग्नि गया उसीरास्ते से वह भी गया, गमनसे अग्नि लक्षण, सम्मुख गमन लक्ष्य भी यहाँ समास न हो। **आभिमुख्य क्यों** पढ़ा ? **अभ्यङ्काः गावः प्रत्यङ्काः**, **अभिनवः प्रतिनवः**। **अङ्का** या नवः गायका लक्षण है, **आभिमुख्य** नहीं समास न हो। **अव्यय अर्थ** प्रधानमें समास स्वीकार है। बहुव्रीहि अर्थमें समास कैसे ? बहुव्रीहिविषयमें भी अव्ययीभाव होता है, ऐसा ज्ञापनके लिए। तभी **द्विमुनित्रिमुतिव्याकरणं** बनेगा।

६६९। **अनुर्यत्=यं पदार्थं**=(समयाके योगमें **अभितः परितः** से द्वितीया) जो पदार्थ समया (समीप) को प्रकाशित करे, ऐसे लक्षणभूत अनुका समास हो, वह पूर्वपदार्थप्रधान मान्य। अव्ययं विभक्तिसे समास सिद्ध था, विकल्प के लिए सूत्र। यथा **अनुवनम् अशनिः**, वनके समीप तक वाण गया। **वनस्य समीपं** लौकिकं वाक्यं, **वन ङस् अनु** इति दशायां **अनुर्यत्समया समासादिः**। वनशब्दः वनसमीपे लक्षणिकः। वस्तुतः लक्षणभूत वनके समीपमें गया। पक्षे **वनमनु**। **समया क्यों** पढ़ा ? **वृक्षमनु** विद्यातते विद्युत्।

। ६७०। **यस्य लक्षणेन**। अनु आया। उसकी आवृत्ति। तृतीयामें बदल। एक लक्षणके साथ, दुसरा **यस्य चायामः** के बाद जिसका **आयाम** लम्बाई दैर्ध्य सदृशं दैर्ध्य विस्तार 'अनु' इस अव्ययसे प्रकाशित होता हो,

दैर्ध्यमनुना द्योत्यते तेन लक्षणभूतेनानुः समस्यते। अनुगङ्गं वाराणसी गङ्गाया अनु। गङ्गादैर्ध्यसदृशदैर्ध्योपलक्षितेत्यर्थः। (६७१) **तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च। २। १। १७॥** एतानि निपात्यन्ते। तिष्ठन्ति गावो यस्मिन्काले स तिष्ठद्गु, दोहनकालः। आयतीगवम्। इह शत्रादेशः पुंवद्भावविरहः समासान्तश्च निपात्यते। (खले यवम्) इत्यादि।

ऐसे लक्षण चिह्नभूत अनुका समास एकार्थ हो। वह अव्ययीभाव मान्य। **अनुगङ्गं** गंङ्गायाः अनु। गङ्गाजीके पुण्य विस्तारके समान वाराणसीका पुण्यविस्तार है। आयामो=विस्तार लक्षण, अनुसे प्रकाशित समासार्थ लक्ष्य है। **वाराणसी=वरंच तदनश्च वरानः** श्रेष्ठं पवित्रं गङ्गाजलम् (**अनः क्लीबं जले शोके मातृस्यन्दनयोः द्वयोः** इति **रुद्ररभसौ**) तस्य अदूरे समीपे भवा नगरी **वाराणसी। अदूरभवश्च अण्** आदिवृद्धिः। पूर्वपदात् णत्वं, **गङ्गा ङस् अनु** अलौकिकविग्रहे समासादिः। **गङ्गायाः** अनु वाक्य भी। वस्तु रहते ही लक्षण। यतः अनुसे द्योत्य नहीं, अतः कर्मप्रवचनीय नहीं। **यदि** प्रकाश्य होता द्वितीया होकर "**गङ्गामनु**" ऐसा विग्रह होता। गङ्गाके विस्तारके समान दैर्ध्य लक्षित अर्थ अनुसे प्रकाशित है।

। ६७१। **तिष्ठद्गु** इत्यादि गणपठित शब्दरूपका निपातन (सूत्रमें पढ़ें शब्दोंकी–कल्पना अनुमानसे सिद्ध हो, समासमान्य। तिष्ठन्ति गावः यस्मिन् ,काले, गायें रुकती है, वह दोहनकाल। उस समय शयन् उपवेशन नहीं, **तिष्ठत् जस् गोजस् इति अलौकिके, सूत्रेण समासादिः। तिष्ठद्गु**–दोहन कालः समासार्थ है। **आयत्यः गावः यस्मिन्काले**, आती है गायें जिस कालमें, **आयतीगव, सायंकाल** शाम को चरकर आती हैं। **आयती जस् गोजस् इति अलौकिक विग्रहे। तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च सूत्रेण समासे आदिः।** यहाँ निपातन तीन हैं, **प्रथमाके** समान विभक्तिमें शत्रादेश=शतृशानच् प्राप्त नहीं होते, उनका निपातनसे निश्चय। **पुंवद्भावका अभाव, जैसे तिष्ठन्तिमें** पुलिङ्ग, वैसे आयतीगवमें आयतीको पुलिङ्ग क्यों नहीं? **स्त्रियाः पुंवत्**का अभाव निपातनसे, समासान्त टच् आदि। तत्पुरुषसमासमें ही गो से टच् नियम है। अव्ययीभावमें गोशब्दका निपातनसे टच्। उसका फल अदन्त, तिष्ठद्गोशब्दको नपुंसक ह्रस्व। अव्ययात्सुपः लुक्। अन्यमें **अम्भाव। प्रभृति** शब्दसे **खलेयवं खलेबुसं**, खलिहानमें धान्य, सप्तमीका अलुक्, लूनयवं लूयमानं तं पश्य।

६७२। **पारे**=पार और **मध्यशब्द** षष्ठचन्तके साथ समस्त (एकार्थीभूत)

(६७२) **पारे मध्ये षष्ठया वा** ।२।१।१८।। पारमध्यशब्दौ षष्ठयन्तेन सह वा समस्येते। एदन्तत्वं चानयोर्निपात्यते। पक्षे षष्ठीतत्पुरुषः। पारेगङ्गादानय **गङ्गापारात्** मध्येगङ्गात् गङ्गामध्यात्। महाविभाषया वाक्यमपि। गङ्गायाः पारात्। गङ्गाया मध्यात्। (६७३) **सङ्ख्या वंश्येन। २। १। १९ ।।** वंशो द्विधा, विद्यया जन्मना च। तत्र भवो

होते है और **एदन्तत्वम्**=एकारान्त निपातनसे मान्य, दोनोंमें समास होनेपर यद्यपि विभाषा अधिकारसे पक्षपात सिद्ध था, वा, क्यों पढ़ा ? तब बोले— पक्षमें षष्ठीसमासको बाध लेता, उसे बाधनेके लिए पढ़ा। **गङ्गायाः पारात्, पारेगङ्गात्** आनय। गङ्गाजीके उस पारसे लाओ। **गङ्गा ङस् पार ङसि** इति विग्रहे **पारे मध्ये** सूत्रेंण समासे समासत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां सुपो धातु-प्रादिकयोः सुपः लुक्। पारका पूर्वप्रयोग। निपातनसे एत्व। **पारेगङ्गं,** नपुंसकह्रस्व पुनः पञ्चमी। नाव्ययीभावात्के निषेधसे न लुक्। **आत् पारे-गङ्गात् अपञ्चम्याः** पर्युदाससे अम् भी नहीं। इसी प्रकार **मध्येगङ्गात्।** पक्षमें षष्ठी तत्पुरुष **गङ्गामध्यात्**। यहाँ विभाषाका अधिकार होनेकी विशेषतासे वाक्यभी रहता है। प्रायः सभी समासमें विभाषाका आगमन। **गङ्गायाः पारात्** वाक्यभी। **यत्र उत्सर्गापवादौ महाविभाषया विकल्पितौ, तत्रापवादेन मुक्ते पुनः उत्सर्गो न प्रवर्तते इति ज्ञापनाय वा ग्रहणम्।** जिसका फल पूर्व कायस्यमें षष्ठी समास न होना। **दक्षस्यापत्यं दाक्षिः** में तस्याऽपत्यं का न लगना, किन्तु वाक्य ही रहता है।

। ६७५ । **संख्या–वंशः सन्तानः तत्र भवो वंश्यः। संततिर्गोत्रजनन** कुला-**न्यभिजनान्वयौ वंशो अन्वयावः संतानः इत्यमरः।** वंशमें दो भेद **विद्यावंशः** गुरुपरम्परा, **जन्मना**–पुत्रादि परम्परा। **यस्माद्–धर्मानाचिनोति स आचार्यः तस्मै न द्रुह्येत्कदाचन। स हि विद्यातस्तं जनयति तच्छ्रेष्ठं जन्मः। शरीरमेषां माता पितरौ जनयतः।** पढ़ाकर नया संस्कार ही नूतन जन्म है।

पिता शरीरका जन्म देता है। इति **आपस्तम्बे। तस्मिन्वंशे भवः वंश्यः।** दिगादिः यत्। **तद्वाचिना** विद्यावंशकुलमें पैदा हो, ऐसे अर्थवाची शब्दके साथ संख्याका समास–एकार्थ हो, अव्ययीभावमान्य। यथा **द्वौ** पाणिनि कात्यायनौ **मुनिवंश्यौ** (आचार्य विद्या परम्परामें प्रादुर्भूत) लौकिक विग्रहे (**मुनि** शब्द **विद्यावंशका** सूचकः) **द्वि औ मुनि औ** समासादिः। अव्यया त्सु-

वंश्यः । तद्वाचिना सह सङ्ख्या वा समस्यते । द्वौ मुनी वंश्यौ द्विमुनि । व्याकरणस्य त्रिमुनि । विद्यातद्वतामभेदविवक्षायां त्रिमुनि व्याकरणम् । एकविंशतिभारद्वाजम् । (६७४) **नदीभिश्च** । २ । १ । २० ॥ नदीभिः सह सङ्ख्या प्राग्वत् । 'समाहारे चायमिष्यते, (वा १२४६) । सप्त-

---

पोलुक् **द्विमुनि** । द्वौ च मुनी इस विग्रहमें विशेषणं विशेष्येण बहुलंसे कर्मधारयको बाँधकर अव्ययीभावः । व्याकरण विद्याके प्रशस्त जन्मदाता पाणिनि-कात्यायन दो मुनि हैं । **पतञ्जलि** भी । अतः **त्रिमुनि । त्रयोः मुनयः पाणिनि कात्यायनपतञ्जलयः** । त्रिजस् **मुनिजस्** इति अलौकिकविग्रहे सङ्ख्यया सह समासादिः । यदि ऐसा **त्रिमुनि व्याकरणं** में समानविभक्ति कैसे ? मुनि तीन हैं, व्याकरण एक है । तब बोले **विद्यातद्वतां**=ज्ञान और ज्ञानवान्में अभेदकी इच्छा होनेपर 'त्रिमुनि', मिलकर व्याकरण विद्याके प्रवर्तक । पूर्वपदार्थप्रधानसमासः । यदि अन्यपदार्थप्रधान होगा, तब त्रयो मुनयो वंश्याः यस्य बहुव्रीहिसमासे । इसको बहुव्रीहि न मानकर अव्ययीभाव माना जाय इसलिए कि सभी विभक्तियोंमें रूपभेद है समानता नहीं, बहुव्रीहिभावमें अव्ययीभाव होता है । उसमें प्रमाण **अभिमुखग्रहणसे** दिया जा चुका है । जन्मना वंशका उदाहरण—**एकविंशतिर्भद्वाजम्** । एकश्चासौ विंशतिः, कर्मधारयको बाधकर (इक्कीस) संख्याप्रधाने अर्थे अव्ययीभावः (लिङ्गसंख्यारहित फलवाला) समासार्थः । विदादि अञ्, तस्य लुक् । समास होनेपर उपकादिभ्यः से, लुक्का अभावः । उपकादिगणमें भारद्वाजका पाठ अनुमेय है ।

। ६७४ । **नदीवाचक** शब्दके साथ संख्याका समास एकार्थ होना अव्ययीभाव, जिसमें नपुंसकलिंग, अव्ययसे सुप् लुक् स्वीकार । **नदीका** स्वरूप या नदीसंज्ञा इष्ट नहीं, बहुवचन पढ़नेसे । किन्तु नदीका अर्थ इष्ट, शब्दके साथ समास इष्ट नहीं, चकार पढनेसे । संख्या खींचकर आई । **पुरस्तादपवादन्यायसे** यह सूत्र **'पूर्वकालैकसर्वजरत्'** शब्दका बाधक हो तब नदीके साथ अव्ययीभाव होनेपर 'नदीपौर्णमास्य'से **टच्** होगा । और समाहार समास होनेपर परत्वात् 'द्विगु' ही हो । अतः बोले **समाहारे अयं समासः**–समाहार समाससे सति एव इष्टः । जहाँ समाहार नदियोंका सम्मेलन हो वहीं सूत्र लगे, अन्यत्र न लगे । एवं च का अर्थः=**यथा सप्तानां समाहारः** सातगङ्गाका संगम समुदायका अर्थ । **सप्तन् आम् गङ्गा आम् । नदीभिश्च सूत्रेण समासे तद्धिता** र्थोत्तरपदसमाहारे च से द्विगुको बाँधकर अव्ययीभाव समासे । इस एकार्थमें

गङ्गं, द्वियमुनम्। (६७५) **अन्यपदार्थे च संज्ञायाम्। २। १। २१॥** अन्यपदार्थे विद्यमानं सुबन्तं नदीभिः सह नित्यं समस्यते संज्ञायाम्। विभाषाधिकारेऽपि **वाक्येन** संज्ञानवगमादिह नित्यसमासः उन्मत्तगङ्गं नाम देशः। लोहितगङ्गम्। (६७६) **समासान्ताः ।५।४।६८॥** इत्य-

---

लिङ्गसङ्ख्या वचनमें समान समासादिः। **सप्तगङ्गम्**, सभी विभक्तियोंमें समानरूप नपुंसक। **द्वयोर्यमुनयोः समाहारः** सङ्गम दो यमुनाका मिलन। नदी वाचक **द्विओस् यमुनाओस्** अलौकिक विग्रहे समासादिः। नदीविशेष अर्थमें है। सामान्य नदीके साथ समास होता है। अतः पंचानां **नदीनां** समाहारः **पञ्चनदं, सप्तगोदावरम्।**

। ६७५। **अन्यपदार्थे**=प्रयोगमें उच्चरित शब्द किसी अन्य अर्थको कहैं, उस अर्थमें वर्तमान सुबन्तका नदीवाचकशब्दोंके **साथ** नित्य समास हो, संज्ञाअर्थमें। सङ्खयानिर्गतः, नदीभिः आगतः। उस एक अर्थको अव्ययीभाव मान्य। अन्यपदार्थ न कहें तब **कृष्णवीणी**मे नित्य समास कैसे? क्योंकि विभाषाधिकारे—विकल्पसमासका अधिकार है। तब बोले— विकल्पका अधिकार भले ही हो, किन्तु वाक्यसे संज्ञाका अनवगम=ज्ञान न रहनेसे यहाँ नित्य समास हुआ। क्योंकि **सम्यग्ज्ञायते इति संज्ञा**, जिसको पूर्णतासे जाना जाय। सम्पूर्वक ज्ञासे कर्ममें अङ्। **उन्मत्ता गङ्गा यस्मिन्** इस वाक्यमें किसी देशका ज्ञान नहीं। अतः **अलौकिकौ अस्वपदविग्रहौ फलतः**। वस्तुतः विभाषाऽधिकारसे यह समास विकल्प ही है। **उन्मत्ता सु गङ्गासु, अन्यपदार्थे समासादिः**। उमड़ी हुई बाढ़ पूर्ण गङ्गाका देश। **लोहिता गङ्गा यस्मिन्देशे** लाल गङ्गका देश, उसका नाम **लोहितगङ्गम्**, लोहिता सु अन्यपदार्थे अव्ययीभाव समासादिः।

। ६६७। **समासान्ताः**। अन्ते भवाः अन्ताः समासस्यान्ताः। अव्ययीभाव समास होनेपर अकारान्त बनानेके लिए टच् जिसका प्रयोजन नपुंसक तथा विभक्तियोंका अम् होना। अव्ययसे सुपका लुक् है। असाधारण टच् आदि अधिकृत्य=पाँचवे अध्यायके चौथेपादकी समाप्ति तक अधिकार करके समासपद, अलौकिक विग्रहवाक्यमें ही। अतः **बहुकुमारीकः**में ह्रस्व नहीं। अलौकिक दशामें समाससंज्ञाके तत्काल ही समासान्त टच् आदि हों, सिद्धान्त है। अन्तशब्दका अन्तिम अवयव अर्थ है। अतः **उपशरदम्**में पञ्चमीको विकल्पसे अम् हुआ। टच् अन्तिम अवयव न होता, सब अदन्त न होनेसे अम्

धिकृत्य। (६७७) **अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः ।५।४।१०७ ॥** शरदादिभ्यष्टच्स्यात्समासान्तोऽव्ययीभावे। शरदः समीपमुपशरदं प्रतिविपाशम्। शरद्। विपाश्। अनस्। मनस्। उपानह। दिव्। हिम, वत्। अनडुह। दिश्। दृश्। विश्। चेतस्। त्यद्। तद्। यद्। कियत्। जराया जरस् च, (ग१४७)। उपजरसम्। 'प्रतिपरसमनुभ्यो

भी न होता, **अव्ययानां भमात्रे**से टिलोप होता।

। ६७७। **अव्ययीभावे**=अव्यय अर्थ प्रधानसमासार्थ होनेपर **शरदादिभ्यः**=शरद्, विपाश, अनस् आदि गणपठित शब्दोंसे टच् (अ) हो, वह **समासान्त**=समासका अन्तिम अवयव मान्य। अलौकिक विग्रहवाक्यमें ही शरद् आदिके सुबन्त होनेपर। **राजाहः** सूत्रसे टच् आया। यथा—**शरदः समीपं**, समीप अर्थमें उप इस अव्ययका सुबन्त षष्ठयन्तशरदःके साथ अव्ययीभावसमासमें इस एकार्थीभावसे समीप अर्थकी प्रधानता है। अतः **शरत्प्रभृतिभ्यः शब्देभ्यः टच्**, समासका अन्त अवयव अ हो। **अव्ययंविभक्तिसमीप**-सूत्रसे समास। प्रातिपदिकसंज्ञा सु। **नाव्ययीभावात्**सूत्रसे **अम्**। **प्रायः** सभी विभक्तियोंके स्थानमें अम् होगा। अव्ययनां भसंज्ञामात्रे टिलोपः नहीं लगेगा, टच् अन्तमें होनेसे। विपाशशब्द नदीविशेष अर्थमें है। (**विपाशा तु विपाट् स्त्रियाम्**) **विपाशां**, **प्रतिविपाशं** लक्षणेनाभिप्रतीसे अव्ययीभावसमासादिः विपाशानदीके सामने सेना है। **एवं** अनः शकटं गाड़ी तं प्रति प्रत्यनसं करः प्रत्येक गाड़ी पर टैक्स। मनसः समीपम् **उपमनसं** ध्यानं, प्रत्युपानहं, प्रतिदिनं वर्षणम्। हिमवतः समीपं, **उपहिमवदं**, **प्रत्यनडुहं** भोजनं, **प्रतिदिशं**, **उपदिशम्** **उपविशमित्यादि**। ये गणपाठ हैं। झयन्त **झभघढधखफछठथचटतकप**, ये अक्षर जिनके अन्तमें हो उनसे (झयःसे) टच् प्राप्त था, नित्य टच्के लिए गणमें पढ़े गये। **उसके स्थानमें जरस् आदेश हो**। शरदादि गणमें पढ़ जानेपर गणसूत्र। जरायाः समीपं **उपजरसं**, समीप अर्थमें उप इस अव्ययका षष्ठयन्त **जरायाः**के साथ समास अव्ययीभाव पूर्वपदार्थप्रधान एकार्थीभाव होनेपर शरदादिभ्यः टच्। समासका अवयव विभक्तिका लुक्। उपका पूर्व निपात टच्। विभक्ति नहीं है। आदिः। (ग०) **प्रति परि सम्** अनु इनसे परे **अक्षिन्** शब्दसे टच् हो। शरदगण मान्य, यस्येतिसे इलोप, टच्से तद्धितान्त परे मिलने पर। यथा **प्रत्यक्षम्** अक्षिणी प्रति, टच् दोनों आँखके सामने

ऽक्षणः' (ग१४८) 'यस्येति च, (सू६११) प्रत्यक्षम्। अक्ष्णः परमिति विग्रहे समासान्तविधानसामर्थ्यादव्ययीभावः। 'परोक्षे लिट्, (सू २१७१) इति निपातनात्परस्यौकारादेशः। परोक्षम्। 'परोक्षा क्रिया, इत्यादि तु अर्शआद्यचि। समक्षम्, अन्वक्षम्। (३७८) **अनश्च**।५।४ १०८॥ अन्नन्तादव्ययीभावाट्टच्स्यात्। (३७९) **नस्तद्धिते**।६।४।

अक्ष्णोः अभिमुखं लक्षणेत्थंभूतसे कर्मप्रवचनीयसंज्ञा द्वितीया। **अक्षिन् औ प्रति। अलौकिकदशायां लक्षणेनाभिप्रती** सूत्रसे अव्ययअर्थ प्रधानसमास एकार्थी भाव हुआ। जिसके कारण शरदादिगणपठित**प्रत्यक्षिन्**से टच् अ। समासत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां सुपोलुक्। टच् अव्यससंज्ञा, नपुंसक, टिलोप्। **प्रत्यक्ष** (इन्द्रियोंके समक्ष) **शब्दात् यथायोग्यं सुप्**, तस्य अम्भावः। वृत्तिके विषयमें अक्षिशब्द पाँच ज्ञानेन्द्रियोंका सूचक है। **परीक्षं**=क्रिया देखी गयी न हो अक्षणः परं आँखसे परे व्यवधानमें क्रियादर्शनका अविषय। **अक्षिन् ङस् पर इति** विग्रहे अव्ययीभाव समासादिः **परोक्षम्**। अत्र शङ्का–**परशब्दः नहि अव्ययं कथं समासः**, तदा **मूले कथितं समासान्तविधान**=अव्ययीभाव समास होने पर टच् विधान करनेकी **प्रबलतासे**, परका भी समासमान्य। ननु समासे कृते परक्षं भवतु ओकारः **कथं** ? तदा निगदितं **'परोक्षे लिट्'** (सूत्रमें ओकार पढ़नेकी प्रबलता निपातन सूत्रमें ओकार उच्चारण सामर्थ्यसे परके आगे) ओ आदेशः। **परोक्षम्। परोक्षा** क्रिया कैसे बनेगा–तब बोले **अर्शाद्यच्** अर्शादिगणमें पढ़ा है। **परोक्षमस्यास्तीति** छिपा हो, दिखाई न दे, मत्वर्थीय अच् भसंज्ञा, यस्येति अकारलोपे, टाप् **परोक्षा** क्रिया अप्रत्यक्षा। **समक्षं अक्ष्णोः योग्यं** आँखोंसे दर्शननीय है। यथा (योग्य) अर्थमें अव्ययीभाव-समास। ततः टच् इ–लोप आदिः **अन्वक्षं अक्ष्णोः पश्चात्**। अर्थमें वर्तमान अनु का अक्षिके साथ समास आदिः।

। ६७८। **अन्नन्तात्**=अन् अन्तमें हो, ऐसे अव्ययीभाव समाससे टच् हो। अव्ययीभावे आया। **पञ्चमीमें** बदला। उसमें अन् विशेषण, तदन्तविधिः।

। ६७९। **नस्तद्धिते** नः में षष्ठी है। भसंज्ञाके अधिकारमें विशेषण, तदन्त। **टेः** अल्लोपोऽनः से लोप आया। तब अर्थ हुआ कि **नान्तस्य**=भसंज्ञक टि (अन) का लोप हो तद्धति परे रहते। **उपराजं** राज्ञः समीपं, **राजन् ङस् उप्** इतिदशायां समीस अर्थमें उप इस अव्ययंका **अव्ययं**विभक्ति–सूत्रसे अव्यय-

१४४ ॥ नान्तस्य भस्य टेर्लोपः स्यात्तद्धिते । उपराजम् । अध्यात्मम्। (३८०) **नपुंसकादन्यतरस्याम्** । ५ । ४ । १०९ ॥ अन्नन्तं यत्क्लीबं तदन्तादव्ययीभावाट्ज्वा स्यात् । उपचर्मम् –उपचर्म । ६८१ **नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः** । ५ । ४ । ११० ॥ वा टच्स्यात् । उपनदम् उपनदि । उपपौर्णमासम्—उपपौर्णमासि । उपाग्रहायणम्—उपाग्रहायणि । ६८२ **झयः** । ५ । ४ । १११ ॥ झयन्तादव्ययीभावाट्टज्वा

अर्थप्रधान एकार्थीभाव समास अनश्च टच् अ । सुपो लुक् नस्तद्धिते टि (अन्) लोपे । उपराज सु अम् । अदन्त अव्ययीभाव होनेसे टच् होनेपर उपराजन् अ, इतने तक अव्ययीभाव मान्य । उसकी भसंज्ञा न होनेसे अव्ययानां भमात्रे टिलोप नहीं होगा । अतः सूत्र नस्तद्धिते । **उपराजं** गच्छामि आत्मनि अधि **अध्यात्मं** विभक्तिके अर्थमें अधि अव्ययका आत्मन्ङिके साथ समास । उसका अव्यय टच् अन्नन्त अव्ययीभाव मानकर नान्त टि (अन्) का लोप अध्यात्म सु अम् आदिः । **उपदण्डं** दण्डिनः समीपम् ।

। ६८० । **नपुंसकात्** । अन् आया । नपुंसकका विशेषण । अन् अन्तमें हो, ऐसा क्लीब=नपुंसक तदन्तात्–वहभी अन्तमें हो ऐसे अव्ययीभावसे टच् विकल्प हो । यथा **चर्मणः समीपं उपचर्म** समीपार्थक उप्का सुबन्त चर्मन् ङस्के साथ टच्, क्योंकि अन्नन्तक्लीब चर्मन् तदन्त अव्ययीभाव **उपचर्मन् अ** । चमड़ेके पाससे । यदा न टच् तदा सुलोपनलोपौ उपचर्म ।

। ६८१ । **नदीपौर्णमासी** आग्रहयणी अन्तमें हो ऐसे अव्ययीभावसे टच् विकल्प हो । नदीसंज्ञा न लें, सहचारके प्रभावसे । अन्यतरस्यां और टच् आये । **नद्याः समीपं उपनदं** नदीके लगभग । समीपे अर्थे उप अस्य अव्ययीभाव समासे नदीपौर्णमासी–टच् । भसंज्ञा यस्येति च इ–लोप उपनद शव्दात्सुप् अकारान्त होनेसे अम् । यदा न टच् तदा नपुंसकह्रस्वे अव्ययात्सुपो लुक् । **पौर्णमास्याः समीपं उपपौर्णमासम्** । पौर्णमासी ङस् का समीपार्थक उपके साथ अव्यय अर्थप्रधान एकार्थीभावसमासः, सूत्रेण टच्, यस्येति इलोपे । अदन्त अव्ययीभावसे सुप्को अम् । यदा न टच् तदा नपुंसकह्रस्वे सुलोपे उपपौर्णमासि एवं **अग्रेहायनं** वर्षः मासो वा अस्याः **आग्रहायणी** अगहनमासकी पूर्णमासी । उसके वाद पूसमहीना या वर्ष है । जैसे मकरसक्रांतिसे उत्तरायण वर्षका आदि हैं । **उदगयनादिरेव हि वत्सरस्यादिः** । अयने द्वे गति उदग्दक्षिणार्कस्य **वत्सरः** ।

स्यात् । उपसमिधम्—उपसमित् । ६८३ **गिरेश्च सेनकस्य । ५ । ४ । ११२ ॥** गिर्यन्तादव्ययीभावाट्टज्वा स्यात् । सेनकग्रहणं पूजार्थम् । उपगिरम्...उपगिरि ॥

इत्यव्ययीभावसमासप्रकरणम् ॥

। ६८२ । **झयः**=से कपय् तकके अक्षर अन्तमें हों ऐसे अव्ययीभावसे टच् विकल्पसे हो । यथा समिधः समीपं **उपसमिधं** (लकड़ीके लगभग आस पास) वर्तते । **समिध ङस् उप समासादिः** । झयः सूत्रेण टच् अ । अदन्त अव्ययीभावसे अम्भावः । यदा न टच् तदा **वाऽवसाने चर्त्वं, उपसमित् ।**

। ६८३ । **गिरेश्च** । सेनक आचार्यके मतमें गिरिशब्द अन्तमें हों, ऐसे अव्ययीभावसे विकल्प टच् हो । यद्यपि अन्तरस्यांकें आनेसे विकल्प होता ही । **अतः** बोले पूजार्थम्–आचार्यका नाम प्रसिद्धिके लिए । गिरेः समीपम् उपगिरं **मम** ग्रामः । गिरि ङस् उप समासादिः । **गिरेश्च** टच् । भसंज्ञा इकारलोपे । अदन्तात् अव्ययीभावात्सु अम् । यदा न टच् तदा उपगिरि । जो पूर्वपदार्थ प्रधान नहीं हैं उनको अव्ययसंज्ञाका प्रयोजन नपुंसक, अम्भाव अव्ययादाप्सुपरे लुक् है ।

* इति **प्राभाकरीटीकायां अव्ययप्रकरणं परिपूर्णम् ।** *

अथतत्पुरुषसमासः:–

प्रायः पूर्वपदार्थप्रधान अव्ययसंज्ञक समास (एकार्थीभाव) समाप्तिके पश्चात्, प्रायः **उत्तरपदार्थप्रधान तत्पुरुषसमास एकार्थीभावप्रकरणका** आरम्भ । **तत्पुरुषशब्द** का अर्थ—**स चासौ पुरुषः**, तत्पुरुषः, उत्तरपद पुरुष है उसीको प्रधानमानकर लोक व्यवहार होगा **तं पुरुषः**, तेन पुरुषः तस्मै पुरुषः तस्मात्तस्य तस्मिन्पुरुषः **तत्पुरुष** । सभी विभक्तियों उनके अर्थोके साथ समास । अनेक पदोंका मिलकर एकपद एकअर्थ एकशक्ति । पुरुषशब्द सभी उत्तरपदवालोंका बोधक है । कहीं उत्तरपदका अर्थप्रधान है । तथापि संज्ञाका प्रयीजन टच् अच् आदि समासान्त होना भी है ।

। ६८४ । **तत्पुरुषसंज्ञा** सूत्रका अधिकार चलेगा, स्वरित बलसे । कहाँ तक ? **शेषो बहुव्रीहिः** सूत्रके प्राक्–पहले तक । इस समासमें विभक्तियोंके अर्थसे सम्बन्ध जुड़कर परस्पर सामर्थ्य रहनेपर ही समास होगा । इस संज्ञाका दो प्रयोजन, **उत्तरपदअर्थप्रधान** होना, अन्य प्रयोजन–**समासान्ततकार्य** आदि ।

[६८४] **तत्पुरुषः २।१।२२॥** अधिकारोऽयम् । प्राग्बहुव्रीहेः [६८५] **द्विगुश्च २ । १ । २३ ॥** द्विगुरपि तत्पुरुषसंज्ञः स्यात् । इदं सूत्रं त्यक्तुं शक्यम् । 'सङ्ख्यापूर्वो द्विगुश्च' इति पठित्वा चकारबलेन संज्ञाद्वय-समावेशस्य सुवचत्वात् । समासान्तः प्रयोजनम् । पञ्चराजम् । [६८६]

। ६८५ । **द्विगुश्च—द्वौ गावौ अवयवौ यस्य सः,** एक **सङ्ख्या** दूसरा **संख्येय** (गणनाकी वस्तु) ये दोनों अंश जिसमें हों, वह द्विगुसमासभी **तत्पुरुषमान्य।** यथा **पञ्चानां राज्ञां समाहारः** पाँच राजाओंका समुदाय **पञ्चराजं,** समुदाय, समाहार अर्थ अन्यपदार्थ हुआ । **पञ्चन् आम् राजन् आम् इति विग्रहे तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** सूत्रेण **समाहारे** (दोनों पदके समुदाय अर्थमें) **समासे द्विगुश्च सूत्रेण तत्पुरुषसंज्ञा,** जिसका फल **राजाहः सखिभ्यः टच्,** समासका अन्तिम अवयव अ । **समासत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञा सुपोधातुप्रातिपदिकयोः** (से) सुपोलुक् । **स नपुंसकं**=नपुंसकसंज्ञा **स्वादिकार्यं । अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः ।** द्विगुसमास अकारान्त हो तो स्त्रीलिङ्ग स्वीकृत । परन्तु यहाँ यह नियम नहीं लगेगा । टच् समुदायका अवयव है, उत्तरपदका नहीं । **पञ्चराजम् ।** अत्रशङ्का द्विगुश्च-सूत्रं त्यक्तुं शक्यं, छोड़ देना चाहिए क्योंकि **तद्धितार्थोत्तर-सूत्रे** समासविधान पर **सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः** पढ़ा है । **तेन द्विगुसंज्ञा भविष्यति एव ।** अर्थ होगा कि द्विगुसमास भी तत्पुरुषसंज्ञक हो । यह सूत्र क्यों पढ़ा ? यदि द्विगुश्च नहीं रहेगा, तब एकसंज्ञाके अधिकारसे द्विगुसंज्ञा द्वारा तत्पुरुषसंज्ञा बाधी जायगी । अतः द्विगुश्च सूत्र पढ़ा, यदि ऐसा तब **संङ्ख्यापूर्वो द्विगुः,** सूत्रमें च पढ़ेगें **द्विगुश्च** । यदि सङ्ख्या पूर्वमें हो तब समास होनेपर द्विगुसंज्ञा हो । अतः द्विगुश्चमें चकार पढ़नेसे दोनों संज्ञायें सुलभ होंगी तब द्विगुश्च गुरुभूतसूत्र न करें । अतः मूलमें बोले **चकारबलेन**=दोनों संज्ञाओंका एकसाथ होना **सुवच**=सुस्पष्ट है । यदि **द्विगुसमावेशात् तत्पुरुषसंज्ञा न स्यात्तर्हि को दोषः ? तदा कथितं समासान्तः प्रयजोनं,** समासका अन्त अवयय टच् अच् आदिका होना तत्पुरुषसंत्राका फल है । जैसे राजाहः सखिभ्यः टच् वास्ते तत्पुरुषसंज्ञा फल है । **अतः पञ्चराजम् ।** अच्का उदाहरण **द्वयङ्गुलं, द्वयोः अङ्गुलयोः समाहारः तत्पुरुषस्याङ्गुलेः से अच् ।** पुनः **शङ्का—यदि** सङ्ख्यापूर्वो द्विगुश्च पढ़ेगे, तब दोनों संज्ञाये पर्यायक्रमसे होंगीं तन्न, चकार दोनोंका सङ्ग्राहक है ।

द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः २।१।२४॥ द्वितीयान्तं श्रितादिप्रकृतिकैः सुबन्तैः सह वा समस्यते स तत्पुरुषः। कृष्णं श्रितः कृष्णश्रितः। दुःखमतीतो दुःखातीतः इत्यादि। 'गम्यादीनामुप-

---

।६८। **द्वितीया**–(प्रथमान्तं) प्रत्ययहोनेसे तदन्तविधि। **प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणं,** द्वितीयान्तका **श्रित** (शरण) **अतीत** (बीता हुआ, समाप्त) **पतित**=चरित्रभ्रष्टं, गिरा हुआ, **गतः**=गया हुआ **अत्यस्त**=अस्तव्यस्त,। अति-क्रान्त उलंघन, **प्राप्त**–पहुंचा **आपन्न**-युक्त मग्न, ये श्रितादि है। इनकी प्रकृतिमें लाक्षणा है, ऐसे प्रकृतिक समर्थसुबन्तके साथ विकल्पसे समस्यते एकार्थी-भाव हो, वह तत्पुरुष मान्य। **श्रितादिः प्रकृतिर्येषां तैः प्रकृतिकैः सुबन्तैः।** यद्यपि श्रित अतीत आदिका समर्थमें विशेषण मानकर तदन्तविधि नहीं होगी, **समासप्रत्ययविधौ तदन्तविधेः निषेधात्** यथा कृष्णंश्रितः कृष्णकर्मकश्रयणकर्ता अर्थः गति–प्राप्ति अर्थमें श्रिधातुसे गत्यार्थाकर्मक सूत्रसे कर्ताअर्थमें क्त श्रितः उसके योगमें कृष्णको कर्मणि षष्ठी प्राप्तिका निषेध, न लोकाव्यनिष्ठासे निषेधका निषेध, किन्तु द्वितीया **कृष्णंश्रितः** कृष्णस्य शरणं प्राप्तः। आश्रय-सम्बन्ध–सामर्थ्य। **कृष्ण अम् श्रितस् इति अलौकिकविग्रहे द्वितीयाश्रितातीत=सूत्रेण कृष्णस्य शरणं प्राप्तः इत्यर्थसामर्थ्य–सत्वे एकार्थीभावसमासे, तत्पुरुष-संज्ञा च** समासत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां सुपो धातुप्रातिपदिकयोः सुपोलुक एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकसंज्ञा स्वादिकार्यं। **कृष्णश्रितः** कृष्णके पास पहुंचा हुआ पुरुष अर्थप्रधान। एवं **दुःखमतीतो** दुखातीतः, कष्ट को पूरा किया है, **या** कष्ट का दिनवीत गया। दुःखका अतीतके साथ समाप्य समापक साम-र्थ्य अतिपूर्वक इण्से कर्तामें क्त, दुःखका अतिक्रमण कर गया। **दुःख अम् अतीत सु**। एवं **गर्तपतितः** [गढ्ढे में गिर गया) पत गतौ कर्ता में क्त **तन्निपति दरिद्रातिभ्यः** विकलपसे इट् होनेका निषेध 'यस्य विभाष।' करेगा। अतः मिपा-तन से इट्। वस्तुतः पत् गतौ वा से पतितः की सिद्धि सर्वसम्मत। ग्रामं गतो **ग्रामगतः** गाँव पहुंचा। धर्ममत्यस्तः धर्मका उल्लङ्घन कर गया। **धर्मात्यस्तः** धर्मसे खिसक गया। **अत्यासो व्यतिक्रमः**। सुखं प्राप्तः **सुखप्राप्तः**। संशयमापन्नः **संशयापन्नः**। सन्देह में पड़ गया, **दुःखापन्नः** आश्रयसम्बन्ध। **गम्यादीनां**=गमी इत्यादिशब्द प्रकृति (धातु या प्रातिपदिक) हो ऐसे सुबन्तसे भी द्वितीया अन्तपदका समास, एक अर्थ हो, वह तत्पुरुष मान्य। यथा ग्रामं गमी गाँव जाने वाला '**भविष्यति गम्यादयः** भविष्य काले अर्थं गम धातोः औणादिक इति

ङ्क्चानम्, [वा] ग्रामं गमी ग्रामगमी, अन्नं बुभुक्षुः अन्नबुभुक्षुः। (६८७) **स्वयं क्तेन २।१।२४।।** द्वितीया=(सू६८६) इति न सम्बध्यते, अयोग्यत्वात्। स्वयङ्कृतस्यापत्यं स्वायङ्कृतिः। (६८८) **खट्वा क्षेपे २। १। २६।।** खट्वाप्रकृतिकं द्वितीयान्तं क्तान्तप्रकृतिकेन सुब-

---

गमी। अकेनोः भविष्यसे कृतके योगमें षष्ठीनिषेध से द्वितीया, **ग्रामं गमिष्यन्।** ग्राम अम् गमी सु, **गम्यादीनामेव वार्तिकेन एकार्थीभावे समासे आदिः।** भोक्तु मिच्छति **बुभुक्षति** इति **बुभुक्षुः** सन्आशंसभिक्ष से उ प्रत्यय। न लोकाव्यय के निषेधसे कर्मणि द्वितीया, न षष्ठी। अन्नं बुभुक्षुः शब्द गम्यादिगणमें पढ़ा है। **अन्न अम् बुभुक्षु सु** समासादिः। प्रयोग के अनुकूल गण का ज्ञान करें

। ६८७। **स्वयं**=इस अव्ययका क्तप्रत्यय अन्तमें ही हो ऐसे सुबन्तके साथ तत्पुरुष समास मान्य। इस सूत्र में द्वितीयाका सम्बन्ध नहीं **अयोग्यत्वात्**= द्वितीया के योग्य नहीं है। क्योंकि आत्मना अर्थमें **स्वयं** शब्द कर्ता की शक्ति रखता है। कर्तरि तृतीया ही उचित। स्वयंके साथ समास हो या न हो क्या भेद है। समास नहीं होगा, तब अव्ययसे सुप् का लुक् होगा। अतः बोले **स्वयंकृतस्यापत्यं** सब कार्य अपनेही करने वालेकी सन्तान अर्थमें **स्वयंकृतशब्दात्** अत इञ् **स्वयंकृत** ङस् **इ** आदिवृद्धौ प्रातिपदिक का अवयव सुप् का लुक्। यस्येति च अकारलोपे **स्वायंकृतिः**। यदि समास न होता कृत के षष्ठयन्त होने से ऋ को आदिवृद्धि **स्वयंकार्तिः** बनता। वस्तुतः सामर्थ्य नहीं किन्तु समास स्वर प्रयोजन, **एकस्वरमपि समासफलम्**

। ६८८। **खट्वा**। क्तेन आया। तदन्तविधि, क्षेपका निन्दा अर्थ। द्वितीया, सुपा, भी आये। दोनोंमें तदन्तविधिः। दोनों सुबन्तकी प्रकृतिमें लाक्षणिक। खट्वा हो प्रकृति=प्रातिपदिक ऐसे द्वितीयान्तका **क्तान्तप्रकृतिकेन**=क्तप्रत्यय अन्तमें हो ऐसे प्रातिपदिकनिमित्तकसुबन्तके साथ समास हो, समुदायार्थ **खट्वा-रुढ़ः**=खटिया पर चढ़ बैठे **जाल्मः=असमीक्ष्यकारी** सदाचारहीन विना समझे करनेवाला मूढ़, निन्दा अर्थ हुआ। **वेदं व्रतानि च समाप्य समावृत्तेन हि खट्वामारोढव्याः। ब्रह्मचर्य एव भूमिशयनार्होऽपि यः खट्वां आरोहति स जाल्मः रुढः।** वेदाध्ययन ब्रह्मचर्य व्रतको समाप्तकर लौटे, तब चारपाई पर चढ़े। पहले भूमि शयनके योग्य ब्रह्मचारी चारपाई पर चढ़ता है वही जाल्म अथवा सभी निषिद्ध आचरण करने वाला। लौकिक विग्रह होनेसे नित्य समास ऐसा क्यों? तब बोले **नहि वाक्येन-खट्वामारुढ़ः** इति वाक्यम् **गृहस्था-**

क्तेन समस्यते निन्दायाम् । खट्वारूढो जाल्मः । नित्यसमासोऽयम् नहि वाक्येन निन्दाऽवगम्यते । (६८६) सामि २।१।२७॥ सामिकृतम् । (६९०) कालाः २।१।२८॥ 'क्तेन' इत्येव । अनत्यन्तसंयोगार्थं वचनम् । मासप्रमितः प्रतिपच्चन्द्रः । मासं परिच्छेत्तुमारब्धवानित्यर्थः । (६९१) अत्यन्तसंयोगे च २।१।२९॥ 'काला' इत्येव । अक्तान्तार्थं वचनम् । मुहूर्तं सुखं मुहूर्तसुखम् । (६९२) तृतीया तत्कृता

श्रमे निन्दां न बोधयति खट्वामारुढ़ इति रुढ़िशक्त्या निन्दां गमयति । भाष्ये— अधीत्य स्नात्वा गुर्वनुज्ञातेन खट्वा आरोढ़व्या । यस्तावदन्याथा करोति स, खट्वारूढ़ोऽयं जाल्म उच्यते । रूढ़शब्द अवयवार्थका अभाव सूचक खट्वा अम् आरुढ़सु । खट्वाक्षेपे सूत्रेण समासादिः ।

। ६८९ । सामि अव्यय हैं । अर्ध-अर्थमें उसका क्तान्तप्रातिपदिकहेतुक सुबन्तके साथ समास हो । सामिकृतम् (आधा कार्य किया) समासादिः । समास न होता, तद्धितवृत्तिमें 'अत इञ् परे आदिवृद्धि कार्तिः बनता ।

। ६९० । कालाः । क्तेन आया, कालवाची प्रातिपदिकसे सुबन्त बना शब्द का क्तप्रत्ययान्तप्रकृतिक सुबन्तके साथ एकार्थीभाव हो । यद्यपि यह समास अत्यन्त संयोगे च सूत्रसे सिद्ध था, सूत्र क्यों ? अतः बोले अत्यन्तसंयोग= जहां पूर्णव्यापकता न हो, वहां समासके लिए यह सूत्र । यथा मासं प्रमितः मासप्रमितः प्रतिपदाका चन्द्रमा प्रमिमीयते–प्रपूर्वक माधातुसे आदिकर्मणि क्त, कर्तरि च कर्तामें क्त । महीनेकी गणना करनेवाला, पूरे महीने भर एक साथ न होनेसे अत्यन्तसंयोग नहीं । प्रतिदिन कलाका भेद है । मास अम् प्रमितसु । कालाः० इत्यनेन समासादिः । प्रतिपद चन्द्रमाको महीने भर अत्यन्तसंयोग नहीं । मासंपरिच्छेत्तुं महीनेके प्रतिदिनकी गणनाका आरम्भ किया ।

। ६९१ । अत्यन्तसंयोग पूर्णव्यापक काल—समयवाची शब्दका सुबन्तके साथ उत्तरपदार्थप्रधान एकार्थीभाव हो । यह अर्थ कालाः सूत्रसे सम्भव था यह सूत्र क्यों ? अतः बोले अक्तान्तार्थ–क्तेनकी निवृत्तिवास्ते । जहां क्तप्रत्यय न हो वहाँके लिए सूत्र । यथा मुहूर्तं सुखम् क्षणिक आनन्द, क्षणमात्रमें पूर्णव्याप्त सुखका अत्यन्तसंयोग होनेसे द्वितीया । मुहूर्त अम् सुख सु । समासादिः मुहूर्तसुखम् ।

। ६९२ । तृतीया । तत्कृता तृतीयान्त है भिन्नपद, तत् शब्द तृतीयाका अर्थ देगा, गुण द्वारा गुणवचनसे सम्बन्ध, अतः लुप्त तृतीया कहा । तृतीयान्त-

थँन गुणवचनेन २ । १ । ३० ॥ 'तत्कृत' इति लुप्ततृतीयाकं, तृतीयान्तं तृतीयान्तार्थकृतगुणवचनेनार्थशब्देन च सह प्राग्वत् । शङ्कुलया खण्डः

पदका उसी तृतीयान्तपदके द्वारा किया हुआ जो गुण क्रिया टुकड़ा वाचक-शब्दके साथ समास हो और अर्थशब्दके साथ तृतीयान्तका परस्पर सामर्थ्य रहते समस्यते=एकार्थ तत्पुरुष हो । यद्यपि गुण तत्कृतसे सम्बन्धित है, वचनसे नहीं, तथापि सूत्रमें उच्चारण प्रमाणसे यह सूत्र परम्परया सामर्थ्य मानता है, साक्षात्सम्बन्ध नहीं । तथा अर्थके साथ समास असम्भव, अतः अर्थवाचक शब्द लिया । वचन क्यों पढ़ा ? इसलिऐकि **गुणमुक्तवान् गुणवचनः** गुण कहकर जो द्रव्य कहता हो, ऐसा गुणवचन भी मान्य । केवल गुण रहे, तब समास न हो । यथा **घृतेन पाटवं**, चिकनाहट केवल गुण हैं, उससे वस्तु स्पष्ट नहीं । अतः समास नहीं हुआ । गुणोपसर्जनद्रव्यका ज्ञान आवश्यक । शङ्कुलया खण्डः **शङ्कुलाखण्डः देवदत्तः**, सरौता से टुकड़ा छाँटने वाला । शङ्कुलया खण्डः करण साधन (सरौता) अर्थमें तृतीया (खड़ि भेदने) से टुकड़ा करने के अनुकूल क्रिया अर्थमें घञ् **खण्डनं** (सुपाड़ी काटना भाजना) **खण्डः अस्ति अस्मिन्** काटना भाजना क्रिया हो जिसमें **चैत्र** । शङ्कुलया–साधन अर्थमें तृतीया **शङ्कुला कृत-खण्डन छेदन, भेदन क्रियागुणवान्** विशेषण होने से क्रियाभी गुण है भेदन सामर्थ्य । कोई समासकृदन्त, तद्धितान्त, अव्यय, सर्वनाम जाति, संख्या संज्ञा शब्दसे भिन्न अर्थवानको गुणवचन कहे है । परन्तु यहाँ वह नहीं लिया जायगा । **गुणमुक्तवता गुणवचनेन** यौगिक शब्दसे धर्ममात्र इष्ट है, खण्डमें क्रिया रहने पर भी दोष नहीं । **वोतो गुणवचनात्सूत्रे भाष्ये सत्वे निविशते अपैति पृथग्जातिषु दृश्यते । आधेयश्चाक्रियाजश्च सो असत्वप्रकृतिर्गुणः** । द्रव्यमें रहे । अलग भी हो सके, जातिसे अलग हो, आधेय आधारकी अपेक्षाहो किसी क्रियासे पैदा न हो । स्वयं द्रव्य न हो, वह गुण है । परन्तु खण्डन क्रिया भी गुणमान्य । भाष्य विरोधसे उपेक्ष्य । **शङ्कुला टा खण्ड सु** । **तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन एकार्थीभावे कृते समासत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां सुपो धातु–सुपो लुक्** । **एकदेशविकारन्यायेन प्रातिपदिकत्वात्स्वादिकार्ये** । अर्थ शब्दके साथ तृतीयान्तका समास धान्येन अर्थः **अर्थ्यते अर्थः प्रयोजनं** या अर्थनम् अर्थः इच्छा । भावे घञ् । हेतौ तृतीया, धन का हेतु धान्य है । परन्तु क्रियान्वयी न होने से कर्तृकरणे कृता सूत्रसे समास प्राप्त नहीं अतः अलग पढ़ा । प्रकृत्यादिभ्यः से तृतीया **धान्याभिन्नं धनं, धान्य टा अर्थ सु** । **सूत्रेण**

शङ्कुलाखण्डः। धान्येनार्थो धान्यार्थः। तत्कृता, इति किम्, अक्ष्णा काणः। (६९३) **पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः २।१।३१॥** तृतीयान्तमेतैः प्राग्वत्। मासपूर्वः। मातृसदृशः। पितृसमः। ऊनार्थे, माषोनं कार्षापणम्। मासविकलम्। वाक्कलहः। आचारनिपुणः। गुड-

---

समासादिः। तत्कृता किम् ? अत्र प्रश्नः शङ्कुलया खण्ठः में शङ्कुला (सरौता) खण्डका साधन करण है कर्तृकरणे कृता बहुलं से समास सिद्ध, उक्त सूत्रमें **तत्कृता**=साधनसे किया हुआ खण्ड ऐसा अर्थ क्यों ? व्यर्थ होकर नियम किया कि **गुणवचनेन चेत्–क्रियावान्** के साथ समास हो, तब **तत्कृतेनैव**=जिससे क्रिया हुई हो। शङ्कुलासे टुकड़ा खण्ड किया हुआ है। उसीके साथ समास हो। यदि अन्य प्रकार से गुण क्रिया खण्ड खञ्ज हुआ हो, तब समास न हो। **अक्ष्णा काणः** (आँखका काना) काणत्व गुणमें आँख की क्रिया कारण नहीं, किन्तु रोग कोंच आदि कारण है। यहाँ तृतीया येनाङ्ग विकारः से हुई (कण निमीलने) आँख खोलना बन्द करने अर्थकसे घञ्। कोंचमें कारण भिन्न है। **गुणवचन क्यों पढ़ा** ? **गोभिर्वपावान** गाय सम्बन्धी दूध घी भोजनसे वपा मांसल है। यहाँ **तत्कृत**=गो सम्बन्धिवस्तु कृत स्वास्थ्य है किन्तु गुणवचन नहीं, न समासः। अलग गुणोपसर्जनद्रव्य नहीं है।

। ६९३। **पूर्व सदृश** समान, सम–तुल्य ऊनार्थ–न्यून, कलह झगड़ा, निपुण–कुशल, मिश्र–मिलावट, श्लक्षण–चमकता हुआ तेजस्वी, इन तृतीयान्त शब्दोंके साथ समर्थ सुबन्तका समास तत्पुरुष एकार्थीभाव हो। **सम** और **सदृश** के योगमें तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां से तृतीया, अन्यके सम्बन्धमें हेतौ तृतीया, वचन सामर्थ्यसे। यथा **मासेन पूर्वः** महीनाके पहले पैदा हुआ। यद्यपि पूर्व की अवधि मास है अन्य आरात् इतर ऋत्, दिक्शब्दके योगमें पञ्चमी प्राप्त है, क्योंकि **दिशि दृष्टः शब्दो दिक्शब्दः** किसी दिशामें देखा गया। किन्तु ज्ञापनसे तृतीया, अन्ये हेतौ तृतीया। **मास टा पूर्व सु। पूर्वसदृश–सूत्रेण समासादिः।** मात्रा सदृशः **मातृसदृशः**, माताके समान स्वभाव समासार्थ। **मातृ टा सदृश सु** आदिः। **पित्रा समः** पिताके तुल्य समासार्थः सादृश्य सम्बन्ध पितृ टा सम सु आदिः, ऊनार्थः का उदाहरण–**माषोनम् कार्षापणं** कौड़ी तोला मासाके अनुसार माषा नामक परिमाण मात्रा० ऊन= कम। माषया ऊनम्, अवधि माषा है, ज्ञापनसे तृतीया। अर्थका ऊन न्यूनसे सम्बन्ध, पूर्वसदृश आदिसे नहीं, 'सम' सदृशके अलग पढ़नेसे। भाषा टा ऊन सु। अर्थका

मिश्रः। आचारश्लक्षणः। मिश्रग्रहणे सोपसर्गस्यापि ग्रहणम्। 'मिश्रं चानुपसर्गमसन्धौ' (सू३८८५)। इत्यत्रानुपसर्गग्रहणात्। गुडसम्मिश्रा धानाः 'अवरस्योपसङ्ख्यानम्' (वा १२५६) मासेनावरो मासावरः। (६९४) **कर्तृकरणे कृता बहुलम्। २।१।३२॥** कर्तरि करणे च तृतीया 'कृदन्तेन बहुलं प्राग्वत्। हरिणा त्रातो हरित्रातः। नखैर्भिन्नो नख-

---

प्रयोजन, **माषेण विकलं**, हीनं **माषविकल** एक माषा कम, तृतीया पूर्ववत्। माषटा विकल सु। **वाचा कलहः** वाणीका झगड़ा। हेतु सम्बन्ध। वाच् टा कलह सु। आचारेणनिपुणः, सदाचारहेतुक नैपुण्यवान्। अचारविचारमें दृढ़। आचार टा निपुण सु। **गुडेन मिश्रः** गुडमिश्रः गुडहेतुक मिश्रणक्रियावान् **गुड़धाना आचारेण श्लक्ष्णः** आचारहेतुक कुशलत्ववान् चमकता हुआ। **गुड सम्मिश्रा धाना** अच्छीतरह मिलाया हुआ। यहां सम् उपसर्ग होनेसे समास कैसे ? तदन्तविधि नहीं होगी क्योंकि समास विधिमें तदन्तका निषेध है। तब बोले **मिश्रग्रहणे**=जहाँ मिश्रका ग्रहणसमासमें हों, वहाँ **सोपसर्गस्यापि**= उपसर्गके सहितका भी ग्रहण हो। क्योंकि मिश्रञ्च=अनुपसर्गवचनमें (**असन्धौ पणवन्धेन एकार्थ्यं सन्धिः**)। तत्र अप्रयुज्यमान ! मिश्रशब्दः उपसर्गरहितः अन्तोदात्त इति सूत्रार्थ। अनूपसर्गके ग्रहणसे इतरत्र=उपसर्ग सहितमिश्रका ज्ञान निश्चित होता है। अतः गुडेन सम्मिश्रा, **गुड टा सम्मिश्र** सु समासादि, (वा०) **अवर** (पूर्व अर्थ में) का भी ग्रहण करें। पूर्वसदृशसम--ऊन सूत्रमें अवर शब्द भी पढ़ें। यथा **मासेन अवरः** बसन्तः। एक माह पहले ऋतु आती है। अवरका पूर्व अर्थ है, यदि न्यून अर्थ होता तो ऊनर्थक मानकर समास होता **सप्तदशावराः सत्रनासीरन्**। सत्रह कम यज्ञ किये। **द्वयजवरार्धात्**= सूत्रमें अवरका न्यून अर्थ प्रसिद्ध।

। ६९४। **कर्ता च करणञ्च** अनयोः समाहारः सप्तमी। तृतीया आयी, तदन्तविधि, कृतामें भी। कर्ता और करण अर्थमें तृतीयाका समर्थ कृदन्तके साथ बहुल=इच्छानुसार समास, एकार्थीभाव हो, तत्पुरुष मान्य। यथा– **हरिणा त्रातः** भगवानसे पालित रक्षित भक्त। त्रैङ् पालने रक्षणीय अर्थमें क्त, अनुक्त कर्तामें तृतीया। **हरि टा त्रात सु**। इति विग्रहे सूत्रेण समासादिः। कर्तरि तृतीयान्त हरि टा का कृदन्त त्रातके साथ समास। हरि कर्तृकत्राणा-श्रय। प्रभुसे रक्षा का विषय। करण साधन अर्थमें तृतीयाका **नखैर्भिन्न** नखसे निकोला विदलित, अलग किया हुआ। भिद धातुका भेदन, क्त का भूतकाल,

भिन्नः। कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्थापि ग्रहणम्' [५२६] नख निर्भिन्नः। कर्तृकरणे इति किम्। भिक्षाभिरुषितः। हेतावेषा तृतीया। बहुलग्रहणं सर्वोपाधिव्यभिचारार्थम्। तेन 'दात्रेण लूनवान्' इत्यादौ न। कृता किम् काष्ठैः पचतितराम्। (६९५) **कृत्यैरधिकार्थवचने।२। १।३३।।** स्तुतिनिन्दाफलकमर्थवादवचनमधिकार्थवचनम्। तत्र कर्तरि

अर्थ। ऐसीं क्रिया का करणसाधन नखसे तृतीया। नख भिस्, भिन्न सु समास आदिः। नखसे निकोली आलू। सन्नर्थ कृदन्तका भिन्नके साथ समासः यदि कृदन्तसमर्थमें विशेषण है, तदन्त विधिका निषेध। **समासप्रत्ययविधौ प्रतिषेधः** लगेगा तदन्तविधि होगी नहीं **नखनिर्भिन्नःमें** समास कैसे ? तब बोले—**कृद्ग्रहणे** जहां कृदन्त लिया जाय वहाँ कृदन्तके पूर्वमें **गतिसंज्ञक** प्र परानिस निर् आदि और **कारक** का भी ग्रहण हो। इस परिभाषाके बलपर निर्के सहित भिन्न मान्य। नख भिस् निर् सु। आदिः। सूत्रमें **कर्ता करण** अर्थमें तृतीया हो ऐसा क्यों पढ़ा ? इसलिए कि जहाँ हेतौ तृतीया है वहाँ समास न हो। यथा **भिक्षाभिः उषितः, भिक्षाहेतु** ठहरा है, भिक्षा क्रियान्वयी नहीं है तब समास रोकनेके लिए पढ़ा। सूत्रमें **बहुन् अर्थान् लातीति बहुलं** क्यों पढ़ा ? इसलिये सभी उपाधियोंमें व्यभिचार अनियमितता, कही हो, कहीं न हो, कहीं विकल्प से, कही किल्कु त नहीं। अतः **दात्रेण लूनवान्** हँसियासे लवाई कटाई वाला। लवन क्रियामें साधनदात्र हँसिया है। **द्यति छिन्त्ति अनेन दात्रं** (दोअव **खण्डने**) **खनित्रेण छिन्नवान् हस्तेन कुर्वन्।** बहुलके प्रभावसे अन्यविभक्तिके साथ भी समास, यथा पादाभ्यां **ह्रियते पादहारकः** (चप्पल चोर) अपादान पञ्चम्यन्त समास। **गले चोपकः** गलेमें धीरे-धीरे जानेवाला (चुपमन्दायां गतौ) णिजन्तसे ण्वुल् **'अमूर्धमस्तकात्**से अलुक् समास होता ही है। **कृता किं**=सूत्रमें कृदन्तके साथ समास क्यों कहा, (सुपाके अधिकारमें तिङ् आवेगा हीं नहीं) इसलिए कि जो तिङन्त तद्धितकी प्रकृति हो, वहाँ सुबन्तके साथ समास न होनेके लिए कृदन्त पढ़ा। यथा लकड़ियोंसे बहुत पकाता है। **अतिशयेन पचतितराम्** अतिशायेन तरप् किमेत्तिङ्—द्रव्यप्रकर्षे आम्। अत्र समासो न।

।९९५। **कृत्यैः** अधिकः अर्थः उच्यते इति स्तुति (गुणका) निन्दा(दोषोंका) वर्णन फलवाला अर्थवाद अधिक—वढ़ाचढ़ाकर आरोपित अर्थ। असत् सत् उक्ति ही **अधिकार्थवचन** है। उसके कर्ता करणमें तृतीयाके साथ कृत्यसंज्ञक प्रत्ययान्तका समर्थके साथ समास हो। यथा—**वातेन छेद्यं** तृणं (छेत्तुंयोग्यं

करणे च तृतीया कृत्यैः सह प्राग्वत्। वातच्छेद्यं तृणम्। काकपेया नदी। (६९६) **अन्नेन व्यञ्जनम्** ।२।१।३४।। संस्कारकद्रव्यवाचकं तृतीयान्तमन्नेन प्राग्वत्। दध्ना ओदनो दध्योदनः। इहान्तर्भूतोपसेकक्रियाद्वारा सामर्थ्यम्। (६९७) **भक्ष्येण मिश्रीकरणम्** ।२।१।३५।। गुडेनधाना गुडधानाः। मिश्रणक्रियाद्वारा सामर्थ्यम्। [६९८] **चतुर्थीतदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः** ।२।१।३६।। चतुर्थ्यन्तार्थाय यत्तद्वाचिना

ऋणहलोर्ण्यत्) वायुसे भी टूट सकता है। **अतिकोमलसे स्तुति, निर्बल होनेसे निन्दा। वात् टा छेद्य सु** आदिः। **पातुं योग्यं पेयं जलं तदस्ति अस्यां, काकेन पेया** (अचो यत्) इत्वे गुणे। (कौआसे पीने योग्य) **पूर्णाम्भसत्वेन** जल भरा है छुद्र जन्तु भी पी सकता है स्तुति,। इतना कम जल है कि कौआ ही पी जाय। इति निन्दा। **काक टा पेया सु** (शकि लिङ् च यत्) **पूर्ण तोयत्वात् तटस्थैः काकैरपि पातुं शक्या।**

। ६९६। **अन्नेन**–खाद्य वस्तुवाचक शब्दके साथ व्यञ्जनं–संस्कारकद्रव्य-वाचकं संस्क्रियते, **गुणानाम् आधानं क्रियते अनेन संस्कारः** सिञ्चनद्रव्यं, दधि घृत आदिः। व्यञ्जनवाचक शब्दके साथ समास एकार्थीभाव हो, **भिस्सा स्त्री भक्तमन्धो अन्नमोदनो**ऽस्त्रियामित्यमरः। **खरं विशदं अभ्यवहार्यं भक्ष्यं खरणं कठिनमिक्षुदण्डादिः। विशदं विविक्तावयवं,** सन्तरा आदि है। यथा **दध्ना ओदनः दध्योदनः**। दहीका भातके साथ सम्बन्ध नहीं, सामर्थ्य कैसे? तब बोले **इहान्तर्भूत**=इस प्रयोगमें छिपा हुआ **उपसेक**=सिञ्चनक्रियाके द्वारा दहीका भातके साथ सामर्थ्य है। **दधिकरणकसिञ्चिनाश्रयः** भातके अवयवोंमें दहीका घुल मिल जाना। **दधि टा ओदन सु आदिः। युक्तार्थप्रत्ययाच्च सामर्थ्यं** (उचित अर्थके अनुभवसे) शक्तिः।

। ६९७। **भक्ष्य** खाद्यवस्तुवाचक तृतीयान्तका संस्कारकद्रव्यवाचकके साथ **मिश्रण**=मिलानेकी क्रिया हो चुकी हो, तब समर्थके साथ समास हो। यथा **गुडेन धानाः** गुणके साथ मिला हुआ धान, खाद्यवस्तु **धानाभृष्टयवेस्त्रियः** भूंजा हुआ अन्न विभक्त अवयव है। मिश्रण क्रियाके द्वारा **शक्तिसम्बन्ध** एक आवश्यक। **गुडकरणक मिश्रणक्रियाश्रयः। गुड टा धाना सु आदिः।**

। ६९८। **चतुर्थी** (ङेभ्यांभ्यस्) तस्याः अर्थः **तदर्थ**। तत्-शब्द चतुर्थीका बोधक। तदन्तविधि। चतुर्थी अन्तमें हो उसके अर्थवाचकशब्दका तदर्थ, अर्थ बलि, हित, सुख, रक्षित इनके साथ एकार्थीभाव हो, वह तत्पुरुष मान्य **तस्मै**

अर्थादिभिश्च चतुर्थ्यन्तं वा प्राग्वत्। तदर्थेन प्रकृतिविकृतिभाव एव गृह्यते। बलिरक्षितग्रहणाज्ज्ञापकात्। यूपाय दारु यूपदारु। नेह-रन्धनाय स्थाली। अश्वघासादयस्तु षष्ठीसमासाः। * अर्थेन नित्यसमासो विशेष्य लिङ्गता चेति वक्तव्यम् द्विजायायं द्विजार्थः सूपः। द्विजार्था

चतुर्थ्यन्तार्थाय इदं **तदर्थम्** अर्थेन नित्यसमासः। **तदर्थेन**=यहाँ प्रकृति कारण, विकृति–कार्यभाव रहनेपर ही लिया जाय। तत्र **किं प्रमाणं–सूत्रे बलिहित सुख-रक्षितग्रहणं प्रमाणम्**। यदि तादर्थ्य=तस्मै अर्थः तदर्थः तस्य भावः (के लिए) अर्थमें ही समास हो और कार्यकरणभाव नहीं कहेंगे, तब बलि रक्षितग्रहण व्यर्थ होगा। **भूतेभ्यो बलिः** जीवोंके लिए समादर। **गोभ्यो रक्षितं** तृणं, गायके लिए बलि। भूतके लिए। तदर्थसे समास सिद्ध। बलि रक्षितग्रहण (प्रकृतिविकृतभावमें) प्रमाण। **ब्राह्मणाय** हितं, **गोहितं** गोसुखंमें तादर्थ्य चतुर्थी है। **यूपदारु** यूपाय–यज्ञस्तम्भ, खम्भा या खूंटाके लिए लकड़ी काष्ठ। यूप–कार्य विकृति है दारु–कारण प्रकृति है। इस सम्बन्धके रहते **यूप ङे दारु सु समासादिः**। तथा बढ़ई बसूलासे काष्ठमें आठकोर निकाल कर यूप बनया। प्रकृति विकृतिकार्यकारणभाव न होता, तब **नेह**=यहाँ समास हो जाता। **रन्धनाय पाकाय** (पकाने रींधनेके लिए) **स्थाली**, परन्तु स्थाली प्रकृति कारण नहीं है, उसकी विकृति पाक भी नहीं। न समासः। **रध-हिंसायां** पाकक्रिया अर्थमें रध धातुः। अत्र शङ्का–**अश्वेभ्यो घासः** घोड़ेके लिए घास। **धर्माय नियमो धर्मनियमः** प्रकृतिविकृतिभाव न होनेसे समास कैसे ? घासकी विकृति अश्व तो है नहीं, तब बोले–**अश्वानां घासः** अश्वघासः। षष्ठी समासः। यदि ऐसा तब **रन्धनाय स्थाली** यहाँ भी षष्ठी हो जाय। प्रकृति-विकृति विचार व्यर्थ, तन्न, शाब्दबोधमें सम्बन्ध और **तदर्थमें** अन्तरके लिए मान्य। केवल सम्बन्ध अर्थमें षष्ठी समास इष्ट। तदर्थदशामें चतुर्थीसमास रोकनेके लिए प्रकृतिविकृतिभाव आवश्यक। यहाँ तक तदर्थका व्याख्यान। **अब अर्थके साथ चतुर्थ्यन्तका समास सुनिये** (वा०) **अर्थशब्दके** साथ चतुर्थ्यन्त का नित्य समास हो, विभाषा धिकारको बाधकर। **विशेष्य**=प्रधान शब्दका जो लिङ्ग हो वही समास होनेपर हो। इससे तीनोंलिङ्ग सम्भव, नहीं तो नित्यपुलिङ्ग अर्थः। परवल्लिङ्गसे परलिङ्गकी ही मान्यतासे पुलिङ्ग ही होता है अर्थशब्द वस्तुपरक है। (**अर्थोऽभिधेय रै वस्तुप्रयोजननिवृत्तिषु अमरः**) प्रमाणसे उपकारकवस्तु। **द्विजायऽयं** लौकिक (अस्वपद) विग्रहे

यवागू । द्विजार्थं पयः । भूतबलिः । गोहितम् । गोसुखम् । गोरक्षितम् । (६९९) **पञ्चमी भयेन** ।२।१।३७।। चोराद्भयं चोरभयम् । *भयभीतभीतिभीभिरिति वाच्यम्' वृकभीतः (७००) **अपेतापोढमुक्तपतितापत्रस्तैरल्पशः** । २।१।३८।। एतैः सहाल्पं पञ्चम्यन्तं समस्यते स

क्योंकि नित्यसमासे स्वपदविग्रह होता ही नहीं। **द्विजङे अर्थसु** समासादिः। विप्रके लिए दाल तादर्थ्यचतुर्थी । सूपः पुलिङ्ग है इसलिए समासभी पुलिङ्ग रहा । **द्विजस्य उपकारकः द्विजार्था लप्सी । द्विजाय इदं, द्विज ङे अर्थ सु** समासादिः । हलुआ द्विजका उपकारक है। अर्थः नित्य पुलिङ्ग है तथापि प्रधान यवागूका स्त्रीलिङ्ग लागू हुआ । **द्विजाय इदं द्विजार्थं** पयः । ब्राह्मणके लिए दूध विशेष्यविशेषण । पय नपुंसककी प्रधानता । **भूताय बलिः भूतबलिः भूत ङे बलि सु समासादिः । तादर्थ्यचतुर्थी-गोहितं** गायके लिए अनुकूल गोभ्यो हितं तादर्थ्य, **गोभ्यस् हित सु** आदिः । **हितयोगे च** सूत्रसे शेषषष्ठीबाधकर चतुर्थी । हितके साथ समास, **गोभ्यो रक्षितं तृणं गोरक्षितं**, गोभ्यः सुखं **गोसुखम्** । तादर्थ्य=हितके साथ समास ।

। ६९९ । **पञ्चमी** ङसिभ्यांभ्यस् पञ्चम्यन्त सुबन्तका **भयेन**=भयप्रकृतिक सुबन्तके साथ एकार्थीभाव विकल्पसे हो, तत्पुरुष मान्य । सूत्रमें भय शब्दके साथ समास । अर्थवाचक अन्यके साथ नहीं । भय भीत भीति वार्तिक पढ़नेसे, **विडालात्त्रासः** में समास नहीं हुआ। चोरात् **भयं** चोरसे डर, भयकी अवधि चोर है **चोर ङसि भय सु**, समासादिः । भीत्रार्थानां **भय** हेतुः चोरमें पञ्चमी, सूत्रकारने भयके साथ समास कहा । **वार्तिककार** बोले—कि नहीं, **भयभीतभीति** के साथ भी समास कहें । अतः वृकाद् भीतः सियारसे डरा हुआ । वृकावधिक भय । **वृक् ङस् भीत् सु** । सिंहाद् **भीतिः व्याघ्रभीः** । वृक् ङसि भी सु । भाष्य में **अपर आह-भय निर्गतजुगुप्सुभीरिति वक्तव्यं**, ग्रामात् निर्गतः **ग्रामनिर्गतः** अधर्मात्जुगुप्सुः उदाहरण दिया । **चोरत्रस्तः**, भोगात् उपरतः **भोगोपरतः** वित्रास से वैराग्य । इन स्थलोंमें सुप्सुपासे या मयूरव्यंसकादि मानकर समास ।

। ७०० । **अपेत अपोढ़** (दूर) **मुक्त** (त्यक्त) **पतित** गिरा हुआ **अपत्रस्त** परेशान, एतैः=इन शब्दोंके साथ अल्पसंख्यामें वर्तमान पञ्चम्यन्तका समस्यते एकार्थीभाव हो तत्पुरुष मान्य, कानिचित् एव पञ्चम्यन्तानि समस्यन्ते कुछके ही समास होंगे सभीके नहीं, अल्प एव **अल्पशः** स्वार्थमें निपातनसे शस् । बहु अल्प अर्थमें शस् नहीं । **बहु अल्प** अर्थसे मङ्गल या **अमङ्गल** में शस कहा

तत्पुरुषः। सुखापेतः। कल्पनापोढः। चक्रमुक्तः। स्वर्गपतितः। तरङ्गापत्रस्तः। अल्पशः किम्। प्रासादात्पतितः। (७०१) **स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन। २।१।३९॥** स्तोकान्मुक्तः। अल्पान्मुक्तः। अन्तिकादागतः। अभ्याशादागतः। दूरादागतः। विप्रकृष्टादागतः। कृच्छ्रादागतः। 'पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः' (सू९५९) इत्यलुक्। ७०२ **षष्ठी**

जायगा। **सुखात् अपेतः**, थोड़े सुखसे अलग, एकार्थीभाव, **सुख ङसि अपेतसु।** **कल्पनायाः अपोढ़ः** कुछ कल्पनासे भी दुर समासार्थ, **कल्पना ङसि अपोढ़ सु।** **चक्रात् मुक्तः** दुर्वाशा अल्प कष्ट से छूटे। **चक्र ङसि मुक्त सु।** **स्वर्गात्पतितः त्रिशङ्कुः।** स्वर्ग ङसि पतित सू। **तरङ्गात अपत्रस्तः** लहरोंसे क्षुब्ध, कार्य कारण सम्बन्ध एकार्थीभाव। सूत्रमें **अल्पशः क्यों पढा**? इसलिए कि प्रासादात्पतितः (ऊँचे महल से गिरा) समास न हो जाय।

। ७०१। **स्तोक**-थोड़ा **अन्तिक**-समीप, **दूर**-असमीप इनके अर्थवाचक तथा **कृच्छ**-कृश दुर्वलवाचक पञ्चम्यन्तके साथ क्तप्रत्ययान्तका एकार्थीभाव हो, तत्पुरुषमान्य। अर्थका स्तोक अन्तिक दूरके साथ सम्बन्ध। **स्तोकान्मुक्तः** (थोड़े से ही छुट गया) **स्तोकार्थो अल्प एव न लेशादयः।** स्तोक पर्यायका उदाहरण **अल्पान्मुक्तः**, अल्प ङसि मुक्त सु, सूत्रेण समासे। इस सूत्रके सभी प्रयोगोमें **पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः अलुक्। अन्तिक ङसि आगत सु।** समीपसे आया हुआ पर्यायसे समास। **अभ्याशादागतः** पाससे ही आया। दूरसे आया हुआ, पर्यायमें **विप्रकृष्ट** अधिक दूरसे आया हुआ। करणे च स्तोकाल्पः-**दूरादागतः** दूरान्तिकार्थेभ्यः पञ्चमी **कृछ्रादागतः** संकीर्णतासे आया। समास होने पर सुपो धातु प्रातिपदिकयोः से सुपका लुक् नहीं होता, निषेधसे।

। ७०२। **षष्ठी** (ङस् ओस् आम्) सम्बन्ध अर्थ सत्य है, **कारकषष्ठी आरोपित।** षष्ठीविभक्ति अन्तमें हो ऐसे सुबन्तका समर्थसुबन्तके साथ एकार्थीभाव हो वह तत्पुरुष मान्य। यथा राज्ञः पुरुष लौकिकविग्रहे राजन् ङस् पुरुष सु इति दशायां षष्ठी-सूत्रेण समासादिः। समासे जाते अन्तर्वर्त्तिनी=समास दशामें जो विभक्ति (ङस्) थी समास होने पर सुपोधातुप्रातिपदिकयोः से लुक् हुई। अन्तः आभ्यान्तरे या वर्तते सा अन्तर्वर्तिनी। प्रत्ययलक्षण से सुप् मानकर राजन् को पदसंज्ञा नकार लोप। यद्यपि लुक्से नलुमताङ्गस्य प्रत्यय लोप लक्षणका निषेध करेगा तत्र, पदसंज्ञा सुबन्त समुदायका धर्म है अङ्गकार्य नहीं। ङस्का सम्बन्ध अर्थ राजसम्बन्धितुरुषः राजा स्वामी है, पुरुष सेवक

।२।२।८।। राज्ञ: पूरुषो राजपुरुष: । ७०३ **याजकादिभिश्च** ।२।२।९।। एभि: षष्ठयन्तं समस्यते । तृजकाभ्यां कर्तरि'(सू७०६)इत्यस्य प्रतिप्रसवोऽयम् । ब्राह्मणयाजक: । देवपूजक: । * गुणात्तरेण तरलोपश्चेति वक्तव्यम् तरबन्तं यद्गुणवाचि तेन सह समासस्तरलोपश्च । न निर्धारणे' (सू७०४) इति 'पूरणगुण'—(सू७०५) इति च निषेधस्य प्रतिप्रसवोऽयम् । सर्वेषां श्वेततर: सर्वश्वेत: । सर्वेषां महत्तर: सर्व-

---

स्वस्वामिभाव सम्बन्ध: । **राजस्वामिक: पुरुष:** यह परस्परसामर्थ्य—एकार्थीभाव रहते समस्यते एकार्थीभूय तिष्ठति । **एकपद, एक अर्थ, एकशक्ति होना** ।

। ७०३ । **याजक गण** में पढ़े हुये शब्दोंके साथ समर्थषष्ठयन्तका समास, एकार्थीभाव हो । यद्यपि किसीभी षष्ठयन्तका समर्थ परस्पर सम्बद्ध के साथ 'षष्ठी' सूत्रसे समास सिद्ध है यह सूत्र क्यों पढ़ा ? तब बोले कि **तृजकाभ्यां कर्तरि**=जहाँ तृच् और अक कर्ता अर्थमें हों, वहाँ षष्ठीका निषेध हो जाय । इस निषेध का प्रतिप्रसव विरुद्ध प्रचारक सूत्र । यथा **याजयतीति याजक:** यज्ञ कराने वाला, कर्तरि ण्वुल् अक, कर्मणि षष्ठी **ब्राह्मणस्य याजक:** ब्राह्मणकर्मक यज्ञकारयिता । यज्ञफलका आश्रय ब्राह्मण (फलाश्रय: कर्म) ब्राह्मण ङस् याजक सु आदि: । यदि **षष्ठीसूत्रेण समास: स्यात्तदा तृजकाभ्यां कर्तरि समासनिषेध: स्यात्** । पूजयति पूजक: **देवानां पूजक:** । **देव आम् पूजक सु आदि:** । **राजपरिचारक: भोजनपरिवेशक:** । **संस्कृतवेत्ता न्यायाध्यापक:, वनस्पत्युत्पादक:** । होतृपोतृभर्तृ **भव: भर्ता भूभर्ता**, भूमिपालक:, **दशरथपोता** लव: । (वा०) **गुणात्तरेण** गुण वाचकशब्दसे तरप् हुआ हो, उससे षष्ठीसमास विकल्प से हो । तरपका लोप भी । नील-पीत-श्वेत-हरित **आदि** गुण उनके कम या अधिकनिर्णयके लिये तरप् का अर्थ । षष्ठीसूत्र से समास सिद्ध था, वार्तिक क्यों पढ़ा ? इसलिये कि **न निर्धारणे**=कम या अधिक निश्चय अर्थमें षष्ठीसमासका निषेध प्राप्त था, और पूरणगुण **सुहितार्थ**—सूत्रसे भी निषेध प्राप्त था, उनका **प्रतिप्रसव—प्रत्युत्तर**—उत्तरका उत्तर, निषेधके निषेधका विधान फल है । यथा—**सर्वेषां पक्षिणां** श्वेत: शुभ्र: बकानां गुण: । सभी वस्तुओंमें सफेदीकी अपेक्षा बकुला सफेद (सभी बकोंमें अधिक श्वेत) गुण निर्णय अर्थमें तरप् । **द्विवचनविभज्य**—सूत्रसे विभाग निर्धारण अर्थ में । **सर्व आम् श्वेततर सु**, इति दशायां वार्तिकेन समासे तरप: लोपे आदि: । **सर्वश्वेत:** सबसे सफेद । **सर्वमहान्** ईश्वर: । **अतिशयेन महान् महत्तर:**, सर्वेषा महत्तर:

महान्। * कृद्योगा च षष्ठी समस्यत इति वाच्यम्' इध्मस्य प्रव्रश्चनः इध्मप्रव्रश्चनः। (७०४) **न निर्धारणे**२।२।१०॥निर्धारणे या षष्ठी सा न समस्यते। नृणां द्विजः श्रेष्ठः * प्रतिपदविधाना षष्ठी न समस्यत इति वाच्यम्' सर्पिषो ज्ञानम्। [७०५] **पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययत-**

सभी पुरुषों से श्रेष्ठ अन्य लोगोंके महत्वसे ईश्वरका महत्व अधिक है (वा०) **कृद्योगा।** कृता=कृदन्तेन सह योगः सम्बन्धो यस्या सा जिस षष्ठीका कृदन्तके साथ सम्बन्ध हो, अर्थात् **कर्तृकर्मणोः कृतिः** सूत्रसे कर्ता कर्म अर्थमें हुई षष्ठी के साथ समास एकार्थीभाव कहें। यदि **प्रतिपदविधाना षष्ठी न समस्यते,** तदा इदम्। **वृश्च्यते छिद्यते काष्ठमनेन व्रश्चनः** कुठारः (ओ व्रश्चू: छेदने) करणे ल्युट्। काटनेके साधन अर्थमें ल्यु अन्। **इध्मानां व्रश्चनः** ईंधन काटनेकी कुल्हाड़ी, **छेद्य छेदक** सम्बन्ध, इध्म कर्म है व्रश्चनः कृदन्त, उसके सम्बन्धमें कर्तृ कर्मणोः कृतिः से कर्मणि षष्ठी। इध्म ङस् व्रश्चन सु प्रतिपदविधाना षष्ठी न समस्यते इति निषेधे प्राप्ते तस्य **बाधकेन वार्तिकेन समास आदिः।**

।७०४। **गुण क्रिया जाति** द्रव्य की अनेकता मे एकका निर्णय श्रेष्ठता-निर्धारण, उस अर्थमें यदि षष्ठी हुई हो। यथा मनुष्योंमे ब्राह्मण श्रेष्ठ है, श्रेष्ठताका निर्धारण होने "यतश्च निर्धारणं,, से षष्ठी हुई। षष्ठी समास-प्राप्तिका न निर्धारणे से निषेध, इस निषेधमें तीन शर्त है—**यतो निर्धार्यते यश्च निर्धार्यते, यश्च निर्धारणहेतुः। एतत्त्रितयसन्निधान एव निषेधः।** जिनमें से एकका निर्णय करना हो, जिसका निर्णय जिससे जो निर्णय। मनुष्योंसे ब्राह्मण की श्रेष्ठता का निर्णय वहीं पर निषेध होगा। अतः **पुरुषाणामुत्तमः पुरुषोत्तमः** में सम्बन्धे षष्ठीसमास हुआ निषेध नहीं। तीनों का सन्निधान न होने से **उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।** अत्र तु कर्मधारयः (वा०) **प्रतिपदं** पदं पदं प्रति (वीप्सा अर्थमें अव्ययीभावसमास) विधानं यस्या सा **प्रतिपदविधाना,** षष्ठी, शेषे सूत्रको छोड़कर जितनी शेष षष्ठी हैं सब प्रतिपदविधाना है। जिस सूत्रमें धातु **और कारक** की विशेषता को स्वीकार कर सम्बन्ध अर्थमें षष्ठीका **विधान प्रतिपदविधाना** है। जैसे **ज्ञोऽविदर्थस्य करणे** इस सूत्रमें ज्ञा धातु और उसका करण कारकका उच्चारण करके सम्बन्ध मात्रकी इच्छामें षष्ठी **प्रतिपद विधाना** है। ऐसी षष्ठीके साथ समास एकार्थीभाव नहीं होता। **सर्पिषो ज्ञानं** ज्ञान अर्थमें ज्ञाधातुका करणकारक **सर्पिषः** में षष्ठी हुई। समास प्राप्त हुआ, तस्य निषेधे। **प्रतिपद**=धातु और कारकका उच्चारणकरके विधानकी गयी

व्यसमानाधिकरणेन। २।२।११॥ पूरणाद्यर्थैः सदादिभिश्च षष्ठी न समस्यते। पूरणे, सतां षष्ठः। गुणे काकस्य कार्ष्ण्यम् ब्राह्मणस्य शुक्लाः। यदा प्रकरणादिना दन्ता इति विशेष्यं ज्ञातं तदेदमुदाहरणम्। अनित्योऽयं गुणेन निषेधः। 'तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वात्' (सू१२९५)

षष्ठीके साथ समास न हो, तत्र समासो न जातः।

।७०५। **पूरणगुणवाचक** शब्द, **सुहितार्थ**—तृप्ति, सत्संज्ञक अव्यय, तव्य, समानाधिकरण=समानाधार समानविभक्ति, इन सबके साथ षष्ठीसमास एकार्थ नहीं होता। समाहार, द्वन्द्वसे तृतीया। इन सबका क्रमशः साधनिका सुनिये। **तस्य पूरणे डट्** सङ्ख्याकी पूर्ति अर्थमें **षण्णां पूरणः**, छठवीं सङ्ख्या पूर्ण करने अर्थमें **डट्—थुक्**। **सतां षष्ठः** सज्जनों में छठाँ। 'षष्ठी' सूत्रेण समासे प्राप्ते, पूरण अर्थे—षष्ठः, तेन सह पूरणगुण- सूत्रेण समासनिषेधे। यदि ऐसा कुम्भस्य पूरणं **कुम्भपूरणं** यहाँ भी पूरणके साथ निषेध होगा तत्र, **सोऽचि-लोपे चेत्पादपूरणं पादस्य पूरणं**, समास होनेसे पूरणार्थक प्रत्यय ही लिया जाय शब्द नहीं। **उञ्छेषु षष्ठः** उञ्छात्मकः षष्ठः व्याख्यानसे। **उञ्छषष्ठाङ्कित सैकतानि** को समझें। गुणके साथ निषेध। यहाँ गुण प्रधान हो या उपसर्जन, केवल **गुणवाची गुणोपसर्जन द्रव्यवाची च गृह्यते**। पारिभाषिकगुण—**सत्वे निविशते अपैति पृथग्जातिषु दृश्यते आधेयश्चाक्रियाजश्च सो असत्वप्रकृतिर्गुणः**। द्रव्यमें रहे, अलग भी हो, जातिसे भिन्न हों, आधेय हो, क्रिया न हो, द्रव्य भी न हो, ऐसा गुण लिया जाय। अदेङ्गुणः नहीं, अर्थके ग्रहणसे। पूरणगुण और सुहित तीनों के ही अर्थ मान्य, शब्द नहीं। नापि संख्या। **क्रोशशत योजनशतयोः** में समासके प्रमाणसे। काकस्य कार्ष्ण्य कृष्णस्य भावः। गुण-वचन से भावमें ष्यञ्। कौवेका कालापन (गुणवाचीके साथ) **षष्ठीसमासस्य पूरणगुण-सूत्रेण निषेधे**। एवं **ब्राह्मणस्य शुक्लाः** (सफेद गुणके साथ) प्राप्त षष्ठी समासस्य निषेधे। अत्र शङ्का—ब्राह्मणशब्दका दन्तमें अन्वय है, शुक्ल में नहीं, परस्पर सामर्थ्य नहीं, समास कैसे? तत्र बोले **यदा**=जिस कालमें **प्रकरणादिना दन्ताः शुक्लाः** सफेद दाँत ऐसा अर्थ ज्ञात हो (**तदा इदं**) यह उदाहरण बनेगा। शुक्ल ही द्रव्य (दाँत) में समर्पित होगा तब। **दन्ताः संयुक्ताः सुभावहाः न तु विरलाः**। घने दाँत माङ्गलिक है बीड़र नहीं। प्रसङ्गसे दन्त प्रधान होगा। **दन्तवस्त्राभूषणेषु उपस्थितेषु ब्राह्मणस्य शुक्लाः** अर्थ निकलेगा, सम्बद्ध अर्थ होनेसे प्राप्त समासका निषेध।

इत्यादिनिर्देशात्। तेन अर्थगौरवम्। बुद्धिमान्द्यमित्यादि सिद्धम्। सुहितार्थास्तृप्त्यर्थाः। फलानां सुहिताः। तृतीयासमासस्तु स्यादेव। स्वरे विशेषः। सत्, द्विजस्य कुर्वन्–कुर्वाणो वा। किंकर इत्यर्थः। अव्ययम्, ब्राह्मणस्य कृत्वा। पूर्वोत्तरसहचर्यात्कृदव्ययमेव गृह्यते।

पुनः शङ्का **अर्थस्य गौरवं अर्थगौरवं, बुद्धेः माद्यं बुद्धिमान्द्यमित्यादि** स्थल में समासका निषेध न हो। अतः कहे कि **'अनित्योऽयं'** गुणके साथ निषेध अनित्य है। सब जगह नहीं होता, किं प्रमाणं, **तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वात्** सूत्र के उच्चारणमें **संज्ञायाः प्रमाणत्वं संज्ञाप्रमाणत्वं** में समासदर्शनसे। प्रमाणत्व-गुण है उसके साथ समास निषेध नहीं देखा गया, इससे निषेध अनित्य सिद्ध है। आदिपदसे **चन्दनगन्धः**, घटस्यरूपं **घटरूपं** इत्यादिमें **तत्स्थैश्च गुणैः समासो वक्तव्यः**। इस वार्तिकके प्रभावसे समास हुआ। वस्तुतः अर्थगतं गौरवं मध्यम **पद** लोपि समासो बोध्यः। सुहितार्थ तृप्तिअर्थमें है। तृप्तिका साधन कारण फल है। करणकी उपेक्षाकर सम्बन्धमात्रकी इच्छामें षष्ठी सूत्रसे प्राप्त समास का निषेधः। यदि ऐसा तब **फलसुहितः** (फलसे तृप्ति) में समास कैसे ? तब बोले **तृतीयासमास** होता ही है। फलेन सुहितः करणे तृतीया। दोनों स्वरोंमें क्या अन्तर, फल भेदके लिए कहा कि **स्वरे विशेषः**, तृतीया समासमें (तृतीया कर्मणि सूत्रसे) **पूर्वपदप्रकृतिस्वर**। षष्ठी समासमें समासस्य सूत्रसे **अन्तोदात्त**, फलभेद। शतृका उपयोग **द्विजस्य कुर्वन्** मे **शतृ, कुर्वाणः**में शानच्। दोनोंको **"तौ सत्"** सूत्रसे सत्संज्ञक। प्राप्तषष्ठीसमासस्य **निषेधे। अत्र शङ्का–द्विजस्य** कुर्वन्में कर्मणिषष्ठी नहीं होगी, न लोकाव्ययके निषेधसे। द्विजस्य घटं कुर्वन् कहनेपर शेषषष्ठी **होगी**। अब द्विजका कुर्वन्के साथ सम्बद्धार्थ नहीं, समास नहीं, समास प्राप्त कैसे ? तब कहे कि **किङ्कर** इति **द्विजं परिचरन्**। विप्रकी सेवा करता हुआ, इससे कृधातुका सेवा अर्थ भी फलितः। अव्ययके साथ समासनिषेध। ब्राह्मणस्य **कृत्वा** प्राप्तस्य षष्ठीसमासस्य सूत्रेण निषेधात्। **ब्राह्मणसम्बन्धिनी या क्रिया तां कृत्वा**। सूत्रमें कृत् शब्दसे अव्यय ही लिया जाय, सभी कृत् नहीं। **पूर्वोत्तर**=अव्ययके पहले सन्, बादमें तव्य, पढ़नेके **साहचर्य**=सहभावसे। **तेन**=इस कारण तस्याः ऊपरि **तदुपरि** की सिद्धि हुई। यदि सभी अव्यय लिये जाते तब उपरिके साथ समास निषेध होता। आदि पदसे यत्कृतेऽरीन् निगृह्णीमः, (अदेयाः किं कृते भोगाः कुम्भकर्णत्वया विना) इति। तव्यके योगमें समासनिषेधका प्रमाण **ब्राह्मणस्य कर्तव्यं तव्यत्तव्याऽ-**

तेन तदुपरि इत्यादि **सिद्धिमिति** रक्षितः। तव्यः-ब्राह्मणस्य कर्तव्यम्। तव्यता तु भवत्येव, स्वकर्तव्यम्। स्वरे भेदः। समानाधिकरणेन, तक्षकस्य सर्पस्य। विशेषणसमासस्त्विह बहुलग्रहणान्न। गोधेनोः इत्यादिषु 'पोटायुवति-'(सू७४४) इत्यादीनां विभक्त्यन्तरे चरितार्थानां परत्वाद्बाधकः षष्ठीसमासः प्राप्तः सोऽप्यनेन वार्यते। (७०६) **क्तेन च पूजायाम्** ।२।२।१२।। 'मतिबुद्धि-' (सू३०८९) इति सूत्रेण विहितो यः क्तस्तदन्तेन षष्ठी न समस्यते। राज्ञां मतो बुद्धः पूजितो

नीयरः, कृत्यानां कर्तरिवा षष्ठी। अत्र समासे प्राप्ते सूत्रेणनिषेधे। जहाँ तव्यत्प्रत्यय होगा वहाँ **स्वस्यकर्तव्यं स्वकर्तव्यं** समास हुआ। निषेध नहीं। दोनों कर्तव्यमें स्वरका अन्तर। तव्यत् होनेपर कृदुत्तरप्रकृतिस्वर होगा, तव्यमें नहीं। समान्यविभक्तिके साथ समास निषेधका प्रमाण **तक्षकस्य सर्पस्य**। समानविभक्ति होनेसे समासका निषेध। षष्ठीसमासकेनि षेधपर भी, विशेषणं--**बहुलं सूत्रेण कर्मधारय समासो भवतु, निषेधो व्यर्थः, तदा अवदत् विशेषणसमासस्तु--अस्मिन्प्रसङ्गे न भविष्यति बहुलपठनेन।** समानविभक्ति निषेधका अन्य उदाहरण-**गोः धेनोः**। दोनोंमें षष्ठी। समानतासे-**यून. खलतेः, राज्ञः पाटलिपुत्रकस्य**, आदिमें समासका निषेध। यद्यपि **पोटायुवति युवा खलति**, में कर्मधारयसे षष्ठी समास पर होनेपर भी बाधित होगा, तब बोले, पोटायुवति इत्यादि विधियां **विभक्त्यन्तरे**=प्रथमाविभक्तिमें सावकाश सफल है, **षष्ठीसमास राज्ञः पुरुषः** में सावकाश है। किन्तु **गोधेनोः** यूनः खलतेःमें दोनों समास प्राप्त। परन्तु पोटायुवति—आदि विधियोंको परत्वात् बाधकर षष्ठी समास प्राप्तः उसका भी रुकावट सूत्रसे होता है। नीलोत्पलस्य गन्धः।

। ७०६। **क्तेन**-इस सूत्रसे पूजाशब्द मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च' सूत्रका स्मारक है, उससे विधान किया गया जो, **तदन्त**=वह हो अन्तमें उसके साथ षष्ठ्यन्त सुबन्तका समास एगार्थीभाव न हो, सम्बन्धित अर्थ रहे एकपद एकअर्थ, एकशक्ति न हो, **राज्ञां मतः राज्ञां बुद्धः, राज्ञां पूजितः** राजासे मान्य, जाना गया, पूज्यमान अर्थमें मतिबुद्धि-सूत्रसे वर्तमाने क्त, क्तस्य च वर्तमाने षष्ठी, तत्प्राप्तस्य समासस्य क्तेन च पूजाजायां सूत्रेण निषेधे। यदि ऐसा तब राजपूजितः राजमतः राजबुद्धः राजासे अर्चनीय, प्रिय, ज्ञात यहाँ समास कैसे? समाधान बोले-कि राजपूजित इत्यादिस्थलमें भूतकालिक क्तप्रत्यय है। उसके साथ तृतीयान्त **राज्ञा पूजितः** का समास। तक्रकौण्डिन्यन्यायेन

वा। राजपूजितः इत्यादौ तु भूते क्तान्तेन सह तृतीयान्तस्य समासः। (७०७) **अधिकरणवाचिना च ।२।२।१३।।** क्तेन षष्ठी न समस्यते। इदमेषामासितं शयितं गतं भुक्तं वा। (७०८) **कर्मणि च ।२।२।१४।।** 'उभयप्राप्तौ कर्मणि' (सू६२४) इति या षष्ठी सा न समस्यते। आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन। (७०९) **तृजकाभ्यां कर्तरि ।२।३।१५।।**

यद्यपि वर्तमान कालका क्त भूतकालके क्त प्रत्ययको बाधेगा। तन्न, तेनैकदिक्के अधिकारमें उपज्ञाते उच्चारणसे भूतकालका न बाधा जाना प्रमाणितः। क्योंकि उपज्ञातमें भूते क्त है वर्तमाने नहीं। कोई कारकषष्ठीका समासनिषेध कहते है। कलहं सराममहितः कृतवान्।

।७०७। **अधिकरणवाची** क्त प्रत्ययान्तके साथ षष्ठीसमास एकार्थीभाव न हो। यथा इदमेषामासितं, यह इन् लोगोंका आसन बैठनेका आधार है। **ऐषां शयितं** सोनेका आधार, जाने, खानेका आधार, **"क्तो अधिकरणे च"** सूत्रसे ध्रौव्यगति प्रत्यवसान अर्थवाचकशब्दसे आधार अर्थमें क्त, **आसितं, शयित, गतं, भुक्तं अधिकरणवाची** क्तान्त है। कर्तरि षष्ठी, समासे प्राप्ते अनेन निषेधे। **किं वृत्तं** यद्वृत्तम्। अत्र न कर्मणि क्त, वृत्तधातोः अकर्मकात् तर्हि कथं समासः, तत्र **नहि अधिकरणे क्त, किन्तु कर्तरि**।

।७०८। **कर्मणि**--कर्म अर्थमें जो षष्ठी उससे साथ एकार्थीभाव न हो। क्तेन नहीं आया। षष्ठी आयी, किन्तु कर्मणि षष्ठी स्वीकृत नहीं। **अपां स्रष्टामें** समासनिषेध। इसीसे सिद्ध होता, तब तृजकाभ्यां कर्तरि निषेध व्यर्थ होता। **उभयप्राप्तौ कर्मणिसे** जो षष्ठी, सप्तमीका उच्चारण करके हुई हो, उसके साथ एकार्थीभाव न हो। यथा **गवां दोहः** गोपाल नहीं है। उससे गायका दुहना आश्चर्य है। नियमसूत्र विधिरूपसे या निषेध रूपसे लगते है। **गवां दोहः**, उभय प्राप्तौ कर्मणि सूत्रसे कर्ममें षष्ठी, कर्तामें नहीं। **षष्ठीसमासः प्राप्तः**, तस्य कर्मणि च इति निषेधः। यदि ऐसा **शब्दानुशासनंमें** समास कैसे ? शब्दानामनुशासनंमें **कर्तृकर्मणोः** की षष्ठीं से। उभयप्राप्तौकी नहीं, अतः समास **अशिक्षितो दोग्धा दुर्दोहा गावश्च दोग्धव्यास्तदैव निर्वहति, न त्वन्यथा**। कर्ताकर्म दोनोंमें षष्ठीप्राप्त। शब्दनामनुशासनं न तु अर्थानाम्। अर्थनिवृत्तिपरक बाक्य है, कर्ताका निवारक नहीं। उभयप्राप्ति भी नहीं, नहि समास निषेधः **अतः आचार्यस्य शब्दानुशासनं** युक्तम्।

।७०९। **तृच् और अक** प्रत्यय कर्ता अर्थमें हुयें हों, तब षष्ठीके साथ

कर्त्र्थतृजकाभ्यां षष्ठ्या न समासः। अपां स्रष्टा। व्रजस्य भर्ता। ओदनस्य पाचकः। कर्तरि किम्? इक्षूणां भक्षणमिक्षुभक्षिका। पत्यर्थं भर्तृशब्दस्य तु याजकादित्वात्समासः। भूभर्ता। कथं तर्हि 'घटानांनिर्मातुस्त्रिभुवनविधातुश्चकलह' इति। शेषषष्ठ्या समास इति कैयटः।

समास नहीं होता। वृत्तिकारने कर्तामें षष्ठीका तृच् अकके साथ समासका निषेध समझा, जो अनुचितः। तृच् अकमें ही कर्ता विशेषण है। अपां स्रष्टा **जलसृष्टिकर्ता**। सृज्धातुसे कर्ता, अर्थमें तृच्, उसका कर्म अप्, उसमें कर्तृकर्मणोःसे कर्मणि षष्ठी, **अपां**, षष्ठी सूत्रेण समासे प्राप्ते, कर्तरि तृच् इति, दृष्ट्वा तृजकाभ्यामिति निषेधे। एवं **बज्रस्य भर्ता** बज्रका रक्षक भरण रक्षण कर्ता अर्थमें कृधातुसे तृच्। उसका कर्म (रक्षणफलका आधार) वज्रमें कर्मणि षष्ठी। अत्र **षष्ठीसमासे प्राप्ते, अनेन निषेधे**। एवं **ओदनस्य पाचकः** भात (चावल) पकानेवाला, पकाने अर्थमें पचधातुसे कर्तामें अक। पाककर्ता पाकक्रियाका फलाधार ओदनमें कर्मणि षष्ठी। समासे प्राप्ते तृजकाभ्यामिति निषेधे। **सूत्रमें कर्तरि क्यों** पढ़ा? इसलिए कि कर्ता अर्थमें तृच् अक हुआ हो, वहाँ समास न हो, भाव कर्ममें तृच् अक हुआ हो, वहाँ समास हो जाय, व्यभिचार न होंनेसे। कर्ता तृच्में विशेषण नहीं अकमें अवश्य है। **इक्षुदण्ड** (ईख) गन्नाका भक्षण चूसनाक्रिया ही **इक्षुभक्षिका**। गन्नेका चूसना। अत्र अक-भावे अस्ति, नतु कर्तरि समासनिषेधो न। अत्र शङ्का-**भूवः भर्ता** भूभर्तामें समास कैसे? कर्ता अर्थमें तृच् है निषेध क्यों नहीं? तब बोले—**पत्यर्थं**=पति पालक पोषक, रक्षक अर्थमें भर्तृ शब्द याजकादिगणमें पठित याजकादिभिश्चसे समास होगा। **ब्रजस्य** भर्ताका स्वामीं अर्थ नहीं वल्कि रक्षक अर्थ है। सेवक भी हो सकता है। याजकादिगणमें स्वामी अर्थमें भर्तृ शब्द स्वीकृत। यदि ऐसा तब घड़ोंका निर्माणकर्ता कुम्हारका त्रिभुवनविधाता तीनों लोककी रचना कर्ता ब्रह्माके साथ झगड़ा, यहाँ **त्रयानां भुवनानां समाहारः त्रिभुवनं तीनों लोकका** समुदाय द्विगुसमास। अकारान्त हो, ऐसा द्विगुसमास स्त्रीलिङ्ग होता है। परन्तु **पात्राद्यन्तस्य** न। त्रिभुवनस्य विधाता कहेगें तृच्के सम्बन्धमें समास कैसे? निषेध क्यों नहीं, उत्तर-यहाँ **शेषषष्ठी** है समास हुआ। निषेध तो कारकषष्ठीके साथ समासका है। यह कैयटका अनेक सूत्रों पर सम्बोधन है।

। ७१०। **कर्तरि**=कर्ता अर्थमें, **शेष**--सम्बन्ध **अर्थमें** षष्ठीका अक प्रत्य-

(७१०) **कर्तरि च** ।२।२।१६।। कर्तरि षष्ठ्या अकेन न समासः । भवतः शायिका । नेह तृजनुवर्तते । तद्योगे कर्तुरभिहितत्वेन कर्तृषष्ठ्या अभावात् । ७११ **नित्यं क्रीडाजीविकयोः** २।२।१७। एतयोरर्थयोरकेन नित्यं षष्ठी समस्यते । उद्दालकपुष्पभञ्जिका । क्रीडाविशेषस्यसंज्ञा । 'संज्ञायाम्' (सू३२८६) इति भावे ण्वुल् । जीविकायां दन्तलेखकः । तत्र क्रीडायां विकल्पे जीविकायां तृजकाभ्यां कर्तरि' (सू७००) इति निषधे प्राप्ते वचनम् । (७१२)**पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे** २।२।१। अवयविना सह पूर्वादयः समस्यन्ते, एकत्वसङ्खयाविशिष्टश्चेदवयवी ।

यान्तके साथ एकार्थीभाव ही कर्तामें षष्ठीके साथ समासका निषेध । तृजकाभ्यांसे कर्तरि आया । **भवतः शायिका** आपकी खटिया गद्दा है । कर्तामें षष्ठीप्राप्त समासका निषेध । अक–कर्ता अर्थमें नहीं अतः **तृजकाभ्यां** पूरा सूत्र आता है अक ही क्यों लिया जाय, तब कहे कि **नेह**–यहाँ पर तृच् नहीं आता, तृच कहनेपर कर्ता उक्त, उक्ते प्रथमा, होगी नहि षष्ठी । **शशभृङ्गेण कण्डूयनं न कर्तव्यम्**, इतिवत् असम्भव, कर्तामें षष्ठी नहीं । **क्रीडाजीविकयोः** तृच् नास्तीति **जयादित्यः** । **वामनः** अकि जीविकार्थे तृच् अस्ति ।

। ७११ । **नित्यंक्रीडा**–खेल, जीविका–वेतन इन दोनों अर्थोका अक प्रत्ययान्तके साथ षष्ठी समास नित्य हो । यथा–**उद्दालकः** श्लेष्मातकः **तस्य पुष्पाणि भज्यन्ते ताडयन्ते यस्यां क्रीडायां**, या **भज्जनं भञ्जिका पुष्पाणां भञ्जिका** खेल=विशेषका नाम, जिसमें फूल मारे जाते हैं जैसे–वैडमिन्टनसे चिड़िया ताडित होती है । अथवा **कठपुतली** का खेल । **पुष्पग्राम् भञ्जिका सु** । नित्यं क्रीडासे एकार्थीभावे संज्ञायां **स्त्रियां–क्तिन्**के अधिकारमें संज्ञायां सूत्रसे भावमें ण्वुल्, कर्मणि षष्ठीके साथ समास, धात्वर्थनिर्देशमें भी ण्वुल् **जीविका**, **दन्तानां लेखकः** लेखनेन जीवति । लिखधातुसे कर्तामें ण्वुल, समाससे जीविका जानी जाती है । दाँतमें लिखकर छेदकर सोना चाँदी भरना । **दन्त ग्राम्** लेखक सु । नित्यं० समासे । यद्यपि षष्ठी सूत्रसे समास सिद्ध था, **नित्यं क्रीडा** अर्थमें विकल्पसे जीविका अर्थमें तृजकाभ्यांसे निषेध प्राप्त था, अतः सूत्र सफल ।

। ७१२ । **पूर्वापर** । पूर्व अपर अधर उत्तर इन शब्दोंका **एकदेशिना**= अवयविना–अवयवीके साथ समास हो **एकाधिकरणे**=एक आधारमें अवयव अवयवी दोनों रहे तब । एकदेश–अवयव अर्थमें रुढ़ है । एकदेशो अस्यास्ति **एकदेशी**–अवयवी अधिकरणं **द्रव्यं एकत्वसंख्याविशिष्टः** । दोनों भाग एकमें

षष्ठीसमासापवादः। पूर्वं कायस्य पूर्वकायः। अपरकायः। एकदेशिना किम्? पूर्वं नाभेः कायस्य। एकाधिकरणे किम्? पूर्वश्छात्राणाम्। सर्वोऽप्येकदेशोऽह्ना समस्यते। 'संख्याविसाय'–(सू२३८) इति ज्ञाप-

---

रहें, एक आधार हो। यद्यपि **पूर्वश्चासौ कायश्च** शरीरका पूर्वभाग कर्मधारय से **पूर्वकायः** सिद्ध है, **उर्ध्वकायः** की तरह। **समुदाये हि वृत्ताः शब्दाः अवयवेष्वपि प्रवर्तन्ते।** समुदायमें जो हैं वह अवयवमें भी रहेंगे। तब बोले षष्ठी समासाऽपवादः। षष्ठी समासको बाधकर समास होता है। पूर्वं कायस्य इस विग्रहमें षष्ठी सूत्रसे यदि समास होता, तब प्रथमासे निर्दिष्ट उच्चारित षष्ठी सूत्र देखकर षष्ठ्यन्त कायका पूर्व प्रयोग होता। अतः उसकी निवृत्तिके लिए यह सूत्र। **पूर्वं कायस्य** उस वाक्यमें शरीरका आधा। **दिशि दृष्टः शब्दः दिक्शब्दः** परन्तु तस्य परमाम्रेडितं प्रमाणसे अवयव अर्थमें दिशावाची पूर्व उत्तर आदिके योगमें पञ्चमी नहीं किन्तु षष्ठी। **पूर्वअम् काय ङस्** इति अलौकिकविग्रहे **पूर्वापर सूत्रेण समासे, समासविधायकसूत्रे प्रथमानिर्दिष्टस्य पूर्वशब्दस्य** पूर्वनिपातः, परवल्लिङ्गंसे पुल्लि०। यत्र **उपसर्गापवादौ महाविभाषया विकल्प्येते तत्रापवादेन मुक्ते पुनरुत्सर्गो न प्रवर्तते।** एकदेशी समास न होनेपर षष्ठी समास भी नहीं होगा। **अपरं कायस्य अपरकायः। अपर अम् काय ङस्।** शरीरका आधा दूसरा भाग **पूर्वापर–सूत्रेण समासे समासत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां सुपो धातुप्रातिपदिकयोः सुपो लुक्। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकसंज्ञा स्वादिकार्य, अवयव** उत्तरभाग, अवयवी शरीर एक आधारमें है। उत्तरं कायस्य **उत्तरकायः**। अधरंकायस्य **अधरकायः। एकदेशिना किम्** एक ही आधारमें हो तभी समास हो, ऐसा क्यों? इसलिये कि **पूर्वंनाभेः कायस्य**। शरीरके नाभिका पूर्वभाग। यहाँ पूर्वका नाभिमें अन्वय है कायमें नहीं। **नाभेः यः पूर्वोभागः स कायस्य अवयवः**। दिशा सम्बन्धसे पञ्चमी पूर्वभागकी अवधि नाभि है। एकदेशी शरीर नहीं। अतः नाभिके साथ समास नहीं। कायेन तु स्यादेव पूर्वकायो नाभेः, पूर्वशब्दः नित्य सापेक्ष है प्रधान भी। **एकअधिकरण अर्थ क्यों** इसलिए कि जहाँ अनेक आधार हो, उनके साथ पूर्व-अपर आदिका समास न हो। यथा **पूर्वच्छात्राणां** (छात्रोंका पूर्वभाग) यहाँ अनेक छात्र आधार है। एक अधिकरण नही। **यद्यपि छात्रशब्दः समुदायपरः**, किन्तु एक-एक छात्रकी संख्या प्रकट होनेसे बहुवचन। उस समुदायका पूर्वार्ध समुदाय भले ही एक हो, छात्रोंकी संख्या बहुत है, एकत्व-

कात्। मध्याह्नः। सायाह्नः। केचित्तु सर्वोप्येकादेशः कालेन समस्यते न त्वह्नैव। ज्ञापकस्य सामान्यापेक्षत्वात्। तेन मध्यरात्रः, 'उपारताः पश्चिमरात्रगोचरात्' इत्यादि सिद्धमित्याहुः। **(७१३) अर्धं नपुंसकम्**

विशिष्ट नहीं, अतः समास नहीं। अत्र शङ्का–**अह्नो मध्यं** दिनका दोपहर **मध्याह्नः**। यद्यपि दिनका अवयव मध्य है, परन्त पूर्वपरअवर अधरमें नहीं आता, समास कैसे ? मूलमें बोले–**सर्वोऽपि**=सभी एकदेश अवयव अंशका अह्न के साथ समास होता है। **पूर्वादिभिन्नोऽपि**। प्रमाण देते है **संख्याविसाय** में सायके साथ समास ज्ञापन करता है कि **सर्वोपि एकदेशी अह्ना समस्यते**। अन्यथा **अह्नस्य सायः** पूर्वत्वं न स्यात्। अह्नः सायः इति विग्रहे यदा समासो न स्यात्तदा 'षष्ठी' सूत्रेण समासः पूर्वनिपातश्च। साय–अहन् दशायां अहन् आदेशो न स्यात्। अतः ज्ञापकम् उचितमेव। सभी एकदेश कालका अह्नके साथ समास होता है। **अह्नोमध्यं** दिनका दोंपहर एकदेश अंश अवयव है। **अह्न ङस् मध्य सु सर्वोऽपि एकदेशो अह्ना समस्यते** आदिः। समासका फल राजाहः सखिभ्यःसे टच्। मध्यका पूर्वप्रयोग 'अह्नो अह्नः' आदेशे प्रातिपदिकसंज्ञा आदिकार्य। अह्नः सायः सायाह्नः दिनका (सूर्यास्तका) एकदेश अवयव है उसका **अहन् ङस् साय सु**। समासे, टच् अह्न आदेशे पूर्ववत्। दिनके केचित्–कोई आचार्य कहते हैं सभी एकदेश कालके साथ एकार्थीभाव होते हैं। कहते हैं कि संख्याविसाय सूत्रमें अह्न शब्द ही पढ़ा गया। अतिरिक्त रात्रिके साथ समास नहीं बनेगा। अतः विसायमें समास ज्ञापन देगा कि, नियम **सामान्यापेक्ष** है। सभी कालवाची शब्दके साथ समासका सूचक है। अह्न शब्दके साथ सायका एकदेशी समास सिद्ध करके सायशब्दसे अह्न आदेश स्वीकृत है। जितने अवयव–एकदेश-कालवाचक है सभीके साथ समास बोधित है। वह ज्ञापन केवल सायके साथ समासका ही नहीं। येन=नियमस्वीकार करने पर **रात्रेर्मध्यं मध्यरात्रः** आधीरात रात्रिके साथ समास सफल, अहः सर्वैकदेशसे अच्। **मध्यरात्रि अ**, भसंज्ञा इकार लोपे। स्वादिः। **पश्चिमरात्रः**। रात्रेः पश्चिमं (भोरमें) एकार्थीभाव समासे अच् आदि पूर्ववत्।

।७१३। **अर्द्धं** में लिङ्गसे नपुंसक अर्थ हो जाता। पुनः सूत्रका नपुंसक ग्रहण नित्य नपुंसकार्थ। क्योंकि अर्द्धशब्द **वा पुंसि अर्द्धः अर्धं समेंऽसके इति कोशात्पुलिङ्ग** भी है। सम और अर्थ अंशमें नपुंसक, समान्य अंशमें पुलिङ्ग है। अतः वृत्तिमें बोले **समांश**=समान भाग अर्थमें वर्तमान नित्य नपुंसक हो

२।२।२।। समांशवाच्यर्धकशब्दो नित्यं क्लीबे, स प्राग्वत्। * 'एकविभक्तावषष्ठ्यन्तवचनम्'। एकदेशिसमासविषयकोऽयमुपसर्जनसंज्ञानिषेधः। तेन 'पञ्चखट्वी' इत्यादि सिध्यति। अर्धं पिपल्या अर्धपिप्पली। 'क्लीबे' किम्? ग्रामार्धः। द्रव्यैक्य एव। अर्धं पिप्पलीनाम्।

तब **प्राग्वत्**=अवयव वाचीके साथ एकार्थीभाव होता है। अर्धशब्द पूर्वसूत्रमें नहीं पढ़ा गया, अतः समासके लिए यह सूत्र। **एकविभक्तौ**=नियतविभक्ति रहनेपर जिसको उपसर्जनसंज्ञा कही गयी हो, **अषष्ठ्यन्तवचनं**=षष्ठीविभक्ति अन्तमें हो तब उपसर्जनसंज्ञा न कहें। **अर्धंपिप्पल्या, अर्धेनपिप्पल्याः अर्धाय अर्धात् अर्धस्य अर्धे** पिप्ल्याः। कर्मसे अर्धपिप्पली अर्धं पिप्पल्याः ल्यैः ल्या अर्धपिप्पल्याम्। इनमें पिप्पलीशब्द निश्चितविभक्ति वाला है उसको एकविभक्तिचापूर्वनिपाते से **उपसर्जनसंज्ञा** होगी। गोस्त्रियोः उपसर्जनसे ह्रस्व होगा। तब वार्तिकका स्मरण किये, **नियतविभक्तिमें षष्ठ्यन्त मिले तब उपसर्जनसंज्ञा न** हो, ताकि ह्रस्व न हो। यदि ऐसा तब **पञ्चानां खट्वानां समाहारः** समाहारं समाहारेण इत्यादिविग्रह करनेपर खट्वा शब्द निश्चित विभक्तिवाला है। उपसर्जनसंज्ञा नहीं होगी, षष्ठ्यन्त होनेसे। तब गोस्त्रियोः से ह्रस्व नहीं होगा, द्विगोःसे ङीप् नहीं, पञ्चखट्वी नहीं बनेगा। अतः बोले **एकदेशी** एक—समानधर्मसे समासका विषय हो, वहां उपसर्जनसंज्ञा का निषेध है। खट्वानांमें बहुवचन पढ़नेसे अनेक आधार बनेगा, एकदेशी-समासका विषय नहीं होगा। तेन=पञ्चखट्वीके उपसर्जनसंज्ञा होगी, अनेक आधार होनेसे। ह्रस्व, अदन्तसे ङीप् भी होगा। **पञ्चखट्वी सिद्ध। अपथं नपुंसकंके** भाष्यसे उदाहरण है। **अर्धपिप्पली अर्धंपिप्पल्याः पिप्पली ङस अर्धंसु**। अर्धं नपुंसकसमासे। समाससूत्रे प्रथमानिर्दिष्टः अर्धशब्दः उपसर्जनसंज्ञकः, तस्य फलं पूर्वनिपातः। नियतविभक्ति होनेसे **एकविभक्तौ अषष्ठ्यन्तवचनं** वार्तिकसे उपसर्जन नहीं, ह्रस्व नहीं। **क्लीबेकि**, नपुंसक अर्धके साथ समास हो, ऐसा क्यों कहा? **ग्रामस्य अर्धः ग्रामार्धः**, नगरस्य अर्धः **नगरार्धः** यहाँ अर्धशब्द पुलिङ्ग है। षष्ठी सूत्रसे ही समास हुआ। षष्ठ्यन्तका **पूर्वनिपात**= **द्रव्यैक्यएव**—जहाँ द्रव्य आधार एक रहेगा, एकाधिकरण होगा, एकवचनमें अर्धं नपुंसकं समास करेगा, अनेक वचनके साथ समास नहीं होगा। **अर्धंपिप्पलीनां** अनेक पीपरि अनेक द्रव्य हैं। एकपीपरि एक आधार न होनेसे यदि समास होता, **अर्धंपिप्पली** सूत्र होता, यह सूत्र परवल्लिङ्गंके भाष्यमें खण्डित है।

(७१४) **द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्याण्यन्यतरस्याम्** २।२।३।। एतान्येकदेशिना सह प्राग्वद्वा। द्वितीयं भिक्षाया द्वितीयभिक्षा। 'एकदेशिना' किम्। द्वितीयं भिक्षाया भिक्षुकस्य। अन्यतरस्यांग्रहणसामर्थ्यात् 'पुरणगुण–' (सू६०५) इति निषेधं बाधित्वा पक्षे षष्ठीसमासः। भिक्षाद्वितीयम्। (७१५) **प्राप्तापन्ने च द्वितीयया** २।२।४।। पक्षे 'द्वितीया श्रित–'(सू६८६) इति समासः। प्राप्तो जीविकां प्राप्तजीविकः–जीवि

। ७१४। **द्वितीयतृतीयचतुर्थ तुर्यं**–एतानि=इन सबका एकदेश अंशः अस्ति अस्य **एकदेशीसमुदायः**। समुदायके साथ पहलेकी तरह एकार्थीभाव विकल्पसे हो। **द्वितीयं भिक्षायाः** विग्रहः। भिक्षाका आधा, **द्वितीय अम् भिक्षा सु**। इति अलौकिकविग्रहे **द्वितीयतृतीय** सूत्रेण समासे। प्रथमासे उच्चारण का पूर्वनिपात आदिः। परपदका लिङ्ग स्त्री, **द्वितीयभिक्षा। एकदेशिना किं** सूत्रमें समुदायके एक आधारके साथ समास क्यों ? **द्वितीयं भिक्षायाः भिक्षुकस्य** भिक्षाका दूसरा अंश भिखमंगेकी है। भिक्षामें अवयव षष्ठी। उसके द्वितीय भागसे सम्बन्ध और द्वितीय कर्म बनकर भिक्षुकसे सम्बन्धित कर्ममें षष्ठी नहीं, न लोकाव्ययके निषेधसे। द्वितीयका भिक्षुकके साथ समास नहीं, एकदेशी न होनेसे। भिक्षुकका दो खण्ड नहीं होता। अत्र शङ्का—**विभाषाके अधिकारसे** विकल्प सिद्ध था **अन्यतरस्यां क्यों** पढ़ा ? इसलिए कि उसके पढ़नेके सामर्थ्य से पक्षमें षष्ठी समास हो। नहीं तो षष्ठीका बाधक यह सूत्र समास जिस पक्षमें नहीं करेगा, **अपवादेन मुक्ते उत्सर्गो न प्रवर्तते**। उत्सर्गषष्ठी सूत्र नहीं लगेगा। यह परिभाषा पारे मध्ये सूत्रके वा०से ज्ञापित है। अत्र शङ्का **–पूरणगुणसुहितार्थ**–सूत्रके निषेधसे षष्ठी समास कैसे ? अन्यतरस्यां ग्रहणके सामर्थ्यसे। पक्षमें निषेधको बाधकर षष्ठीसमास भी होगा। प्रमाण–**भिक्षा द्वितीयं, द्वितीय अम् भिक्षा ङस्** समासादिः। षष्ठचन्तभिक्षाका पूर्वप्रयोग।

। ७१५। **प्राप्त और आपन्न**। ये दोनों द्वितीयान्त समर्थके साथ समस्त एकार्थीभूत हों। चकार द्वितीयासमासका संग्राहक है। अतः बोले–पक्षे द्वितीया श्रितातीत–प्राप्तापन्नसे भी समास। यथा प्राप्तो जीविकां जीवनकी सुविधा मिल गयी हो। **प्राप्त सु जीविका अम्। प्राप्तापन्ने–सूत्रेण समासादिः** पक्षमें द्वितीयाश्रितातीतसे समास। द्वितीयान्त जीविकाका पूर्वनिपात **जीविका प्राप्तः**। वस्तुतः चकार न पढ़ें। द्वितीयाश्रितातीत-सूत्रमें प्राप्त आपन्नके साथ

काप्राप्तः। आपन्नजीविकः–जीविकापन्नः। इह सूत्रे, 'द्वितीयया अ' इति छित्वा अकारोऽपि विधीयते। तेन जीविकां प्राप्ता स्त्री प्राप्तजीविका। आपन्नजीविका। (७१६) **कालाः परिमाणिना** २।२।५॥ परिच्छेद्यवाचिना सुबन्तेन सह कालाः समस्यन्ते। मासो जातस्य मासजातः। द्व्यहजातः। द्वयोरह्नोः समाहारो द्व्यहः। द्व्यहो जातस्य

समास विधान भी, निरवकाश ही है। **निरवकाशो विधिरपवादः। अत्र शङ्का जीविका प्राप्ता** जीविकाम् आपन्ना (प्तकी हुई) स्त्री विग्रहे **प्राप्तापन्नेति सूत्रेण समासे** आदिः। अकारान्त **कैसे** तब बोले-**इह सूत्रे**-इस सूत्रमें द्वितीयया अ ऐसा छित्वा-विभाग करके समासके साथ अकार अन्तादेश भी हो। ऐसे अर्थ लाभ से तेन प्राप्त आपन्नके आ-स्थाने अकार विधानसे, टाबन्तका भी समास।

।७१६। **कालाः**=पल विपल घटी प्रहर दिन मास ऋतु वर्ष आदि काल वाची शब्दोंका **परिमाणिना–परिमीयते परिच्छिद्यते येन तत्परिमाणं तदस्ति अस्मिनिति परिमाणी तेन,** तौलने नापनेवाला। वृत्ति में बोले **परिच्छेद्यवाची** सुबन्तके साथ समास-एकार्थीभाव हो। परिछेतुं **योग्यः परिछेद्यः**। जिसका समय समझाया जाय। बहुवचनसे सामान्यकाल। यथा **मासो जातस्य अस्य** (एक महीना बीत गया) वह चैत्र **मासजातः**। षष्ठीसमास प्राप्त था **जात ङस् मास सु,** परिछेद्यवाची सुबन्त जात ङस्का कालविशेष, माससु के साथ समास आदिः। अत्र शङ्का–**जातः पुरुषः** उसका तौलने वाला **हस्त बितस्ति** हाथ, वित्ता आदि परिमाणसे नापा जाता है। कालसे नहीं। **क्रियामात्रका** विभाजक काल है। भूतकाल भविष्यकाल वर्तमानकालिक क्रिया तन्न, **साक्षात्क्रियां परिच्छिन्दन्नपि कालः, तद्वारा देवदत्तं परिच्छिनत्ति। परिच्छेद्यो मासः**। एक महीनेका हो गया। इसका निर्णय समाससे जननाश्रयं देवदत्तं जननद्वारा परिच्छिनत्ति। **जननादूर्ध्वं मासो गतः**। जन्मसे एक महीना ऊपर हुआ। काल **भी** परिच्छेदक बना। यद्यपि मासो जातो यस्य बहुव्रीहि समाससे **भी मासजातः** सिद्ध था **जातिकालसुखादिभ्यः परानिष्ठा वच्या** जात शब्दका परनिपात नहीं हुआ। **द्व्यहोजातस्य यस्य स द्व्यहजातः**। दिन बीत गया ऐसा बच्चा, विवाह जन्म मृत्यु। द्व्यह सु जात ङस्। कालाः परिमाणिना सूत्रेण समासे तत्पुरुषसंज्ञा, राजाहः सखिभ्यः टच् रात्राह्नाः पुंसि। दो दिन का समाहार मिलन **द्व्यहः**। तद्धितार्थसे समास टच् पुलिङ्ग, द्व्यहो जातस्य

यस्य स इति विग्रहः। * उत्तरपदेन परिमाणिना द्विगोः सिद्धये बहूनां तत्पुरुषस्योपसंख्यानम्। द्वे अहनी जातस्य यस्य स द्व्यह्नजातः अह्नोऽह्नः (सू० ७९०) इति वक्ष्यमाणोह्नादेशः। पूर्वत्र तु 'न संख्यादेः समाहारे (सू० ७९३) इति तन्निषेधः ७१७ **सप्तमी शौण्डैः** २। १। ४०॥ सप्तम्यन्तं शौण्डादिभिः प्राग्वद्वा। अक्षेषु शौण्डोऽक्षशौण्डः।

यस्य द्वयहजातः। दो दिनका बच्चा। (वा०) **उत्तरपद परिमाणि** (जात ङस्) के साथ द्विगु समासकी सिद्धिके लिए। दिशा और संख्याका सुबन्तके साथ द्विगुसमास विधानकिया गया **बहूनाम्**=अनेकका तत्पुरुषसमास कहे। उत्तरशब्द समासके अन्तिमभागमें रूढ़ है। द्वे अह्नी जातस्य विग्रहमें तीन पदका एकसाथ वार्तिकेन समासे प्रातिपदिकसंज्ञा सुपो लुक् द्वयहन् जातः। यहाँ जातशब्द अन्तिमपद है **द्विअहन्** का तद्धितार्थद्विगुसमाससे राजाहः टच्। **अह्नो अह्नः एतेभ्यः द्वयह्नः** जातः रूप बना। द्वि अहन् द्विगु है। तत्पुरुष न होता तब अह्न आदेश भी न होता। यदि ऐसा–तब द्वयोरह्नोः समाहारो **द्वयहः**। ऐसा कैसे कहा—यहाँ अह्न आदेश क्यों नहीं। तब बोले कि–**पूर्वत्र तु द्वयहः**। जातस्थलमें "न सख्यादेः समाहारे च" सूत्रसे अह्न आदेशका निषेध हुआ।

। ७१७। **सप्तमी** अन्तमें हो उसका शौण्डादिगणमें पठित धूर्त कितव, व्याड, प्रवीण, सम्बीत, अन्तर अधि पटु पण्डित, कुशल चपल, निपुणके साथ एकार्थीभाव हो, विकल्पसे। बहुवचन उच्चारणसे, गणमें पाठसे शौण्ड भी स्वीकृत। यथा **अक्षेषु शौण्डः** जुआ पाशा विषयकखेलक्रियाकुशल। विषय-सप्तमी। अक्ष सुप् शौण्ड सु। सूत्रेण समासादिः। प्रवीण कुशल चतुर निपुण **अर्थमें** अक्षके साथ सम्बन्ध नहीं, **सामर्थ्य कैसे** ? आशक्तिरूपक्रिया समासमें घुसेगी उसके द्वारा खेलमें आसक्त लट्टू ऐसा सामर्थ्य है **अक्षशौण्डः**। यथा **दध्योदनः** दही सींचा हुआ ओदन भातके बीच सींचना क्रियाके द्वारा सामर्थ्य **गुडधानामें** गुड़से मिली हुई धनियां मिश्रणक्रियाद्वारा दोनोंका एकार्थीभाव **कारकाणां क्रियैव** (कारकोंका आपसी **सम्बन्ध** क्रियासे) **अधिशब्दो अत्र**= शौण्डादि गणमें आधेयरूपसे पढ़ा है। यथा **ईश्वरे अधीनः ईश्वराधीनः** लोकः जगत्प्रपञ्चः। संसार आधेय है ईश्वर आधार। ईश्वरे अधि इति विग्रहे अधिरीश्वरे कर्मप्रवचनीयसंज्ञा। **ईश्वर** ङि अधि। सप्तमीशौण्डैः। समासे आदिः। **अषडक्षः अधि**—उत्तरपदं दृष्टवा ख--ईन् आदेशे ईश्वराधीनः। सारा

अधिशब्दोऽत्र पठ्यते। '—अध्युत्तरपदात्— (सू० २०७६) इति खः। ईश्वराधीनः। ७१८ **सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च** २।१।४१॥ एतैः सप्तम्यन्तं प्राग्वत्। साङ्काश्यसिद्धः। आतपशुष्कः। स्थालीपक्व.। चक्रबन्धः। ७१९ **ध्वाङ्क्षेण क्षेपे** २।१।४२॥ ध्वाङ्क्षवाचिना सह सप्तम्यन्तं समस्यते निन्दायाम्। तीर्थे ध्वाङ्क्ष इव तीर्थध्वाङ्क्षः। तीर्थकाक इत्यर्थः। ७२० **कृत्यैर्ऋणे** २।१।४३॥ सप्तम्यन्तं कृत्यप्रत्ययान्तैः सह प्राग्वदावश्यके। मासे देयम् ऋणम्। ऋणग्रहणं

विश्व रामभरोसे। अधिकरणप्रधान अव्ययीभाव **अधिहरि**। अन्तः शब्दो अत्र पठ्यते अधिकरणप्रधानः। मध्येअर्थः। अवयवीमें आधारकी इच्छासे सप्तमी। यथा **वृक्षे शाखा, वने अन्तः अन्तर्वणं** 'प्रनिरन्तः शरे' णत्वम्।

।७१८। **सिद्ध**–सफल, **शुष्क**–सूखा हुआ, **पक्व**–पका हुआ, **बन्ध**–बँधा इनके साथ सप्तम्यन्तका एकार्थीभाव, एकपद हो, विकल्पसे। **सङ्काशेन** सङ्गमरमर पत्थरसे **निर्वृतं नगरं**, बना हुआ जनपद, **साङ्काश्यं**, तत्र सिद्धः उत्पन्नः ज्ञातः जातः (नगरमें पैदा हुआ, जाना गया व्यक्ति) साङ्काश्यङि सिद्ध सु समासादिः। **आतपे शुष्कः**, धूपमें सूखाया हुआ आतप ङि शुष्क सु। **स्थाल्यां पक्वः** बटलोहीमें पकाया हुआ ओदनः भात। थाली ङि पक्व सु। **चक्रेबन्धः** पहियामें बँधा हुआ। चक्र ङि बन्ध सु आदिः। ये शौण्डादिगणमें पढ़े नहीं गये। अतः अलग वार्तिक पढ़ना पड़ा।

।७१९। **ध्वाङ्क्षेण**=कौवा अर्थ वाचक शब्दके साथ सप्तम्यन्तका समास हो, निन्दा अर्थमें। क्षेपेनिन्दायां **तीर्थे ध्वाङ्क्षइव** तीर्थमें या गुरुकुलमें **काक इव य चिरं न तिष्ठति** जो एक क्षण भी न रुके, वलिके लिये दौड़ता रहे, **इतिनिन्दा**। तीर्थ ङि ध्वाक्ष सु। सूत्रेण समासादि अर्थका फल तीर्थकाक इव **तीर्थकाकः**तीर्थपुरोहितः तीर्थङि काक सु।

।७२०। **कृत्यैः** सप्तम्यन्तका **कृत्य**संज्ञक प्रत्ययान्तके साथ एकार्थीभाव एकपद, एकशक्ति हो। **ऋणे**=आवश्यके ऋणपदम्, आवश्यक अर्थस्य बोधकं **मासे देयम्** ऋणं (महीनेमें अवश्य लौटाने योग्य धन) समीपार्थे सप्तमी महीनेके भीतर भी प्रत्यर्पणीय ऋण। उसका ग्रहण **निर्धारण**=देनेके समय का निश्चय। यथा पूर्वाह्णे ज्ञेयम्। दिनके पहले प्रहरमें गाने योग्य सामवेद या भैरवीराग। पूर्वाह्ण ङि ज्ञेय सु समासादिः। 'तत्पुरुषेकृति-' सूत्रेण अलुक्। गातुं योग्यं ज्ञेयं गाधातुसे यत् कृत्य है। **पूर्वाह्णेदातव्या भिक्षा**, कृत्यसंज्ञक

नियोगोपलक्षणार्थम्। पूर्वाह्णेगेयं साम। ७२१ **संज्ञायाम् २।१।४४॥** सप्तम्यन्तं सुपा प्राग्वत्संज्ञायाम्। वाक्येन संज्ञानवगमान्नित्यसमासोऽयम्। अरण्येतिलकाः। वनेकसेरुकाः। 'हलदन्तात्सप्तम्याः (सू० ९६६) इत्यलुक्। ७२२ **क्तेनाहोरात्रावयवाः २।१।४५॥** अह्नो रात्रेश्चावयवाः सप्तम्यन्ताः क्तान्तेन सह प्राग्वत्। पूर्वाह्णकृतम् अपररात्रकृतम्। अवयवग्रहणं किम्। अह्नि दृष्टम। ७२३ **तत्र २।१।४६॥** 'तत्र' इत्येतत्सप्तम्यन्तं क्तान्तेन सह प्राग्वत्। तत्रभुक्तम्। ७२४ **क्षेपे २।२।४७॥** सप्तम्यन्तं क्तान्तेन प्राग्व-

---

न होनेसे समास नहीं।

।७२१ **संज्ञायां** सप्तम्यन्तका समर्थसुबन्तके साथ समास हो संज्ञा अर्थमें। **वाक्यसे** संज्ञा (किसीका नाम) **अनवगमात्**=ज्ञान सिद्ध न होनेसे नित्य समास है। अतः **पुरुषेषूत्तमः** स्वपदविग्रह असङ्गत है। **अरण्ये तिलकाः, वने कसेरुकाः** किसी का नाम है। संज्ञायांसे समास, हलदन्तात्से सप्तमीका अलुक्। ७२२। **क्तेन,** अह्न दिन और रातका **अवयव** कोई एक अंश सप्तम्यन्त हो, उसका क्तप्रत्ययान्तके साथ एकार्थीभाव समास न हो। दिनके अवयवका उदाहरण—**पूर्वाह्ण कृतं** दिनके पहले पहरमें क्रियाकार्य। प्रहर दिनका अवयव है, पूर्वाह्णङि कृत सु। क्तेन अहोरात्रा-इति समासादिः। रातके अवयवका उदाहरण—**अपररात्रे कृतं** रातके दूसरे भागमें (जो अवयव है) किया कार्य, अपररात्र ङि कृतसु समासादिः। दिन या रातका कोई अङ्गके साथ ही समास हो ऐसा क्यों? **अवयव ग्रहण क्यों? अह्नि दृष्टं,** दिनमें देखा, किस प्रहर या घंटेमें देखा निचश्य नहीं, अवयव नहीं, तब समास भी नहीं।

।७२३। **तत्र**–इस सप्तम्यन्तका क्तप्रत्ययान्तके साथ समास हो। सप्तमी क्तेन आये, तत्रशब्द लिया जायगा। तस्मिन् अर्थ नहीं। **तत्रभुक्तं,** भुजसे क्त (भोजन किया) समास हुआ, उसका प्रयोजन समासस्वर है। तत्रभुक्तस्य इदं **तात्रभुक्तं,** समास, अण् आदिवृद्धि भी प्रयोजन है। ७२४। क्षेपे आक्षेप निन्दा अव्यवस्थितचित्त जान पड़ता हो, तब सप्तम्यन्तका **क्तान्तके** साथ एकार्थ हो। **अवतप्ते नकुलस्थितं त एतत्,** हे देवदत्त ते **तव एतत् अवस्थानं** तुम्हारी यह दशा, **अवतप्त**=अव्यवस्थित प्रदेशमें यथा नकुलाः न चिरं तिष्ठन्ति (नेवला देर तक स्थिर नहीं रहते, उसी तरह एक कार्य आरम्भ कहते हो, उसको पूरा किए बिना इधर-उधर दौड़ते रहते हो, चंचलचित्तसे निन्दा जाने,

न्निन्दायाम्। 'अवतप्तेनकुलस्थितं त एतत्। ७२५ **पात्रेसमितादयश्च** । २ । १ । ४८ ॥ एते निपात्यन्ते क्षेपे। पात्रेसमिताः। भोजनसमये एव सङ्गताः, न तु कार्ये। गेहेशूरः। गेहेनर्दी। आकृतिगणोऽयम्। चकारोऽवधारणार्थः। तेनैषां समासान्तरे घटकतया प्रवेशो न। परमाः पात्रेसमिताः। ७२६ **पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन** २ । १ । ४९ ॥ 'विशेषणं विशेष्येण- (सू ७३६)

स्थितं=भावमें क्त। **नकुलेन** स्थितं, नेवलेकी दशा कर्तृकरणे कृताबहुलंसे समास (**कृद्ग्रहणे गतिकारक पूर्वस्यापि ग्रहणम्**) इस परिभाषासे जहाँ कृदन्त स्थितशब्द लिया जायगा वहाँ कारकके साथ नकुलस्थित भी क्तान्तमान्य। अवतप्त ङि नकुलस्थित सु इतिविग्रहे। **क्षेपे**-निन्दाअर्थे समासे। तत्पुरुषे कृतिसे अलुक्।

। ७२५। **पात्रे समितादयः** कार्यकाल पक्ष अर्थ, समितादिगणमें पठितके साथ सप्तम्यन्तका समासादिकार्य निपातनसे। सूत्रमें उच्चारित शब्द सिद्धिकी प्रक्रिया अनुमानसे मान्य। निन्दा अर्थमें समास। **पात्रेसमिताः**। इण गतौ, संपूर्वक गत्यर्थाकर्मकसे कर्तामें क्त। पात्र ङि समित जस्। सूत्रेण समासादिः भोजनका पात्र परोसे जानेपर ही खानेके लिए जुटते हैं भोजननिर्माण कार्यमें नहीं। यह निन्दा समासार्थ है। निपातनसे सप्तमीका लुक् नहीं। **गेहेशूरः** घरमें वीर बनते हैं। **गृहे प्रकटशौर्यः, न तु युद्धे**। गेह ङि शूर सु। निन्दासमासार्थ। **नर्द-शब्दे** सुप्यजातौ णिनिः **नर्दति, गर्जति**। गेह ङि नर्दिन् सु समासे निपातनसे विभक्ति लुक् नहीं। **गेहएव गर्जति** घरमें ही दहाड़ता है न युद्धादौ समितादिगण आकृत्या स्वरूपेण गण्यते साधनिका अनुमीयते शब्ददर्शनसे समासादिकार्य समझें। सूत्रमें चकार पढ़ा—उसका अवधारण निन्दामें निश्चयकरण अर्थ। **एते यथा गणे पठिता। तथैव सिद्ध्यन्ति** इसका फल क्या है बोले—तेन अवधारण अर्थसे **येषां**=गणमें पढ़े शब्दोंका **समासान्तरे**=अन्य समासमें घटकतया=ग्रहण किये जानेसे प्रवेश होता। यथा **परमाश्च ते पात्रेसमिताश्च** वाक्य ही रहता है न समासः। सन्महत आदिसे अन्य समास भी नहीं होते।

। ७२६। **पूर्वकाल**—सुपा अनु०। पूर्वः कालो यस्य स अर्थनिर्देश। **पूर्वकालवृत्ति**=अर्थका ग्रहण, एक **सर्वजरत्पुराणनव केवल** छः शब्द अपने स्वरूपमें है, मिलकर सात सुबन्तका समानाधिकरण सुबन्तके साथ एकार्थ एकपद हों तत्पुरुष मान्य। **समानमेकमधिकरणं** वाच्यं यस्य तत्। एक अर्थमें रहनाभाव है। इस सूत्र की आवश्यकता विशेषणंविशेष्येण बहुलंसे पूर्ण होती, यह सूत्र पूर्व निपातके

इति सिद्ध पूर्वनिपातनियमार्थं सूत्रम्। एकशब्दस्य 'दिक्सङ्ख्ये संज्ञायाम् (सू ७२७) इति नियमबाधनार्थञ्च। पूर्वं स्नातः पश्चादनुलिप्तः स्नातानुलिप्तः। एकनाथः। सर्वयाज्ञिकाः। जरन्नैयायिकाः पुराणमीमांसकाः। नवपाठकाः। केवलवैयाकरणाः। **७२७ दिक्सङ्ख्ये संज्ञायाम् २।१।५०॥** 'समानाधिकरणेन इत्यापादपरिस-

---

लिये है जो कार्य पूर्वकालमें है। उसीका पूर्व निपात हो। **पूर्वं स्नातः पश्चात् अनुलिप्तः** पहले नहाया पीछे मालिस किया, पूर्वकालमें वृत्ति स्नान है। उसका पूर्वनिपातन सूत्रका प्रयोजन। स्नात सु अनुलिप्त सु। पूर्वकालैक-सूत्रेण समानविभक्ति दृष्ट्वा समासे। स्नातशब्दस्य पूर्वनिपातः। एकशब्दके साथ समासका प्रयोजन, पूर्वसमासके साथ **दिक्संख्ये–दिशा** और **संख्यावाची** शब्दके साथ संज्ञामें ही समासका नियम बाधनेके लिए भी सूत्र है। विशेषण समास बाधके विरोधमें भी एकका ग्रहण। स्नान और अनुलेपनका पूर्वपर भाव समाससे निकलता है। अर्थात्पूर्वकाल परकालके साथ एकार्थीभाव हो। **एकश्चासौ नाथश्च एकनाथः**, अकेलास्वामी। एक सु नाथ सु समासादिः। **सर्वयाज्ञिकाः**। **यज्ञमधीयते** अधिकारपूर्बकं ज्ञानंकुर्वन्ति, विदन्ति वा **याज्ञिकाः**। यज्ञके विषयमें पूर्णअध्ययनकर्ता। **क्रतूक्थादि–ठक्**। **सर्वे च ते याज्ञिकाश्च** सभी यज्ञज्ञानकर्ता। सर्व जस् याज्ञिक जस् पूर्वकालैकसर्व—सूत्रसे समानविभक्ति वालोंका एकार्थीभावसमासे। **न्यायमधीयते** विदन्ति वा (न्यायशास्त्र पढ़ते या जानते है) ते **नैयायिकाः**, **जरन्तश्च ते नैयायिकाश्च**, जीर्यते भूतकाले अर्थे अतृन्। जीर्णवृद्ध नैयायिक। जरत् जस् नैयायिक जस्। **मीमांसामधीयते** क्रमादिभ्यो वुन् **मीमांसकाः**। **पुराणाश्च ते मीमांसकाश्च** (पुराने मीमाँसा पढ़ने वाले) समासादिः। पाठयन्तीति पाठकाः **नवाश्च ते पाठकाश्च** नूतन अध्यापक। पुराणके साहचर्यसे नवका नूतन अर्थ, संख्या नहीं। व्याकरणमधीयते शब्दानुशासनके साधनको पढ़ें, जाने, **वैयाकरणाः तदधीते तद्वेद अण्**, न य्वाभ्यांऐच् आगम। **केवलाश्च ते वैयाकरणाः** जस विभक्तिके समानतामें समास। **एकस्या शौक्ल्यं** एककी श्वेतिमा, समानाधिकरण।

।७२७। **दिक् संख्ये**=दिशावाची और संख्यावाची शब्दका समानविभक्तिवाले सुबन्तके साथ एकार्थ, एकपद, एकशक्ति हो, स तत्पुरुषः। **समानाधिकरण** समानाधार समानविभक्तिका अधिकार **पादपरिसमाप्ते**=दूसरे अध्यायके प्रथमपादपरिसमाप्तेः=दूसरे अध्यायके बीच जितने समास हैं समानविभक्तिके

माप्तेरधिकारः। संज्ञामेवेति नियमार्थं सूत्रम्। पूर्वेषुकामशमी। सप्तर्षयः। नेह, उत्तराः वृक्षाः। पञ्चब्राह्मणाः। ७२८ **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च २।१।५१॥** तद्धितार्थे विषये उत्तरपदे च परतः समाहारे च वाच्ये दिक्सङ्ख्ये प्राग्वत्। पूर्वस्यां शालायां भवः

रहते होंगे। अत्र प्रश्नः–**विशेषणं विशेष्येण** बहुलंसे समास होता ही, इदं सूत्रं किमर्थम्, उत्तर–**तत्पुरुषे संज्ञायामेव, दिक्संख्ये समस्येते।** तत्पुरुष समासमें दिशा और संख्यावाची शब्दके साथ सभी समास हो, जब संज्ञा (किसीका नाम) अर्थ निकलता हो। इस नियमका फल **पञ्चानां गवां** समाहारः **पञ्चगवम्।** अथवा पञ्च गावो धनं यस्य **पञ्चगु**:की सिद्धि होती है। क्योंकि किसी का नाम, समुदाय या व्यक्ति है। **पूर्वसूत्र**–पूर्वमासः पूर्वसमुद्रःमें संज्ञा नहीं। परन्तु देशकालवाचक मानकर समासः भवत्येव। अत्रशङ्का--**त्रिलोकनाथः** तीनोंलोका स्वामी। **पितृसद्मगोचरः** (पिताके घर देखा गया) **त्रिलोकश्चासौ नाथश्च** त्रिलोकसंज्ञा नहीं। यदि **त्रयाणां लोकानां समाहारः** तीन लोकका समूह समासार्थ करें तब द्विगोःसे ङीप् होगा। अकारान्त उत्तरपद द्विगु स्त्रीलिङ्ग हैं। यदि पात्रादिकी कल्पना करें, तब **त्रिलोकी गणना पराः** आदि नहीं बनेगें। अतः लोकका समुदाय अर्थ। **त्रि अवयवो लोकः त्रिलोकः** मध्यम पदलोपि समासः। शाकपार्थिवादिः उत्तरपदलोपे। एवं षोडश संख्याकाः पदार्था **षोडशपदार्थाः** मध्यमपदलोप। **पूर्वश्चासौ ईषुकामशमीच** किसी देशका नाम है। **पूर्वसु ईषुकामशमीसु** संज्ञा हैं। समासे। **सप्त च ते ऋषयः** मरीचि अत्रि भृगु आदयः **सप्तर्षयः** सात ऋषियोंका नाम संज्ञा। सप्तन् जस् ऋषि जस्। आदिः **नेह**=इह न, यत्र न संज्ञा, तत्र समासो न **उत्तराःवृक्षाः** उत्तरदिशाके पेड़। यह संज्ञा नहीं। **पञ्चब्राह्मणाः** किसीकी संज्ञा नहीं। समास नहीं।

।७२८। **तद्धित** अर्थके विषयमें तथा उत्तरपदपरे रहते और समाहार समुदाय अर्थ खुलता हो, दिशा और संख्या वाचक शब्दके साथ समानाधिकरण समानविभक्तिवाले सुबन्तके साथ समास हो। विषय सप्तमी और परसप्तमी दर्शनसे **एकापि सप्तमी विषयभेदाद्भिद्यते।** तद्धितार्थ अंशमें **विषय,** उत्तरपद, **समीप**में पर सप्तमी। समाहार अंशमें **आधार** सप्तमी। पूर्वसूत्रसे दिक्संख्ये आया। असंज्ञार्थ सूत्र, तद्धित अर्थके विषयमें दिशाके साथ समास-**पूर्वस्यां शालायां भवः** पूर्वदिशाके भवनमें हुआ बालक **पौर्वशाल।** पूर्वा ङि शाला

पौर्वशालः। समासेकृते 'दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः, (सू १३२८) इति ञः।* सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः,। आपरशालः पूर्वाशाला प्रिया यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहौ कृते प्रियाशब्दे उत्तरपदे पूर्वयोस्तत्पुरुषः। तेन शालाशब्दे आकार उदात्तः। पूर्वशालाप्रियः। दिक्षु समाहारो नास्त्यनभिधानात्। सङ्ख्यायास्तद्धितार्थें, षण्णां मातृणा-

ङि इत्यलौकिकविग्रहे **तद्धितार्थोत्तर**--सूत्रेण समासे समासत्वात्प्रादिपदिकसंज्ञायां सुपोधातुप्रातिपदिकयोः विभक्तिलुक्। पूर्वशाला इति दशायां, समास करनेके बाद दिक्पूर्वपदात् असंज्ञायां ञः। दिशावाचीशब्द पूर्वमें हो तब संज्ञा अर्थमें ञ होता है। यस्येति च आकारलोपे शालामें 'आ' का लोप आदिवृद्धि है। **पौर्वशालः** (वा०) **सर्वनाम**का **वृत्तिमात्र** (समास और तद्धित दोनों वृत्ति है) का पूर्ण अर्थ, पूरे तद्धित, पूरे समासमें सर्वनामको पुलिङ्ग हो। यदि तद्धित परे दिशा, संख्याका समास कहें तव **अन्योन्याश्रय** होगा कि तद्धित आनेपर समास हो, कि समास होनेपर तद्धित हो। **अपरस्यां शाशायांभवः** दूसरे भवनमें पैदा हुआ। **आपरशालः** अपरा ङि शाला ङि समासादिः ञः, आलोपः पुलिङ्गः पूर्ववत्। उत्तरपदपरे रहते दिशावाची तत्पुरुष समासका उदाहरण--तीनपदकी बहुव्रीहिमें **पूर्वाशाला प्रिया यस्य** पूर्वदिशाका सदन प्रिय हो जिसे, वह व्यक्ति **पूर्वशालाप्रियः**। बहुव्रीहि समास करनेके बाद प्रिया शब्द परे रहते पूर्वाशालाका पूर्वयोः तत्पुरुषसमासे, तद्धितार्थोत्तरपदसूत्रेण। अत्र शङ्का--बहुव्रीहिसमास करनेपर सुप्का लुक् हुआ। तब कहा कि **अवान्तर**= बहुव्रीहिसमासके भीतर तत्पुरुषसमासका अन्तोदात्त होना ('ला' का आ उदात्त) फल, यदि भीतरी तत्पुरुष न होता पूर्वपदप्रकृतिस्वरसे आदि उदात्त हो जाता। तद्धित और उत्तरपदका दिशाके साथ समाहारका उदाहरण क्यों नहीं दिये--तब बोले दिक्षु--दिशाके साथ समाहार समुदाय समासार्थ होता ही नहीं, **अनभिधानात्**=ऐसे समासकी शास्त्रमें व्यवस्था नहीं। संख्याके साथ तद्धित विषयमें समासका प्रमाण छः माताओंका अपत्य-सन्तान **षाण्मातुरः कार्तिकेयः** विग्रहे तद्धितार्थोत्तरपद--समासे कृते **मातुरुत्संख्यासम्भद्रपूर्वायाः** अण्। ऋ स्थाने औदिवृद्धिः। उत्तरपद परे संख्याका उदाहरण--**पञ्चगावो धनं यस्य**, पाँच गायें सम्पत्ति हों जिनकी वह व्यक्ति **पञ्चगवधनः**। तीन पदकी बहुव्रीहि, अन्य अर्थप्रधान समास होनेपर **अवान्तर**=बहुव्रीहिसमासके भीदर तत्पुरुषसमास विकल्पसे प्राप्त हो, तब वार्तिक बोले--

मपत्यं षाण्मातुरः। पञ्च गावो धनं यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहाववान्तरतत्पुरुषत्त्य विकल्पे प्राप्ते * द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम्' ७२९ **गोरतद्धितलुकि** ।५।४।९२।। गोऽन्तात्तत्पुरुषाट्टच्स्यात्समासान्तो न तद्धितलुकि। पञ्चगवधनः। पञ्चानां गवां समाहारः। ७३० **संख्यापूर्वो द्विगुः** ।२।१।५२।। 'तद्धितार्थ–' (सू ७२८) इत्यत्रोक्तस्त्रिविधः संख्यापूर्वो द्विगुः स्यात्। ७३१ **द्विगुरेकवचनम्** ।२।४।१।। द्विग्वर्थः समाहार एकवत्स्यात्। 'स नपुंसकम्' (सू ८२१) इति

द्वन्द्व और **तत्पुरुषसमास** उत्तर पदपरे रहते नित्य समझें। महाविभाषाके अधिकारमें विकल्पका बाधक है, नित्य समास हुआ।

। ७२९। **गो: अतद्धित लुकि। तत्पुरुषस्याङ्गुलेः** सूत्र तत्पुरुष आया, पञ्चमीमें बदला। **गोन्तात्**=गो अन्तमें हो ऐसा तत्पुरुष **पञ्चगो** से टच् हो वह **समासान्त**=समासके अन्तमें मान्य, तद्धितका लुक् न हुआ हो तब। **अतद्धित लुकि क्यों** पढ़ा? **पञ्चभिः गोभिः क्रीतः पञ्चगुः**। पाँच गायोंसे खरीदा हुआ यहाँ तद्धित प्रत्यय का अध्यर्ध–से लुक् है न टच्, स्वादिकार्यं। **पञ्चगवधनः**। समुदाय अर्थवाचकसमासका उदाहरण–**पञ्चानां गवां समाहारः पञ्चगवं**, पाँच गायोंका झुण्ड। पञ्चन् आम् गो आम्, इति दशायां तद्धितार्थोत्तर पदसमाहारे च, इति समासे आदिः। समास करने पर गोः अतद्धितलुकिसे टच् अ, गो अ, ओ स्थाने अवादेशे पञ्चगव–एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकसंज्ञा पञ्चगव सु द्विगुसंज्ञा होने पर कार्य हो, अतः संज्ञा सूत्र··· ।७३०।
सङ्ख्या पूर्वः अवयवो यस्य सङ्ख्या पहले हो और तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च सूत्रमें कहा हुआ तीन अंश तद्धितार्थ, उत्तरपद, समाहार ये तीनों समासके पूर्व में संख्या हो, तब समुदायको द्विगुसंज्ञा हो जाय। जैसे–**पञ्चगव** में समाहार मानकर समास हुआ, संख्या भी पूर्वमें है द्विगुसंज्ञा हो गयी उसका फल—

। ७३१। **द्विगु** अर्थ यदि समाहार हो तब, एकवचन हो जाय। **सनपुंसकं** वह एकवचन नपुंसकलिङ्ग भी हो, समाहारमें द्विगु और द्वन्द्व नपुंसक होते है। **तद्धितार्थे तु**–पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः। अत्र द्विगुसंज्ञा उसका फल संस्कृतं भक्षासे हुआ अण्का द्विगोर्लुक्। उत्तरपदपरे द्विगुसंज्ञाका फल **पञ्चनावप्रियः**। नावो द्विगोःसे समासान्तः टच्। द्विगुरेकवचनं सूत्रमें **समाहारग्रहणं कर्तव्यं**, वार्तिकसे समाहार आया। वक्ति इति वचनः बहुलसे कर्तरि ल्युट्। सामान्ये नपुंसकं यदि **समाह्रियते संक्षेपीक्रियते यः स समाहारः** कर्ममें घञ्

नपुंसकत्वम् । पञ्चगवम् । ७३२ । **कुत्सितानि कुत्सितैः २।१।५३॥** कुत्स्यमानानि कुत्सनैः सह प्राग्वत् । वैयाकरणखसूचिः । मीमांसकदुर्दुरूटः । ७३३ **पापाणके कुत्सितैः २।१।५४॥** पूर्वसूत्रापवादः । पापनापितः । अणककुलालः । ७३४ **उपमानानि सामान्यवचनैः २।१।**

तब समाहृतवस्तुगत एकद्विबहुसंख्या भी हो सकती है । तब बोले **द्विग्वर्थः समाहारः एकवत्** । कोई तो समुदायके एक होनेपर भी अवयव संख्या उद्भूत हो तब बहुवचन रोकनेके लिए सूत्र । इति नपुंसकैकवचने **पञ्चगवम्** ।

। ७३२ । **कुत्सितानि** निन्दिनानि (वर्तमानकालमें क्त व्याख्यानसे) जो निन्दनीय है) अशिष्टाचारी, उनके शब्दोंका कुत्सनैः (करणे ल्युट्) निन्दितकर्म के साथ समानविभक्ति रहनेपर एकार्थ हो, वह तत्पुरुष मान्य । बहुवचन अर्थ का सूचक, यथा **वैयाकरणश्चासौ खसूचिश्च,** व्याकरणमधीयते पढ़े,जाने । खे–आकाशे सूचयति उपेक्षां करोति । जिससे साधनिकाके विषयमें पूछा गया प्रश्न की (**विस्मारयितुं आकाशं पश्यति**) उपेक्षाके लिए आकाश देखता है दिखाता है, यह निन्द्यकर्म खसूचन निन्दा हेतु । अभ्यासकी न्यूनता (कमी) कुत्सित है । व्याकरणका अध्ययन निन्द्य नहीं । अपितु वेदवेदाङ्ग होनेसे प्रशस्त है । अस्पष्ट ज्ञान, निष्फलश्रम कुत्सा है । वैयाकरणखसूचिः आदिः । **मीमांसकश्चासौ दुर्दुरूटश्च** मीमांसामधीयते मीमांसकाः । दुलउत्क्षेपे । गलतज्ञानसे कुतर्क, दुराक्षेपके अनुकूलक्रिया । दुर्पूर्वक दुलधातुंसे उणादिः कूट् प्रत्ययः (बहुल) **अन्यत्रापि णेर्लुक्** । णि का लुक् । रल एक हैं, ल को र हुआ प्रधानके पूर्वनिपातके लिए पूर्वसूत्र है । मीमांसक सु दुर्दुरूटसु समासादिः । शब्दसे कुत्सानिन्दा निकलनेपर **नैयायिको दुराचारः** ।

। ७३३ । **पाप अणक** शब्द निन्दितके साथ एकार्थ हों, तत्पुरुषमान्य । इस सूत्रका कार्य विशेषणं विशेष्येण बहुलंसे सिद्ध होता, इदं सूत्रं किमर्थं, पर्वसूत्रको बाधनेके लिए । पूर्वसूत्रसे परनिपात होता, पूर्वनिपातके लिये यह सूत्र । यथा **पापनापितः** पापम् अस्य अस्ति **अर्शादिः अच् पापः** । पापकरनेवाला **स चासौ नापितश्च** पापी केशकर्तक । पापका पूर्वनिपात समासकी विशेषता । पापसु नापितसु । **अणकश्चासौ कुलालश्च** कुरूप–कूबड़वाला कुम्हार **कुत्सितो अवद्य खेट गर्ह्या अणकाः समा, अमरः** । पापमें, पापधर्म, अणकेमें कुरुपता, निन्दाका हेतु । अणक सु कुलाल सु । कुत्सितानि–सूत्रेण समासादिः । ७३४ । **उपमानानि उपमीयन्ते** गुणक्रियाधर्मके विषयमें **परिछिद्यन्ते** समानता बराबरी

५५ ।। घन इव श्यामो घनश्यामः। इह पूर्वपदं तत्सदृशे लाक्षणिकमिति सूचयितुं लौकिकविग्रहे इवशब्दः प्रयुज्यते । पूर्वनिपातनियमार्थं सूत्रम् । ७३५ **उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे** २।१।५६।। उपमेयं व्याघ्रादिभिः सह प्राग्वत्साधारणधर्मस्याप्रयोगे सति । विशे-

---

से अलग किया जाय निजके द्वारा, **यैस्तानि उपमानानि** (जिससे उपमा दीजिये सो कहिए उपमान) समानताका परिचायक उपपूर्वक मा धातुसे करणे ल्युटि समानताके कारण विभागका साधन । यथा **गौरिव** गौः इव **गवयः** गायकी तरह नीलगाय है । घोड़ेकी तरह नहीं । गौः करणकः सादृश्यहेतुः पुरुषपरिच्छेत्ता । गायके समान है, दूसरे पशुके समान नहीं, उपमानका सामान्यवचनके साथ समानविभक्ति रहनेपर एकपद हो, उपमान उपमेयमें **समानो धर्मः सामान्यः** साधायण धर्म उसको **उक्तवन्तः**=कहनेवाले **सामान्यवचनाः** । बहुलसे कर्तामें ल्युटि । पहले धर्मको कहकर धर्मवाले द्रव्यमें पूर्ण रहे, वह सामान्यवचनाः समानता परिचायक शब्दका साधारणधर्मविशिष्ट समानविभक्तिके साथ समास हो । यथा **घन इवश्यामः** जलभरे बादलके समान नीला, घनश्यामः **रामः कृष्णश्च** घन सु श्याम सु । उपमानानि—उमासादिः, बादल उपमान, श्याम (राम या कृष्ण) **उपमेय** है । किन्तु दोनोंका धर्मक्रिया श्यामता है । उस श्यामशब्दसे साँवला कृष्ण अर्थ निकलता है, घनशब्द श्वेतपीत बादलो से अलग करता है । अत्र शङ्का-**घन इव श्यामः** विग्रह करनेपर दोनों एक आधार में नहीं, समानाधिकरण न होनेसे समास कैसे ? इव शब्दकी अपेक्षासे परस्पर एकार्थरूप सामर्थ्य नहीं है, तब बोले—**इहपूर्वपदं**=घनपूर्वपद है, लक्षणासे उसका बादल सदृश रामअर्थ, श्याम भी राम अर्थसे है, साँवला होंनेसे समान आधार बन गया । इसकी सूचनाके लिए लौकिक विग्रहमें इवका प्रयोग किया-गया । **मृगीव चपला मृगचपलामें** पुलिङ्गभावभी सिद्ध होता हे । **घनसदृशः श्यामः** तद्भिन्नत्वे सति तद्गतधर्मवत्वं, प्रतियोगी अनुयोगी दोनों साधारणधर्मवान् **घनगतश्यामतासदृशश्यामत्ववान् रामः**, यद्यपि यह विशेषणसमास सिद्ध था, पूर्वनिपातके लिए सूत्र भाष्य । यदि पूर्वनिपातका नियम नहीं होंगा, तब उल्टा सीधा दोनों हो सकते है । जैसे **खञ्जकुब्जः कुब्जखञ्जः** ऐसा न हो अतःसूत्र—

। ७३५ । **उपमिताम्**—उपमातुं योग्यः उपमेय । समानता देने योग्य। उपमितमें भूतकाल न समझें । उपमेयको उपमानकी आकांक्षा, **चन्द्रसदृशं मुखं** मुखको चन्द्रकी आकाङ्क्षा आह्लाद गुणकी समानतासे । उपमान व्याघ्र सोम

ष्यस्य पूर्वनिपातार्थंसूत्रम् । पुरुषव्याघ्रः नृसोमः। व्याघ्रादिराकृतिगणः। सामान्याप्रयोगे किम्। पुरुषो व्याघ्र इव शूरः ७३६ **विशेषणं विशेष्येण बहुलम् २।१।५२।।** भेदकं समानाधिकरणेन भेद्येन बहुलं

हस्ति आदि अर्थ। उपमेयका (व्याघ्र) उपमानके साथ समान अधिकरण, आधार समानविभक्तिके साथ समर्थ एक अर्थवाला समास हो सामान्य–दोंनोंमें रहनेवाला धर्मका प्रयोग न हुसा हो तब तत्पुरुषमान्य। यद्यपि इस सूत्रका कार्य विशेष विशेष्येण बहुलंसे सिद्ध था, तथापि विशेष्य=उपमेयका पूर्व निपात फल। उपमान उपनेयकी उपस्थितिमें उपमान विशेषण है, उसीका पूर्व प्रयोग प्राप्त था। यथा **पुरुषो व्याघ्र इव** बाघकी तरह पुरुष है (**कैकेयी जनु वाधिनी भूखी**) दोनों में समानताका सूचक-वीरता शौर्य साधारणधर्मका प्रयोग नहीं है अतः पुरुष सु व्याघ्र सु। उपमितंसे समासादिः। **ना सोम इव** (नर चन्द्रमाकी तरह) दोनोंमें आह्लादधर्म दर्शनीयताका प्रकाशक शब्द प्रयुक्त नहीं, अतः नृ सु सोम सु समासादिः। व्याघ्र आदि आकृतिगण हैं **आकृत्या स्वरूपेण गण्यते, समासः अनुमीयते अस्मिन् आकृतिगणः**। इस प्रकारका प्रयोग मिलें तब समास मान लें। **सामान्य**=दोनोंमें रहनेवाला समानधर्मका प्रयोग न हों ऐसा क्यों कहा? इसलिएकि पुरुषो व्याघ्र इव शूरः वीरतामें बाघके समान पराक्रम दोनोंका धर्म शूरः वीरःके प्रयोगसे। राजपुरुषः सुन्दरः की तरह न हो,अतः सामान्य पढ़ा। **भाष्याब्धिः क्वाति गम्भीरः** भाष्यका अब्धि जलसमुद्रके साथ समास हुआ है। अतिगम्भीर दोनोंमें समान धर्म प्रयोग पर ही, इस कैयट प्रयोगमें मयूरव्यंसकादि मानकर समास, अथवा **भाष्यमेव अब्धि भाष्य** हो समुद्र है रूपक।

। ७३६ । **विशेषणं** विशेष्यते अनेन विशेषता बतलायी जाय जिससे, वह विशेषण (नीला कमल) नील गुणसे कमलकी विशेषता बतलायी गयी। वह श्वेत पीत कमलसे नील कमल जो अलग करती है। **इतरस्माद् व्यावर्तकं**=अन्यसे अलग करवेवाला **व्यावर्त्य**=जिसकों अन्यसे अलग किया जाय, कमलको श्वेतपीतसे अलग किया गया वही विशेष्य **विशेषितुं योग्यं विशेष्यम्, भेदकं** (भिनत्ति पृथक्करोति) भेतुं योग्यं भेद्यं विशेषणका समान आधार, विभक्तिका भेद्य= विशेष्यके साथ तत्पुरुष उत्तरपदार्थप्रधान समास हो। विशेष्य या विशेषणमें एकको पढ़नेकी आकांक्षासे दूसरेका लाभ होता ही दोनोंका पढ़ना स्पष्टज्ञानके लिए। यथा–**नीलोत्पलं** नीलाकमल, नील शब्द लाल पीले कमलको अलग करता है। विशेषण समर्पक उत्पल=विशेष्य। **नील सु उत्पल सु**। सूत्रेण

प्राग्वत्। नीलमुत्पलं नीलोत्पलम्। क्वचिन्नित्यम्, कृष्णसर्पः। कवचिन्न, रामो जामदग्न्यः। ७३७ **पूर्वापरप्रथमचरमजघन्यसमानमध्यमध्यमवीराश्च।२।१।५८॥** पूर्वनिपातनियमार्थमिदम्। पूर्ववैयाकरणः। अपराध्यापकः। * अपरस्यार्धे पश्चभावो वक्तव्यः, अपरश्चासावर्धश्च पश्चार्धः। कथम् 'एकवोरः' इति। 'पूर्वकालैक-'

समासादिः। विशेषण प्रथमासे उच्चारित है उसको उपसर्जनसंज्ञा, पूर्वप्रयोग। यद्यपि कमल भी नीलवस्त्रको अलग करता है वह भी विशेषण क्यों न माना जाय, **जातिशब्द गुणक्रिया**के सम्बन्धमें प्रधान ही रहते है, विशेषण नहीं होते **नीलोत्पलं, पाचकब्राह्मणः** यहाँ उत्पल और ब्राह्मण प्रधान ही रहेंगे। लेकिन दोनों शब्दगुण हों, तब नियम नहीं। **खञ्जः कुब्जः** (लँगड़ा कुबड़ा) **कुब्जखञ्जः** दोनों होगा। यही दशा दो क्रियाओंकी **पाचकः पाठकः**। पकानेवाला **पाठक पाचकः** पढ़ता भी पकाता भी है। और एकगुण हो दूसरा क्रिया, तब भी नियम नहीं। **खञ्जपाचकः पाचकखञ्जः** कहें। संज्ञाशब्दभी विशेषण ही रहते है। यथा **कैलाशाद्रिः मन्दराद्रिः** पहाड़, **तर्कविद्या, भोजराजः, अयोध्यानगरी**। सामान्यजाति और विशेषजातिके बीच विशेषजाति ही **विशेषण**। यथा--**शिंशपावृक्षः** वृक्षसामान्यजाति है। शिंशपा **पलाश** विशेषजाति। **यद्यपि** 'वा' पढ़नेसे विकल्प सिद्ध था तथापि बहुलं पढ़नेका प्रयोजन **क्वचिन्नित्यं** कहीं नित्यसमास हो। जैसे **कृष्णश्चासौ सर्पश्च कृष्णसर्पः** काला सांप। **क्वचिन्न** कहीं समास न हो, **रामो जामदग्न्यः** में।

।७३७।**पूर्वापर** पूर्व–दिशा(भूतकाले) अपर–दूसरा, प्रथम–पहला, चरम-अन्तिम जघन्य-घृणित, समान-तुल्य, मध्य-बीच। मध्यमबीचमें रहनेवाला और वीर इन शब्दोंका समान आधार विभक्तिके रहते एकपद हों। विशेषण समाससे सिद्ध था, यह सूत्र पूर्वनिपातनके लिए नियम करता है। **पूर्वश्चासौ वैयाकरणश्च** पूर्वदेश या पूर्वकालके व्याकरणवक्ता। पूर्व सु वैयाकरण सु पूर्वापर समासे आदिः। **अपरश्चासौ अध्यापकश्च**, अपर सु अध्यापक सु बहुलकी अनुवृत्तिसे पाचक आदि क्रियाके साथ पूर्वादिका समास नहीं होता। इति समर्थ सूत्रेभाष्ये। **अपरमीमांसकः**। ठीक है (वा०) **अपरशब्द**को अर्धपरे रहते **पश्च** आदेश कहें, अतः **अपरश्च असौ अर्धश्च**। अपर सु अर्ध सु पूर्वापर-इति समासे। अपर स्थाने पश्च-आदेशो, **प्रथमश्चासौ शिष्यश्च प्रथमशिष्यः, चरमश्चासौ वृद्धश्च**

(सू ७२६) इति बाधित्वा परत्वादनेन समासे 'वीरैकः' इति हि, स्यात्। बहुलग्रहणाद्भविष्यति। ७३८ **श्रेण्यादयः कृतादिभिः।२।१। ५६॥** 'श्रेण्यादिषु च्व्यर्थवचनं कर्तव्यम्'। अश्रेणयः श्रेणयः कृताः 'श्रेणीकृताः'। ७३९ **क्तेन नञ्विशिष्टेनानञ्।२।१।६०॥** नञ्विशि

जघन्यकर्म, समानविद्वान्, मध्यमीमांसक मध्ये भवः मध्यमः क्षत्रियः। वीरशास्त्री शास्त्रमस्ति अस्मिन्शास्त्री। एकश्चासौ वीरश्च **एकवीरः** कैसे बनेगा, क्योंकि पूर्वापर सूत्रसे वीरका एकशब्दके साथ समास, वीरकापूर्व निपात **वीरैकः** होना चाहिए, एकवीरः कैसे ? तब बोले पूर्वकालैक-जरत्-सूत्रसे एकका वीरके साथ समास **एकवीरः** बनेगा तब, पूर्वकालैक—जरत् सूत्रको बाधकर परत्वात्पूर्वापर—सूत्र लगेगा **वीरैक** यही बनेगा, समाधान—बहुल ग्रहण करनेसे **बहून् अर्थान् लातीति बहुलम्**, एकेषु मुख्येषु **वीरयते**=पराक्रमते इति वा बोध्यम्। पूर्वकालैकसे ही समास मानें।

।७३८। **श्रेण्यादयः** श्रेणी एक पूग कुन्दशक्ति विशिख निचय निधन आदि का **कृतादिभिः**=कृत, मित भूत आदिके साथ एकपद हो, (वा०) **श्रेणी** आदिके साथ समास हो रहा हो तब। **च्व्यर्थवचनं**=जिसका अभूत तद्भाव अर्थ, पहले नहीं था, अब हो गया। इस अर्थमें श्रेणी–आदिका समास कहें। **शिल्पेन पण्येन जीविनां** समूहः कला रोजगारसे जीवित रहनेवालोंका समुदाय, पहले कला या दूकानसे जीवितुमसमर्थाः, अब वे जीवितुं समर्थाः कृताः। इसीको **अश्रेणयः**= जीविकामें असमर्थ लोंग श्रेणयः=अच्छी जीविका वाले बन गये। **श्रेणि जस् कृत जस् उक्तसूत्रेण समासादिः। ह्रस्वान्तः। यदा सिद्धा एव श्रेणयः तदा न समासः। अभूततद्भावस्य अभावात्।** **कुगति**–से नित्य समास **च्वौसे** दीर्घ, **श्रेणीकृताः**।

।७३९। **क्तेन**–क्त प्रत्यय अन्तमें हो, ऐसा नञ् विशिष्टेन=नञ्समास-सहित क्तप्रत्ययान्तका समानाधिकरण एक ही आधारमें रहनेवालोंके साथ, नञ्रहित क्तप्रत्ययान्तका एकार्थीभाव हो, स सत्पुरुषः यथा **कृतञ्च तदकृतञ्च।** कृधातुसे क्त, एक स्थानमें किया गया चुनाव दूसरे स्थानमें **अकृतं**=नहीं किया गया। **अकृत सु इति दशायां क्तेन समासादिः।** यह पूर्वनिपातनके लिए एक ही व्यक्तिसे कृतं और अकृतका समान आधार समानविभक्तिके समासमें कारण, **कृताकृतं** (किया हुआ, न किया हुआ। **तुल्य**=**नञ्**का अर्थ अधिक रहे तभी समास हो, दोनोंदलकी प्रकृति समान हो, क्तान्त हो, अतएव सिद्धञ्च **तत् अभुक्तञ्च**, सिद्ध है परन्तु खाया नहीं गया हो, समास नहीं होगा, सिद्धोंके

ष्टेन क्तान्तेनानञ् क्तान्तं समस्यते। कृतं च तदकृतं च कृताकृतम्। * शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्'। शाकप्रियः पार्थिवः शाकपार्थिवः। देवब्राह्मणः (७४०) **सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः** २।१।६१।। सद्वैद्यः वक्ष्यमाणेन महतः आकारः। महावैयाकरणः। पूज्यमानैः किम्? उत्कृष्टो गौः। पङ्कादुद्धृत इत्यर्थः। ७४१ **वृन्दारकनागकुञ्जरैः पूज्यमानम्** २।१।६२।। गोवृन्दारकः।

असिद्ध न होनेसे। **देवदत्तात् यज्ञदत्तः स्वाध्यायेन विशिष्टः अधिकः नञ्समासः**। केवल नञ अधिक हो तभी समास। नुट् अधिक हो तब भी। **अशितञ्च अनशितञ्च** खाया, नहीं भी खाया **अशितानशितम्**। अशभोजने। **क्लिष्टाक्लिष्टं** कठिन है सरल भी। (वा०) **शाकपार्थिवादिगणमें** पढ़े गये शब्दोंकी सिद्धिके लिए उत्तरपदका लोप कहें, समास होनेपर। **पृथिव्याः ईश्वरः पार्थिवः**, भूस्वामी। **शाकः प्रियो यस्य** सब्जीका प्रेमी **शाकप्रियः** स चासौ पार्थिवश्च। **शाकप्रिय सु पार्थिव सु** ब्रहुव्रीहिगर्भमें है, ऐसा समास उसके पूर्वमें शाकप्रिय, उसकी सिद्धिके लिए उसका उत्तरपद प्रियका लोप। शाकपार्थिवः, सोआ पालकका प्रेमी राजा। **देवब्राह्मणः देवाः प्रियाः यस्य देवप्रियः**। देवस्य पूजकः **देवपूजकः** स चासौ ब्राह्मणश्च। समास होने पर पूर्वखण्ड का उत्तरपद प्रिय या पूजक लुप्त हुआ। देवताका प्रिय या पूजक।

।७४०। **सन्महत**, परम, **उत्तम** उत्कृष्ट शब्दोंका गुणक्रिया **अर्थक** शब्दके साथ समास, समान आधार रहनेपर तत्पुरुषमान्य। **पूज्यमानैः**=पूजा समादर की भावनाभरी रहनेपर। पूर्वनिपातनफल **सन्वैद्यः** योग्यता गुण, सफलचिकित्सा शास्त्रकी ओर छोर तक ज्ञान, रखना, शास्त्रान्तज्ञानवान्, यह सत्का अर्थः। वैद्यजीकी पूर्ण कुशलताका प्रतीक है। **सन् सु वैद्य सु सन्महसमासादिः। वक्ष्यमाणेन**=आगे कहेजाने वाले सूत्रसे महत्के त को 'आ' हो समासमें। यथा **महांश्चासौ वैयाकरणश्च महत् सु वैयाकरण सु। सन्महत्सूत्रेण समासे आन्महतः** महतके त को आ, दीर्घ, **महावैकरणः**, सर्वश्रेष्ठशब्दब्रह्मसाधकः। सूत्रमें **पूज्यमान अर्थ क्यों**? इसलिए कि **उत्कृष्टो गौः** में समास न हो। शङ्का-गायका उत्कृष्ट अतिशय श्रेष्ठः होना पूजा है समास क्यों नहीं, तब उत्कृष्टका अर्थ (कीचड़से उद्धार किया गया है। क्योंकि उत्पर्वक कृञ्धातु उद्धरणार्थक है उबारना अर्थः। **परमपण्डितः उत्तमवेत्ता, उत्कृष्टगुरुः**।

।४१। **वृन्दारक** नाग-कुञ्जरके साथ, पज्यमान=माननीयके साथ समा-

व्याघ्रादेः आकृतिगणत्वादेव सिद्धं सामान्यप्रयोगार्थं वचनम्। ७४२ **कतरकतमौ जातिपरिप्रश्ने २।१।६३।।** कतरकठः। कतमकलापः। 'गोत्रं च चरणैः सह' इति जातित्वम्। **७४३ किं क्षेपे २।१।६४।।**

नाधिकरणका एकशक्ति (समास) हो, **गौः वृन्दारक इव श्रमरा निर्जरा देवा-वृन्दारकादैवतानि।** गाय देवताकी तरह पूज्य है। समासादिकार्ये। बहुत मोटा हो, गौः, नाग इव **गोनागः।** गौः कुञ्जर इव **गोकुञ्जरः।** वृषभ हाथी की तरह श्रेष्ठतासे पूज्यमानता सिद्धके साथ समास हो। ये प्रयोग व्याघ्रादि-गण मानलेनेसे **उपमितं व्याघ्रादिभिः** से समास सिद्ध—आकृतिगण मानकर। यह सूत्र सामान्य उपमान--उपमेयके विना भी प्रयोग होनेके लिए नाग हाथी सर्प पढ़े। ।४२। **कतर**=दोमें एकका निश्चयअर्थ। कतम--बहुतमें एकका निश्चय, ये दोनों जातिके विषयमें पूर्णप्रश्न। अर्थनिकालने लिये समान आधार, या विभक्तिके साथ समास हो। यथा **अनयोः कः कठः** इन दोनोंमें कठजातिका कौन है। कठेन प्रोक्तमधीते कठ आचार्यके उपदेशको जो पढ़ता है, प्रोक्त अर्थमें णिनिः। उसका **कठचरकात्से** लुक्। तदधीते--अण्। प्रोक्ताल्लुक्। किं स्थाने डतरच् द्वयोः एकस्य निर्धारण अर्थे। **कतर सु कठ सु समासादिः। कतमकलापः एषां विदुषां मध्ये कः कलापः कलापिना प्रोक्तमधीते** इन विद्वानोंके बीच कलापि मुनिकी रचना कौन पढ़ता है। **कलापिन् अण्, तस्य लुक्।** स ब्रह्मचारी टिलोपे किं से डतमच् (बहुतोंके बीच जाति विषयकप्रश्न अर्थमें **कतमसु कलाप सु।** अत्र शङ्का—जैसे घटमें घटत्व, नरमें नरत्व, पशुमें पशुत्व, जाति समझमें आती है, उस तरह कठशाखा अध्ययनसे जातिका ज्ञान नहीं होता, समास कैसे ? क्योंकि **आकृतिग्रहणाजातिः** स्वरूप अवयव संस्थान ग्रहणसे जातिका ज्ञान होता है। **मनुष्यत्व पशुत्व** पक्षित्वमें आकृतिसे जातिका ज्ञान। **लिङ्गनाञ्च न सर्वभाक्।** सर्वाणि लिङ्गानि न भजन्ते। जातिका एक लिङ्ग है। सभी लिङ्ग नहीं। **सकृत आख्यात**=एक बार कहा गया, सबमें समझा गया। घटत्व ब्राह्मणत्व सब ब्राह्मणमें समझा जाता है। इन जातिके लक्षणोंमें एकभी लक्षण नहीं घटना। जाति परिप्रश्न अर्थमें समास कैसे ? तब बोले **गोत्रं च चरणैः सह।** चरण-शाखाके साथ गोत्र (परम्पराकी **जाति) संज्ञा** होती है। कतम शब्द जातिविषयकप्रश्न अर्थमें, कौनसी तुम्हारी जाति हैं। जातिके विषयमें न जिज्ञासा है, न समास। इन दोनोंमें कौन देवदत्त है। **अनयोः कतरो देवदत्तः। एषां कतमो यज्ञदत्तः।** जाति सम्बन्धी प्रश्न नहीं, नहि समासः।

कुत्सितोराजा किं राजा, यो न रक्षति। ७४४ **पोटायुवतिस्तोकक-तिपयगृष्टिधेनुवशाबेहद्वष्कयणीप्रवक्तृश्रोत्रियाध्यापकधूर्तैर्जातिः २।१।६५। ७४५ तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः १।२।४२। ७४६ पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु ६।३।४२॥** कर्मधारये जातीयदेशीययोश्च परतो भाषितपुंस्कात्पर ऊङभावो यस्मिंस्तथाभूतं पूर्वं पुंवत्। पूरणी-

---

। ७४३। **किमः क्षेपे** निन्दा अर्थमें वर्तमान किम् इस अव्ययका सामान आधारवाले शब्दके साथ एकार्थीभाव एकअर्थवाला पद हो, स तत्पुरुषः। **कुत्सितो राजा** (निन्दित लीचड़ लावरवाह) अस्वपद विग्रह। किम्के स्थान में कुत्सित पढ़ा है, वाक्यसे नहीं, समाससे निन्दा ज्ञेय है, **किं सु राजन् सु।** आलस्य दुष्ट अर्थमें वर्तमाने किंका **किमः क्षेपे** सूत्रसे समास आदिः। राजाहः सखिभ्यः टच् न, किमः क्षेपे निषेधात्। **राजा सम्राट्**—सम्पत्तिशाली है कुत्सित कैसे ? तब बोले **यो न रक्षति** (प्रमादी है रक्षा नहीं करता) **किं राजा।** क्षेप निन्दा अर्थ क्यों ? कहा, **को राजा पाटलिपुत्रे।** पटनामें कौन राजा है। क्षेप नहीं समास नहीं। एवं **किं सखा यो न वहति धुरम्। किं गौः यो न वहति भारं,** कैसा बैल है जो बोझा नहीं ढो पाता।

। ४४। **पोटा**—आदि सूत्रमें पढ़े शब्दोंका समान आधारवालोंका जाति-वाचकके साथ उत्तरपदप्रधान एकार्थ समास हो, सूत्रके सभी शब्दोंका **अर्थ** आगे दिया गया है। कर्मधारय समासके कार्यके लिए कर्मधारयसंज्ञा सूत्र।

७४५। **तत्पुरुष** समास समानाधिकरण आधारवाला हो, तब कर्मधारय माना जाय। **समानम् एकम् अधिकरणं वाच्यं ययोः पदयोः ते समानाधिकरणे पदे अस्य स्तः अर्शादिः अच्।** समानाधिकरणसंज्ञा तत्पुरुषके अधिकारमें पढ़ी गयी होती, तब कर्मधारयसंज्ञासे उसका बाध होता। तब यहाँ पढ़ा

।४६। **पुंवत्कर्मधारय**—स्त्रियाः भाषितपुंस्कात् अनूङ्की अनुवृत्ति। सप्तमी विषयभेदसे भिन्न होती है। कर्मधारय अंशमें अधिकरणसप्तमी, जातीय देशीयसे परसप्तमी। कर्मधारयसंज्ञा होनेपर और जातीय देशीयपरे रहते **भाषितः पुमान् यस्य स भाषितपुंस्कः तस्मात्**=जिस स्त्रीलिङ्ग शब्दमें पुंलिङ्ग प्रतीत हो, उससे परे ऊङ्का अभाव हो जिसमें, **तथाभूत**—उस स्त्रीवाचकको पुलिङ्ग हो। अत्र प्रश्नः—कर्मधारयसंज्ञामें **स्त्रियाः पुंवत्**से पुलिङ्ग सिद्ध, जातीय देशीयपरे **तसिलादिषु आकृत्वसुचः** से पुं० सिद्ध यह सूत्र क्यों पढ़े ? तब बोले

प्रियादिष्वप्राप्तं पुंवद्भावोऽनेन विधीयते । महानवमी । कृष्णचतुर्दशी महाप्रिया । तथा कोपधादेः प्रतिषिद्धः पुंवद्भावः कर्मधारयादौ प्रतिप्रसूयते । पाचकस्त्री, दत्तभार्या, पञ्चमभार्या, स्रौघ्नभार्या, सुकेशभार्या, ब्राह्मणभार्या । एवं पाचकजातीया पाचकदेशीया इत्यादि ।

पूरणीप्रियादिषु जहाँ सङ्ख्यापूर्ति अर्थमें प्रत्यय हो, प्रिया आदि शब्दपरे हो, वहाँ पुलिङ्ग प्राप्त नहीं है । उनके लिए सूत्रसे पुलिङ्गका विधान । यथा **महती चा सौ नवमी च । सन्महत्परम** आदिसे समास । नवानां पूरणी नवमी, (नवीं तिथिको पूरा करनेवाली तस्य पूरणे डट्, नान्तसङ्ख्यादिसे डट्को मट् । टिड्ढाणञ् सूत्रसे ङीप् । नवमी शब्द पूरणप्रत्ययान्त होनेसे उसके परे स्त्रियापुंवत् प्राप्त नहीं, अतः इस सूत्रसे पुं० । जिसका फल **आन्महतः** सूत्रसे त को आत्व होना **महानवमी । चतुर्दशानां पूरणी** चौदहवीं संख्या पूर्णकरने वाली । **चतुर्दशन्** डट् टिलोप, ङीप् । **कृष्णश्चासौ चतुर्दशी च समासादिः । कर्मधारयसंज्ञा पुंवत् । महती चासौ प्रिया च महाप्रिया** अभिन्नहृदया । **महती सु प्रिया सु** समासादिः । पुं० भावे अप्रियादिषुसे पुंवत्का निषेध प्राप्त था । पुंदत्कर्मधारय सूत्रकी अन्य उपयोगिता बोले—तथा **कोपधादेः—न कोपधायाः** सूत्रसे उपधावालेको पुं० निषेध प्राप्त था । इसी तरह **संज्ञापूरण्योश्च** इत्यादिसे निषेध स्थलमें पुलिङ्गविधानके लिए सूत्र । और कर्मधारयमें तथा जातीयदेशीय परे रहते निषेधका निषेध=विधिसूत्र । यथा पाचिका चासौ स्त्री च पकानेवाली । **पाचिका सु स्त्री सु**—विशेषणसमासे कर्मधारयसंज्ञा, पुंवत् । यहाँ न कोपधायाः से पुलिङ्गका प्रतिषेध प्राप्त था । **दत्ता चासौ भार्या च, पञ्चमो चासौ भार्या च**, विग्रहमें समास, कर्मधारयसंज्ञा, संज्ञापूरण्योश्चसे प्राप्त निषेधको बाधकर पुंवत् । **दत्तभार्या** संज्ञा है । **पचमभार्या** पूरणी है । **स्रौघ्नभार्या स्रौघ्नी चासौ भार्या च** भरण पोषण योग्या स्त्री । अत्र **वृद्धिनिमित्तस्य** से निषेधको बाधकर पुलिङ्ग । **सुकेशी चासौ भार्या ।** सुन्दर केशवाली ललिता भरणीया । **सुकेशी सु भार्या सु** समासादिः । समानाधार होनेसे कर्मधारय । एकार्थीभाव, एकपद एकशक्ति । **स्वाङ्गाच्चेतः** से निषेध को बाँधकर पुंवत् । ब्राह्मणी चासौ भार्या **च** ब्राह्मणीकी भरणपोषण योग्या । कर्मधारय समाससे **जातेश्च** से निषेधको बाँधकर **पुंवत् । जातीय** और **देशीय** प्रत्ययोंके प्रतिप्रसव पुलिङ्गनिषेधके विरुद्ध आचरणमें प्रमाण—पाचिका प्रकार-

इभपोटा। 'पोटा स्त्रीपुंसलक्षण'। इभयुवतिः। अग्निस्तोकः। उदश्वित्कतिपयम्। गृष्टिः सकृत्प्रसूता गोगृष्टिः। धेनुर्नवप्रसूता। गोधेनुः। वशा वन्ध्या। गोवशा। वेहद्गर्भघातिनी। गोवेहत्। वष्कयण्यतरुणवत्सा। गोवष्कयणी। कठप्रवक्ता। कठश्रोत्रियः। कठा-

---

वती **पाचकजातीया**। प्रकारवचने जातीयरः पकानेवालीके समान जातिका है पकाती नहीं है, एवं **पाचिका** (इषदसमाप्तौ) **पाचकदेशीया**। जो कम पकाती हो ऐसी स्त्री। दोनों प्रयोगमें तसिलादिषुसे प्राप्त पुं० का निषेध, न कोपधायाःसे। उसका भी निषेधकर पुंवत् इत्यादि। दत्ता प्रकारवती **दत्तजातीया** (आनेहु मोल वेसाहि कि मोही) असमाप्ता दत्ता, **दत्तदेशीया**। पञ्चमी प्रकारवती **पंचमजातीया** सुकेशी प्रकारवती **सुकेशजातीया सुकेशदेशीया** एवं **ब्राह्मणजातीया** आदि।

पुंवत् कर्मधारयका विषय पूरा करके **पोटायुवति सूत्र पर जुटते** हैं। क्रमसे प्रयोग **इभपोटा**, पोटा चासौ इभी च बन्ध्या हाथी पोटा सु इभी सु। पोटायुवती सूत्रसे समान आधारवाली इभी हथिनीके साथ समास। पुं० भाव। जातिका पूर्वनिपात सूत्रका मुख्य प्रयोजन। जिसमें स्त्रीपुरुष दोनों के लक्षण मिलते हो वह पोटा, **स्त्रीपुंसलक्षणानि** चिह्नानि यस्याः स्तन श्मश्रु आदियुक्त। डाढ़ी मूछवाली स्त्री। **युवतिश्च असौ इभी च**। युवतिशब्दका जातिवाची इभी हथिनी, समान आधार भी है, समास आदिः पुं० भाव, अग्नि स्तोकः थोड़ी अग्नि। **स्तोकश्चसौ अग्निश्च** समान अधिकरण स्तोककी अग्निजातिसे समास, कर्मधारयसंज्ञा पुं० भाव सबमें है। **तक्रं हि उदश्वितं मथितं पादाम्बु अर्धाम्बु निर्जरमित्यमरः। कतिपयञ्च उदश्विच्च** कर्मधारय समाससे जाति उदश्वित् (मट्ठा)का पूर्वप्रयोग। गृष्टि पहलीबार व्यायी **गृष्टिश्चासौ गौश्च**, कर्मधारयसमाससे जातिवाचक गोका पूर्वप्रयोग नयी व्यायी हुई गाय। **धेनुश्चासौ गौश्च**, समासे, गौ-का पूर्वनिपात। **वशा** बन्ध्या स्त्रीका नाम, बाझिनि गाय, वशा **चासौ गौश्च**, गोवशा ये कोश **वाक्य** है बेहद् (गर्भ गिरानेवाली गाय) **वेहच्चासौ गौश्च समासे**, जातिबाचकका पूर्वप्रयोग। चिरप्रसूता **वष्कयणी** अमरः। ठांठ, चिरकालसे ब्यायी हुई। **वष्कयणी चासौ गौश्च कठप्रवक्ता** कठशाखाके अधिकार पूर्वक प्रवचन करनेवाला। **स चासौ कठश्च** कठ जाति है, उसका पूर्वप्रयोग। **धूर्तश्चासौ कठश्च कठधूर्तः। धूर्तोऽक्षदेवी**

ध्यापकः। कठधूर्तः **७४७ प्रशंसावचनैश्च २।१।६६॥** एतैः सह जातिः प्राग्वत्। गोमतल्लिका। गोमर्चचिका। गोप्रकाण्डम्। गवोद्धः। गोतल्लजः। प्रशस्ता गौरित्यर्थः। मतल्लिकादयो नियतलिङ्गाः, न तु विशेष्यनिघ्नाः। जातिः किं? कुमारी मतल्लिका। **७४८ युवा खलतिपलितवलिनजरतीभिः २।१।६७॥** पूर्वनिपातनियमार्थं सूत्रम्।

अमरः। विट् अन्ये। **कठश्चासौ श्रोत्रियश्च।** अध्यापकश्चासौ कठश्च कठ-शाखा पढ़ाने वाले। कठत्व बेदकी शाखा है, उसे कुत्सित न समझें, कुत्सितानि कुत्सनैः निन्दा अर्थमें लगता है।

। ७४७। **प्रशंसा** रूढ़िसे। प्रशंसावाचक शब्दके साथ जातिवाचक शब्दका सामान आधार रहनेपर समस्यते—एकपद, एकार्थ हो, स तत्पुरुषः। **पोटायुवति** से जाति आया। पूर्वनिपात नियमके लिए, गौशब्दविशेष प्रसिद्ध है। बार बार जातिका उदाहरण बना। **मतल्लिका चासौ गौश्च** प्रशंसनीया गाय, **गो-मतल्लिका।** कर्मधारय समास पर जातिवाचक गोका पूर्वप्रयोग एवं **मचर्चिका चासौ गौश्च।** सुन्दर चितकबरी गाय। **प्रकाण्डश्चासौ गौश्च** विशाल। **उद्ध-श्चासौ गौश्च** (मर्कही गाय) **गवोद्धः** अवङ्स्फोटायनस्य आद्गुणः। **तल्लजश्चासौ गौश्च** गोतल्लजः। सूत्रमें परवल्लिङ्ग होगा। अतः कहीं पुं० कहीं नपुं०, कहीं स्त्री०। ये मतल्लिकादि शब्द प्रसिद्ध नहीं, इनका क्या अर्थ हो, तब बोले—**प्रशस्ता गौः प्रशंसा अर्थमें वे समझें** जाय। स्त्री०के अभिप्रायसे। यदि पुं० कहना हो **प्रशस्तः गौः।** यदि पुलिङ्ग मानेगें तब मतल्लिका मर्चचिका प्रकाण्डशब्द विशेष्यके अधीन होगें, तब पुं० की आपत्ति होगी। स्त्री० कहें, तब नपुंसक पुलिङ्ग सभी स्त्री० होगें, तब मूलमें कहा कि मतल्लिका आदि-शब्द नियत निश्चित **एकलिङ्ग** व्यापक है, वे विशेष्य प्रधानके आधीन नहीं रह सकते। यथायोग्य लिङ्ग ही होगा **मतल्लिका मर्चचिका प्रकाण्डमुद्ध तल्लजौ प्रशस्तवाचकानि अमूनि अमरः। जातिः किं** जातिके साथ समास क्यों कहा? इसलिए कि व्यक्तिके साथ प्रशंसावचनका समास न हो। यथा **कुमारीमतल्लिका** कुंवारी लकड़ी। यहां अवस्था आयु विशेषण वाची कुमारी शब्द है न जातिवाची, नहि समासः। समास होता पुवत्कर्मधारयसे पुं० होता कुमारः बनता।

। ७४८। **युवा खलतिः केशहीनशिरा** खल्वाट (**चण्डुल**) **पलितं जरसा शौक्ल्यं** (**शुक्लस्य भावः** पीला सफेद बाल) **वलिनो बलिभिः समौ** इत्यमरः

लिङ्गविशिष्टपरिभाषया: युवतिशब्दोऽपि समस्यते। युवा खलतिर्युवखलतिः। युवतिः खलती युवखलती। युवजरती युवत्यामेव जरतीधर्मोपलम्भेन तद्रूपारोपात्सामानाधिकरण्यम्। **७४६ कृत्यतुल्याख्या अजात्या २।१।६८।।** भोज्योष्णं, तुल्यश्वेतः। सदृशश्वेतः। अजात्या

इन शब्दोंके साथ पुंवतका समास हो। **युवा च खलतिश्च** खल्वाट युवक। **युवन् सु खलति सु** समानविभक्ति है। युवाखलति–सूत्रेण समासे, प्राति०-संज्ञा, सुपः लुक् पुनः समुदायसे सु **युवन् खलति अन्तर्वर्तिनी**=समासके पेटमें रहनेवाली विभक्तिसे सुबन्त मानकर पदसंज्ञा, नकार लोप। **युवखलतिः।** यद्यपि विशेषणं विशेष्येणसे समास सम्भव था, यह सूत्र क्यों ? पूर्वनिपातके लिये। यह नियमार्थक भी है। क्योंकि युवन् और खलतिपलित आदिशब्द गुणवाची हैं विशेषणमें इच्छानुसार पूर्वनिपातका नियम था। युवाका ही पूर्वप्रयोग हुआ। अत्र शङ्का-**युवाशब्दः पुलिङ्गः युवतिशब्दः** स्त्रीलिङ्गः कथं समासः। **तथा ब्रूते-लिङ्ग विशिष्टपरिभाषा** से युवतिशब्द भी समासका विषय है। क्योंकि जहां प्रातिपदिक स्वीकृत है वहाँ लिङ्गबोधक प्रत्यय भी लिया जाय। परिभाषाका अर्थ, अतो न दोषः, युवा स्थाने युवति भी मान्य। अतः **युवतिखलती** कृदिकाराद्क्तिनः ङीप्। **युवति सु खलती सु** इति विग्रहे सूत्रेण समासादि कार्ये पुंवत्कर्मधारय इति पुं०भावे **युवखलती**। चण्डुल नवयौवना **युवजरती** (जवानीमें बुढ़ौती) वयो हानौ (अवस्था क्षीण अर्थमें अतृन्) उगितश्च ङीप्। जरती=**वृद्धा युवतिश्चासौ जरती च**। सूत्रेण समासे। पुं० भावे। अत्र विरोधशङ्का–युवति वृद्धा कैसे ? तब बोले–**युवत्यामेव**=जवान स्त्रीमें कमजोरी या रोगसे जरतीधर्म, अङ्गशिथिलताका आरोप करके, समान आधार होगा। एवं **युवपलितः**। **युवबलिनः** जवानीमें सफेद बाल, झुकी कमर।

।७४९। कृत्यप्रत्यय (यत् ण्यत् आदि) अन्तमें हों, तुल्यवाचक हो समानार्थक किन्तु जातिअर्थसे भिन्न हो तब समानाधारके साथ समास, एकार्थ हो, वह उत्तरपदार्थ प्रधानमान्य। यथा **भोज्यञ्च** तदुष्णञ्च खाने योग्य हो, गरम भी। भोजन अर्थका विषय ण्यत् अर्हे कृत्यप्रत्यय। **भोज्य सु उष्ण सु** समासादि, दोनों शब्दक्रिया–गुणरूप है विशेषणसे कामचारसे अनियममें नियमार्थ सूत्र। भोज्यका पूर्वनिपात **तुल्यश्चासौ श्वेतश्च** (समान हो, सफेद भी) इति विग्रहे दोनों गुणवाचीके अनियममें तुल्यका ही पूर्वनिपात। **आख्याका फल**

किं भोज्यः ओदनः। प्रतिषेधसामर्थ्याद्विशेषणसमासोऽपि न। ७५० **वर्णो वर्णेन २।२।६९॥** समानाधिकरणेन सह प्राग्वत्। कृष्णसारङ्गः ७५१ **कडाराः कर्मधारये २।२।३८॥** कडारादयः शब्दाः कर्मधारये वा पूर्वं प्रयोज्याः। कडारजैमिनिः। जैमिनिकडारः। ७५२ **कुमारः श्रमणादिभिः २।१।७०॥** कुमारी श्रमणा कुमारश्रमणा। इह **गणे** श्रमणा, प्रव्रजिता, गर्भिणीत्यादयः स्त्रीलिङ्गाः पठचन्ते। लिङ्गविशिष्ट

बोले–**सदृशश्वेतः** तुल्यकी आख्या–पर्याय, सदृश है। तस्य **सत्कृत्यशालिनः** भट्टिप्रयोगमें **शतां कृत्यं सत्कृत्यं** षष्ठीसमासः। परमपूज्यः। सूत्रसे **अजात्या**= जाति अर्थमें समास क्यों नहीं, इस लिए कि क्रियाके आगे भोज्य (भात) खानेयोग्य ओदन जातिवाचक है। यदि यह समास न हो तब विशेषण समास हो जाय तब बोले–**प्रतिषेध**=जातिके साथ समासनिषेधके सामर्थ्यसे विशेषणं बहुलंसे समासका भी निषेध मान्य।

।७५०। **वर्णो**--वर्णवाचीका समान अधार या विभक्तिवाले वर्णवाचीके साथ उत्तरपदार्थप्रधान एकार्थीभाव हो। रङ्ग अर्थमें वर्ण है। **सारङ्गः चित्रवर्णवान्** (चितकबरा) कृष्ण अवयवमें लाक्षणिक। यही सामान आधार है। **कृष्णश्चासौ सारङ्गश्च 'वर्णो वर्णेन'** समासादिः। प्रपञ्चार्थसूत्र। **कृष्णशुक्लो** हरितशुक्लः आदिके लिए सूत्रावश्यक।। ७५१। **कडारा** आदिशब्द कर्मधारय समासमें पूर्वप्रयोग किये जांय विकल्पसे। उपसर्जनं पूर्वंके नित्यको बाधकर यथा **कडारश्चासौ जैमिनिश्च**, समासे। विकल्पेन पूर्वप्रयोगसे दो रूप। **कर्मधारय क्यों** कहा ? **कडारपुरुषको ग्रामः। गडुलशाण्डिल्यः, शाण्डिल्यगडुलः।**

७५२। **कुमार** शब्दका सामान आधार बोले–श्रमणादिके साथ उत्तरपदार्थ प्रधान एकार्थीभाव हो। **कुमारी च श्रमणा** च परित्यक्तसर्वसंङ्ग सृष्टिसे सम्बन्ध तोड़नेवाले। सूत्रेण समासादिः। पुंवत्कर्मधारय पुलिङ्गे। अत्र शङ्का कुमारशब्द पुलिङ्ग है स्त्री कुमारीके साथ समास कैसे, क्योंकि गणमें श्रमणा-आशक्तिरहिता, प्रव्रजिता–संन्यासिनी गर्भिणी–सत्वा, आदि स्त्रीलिङ्ग पढ़े गये हैं, तब सूत्र व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि **प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणं,** जहां प्रातिपदिक लिया जाय वहां लिङ्गके सहितका भी ग्रहण हो। **एतदेव**=यह सूत्र भी ज्ञापक, नियामक है। **युवाखलति** सूत्र ज्ञापक था ही। जरतीके साथ समन्नाधिकरणके लिए।

परिभाषया एतदेव ज्ञापकं बोध्यम्। **७५३ चतुष्पादो गर्भिण्याः २।१।७१॥** चतुष्पाज्जातिवाचिनो गर्भिणीशब्देन सह प्राग्वत्। गोगर्भिणी। * 'चतुष्पाज्जातिरिति वक्तव्यम्'। नेह स्वस्तिमती गर्भिणी। **५४ मयूरव्यंसकादयश्च २।१।७२॥** एते निपात्यन्ते। मयूरो व्यंसकः मयूरव्यंसकः। व्यंसको धूर्तः। ऊदक्चावाक्चोच्चावचम्। निश्चितं च प्रचतं च निश्चप्रचम्। नास्ति किञ्चन यस्य सोऽकिञ्चनः। नास्ति कुतो भयं यस्य सोऽकुतोभयः। अन्यो राजा राजान्तरम्।

।७५३। **चतुष्पादौ–जातिग्रहणं कर्तव्यम्**। चारपैर, जातिवाचिनी गर्भिणी हो, ऐसे अर्थवाचीके साथ समास हो। **गर्भिणीचौ गौश्च**। गाभिनि गाय सूत्रेण समासादिः। विशेष्य–प्रधानका पूर्वनिपातके लिए सूत्र गौः जातिवाचीचतुष्पाद प्रधान है। **चार पैर क्यों** ? कहा, इसलिए कि दोपैरवालीके साथ समास न हो। जैसे **स्वस्तिमती गर्भिणी**। **जातिः क्यों** कहा ? **कालाक्षी गर्भिणी,** काली आंखवाली। **अत्र गुणशब्दः** ।७५४। **मयूरव्यंसकादिगणमें** पढ़े शब्द निपात्यन्ते=समासादिकार्य मान्य है। चकार–अवधारण-कार्य निश्चय के लिए है, जिसका फल **परममयूरव्यंसकः** आदिमें समासान्तर न हो, **व्यंसकश्च मयूरश्च** (धूर्तचतुर मोर) समासे, गुणवचन होनेसे व्यंसकका पूर्वप्रयोग प्राप्त था, उसे बाधनेके लिए यह सूत्र। **अन्ये तु—मयूर इव व्यंसको मयूरव्यंसकः। उपमानानि सामान्यवचनैः** का बाधक मानते हैं। जिसका फल 'समासस्य' सूत्रसे अन्तोदात्त। **उच्चावचं,** उदक्स्थाने उक्च, अवाचस्थाने अवच्। ऊँचा नीचा स्थान, **उच्चावचं नैकभेदमित्यमरः**। निश्चितस्थाने निश्च, प्रचितस्थाने प्रच् आदेशः **निश्चप्रचं,** पूर्णदृढ़निश्चय समासादिः। **नास्ति किञ्चन** नहीं है कुछ जिसके पास वह **अकिञ्चन**। च, न, अव्यय हैं। बहुव्रीहिका बाधक, त्रिपद, तत्पुरुष। न के नकारका लोप निपातनसे। न लोपो नञः नहीं लगेगा, किं के उत्तरपद न होनेसे। **उत्तरपदसमासके अन्तिमभागमें रुढ़ है।**

नास्तिकुतोभयं यस्य सः अकुतोभयः। जिसको कहीं भी डर न हो। बहुव्रीहिका बाधक तत्पुरुष। **अन्यः** राजा राजान्तरम्। अन्तरशब्द अन्यका पर्याय, अन्यके साथ विग्रह अन्तरके साथ समास। क्योंकि नित्यसमाससे अस्वपद विग्रह होता है। अन्तरका परनिपात। **चिदेव चिन्मात्रं** चेतन ही। **मात्रं कात्स्न्र्येऽवधारणे इत्यमरः**। अस्वपद, नित्यसमास, एकके साथ विग्रह, मात्रके

चिदेव चिन्मात्रम्। 'आख्यातमाख्यातेन क्रियासातत्ये' (ग २०)। अश्नीत पिबतेत्येवं सततं यत्राभिधीयते सा अश्नीतपीबता। पचतभृज्जता। खादतमोदता। 'एहीडादयोऽन्यपदार्थे' (ग १९) एडीह इति यस्मिन्कर्मणि तदेडीहम्। एहियवम्। उद्धर कोष्ठादुत्सृज देहीति यस्यां क्रियायां सोद्धरोत्सृजा। उद्धमविधमा। असातत्यार्थमिह पाठः। 'जहिकर्मणा बहुलमाभीक्ष्ण्ये कर्तारं चाभिदधाति'। जहीत्येतत्कर्मणा बहुलं समस्यते आभीक्ष्ण्ये गम्ये समासेन चेत्कर्ताभि-

---

साथ समास। निपातनसे नित्य अनुनासिक। **गणसूत्र–आख्यातम्**=आख्यायते **या सा धातुः**–अर्थ–क्रियाका आख्यातेन=क्रियाके साथ समास, एकशक्ति हो। यदि क्रियाका सातत्य निरन्तर होना हो तब। तिङन्तका उत्तरपदार्थ या अन्यपदार्थ प्रधान समास हो। **अश्नीत पिबत** यूयं, तुमलोग खाते रहो पीते रहो, ऐसा लगातार अभिधीयते–कही जाय जिस क्रियामें उसका नाम **अश्नीतपिबता** समासे अन्य पदार्थ क्रिया है स्त्री० टाप्। वार्तिकेन **एकार्थीभावे**। यूयं **पचत भृज्जत**, तुमलोग पकाओ भूनों, इस प्रकार निरन्तरक्रिया कही जाय वह **पचतभृज्जता**। क्रिया अन्य पदार्थसमास स्त्री० टाप्। यूयं **खादतमोदत**,एवं सततं यस्यां क्रियायां कथ्यते, सा **खादतमोदता** समासे, टाप्। खाना पीना मौज करना आदि क्रियाका क्रियाके साथ समास होने पर मिलकर एकक्रिया होना समासार्थः। **गणसूत्र–**एहि ईड, (आवो स्तुति करो) विग्रह ईडे (लट् उत्तमपुरुष एकवचन) अन्यपदार्थ प्रधान अर्थमें समास। ततः ए को अ आदेश **एहीड** आवो स्तुति करो--ऐसा कहा जाय जिस कर्ममें उस कर्मका नाम एहीडम्---**एहियवम्**=एहि यौमि आओ मिलो या अलग हों, ऐसी क्रिया जिस कर्ममें वह कर्म **एहियवम्**। यू मिश्रणे च। समासे, यौमिको यव आदेश। **उद्धर उत्सृज**, उद्धार करो, देहि–त्याग करो दान दो, एसी स्थित हो जिस क्रियामें वह **उद्धरोत्सृजा** क्रिया। कहाँसे उद्धार ? कोष्ठसे। जिज्ञासापूरक **उद्धमविधम**, प्रज्ज्वलित करो, ऐसा जिस क्रियामें हो वह **उद्धमविधमा**। **असातत्य**=निरन्तर न होने अर्थमें। **इह**=एहीडादिगणमें पढ़ा। ग० **जहि** हन् धातुके जहिके कर्मके साथ **आभीक्ष्ण्ये**–बार-बार किया हो, कर्ता अर्थमें **बहुलं बहून् अर्थान्** लाति इच्छानुसार। कर्ता अर्थ बोधक समास हो, क्रिया बार-बार होती हो, समाससे कर्ता अर्थ निकलता हो। **जोडं**=**जोड़** (गाँठ) या किसीका नाम उसको **जहि**–तोड़ दो **जहि जोड़ं** जोडं जहि, जोड़-जोड़को

धीयत इत्यर्थः। जहिजोडः। जहिस्तम्बः। **७५५ ईषदकृता २।२।७॥** ईषत्पिङ्गलः 'ईषद्गुणवचनेनेति वाच्यम्' ईषद्रक्तम्। **७५६ नञ् २।२।६॥** नञ्सुपा सह समस्यते। **७५७ न लोपो नञः ६।३।७३॥** नञो नस्य लोपः स्यादुत्तरपदे। न ब्राह्मणोऽब्राह्मणः। **७५८ तस्मान्नुडचि ६।३।७४॥** लुप्तनकारान्नञ ऊत्तरपदस्याजादेर्नुमागमः स्यात्।

तोड़ दो। ऐसा य आह स **जहिजोडः**। ऐसा जो बोले, वह व्यक्ति। जहि-का कर्म जोड़, उसके साथ कर्ता अर्थमें समास। **उक्त प्रथमा**। एवं **जहि स्तम्भं** खम्भे-खम्भेको तोड़ दो। इति य आह ऐसा जो बोलता है वह **जहिस्तम्बः**। जहिका स्तम्भ कर्मके साथ समास कर्तामें। **इति समानाधिकरणस्य अधिकारः**।

।७५५। **ईषत्** शब्द, कृदन्तको छोड़कर अन्य सुबन्तके साथ उत्तरपदार्थ प्रधान एकार्थीभाव हो। यथा ईषत्पिङ्गलः थोड़ा पलित (पीला सफेद) अव्युत्पन्न प्रातिपदिक (प्रकृतिप्रत्ययका अर्थ नहीं) अतः कृदन्तभिन्नके साथ समास। (वा) **ईषत्** का **गुणवचन** लाल, नीला, पीला आदिके साथ समास हो। **रक्तं** थोड़ा लाल ।७५६। **नञ्** यहाँ समान अधिकार अनिवार्य नही, अतः नञ्का सुबन्तके साथ समास हो।।७५७। **न लोपो**। न—लुप्ता षष्ठी, अतः नञ्के न का लोप हो उत्तरपदपर रहते। अलुक् उत्तरपदेका अधिकार। **उत्तरपद क्यों** पढ़ा ? घटोऽनास्ति। यहाँ 'न' समासका अन्तिम अवयव नहीं है। नलोप न हो। **नञोऽम्** ऐसा पढ़ते, लोप क्यों ? **अब्राह्मणः** में अकच् होनेके लिए **अकब्राह्मणः**। न ब्राह्मणो। **आरोप** और अभाव नञ्के दो अर्थः। यहाँ ब्राह्मणत्व अब्राह्मणमें आरोपित होकर सम्बन्धित होता है। ब्राह्मण भिन्न ब्राह्मणसदृश 'क्षत्रिय' आदि, आरोपित ब्राह्मण धर्म होनेसे नञ्सूत्रेण समासे। नलोपे=उत्तरपदपरे नकार लोप। अब्राह्मणः, यदि नञ्का भिन्न अर्थ होगा। तब पूर्वपदका अर्थ प्रधान होंगा। तत्पुरुषका उत्तरपदार्थ प्रधान अर्थ विरुद्ध होगा, अतः उत्तरपदार्थप्रधान्य भाष्यवचनके अनुसार आरोपितत्वं **नञर्थः**। प्राचीन आचार्य बोले—

तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता।
अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्तिताः॥

उदाहरणानि–अब्राह्मणः, अपापम्, अनश्वः, अनुदरा कन्या, अपशवा गोऽश्वेभ्यः, अधर्म, प्रसङ्गसे समझें।७५८। **तस्मात्**। तत् शब्द पूर्वसूत्रके लुप्त नकारका स्मारक है। उत्तरपद आया, अचिमें विशेषण **लुप्त नकार हो ऐसे**

अनश्वः। अर्थाभावेऽव्ययीभावेन सहायं विकल्प्यते।* रक्षोहागमलघ्व सन्देहाः प्रयोजनम्' इति 'अद्रुतायामसंहितमिति च भाष्यवार्तिक-प्रयोगात्। तेन अनुपलब्धिः, अविवादः, अविघ्नमित्यादि सिद्धम्। * नञो नलोपस्तिङि क्षेपे'। अ पचसि त्वं जाल्म। नैकधा इत्यादौ तु न शब्देन सह 'सुपा' इति समासः। ७५९ नभ्राण्नपान्नवेदानासत्या-

---

नञ्से उत्तरपदका अजादि अच्आदि हो तब नुम् होता है। यथा न अश्वः **अनश्वः** नञ्सूत्रेण समासे, नकार लोपे, अश्वः, तस्मान्नुड़चि सूत्रसे नुट् (न) अनश्वः। गर्धभः आरोपितोऽश्वः। गदहा भी घोड़ा है। नञ् आरोपका प्रकाशकः। **तादात्म्यरूपस्य भेदसादृश्ययोः सतोः।** अब्राह्मणसे लोटा, बाल्टी न समझें। नुट्का टित् आदि अवयवके लिए। **कर्मण्यविघ्नः** यहाँ विघ्नानामभावः नञ्-तत्पुरुषसमासमें परलिङ्गः अविघ्नः है। अत्र शङ्का-यह प्रयोग अर्थाभावे अव्ययीं-भाव समाससे सिद्ध होता यह सूत्र क्यों? अव्ययीभाव-**निर्मक्षिकं** में सफल है। परत्वात्तत्पुरुष होगा। अतः बोले अव्ययीभावके साथ यह विकल्पके लिए है। जिसका फल अविघ्नः तत्पुरुषः अविघ्नं, दोनोंकी सिद्धि। रक्षोहा--भाष्यके प्रस्तावाह्निकमें व्याकरण क्यों पढ़े? उत्तर-**रक्षा च ऊहा च आगमश्च लघु च असन्देहाश्चेति** द्वन्द्वःमें परवर्तीलिङ्ग सन्देहानाम् अभावः अर्थमें असन्देहाः। पुलिङ्गप्रयोगसे तत्पुरुषसमास स्वच्छ है। यदि अव्ययीभाव होता, असन्देहं बनता। परः सन्निकर्षः संहिता सूत्रपर **अद्रुतायां वृत्तौ**=मध्यमा, विलम्बिता-वृत्तिमें **असंहितं** पढ़ा? संधिका अभाव कर या तोड़कर पढे। संहितायाः **अभावः** अव्ययीभावसमासमें असंहितं प्रयोगदर्शनसे नञ्से अर्थका अभाव भी जानें। तत्पुरुष होता असंहितः वनता। इससे तेन=**उपलब्धेः** अभावः **अनुपलब्धिः** अप्राप्ति, विवादस्य अभावः **अविवादः**। अशान्तः, पुलिङ्ग दर्शनसे तत्पुरुष। विघ्नस्य अभावः अविघ्नं नपुंसक निश्चित। (वा०) **नञो**। नञ्के 'न' का लोप हो **क्षेपे**=निन्दा अर्थ समासार्थ होनेपर, तिङ परे रहते। न पचसि **अपचसि** कुत्सितं वेस्वाद अधकच्चा पकाता है, निंदा अर्थ, न भिन्नपद है समासे। **नञके न का लोप**। निन्दा **अर्थ** =होनेपर। कोई 'अ' इस अव्ययसे सिद्ध कर वार्तिकविफल करते हैं। कोई वार्तिकपाठसे **अ** अव्ययको अप्रामाणिक करार देते है। अत्र शङ्का-न एकधा **नैकधाः**, समास होनेपर नकार लोप, तस्मान्नुट् हो अनेकधा क्यों नहीं? मूलमें बोले **नैकधा** जैसे स्थलमें 'सुप्सुपा'से समास समझें नञ्समास नहीं, 'ञ' अनुबन्धसे।५९। **नभ्राट्**न भ्राजते अशोभते

नमुचिनकुलनखनपुंसकनक्षत्रनक्रनाकेषु प्रकृत्या ६।३।७४॥ पाद इति शत्रन्तः। वेदाः इत्यसुन्नन्तः। न सत्या असत्याः, न असत्या नासत्याः। न मुञ्चतीति नमुचिः। न कुलमस्य नकुलम्। न खमस्य नखम्। न स्त्री पुमान् नपुंसकम्। स्त्रीपुंसयोः पुंसकभावो निपातनात्। न क्षरतीति नक्षत्रम्। क्षीयतेः क्षरतेर्वा क्षत्रमिति निपात्यते। न क्रामतीति नक्रः। 'क्रमेर्डः'। न अकमस्मिन्निति नाकः। ७६० **नगोऽप्राणिष्वन्यतरस्याम्। ६।३।७७॥** नग इत्यत्र नञ्प्रकृत्या वा। नगाः–अगाः पर्वताः। अप्राणिष्विति किम्, अगो वृषलः शीतेन। 'नित्यं क्रीडा'–(सू ७११) इत्यतः नित्यम् इत्यनुवर्तमाने। ६१ **कुगतिप्रादयः २।२।१८॥** एते समर्थेन नित्यं समस्यन्ते। कुत्सितः पुरुषः

क्विबन्तः, न पात् (न गिरता हुआ) या पद्यते गम्यते इति पात् न पात्। न वेदाः (विदन्ति असुन्, वेदस् वेदाः) **अवेदाः**। सत्सु साधवः **सत्याः** सज्जनाः हितकारिणः तत्र साधुः। यत्, न सत्या **असत्या** दुर्जनाः अपकारिणः, न असत्या **नासत्या** अवश्यपरोपकारिणः। न मुञ्चति नमुचिः सर्पः मूषक पकड़े, छोड़ता नहीं। जिसका कुल वंश न हो **नकुल** (नेवला) **न खं** (पोल न हो) न स्त्री न पुरुष–**नपुंसकं** स्त्री और पुंसके स्थानमें नपुंसकभाव निपातनसे। न क्षरति चलति (क्षर संचलने) या क्षि--निवासगत्योः तुदादिः। इति क्षत्रं न क्षीयते **नक्षत्रं** जो न गले, नष्ट न हो। गति न रुके, न क्रामति आगे पग न बढ़ाये **नक्रं**, क्रमेर्डः। न अकं यस्मिन् **नाकः** स्वर्गम्। जहाँ दुख नहीं। इन शब्दोंके नञ्समासमें प्रकृत्या यथा स्थितिः। नकार लोप न हो।

।७६०। **नगो**–न गच्छति **नगः**। यहां पर नञको प्रकृतिभाव, विकल्पसे न लोप हो, **नगाः अगाः**। न--लोपे। पर्वतः स्थिर है चलता नहीं। **अप्राणिषु**= चेतन जीव न रहे तब। यदि चेतन हो, प्रकृतिभाव नहीं, नलोप होगा। **अगौः** वृषलः, ठण्डसे जकड़ाशूद्र, चल नहीं पाता 'न' लोप हुआ। नित्यं क्रीडाजीविकयोःसे नित्यं आता है ।६१। **कुगति**=कु और गतिसंज्ञक और प्रादि प्र परा अप समादि, इनका समर्थ सम्बद्ध **अर्थ**के साथ नित्य समास हो तत्पुरुष मान्य। **कुत्सितः पुरुषः**। निन्दित नीच लम्पट पुरुष। नित्यसमासमें भिन्नपदके साथ विग्रह। कु निन्दित अर्थवाला अव्यय लिया जायगा। पृथ्वीका पर्याय नहीं। गतिसंज्ञा के सम्पर्कसे 'कु–पुरुष सु' समासादिकार्ये **कुपुरुषः**। क्रियाके योगमें गतिश्चकी अनुवृत्ति।

कुपुरुषः । 'गतिश्च' (सू २३) इत्यनुवर्तमाने । **६२ ऊर्यादिच्विडाचश्च १।४।६१॥** एते क्रियायोगे गतिसंज्ञाः स्युः । ऊरीकृत्य । शुक्लीकृत्य । पटपटाकृत्य ।* 'कारिकाशब्दस्योपसंख्यानम् । कारिका क्रिया । कारिकाकृत्य । **६३ अनुकरणं चानितिपरम् १।४।६२॥** खाट्कृत्य । अनितिपरम् किम् । खाडिति कृत्वा निरष्ठीवत् । **६४ आदरानाद-**

। ७६२ , **ऊर्यादि**=च्वि और डाच् प्रत्यय हैं । कृ भू अस्के प्रसङ्गमें पढ़े गये । उनके सम्पर्कसे **ऊरी ऊररी** आदिकी तत्रैव गतिसंज्ञा । इस लिए ऊरी क्त्वा गतिसंज्ञा नहीं । उससे क्त्वा भी अव्यय स्वीकार **ऊरीकृत्य** हृदयङ्गं करके । अस्वीकृतको स्वीकृत करके **अभूततद्भाव** जो नहीं था अब हो गया अर्थे च्वि । कृत्वा क्रियाके योगमें गतिसंज्ञा । कुगति प्रादयः, समासे **अनञ्पूर्वो क्त्वो ल्यप्** । गतिसंज्ञाका फल समास, उसका फलल्यप् **ऊरीकृत्य** इसी प्रकार **ऊररीकृत्य** स्वीकार अर्थमें । **आविः** शब्द साक्षात्प्रभृतिगणमें पाठसे कृञ्के योगमें गतिसंज्ञा विकल्प प्राप्त था, **कृभ्वस्तियोगे** अनेन गतिसंज्ञा । **शुक्लीकृत्य** अशुक्लं शुक्लं कृत्वा, कालाको सफेद बनाकर । कृ के सम्बन्धमें अभूततद्भावे जो सफेद नहीं था वह श्वेत हुआ, अर्थे च्वि, गतिसंज्ञायां, समासे, क्त्वो ल्यप् वेरपृक्तस्य, वलोपे । अस्य च्वौ, ईत्वे । **पटपटा इतिशब्दं कृत्वा** अव्यक्तानुकरण से डाच् । पटत् को डित्व, अत् लोप, तकारस्य अकारे । एकादेशे गतिसंज्ञा समासे ल्यप् । (वा०) **कारिका** शब्दको भी **गतिसंज्ञा** कहें, क्रियाके सम्बन्धमें । कारिकाका अर्थ क्रिया है । धातुका क्रिया अर्थमें कृ से ण्वुल् । **स्त्रियांक्तिन्** के अधिकारमें **कारिकां कृत्वा** क्रिया करके । कारिकां को गतिसंज्ञा । कुगति-प्रादयः समासे, ल्यप् सुपो लुक् । कारिकाशब्द न कर्ता है न श्लोक, व्याख्यान से । मर्यादास्थितिः अर्थः ।

। ७६३ । **अनुकरणं**=नकल (फोटो) को गतिसंज्ञा हो, इति परे न हो तब । यथा **खाट शब्दं कृत्वा** (खखारकर) अनुकरणं च, गतिसंज्ञा, समासे ल्यप् **खाटकृत्य** । ते **प्राग्धातोः** संज्ञा नियमपक्षमें अनिति व्यर्थ है । अतः पूँछे **अनिति परं किम्**, इति परे न हो ऐसा क्यों ? प्रयोगनियम पक्षमें खाडिति अनुकरणकी इति परे गतिसंज्ञा न हो अतः **अनिति पढ़ा** । निरष्ठीवत् थूक दिया । ७६४ । **आदर**-सत्कारं, अनादर-तिरस्कार अर्थमें क्रमसे सत् और असत् इति गतिसंज्ञक हों । सत्कारं कृत्वा **सत्कृत्य** इससे सत् की गतिसंज्ञा, कुगति

रयोः सदसती १।४।६३॥ सकृत्य। असत्कृत्य। ७६५ **भूषणेऽलम्** १।४।६४॥ अलंकृत्य। भूषणे किम्। अलं कृत्वौदनं गतः। पर्याप्तमित्यर्थः। अनुकरणम्—इत्यादित्रिसूत्री स्वभावात्कृञ्विषया। ६६ **अन्तरपरिग्रहे**। १।४।६५॥ अन्तर्हत्य। मध्ये हत्वेत्यर्थः। अपरिग्रहे किम्। अन्तर्हत्वा गतः। हतं परिगृह्य गत इत्यर्थः। ६७ **कणेमनसी श्रद्धाप्रतीघाते** १।४।६६॥ कणेहत्य पयः पिबति। मनोहत्य। कणेशब्दः सप्तमीप्रतिरूपको निपातः अभिलाषातिशये वर्तते। मनश्शब्दो-

---

समास क्त्वा ल्यप्। अनादरं कृत्वा **असत्कृत्य** (अपमान करके) गतिसमास ल्य०। ७६५। **भूषण**—अलङ्करण अर्थमें वर्तमान अलम् इस अव्ययकी गतिसंज्ञा हो। हार-केयूर कर्णपुष्प आदि धारणेन शरीरसंस्कारं कृत्वा **अलंकृत्य** गतिसंज्ञा समासादिः। अनुकरणं चानितिपरं, सूत्रसे तीन सूत्र कृञ्के सम्बन्धमें स्वभावसे होते हैं। वस्तुतः संकोचमें प्रमाण नहीं, अन्य धातुके योगमें भी लगते हैं। **अलं भुक्त्वा ओदनं गतः**। सूत्रमें **भूषणक्यों** पढ़ा? इसलिए कि पर्याप्त अर्थमें अलंको गतिसंज्ञादि न हो। **अलंकृत्वा**। ओदनं (भात) पर्याप्त बनाकर गया।

।७६६। **अन्तः अपरिग्रह**=न लेने अर्थमें वर्तमान अन्तः इस अव्ययकी गतिसंज्ञा हो। **अन्तः मध्ये हत्वा गतः**। मध्यमें सिंहको मारा, छोड़ गया। न लेने अर्थमें अन्तः शव्दको गतिसंज्ञा समासे। क्त्वा-ल्यप् अपरिग्रह अर्थ क्यों? जहां ग्रहण अर्थमें अन्तः शब्द हो वहां गतिसंज्ञा न हो। यथा **अन्तर्हत्वागतः** (भीतर मारा लेकर गया) यहाँ न गतिसमासौ (७६७) **कणे** और **मनस्** दोनों **श्रद्धा**=अत्यन्त अभिलाषा उसका **प्रतिघात**=निवृत्ति--शांति अर्थमें गतिसंज्ञक हों **कणेहत्य** तीव्रपिपासा जलके प्रति श्रद्धा है, पीनेपर पिपासा शान्ति प्रतिघात है, तृप्तिपर्यन्त पीता है। प्यास समाप्ति अर्थमें कणे इत्यस्य सूत्रेण गतिसंज्ञा कुगतिसमासे। क्त्वास्थाने ल्य। **मनोहत्य** मनभर पीया, तृप्तिपर्यन्त। मनस् को गतिसंज्ञा, समास ल्य। समासमें कणेसे सप्तमीका लुक् क्यों नहीं? तब बोले कणेशव्द सप्तमी अर्थका बोधक निपात है। ननु श्रद्धाके प्रतिघातका ज्ञान कैसे? श्रद्धा सूचकशब्द नहीं है, जब मनका घात होगा, तब पयका पान कैसे? तब बोले **अभिलाषातिशयेन**—इच्छाकी अधिकताके अर्थमें कणेशब्द है, मनः शब्द भी। उसी अर्थमें इच्छानिवृत्ति संतुष्टिपर्यन्त जलपान। श्रद्धाके समाप्ति तक अर्थ क्यों? जहाँ सूक्ष्म तण्डुलका अवयव कण है। तद्विषयं हत्वा गतः। **मनोहत्वा गतः** विष या मद्यपानमें मनकी रुचिको रोककर गया। गति-

ऽप्यत्रैव। ६८ **पुरोऽव्यम्** १।४।६६॥ पुरस्कृत्य। ६९**अस्तं च** १।४।६८॥ अस्तमिति मान्तमव्ययं गतिसंज्ञं स्यात्। अस्तङ्गत्य। ७७० **अच्छगत्यर्थवदेषु** १।४।६९॥ अव्यमित्येव। अच्छंगत्य। अच्छोद्य अभिमुखं गत्वा उक्त्वा चेत्यर्थः। अव्ययं किम्। जलमच्छंगच्छति। ७१ **अदोऽनुपदेशे** १।४।७८ अद ऽकृत्य, अद ऽकृतम्। परं प्रत्युपदेशे प्रत्युदाहरणम्। अदः कृत्वा् अदः कुरु। ७२ **तिरोऽन्तर्धौ** १।४।७१॥ तिरोभूय। ७३ **विषाभा कृञि** १।४।७२॥ तिरस्कृत्य,

---

समास न हो। यहां इच्छाका रोकना अर्थ है। पूर्तिकर प्रतिघात अर्थ नहीं।

।६८। **पुरो**=पुर अव्यय गतिसंज्ञक हो। इसका फल समास और क्त्वाको ल्यप्। पुरः कृत्वा आगे करके पुरोऽव्ययं गतिसंज्ञा कुगति-समासे। क्त्वा ल्य। **पुरस्कृत्य नमःपुरुषोःविसर्गस्यसः। अमुं पुरः पश्यसि देवदारुं** यहां स्थितके आहरणसे न गति, न फल। **अव्ययक्यों** पढ़ा? **पुरं पुरौ पुरः कृत्वा गतः**। गाँव होकर गया, अव्यय नहीं, गति समास न हो।

।६९। **अस्तं** यह मान्त अव्यकी गतिसंज्ञा हो। अव्यय आया। अस्तङ्गत्वा तिरोधानं प्राप्य डूबकर **अस्तङ्गत्य** गतिसंज्ञा समासे ल्यप्। **अव्यय पढ़ा? काण्डम् अस्तं कृत्वा प्रक्षिप्तं**, गोहरी कण्डी फेंककर। यहां अस्तम् अव्यय नहीं गतिसमास भी नहीं (७७०) **अच्छ** इस अव्ययको गतिसंज्ञा तब हो, जबकि गत्यर्थक और वद् धातुका प्रयोग हुआ हो। अव्ययको ही। अच्छङ्गत्वा (सुपथसे चलकर सफल है) गतिसंज्ञा कुगति समासे ल्य। अच्छं गत्य अच्छम् उक्त्वा। स्पष्ट बोलकर। अ**च्छ** वद् क्त्वा गतिसंज्ञा—समासे ल्य। अच्छशब्द अभिमुख अर्थमें हैं सामने जाकर, कहकर। **अव्यय क्यों** पढ़ा? इसलिए कि जहां अच्छ अव्यय नहीं न गतिसंज्ञा, न निपातसंज्ञा, वहां गतिसमास न हो। **जलमच्छं**=निर्मल जल जा रहा है।

।७७१। **अदः**=अदः शब्द उपदेश अर्थमें न हो, तब गतिसंज्ञक हो, **अदः कृत्वा अदःकृत्य**। यह काम करके, यह कार्य किया। गतिसंज्ञादिः। **गतिरनन्तरः** के पूर्वपदप्रकृतिस्वरसे आदि उदात्त। यदि **अमुं यज्ञं कृत्वा** अर्थ करेंगे। तब समासमें सुप लुक् होगा। **यदा स्वयमेव पर्यालोचयति तदा इदम्। यदा परं प्रति उपदेशः अदः कृत्वा अदः कुरु**। प्रति उदाहरण ।७२। **तिरोऽन्तर्धिः** व्यवधानं छिपाव अर्थमें तिरस्को गतिसंज्ञा हो। तिरोभूत्वा छिपकर गतिसंज्ञा समासे ल्य। ७७३। **विभाषा**=कृञिके प्रयोगमें तिरस् इस अव्ययकी

तिरस्कृत्य, तिरः कृत्वा । ७४ **उपाजेऽन्वाजे** १।४।७३।। एतौ कृञि वा गतिसंज्ञौ स्तः । उपाजेकृत्य, उपाजे कृत्वा । अन्वाजेत्य, अन्वाजे कृत्वा। दुर्बलस्य बलमाधायेत्यर्थः । ७५ **साक्षात्प्रभृतीनि च** १।४। ७४।। कृञि वा गतिसंज्ञानि स्युः ।* 'च्व्यर्थ इति वाच्यम्' साक्षात्कृत्य साक्षात् कृत्वा । लवणंकृत्य, लवणं कृत्वा । मान्तत्वं निपातनात् । ७६ **अनत्याधान उरसिमनसी** १।४।७५।। ऊरसिकृत्य, उरसि कृत्वा । अभ्युपगम्येत्यर्थः । मनसिकृत्य, मनसि कृत्वा । निश्चित्येत्यर्थः ।

गतिसंज्ञा विकल्पसे हो । तिरः कृत्वा त्याग करके । गतिसंज्ञा । पक्षमें समास ल्य । **तिरसोन्यतरस्यां** से विकल्प । यदा न गतिः, तदा सत्वंन । **तिरः कृत्वा ।** कोई परिभव अर्थमें तिरस्कारके दर्शनसे सत्वविधिमें गति नहीं आती । ७७४ । **उपाजे अन्वाजे** (दुर्बलमें बल शक्ति स्थापना) इन दोनों निपातोंका कृञ्परे विकल्प गतिसंज्ञाके पक्षमें कुगति-समास, क्त्वा ल्य । **उपाजेकृत्य** (कमशक्तिमें पूर्ण ताकत भरकर) यदा न गतिः तदा न ल्यप् अनेन **अन्वाजेकृत्य भवति ।**

। ७७५ । **साक्षात्**=मिथ्या आम् अद्धा लवण उष्ण, शीत, उदक, आर्द्र प्रभृति=इत्यादि अव्यय प्रयोगोंकी भी गतिसंज्ञा हो, कृञ्परे । इस सूत्रपर वार्तिकारने कहा कि च्वि=अभूततद्भाव (जो हुआ नहीं था, अब हो गया) ऐसा अर्थ जान पड़े तब गतिसंज्ञा कहें । गतिसंज्ञाके प्रसङ्गमें लवणादि पाँच को मकारान्त मानें । प्रादुस् नमस् आविस्से आकृतिगण मान्य । अप्रत्यक्षं प्रत्यक्षं कृत्वा जो सामने नहीं था उसे सामने करके **साक्षात्कृत्य ।** सूत्रेण गतिसंज्ञा समासे ल्य । यदा न गतिः तदा न ल्यप् । **अलवणं लवणं कृत्वा** (जो नमकीन नहीं था उसे नमकीन बनाकर) लवणं कृत्वा । सूत्रेण मान्त की गतिसंज्ञा समासे । सुलोपकी शङ्का मिटानेके लिए बोले—**मान्तत्वं निपातनं** गणमें पढ़े जानेके सामर्थ्यसे मान्त है । अतः सुलोप नहीं । यदि च्वि (नहीं नहीं था, अब हुआ) अर्थमें **विप्रतिषेधे परं कार्य** के बलपर **उर्यादिच्वि**-से नित्य गतिसंज्ञा होगी, तब मान्त नहीं **लवणीकृत्य** । जहाँ विकल्प गतिसंज्ञा है वही मान्तगणमें मान्य । इससे तीनरूप सिद्ध । विभक्ति अर्थका बोधक ।

। ७७६ । **अनत्याधानं**=अधिक संलिष्ट चिपका हुआ न हो, तब विभक्ति अर्थके बोधक छायारूप **उरसि** और **मनसि** को गतिसंज्ञा विकल्पसे हो । **उरसि कृत्वा** हृदय मनमें रखकर, स्वीकार कर, अत्याधानका **अभ्युपगम्य**=स्वीकारकर अर्थ किया । उरसिको सूत्रेण गतिसंज्ञा समासे ल्यप । **मनसिकृत्य** मनमें

अत्याधानमुपश्लेषणं, तत्र न। उरसि कृत्वा पाणिं शेते। ७७ **मध्ये पदे निवचने च १।४।७६॥** एते कृञि वा गतिसंज्ञाः स्युरनत्याधाने। मध्येकृत्य, मध्ये कृत्वा। पदे कृत्य, पदे कृत्वा। निवचनेकृत्य, निवचने कृत्वा। वाचं नियम्येत्यर्थः। ७८ **नित्यं हस्ते पाणावुपयमने १।४।७७॥** कृञि। उपयमनं विवाहः। स्वीकारमात्रमित्यन्ये। हस्तेकृत्य पाणौकृत्य। ७९ **प्राध्वं बन्धने १।४।७८॥** प्राध्वम् इत्यव्ययम्। प्राध्वं कृत्य। बन्धनेनानुकूलं कृत्वेत्यर्थः। प्रार्थनादिना त्वानुकूल्यकरणे, प्राध्वं कृत्वा। ८० **जीविकोपनिषदावौपम्ये १।४।७९॥** जीविकामिव कृत्वा जीविकाकृत्य। उपनिषदमिव कृत्वा उपनिषत्कृत्य। औपम्ये

निश्चय करके गतिसंज्ञादि :। अत्याधानका अर्थ विस्तार हो **उपश्लेषणं** संयोग सम्बन्ध। वहाँ गतिसंज्ञा न हो। यथा–हृदयपर हाथ रखकर सोता है। संयोग होनेसे उरसि कीं गतिसंज्ञा नहीं। **अनत्याधान क्यों ? शिरः पदे कृत्वा नमति।**

। ७७। **मध्ये, पदे, निवचने** ये तीन कृञ् परे विकल्पसे गतिसंज्ञक हो, अत्याधान न हो तब। दोनों पक्षमें तीनोंको एकार निपातनसे। **मध्यंकृत्वा** (बीचमें करके) गतिसंज्ञा समास ल्यप्। यदा न गतिसंज्ञा तब दोनों पक्षमें एत्व। **पदंकृत्वा** गतिसमास ल्यप्। एत्व। **वचनाभावं कृत्वा** मौन होकर वाणी रोककर। **वचनस्य अभावः निवचनं** अर्थके अभावमें अव्ययीभाव गतिसमास ल्यप एत्व। ७८। **हस्ते** और **पाणौ** को कृञ्परे नित्य गतिसंज्ञा हो। **उपयमने** (विवाह अर्थ होनेपर। कोई स्वीकार मात्र अर्थ मानते हैं) **हस्तेकृत्वा=कन्यां स्वीकर्तुं पाणिं गृहीत्वा सूत्रेण** नित्यंगतिसंज्ञा। एत्व निपातनसे। पाणौकृत्व पाणि कृत्वा, गत्यादिः, औकार निपातन से। **उपयमन क्यों हस्तेकृत्वा सुवर्णं शेते।** हाथमें सोना लेकर सोता है जो अन्यका है उसे लौटानेके लिए (७९) **प्राध्वं**=बन्धन अर्थमें अव्यय है। उसकी गतिसंज्ञा हो। **प्राध्वङ्कृत्य** (बन्धनसे अनुकूल करके) गतिसंज्ञा आदिः। बन्धनसे अनुकूल अर्थमें **गतिसंज्ञा क्यों ?** इसलिए **कि** प्रार्थना सेवा दानसे अनुकूल करनेमें गतिसंज्ञादि न हो किन्तु **प्राध्वं कृत्वा** सेवासे अनुकूल करके !

। ८०। **जीविका** और **उपनिषद** को गतिसंज्ञा हो, कृञ्के योगमें, उपमाके विषयमें। **उपमैव औपम्यं।** यथा **जीविकामिव कृत्वा,** भोजन पान भवन वस्त्र आदि जीवनका उपाय ही जीविका है। **तामिव अवश्यं कृत्वा।** सूत्रेण जीविका शब्दस्य गतिसंज्ञा समासे ल्यपि। **जीविका कृत्य। उपनिषदमिव** (वेदान्त भाग)

किं ? जीविकां कृत्वा । प्रादिगणमगत्यर्थम् । सुपुरुषः । अत्र वार्तिकानि प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया' प्रगत आचार्यः प्राचार्यः ।* अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितयया' अतिक्रान्तो मालामतिमालः ।* आवादयः कुष्टाद्यर्थे तृतीयया' अवक्रुष्टः कोकिलया अकोकिलः ।* पर्यादयो

की तरह रहसि ग्राह्यत्वेन कृत्वा गतिसमासे ल्यप । दोनों स्थलमें सुप लुक् । सूत्रमें **औपम्य क्यों** पढ़ा ? जहाँ उपमा न हो वहाँ गत्यादि न होनेके लिए । यथा **जीविकां कृत्वा** यहाँ उपमा नहीं । यहाँ तक **कुगतिप्रादयः**, सूत्रके गति-संज्ञकके साथ समास विस्तार हुआ । अत्र शङ्का—**प्रादि**=प्र परा, अप, सम आदिकी गतिसंज्ञासे समास सिद्ध था, यहां प्रादि क्यों पढ़ा ? तब बोले—**प्रादि-ग्रहणमगत्यर्थं**—गतिसंज्ञा न हो, अतः प्रादि पढ़ा । ताकि शोभनः पुरुषः सु-पुरुषःमें समास हो । सु प्रादि है । क्रिया योगके विना गतिसंज्ञा सम्भव नहीं, समास न हो पाता । सु पूजार्थक है । क्रिया योगी नहीं, भाष्यमें **स्वाङ्स्वति-दुर्गताः समस्यन्ते** ऐसा कहकर **कुब्राह्मणः** आकडारः **सुब्राह्मणः अतिब्राह्मणः दुर्ब्राह्मणः** । सु अति पूजायां, दुर्निदायां, आङिषद् अर्थे इति **सौनागव्याकरणम्** ।

किस वार्तिकका किस दशामें, किस अर्थके साथ समास हो । उसकी व्य-वस्थाके लिए **वार्तिकानि पठ्यन्ते प्रादयः**—इति पाँच वार्तिक **सौनागव्याकरणसे** सिद्ध भाष्यमें पढ़े गये है । उहें सुनें—प्रादयः गतादि अर्थमें प्रथमाके साथ **सम-स्यन्ते**=एकार्थ हों । **प्रगतः आचार्यः** प्र का विवरण गत है । गतः आचार्यः इति अस्वपदविग्रहे, प्र आचार्य— प्रादयः वार्तिकेन नित्यसमासादिः **प्राचार्यः** । गतिशील, ज्ञान प्राप्त प्रकर्ष आचार्य । एवं **प्रगतः पितामहः प्रपितामहः, प्रमा-तामहः** आदि शब्दसे । **दुराचारः पुरुषः दुष्पुरुषः** । शोभनः पुरुषः **सुपुरुषः** पराभूतः । (वा०) **अत्यादयः** अति अभि, प्रति, परि, **आदिका क्रान्तादि** लाँघना गमन, वढ़ चढ़कर स्पर्धा आदि अर्थमें द्वितीयाके साथ समास हो । आदिपदसे **अभिगतोमुखं अभिमुखः उद्गतो वेलां उद्वेलः** । समयसे ऊपर । **प्रतिगतः अक्षं प्रत्यक्षः । अतिक्रान्तः** अतिशब्दका क्रान्त अतिक्रमण उलंधन अर्थ है । अतः **क्रान्तोमालां** लौकिकं वाक्यं, **माला अम् क्रान्त** अलौकिक **क्रमु** पादविक्षेपे **अत्यादयः** वार्तिकेन **समासे समासत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां सुपो धातु प्रातिपदिकयोः** सुपः लुक् । उपसर्जनसंज्ञा पूर्वप्रयोगे । **अतिमालः एकविभक्ति चापूर्वनिपाते सूत्रेण मालाशब्दस्य उपसर्जनसंज्ञा गोस्त्रियोः ह्रस्वे । अवादयः**= अव परि सम आदि प्रादि **क्रुष्टाद्यर्थे**=चिढ़ने, क्रुद्ध होने, खीझने चिल्लाने, चूं-चूं

ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या' परिग्लानोऽध्ययनाय पर्यध्ययनः।* निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या'। * निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः निष्कौशाम्बिः। * 'कर्मप्रवचनीयानां प्रतिषेधः' वृक्षं प्रति। **८१ तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् ३।१।९२॥** सप्तम्यन्ते पदे 'कर्मणि' इत्यादौ वाच्यत्त्वेन

करने अर्थमें, तृतीयाके साथमें एक अर्थ वाला हों। **कोकिलया अवकुष्टः** आहुतः **अवकोकिलः** बसन्तः। जिसको कोयल बुलाती है **कोकिला टा अव समासादिः। उपसर्जन ह्रस्वे। परिणद्धो वीरुधाः परिविरुतः**। चारो तरफसे बँधा हुआ। सन्नद्धः वर्मणा **सम्वर्म**। कवच धारण किया हुआ। **पर्यादयः**=परि उत आदिका **ग्लानादि**=दुःखी कष्ट थकावट परेशान अर्थके चतुर्थीसे साथ समास हो। **परिग्लानः अध्ययनाय तादर्थ्ये चतुर्थी**। गुरुकुल बाससे घर त्यागकी ग्लानि अथवा पढ़ते-पढ़ते श्रान्त थकावट। परिका ग्लानि अर्थ, **अध्ययन ङे परि**। आदिः। **उद्युक्तः संग्रामाय उत्सङ्ग्रामः। निरादयः** निर उत आदिका **क्रान्त** पादविक्षेप अतिक्रमण आदि अर्थमें पञ्चमीके साथ समास हो। **निष्क्रान्तः** कौशाम्बी नगरीसे निकला हुआ **कौशाम्बीङसि निर। समासादिः**। निरका निर्गमन अर्थ, उपसर्जन ह्रस्वे, निर्गतः काश्याः **निष्काशिः** अगस्त्यः वेदव्यासश्च उत्क्रान्तः कुलात् **उत्कुलः**। अङ्गुलिभ्यो निर्गतं **निरंङ्गुलं अगूठी**। कर्मप्रवचनीयसंज्ञा हुई तब कुगतिप्रादयः से प्राप्त समासका निषेध, अवरोध हो। **सुराजा अतिसखा** जैसे भाष्यप्रयोगसे **सुअति से** भिन्नका निषेध समझें, **वृक्षं प्रति** यहाँ प्रतिको कर्मप्रवचनीय, लक्षणेत्थंभूत–से हुआ। तेन कारणेन वार्तिकेन प्रादिसमास निषेधः। **अपिस्तुतं** भी उदाहरण।

उपपद समास प्रदर्शनके उद्देश्यसे उपपदसंज्ञा सूत्र··· ।७८१। **तत्रोपपदं** का अधिकार है। सप्तमीमें तदन्तविधिः। सप्तमी अन्तमें हो ऐसा पद **वाचक** हो, उसके **वाच्य** अर्थके सम्बन्धकी स्थितिको **सप्तमीस्थ** कहते है। धातोः अधिकारः। धातुके अधिकारके अन्तर्गत जैसे **कर्मणि अण्** आदि सूत्रके कर्मणि में सप्तमी उच्चारण है, उसका उदाहरण **कुम्भङ्करोति कुम्भकारः** है। कर्मणि सप्तम्यन्तका वाच्य अर्थ कुम्भ है। उसको उपपदसंज्ञा हो, धातुके अधिकारमें **यत्सप्तम्यन्तं कर्मणि तद्वाच्यं यत्कुम्भादि तद्वाचकं पदं उपपदसंज्ञंस्यात्**, इत्यस्य अधिकारः फलितः। यद्यपि **धातोः कर्मणः, समानकर्तृकात् धातोरेकाचो, धातोः** क्रमसे तीनका अधिकार। तीसरे अधिकारमें सप्तम्यन्त लिया जायगा।

स्थितं कुम्भादि तद्वाचकं पदमुपपदसंज्ञं स्यात्। तस्मिंश्च सत्येव वक्ष्यमाणः प्रत्ययः स्यात्। ८२ **उपपदमतिङ् २।२।१९॥** उपपदं सुबन्तं समर्थेन नित्यं समस्यते। अतिङन्तश्चायं समासः। कुम्भं करोतीति कुम्भकारः। इह कुम्भ अस् कार इत्यलौकिकं प्रक्रियावाक्यम्। अतिङ् किं मा भवान्भूत्। 'माङि लुङ्' इत सप्तमीनिर्देशान्माङुपपदम्।

धातोरेकाचः के अधिकारमें च्लि लुङि की सप्तमी नहीं है। अत्र शङ्का—**तत्र व्यर्थ** है धातोः का अधिकार प्रसङ्गसे लिया ही जायेगा। तब बोले—**तस्मिन्सति** 'तत्र' के रहते **उपपदसंज्ञा वक्ष्यमाणः**=होनेवाले प्रत्यय हों। भाव यह हैं कि तत्र भिन्न वाक्य है। उसका अर्थ सप्तम्यन्तके वाच्यशब्दको उपपदसंज्ञा हो, तत्र **तस्मिन्सति**=उपपदसंज्ञाके रहते अग्रिमकार्य हो। यही तत्रका मतलब है। कर्मणि अण्में यह सूत्र जायगा, उपपदसंज्ञा करनेपर आगेका अण्कार्य, कर्तअर्थ में धातुसे होगा। **कर्मवाचक** कुम्भ आदिको उपपदसंज्ञा होनेपर ही अण् हो।

।८२। **उपपदसंज्ञक** सुबन्तका **समर्थ**=सम्बद्धअर्थ के साथ समास हो, **अतिङ्**=तिङन्तपरे न हो तब। सुबामन्त्रिते से सुप् आया, समर्थ आकर तृतीयामें बदला। **तिङन्तघटितः समासो न भवति। अतिङ् क्यों** पढ़ा? **कारको व्रजतिमें** तिङन्तके साथ समास न हो। अतः अतिङ् पढ़ा। सुप्की अनुवृत्तिका फल **चर्मकारः** में चर्मन्का न लोप। **कुम्भं करोति** विग्रहे **कर्मणि-अण्** सूत्रसे कर्म बना कुम्भकी उपपदसंज्ञासे कृधातुसे कर्तामें अण्। अचोऽञ्णितिसे कृके ऋको आर वृद्धि, **कुम्भ ङस् कार इतिदशायां उपपदमतिङ् सूत्रेण समासे, प्रातिपदिकसंज्ञा सुपो लुक् स्वादिकार्ये कुम्भकारः घटनिर्माता। अत्र सन्देहः** कुम्भं करोति विग्रह कैसे, तिङन्त है। अतिङन्तके साथ समास कहा गया। तब बोले—**कुम्भ अस्** कार यह अलौकिक वाक्य दशामें समास। **लोके प्रयोगानर्हत्वमलौकिकत्वं**, व्यावहारिकवाक्य न हो, तभी समास होता है। कर्तृकर्मणोः कृतिसे षष्ठी। अतिङ् पढ़नेका फल देते है, **मा भवान्भूत्** यहाँभूत् तिङन्तके साथ माका समास न हो, बीचमें भवान् शब्द समासाभाव सूचकः। अत्र **शङ्का**? माङ् उपपद नहीं, समासप्राप्ति कैसे? तब कहा कि **माङि लुङि में सप्तमी पढ़नेसे**। तत्रोपदं से माङ्को उपपदसंज्ञा होगी। ननु सुपाकी अनुवृत्ति होगी, सुबन्तके साथ समास होगा, मा भवान्भूत् तिङन्त है समास नहीं होगा, तब **अतिङ् व्यर्थ** होकर प्रमाण होगाकि, **सुपा इति इह न अनुवर्तते**, सुपाकी अनुवृत्ति नहीं होती। इसी प्रकार कुगतिप्रादयःसे समास

अतिङ्ग्रहणं ज्ञापयति सुपा इत्येतन्नेहानुवर्तत इति। पूर्वसूत्रेऽपि गतिग्रहणं पृथक्कृत्यातिङ्ग्रहणं तत्रापकृष्यते। सुपा इति च निवृत्तम्। तथा च 'गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक्सुबुत्पत्तेः' इति सिद्धम्। व्याघ्री। अश्वक्रीती। कच्छपी। **८३ अमैवाव्ययेन २।२।२०॥** अमैव तुल्यविधानां यदुपपदं तदेवाव्ययेन सह समस्यते।

भी असुबन्तके साथ होता है वह कैसे ? तब बोले—**पूर्वसूत्रेऽपि कुप्रादयः** इति, **गति इति च,** सूत्रं विभज्यते। प्रथम अर्थ कु और प्रादिका समर्थसुबन्तके साथ समास हो। दूसरेका अर्थ गतिसंज्ञकका समर्थके साथ समास हो। अतिङ्का अपकर्षण=उत्तर सूत्रसे पूर्व सूत्रमें आगमन। **सुपा** की निवृत्ति। उक्त अर्थका फल बोले—**तथा च—गतिसंज्ञक, कारक** और **उपपदसंज्ञाका** कृदन्तके साथ समासकी प्राप्ति **सुबुत्पत्तेः प्राक्** सु आनेके पहले हो। इस परिभाषाका फल प्रस्तुत करनेके लिए प्रथम गतिसंज्ञक समासका उदाहरण-**व्याघ्री** बाघिन। **व्याजिघ्रति** जिसके सूंघते प्राण सूख जाँय, **व्याघ्रः**। विआङ्पूर्वक आघ्राणे अर्थे घ्राधातुः, आतश्चोपसर्गे कः, आतोलोपः। संज्ञा होनेसे 'श' नहीं हुआ। आङ्का घ्र-के साथ **गतिसमास,** तब **बि-के साथ** आघ्रका भी। सुप् उत्पत्तिके पहले समास हुआ। ङीप् होकर **व्याघ्री**। यदि सुबन्तके होनेपर समास होता, तब **स्त्रीलिङ्ग टाप्** होनेके बाद सुप आता, क्योंकि **स्वार्थद्रव्यलिङ्गसंख्या** कारक आनेके वाद प्रातिपदिकार्थमें सुप् आदि होते हैं। प्रथमलिङ्ग होता, तब अदन्तसे टाप् हो जाता है, जातिलक्षण ङीष् न होता, घ्र में जाति नहीं है। वह तो समासमें है। **कारक समासका उदाहरण-अश्वेन क्रीता स्त्री,** घोड़ा देकर खरीदी गयी, **अश्वटा क्रीत इति दशायां कर्तृकरणे कृता बहुलमिति समासे** कारक उपपद है सु आनेके पहले समास क्रीतात्करणपूर्वात् से ङीष्से **अश्वक्रीती** सुपा आनेपर यदि समास होता, तब पहले टाप् हो जाता, अदन्त न न रहता, ङीष् न हो पाता। **उपपद समास कच्छेन तटेन तटे वा,** अथवा **कच्छे जलं पिबतीति कच्छपी**। या कच्छेन साधनेन पिबति। **कच्छ टा पा**। सुपिस्थः कः, **तत्रोपपदसंज्ञा उपपदमतिङ् समासे आदिः**, अकारान्तमें ङीष् कच्छपी, कछुही उपपदसंज्ञामें सु आनेके पहले समास, यदि सुप आनेपर समास होता तब जाति लक्षण ङीष् न हो पाता। किन्तु स्वार्थ में परिपूर्ण रहकर टाप् ही होता।

। ८३। **अमैव** के बाद तुल्य विधान आया। **तुल्यार्थैः अतुलोपमाभ्यां तृतीया**। अम्प्रत्ययमात्र विधायकशास्त्रसे वे अम् होनेके साथ जिसकी उपपद-

स्वादुङ्कारम् । नेह । 'कालसमयवेलासु तुमुन्' कालः समयो वेला वा भोक्तुम् । अमैवेति किम् । अग्रेभोजम्-अग्रे भुक्त्वा । 'विभाषाऽग्रे-प्रथमपूर्वेषु' इति क्त्वाणमुलौ । अमा चान्येन च तुल्यविधानमेतत् ।

८४ तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम् २।२।२१॥ 'उपदंशस्तृतीयायाम्'

संज्ञा हुइ हो उसका अव्ययके साथ समास हो । यह कार्य **पूर्वसूत्रसे** सिद्ध था, यह सूत्र नियम करता है कि **तदेव=यस्मिन् उपदे येन वाक्येन अम्** इत्यस्य **विधानं तदेव उपपदम् अव्ययेन समस्यते नान्यत्र** । द्वितीय एवकार नियमसे लब्ध है, सूत्रस्थ नहीं । अर्थात् जिस सूत्रसे केवल अम्का तुल्यके साथमें विधान निश्चित हो, वही सूत्र लगे, दूसरा नहीं । यथा **स्वादुङ्कारं** स्वादिष्ट बनाकर **लावणिकं भोक्तुं, स्वादुंकृत्वा विग्रहे स्वादुंमि णमुल् क्त्वा स्थाने अम् । वृद्धि ।** स्वादुं मान्त है निपातनसे । कृन्मेजन्तः मान्त मानकर **अव्ययसंज्ञा अमैवाव्ययेन समासादिः । तदेव** पदके नियमका फल बोले—**कालसमयवेलासु**–सप्तमीके उच्चारणसे काल-समय-वेला उपपदसंज्ञक यद्यपि है, तथापि भोक्तुं (भोजनका) कालः वेला, भुजधातुसे तुमुन्के तुल्यकालमें उपपदका विधान है, अम्के साथ नहीं । अतः सूत्रसे समास नहीं, उपपद्संज्ञा और अम्प्रत्ययका साथ विधान हो, वहीं समस्यते । अमैवमें एव क्यों पढ़ा ? केवल अम् विधायकसूत्रके साथ उप-पदसंज्ञा हुई हो, ऐसा अर्थ क्यों ? इसलिए कि जो सूत्र अम् और क्त्वा दोनोंका विधान करते है उस अम्के साथ उपपदसंज्ञकका अव्ययके साथ समास न हो । यथा **अग्रेभोजनम् अग्रेभुक्त्वाः** पहले खाकर । यहाँ भुज् धातुसे **विभाषाग्रेप्रथम पूर्वेषु**–सूत्रसे क्त्वाणमुल् दोनोंका विधान है । अनुबन्धलोप । अम्का **अव्ययेन** क्त्वाका तुल्य–एकसाथविधान उपपदसंज्ञा अग्रे प्रथम, पूर्वको हुई । परञ्च समास नहीं हुआ । केवल अम्के साथ उपपदसंज्ञा विधानके अभावसे, नियम विरोधसे भीं । अव्यय न कहते तो कुम्भकारः में समास न होता, नियम-विरोधसे । **तदेव क्यों** कहा ? **कालोभोक्तुं समयोभोक्तुं** में समास न हो ।

। ८४ । **तृतीया-उपदंशः तृतीया** सूत्रसे मिलकर **'अनु अच् अनुलोम्ये'** इस सूत्र तक स्वीकृत उपपद जितने है वे सभी अमन्त अव्ययके साथ समस्त एकार्थवाला हों । **अमाव्ययेन** आया । एव नहीं आया अस्वरितत्वात् । यथा **मूलकोपदंशं** मुलीको दाँतसे काट-काटकर खाता है । भोजनकालमें **उपदंशं** में उपदेदंशस्तृतीयायांसे णमुल (अम्) मूलकेनमें तृतीया उपपद है । अमन्त अव्यय उपदंशं है । अम् और उपपदसंज्ञाका तुल्य—एकसाथ विधान प्राप्त

इत्यादीन्युपपदान्यमन्तेनाव्ययेन सह वा समस्यन्ते। मूलकेनोपदंशं भुङ्क्ते-मूलकोपदंशम्। उच्चैःकारम्। **८५ क्त्वा च २।२।२२।** तृतीयाप्रभृतीन्युपपदानि क्त्वान्तेन सह वा समस्यन्ते। उच्चैःकृत्य–उच्चैः कृत्वा। 'अव्ययेऽयथाभिप्रेत' इति क्त्वा, तृतीयाप्रभृतीनीति किम्, अलं कृत्वा' खलु कृत्वा **८६ तत्पुरुषस्याङ्गुलेः सङ्ख्याव्ययादेः ५।४।८६।** संख्याव्ययादेरङ्गुल्यन्तस्य तत्पुरुषस्य समासान्तोऽच् स्यात्। द्वे

था, इसने विकल्पः। **मूलक टा उपदंशम्** तृतीयाप्रभृतीनि–सूत्रेण समासादिः। यद्यपि मूलकेनका भुङ्क्तेमें अन्वयः, उपदंशके साथ समास कैसे? उपदशनक्रिया के प्रति आर्थिक–कर्म मूलक है, सामर्थ्य है। प्रधानक्रियाके अनुरोधसे शाब्दिक कर्म। **उच्चैःकृत्वा उच्चैकारम्** यहाँ अव्ययेऽयथाभिप्रत्याख्याने कृञः। क्त्वा-णमुलौ। उच्चैः कारम्। अम्के साथ भी उपपदका तुल्य विधान नहीं। अमैवाव्ययेन नियमसे अप्राप्त समासका विकल्पविधान। समास पक्षमें कृदुत्तरपद प्रकृति स्वर। असमासपक्षमें फिटसूत्रसे अन्तोदात्त। उच्चैः, स्वरे भेदः। अमन्त से समास क्यों? **पर्याप्तो भोक्तु** खानेके लिए पूर्ण है।, यहां समास न हो। पर्याप्तिवचनेषु तुमुन्।

।७८५। **क्त्वा**=तृतीया अर्थमें प्रथमा। टा में सुपां सुलुक् से पूर्वसवर्ण दीर्घ माना। **तृतीयाप्रभृतीनि**= पूर्व सूत्रमें कहे गये हैं। उन उपपद संज्ञकोंका क्तान्तके साथ विकल्प समास हो। यथा **उच्चैःकृत्य**। सूत्रेण समासे ल्यप् आदिः। पक्षमें **उच्चैःकृत्वा**। इस प्रकार **नीचैःकृत्य** उपपद समासादिः। यद्यपि उपदंशस्तृतीयायांसे पहले समानकर्तृकयोःसे क्त्वाका पाठ है, उच्चैः कृत्वा उदाहरण कैसे? तब बोले–**अव्ययेऽयथाभिप्रेताख्याने** कृञः। **क्त्वाणमुलौ** सूत्रका क्त्वा मान्य। सूत्रमें तृतीयाप्रमृतीनि क्यों पढ़ा? इसलिए कि अलंकृत्वा अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा, न लिया जाय। समास ल्यप् न हो। मान्त अव्यय भी न हो, **एतावत्प्रर्यन्तं उपपदसमाससंस्काराः समाप्ताः।**

अथतत्पुरुषेषु समासान्तप्रत्ययान् ब्रूते-समास संज्ञाका फल समासान्त प्रत्यय अच् टच् आदि भी है।८६। **तत्पुरुषस्य** इस सूत्रमें अच्प्रत्यन्ववपूर्वात्से अच् आया, समासान्तका अधिकार। समासके अवयवका लाभ। अङ्गुलेः अवयव षष्ठी। तदन्तविधि। संख्याव्यये आदिर्यस्य। संख्या और अव्यय आदिमें हों, अङ्गुलि अन्तमें हो, ऐसे तत्पुरुष समासके अन्तमें अच् हो। दो अङ्गुल प्रमाण है इसका, **द्व्यङ्गुलंदारु** दो अङ्गुलकी लकड़ी। **द्वि औ, 'तद्धितार्थोत्तरपद**

अङ्गुली प्रमाणमस्य द्व्यङ्गुलं दारु। निर्गतमङ्गुलिभ्यो निरङ्गुलम्।

८७ **अहस्सर्वैकदेशसङ्ख्यातपुण्याच्च रात्रेः ५।४।८७।।** एभ्यो रात्रेरच्स्यात्, चात्सङ्ख्याव्ययादेः।* अहर्ग्रहणं द्वन्द्वार्थम्' अहश्च रात्रिश्चाहोरात्रः। सर्वा रात्रिः सर्वरात्रः। पूर्वं रात्रेः पूर्वरात्रः। सङ्ख्यातरात्रः। पुण्यरात्रः। द्वयो रात्र्योः समाहारो द्विरात्रम्। अति-

---

समाहारे च' द्विगुसमासे प्रमाणे लः उसका द्विगोर्नित्यंसे लुक्। **तत्पुरुषस्याङ्गुलेः** सूत्रेण समासस्य अन्ते अच्–तद्धित परे यस्येति च इलोपे, स्वादिकार्ये **निरङ्गुलं** निकली हुई अङ्गुलिसे अँगूठी। निरादयः क्रान्तादि–अर्थेसमासे, उक्तसूत्रेण अच् इलोपे स्वादिः। द्विसंख्या है, निर् अव्यय।

।८७। **अहः**। एभ्यः=अहन्सर्व एकदेश संख्यात पुण्य–इनसे परे रात्रि-शब्दसे अच् हो, तत्पुरुष समासमें। चकार पढ़नेसे, संख्या और अव्यय आदिमें हों–रात्रि अन्तमें, ऐसे तत्पुरुषसे भी अच् हो। अत्रशंका–अहन् सर्व इत्यादि आदिमें हों, रात्रि अन्तमें हो, ऐसा तत्पुरुष दुर्लभः, **अह्नो रात्रिः अहश्चासौ रात्रिश्च** ऐसा असम्भव है, तब बोले **अहन्का ग्रहण द्वन्द्वसमासके लिए है** यद्यपि **ब्रह्मणो यत् अहः**। ब्रह्माका दिन उसका अवयव मनुष्यकी रात्रि, षष्ठी तत्पुरुष संभवः, तथापि **अहर्ग्रहणं द्वन्द्वार्थं** इस भाष्य वचनसे उक्त तत्पुरुषका अभाव मान्य। अहश्च रात्रिश्च, दिन और रात। द्वन्द्वसमासे अहः सर्वैक-सूत्रेण अच्, यस्येति च इलोपे। जातिः अप्राणिनाम् एकवचन, स नपुंसकं का नपुंसक बाँधकर **रात्राह्नाः पुंसिसे** पुंलिङ्ग। **अहोरात्रः**। सभीरात **सर्वरात्रः**। सर्वा-रात्रिः इति विग्रहे पूर्वकालैकसर्वजरत्सूत्रेण कर्मधारय समासे। उक्तसूत्रेण अच् इकारलोपे सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंस्त्वं स्वादिः, **पूर्वरात्रः** रात्रिकापूर्वभाग सूत्रमें एकदेशसे अर्थ लिया जायगा, शब्द नहीं। इसी अभिप्रायसे पूर्वरात्रे विग्रहमें पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशि समासे। समासान्त अच् इलोपे रात्राह्ना-पुलिङ्गे। **संख्यातरात्रः** गिनी हुई रात्रि, संख्याता रात्रिः विग्रहे कर्मधारय समासे। अच्, इलोप पुंवत् कर्मधारय इति पुं०। पुण्याः रात्रिः कर्मधारय समासे पुलिङ्गे, अच् इलोप माङ्गलिक रात्रि। रात्राह्नाः पुं० दो रात्रियोंका समाहार मिलित समुदाय, **द्विरात्रं**, द्वि ओस् रात्रि ओस् द्विगुसमासे आदिः। संख्यादि मानकर सूत्रेण अच् इलोपे नपुंसकं, **संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम्** अति-क्रमण किया हो, रात्रिका, वह **अतिरात्रः**। क्रान्तअर्थमें अतिके साथ द्वितीया का समासादिः। अव्यय आदि मानकर अच्, रात्राह्नाःसे पुं०।

क्रान्तो रात्रिमतिरात्रः ८८ **राजाहस्सखिभ्यष्टच् ५।४।९१॥** एतदन्तात्तत्पुरुषाट्टच्स्यात् । परमराजः : अतिराजी । कृष्णसखः । ८९ **अह्नष्टखोरेव ६।४।१४५॥** एतयोरेव परतोऽह्नष्टिलोपः स्यात्, नान्यत्र । उत्तमाहः । द्वे अहनी भृतो द्व्यहीनः क्रतुः । तद्धितार्थे द्विगुः । 'तमधीष्ट— इत्यधिकारे 'द्विगोर्वा' इत्यनुवृत्तौ 'रात्र्यहस्संवत्सराच्च'

। ८८ । राजन्–, अहन् सखि शब्द अन्तमें हो एसे तत्पुरुष समाससे टच् हो । 'तत्पुरुषस्य' आया, पञ्चमी बहुबचनमे बदला, तदन्तविधि । **परमश्चासौ राजा च** इति विग्रहे समासे समासान्तटच् । परमराजन् अ 'नस्तद्धिते' टि (अन्) लोपे स्वादिः । **अतिक्रान्तो राजनमितिदशायां अत्यादयः**=अतिक्रमण अर्थमें द्वितीयाके साथ **समासादिः । अतिराजन् राजाहः–सूत्रेण टच् । नस्तद्धिते टिलोपे स्वादिः** । यदा ङीप् तदा **अतिराजी । कृष्णस्य सखा अर्जुनः सुदामा । कृष्ण ङस् सखन् सु** । षष्ठीसमासादिः । **कृष्णसखन्** सखिभ्यष्टच् **टिलोपे स्वादिः** । ८९ । **अह्नः**–ट और ख परे ही अहन्के टिंका लोप हो, अन्यत्र लोप न हो । सूत्रमें टेः, लोप आये । परन्तु इसका टिलोप नस्तद्धितेसे सिद्ध था । यह सूत्र नियमके लिए अहन्का टिलोप हो, ट ख परे ही, अन्यत्र लोप न हो । विपरीतनियम हटानेके लिए एव पढ़ा । **टखोरेव क्यों**? अह्ना निर्वृत्तम् **आह्निकं** दिनभरका **कर्म** । कालाट्ठञ् । टिलोप न होनेसे अकार लोप । ट प्रत्ययका उदाहरण—**उत्तमञ्च तदहः** अच्छा दिन । विशेषणके साथ राजाहः से टच् । **उत्तमाहन्** अ–'ट' परे अह्नष्टखारेव सूत्रेण टिलोपे । रात्राह्नाः पुलिङ्गे **उत्तमाहः** । खप्रत्ययका उदाहरग–**द्वे अह्नी भृतः** दो दिनकी सेवा परिक्रयण--खरीदा हुआ । **अत्यन्तसयोगे द्वितीया (द्वि औ अहन्औ)** तद्धितार्थे द्विगुसमासे । यहाँ तद्धित क्या है । निश्चयके लिए बोले—**तमधीष्ट सूत्रके** अधिकारमें द्विगोर्वाका आगमन रात्र्यहः संवत्सराच्च सूत्रसे ख–ईन आदेशे अह्लष्टखोरेव टिलोपे **द्व्यहीनः** । ख परे टिलोपविधानसे अह्नादेश नहीं । समासान्तविधिके अनित्य होनेसे राजाहः सखिभ्यःसे टच् नहीं । अतः अह्न आदेश भी नहीं । टिलोषविधान अहीनःमें सफल है, व्यर्थ नहीं । ननु **मद्राणां राज्ञी** (मद्रासियोंकी रानी) **मद्रराज्ञी** । यहाँ भी लिङ्गविशिष्टपरिभाषा से, जहाँ प्रातिपदिका ग्रहण हो वहाँ लिङ्ग सहितभी लिया जाय । अतः राजाहः टच् हो, तब बोले–**अनित्यत्वात्**=प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणं परिभाषा अनित्य है, समासान्तविधिमें नहीं लगती, **शक्तिलाङ्गूलाङ्कुश-**

इति खः। लिङ्गविशिष्टपरिभाषया अनित्यत्वान्नेह। मद्राणां राज्ञी मद्रराज्ञी। ९० **अह्नोऽह्न एतेभ्यः ५।४।८८॥** सर्वादिभ्यः परस्याहन्शब्दस्याह्नादेशः स्यात् समासान्ते परे। ९१ **अह्नोऽदन्तात् ८।४।७॥** अदन्तपूर्वपदस्थाद्रेफात्परस्याऽह्नादेशस्य नस्य णः स्यात्। सर्वाह्णः। पूर्वाह्णः। सङ्ख्याताह्नः। द्वयोरह्नोर्भवः। 'कालाट्ठञ्' 'द्विगोर्लुगनपत्ये' इति ठञो लुक्। द्व्यह्नः। स्त्रियामदन्तत्वाट्टाप्। द्व्यह्ना। द्व्यह्नप्रियः। अत्यह्नः ९२ **क्षुभ्नादिषु च ८।४।३९॥** एषु णत्वं न

सूत्रमें घटीग्रहण प्रमाणसे। यदि टच् होता यस्येति च इ-लोपके वाद टित् मान कर ङीप होता, प्रयोग बन जाता, किन्तु 'भस्याढ़ेऽतद्धिते' पुलिङ्गे टिलोपे ततः ङीप् मद्रराजी, अनिष्टं स्यात्।

।७९०। **अह्न-सर्व-एकदेश-संख्यात-पुण्य** ये पूर्व सूत्रमें पढ़े हैं **'च'** से संख्या अव्यय भी स्वीकृत अह्नको छोड़कर। अह्नसे परे अह्नका तत्पुरुष असम्भव होनेसे। अतः वृत्तिमें बोले—**सर्वादिभ्यः** से परे अह्नन्शब्दके स्थानमे अह्न आदेश हो समासान्त अच् टच् आदिपरे, जो प्रकरणसे लब्ध है। ७९१। **अह्नो**=अदन्तपूर्वपद हो उसमें स्थित रेफसे परे अहन्के स्थानमें अह्नके न को ण हो। रषाभ्यां नो णः पूरा सूत्र (ष को छोड़कर) आया। पूर्वपदात्भी पूर्वपदस्थात् हो गया। यदि लक्षेषु अहःषु भवः **लक्षाह्नः**। लाखो दिनमें होनेवाला यदि ऐसी व्युत्पत्ति हो, तब णत्वार्थ ष भी आयेगा। **सर्वेषु अहःषु**, सभी दिन जो हो सर्वाह्णः। पूर्वकालैकसर्वसे एकार्थीभाव। राजाहः टच् अह्नो-सूत्रेण अह्न आदेशे, सूत्रेण णत्वे रात्राह्नाःपुलिङ्गे। पूर्वेषु अहस्सु भवः कालः पूर्वाह्णः, दिन का प्रथमभाग। **उत्तरेषु अहःसु भवः उतराह्णः अपराह्णः** संख्यातमह **संख्याह्नः।** **विशेषण**=समास टच्। अह्नादेश। निमित्तं नास्ति, णत्वं न। पूर्वका प्रयोग पश्चात् होगा, संख्यापूर्वके उदाहरण दो दिनमें होनेवाला **द्विओस् अह्नओस्** तद्धितार्थोत्तरपदे द्विगु समासे, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुपो लुक् टच्। भव अर्थमें कालवाची द्व्यह्नसे **कालाठ्ठञ्** अनपत्य अर्थमें द्विगुसे ठञ्का लुक्। अह्न आदेश द्व्यह्नः बालकः। यदि स्त्रीलिङ्ग हो तब अदन्तसे टाप् होगा। बालिका दो दिनकी हुई कन्या। द्विगोः से ङीपकी शंका नहीं, अपरिणामविस्ताचितके निषेधसे। संख्यापूर्वका उदाहराणान्तर–द्वे **अह्नी प्रिये यस्य** दो दिन प्रिय हो जिसको। तद्धितार्थ उत्तरपदे द्विगु समासे, राजाहः टच्। अह्न आदेशे। **द्व्यह्न प्रियः।** अव्ययपूर्वका--अहः अतिकान्तः अत्यह्नः दिन बीता। पूर्ववत्कार्य।

स्यात्। दीर्घाह्नी प्रावृट्। एवं चैतदर्थमह्न इत्यदन्तानुकरणक्लेशो न कर्तव्यः। 'प्रातिपदिकान्त—' इति णत्ववारणाय क्षुभ्नादिष पाठस्यावश्यकत्वात्। अदन्तादिति तपरकरणान्नेह। परागतहः पराह्णः।

९३ **न सङ्ख्यादेः समाहारे ५।४।२॥** समाहारे वर्तमानस्य सङ्ख्यादेरह्नादेशो न स्यात्। सङ्ख्यादेः इति स्पष्टार्थम्। द्वयोरह्नोः समाहारो द्व्यहः। त्र्यहः ९४ **उत्तमैकाभ्यां च ५।४।९०॥** आभ्यामह्नादेशो न। ऊत्तमशब्दोऽन्त्यार्थः। पुण्यशब्दमाह। 'पुण्यैकाभ्याम्' इत्येव सूत्रयितुमुचितम्। पुण्याहम्। सुदिनाहम्। सुदिनशब्दः प्रशस्त-

---

।९२। **क्षुभ्नादि**=गणमें पढ़े हुए शब्दोंके न को ण नहीं। **रषाभ्यांसे** ण, न भाभूसे 'न' आया। **दीर्घाणि अहानि यस्मिन्** बहुब्रीहिसमासे। टच् **अह्न**आदेशे अनुपधालोपिनः ङीप्। अल्लोपोऽनः अनः उपधालोपः। अह्नो तदन्तात्से प्राप्त णत्वका निषेध क्षुभ्नादिषु से। ननु क्षुभ्नादि गणमें **दीर्घाह्नी** का पाठ व्यर्थ हैं अह्न आदेश प्राप्त नहीं, णत्व होगा ही नहीं। तब बोले **एवञ्च**=दीर्घाह्नीका क्षुभ्नादिमें पाठ **एतदर्थ**– इसलिए है कि **अह्नोऽदन्तात्**से णत्वकी निवृत्तिके लिए, अह्नको प्रथमा मानकर, अकारान्तके अनुकरणका कष्ट न करें। पाठ ठीक है। या अदन्तत्व पक्षपातिनी युक्ति प्रातिपदिकान्त नुम्बिभक्तिषु च से णत्ववारणके लिए, क्षुम्नादिमें पाठ आवश्यक है। **अदन्तात्** में तपरका फल बोले–यहाँ ह्रस्व अत् माने। ह्रस्व अकार लेनेसे **परागतमहः पराह्णः** णत्व नहीं हुआ आदन्त होनेसे। प्रादिसमासः टचि, अव्ययसे अह्न आदेश।

।९३। **न संख्यादेः समाहार**=समुदाय अर्थमें वर्तमान संख्या आदिके अहन् के स्थानमें अह्न न हो। यद्यपि तत्पुरुषसमासमें संख्यासे भिन्न समाहार होता ही नहीं, तथापि स्पष्ट ज्ञानके लिए संख्या पढ़ा। दो दिनका समुदाय **द्व्यह्नः** समाहारे द्विगुसमासे राजाहः टच्। रात्रःह्नाः पुंसि संख्या आदि मानकर अह्न आदेशप्राप्तः, उसका सूत्रसे निषेध। **त्रयाणामह्नां समाहारः** तीनदिनका संगम समाहारे द्विगुसमासे टच् पु० निषेधपूर्वत्। ।९४। **उत्तम** और एकशब्दसे परे अहनके स्थानमें अह्नके आदेश न हो, जो उत्तम शब्दसे प्राप्त नहीं है, तब बोले वह अन्त्य अर्थ में है। यथा–**द्वादशाहे उदयनीयातिरात्रः** उत्तमाहः रात्रिका अन्त्य भाग, किन्तु अहस्सर्वैक सूत्रके अन्तमें पूण्यशव्द विवक्षितः। यदि ऐसा तब पुण्यकभ्यां सूत्र पढ़तेः यही पढ़ना उचित था **पुण्यमहः** प्रसन्नदिन विशेषणके

वाची। एकाहः। 'उत्तमग्रहणमुपान्त्स्यापि सङ्ग्रहार्थम्' इत्येके। सङ्ख्याताहः। **९५ अग्राख्यायामुरसः ५।४।९३॥** टच्स्यात्। अश्वानामुर इव अश्वोरसम्। मुख्योऽश्व इत्यर्थः **९६ अनोऽश्मायस्सरसां जातिसंज्ञयोः ५।४।९४॥** टच्स्याज्जातौ संज्ञायां च। उपानसम्, अमृताश्मः, कालायसम्, मण्डूकसरसम् इति जातिः। महानसम्, पिण्डाश्मः, लोहितायसम्, जलसरसम् इति संज्ञा। **९७ ग्रामकौटाभ्यां च**

साथ समास टच् टिलोप पुण्यसुदिभ्यां पुंसक, **पुण्याहं सुदिनाहम्**। अहः प्रशंसनीयदिन, समास टच् आदि। एकम् अहः **एकाहः** एकदिन पूर्वकालैक सूत्रेण समासे। टच् टिलोपदिः। सूत्रमें उत्तम पढ़नेका फल **उपान्त्य ग्रहण** के लिये। पुण्य 'न' कहकर उत्तम पढ़ना लक्षणामें बीज है। उत्तमञ्चएकञ्च द्वन्द्वः **अन्तस्य समीपं उपान्त्यम्**, अन्त्य पुण्य है उसके पासमें **संख्यात** है, ऐसा जो द्विगु, गणना किया हुआ, विशेषण समास, टच् टिलोप, पुंसि, उपान्त्य संख्या मानकर **अह्न** आदेश नहीं।

। ९५। **अग्राख्यायां**=अग्र=प्रधान अर्थवाला उरःसे टच् 'अ' हो। घोड़ोंका उर=वक्षः, प्रधान इव=मुख्यकी तरह समासार्थमें षष्ठी समासादिः। सूत्रेण टच् स्वादिकार्ये। केचित् **अग्रेभवम्** अग्रच मुख्यं सिरताज घोड़ा। उर जैसे प्रधान होता है, वैसे मुख्य अर्थमें लक्षणा। यही उसका बीज है। परवल्लिङ्गंसे परपदका नपुंसकलिङ्ग। **अग्रआख्या क्यों** ? देवदत्तस्य उरः वक्षस्थलं **देवदत्तोरः** प्राधान्य नहीं, न टच्। ९६। **अनस् अश्मन् अयस् सरस्** अन्तमें हो ऐसे समाससे टच् हो, जाति और संज्ञा अर्थमें। **उपगतम् अनः शकटं** गाड़ी समीपमें पहुंची प्रादिसमासे। **उपानस्** अनोश्म-जाति अर्थ टच्--अ स्वादिः। **अमृतः अश्मा** तगड़ा लोहा, विशेषणके साथ समास, सूत्रसे। टच् टिलोप, परलिङ्ग। कालम् अयः **कालायसं** काला या भयङ्कर लोहा विशेषण समास। टच् परलिङ्ग, नपुंसक। **मण्डूकस्य सरः** मेढ़कका तालाब। षष्ठीसमास सूत्रेण टच् इन चारों प्रयोगोंमें जाति अर्थ जानकर टच् हुआ। **महत् अनः** लकड़ी अग्नि धूप **महानसं**, **पिण्डः अश्मः** लोहेका गोला **पिण्डाश्मः** लोहितं अयः लाल लोहा **लोहितायसम्** जलानां सरः **जलरससम्**। इन प्रयोगोंमें समासके बाद संज्ञा अर्थ मानकर टच् समझें।

। ९७। **ग्राम** और कुटयां भवः कौटः (झोपड़ीमें रहनेवाला स्वतन्त्र) से परे तक्षन्का तत्पुरुषसमास हुआ हो, उससे टच् हो गाँवका तक्षा बढ़ई।

तक्ष्णः ५।४।९५॥ ग्रामस्य तक्षा ग्रामतक्षः । साधारण इत्यर्थः । कुट्यां भवः कौटः । स्वतन्त्रः । स चासौ तक्षा च कौटतक्षः । **९८ अतेः शुनः ५।४।९६॥** अतिश्वो वराहः । अतिश्वी सेवा । **९९ उपमानादप्राणिषु ५।४।९७॥** अप्राणिविषयकोपमानवाचिनः शुनष्टच्स्यात् । आकर्षः श्वेवाकर्षश्वः । अप्राणिषु किम्, वानरः श्वेव वानरश्वा । **८०० उत्तरमृगपूर्वाच्च सक्थ्नः ५।४।९८॥** चादुपमानात् । उत्तरसक्थम् । मृग-

---

षष्ठी समास होनेपर ग्रामतक्षशब्दात्सूत्रेण टच् टिलोपे, ग्रामतक्षः, साधारण अर्थ । **ग्रामे यावन्तो जनाः सन्ति तावतां ग्रहणं ग्रमीण** इत्यर्थः । कुटीमें पैदा हुआ स्वतन्त्र **एकां कुटीं क्रीणातिस्म । तत्र यो वसति न तु परकीयभूमौ, स कौटः**, स चासौ तक्षा च, ऐसा जो बढ़ई विशेषणसमास, सूत्रेण टच्, टिलोपे।

। ९८ । **अतेः** । अति इस अव्ययसे परे श्वन् शब्द, ऐसे तत्पुरुषसमाससे टच्, हो । यथा—**श्वानम् अतिक्रान्तः** कुत्तेसे भी तेज होगा **अतिश्वः** शूकरः । अत्यादयः द्वितीयया समासे । अतेः शुनः इति टच्, टिलोपे, स्वादिः । श्वानमतिक्रान्ता सेवा, कुत्तेको भी नीचा दिखाने वाली सेवा, समास । टच् टिलोप, टिड्ढाणञ् ङीप, **अतिश्वी दुष्टा** ।

। ९९ । **उपमानात्** । न प्राणिनः तेषु **अप्राणिषु** चेतनका विषय न हो । किन्तु उपमानवाची जिसकी समानता कही जाय, ऐसे शुनः से टच् हो । यथा **आकृष्यते कुशूलादिगत** धान्यमनेन आकर्षः **पञ्चाङ्गुलं** दारुविशेषः, पाँचा खलिहानमें पैंरा खीचने चढ़ानेके लिए लकड़ीका पाँच अंगुल वाला कैसा है **श्वा इव** कुत्तेकी तरह कुत्ता जेसे छिनछिनाता खींचता उसी तरह पञ्चा । उपमितं व्याघ्रद्भिःसे समास **उपामानाद्**=टच् टिलोप **आकर्षश्वः** धानको उलटने पलटनेका साधन । **उपमान क्यों** कहा ? निष्क्रान्त शुनः **निश्वा** निकला हुआ कुत्ता । यह उपमेय है, उपमान नहीं, न टच् । **अप्राणिषु**--बन्दर कुत्तेकी तरह है । उपमान कुत्ता, किन्तु उपमेय वानर चेतन हैं । जड़ नहीं, अतः **वानरश्वा** कुत्तेके सदृश, टच् नहीं हुआ ।

। ८०० । **उत्तरमृग पूर्व** और (च पढ़नेसे) उपमान—जिससे समानता कही जाय उससे परे सक्थि शब्दात्तत्पुरुषसे टच् हो **उत्तरसक्थि**=उत्तरभागकी पसली पूर्वकालैकसूत्रेण समासे । सर्वत्र टच् टिलोपौ **पूर्वसक्थ** । **पूर्वंशक्थि** पहला पार्श्वभाग समासादिः पूर्ववत् । मृगस्य सक्थिः मृगकी पसलीं । एवं उपमानसे टच्का उदाहरण—**फलकमिव सक्थिः** (टुकड़े की तरह) मयूरव्यंससे

सक्थम् । पूर्वसक्थम् । फलकमिव सक्थि फलकसक्थम् । ८०१ **नावो द्विगोः ५।४।९९।।** नौशब्दान्ताद्द्विगोष्टच्स्यात्, न तु तद्धितलुकि । द्वाभ्यां नौभ्यामागतो द्विनावरूप्यः । 'द्विगोर्लुगनपत्ये' इत्यत्र अचि इत्यस्यापकर्षणाद्धलादेर्न लुक् । पञ्चनावप्रियः । द्विनावम् । त्रिनावम् अतद्धितलुकीति किम् । पञ्चभिर्नौभिः क्रीतः पञ्चनौः । ८०२ **अर्धाच्च ५।४।१००।।** अर्धान्नावष्टच्स्यात् । नावोऽर्धम्-अर्धनावम् । क्लीबत्वं लोकात् । ८०३ **खार्याः प्राचाम् ५।४।१०१।।** द्विगोरर्धाच्च खार्याष्टज्वा स्यात् । द्विखारम्-द्विखारि । अर्धखारम्, अर्धखारि ।८०४

समास टच् आदिः । ८०१ । **नावो**=नौ शब्द अन्तमें हो ऐसे द्विगु (संख्यापूर्व) से टच् हो, तद्धितप्रत्ययका लुक् न हुआ हो तब । जो मण्डूकप्लुति=मेढ़कउछाल न्यायसे आया, **द्विनावरूप्यः** तद्धितार्थसमास । द्वि, नौ इतिदशायां नावो द्विगोःसे टच् अ । औ स्थाने आव । **द्विनाव इतिदशायां हेतुमनुष्येभ्यः** से रूप्यः उसका द्विगोर्लुक् । 'अनपत्ये'-सूत्रसे लुक् की शङ्का—तब बोले द्विगोर्लुक् सूत्रमें 'अचि'-का **अपकर्षण**=उत्तरसूत्रसे पूर्वसूत्रमें लाना, गीत्रेऽलुगचिसे अच् आया । उसका फल, हलादि परे लुक् हो । **पञ्चनावप्रियः** पाँच नौकायें प्रिय है जिसको उत्तरपदपरे द्विगु । टच् आव् । **द्वयोः नावोः समाहारः** दो नौकाका समुदाय द्विगु, टच्, आव्, स नपुंसकं, **तिसृणां नावां समाहारः** तीन नौकाका झुण्ड । द्विगु टच् आव नपुंसक । सूत्रमें तद्धितलुक् परे न हो, ऐसा क्यों पढ़ा, इसलिए कि जहाँ लुक् हुआ हो, वहाँ टच् न हो जाय । पाँच नौकासे खरीदा गया घाट । पञ्च भिस् समासादि । **पञ्च** नौ आर्हीयः=मानकर ठक् उसका अध्यर्ध से लुक् परे होनेसे टच् नहीं हुआ ।

। ८०२ । **अर्धाच्च** अर्धसे परे नौ हो, ऐसे तत्पुरुषसे टच् । 'नौ'-का आधा **अर्धनावर्म अर्धनपुंसकम् समास । टच् आव् । परन्तु परवल्लिङ्गंसे परका लिङ्ग स्त्री क्यों न हो,** तब बोले लोकप्रसिद्धिसे । **क्लीबत्वं=लोकात् नपुंसकत्वम् ।**

। ८०३ । **खारीशब्दात्** द्विगु हो और **अर्धपूर्वक** खारी ऐसे **तत्पुरुषसे** टच् हो । प्राचां विकल्पसे । **द्वयोः खार्योः समाहारः द्विखारं,** द्विगु टच्, **यस्येति** इलोप, **सनपुंसकम्** । यदा न टच् तदा नपुंसक ह्रस्वः **द्विखारि,** । **खार्याःअर्ध** विग्रह पूर्ववत् समासादिः, **अर्धखारम्, अर्धखारी** टच् नहीं: तब परवर्तीस्त्री-लिङ्ग एकविभक्तिसे उपसंर्जन ंज्ञा, न ह्रस्वः । अर्धखारिमें नपुंसकह्रस्व समझें

। ८०४ । **द्वित्रि** से परे अञ्जलिशब्द हो ऐसे तत्पुरुषसे टच् हो । विकल्पसे

द्वित्रिभ्यामञ्जलेः ५।४।१०२।। टज्वा स्याद् द्विगौ। द्व्यञ्जलम्-द्व्यञ्जलि। अतद्धितलुकीत्येव। द्वाभ्यामञ्जलिभ्यां क्रीतो द्व्यञ्जलिः। ८०५ **ब्रह्मणो जानपदाख्यायाम् ५।४।१४।** ब्रह्मान्तात्तत्पुरुषाट्टस्यात्समासेन जानपदत्वमाख्यायते चेत्। सुराष्ट्रे ब्रह्मा सुराष्ट्रब्रह्मः ८०६ **कुमहद्भ्यामन्यतरस्याम् ५।४।१०५।।** आभ्यां ब्रह्मणो वा टच्स्यात्तपुरुषे। कुत्सितो ब्रह्मा। कुब्रह्मः-कुब्रह्मा। ८०७ **आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः ६।३।४६।।** महत आकारोऽन्तादेशः स्यात्समानाधि

द्विगुसमासमें। **द्वयोः अञ्जल्योः समाहार** विग्रहमें द्विगुसमासे। सूत्रेण टच् यस्येति च इलोप, नपुंसक, द्व्यञ्जलं, यदा 'न' टच् तदा नपुंसकह्रस्वे। तद्धितप्रत्ययका लुक् न हुआ हो तभी। यदि लुक् हुआ हो तब टच नहीं। दो अञ्जलि भरकर धान्यसे खरीदा हुआ सामान। द्व्यञ्जलि केवल खरीदने में साधन् नहीं है, परिणाम मानकर है। उसका अर्ध्यर्ध **लुक्**। यतः लुक् अस्ति अतः न टच्।

।८०५। **ब्रह्मणो**। ब्रह्मन्शब्द अन्तमें हो, ऐसे तत्पुरुषसे टच् हो, यदि समाससे **जनपदे भवः जानपदः** भावप्रधान निर्देश अर्थ निकलता हो तब। इसलिए कहा कि **समासेन जानपदत्वमाख्यायते**–जनपदकी विशेषता प्रसिद्ध होती हो। सुराष्ट्रदेशमें ब्रह्मा होनेकी विशेषता प्रसिद्ध है। पुलिङ्ग, ब्रह्माका विप्र अर्थ **श्रीवेदस्तत्त्वं तपो ब्रह्मब्रह्माविप्रप्रजापतिः** इत्यमरः **सुराष्ट्रङि ब्रह्मः** नृसु। सप्तमीके योग विभागसे समासे, जनपदका विशिष्ट ब्राह्मण प्रसिद्धिसे तत्पुरुषसमाससे टच् टिलोप, परपदका लिङ्ग पुं० **सुराष्ट्रब्रह्मः**। सूत्रमें जानपद क्यों पढ़ा? **देवब्रह्मा** नारद हैं, टच् न हो। ८०६। **कु और महद्** शब्दसे परे तत्पुरुषसमासमें ब्रह्मन्शब्दको विकल्पसे टच् हो। **कुत्सितो** ब्रह्मा चरित्रभ्रष्ट ब्राह्मण, **कुगति प्रादयः** से समासे। कुब्रह्मन् इति दशायां सूत्रेण टच् टिलोपे, स्वादिः। यदा न टच् तदा सु। नान्तउपधायाः दीर्घे, सुलोपनलापादिः। उक्त सूत्रमें महत्पूर्वसे विकल्प बोलकर उसकी विशेषता बोले।

।८०७। **आन्महतः**। महत् शब्दको 'आ' अन्त आदेश हो। समान आधार विभक्तिवाले उत्तरपद परे और जातीयरप्रत्ययपरे। यह सूत्र अलुगुत्तरपदे सूत्रके अधिकारमें पढ़ा गया। उत्तरपद समानाधिकरणमें विशेषण, जातीयरमें नहीं, वह प्रत्यय है पद नहीं। **महाँश्चासौ ब्रह्मा च इतिविग्रहे सन्महत्परमोत्कृष्ट–**, सूत्रेण समासे **आन्महतः**–महत्के त को आ, सुवर्णदीर्घ कुमहद्भ्यां

करणेउत्तरपदे जातीये च परे। महाब्रह्मः-महाब्रह्मा। महादेवः महाजातीयः समानाधिकरणे किं महतः सेवा महत्सेवा। लाक्षणिकं विहाय प्रतिपदोक्तः 'सन्महत्' इति समासो ग्रहीष्यत इति चेत्, महाबाहुः न स्यात्। तस्मात् 'लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिदोक्तस्य' इति परिभाषा नेह प्रवर्तते। समानाधिकरणग्रहणसामर्थ्यात्। 'आत्' इति योगविभागादात्वं, 'प्रागेकादशभ्यः'-इति निर्देशाद्वा। एकादश। महती-

---

टच् टिलोपे, परपदका लिङ्ग पुलिङ्ग **महाब्रह्मः**। यदा न टच तदा नान्त-उपधायाः दीर्घादिः **महाब्रह्मा:**। **महादेवः महान् देवता** के समान। महाजातीयर प्रत्ययके परे आत्वविधिका उदाहरणः—**महाश्चासौ देवः महत्सदृशः**। प्रकार-वचने, विशेषण, सदृश अर्थमें जातीयरप्रत्यय आन्मतः से आत्व सवर्णदीर्घ स्वादिः। सूत्रमें समानाधिकरण क्यों पढ़ा? **आन्महतो जातीये च** इतना ही सूत्र पढ़ते, चकारसे उत्तरपदपरे अर्थ निकल आता, महत् के त को आ हो जाता। उत्तरपदमें जातीयर न हो, अर्थलाभके लिए। महादेव संकेतसे सिद्ध है। समानाधिकरण क्यों पढ़ा **महतः सेवा** महापुरुषकी शुश्रूआ **महत्सेवा**। यहाँ षष्ठी समास विषमविभक्ति है। आत्व न हो इसलिए समानाधिकरण पढ़ा। यदि कहिए कि **लक्षणप्रतिपदोक्तयोः** सूत्रसे सिद्ध लाक्षणिक षष्ठीसमास, उसको विहाय–छोड़कर साक्षात् उच्चारित प्रतिपदोक्तशब्द **सन्महत्परमोत्कृष्ट**–सूत्रमें महत्का उच्चारण करके विधान किया गया हैं। साक्षात् उच्चारितका ग्रहण करेंगें, तब कोइ दोष नही होगा। **समानाधिकरण व्यर्थः**। समाधान-**महाबाहुः** न सिद्धेत, महान्तौ बाहू यस्य बहुब्रीहिसमासमें अनेकमन्यपदार्थे सूत्रसे सामान्य समास है। महत्का उच्चारण करके समास नहीं, अतः प्रतिपदोक्त नहीं, उत्तरपदपरे महत्के त को आत्व नहीं होगा, उसके लिए समानाधिकरण पढ़ें। तथापि लक्षण प्रतिपदोक्तपरिभाषा रुकेगी नहीं, महाबाहुःकी आत्व विना, सिद्धि कैसे? इसलिए बोले–**उक्तपरिभाषा नेह प्रवर्तते**। यहाँ नहीं लगती। समानाधिकरण पढ़नेके सामर्थ्यसे। अर्थात् लक्षणप्रतिपदोक्तपरिभाषाको बाँधकर लाक्षणिकग्रहणके लिए भी समानाधिकरण है। विना तदन्तविधिके **सुमहाबाहुः** में आत्व कैसे? उत्तरपदसे पूर्वपदका आक्षेप महत्में विशेषण, तदन्तविधिका लाभ। **महतः परिमाणं महत्परिमाणं**, परमं महत्परिमाणं, षष्ठी समासगर्भ कर्मधारय। अत्र शङ्का–**एकादशमें** आन्महतः सूत्रके 'आत' योग-

शब्दस्य 'पुंवत्कर्मधारय-' इति पुंवद्भावे कृते आत्वम्। महाजातीया ।* महादात्वे घासकरविशिष्टेषूपसंख्यानं पुंवद्भावश्च' असामानाधिकरण्यार्थमिदम् । महतो महात्या वा घासो महाघासः । महाकरः महाविशिष्टः ।* अष्टनः कपाले हविषि' अष्टाकपालः ।* 'गवि च युक्ते । गोशब्दे परे युक्त इत्यर्थे गम्ये अष्टन आत्वं स्यादिति वक्तव्यमित्यर्थः । अष्टागवं शकटम् । 'अच्प्रत्यन्वव इत्यत्र अच् इति योगवि-

---

विभागसे आत्व होगा । यदि कहें कि योगविभाग भाष्यसे प्रमाणित नहीं, तब बोले **प्रागेकादशभ्यः** इस सूत्रमें निर्देश 'आ' उच्चारणसे सिद्ध । **एकश्च दश च द्वन्द्व एकाधिकादश एकादश** । **महती** शब्दसे जातीयर होनेपर लिङ्ग विशिष्ट परिभाषासे महती शब्दको जातीयर परे आन्महत् सूत्रसे आत्व होगा, 'महाजातीया' बनेगा तब बोले पुंवत्कर्मधारयसे पुलिङ्ग करके आत्व होता है, क्योंकि 'आन्महतः'—सूत्रमें लिङ्गविशिष्टपरिभाषा नहीं लगती इति ङ्याप्सूत्रे भाष्ये ।

महदात्वे—महत् शब्दके आत्व होनेके विषयमें घासकर-विशिष्टके परे रहते **महत्**को आत्व, पुलिङ्गभाव भी बोले । वार्तिकका आत्व आङ्महतःसे । पुलिङ्ग पुंवत्कर्मधारयसे सिद्ध है वार्तिक क्यों पढ़ा ? तब कहे कि **असमाना**=जहाँ समान आधार—विभक्ति न हो, वहाँके लिए इदं वार्तिकम् । **महतः** महापुरुषका **घास**, महत्या बड़े परिश्रमसे घाससमूह, **महाघासः** भक्षण तृण । वार्तिकेन महतः तकारस्य आत्वे दीर्घे । **करोति-करः हाथ** । महतः महापुरुषका वरद कर बड़े परिश्रमी कुशल हाथ, **महाकरः** । समासे । महत्के त को आ, वार्तिकसे **महतः महत्यावा विशिष्टः अधिकः समुदायः** महापुरुषका या महापुरुषोंसे विशिष्ट शक्तिशाली आधिक अर्थः । वार्तिकसे महदात्वे । (वा०) **अष्टनः** । कपाल उत्तरपद हो **हविषि**=हवन्की वस्तु पायस् शाकला अर्थ निकलता हो, अष्टन्के 'न' को आ कहें । यथा **अष्टसु कापालेषु संस्कृतः पुरोडाशः अष्टाकपालः** । आठ कसोरोंमें संस्कृतः पकाकर रखा हुआ, हवनकी वस्तु । संख्यापूर्वमें हैं, द्विगुसमासे **संस्कृतं भक्षा** खानेकी वस्तु संस्कार की गयी हो तब **अण्** उसका **द्विगोर्लुक्** । अष्टनके न की **सवर्णदीर्घ** । (वा०) **गवि** गोशब्द परे हो, **युक्त** जुड़ा हुआ अर्थ निकलता, समासार्थ हो, तब **अष्टौ गावौ यस्य अष्टागवं** गाड़ी, आठ बैल जुड़े है, खीचनेके लिए । **बहुव्रीहि** समासे । गवि च युक्ते

भागाद्बहुव्रीहावप्यच्। अष्टानां गवां समाहारोऽष्टागवम् तद्युक्तत्वाच्छकटमष्टागवमिति वा। ८०८ **द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः ६।३।४९।** आत्स्यात्। द्वौ च दश द्वादश। द्व्यधिका दशेति वा। द्वाविंशतिः। अष्टादश। अष्टाविंशतिः। अबहुव्रीह्यशीत्योः किं। द्वित्राः। द्व्यशीतिः।* प्राक्शतादिति वक्तव्यम्'। नेह-द्विशतं। द्विसहस्रम्।

इति नकारस्य आत्वे, दीर्घं रूपम्। 'गोरतद्धितलुकि' तत्पुरुषमें ही टच् करता है, **गवंमें कैसे?** तब **बोले-प्रति अनु अव** सूत्रके अच् को अलग (योगविभागसे) बहुव्रीहिमें भी **अचसम्भव**। तत्पुरुषमें टच् रहता ही है। आठ वैलोंका समुदाय मेला **अष्टागवं**, द्विगुतत्पुरुषसे टच् सुलभः। ठीक है परन्तु समाहार अर्थ होनेपर **शकट अर्थ कैसे?** युक्त अर्थ नहीं निकला, **आत्व कैसे? तद्युक्तत्वात्**- समाहारद्विगुवाले तत्पुरुषसे टच् करके वना अष्टागव शब्द आठवैलोंसे जुड़ा शकट गाड़ी का भी अर्थ देता है।

।८०८। द्वि और **अष्टन्** शब्दके अन्त्य अन् (वर्ण) को आ हो संख्या अर्थक शब्द उत्तरपदपरे। यदि **बहुव्रीहि**समासहो, या **अशीति** हो, तब आ न हो। **द्वौ**-दो और दस मिलकर बारह **द्वादश**। यहाँ दस संख्यावाची उत्तरपद है। **द्व्यष्टनः** सूत्रसे द्विके इ को आ हुआ। **द्वादश। द्वौच एकश्च द्व्येकाः।** दो-एक=तीन या **द्व्यधिकः एकः द्व्येकः**। यहाँ आत्व नहीं, क्योंकि एकादि **नवान्तानां परस्परं द्वन्द्वतत्पुरुषौ न स्तः**। चार्थे द्वन्द्वः सूत्रेभाष्ये। एकसे नव संख्या तकके आपसमें द्वन्द्व तत्पुरुषसमास नहीं होते। **द्वौ च विंशतिश्च** समाहारद्वन्द्वः **द्वाविंशतिः**। संख्या उत्तरपदपरे आत्वे, नपुंसक नहीं, स्त्रीत्व लोकसे। इतरेतरयोग भी नहीं, अप्रसिद्धिसे। **द्व्यधिकाः विंशतिः** दो अधिक बीस, तत्पुरुष मानकर आत्व। अष्टन्का उदाहरण-**अष्टौ च दशच** द्वन्द्वः या **अष्टाधिकः दश अष्टादश** अठारह। द्वन्द्वतत्पुरुषौ। **एवमष्टौ च विंशतिश्च** समाहारः **अष्टाविंशतिः**। आठ और बीस मिलकर अठ्ठाइस। **द्व्यष्टनः** सूत्रेण अष्टन्के न को आ दीर्घ। सूत्रमें बहुव्रीहि और अशीति न हो ऐसा क्यों पढ़ा? **द्वौ वा त्रयो वा** विग्रहमें संख्याव्ययसे डच्, बहुव्रीहिसमास है, आत्व न हो जाय। **द्वौ च अशीतिः समाहारः द्व्यशीतिः** स्त्रीत्वं लोकात्। **द्व्यधिका अशीतिः**। **अशीति** पढ़े जानेसे आत्वका निषेध हुआ। (**वा०**) **प्राक्शतात्**- सौ संख्या। शतं १०० के पहले तक द्वि और अष्टन्को आत्व हो, उसके ऊपर आत्व न हो। यथा **द्वौच शतं च** १०२ समाहार, या **द्व्यधिकं शतं** दो अधिक

८०९ **त्रेस्त्रयः** ६।३।४८॥ त्रिशब्दस्य त्रयस् स्यात्पूर्वविषये। त्रयोदश त्रयोविंशतिः। बहुव्रीहौ तु त्रिर्दश त्रिदशाः। सुजर्थे बहुव्रीहिः। अशीतौ तु त्र्यशीतिः। प्राक्छतादित्येव। त्रिशतम्। त्रिसहस्रम्, ८१० **विभाषा चत्वारिंशत्प्रभृतौ सर्वेषाम्** ६।३।४९॥ द्व्यष्टनोस्त्रेश्च प्रागुक्तं वा स्याच्चत्वारिंशदादौ परे। द्विचत्वारिंशत्। द्वाचत्वारिंशत्। अष्ट-चत्वारिंशत्-अष्टाचत्वारिंशत्। त्रिचत्वारिंशत् त्रयश्चत्वारिंशत्।

सौ, आत्व न हो। इसीप्रकार **द्वौ च सहस्रञ्च द्व्यधिकं सहस्रम्** १०२ शत संख्यासे लेकर, ऊपर संख्यावाले परे हों, तब आत्व नहीं होता।

। ८०९। **त्रि** के स्थानमें **त्रयस्** आदेश हो **पूर्वविषये**–प्राक्शदिति सौ संख्या के पहलेकी संख्या परे हो, बहुब्रीहि अशीति न हो। **सन्धिवेला** आदिगणमें त्रयोदशीशब्दके पाठसे **सकारान्त त्रयस्** आदेश मान्य। **त्रयश्च दश च** तीन और दश या त्र्यधिकाः **दश** १३। द्वन्द्वः, या तत्पुरुषसमासे, सुपो लुकि, त्रेस्त्रयः त्रिस्थाने त्रयस् रु-उ-गुण, **त्रयोदश**। एवं **त्रयश्च विंशतिश्च** तीन और बीस या त्र्यधिका विंशतिः २३ **त्रयोविंशतिः** त्रिस्थाने त्रयस् रु० उ० गुण। बहुब्रीहि-समासमें त्रिः आवृत्ता दश **त्रिर्दश**। बहुव्रीहौ संख्येये, डच्। यहाँ त्रिके आगे सुज् क्रियाकी **अभ्यावृत्ति**=पुनः-पुनः प्रवृत्ति अर्थमें द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्। सुजन्त होनेसे समासमें सुच् सुनाई पड़ेगा, तब बोले–सुचके अर्थको बहुब्रीहिसमास कहेगा, सुच रहेगा नहीं, सुनायी पड़गा कैसे! लक्षणासे। वर्तमानक्रियाकी तीन आवृत्ति, बहुब्रीहिसे उक्त–कही गयी। **त्रयश्च अशीतिश्च** समाहारः। स्त्री० लोकसे (या) त्र्यधिका अशीतिः ८३। यहाँ त्रिको त्रयस् नही हुआ। प्राक् शतात् भी कहे। त्रयश्च शतञ्च या **त्र्यधिकं शतं त्रिशतम्** १०३। एवं **त्रिसहस्रं** त्रि को त्रयस् नहीं।

। ८१०। **विभाषा**–द्वि अष्टन् त्रि को **प्रागुक्तं**=पहले कहे गये आत्व और त्रयस् आदेश विकल्पसे हो। चत्वारिंशत् ४० से लेकर सभी संख्या परे रहने पर। द्वौच द्व्यधिका चत्वारिंशत्, दो अधिक ४०। **बिभाषा चत्वारिंशत्**–सूत्रेण यदा आत्वं तदा **द्वाचत्वारिंशत्**। अष्टचत्वारिंशत्। अष्टाधिका ८ अधिक ४०। अष्टन्के न को आत्व विकल्पे। **अष्टा०** एवं त्र्यधिकाः ३ अधिक ४० **त्रिचत्वारिंशत्**। विकल्पसे त्रयस्, तब श्चुत्व। एवं **द्विपञ्चा०** द्वापञ्चा० अष्टपञ्चाशत् अष्टा०। त्रिपञ्चाशत् त्रयःपञ्चा०। द्व्यधिका षष्ठिः द्विषष्ठिः ६२ **द्वाषष्ठिः**। **अष्ट-अष्टाः** षष्ठि। **त्रिषष्ठिः त्रयःषष्ठिः**। द्वासप्तति ७२

एवं पञ्चाशत् षष्ठिसप्ततिनवतिनु । ८११ **एकादिश्चैकस्य चादुक् ६।६७।३।** एकादिर्नञ्प्रकृत्या स्यादेकस्य चादुगागमश्च । नञो विंशत्या सह समासे कृते एकशब्देन सह 'तृतीया' इति योगविभागात्समासः । अनुनासिकविकल्पः एकेन न विंशतिः एकान्नविंशतिः-एकाद् नविंशतिः एकोनविंशतिरित्यर्थः । 'षष उत्वं दतृदशधासूत्तरपदादेष्टुत्वं च धासु

त्रिसप्ततिः त्रयः सप्ततिः अष्टासप्ततिः अष्ट० । **द्वानवतिः** । त्र्यधिका त्रिनवतिः **त्रयण्नवतिः अष्टानवतिः** ।

। ८११ । **एकादिः**सूत्रमें (न पोलो) नञः आया, प्रथमारूप । नभ्राण्नपात् से प्रकृत्या आया । एकशब्द आदिमें हो (एकः आदिर्यस्य) नञ्को प्रकृतिभाव (नकार लोप न) हो समासमें । एकके स्थानमें **आदुक्** या **अदुक्** आगम हो । नञ्का विंशतिके साथ समास करनेपर, (जैसे **न विंशतिः**) विग्रहमें नञ्स-मास करनेपर, एकके साथ तृतीयासमास, योगविभागसे होगा । **एकेन न विंशतिः**, समास होनेपर सुप् लुक्, एक न विंशति इतिदशायां न लोपो नञः से नकार लोप प्राप्त—तब **एकादिश्चैकस्य**—सूत्रेण प्रकृतिभाव हुआ उससे न लोप नहीं । एकके स्थानमें आदुक् । क--इत् उकार उच्चा० । एक आद् । सवर्णदीर्घ एकाद् न विंशति । यरोऽनुनासिकेसे द को अनुनासिक न । **एकान्नविंशतिः** अदुक् पक्षमें पररूप नहीं होता, अकार उच्चारणसे । एकेन न विंशतिः एक कम होनेके कारण २० नहीं है किन्तु १९ है । अनुनासिक नहीं, तब एकाद् न विंशति । जब यरोऽनुनासिक नहीं लगा, तब एकेन उना (पूर्ववद्दशामे समास) सा चासौ विंशतिश्च **एकोनविंशति** १९ (वा०) षष्शब्दके **षको उत्व हो,** दतृ और दशन्शब्द उत्तरपदमें हो या धा प्रत्ययपरे हो । दतृ दशन्शब्द और धाप्रत्ययके आदि के द और ध-को टुत्वं-टवर्ग हों । **धासु वा** धाप्रत्ययपरे **हो,** षष्को उत्व विकल्पसे हो । बहुवचनसे धा प्रत्यय ही लिया जायगा । टुत्व (उ हो या न हो) पूर्व वाक्यसे नित्य होगा, **इति कैयटः । हरदत्तमतमें** उत्व पक्षे नित्यं टुत्वम् । **षड्दन्ताः अस्य षोडन्** ६ दांतका बच्चा । बहुव्रीहिसमासमें **वयसि—दन्तस्थाने दतृआदेशे,** ऋ इत्, **षष** दत्—दूसरे षको **उत्व** आद्गुणे **षोदत-** दस्थानमें टु—टवर्ग ड, **षोडन्** प्रातिपदिकसंज्ञा सु 'उगिदचां' से उगित्मानकर नुम् **षोडन्त्स्** सुलोप संयोगान्तलोप । उसकी असिद्धिसे नान्तदीर्घ नहीं । **षोडन्** । **षोडश** । षट् च दश च , या षडधिकाःदश १६ । विग्रहमें तत्पुरुष-समासे अन्त्य 'ष' को 'उ' गुण षोदश दको टु टवर्ग ड **षोडश 'धासु वा'** का

वेति वाच्यम्'। षोडन्-शोडश-षड्धा-षोढा। १२ **परवल्लिङ्गं द्वन्द्व-तत्पुरुषयोः** २।४।२३॥ एतयोः परपदस्येव लिङ्गं स्यात्। कुक्कुटमयूर्याविमे। मयूरीकुक्कुटाविमौ। अर्धपिप्पली। *द्विगुप्राप्तापन्नालम्पूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः, पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पञ्चकपालः

उदाहरण—षड्धा। **'संख्यायाः विधार्थे धा'** षट् प्रकारः (६ विधिका) अर्थमें धा **षष्धा**, अन्त्य षको उत्व नहीं, तब टुत्व भी नहीं। **हरदत्तमतमें**। तब झलां जशोऽन्ते षको जस् ड **षड्धा**। यदा उत्वं गुणः, धाके धको टुत्व ढ **षोढा**। कैयटमते। उत्व अभावमें नित्य टुत्व, **षडढा षोढा**। भाष्य प्रमाणित ही युक्त।

८१२। **परवत्**—परस्य इति षष्ठ्यन्तसे वतिः, परवर्ती द्वन्द्व और तत्पुरुष समासमें परपदका लिङ्ग हो, स्त्री पुम्नपु० कोई भी हो। इतरेतरयोगद्वन्द्व स्वीकार। समाहार नहीं, नपुंसककी बाध्यतासे। **कुक्कुटश्च मयूरी** च मोर मोरनी इतरेतरद्वन्द्वसमास, जिसमें अनियम होनेसे नियम आवश्यक है उसके लिए सूत्र। किस अवयवका लिङ्ग निश्चित हो. क्योंकि उभयपदप्रधान है सूत्र निर्णय किया, परलिङ्ग मयूरी स्त्री० का, सूचक इमे। दूसरे प्रयोगमें परपद पलिङ्गका सूचक **इमौ** है। अर्धपिप्पली (पीपरिका आधा) अर्धनपुंसकसे तत्पुरुष समासके एकभाग पूर्वपदका अर्थप्रधानसे पूर्वपदका लिङ्ग नपुंसक प्राप्त था, उत्तरपदका लिङ्ग होनेके लिए सूत्र। अर्थ परक षष्ठ्यन्त उत्तरपदार्थप्रधान अर्थका लिङ्ग भाष्य (वा०) द्विगु, संख्यापूर्वसमास **प्राप्त**—लब्ध, **आपन्न** उपलब्ध, अलं—पूर्व, गतिसमास इतनेमें परपदके लिङ्गका निषेध कहें। किन्तु जो प्रधान हो उसीका लिङ्ग मान्य। पांच कसोरोंमें संस्कार किया हुआ पुरोडाश। हवनकी वस्तु। **पञ्चकपालः** संख्यापूर्व है, द्विगुसमासे। यहाँ परपदका लिङ्ग परवल्लिङ्गसे नपुंसक प्राप्त था, किन्तु अन्य पदार्थ विशेष्यका लिङ्ग हुआ। परलिङ्गका वार्तिकसे निषेध लब्ध है **जीविका** अन्न, वस्त्र, आवास इत्यादिवाला **प्राप्तजीविकः**। वहाँ उत्तरपद जीविकाका स्त्रीलिङ्ग जो परवलिङ्गसे समासमें द्विगुप्राप्तापन्नसे निषेध किन्तु प्रधान लिङ्ग। **आपन्ना** उपलब्धा **जीविका यस्य स** पुरुषः वार्तिकसे परपद स्त्री० का निषेध लिङ्गमशिष्यं **लोकाश्रयत्वात्**। अलं पूर्वका प्रयोग अलं=कुमार्यैके लिए जो पूर्ण हो, वह चतुर्थीसमासमें उत्तरपदकुमारीका स्त्री० वार्तिकसे निषेध वह पुरुष अर्थमें है, अतः पुं०। तदर्थका योग नहीं चतुर्थीसमास कैसे? भाष्यमें उक्त विग्रह प्रदर्शनके ज्ञापनसे। अतः मूलमें **अतएव ज्ञापकात्** समासः

पुरोडाशः। प्राप्तो जीविकां प्राप्तजीविकः। आपन्नजीविकः। अलं कुमार्यै अलंकुमारिः। अत एव ज्ञापकात्समासः। निष्कौशाम्बिः। १३ **पूर्ववदश्वबडवौ २।४।२७॥** द्विवचनमन्तन्त्रम्। अश्वबडवौ। अश्वबडवान्। अश्वबडवैः। १४ **रात्राह्नाहाः पुंसि २।४।२९॥** एतदन्तौ द्वन्द्वतत्पुरुषौ पुंस्येव। अनन्तरत्वात्परवल्लिङ्गतापवादोऽप्यपरत्वात्समाहारनपुंसकता बाधते। अहोरात्रः। रात्रेः पूर्वभागः पूर्वरात्रः

कहा। एकविभक्ति **चापूर्वनिपाते** से उपसर्जनसंज्ञा कुमारीका ह्रस्व, **अलङ्कुमारिः पुरुषः**। गतिसमास प्रतिषेधका उदाहरण—कौशाम्बीसे निकला हुआ व्यक्ति) समास होनेपर परपद स्त्री० का निषेध, किन्तुप्रधानका लिङ्ग। गतिसमास प्रादिसमासका बोधक भी है।

। ८१३। **पूर्ववत् अश्वश्च बड़वा च**। घोड़ा घोड़ीके द्वन्द्व समासमें पर० लिङ्गको बाधकर पूर्वपदका लिङ्ग हो जाय। द्विवचन पढ़नेसे, बहुवचनमें अन्यविभक्तिमें सूत्र नहीं लगेगा। तब बोले द्विवचन और विभक्ति दो अविवक्षित हैं, उपलक्षण हैं। पूर्बवत् ग्रहण भी प्रमाण है अन्यथा पूर्ववत् निपातनसे सिद्ध था, किं तेन। समासार्थ पूर्वपदके लिङ्गमें है। या उत्तरपदके लिङ्गमें दोनों दशामें **अश्वबड़वौ** शोभनौ पुलिङ्गभी निपातनसे **अश्वबड़वान्** (शशिन)।

। ८१४। **रात्रा**—रात्रि, अहन्, अहः अन्तमें हो ऐसा द्वन्द्व तत्पुरुषसमास पु० हो परवल्लिङ्गको बाधकर। **अहश्च रात्रिश्च** अनयोः समाहारः इस समास में नपुंसकप्राप्तका बाधक पुलिङ्ग हो जाय। **पुरस्तात् अपवादाः अनन्तरान् विधीन्बाधन्ते नोत्तरान्** इस न्यायसे पुलिङ्ग विधान परपदलिङ्गका बाधक है। नपुं०का नहीं, तब बोले—**अनन्तरत्वाद्** अनन्तरस्य विधिर्भवति प्रतिषेधो वा, विधान या निषेध सन्निकर्षको होता है, अनन्तर होनेसे परपदके लिङ्गका बाधक होकर **परत्वात्**-पर होनेसे समाहार नपुंसकको भी वाधता है। दोनोंको बाधकर रात्राह्नाःसे पुंलिङ्ग, अहः सर्वैकदेशसे अच्। रात्रिका पूर्वभाग समासार्थ। **पूर्वरात्रः** यहाँ भी परलिङ्ग और नपुंसकको बाधकर पु०। अह्नः पूर्वम् एकदेशसमासे पूर्वाह्णः, राजाहः—टच्। अह्न आदेशे परलिङ्ग और नपुंसकको बाधकर पुं०। **द्वयोः अह्नोः समाहारः** द्व्यहः दो दिनका समुदाय द्विगु, टच्, न संख्यादेः अह्न आदेश निषेधे, परलिङ्गको बाधकर पुं० उत्तरपद अह्नके अदन्त न होनेसे स्त्रीत्व नहीं, समासान्तके समासका अवयव होनेसे। **संख्यापूर्वमें** हो, रात्रिके साथ समास, नपुंसक हो, लिङ्गानुशासन, पुलिङ्ग-

पूर्वाह्ण। द्व्यहः। 'संख्यापूर्वरात्रं क्लीबम्। द्विरात्रम्, त्रिरात्रम्, गणरात्रम्। **८१५ अपथं नपुंसकम् २।४।३०॥** तत्पुरुषः इत्येव। अन्यत्र तु अपथो देशः। कृतसमासान्तनिर्देशान्नेह। अपन्थाः। **१६ अर्धर्चाः पुंसि च २।४।३१॥** अर्धर्चादयः शब्दाः पुंसि क्लीबे च स्युः। अर्धर्चः—अर्धर्चम्। ध्वजः—ध्वजम्। एवं तीर्थशरीरमण्डपीयूषदेहाङ्कुशकलशेत्यादि **१७ जात्याख्यायामेकस्मिन्बहुवचनमन्यतरस्याम्। १।२।५८॥** एकोऽप्यर्थो वा बहुवद्भवति। ब्राह्मणाः पूज्याः—ब्राह्मणः

विधायकका बाधक है। **द्वयोःरात्रोः समाहारः द्विरात्रं** नाटकं, द्विगुसमासे, अहः सर्वैकदेश-अच्। पुंसको बाँधकर क्लीव गणशब्द बहुतका पर्याय है। बहुगणवतु से संख्यासंज्ञा। **गणानां रात्रीणां समाहारः** द्विगु, अच, पुंसको बाँधकर नपुंसक **गणरात्रं**, बहुत रात्रिका नाटक।

८१५। **तत्पुरुषसमासमें** अपथ—नपुंसक हो, **न पन्था** इति विग्रहे नञ्-समासे नकारलोपे अपथिन् **ऋक्प्**—अप्रत्यते टिलोपे, नपुंसके। **अपथं** पर लिङ्गको बांधकर तत्पुरुषसमासमें ही नपुंसक। अयोग्यतासे द्वन्द्व नहीं आया। अन्यत्र बहुव्रीहि में नपुंसक नहीं होता। न पन्था यस्य स **अपथः** देशः। जिसमें रास्ता नहीं, **कृतसमासान्त** उच्चारणसे तत्पुरुषमें भी नपुंसक नहीं होता। **अपन्थाः**, पथो विभाषा से समासान्त अप्रत्यय विकल्पसे। जब नहीं हुआ, तब **अपन्थाः** नपुंसक नहीं। ८१६। **अर्धर्चाः**-बहुवचनसे तदादिका ग्रहण, अर्धर्च आदि शब्द पुलिङ्ग और नपुंसक में है। अर्थभेदसे कोई शब्द अर्थ व्यवस्था के पात्र। यथा **मद्यमकरन्दमाक्षिकाणां** वाची मधुशब्दो द्विलिङ्गः। चैत्रादिवाची पुलिङ्गः भूतपिशाचे द्विलिङ्गः। क्रियावचनस्तु—प्रधानस्य लिङ्गः यथायोग्यः। **ऋचः** मन्त्रस्य **अर्धं** विग्रहे **अर्धं नपुंसकं** समासे **ऋक्पूः** अच्। पर पदका स्त्रीलिङ्ग बाँधकर पुं०नपुंसक अर्धर्चाः पुंसि सूत्रेण। **अर्धर्चं, ध्वजः ध्वजं**, तीर्थः तीर्थं, शरीरः शरीरं मण्डपः मण्डपं यूषः यूषं, देहः देहम्, अङ्कुशम् कलशः इत्यादि।

८१७। **जात्या**—आकृति अधिकरणमें जातिवाचक (जातौ शक्तिः शब्द की जातिमें शक्ति स्वीकृति) जाति एक है एकवचन ही हो, तब सूत्र बोले—**जातिः आख्या प्रसिद्धि** हो, एकवचन के स्थानमें बहुवचन विकल्प से हो। **ब्राह्मणाः भोज्याः** बहुवचन कैसे? एकस्मिन्नर्थे विद्यमानः शब्दो **बहून् अर्थान् वक्ति, एकार्थो बहुवद्** भवति। एक अर्थ भी बहुवचनके योग्य कार्य लाभ करे। ब्राह्मणाः **पूज्याः** जातिवाचक शब्द ब्राह्मणसे एकवचन प्राप्त था बहुवचन का आरोप

पूज्यः। **१८ अस्मदो द्वयोश्च १।२।५९।।** एकत्वे च विवक्षितेऽस्मदो बहुवचनं वा स्यात्। वयं ब्रूमः। पक्षे, अहं ब्रवीमि, आवां ब्रूव इति वा।* 'सविशेषणस्य प्रतिषेधः' पटुरहं ब्रवीमि। **१९ फल्गुनीप्रोष्ठपदानां च नक्षत्रे १।२।६०।।** द्वित्वे बहुत्वप्रयुक्तं कार्यं वा स्यात्। पूर्वे फल्गुन्यौ–पूर्वाः फल्गुन्यः। पूर्वे प्रोष्ठपदे—पूर्वाः प्रोष्ठपदाः। नक्षत्रे किम्। फल्गुन्यौ माणविके। **८२० तिष्यपुनर्वस्वोर्नक्षत्रद्वन्द्वे बहुवचनस्य द्विवचनं नित्यम् १।२।६३।।** बहुत्वं द्वित्ववद्भवति।

अतिदेश होनेसे जस्। एकवचनभी ब्राह्मणः। जाति आख्या क्यों कहा। देवदत्त में बहुवचन नहीं, जाति न होने से, एकस्मिन् क्यों? व्रीहियवौ, अलग-२ होने से बहुवचन नहीं। ८१८। **अस्मदो** एकवचन द्विवचन की विवक्षा हो तब अस्मद् शब्दसे बहुवचन विकल्प से, **वयं ब्रूमः**। एकवचन की इच्छामें बहुवचन **वयं**, पक्षमें एकवचन **अहं**, दोनों साधु। द्विवचनमें भी **वयं ब्रूमः** बहुवचन द्विवचन भी **आवां**, सविशेषण। यदि विशेषणसहित अहं हो तब बहुवचन नहीं होता। **पटुः अहं**, विशेषण पटु है, बहुवचन नहीं हुआ। **त्वं राजा वयमपि उपासितगुरुः** प्रज्ञाभिमानोन्नताः, तुम राजा हो मैं भी गुरु उपासनासे ज्ञानके अभिमानमें उन्नत हूं। अवयवगत बहुत्वके अभिप्रायसे बहुवचन।

८१९। **फल्गुनी–नक्षत्रे** प्रथमा द्विवचन। नक्षत्र अर्थमें फल्गुनी और प्रोष्ठपद=भाद्रपद हो तब द्विवचनकी इच्छामें बहुवचनके योग्यकार्य विकल्प से हो, **पूर्वे फल्गुन्यौ** के पूर्वाफाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र अर्थमें सूत्रसे बहुवचन। **पूर्वाः फल्गुन्यः प्रोष्ठपदे** औङ्को शी गुण। **प्रोष्ठपदा भाद्रपदा स्त्रियामित्यमरः**। द्विवचनको विकल्पसे बहुवचन। पैदा हुयीं नक्षत्रवाची, बहुवचन क्यों! **फल्गुन्यौ माणविके** फाल्गुनी नक्षत्रमें दो लड़की है नक्षत्र नही, बहुवचन नहीं, फल्गुनी शब्दसे **नक्षत्रेण युक्तःकालः**से **अण्** उसका लुप अविशेषे। जात अर्थमें **फल्गुन्यषाढाभ्यां टानौ 'ट'** टित् ङीप्। ८२०। **तिष्य** और **पुनर्वसु** नक्षत्र अर्थ में हो, द्वन्द्वसमास हो, तब बहुवचन स्थाने द्विवचन अतिदेश नित्य हो। यथा **तिष्यश्च पुनर्वसू च** द्वन्द्वसमासमें सङ्ख्या तीन है बहुवचन प्राप्त परन्तु नक्षत्रका द्वन्द्व होनेसे नित्य द्विवचन हुआ। **तिष्य क्यों** पढ़ा? विशाखे च अनुराधाश्च **विशाखानुराधाः**। बहुवचनकी जगह द्विवचन न हो। **नक्षत्र क्यों** पढ़ा? इस लिए कि **तिष्यश्च पुनर्वसू च** दोनोंसे नक्षत्रेण युक्तः कालःसे अण्, उसका लुप्, जात अर्थमें। 'सन्धिवेला'से अण तस्य लुक्। यहाँ द्विवचन न हो जाय। क्यों

तिष्यश्च पुनर्वसू च तिष्यपुनर्वसू । २१ स नपुंसकम् २।४।१७॥ समाहारे द्विगुर्द्वन्द्वश्च नपुंसकं स्यात् । परवल्लिङ्गापवादः । पञ्चगवम् । दन्तोष्ठम् ।* 'अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः'। पञ्चमूली ।* 'आबन्तो वा' पञ्चखट्वं-पञ्चखट्वी । * 'अनो न-लोपश्च, वा द्विगुः स्त्रियाम्' पञ्चतक्षी-पञ्चतक्षम् ।* पात्राद्यन्त-

---

कि पुष्य पुनर्वसू नक्षत्र में जन्म लेनेवाला बालक अर्थ है। अनुवृत्ति न कर नक्षत्र पढ़ना पर्यायमें भी कार्य होने के लिए। तिष्यपुनर्वसू फल है। बहुवचन कहा इदं तिष्यपुनर्वसु । समाहारद्वन्द्व ।

८२१। स (समाहार द्विगु और द्वन्द्व] नपुंसक हो। तत्पद से द्विगु और द्वन्द्व समाहार इष्ट है, परपदके लिङ्ग को बाधकर। पञ्चानां गवां समाहारः पञ्चगवं द्विगुसमासे स नपुंसकलिङ्गे, परलिङ्ग पु० को बाधकर। दन्ताश्च औष्ठौश्च सभी दाँत दोनों ओष्ठ मिलकर दन्तोष्ठम्। द्वन्द्वश्च प्राणितूर्य-सूत्रेण समाहार द्वन्द्वसमासे, परलिङ्गको बाधकर नपुंसक (वा) अकारान्तम् उत्तर पदं यस्य, अकार अन्तमें हो ऐसा उत्तरपदवाला द्विगुसमास स्त्रीलिङ्ग इष्ट है, नपुंसकको बाधकर। पञ्चानां मूलानां समाहारः द्विगुसमास, स नपुंसक को बाधकर वार्तिक से स्त्री०। द्विगो से ङीप्। पञ्चमूली। पञ्चानां पूलानां समाहारः। पञ्चपूली, पञ्चमिष्टी, आबन्त=आकारान्त हो विकल्प से स्त्री०। पञ्चानां खट्वानां समाहारः, द्विगुसमास नपुं० ह्रस्व, पञ्चखट्वं, यदा स्त्री तदा पञ्चखट्वी। उपसर्जन ह्रस्व करके द्विगोः से ङीप् अनोः अन् आया, तदन्त विधिः। अन् अन्तमें हो ऐसे द्विगु समास का स्त्री० विकल्पमान्य। अन् के, न का लोप भी हो। 'वा' का स्त्री० से सम्बन्ध, न लोप से नहीं, अतः स्त्री० के अभावमें भी नलोपः। पञ्चानां तक्ष्णां समाहारः पांच बढ़ई का झुण्ड। द्विगु, स्त्री० नलोप, द्विगोः से ङीप्। पञ्चतक्षी। यदा न स्त्री० तदा स नपुंसकम्। नकार लोपश्च पञ्चतक्षम्। अन्तर्वर्तिनीं=समास भीतर लुप्त विभक्ति को प्रत्ययलक्षण मानकर पदसंज्ञा प्रातिपदिकान्त न लोप होता, किन्तु उत्तरपदत्वे चापदादिविधौ से, प्रत्ययलक्षण का निषेध, तदा न पदं, न नलोपः। पात्रादिगण है, वह अन्तमें हो ऐसा समाहार द्विगु स्त्री० नहीं होता। किन्तु स नपुंसकं होता है। पञ्चानां पात्राणां समाहारःपञ्चपात्रम्। त्रयाणां भुवनानां समाहारः चतुर्णां युगानां समाहारः। इनके समाहार द्विगुके पश्चात् अकारान्त उत्तरपद मानकर स्त्री० प्राप्त था, उसका पात्राद्यन्तस्य न से निषेध। किन्तु स

स्य न' पञ्चपात्रम् । त्रिभुवनम् । चतुर्युगम् ।* पुण्यसुदीनाभ्यामह्नः क्लीबतेष्टा' पुण्याहम् । सुदिनाहम् ।* 'पथः संख्याव्ययादेः' संख्याव्ययादेः परः कृतसमासान्तः पथशब्दः क्लीबमित्यर्थः । त्रयाणां पन्था स्त्रिपथम् । विरूपः पन्थाः विपथम् । कृतसमासान्तनिर्देशान्नेह । सुपन्थाः, अतिपन्थाः ।* 'सामान्ये नपुंसकम्' मृदु पचति । प्रातः कम-

---

नपुंसके । **पुण्य** और **सुदिन** से परे अहन् शब्द हो ऐसा तत्पुरुष नपुंसक इष्ट है पुंसि को बाधकर । पुण्याह शुभ दिन । पुण्यम् अहः कर्मधारयसमासे 'राजाहः' से टच् टिलोपे, **उत्तमैकाभ्यां** से अह्न आदेशका निषेध । **प्रशस्तम्** अहः **दिनं** कर्मधारय, टच्, टिलोपे, पुंसिको बाधकर नपुंसक, सूत्रसे । **सुदिनासु सभा सु (कार्यमेंतत्प्रविचिन्वीत विशेषतः)** प्रशस्त अर्थः । **पथः–संख्या** और **अव्यय** आदिमें हो और **कृतसमासान्त**=समास मानकर टच् **अच्**, अ आदि हुआ होः तब पथशब्द नपुंसक हो, जो समासान्त प्रत्यय रहनेपर अकारान्त हुआ है । परवर्ती पुलिङ्गको बाधकर । **दिग्योगे** पञ्चमी । तीनका रास्ता **त्रिपथम्** । त्रिआम् पथिन् आम् समासादिः । **ऋक्पूरब्धूसे** अ, टिलोप सूत्रेण नपुंसकं, पु० को बाधकर । विरूप ऊबड़–खाबड़ रास्ता **विपथं भ्रष्ट मार्गः** । प्रादयः गताद्यर्थे समास । अ, टिलोप, वार्तिकेन नपुंसकं, **कृतसमासान्ते** किया हुआ समासान्त अप्रत्यय होनेपर नपुंसकके कहनेसे **नेह**=जहाँ अ, न हुआ हो, वहां नपुंसक न हो । यथा **शोभन पन्था** अच्छा रास्ता **सुपन्थाः** । पन्थानम् अतिक्रान्तः रास्ताको पार कर गया **अतिपन्था** । दोनोंमें **'स्वतिपूजायां'** से समास । न पूजनात्से समासान्तका निषेध । अतः न नपुंसक । यदि ऐसा **व्यध्वादूरध्वाविग्रथः कदध्वा कापथः समा** इत्यमरः । यहां प्रमादसे **विपथः** कहा गया । अथवा त्रिकाण्ड शेषमें (**वाटः पथश्च मार्गः स्यात्**) ऐसे **पथसे** समास पु० **विपथा** नगरीमें बहुव्रीह है । **एवमतिपथाः** । विशेषण-विशेष्यकी उपस्थितिमें स्त्रीलिङ्ग या पुलिङ्ग स्पष्ट न हो, तब पारिभाषिक (**उभयोरन्तरं यच्च तदभावे नपुंसकं**) मान्य । अतः **एकश्रुतिः स्वरसर्वनाम**, **नपुंसकलिङ्ग सर्वनाम** ऐसा दाण्डिनायन सूत्रके भाष्यमें है । अनिश्चितलिङ्ग ही इसका विषय । अतः आदि **पचति प्रातरादिः** पु० । **मृदुपचति** स्त्रादिष्ट पकाता है लि० स्पष्ट नहीं, अतः सामान्ये नपुंसकम् । मृदु शिथिल अर्थमें जो व्यापारसे अन्वित,**मृदु पाकं करोति**, फलांशमें कर्मीभूत, फलाश्रय कर्म है । **प्रातः रमणीयम्** यहां लिङ्ग स्पष्ट नहीं, अतः नपुंसक । निश्चित लिङ्गमें सूत्र नहीं लगता ।

नीयम्। २२ **तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारयः** २।४।१९।। अधिकारोऽयम्। २३ **संज्ञायां कन्थोशीनरेषु** २।४।२०।। कन्थान्तस्तत्पुरुषः क्लीबं स्यात् सा चेदुशीनरदेशोत्पन्नायाः कन्थायाः संज्ञा। सुशमस्यापत्यानि सौशमयः तेषां कन्था सौशमिकन्थम्। संज्ञायां किं? वीरणकन्था। उशीनरेषु किम्। दाक्षिकन्था। २४ **उपज्ञोपक्रमं तदाद्याचिख्यासायाम्** २।४।२१।। उपज्ञान्तः उपक्रमान्तश्च तत्पुरुषो नपुंसकं स्यात्, तयोरुपज्ञायमानोपक्रम्यमानयोरादिः प्राथम्यं चेदाख्यातुमिष्टं। पाणिनेरुपज्ञा पाणिन्युपज्ञं ग्रन्थः। नन्दोपक्रमं द्रोणः ८२५ **छाया बाहुल्ये** २।४।२२।। छायान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकं स्यात्पूर्वपदार्थबाहुल्ये। इक्षुणां छाया इक्षुच्छायाम्। 'विभाषा सेना' इति विकल्पस्यायमपवादः। इक्षुच्छायानिषादिन्यः' इति तु 'आ समन्तान्निषादिन्यः' इत्याङ्श्लेषो बोध्यः। २६ **सभाराजाऽमनुष्यपूर्वा** २।

।२२। यह अधिकार सूत्र है। **नञ्** समास और **कर्मधारय**को छोड़कर **शेष तत्पुरुषसमास**से अग्रिम कार्य हो। परवल्लिङ्गं तक अधिकार चलेगा।२३। **संज्ञायां** कन्था अन्तमें हो ऐसा तत्पुरुष नपुंसक हो, यदि **उशीनरदेश**में उत्पन्नका कन्था नाम हो. (कथरी) सुशमकी सन्तानें **सौशमयः**। उनकी कथरी **सौशमिकन्थम्**। षष्ठी तत्पुरुषसंज्ञा। नपुंसकसंज्ञा क्यों कहा? **वीरणकन्था** (मोटा गेद्दा) नपुंसक न हो। **उसीनर क्यों**? दाक्षिकन्था वहाँकी नही है। ।२४। **उपज्ञ**–(उपज्ञायते प्रथमं ज्ञायते क्तिन् अङ) (**उपक्रम्यते** आरभ्यते) **उपक्रमः** दोनों अन्तमें हों, ऐसा **तत्पुरुष** नपुंसक हो, **तदादि**–तयोः (उपज्ञा और उपक्रम की) आदि=प्रथम ज्ञान, उसकी **आख्यातुमिच्छा आचिख्यासा** विवक्षा बोलनेकी इच्छा। उपज्ञायतेऽसौ **उपज्ञायमानः** उपक्रम्यतेऽसौ **उपक्रममाणः** का प्राथम्य इष्ट हो, तब परलिङ्गको बाधकर। पाणिनेः उपज्ञा कर्तरि षष्ठी, पाणिनिके प्रथमज्ञानका विषय समासार्थः, **अष्टाध्यायी ग्रन्थः**, समा० उपज्ञात नपुंसक।

।८२५। **छाया** अन्तमें हो, ऐसा तत्पुरुष नपुंसक हो। यदि पूर्वपदका अर्थ **बहुल** ढेर अधिक हो। **बाहुल्य क्यों**? कहा **कुड्यस्य छाया** दीवालकी परछाई अधिक नहीं है नपुंसक न हो। **ईखकी घनी छाया इक्षुच्छाया** षष्ठी तत्पुरुषमें बहुत ईखकी अधिकतासे **छायाबाहुल्ये** इति नपुंसकम्। **विभाषा सेनासुराच्छाया**–सूत्रसे विकल्प। क्लीबको बांधकर। (इक्षुछायामें बैठनेवाली) इस वाक्यमें आङ्का प्रश्लेष चिपकाव है वहां आसमन्तात्अर्थ है। चारो ओर घेरकर बैठनेवाली। कोई 'इक्षुच्छाय' पढ़ते।

४।२३॥ राजपर्यायपूर्वोऽमनुष्यपूर्वश्च समान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकं स्यात्। इनसभम्। ईश्वरसभम्।* 'पर्यायस्यैवेष्यते' नेह, राजसभा, चन्द्रगुप्तसभा। अमनुष्यशब्दो रूढ्या रक्षःपिशाचादीनाह्। रक्षस्सभम्, पिशाचसभम्। २७ **अशाला च** २।४।२४॥ संघातार्था या सभा तदन्तस्तत्पुरुषः क्लीबं स्यात्। स्त्रीसभम्। स्त्रीसंघात इत्यर्थः २८ **विभाषा सेनासुराच्छायाशालानिशानाम्** २।४।२५॥ एतदन्तस्तत्पुरुषः क्लीबं वा स्यात्। ब्राह्मणसेनम्–ब्राह्मणसेना। यवसुरम्–यवसुरा। कुड्यच्छायम् कुड्यच्छाया। गोशालम्–गोशाला। श्वनि-

---

।२६। सभा। **राजा च** अमनुष्यश्च तौ पूर्वौ यस्याः सा। राजा और मनुष्येतर पूर्वमें हो, सभा अन्तमें हो ऐसा तत्पुरुष नपुंसक हो। राजशब्द नहीं पर्याय इष्ट है। अतः वार्तिक पढ़े। पर्यायका ही ग्रहण इष्ट है। यथा **इनसभम्** इनस्य राज्ञः सभा (राजदरबार) इन-का सभाके साथ समास, सूत्रसे नपुंसक। **ईश्वरस्य सभा ईश्वरसभं**, ब्रह्मलोकः। इन, ईश्वर दोनों राजाके **पर्याय एवं** निश्चायक हैं। वार्तिकमें पर्यायका ही ग्रहण ईष्ट है। इसलिए जहाँ राज है वहाँ नपुंसक नहीं। राज्ञः सभा **राजसभा** पर्याय नहीं है, नपुंसक नहीं। **चन्द्रगुप्तकी सभा** राजाका नाम चन्द्रगुप्त है पर्याय नहीं, न नपुंसक। **एवसे स्वरूपका** निराश। अमनुष्यपूर्वक सभाका विधान है, देवसभा ३ मनुष्यकी है। नपुंसकका निवारण कैसे ? तब बोले—**रूढ़ि शक्तिसे**, अमनुष्यशब्द **राक्षसपिशाच देवता दैत्य असुर** आदि **को भी कहेगा**। अतः **रक्षसां सभारक्षःसभं, पिशाचानां सभा** नपुंसक हुए।

।२७। **अशाला**—सभाशब्द शाला और समुदाय अर्थमें हैं। किन्तु संघात अर्थमें सभा अन्त हो, ऐसा तत्पुरुष नपुंसक हो, शालाको छोड़कर। यथा **स्त्रीणां सभा स्त्रीसभं**, समूह अर्थमें सभा अन्तमें है। नपुंसक हुआ स्त्रीसंघात समुदाय अर्थ। अशाला क्यों ? **धर्मसभा** या **धर्मशालामें** नपुंसक न हो। २८। सूत्रमें षष्ठी प्रथमा अर्थे। तत्पुरुष आया, तदन्तविधि। **एतदन्त**-सेना सुरा छाया शाला निशा ये अन्तमें हों ऐसा तत्पुरुष नपुं० हो, विकल्पसे। एक-एकको। **ब्राह्मणानां सेना**, देशरक्षक समुदाय, सेनान्त तत्पुरुष है सूत्रसे नपुं०। **ब्राह्मणसेनं**, पक्षे न। **यवानां सुरा** जौकी मदिरा। तत्पुरुषसमासे, सुरान्त **यवसुरा** पक्षे नपुंसकम्। **कुड्यस्य** दीवालकी **छाया** पूर्ववत्कार्य, पक्षे नपुंसकम्। **गवां शाला** गो आम् शाला सु। समासे **गोशाला**, पक्षे नपुंसकम। **शुनः निशा** कुत्तोंकी रात्रि कृष्णचतुर्दशी, **तस्यां किल केचन श्वानः** उपाविशन्ति। **शुनश्चतुर्दश्यामुपवसतः**

शम्–श्वनिशा । 'तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारयः' इत्यनुवृत्तेनेह । दृढसेनो राजा । असेना । परमसेना ।

॥ इति तत्पुरुषसमासप्रकरणम् ॥

पश्यामः इति साबरभाष्ये, तिर्यगधिकरणं श्वन् ङस् निशा सु समासादिः निशान्त तत्पुरुषः, पक्षे नपुंसकम् । विभाषा सूत्रमें तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारय सूत्र की अनुवृत्ति है । भाव यह है कि अन्य और नञ् समासमें नपुंसक नहीं होता । यथा दृढासेना यस्य मजबूतसेना है जिसकी दृढसेना बहुव्रीहि है तत्पुरुष नहीं, न नपुंसकम् । न सेना असेना तत्पुरुष है किन्तु नञ्समाससे नपुंसकता नहीं । परमा च सेना च कर्मधारय है नपुंसकता नहीं आई ॥

॥ इति प्राभाकर्यां तत्पुरुषः परिपूर्णः ॥

अथ बहुव्रीहिसमासः—

उत्तरपदका अर्थप्रधान तत्पुरुष समास एकपद, एकशक्ति एकार्थीभावका प्रवचनपूर्ण हुआ, अनन्तर शब्दानामनेकार्थत्वात् बहूनि–अनेकानि व्रीहीणि–विशेषणानि अन्यपदार्थे वर्तमानानि यस्मिन्समासे बहुव्रीहिः अनेकपद मिलकर अन्य अर्थ कहे, ऐसा समासार्थ, अन्य पदार्थप्रधानसमास प्रसिद्ध । कौनसी अनेक विभक्तियां किसके साथ किसके लिए समस्त हों, इस शङ्कापर बोले—

। २९ । शेषो बहुव्रीहिः यह अधिकार सूत्र है । शेष क्या है ? मूलमें शिष् असर्वोपयोगे' जो सबके उपयोगमें न आवे, उसके अनुकूल क्रिया शिष्यते (कर्मणि घञ्) यः स शेषः । जो अवशिष्ट रहे, बाकी बचे (भागमें जो शेष रहता वह किसीसे नहीं बँटता) जो किसीके काममें न आवे वह शेष, प्रसंगमें अन्यपदार्थसमासार्थ शेष है, वह पूर्वपदार्थ प्रधान अव्ययीभावके काममें नहीं आता, उत्तरपदार्थप्रधान तत्पुरुषके भी, उभयपदार्थ-प्रधान द्वन्द्वके काममें नहीं आता । वृत्तिकार इसी भावको बोले–यत्राऽन्यः समासो नोक्तः स शेषः ।- हरदत्त भी येषां पदानां यस्मिन्नर्थे अव्ययीभावादिसंज्ञकः समासो न विहितः स शेषपदार्थः । इस समासका अधिकार प्राक्कडारात् परकार्यके अभिप्रायसे इस पक्षमें जब शेष नहीं रहेगा उन्मत्तगङ्गम्में परत्वात् बहुव्रीहि और निरवाका अव्ययपक्षमें अनिष्ट होगा । आकडारादेका संज्ञापक्षमें, संज्ञावीहुव ही होगीशेषग्रण

अथ बहुव्रीहिसमास प्रकरणम्

८२९ **शेषो बहुव्रीहिः** २।२।२३।। अधिकारोऽयम् । 'द्वितीया श्रित' इत्यादिना यस्य त्रिकस्य विशिष्य समासो नोक्तः स शेषः प्रथमान्त मित्यर्थः । ३० **अनेकमन्यपदार्थे** २।२।२४।। अनेकं प्रथमान्तमन्यपदार्थे वर्तमानं वा समस्यते स बहुव्रीहिः । अप्रथमाविभक्त्यर्थे बहुव्रीहिरिति समानाधिकरणानामिति च फलितम् । प्राप्तमुदकं यं सः प्राप्तोदको

सँभालेगा । **शेषपदसे कौनसी विभक्ति किस अर्थमें ली जाय,** निर्णयार्थ **बोले– द्वितीया श्रितातीत**–सूत्रसे द्वितीयान्तका समास कहा गया, **तृतीयातत्कृता** बहुलंसे तृतीयार्थ, **तदर्थे चतुर्थी, भयेन पञ्चमी, समर्थके साथ षष्ठी, सप्तमी** भी । ६ विभक्तियोंके साथ समास विधान हुआ । **शेष प्रथमाविभक्ति** सु औ जस बचे, वे ही शेष हैं । अतः **त्रिकस्य** सु औ जस् **विभक्तेः** । यद्यपि विशेषणं विशेष्येण बहुलंसे प्रथमाके साथ समास दृष्ट है, तथापि **प्रथमाका नाम लेकर किस अर्थमें समास हो, यह नहीं कहा गया** । एवं **प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया** वार्तिकमें प्रादिका अर्थ गतादि कहा गया, प्रथमाका किस अर्थके साथ समास हो यह सूत्रकारने नहीं कहा, **'विशिष्य समासो नोक्तः'** प्रथमा उच्चारण करके विशेषरूपसे समास विधान न होनेसे प्रथमा ही **शेषका** अर्थ है । प्रथमान्त इत्यर्थः । शेषके अधिकारमें **बहुव्रीहिसे कप्**, अन्यसे नहीं, यह लाभभी **शेषः** ।

। ८३० । अनेकं=प्रथमान्त अर्थलाभ शेषकी अनुवृत्तिसे । सुप्सुपा नहीं आया, निष्प्रयोजनसे । **अनेकं प्रथमान्तं अन्यस्य**=उपस्थितप्रथमान्त **पदोंके** अतिरिक्त पदके अर्थमें वर्तमान हों तब विकल्पसे **समस्यते** एकार्थीभाव हों, स बहुव्रीहिः यहां अन्य पदार्थ प्रधान माना । समानविभक्ति अवश्य हो **पञ्चभिर्भुक्तम् अन्नं यस्य** स विगमविभक्ति है, न बहुव्रीहिः । प्रथमान्त हीं माना । इस समासका अन्यपदार्थ द्वितीयार्थ तृतीयार्थ चतुर्थ्यर्थ पञ्चम्यर्थ षष्ठ्यर्थ सप्तम्यर्थ ही होगा, **प्रथमार्थ नहीं** । इससे **समानाधिकरण**=समान आधार समान-विभक्तिवालोंका समास फलित । **अनेक क्यों** पढा ? बहुतोंके साथ समासके लिए **अन्य अर्थ** क्यों पढा ? तत्पुरुषसे **विषय-विभागके** लिए । **पद क्यों पढा**, वाक्यार्थमें समास न हो, **ग्राहवती नदी** ग्राहवाली है उसका तात्पर्य निकला कि **इह मा स्नासीः** यहां मत स्नान करो वाक्यार्थ है । **अर्थ क्यों** कहा ? **पदका पदके साथ वृत्ति नहीं, वह पदार्थमें ही** रहती हैं इसलिए कि **प्रकृत्यर्थ प्रत्ययार्थ विशिष्ट लिया जाय,** केवल प्रत्यार्थ नहीं । अनेक प्रथमान्तका अन्यपदार्थ द्वितीयार्थका प्रयोग–**प्राप्तम् उदकं यं ग्रामं** बाढ़का पानी पहुंच गया जिस गांव

ग्रामः। ऊढरथोऽनड्वान्। उपहृतपशु रुद्रः, उद्धृतौदना स्थाली। पीताम्बरो हरिः। वीरपुरुषको ग्रामः। प्रथमार्थ तु न। वृष्टे देवे

तक वह प्राप्तोदकः ग्रामकर्मकं प्राप्तिकर्तृ उदकं विग्रहका अर्थ, उदककर्तृकप्राप्ति कर्म समासार्थ। पानी गांव तक पहुंचा। प्राप्त सु उदक सु अनेकमन्यपदार्थे सूत्रेण समासे, समासत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां सुपो धातुप्रातिपदिकयोः सुपो लुक् एकदेशविकारन्यायेन पुनः सु, रुत्वे बिसर्गे। प्राप्तोदकः इति। यहां प्रथमा क्यों? यं ग्रामं कर्म है अन्य पदार्थ हैं, द्वितीया होनी चाहिए? समाससे उक्ते कर्मणि प्रथमा उचित है। एकार्थीभावसे विशेषण विशेष्यभावका व्यत्यासभी समझें। अनेक प्रथमान्त का तृतीयार्थ प्रधान समास ऊढः रथो येन खींचा गया रथ जिससे वह वृषभ ऊढरथः तगड़ बैल। अनडुत्कर्तृक उद्वहनकर्मीभूतः रथः। बैल कर्ता से खीचने क्रिया का कर्म रथ है, एकार्थी भाव होने पर कर्ताकर्म में परिवर्तन रथकर्मकः उद्वहनकर्ता समासार्थ। उक्ते कर्तरि प्रथमा अनुक्ते तृतीया। ऊढसु समासादिः पूर्ववत्। समास से तृतीया प्रधान में प्रथमा। अन्य पदार्थ चतुर्थी का प्रयोग— उपहृतः पशुः यस्मै लाया गया जीव जिसके लिए वह रुद्रभगवान् उपहृत पशुः। रुद्रसम्प्रदानक उपहरणकर्मीभूतः पशुः विग्रहार्थः। पशुकर्मक उपहरणसम्प्रदान समासार्थ। उपहृत सु पशु सु (के लिये) अर्थमें समासादि। उक्त सम्प्रदाने प्रथमा। पञ्चम्यर्थ अन्य पदार्थ यथा उद्धृतः ओदनः यस्याः सा (निकाला गया भात जिससे वह) स्थाली अवधि पञ्चमीका अर्थ स्थाल्यवधिक उद्धरणकर्म ओदनः। ओदनकर्मक उद्धरणावधिः स्थाली समासार्थः। उद्धृत सु ओदन सु समासादिः। उक्ते पञ्चम्येऽर्थे प्रथमा। षष्ठी अर्थ प्रधानः— पीतमम्बरं यस्य स (पीला वस्त्र है जिसका) पीताम्बरः विष्णुः। यस्य से षष्ठी अर्थ प्रधान। पीत सु अम्बर सु पूर्वत्समासः। षष्ठी–अर्थे उक्ते प्रथमा। सप्तमी– अर्थ प्रधान —वीराः पुरुषाः यस्मिन् (शक्तिशाली लोग हो वह ग्राम) वीरपुरुषकः वीर सु पुरुष सु। आधार– अर्थ प्रधानसमासादिः। शेषाद्विभाषा कप् स्वादिः। समास में सभी अर्थ उक्त हैं। अतः सर्वत्र प्रथमा प्रथमार्थे= अन्यपदार्थ प्रथमा का अर्थ हो तब समास न हो यथा वृष्टे देवे गतः इन्द्र बरसते रहे तब गया। गतः से प्रथमा का अर्थ पदार्थ हुआ, अतः नहीं समासः। व्यधिकरण=विषम विभक्तिवालों का भी समास नहीं, अनेकप्रथमान्त न होने से। शेष पद से ही समस्या सुलझेगी, समानाधिकरण, व्यधिकरण अप्रथमार्थे, आदि वचन न पढ़ें (पांच बार भोजन किया) विषमविभक्तिके

नतः, व्यधिकरणानामपि न। पञ्चभिर्युक्तमस्य। 'प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः। प्रपतितपर्णः प्रपर्णः। 'नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' अविद्यमानपत्रः अपुत्रः। 'अव्ययानां च'। उच्चैर्मुखः। 'सप्तम्युपमानपूर्वपदस्योत्तरपदलोपश्च'। सप्तम्यन्तम् उपमानं च पूर्वपदं यस्य तस्य पदान्तरेण समासः उत्तरपदलोपश्च भवतीत्यर्थः। कण्ठेस्थः कालो यस्य सः कण्ठेकालः। उष्ट्रमुखमिव

समास नही। वृत्तिकार मतमें प्रथमान्तानामेव बहुव्रीहिः उक्त अर्थ लाभ के लिए। प्रादिभ्यः= प्र परा, सम आदि से परे धातुजस्य= धातुमें उत्पन्न प्रथमान्त हो, तदन्त का अन्य प्रथमान्त के साथ अन्य पदार्थप्रधान एकार्थीभाव हो, और प्रादिसे परे उत्तर भाग में धातुज (पतित) का लोप विकल्प से हो। लोप ही मुख्य फल है। प्रकृष्टं पतितं प्रपतित तेजीसे गिरा हुआ। गतादि अर्थे प्रादिका समास। प्रपतितं पर्ण यस्मात् (गिरगयीं पत्ती जिससे) प्रपर्णः वृक्षः प्रपतित सु पर्ण सु, समासादिः। प्रादिभ्यः वार्तिकसे पूर्वपद के धातुज उत्तर भाग 'पतित' का लोप। नञो—नञ् से परे अस्ति अर्थवाची सुबन्तोंका बहुव्रीहि अन्यार्थ, एकार्थीभाव हो अस्ति अर्थवाले उत्तरपद (विद्यमान) का लोप हो यथा न विद्यमानः (नास्ति) नञ्समासे, नलोपे। अविद्यमानः पुत्रो यस्य सोऽपुत्रः (सन्तानहीनः) अस्तिअर्थ मे विद्यमानशब्द है। अविमान सु पुत्रसु वार्तिकेन समासादिः उत्तरपद विद्यमानका लोप। अस्ति अर्थ क्यों कहा? अनुपनीतः पुत्रः जिसका उपनयन (जनेऊ) न हुआ हो, यहाँ उपनीत अस्ति अर्थ मे नही है, उत्तरपद का लोप भी नही। नञ क्यों? निर्विद्यमानःपुत्रः। एवम् अविद्यमानः शिष्यः अशिष्यः। अद्रव्यम् अवस्त्रम्। अव्ययों के साथ भी बहुव्रीहि बोल — उच्चैर्मुखः ऊँचाइ पर मुख। आधार शक्तिप्रधान उच्चैः है, प्रथमान्त न होने से समास अप्राप्त था, अतः वार्तिक पढ़ा। सप्तमी और उपमान वाचक शब्द पूर्वमे हो, ऐसा पद उसका दूसरे पद के उत्तरपदका लोप भी हो। यथा कण्ठे तिष्ठति, कण्ठेस्थः। 'सुपिस्थः' से क। कित् से आलोप, उपपदसमास। "सुपो धातुप्रातिपदिकयोः" से सुप् का लुक् प्राप्त था, किन्तु अमूर्द्धमस्तकात् से सप्तमी लुक् नही हुई, कण्ठेस्थः सु कालसु, वार्तिकेन समासे सुपः लुक्, पूर्वपद कण्ठेस्थःमें उत्तरपद स्थःका लोप, स्वादिः, कण्ठेकालः गलेमें नीलिमावाले शङ्कर समासगर्भः। उपमानसहितका उदाहरण — उष्ट्रस्य मुखं षष्ठीसमास। मुखशब्द सदृश अर्थमें लाक्षणिक (सूचक) है। उष्ट्रमुखमिव मुखं यस्य ऊँट के

मुखं यस्य सः उष्ट्रमुखः। 'संघातविकारषष्ठ्याश्चोत्तरपदलोपश्च' केशानां संघातश्चूडा यस्य सः केशचूडः। सुवर्णस्य विकारः अलंकारो यस्य सः सुवर्णालंकारः। 'अस्तिक्षीरादयश्च')। अस्तीति विभक्तिप्रतिरुपकमव्ययम्। अस्तिक्षीरा गौः। **८३१ स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु।** ६।३।३४॥ भाषितपुंस्कादनूङ् उङोऽभावोऽस्यामिति बहुव्रीहिः। निपातनात्प-

---

समान मुखवाला। उष्ट्रमुख सु मुख सु वार्तिकसे समासादिः। पूर्वपदके उत्तर मुखका लोप। स्वादिः। **उष्ट्रमुखः**। **सङ्घात** और **विकार** षष्ठ्यन्तसे परे हो तत्र उत्तरपदका लोप भी। **केशानि** = बालों का **सङ्घात**– घनी **चोटी** हो जिसकी वह **केशचूडः**। केशसङ्घात सु चूडा सु। समासे सङ्घशब्दस्य लोपे। **सुवर्णस्य**– सोनेका **विकार**– बना हुआ आभूषण हो जिसका, सुवर्ण ङस् विकार सु अलङ्कार सु, समासादिः। षष्ठीके उत्तरमें विकारका लोप। **अस्तिक्षीरा** इत्यादिका बहुव्रीहमें गणना हो। सुप् **आया**, किन्तु अस्ति विभक्ति नही है। तब बोले–**विरुक्तिका प्रतिरुपक**=उद्देश्यबोधक अव्यय है जो प्रथमान्त न होनेसे उसके साथ समास प्राप्त नही, किन्तु बहुव्रीहि हो। अतः वचन पढ़ा। या **स्वरादिनिपातमव्ययं**– विद्यमानार्थक अस्तिसे सु, उसका अव्ययादाप्सुपःसे लुक्। प्रत्ययलक्षणसे प्रथमान्त मान्य। उक्त वचन न पढ़े। अस्तिका क्षीर के साथ समास। दूधावली गाय।

। ३१। **स्त्रियाः** भाषितपुंस्कादनूङ्, एकपद। स्त्रियाः षष्ठ्यन्त का विशेषण **भाषितःपुमान्यस्मिन** (जानपड़े पुलिङ्ग जिसमें) **तदस्ति अस्य** अर्श अद्याच्। **भाषितपुंस्कं** पुं० हो या स्त्री एकधर्म, प्रवृत्तिनिमित्त, जाति एक हो दोनो लिङ्ग में और न ऊङ् **अनूङ्**। ऊङ् प्रत्यय का अभाव (अर्थाऽभावे अव्ययीभावः, नञ्तत्पुरुष) हो जिसमे बहुव्रीहि अन्यपदार्थ हो। पर का अध्याहार दिग्योमे पञ्चमी भाषित पुंस्कात्परा अनूङ्यस्य विग्रहे। बहुव्रीहिसमास में पञ्चमी का लुक क्यों नहीं, तब कहा निपातन से। सूत्रमें पढ़े जाने से लुक् नही हुआ, **छन्दोवत्सूत्राणि भवन्ति**। निपातन से अप्रथमान्तका भी बहुव्रीहिसमास् पर शब्द का लोप। **स्त्रियाः** का भाषितपुंस्कादनूङ्=यदि विशेषण है, तब अनूङ में षष्ठी क्यों नहीं सुनायी पड़ती, तब कहा कि निपातनसे षष्ठीका लुक् भी होता है। **अर्थः तुल्य**– पुलि० स्त्री में समान–एकधर्म, ऐसा जो **उक्तपुंस्कंप्= कहा** हुआ पु० हो, उससे परे ऊङ् प्रत्यय का अभाव हो जहाँ पर, **तथाभूतस्य**=वैसा हुआ स्त्रीवाचक शब्द (स्त्रीलिङ की **पुंवाचकस्य**=पुलिङ्ग की तरह रूप हो।

न्चम्या अलुक् षष्ठयाश्च लुक्। तुल्ये प्रवृत्तिनिमित्ते यदुक्तपुंस्कं तस्मात्पर ऊङोऽभावो यत्र तथाभूतस्य स्त्रीवाचकस्य शब्दस्यपुंवाचकस्येव रूपं स्यात्समानाधिकरणे स्त्रीलिङ्गे उत्तरपदे, न तु पूरण्यां प्रियादौ च परतः, 'गोस्त्रियोः इति ह्रस्वः। चित्रा गावो यस्येति लौकिकविग्रहे 'चित्रा अस् गो अस्' इत्यलौकिकविग्रहे चित्रगुः। रूपवद्भार्यः। चित्रा जरती गौर्यस्येति विग्रहे, अनेकोक्तेर्बहूनामपि बहु-

---

रुपातिदेशः। तत्र तस्येव वृतिः। स्त्रियां-सप्तम्यन्त है स्त्री प्रत्यय नहीं। समान आधार रहने पर स्त्रीलिङ्ग परे, उत्तरपद परे भी। **अपूरणीप्रियादिषु** का व्याख्यान- पूरण अर्थमें प्रत्यय हुआ हो, और प्रियादिपरे हो, तब पुलिङ्ग- नहीं होता है। किन्तु पूरणीसे स्त्रीलिङ्ग ही पूरणप्रत्यान्त मान्य। तुल्य समान धर्म क्यों पढ़ा ? इसलिये कुटीभार्यः, द्रोणीभार्यः अपिमें धर्म भेद, दोनो लिङ्गमें होनेसे पुम्वत् न हो। क्योंकि कुटका घड़ा अर्थ, कुटीका गृह अर्थ, धर्म भेद है परिमाण अर्थमें पुलिङ्ग द्रोण अन्यमें स्त्री०। पट्वी भार्या यस्य स पटुभार्यः के लिये स्त्रीप्रत्ययस्य पुम्वत् नहो कहा। अन्यथा ङीप् के स्थानिवद्भावसे यण् होता, **चित्रा गावो यस्य** चितकबरी गायें है जिसकी इतिलौकिक विग्रहे। चित्र अस् गो अस् इति अलौकिक विग्रहे। अनेक मन्य पदार्थे सूत्रेण समासे समासत्वात्प्रातिदिक संज्ञायां सुपो लुक। अनेक प्रथमान्त कहने से प्रथमा से उच्चारित निश्चित विभक्ति कहनेसे उपसर्जनसंज्ञा। **चित्रगो इति दशायां गोस्त्रियोः सूत्रेण ह्रस्वादिकार्यें चित्रगुः**। अत्र शंका-चित्रा जस् में पूर्वसवर्णदीर्घ गो अस् दशा में पूर्व रूप, ऐक आदेश हुआ। समास होने पर विभक्ति लुक् करेगें, अकार उकार दोनो सुनाई नही पड़ें। बोले - **चित्रा अस्** इस दशामें **गोअस्** के साथ समास होने पर सवर्णदीर्घसे पहले ही अस्का लुक होगा। **अन्तरङ्गानपि विधीन्बहिरङ्गो लुग्बाधते** इति न्यायात्। ह्रस्वके बाद चित्राको, स्त्रियाः पुम्वत सूत्रसे पुम्, स्वादिकार्ये, चित्रगुः **रूपवती भार्या यस्य** मोहिनी पत्नी रूपवती सु भार्या सु, अन्यार्थ प्रधाने समा० उपसर्जनसंज्ञा, ह्रस्वे रूपवती पु० एकदेशविकृतन्यायेन स्वादिः रूपवद्भार्यः। त्रिपदसमास- **चित्रा जरती गौर्यस्य** चितकबरी बुड्ढी गाय वाला चित्रासु। जरती सु गो सु। अनेक मन्यपदार्थे सूत्रमें अनेकोक्तेः=अनेक पद पढ़नेसे **बहूनामपि**=बहुत पदोंका भी प्रथमान्त होने पर बहुव्रीहिसमास होगा। एक प्रथमान्तका समास सम्भव नहीं। समास का अनेक पदानां मिलित्वा एकार्थी होना अर्थः। इससे अनेक प्रथमान्तताम

व्रीहिः। अत्र केचित्–चित्राजरतीगुः–जरतीचित्रागुर्वा। एवं दीर्घातन्वीजङ्घः–तन्वीदीर्घाजङ्घः। त्रिपदे बहुव्रीहौ प्रथमं न पुंवत्। उत्तरपदस्य मध्यमेन व्यवधानात्। द्वितीयमपि न पुंवत् पूर्वपदत्वाभावात्। उत्तरपदशब्दो हि समासस्य चरमावयवे रूढः। पूर्वपद–शब्दस्तु प्रथमावयवे रूढ़ इति वदन्ति। वस्तुतस्तु नेह पूर्वपदमा–क्षिप्यते। 'आनङ् ऋतः' इत्यत्र यथा। तेनोपान्त्यस्य पुंवदेव। चित्रा जरद्गुः। इत्यादि। अत्र एव 'चित्राजरत्यौ गावौ यस्येति द्वन्द्वगर्भेऽपि चित्राजरद्गुः इति भाष्यम्। कर्मधारयपूर्वपदे तु द्वयोरपि पुंवत्।

अन्यार्थं प्रधान समासे कृते (इस त्रिपदबहुब्रीहि में) किसी का मत है कि चित्रा जरतीगुः या जरतीचित्रागुः किसी का भी पूर्वनिपात। गो में दोनों विशेषण, के पूर्व निपात में अन्तर नहीं दोनों होंगे। किन्तु दोनो पदको पु० भाव नही होता, यदि पूर्वपद से अव्यवहित उत्तर पद हो तभी पु० प्रथम को पुलिङ्ग नही होता, इसलिये कि मध्यम पदके व्यवधान से उत्तरपद परे नहीं मिलेगा, जो समासके अन्तिम अवयव में रूढ है। **द्वितीयमपि**=मध्यम पदको भी पु० नही होगा, उसके पूर्वपद न होने से उत्तरपद समास के **चरम**= अन्तिम भागमें रूढ़ है। और पूर्वपद प्रथममें रूढ़ (**वैयाकरणसिद्धान्तः**) है, ऐसा कोई कहते हैं। **वस्तुतस्तु**= सत्य बात यह है कि **नेह**= इह स्त्रियाः पुंवत् सूत्र में उत्तरपद से पूर्वपद का आक्षेप नहीं होता न ज्ञान होता है क्यों नहीं होता ? दृष्टान्त **आनङृतो द्वन्द्वे** सूत्र में ऋदन्तके साथ द्वन्द्वसमास में आनङ् हो उत्तरपद परे, ऐसा अर्थ है। इसका उदाहरण चार ऋकारान्त का एक साथ द्वन्द्वसमास– **होतृपोतृनेष्टोद्गातारः** अन्त्यस्य समीपमुपान्त्यम्, अन्तिम शब्द के समीप में नेष्टृ है उसीके ऋ को आनङ् हुआ, उत्तरपद परे उद्गातृ है। यदि पूर्वपद का आक्षेप होता तब नेष्टा पूर्वपद नहीं, आनङ् न होता। अतः आक्षेप अनुचितः। तेन=पूर्वपद का आक्षेप न होने से अन्यके समीप मध्यम को ही पुलिङ्ग हुआ, उसके व्यवधान से चित्रा को पूंवत् न हः **चित्राजरद्गुः**। अतएव चित्रा जरत्यौ चितकबरी बुड्ढो गायवाला द्वन्द्वगर्भेऽपि= चित्रा च जरती च ऐसा द्वन्द्व होकर बहुब्रीहि होने पर भी चित्राजरदगुः बना **एवं दीर्घे तन्व्यौ जङ्घे यस्य दीर्घा** औ, तन्वी औ जङ्घा औ पूर्ववत्समासादिः पुम्वत् भी एवं **पट्वी मृद्व्यौ भार्ये यस्य**, दो चतुर कोमल स्त्रीवाला। **पट्वी-मृदुभार्यः**। चित्राजरद्गुः की तरह, कर्मधारय पूर्वपद में हो तब दोनों को

जरच्चित्रगुः। कर्मधारयोत्तरपदे तु चित्रजरद्गवीकः। स्त्रियाः किम्। ग्रामणि कुलं दृष्टिरस्य ग्रामणिदृष्टिः। भाषितपुंस्कात् किम् गङ्गाभार्यः। अनूङ् किं वाभोरुभार्यः। समानाधिकरणे किम्। कल्याण्याः माता कल्याणीमाता। स्त्रियाम् किं। कल्याणी प्रधानं यस्य सः कल्याणीप्रधानः। पूरण्यां तु। ८३२ **अप्पूरणीप्रमाण्योः ५।४।११६॥** पूरणार्थप्रत्ययान्तं यत्र स्त्रीलिङ्गं तदन्तात्प्रमाण्यन्ताञ्च बहुव्रीहेरप्

पुलिङ्ग। **जरतीचासौ चित्रा च** कर्मधारय जरती को पु० से ङीप् हटा तब **जरच्चित्रागौर्यस्य** कर्मधारय पूर्वपद में है स्त्रियां पुम्वत् से चित्रा का टाप हटा स्वादिः। **जरच्चित्रगुः**, कर्मधारय उत्तरपद में रहे, तब जरती चासौ गौश्च कर्मधारय समासे। गोरतद्धितलुकि से टाप्, अवादेश, पुम्वत् कर्मधारय से जरती को पु० ङीप् हटा। टित् से पुनः ङीप जरद्गवी। चित्रा जरद्गवी यस्य कर्मधारय उत्तरपद के बहुव्रीहिमें न द्यृतश्च से कप्। चित्राको स्त्रियाः पुम्वत्। चित्रजरद्गवीकः, सूत्रमें स्त्रियाः षष्ठी अन्त क्यों? ग्रामणिदृष्टिः (गाँव की कुल, परम्परा पर नजर) यहाँ पु० हो। ग्रामणीको नपुंसकह्रस्व करके ग्रामणि बना। कुल नपुंसक खोलनेके लिये। दृष्टि नेत्र स्थानापन्न। यदि स्त्रियाः नही कहेगें तब पु० होनेसे नपुंसक निवृत्त होगा ग्रामणी कुलं बनेगा। अतः स्त्रियाः पढा पुलिङ्ग भाषित हो ऐसा क्यों गङ्गा नित्य स्त्री है भाषित पुंस्क नही। पु० न हो। अनूङ् क्यों? जहाँ ऊङ् रहे, वहाँ पु० न हो। वामौ कोमलो ऊरू जघने यस्याः। वामोरूः भार्या यस्य वामोरू भार्यः। यदिपु० होता ऊङ् हट्ट जाता। समान आधार क्यों? कल्याणीकी माँ षष्ठी प्रथमा से समान आधार नहीं। यहाँ पु० न हो। स्त्रियां =सप्तमी अन्त क्यों? कल्याणी है मुख्य जिसका कल्याणीप्रधानः प्रधान नित्य नपुंसक, कल्याणीके समानविभक्ति होकर उसके परे पुम्- न हो। स्त्री हानेसे जहाँ पूरणीप्रत्यय अन्तमें हो। पुं० का निषेध हो तव विशेष विधिसूत्र-

।८३२। **अप पूरणी प्रमाणी** बहुव्रीहि में विशेषण तदन्त विधि। **पूरण**-किसी संख्या की पूर्ति में हुआ प्रत्यय अन्त में हो, स्त्रीलिङ्ग ही हो ऐसा **तदन्त** = वह पञ्चमी अन्तमें हो, और प्रमाणी अन्तमें हो, ऐसे बहुव्रीहि अन्यार्थ समास से अप् हो। वह समासान्त तद्धित मान्य। कल्याणी मंगलमयी **पञ्चमी** =पाँचवी रात है जिन रात्रियों की ताः= वे रातें **कल्याणीपञ्चमाः** कल्याणीं

स्यात्। कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः कल्याणीपञ्चमाः रात्रयः। स्त्री प्रमाणी यस्य सः स्त्रीप्रमाणः। * पुंवद्भावप्रतिषेधोऽप्प्रत्ययश्च प्रधानपूरण्यामेव'। रात्रिः पूरणी वाच्या चेत्युक्तोदाहरणे मुख्या। अन्यत्र तु। **८३३ नद्यृतश्च।५।४।१५३।।** नद्युत्तरपदादृदन्तो-

---

सु पञ्चमी सु। जिन रात्रियों की पाँचवी रात सुखदा हैं वे सभी रात्रियां अन्य पदार्थः। पाँचवीं रात पूरणी है वहीं अन्यपदार्थ, अथवा रात्रियों का समुदाय अन्य पदार्थ प्रधान अर्थ में। अनेकमन्यपदार्थे समासे प्रा० संज्ञा, सुलोपे। **अप्पूरणीप्रमाण्योः** सूत्रेण पूरणप्रत्ययान्तं स्त्रियं दृष्ट्वा अप्। स्त्रियाः पुंवत्--पुलिङ्गे प्राप्ते **तत्रैव निषेधांशेन निषेधे। कल्याणी पञ्चमी अ।** यस्येति च ई लोपे, टाप्

पञ्चानां पूरणी पाँचवी संख्या को पूरा करने वाली, पञ्चन् से पूरणअर्थमें डट्। नान्त डट् को मट्। टित् से ङीप् **पञ्चमी**। अत्रशंका– पञ्चमी रात्रि अन्यपदार्थ है या नही। नाद्यः– पञ्चमी समास में घुसी है अन्यार्थ हो नही सकती। **नान्त्यः**– यदि पांचवी रात अन्यपदार्थ में नही रहेगी, तब समास होने पर **कल्याणीपञ्चमाः** पाँचवी रात के विना चार रात्रियों का **बोध** होगा ही नही। समासमें पञ्चमी पढ़ा असंगत है **समाधान–पञ्चानां रात्रीणां** उद्भूतावयव भेद समुदाय अन्यपदार्थ, समुदाय में संख्या अभिन्न एकीभूत लीन रहतीहै कहीं उद्भूत खुली हुई। एक कमल दल में पङ्खुड़िओं की तरह। संख्या भेद स्पष्ट हो, ऐसा रात्रि समुदाय **अन्य पदार्थ** है। इससे पाँचवी रात के रहनेपर भी इसका **समुदाय के अन्यपदार्थ** होने में विरोध नही। अतएव समुदाय नही हो सकता, रात्रयः का बहुवचन अवयव संख्या की बहुलता से। प्रमाणी अन्त का उदाहरण–स्त्री है प्रमाण का साधन जिसका **स्त्रीप्रमाणः**। प्रमीयते अनेन प्रमाणित करते है जिससे, करणे ल्युट् टित् ङीप्, स्त्री सु प्रमाणी सु, पहले की तरह समासादि। अप् ईलोप। पूर्वपद नित्य स्त्री है भाषित पुं० नही, अतः पुलिङ्ग भी नही। **पुंवद्भाव** का निषेध और अप्प्रत्यय दोनो **पूरणी** अर्थ की प्रधानता मे ही हो, अतः दोनो सूत्रों में **प्रधान पूरणीःग्रहणं कर्तव्यम्**। कल्याणीपञ्चमाः रात्रयः प्रयोग में पञ्चमी शब्द पाँचवीं रात अर्थ में है। पाँचमी शब्द समासमें घुसा है। किन्तु उसका वाच्य अर्थ रात्रि अन्यपदार्थ है, वही मुख्य है **प्रधानाप्रधानयोः प्रधाने कार्य सम्प्रत्ययः**। अन्यत्रतु– जहाँ पूरणीं पञ्चमी आदि का वाच्य रात्रि आदि अर्थ का अन्यपदार्थ में प्रवेश न हो वहाँ 'अप्' नही होगा, तब क्या होगा ? **कप्सूत्र**–

त्तरपदात्रच बहुब्रीहेः कप्स्यात्। पुँवद्भावः। **८३४ केऽणः ७।४।१३॥** के परेऽणो ह्रस्वः स्यात्। इति प्राप्ते। **८३५ न कपि ७।४।१४॥** कपि परे अणो ह्रस्वो न स्यात्। कल्याणपञ्चमीकः पक्षः। अत्र तिरोहितावयवभेदस्य पक्षस्यान्यपदार्थतया रात्रिरप्रधानम्। बहुकर्तृकः। अप्रियादिषु किं, कल्याणीप्रियः। प्रिया मनोज्ञा कल्याणी सुभगा दुर्भगा भक्तिः सचिवा स्वसा कान्ता क्षान्ता समा चपला दुहिता वामा अबला तनया। 'सामान्ये नपुँसकम्' दृढ़

।८३३।**नदीच ऋच्च** समाहारद्वन्द्वः। सूत्रमें बहुब्रीहौ आकर पंञ्चमी में बदला। उरः प्रभृतिभ्यः से कप् आया। नदी औरऋदन्त उत्तरपद हों ऐसे बहुब्रीहिसे कप् हो, समासान्त मान्य। यथा **कल्याणी पञ्चमी यस्य पक्षस्य** कल्याणी सु पञ्चमी सु, पक्षप्रधान अर्थ में बहुब्रीहि समास। व्यवहारभाव से पञ्चमी उत्तरपद नदीसंज्ञकः। अतः '**नद्यृतश्च**' सूत्रेण कप् कल्याण, पु०भाव पूरणी पञ्चमीका वाच्य अर्थ रात्रि नहीं है। किन्तु पक्षमें लीन है, निषेध न होने से। ८३४। **के**= ककार परे पूर्व **अण्** को ह्रस्व **हो**, जो दृशृप्रां से आया। ह्रस्व प्राप्त। ८३५। **न कपि**— केऽणः सूत्रसे प्राप्त ह्रस्व न हो, इति निषेधे स्वादिः। **कल्याणपञ्चमीकः**। अत्रशङ्का १५दिन और रातका पक्ष अन्यपदार्थ **पञ्चमी रात्रि**का प्राधान्य रुकेगा नही, तब बोले- **अत्र तिरोहित**- इस समासमें रात्रिका प्रवेश न होने से प्राधान्य नहीं, क्योंकि तिरोहित=छिपा हुआ अवयवका अभेद अन्यपदार्थ है, उसका अवयव रात्रि के छिप जानेसे मुख्या नहीं होगी। ऋदन्त उत्तरपद कप् का प्रयोग—**बहवः कर्तारो यस्य** बहुतसे कार्यकर्ता वाला है नेता **बहुकर्तृकः**। वहुअस् कर्तृअस् समा०। **नद्यृतश्च** कप् सु, रुवि०। प्रियादिपरे पुलिङ्गके निषेधका प्रयोजन पूँछते है- **अप्रियादिषु क्यों** पढ़ा? **कल्याणी प्रिया यस्य**, शुभ लक्षण प्रेमिका हैं जिसका, **कल्याणीप्रियः**। पुलि० निषेध के लिए प्रियादिगण गिनाते है। उनके परे पुम्वत् नहीं होता। मङ्गली-मनोज्ञा मनोहारिणी यस्य **मङ्गलीमनोज्ञः**। **शोभनः भगः भाग्यं तेज यस्याः सा सुभगा।** दुःखदं भगं नक्षत्रं यस्याः सा दुर्भगा। भज्यते सेव्यते भगवान् यया सा **भक्तिः**। इत्यादि **कान्तामनोज्ञः** स्वसाकान्तः, कान्ताक्षान्तः, क्षान्तासभः, सभाचपलः, चपलादुहितः, दुहितावामः चपलावलः। प्रिया तनया यस्य **प्रियतनयः।** अत्र शङ्का— भक्तिको प्रियादिमें पढ़ा। **दृढ़ा भक्तिर्यस्य दृढ़भक्तिः** में पुलिङ्ग निषेध क्यों नही, तब बोले-सामान्ये नपुंसकं, जहाँ लिङ्ग स्पष्ट न हो, वहाँ नपुंसक मान लें। सामान्यपरक दृढ़ शब्द है **दृढं भक्तिर्यस्य** अटलसेवा हो जिसकी,

भक्तिर्यस्य सः दृढ़भक्तिः स्त्रीत्वविवक्षायां तु दृढ़ा भक्तिः । **३६ तसलादिष्वाकृत्वसुचः ६।३।३५ ॥** तसिलादिषु कृत्वसुजन्तेषु **परेषु** स्त्रियाः पुंवत्स्यात् । परिगणनं कर्तव्यम् । अव्याप्त्यतिव्याप्तिपरिहाराय । * 'त्रतसौ' * तरप्तमपौ' । *'चरट्जातीयरौ' । *'कल्पब्देशीयरौ' । * 'रूपप्पाशपौ' । * 'थाल' । * 'तिलथ्यनौ' । बह्वीषु बहुत्र । बहुतः । दर्शनीयतरा दर्शनीयतमा । घरूप' इति वक्ष्यमाणो ह्रस्वः परत्वात्पुंवद्भावः बाधते । पट्वितरा । पट्वितमा । पटुचरी ।

भक्तिशब्दके साथ नपुंसक ठहरता नहीं, लिङ्गकी अविवक्षासे , वेदाः प्रमाणं की तरह । इस विषयके भाष्यमें **शक्यं चानेन श्वमांसादिभिरपि क्षत्प्रतिहन्तुं** भूख कुत्ताके मांससे भी मिट सकती है । तत्र **धर्मनियमः** क्रियते । अतः नपुंसकम् । यदि ऐसा प्रियादिमें भक्तिका पाठ व्यर्थः, तब बोले स्त्रीत्वकी इच्छा होनेपर पु० का निषेध । **दृढ़भक्तिः** भी सिद्ध, प्रियादिमें भक्ति सफल ।

। ८३६ । **तसिलादिषु= पञ्चम्यास्तसिल्** से लेकर **संख्यायाः– गणने कृत्वसुच** सूत्र तक जितने प्रत्यय हैं वे अन्तमें हों, तब स्त्री० को पु० हो । उत्तरपद परे न होने से पुलिङ्ग प्राप्त नहीं था । स्त्रियाः पुम्वत् आया, कृत्तसुच् के पहले आङ् का अभिविधि अर्थ है आरम्भसे अन्त तक **तमभिव्याप्य** । सूत्रोंके अर्थसे बाहर तिल्थ्यन् शस् है । **वृकतिः, अजथ्या** बहुशः पु० नही होगा **इष्टस्थले अप्रवृत्तिः अव्याप्तिः** । देश्य और रूप्य प्रत्यय तसिलादिमें आते है, उनके परे **पट्वीदेश्यः शुभ्रारूप्यः**में पु० होगा, जो नही होना चाहिए । **अनिष्टस्थले प्रवृत्ति अतिव्यप्ति** । दोनो परिहार परिगणनसे करते है । त्र, तस्, तरप्, तगप्, चरट् जातीयपर' कल्पप् देशीयर, रूपप्० पाशप्,, थाल् तिल् थ्यन् । **बह्वीषु** बहुत स्त्रियोंमें, सप्तमी अर्थमें त्रल् । वह्वीको तसिलादिषुसे पु- हुआ, ङीप हटा । **बहुत्र** यदि बह्वी से पञ्चमी अर्थमें तसिल् – तस्, करें । तब पु-, से ङीप् हटा **बहुतः** बह्वीभ्यः, बहुत नारियों से न्यारी **दर्शनीयतरा** । दो में एक की विशेषता अर्थमें तरप् । **अनयोः इयं अतिशयेन दर्शनीयाः** शब्दसे द्विवचन विभज्य– तरप् पु० । से टाप् हटा, समुदाय से टाप् **दर्शनीयतरा** । इन दोनोमें यह बहुतअच्छी, देखने लायक । **दर्शनीयतमा** । अनेकमें एक की अधिक श्रेष्ठता अर्थमें तमप् । **आसामियम् अतिशयेन**=(सुन्दरी गोपीयों में राधा सबसे अधिक) **दर्शनीया** शब्द से अतिशायने अर्थे तमप्अभाव, टाप् लौटा । समुदायसे टाप् । यद्यपि पट्वी शब्द से तरप् तमप् होने पर **पट्वितरा** आदि बनते है पुम्वत् होने पर ङीप् हटेगा **पटतरा** अनुचितरूप बनेगा । तब बोलें **घरुप इति** । सूत्रसे होने वाला ह्रस्व पर

पटुजातीया । दर्शनीयकल्पा । दर्शनीयदेशीया । दर्शनीयरूपा । दर्शनीयपाशा । बहुथा । प्रशस्ता वृकी वृकतिः । अजाभ्यो हिता अजथ्या ।* शसि बह्वल्पार्थस्य पुंवद्भावो वक्तव्यः', बह्वीभ्यो देहि बहुशः । अल्पाभ्यो देहि अल्पशः ।* त्वतलोर्गुणवचनस्य' शुक्लाया भावः शुक्लत्वम्, शुक्लता । गुणवचनस्य किं, कर्त्र्या

होने से पुलिङ्गको बाधेगा, तब ङीपकी निवृत्ति नहीं होगी, ह्रस्व होकर पट्वि की तरह रूप बनेगा, पट्वितमा बहुतोंमें सबसे चतुर लड़की । **पटुचरी** पहले चतुर थी भूतपूर्व अर्थमें पट्विसे चरट् । पुम्भाव से ङीप का अदर्शन, समुदायसे ङीप हटा **पटुशदृशी । दर्शनीयकल्पा** कुछ देखने लायक, **प्रायेण दर्शनीया । इषद-समाप्ति** अर्थ में कल्पप् पु- भावदि । उसी अर्थ में देशीयर,कुछ दर्शनीयाअर्थमें **दर्शनीयदेशीया** । दर्शनीय शब्द से **प्रशंसा** अर्थ में रूपप् पु० भाव, टाप् हटा । प्रशस्त दर्शनके योग्य **दर्शनीयरूपा** सीता । दर्शनीया शब्दसे याप्ये – निन्दा अर्थ में पाशप् । पु० से टाप् निवृत्त । कुत्सित्वेन द्रष्टुम् योग्या**दर्शनीय पाशा** सूर्प-णखा, नाककटनेसे (बहु प्रकारा **बहुथा**) बह्वी शब्दसे प्रकारवचने (तरह-2के अर्थ मे)थाल् । पु-ङीप् नि० । बहुत ढ़ंग की । **किं सर्वनाम बहुभ्यः**का अधिकार वृक **ज्येष्ठ से तिल. तातिल हों छन्दमें । प्रशंसा** अर्थमें । वृकी शब्दसे जाति अर्थमें ङीप् तब प्रशंसामें **तिल** । पुंवद् ङीप् हटा । **वृकतिः** प्रशंसनीय **जठराग्नि ।** वृक नामाग्नि उदरे यस्य **वृकोदरः । अजथ्या** अजाभ्यः (बकरियोंके लिए) हिताः उययोगी वस्तु । **तस्मै हितम्** के अधिकारमें अजासे **थ्यन** पुं०भाव । टाप हटा । **वृकति अजथ्यामें जतिश्च** से पुलिङ्ग निषेध नहि, परिगणनके कारण । **शसि** प्रत्यय परे बहु अर्थ, अल्प अर्थवाले को पुलिङ्ग हो (बहुत सी स्त्रियो को दो) अर्थमें बह्वी शब्दसे शस् । पुलिङ्ग भाव, ङीप हटा । **बहुशः** बहुतों के लिए यह शस् शम्प्रदान कारक **अर्थमें**, जो देहिसे खुलता है इसी प्रकार **अल्पाभ्यो देहि** थोडे लोगोंके लिए दो पूर्ववत्कार्य **अल्पशः त्वतलौत्व**और तल्प्र-त्यय गुणोप**सर्जनद्रव्यवाची** को **पुलिङ्ग** हो । गुण होते हुए किसी द्रव्य आधारके साथ रहे तब । यथा **शुक्लाया** सफेद वस्तु का **भावः** –गुण, प्रकार विशेषता जातिधर्म अर्थमें त्व प्रत्यय । **शुक्लात्वम्** । त्वतलो गुण वचनस्य-सूत्रेण गुणवचनःप्रसिद्ध गुण मानकर ह्रस्व **शुक्लत्वम्** तल होनेपर ह्रस्व **शुक्लता** प्राचीन ने जाति संज्ञाको छोड़कर धर्म मात्रको गुण कहा । सूत्रमें **गुण वचन क्यों** पढ़ा? उससे क्या अर्थ समझे कर्त्रीका भाव – गुण किशेषता कर्त्रीत्वम् **कर्त्रीशब्द** क्रियाका कारण है, गुणवचन नही । **उत्तकडारा सूत्रे भाष्ये– समासकृदन्त**

भावः कर्त्रीत्वम् । शरदः कृतार्थता इत्यादौ तु सामान्ये नपुंसकम् ।* भाष्याढे तद्धिते' हस्तिनीनां समूहो हास्तिकम् । अढे किम् । रौहिणेयः । 'स्त्रीभ्यो ढक्' इतिढोऽत्र गृह्यते । अग्नेर्ढक्' इति ढकि तु पुंवदेव । अग्नायी देवता अस्य स्थालीपाकस्य आग्नेयः । सपत्नीशब्दस्त्रिधा । शत्रुपर्यायात्सपत्नशब्दाच्छार्ङ्गरवा-

---

तद्धितान्त अव्यय सर्वनाम जाति सङ्ख्या सञ्ज्ञा शब्दसे भिन्न अर्थवानको गुणवचन कहा गया । तद्धितान्त शब्दको पुलिङ्ग न हो, यही गुणवचनका फल । वोतोगुणवचनात्सूत्र पर 'सत्वे निविशते' का गुणलक्षण यहाँ उपयोगी नही । क्योंकि एकस्यभावः एकत्वम् एक स्त्रीकी गुणविशेषता । यहाँ एकको गुणवचनसंज्ञा नही, पुवत् प्राप्त नही, तब एकतद्धिते च सूत्रसे ह्रस्व सफल । उक्त गुणवचन स्वीकारका फल निरिक्ष्य मेने शरदःकृतार्थता = कृतो अर्थः (कृत्यम्) यथा सा कृतार्था (जों कार्यकरके सफल हो । तस्याः भावः उसकी योग्यता) तल् पुवत कृतार्थता । यहाँ समास होने पर गुणवचन नही पुलिङ्ग कैसे ? एवं 'सा' मुमोच रतिदुःखशीलतां पुवत नही दीर्घश्रवण होग, तब बोले सामान्ये नपुंसकम् कृतो अर्थो येन तत्कृतार्थम् । अविवक्षित लिङ्गसे तल् करके नपुंसकह्रस्वसे सिद्धि । भस्य । ढसे भिन्न तद्धित प्रत्ययपरे हो तब स्त्रियाः पु बोलें । परिगणितमे होनेसे यह वचन । हाथिनियोंके झुण्डको हस्तिकम् हस्तिनीसे अचिन्तहस्तिधेनोः से समूह अर्थमें ठक् ठको इक् (ढभिन्न तद्धित परे इक् के पूर्व धभाव । नान्तमानकर आया ङीप् हटा । नस्तद्धिते टि (इन्) लोपे स्वादिः वार्तिकमें अढ़े = ढ़ परे न हो, ऐसा क्यों पढ़ा ? जहाँ स्त्रीभ्योःढ़क् हुआ हो, उसीके परे पुलिङ्ग न हो, जैसे रोहितसे ङीप् तको न । रोहित अपत्यः रोहिणी की सन्तान स्त्रीभ्यो ढक् = एय यहाँ पुं० नही होता है । यदि होता, तब ङींप् हट जाता, तको न भी होता, रोहीनेयः बनता, अतः अढ़े, पढ़ । अग्नेय परे पु० होता ही है व्याख्यानसे । ढ़क् परे पुं० का उदाहरण अग्नायी = अग्नकी स्त्री देवता है इस स्थाली पाक, कपाल, कसोरा की वह अग्नेयः । अग्नेः स्त्री अर्थ में अग्निसे वृषाकप्यग्नि– अग्नायी देवता अस्य अर्थमें अग्नेढ़क् यहाँ पु० नही है ङीष् होनेसे स्त्री है, ढ़क् कैसे ? जहाँ प्रातिपदिकका ग्रहण है वहाँ लिङ्ग सहीतकाज्ञान मान्य । ढ़ एय । भस्यढ़े: सूत्रसे पु० । ङोष्, ऐ हटे । अग्नि– एय इति दशायां यस्येति इलोपे आदिवृद्धिः । आग्नेयः । पु- का निषेध होता तब आग्नेयय होता । वस्तुतः प्रवृत्तिनिमित्त भेदसे पु० प्राप्त नही, अग्नित्वं पुंसि अग्निसम्बन्धः स्त्रियामिति भेदः । सपत्नी शब्द व्युत्पत्तिभेदसे तीन प्रकार

दित्वान्ङीन्येकः। समानः पतिर्यस्या इति विग्रहे विवाहनिबन्धनं पतिशब्द-माश्रित्य नित्यस्त्रीलिङ्गो द्वितीयः। स्वामिपर्यायपतिशब्देन भाषितपुंस्कस्तृतीयः। आद्ययोः शिवाद्यण्। सपत्न्या अपत्यं सापत्नः। तृतीयात्तु लिङ्गविशिष्टपरि-

---

का। शत्रुपर्याय सपत्नशब्दसे शार्ङ्गरवादि ङीन्। रिपौ वैरिसपत्नारिद्विषद्द्वेषणदुर्हृदः। इस कोशसे भाषितपुंस्कः पुलिङ्ग प्रतीत है। सपत्नीं (शत्रु की स्त्री)। विवहके कारण स्त्री– सपत्नी समानः पतिर्यस्याः एकपति हो जिसका, विवाहविशेषसे पति हो जिस स्त्रीकी, क्योंकि "पतित्वं सप्तमे पदे" इसस्मरण से सप्तपदी हुई हो,तब पतिशब्दसे नित्यंसपत्न्यादिषु से समानकोश हो ङीप् नत्व भी। ऐसा सपत्नी नित्यस्त्री० है अन्य पदार्थ स्त्री हो तभी विवाहनिमित्त-कपति परे स भावका विधान है। पतिर्नामधवः इति कोशात्। --३-- स्वामि अर्थमें पतिशब्दसे बना सपत्नी शब्द भाषितपुंस्कः पुरुषधर्म प्रतीत है आद्ययोः= शत्रुपयाय सपत्नी शब्द और विवाहसे सम्बन्धित पतिशब्दसे बना सपत्नी शब्दसे शिवादिभ्योऽण् होगा। सपत्न्याः अपत्यं एक पतिव्रता स्त्रीकी सन्तान, अर्थमें तस्या अपत्यं के अण्को बाधकर प्राप्त स्त्रीभ्योढ़क् को भी बाधकर। सपत्नी अ मेंभाषितपुमान् होनेसेपुम्भाव। ङीन् हटा। सापत्नः रुपम्। अत्र शङ्का ङीन् हटनेसे नकार निकला नहीं, ऐसा क्यों? उत्तर–शत्रु अर्थमें सपत्न रूढ़ अव्युत्पन्न प्रातिपदिक है। स्त्रीलिङ्गके कारण नकार नही हुआ है। द्वितीय सपत्न्याः अपत्यं विग्रहमें ङीप् और नत्व सहितसे शिवादिअण् हुआ। भाषित-पुमान् वही, पुम्भाव भी नहो। यस्येति च ईलोप। सापत्नः पतिव्रता की सन्तान। पुम्भावहोता ङीप् नकार हटते सापतः बनता। तृतीयान्त स्वामी अर्थमें पतिसे बना सपत्नी। सपत्न्याः अपत्यं स्वामिनीकी सन्तान अर्थमें तस्या-पत्यं को बाधकर दित्यादिति=पत्युत्तर पदात्=ण्य हुआ। यद्यपि सपत्नीशब्द पति उत्तरपद वाला नहीं है तथापि जहाँ प्रातिपदिक लिया जयेगा वहाँ स्त्री-लिङ्ग बोधक प्रत्यय सहित भी मान्य। इस परिभाषासे सपत्नीमें पत्नी को उत्तरपद मानकर लक्षणासे ण्य ही होगा, अण् नहीं। शङ्का ण्यको शिवादि-अण् क्यों नहीं बाधता, तब बोले शिवादौ=गणमें रूढ़ोंकी ही स्वीकृति है। केवल यौगिक का नहीं, पहला सपत्न शत्रु में केवल रूढ़है विवाह वाला योगरूढ़ क्योंकि विवाह कर्त्तामें पतिरक्षतिका योग, अर्थ विभाग मिलता है। स्वामि-पर्याय पतिसे बना केवलयौगिक है। शिवादिमें रूढ़ लेगें, केवल योगिक नहीं योगात् रूढ़िर्बलीयसी। इससे क्या निकला कि सापत्यकी सिद्धि। सकत्नी, य। इति दशायां भाषितपुंस्क–पुलिङ्ग झलकनेसे पुंवत्। ङीप् नकार लौटे।

भाषया पत्युत्तरपदलक्षणो ण्य एव, न त्वण्। शिवादौ रूढयोरेव ग्रहणात्। सापत्यः।* 'ठक्छसोश्च' भवत्याश्छात्राः भावत्काः, भवदीयाः। एतद्वार्तिकम् 'एक तद्धिते च' इति सूत्रं च न कर्तव्यम्। 'सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः' इति भाष्यकारेष्टचा गतार्थत्वात्। सर्वमयः। सर्वकाम्यति। सर्विका भार्या

यस्येति ईलोपे सापत्यः ठक् और छस् परे पुम्भाव हो। भसंज्ञा न होनेसे, यह बचन। आपकी छात्रायें भावत्काः, भवतीशब्द, तस्येदं के अधिकारमें ठक् और छस् लिङ्गविशिष्टपरिभाषाके बलसे। ठ-इक आदेशके पहले (ठ) की दशामें इक्को बाधकर पु० भाव। इसुसुक्तान्तातकः से ठ को क, जस् भावत्काः। यहा कि यह कार्य भस्याढे: से पुम्वत् करके क होता, रूप बनता, ठक् क्यों ? मथितं पण्यमस्य माथितिकः की तरह अल्विधिमें स्थानिवत् न होनेसे क आदेश नहीं होगा। अतः ठक् पढ़ा। भवतीशब्दसे छस् छ को ईय। भवती ईय, वार्तिकसे पुम्भाव भवदीयाः। आपकी छात्रायें। 'सितिच' के पदसंज्ञासे भसंज्ञा का बाध। यह वार्तिक है। इसको और 'एक तद्धिते च' सूत्रको जो उत्तरपद परे ह्रस्व करता है। दोनोंको न करे। एकस्याः भावः एकत्वं एकता, एकस्याः शाटी एकशाटी। इनकी पुं० भावसे सिद्धि होगी, सर्वनाम होनेसे यथा— सर्वनामको बृत्तिमात्र=कृदन्त तद्धित सनाद्यन्त एकशेष तक पूरेमें पुम्भाव होता है। इस वचनको मानकर ठक्छसोश्च वार्तिक, एकतद्धिते च सूत्र दोनोंको इष्ट मानकर गतार्थ सफल किया—यतः निष्कर्षमें सर्वनाम्नःसे सिद्ध। इस इष्टिमें प्रमाण तद्धितका—सर्वस्याः आगतः सर्वमयः, ततआगतःके अधिकारमें मयट्। सर्वमय। अत्र सर्वनाम्नः वचनेन पुलिङ्ग, चित् एव, चिन्मयं अत्यन्त स्वार्थिक मयट्। सनाद्यन्तमें पुम्भावका उदाहरण--सर्वाम् आत्मान इच्छति सर्वकाम्यति। सभी सामग्रीको अपना मानता है। काम्यच् वचनसे पु०, सर्वकाम्य लडादिः मयट्। काम्यच्का परिगणनमें गणना नहीं। ततः तसिलादिषुसे पुं० प्राप्त नहीं। तद्धितवृत्तिमें सभी स्त्रियां, भार्या पत्नी हैं जिसका, वह सर्वक भार्यः। समास वृत्ति भी है, पुम्भावसे टाप्, इत्व हटे। सर्वाप्रिया यस्य सभी प्रिय है जिसे सर्वकप्रियः कृष्णः समासवृत्ति है, सर्वाप्रियके पु० भाव। प्रियादि परे पुं० का निषेध रुपवतीप्रियःके लिए है। इसलिङ्गमें प्रमाण भस्त्रा—एषा द्वा दोनोंको अकच् होनेपर कसे पूर्व इकार बिधान है। यदि पूर्वको पुम्भाव नहीं कहेगें, इत्वविधान व्यर्थ होगा, आप परे होनेसे। तेन=इसी कारण अकचः स्थलमें और एकशेषस्थलमें पुम्भाव नहीं होता। सर्विका सर्वासे अकच् टाप् इत्व यदि पुं० होता, टाप इत्व लौटते। इससे सिद्ध है कि अकच् दशामें पुं०

यस्य सर्वकभार्यः। सर्वप्रियः इत्यादि। पूर्वस्यैवेदम्। भस्त्रैषाजाज्ञाद्वा' इति लिङ्गात्। तेनाकच्येकशेषवृत्तौ च न। सर्विका। सर्वाः।* कुक्कुट्यादीनामण्डादिषु' कुक्कुट्या अण्डं कुक्कुटाण्डम्। मृग्याः पदं मृगपदम्। मृगक्षीरम् काकशावः। ३७ क्यङ्मानिनोश्च ६। ३ ३६॥ एतयोः परतः पुंवत्। एनीवाचरति एतायते। श्येनीवाचरति श्येतायते। स्वाभिन्नां

का न होना। **एकशेष में** प्रमाण--**मेंसर्वा-सर्वा-सर्वा**, एकशेषवृत्ति होनेपर सर्वनामको वृत्तिमात्रमें पुं० की प्रतिज्ञासे पुलिङ्ग प्राप्त होता, टाप् हटता। (वा) **कुक्कुटी** (मुर्गी) आदिका असमान अधार विभक्ति रहते **अण्डादिके** साथ समास हुआ हो, तब पु० हो। यथा **कुक्कुटस्य जातेः स्त्री कुक्कुटी तस्याः अण्डं**, मुर्गीका अण्डा **कुक्कुटाण्डं**, पुं० भावसे जातिसूचक ङीष् निवृत्त मृगस्य जाति विशिष्टा स्त्री **मृगी। तस्याः पदं मृगपदं** यहाँ भी पुलिङ्गसे मृगीका इ हटा। हरिणींका पांव। **मृग्याः क्षीरं सिंहनी**का दूध। पुं० भाव। **काक्या-शावः** कौवीका बच्चा। **पोतः पाकोऽर्भकोऽडिम्भः पृथुकः शावकः शिशुः**

। ३७। **क्यङ्** और मानिन्परे रहते उत्तरपदे पुं० भाव हो, **एनी इव** आचरति हरिणी या रङ्गवालीकी तरह श्वेतवर्णवत् आचरण०। एता--चित्रवर्णा। **चित्रं किर्मीर कल्याणं शबलैताश्च कर्बुरे** इत्यमरः। स्त्रीकी इच्छा में **वर्णादनुदात्तोपधात्से** ङीप्। त को न एनीसे आचार अर्थमें क्यङ् **'एनीय'** पुं० भावसे ङाप् और न दोनों हटे। **एतय** अकृत्सार्व० से दीर्घ लडादिः॥ **श्येनी इव**--वाझ स्त्रीकी तरह आचरण करे। **शुक्ल शुभ्र शुचि श्वेत विशद श्वेत पाण्डुराः** इत्यमरः। सफेद अर्थ श्वेता ङीप त को न, आचारेऽर्थे क्यङ्। सूत्रसे पुम्वत् ङीप, न निवृत्ति ननु **स्त्रियाः पुंवत्से** उत्तरपद परे पुं० होगा **मानिनी क्यों** पढ़ा? **वह** प्रमाण बनेगा कि--समान अधार न हों, स्त्री० अर्थ न हो, तभी स्त्रियाः पुम्वत् हो। इसी अभिप्रायसे बोले--**स्वभिन्नां** अपनेसे अलग किसी स्त्रीको दर्शनीयां मनमोहिनी माननेवाली **दर्शनीयमानिनी है।** दर्शनीयां पूर्व रहते मन् धातुसे णिनि, उपपदसमास, लुक्। यहाँ मानिन्शब्दपरे पु०से टाप लौटा। **दर्शनीय मानिन् ऋन्नेभ्यः** ङीप। जो स्त्री अपनेको दर्शनीया मानती है, उसे स्त्रीयाःसे पुम्वत् होता है अतः स्वभिन्नां कहा। एक ही दर्शनीयाके मन्धातुके प्रति कर्मत्व कर्तृत्व सम्भव। वस्तुतः अमेदसे मानिनीके साथ समानाधिकरण है। अन **स्त्रीभिन्न** उत्तरपदपरेका उदाहरण--**आत्मानं दर्शनीयां स्त्रियं मन्यते** अपनेको स्त्रियोंसे दर्शनीय माननेवाला चैत्र, **दर्शनीय-मानी** पुं० से टाप हटा। आरोपित अभेद मानकर समानता पुं० उत्तरपद, होनेसे यहाँ हुआ जो पहलेसे प्राप्त नहीं था।

काञ्चिद्दर्शनीयां स्त्रियं मन्यते दर्शनीयमानी मन्यते दर्शनीयमानिनी चैत्र ३८ न कोपधायाः ६।३।३७।। कोपधायाः स्त्रियाः न पुंवत्। पाचिकाभार्यः। रसिकाभार्यः। मद्रिकायते। मद्रिकामानिनी। 'कोपधप्रतिषेधे तद्धितवुग्रहणम्' नेह। पाका भार्या यस्य सः पाकभार्यः।* ३९ सञ्ज्ञापूरण्योश्च ६।३।३८।। अनयोर्न पुंवत्। दत्ताभार्यः। दत्तामानिनी। दानक्रियानिमित्तः स्त्रियां पुंसि च सञ्ज्ञाभूतोऽयमिति भाषितपुंस्कत्व-

---

।३८।न कोपधायाः क उपधा=अन्त्य अल्का पूर्ववर्ण 'क' हो ऐसे स्त्री०, को पुलिङ्ग न हो। पचति पाचयति वा इति पाचिका सा भार्या भरणीया यस्य (भण्डारिन्) पाचिकाभार्यः पकानेवालीस्त्रीवाला। पु० प्राप्त था, 'क' उपधामें होनेसे उसका निषेध। पु० होता, टाप इत्व लौट जाते रसः आह्लाद-सुखं अस्याः अस्ति रसिका रसभरी मोहिनी (रस आस्वादने) अत इन्ठनौ ठ–इक्, टाप। रसिका भार्या यस्य रसवती मोहिनी पत्नीवाला, पुम् प्राप्त, कोपधाको पुम् न पुम् होता टाप चला जाता। मद्रिकायते मद्रे मद्रासें भवा यौवना कन् टाप इत्व, मद्रिका इव आचरति मद्रासिनि की तरह चाल। क्यङ् परे पुम् प्राप्ते न कोपधायाः निषेधे। मद्रिकामानिनी आत्मानं मद्रिकां मन्यते स्वयंको मद्रदेशविशेषकी मानती है। 'मनश्च' णिनिः कर्ता अर्थे, उपपदसमासे मानिनी परे पुम् प्राप्तस्य निषेध। यदि दोनों भागमें पुम् होता, टाप इत्व हटते। कोपध=क उपधाको पुम् का प्रतिषेध=रोंक हों, तो तद्धित-ग्रहण और वुग्रहण करें। यदि ऐसा, तब सूत्र वार्तिक मिलाकर नतद्धित वुकोपधायाः पढ़ देते तद्धितसम्बन्धी वुसम्बन्धीं जो 'क' वह उपधामें हो ऐसी पस्त्री० को पुम् न हो। यथा मद्रिकायते पाचिक्वाभार्यः। वु सम्बन्धी क। तद्धित वुक क्यों पढ़ा? नेह यहाँ न हो पाका भार्या यस्य स, अल्प अवस्थाकी स्त्रीवाला। अर्भक पृथुक् पाका वयसि क–अन्त निपातित। यह 'क' न तद्धितका न वुका है। वयसि प्रथमे के ङीपको बाँधकर। अजादि टाप।

।३९। संज्ञा और पूरणी=पूरा करनेवाली प्रत्ययान्तके साथ समासमें स्त्रियाः पुम् न लगे। दत्ता भार्या यस्य ए दत्तभार्यः दी हुई पत्नीवाला। अत्र न निषेधः। आत्मन् दत्तां मन्यते या सा दत्तामानिनी (सद्यः विवाहिता) अत्र पुम् निषेधे। इन दोनोंमें दत्तासंज्ञा एक है, उसमें भाषित पुंस्क= प्रतीत नहीं, निषेध क्यों? तदा अलिखत्–दान क्रियाका निमित्त–हेतु कारण दत्ता स्त्रियां, दत्तः पुंसि, में संज्ञारूप है। अतः भाषित–प्रतीत पुलिङ्ग है। दानक्रियां पुरस्कृत्य स्त्रियां पुंसि च। अतः भाषितपुंस्कसे प्राप्त पुम्का निषेधक। पूरणीमें पुम्-निषेध। पञ्चमी भार्या यस्य, पञ्चमी पूरणी पञ्चानां पांचवीं

मस्ति। पञ्चमीभार्यः। पञ्चमीपाशा। ८४० **वृद्धिनिमित्तस्य च तद्धितस्यारक्तविकारे ६।३।३९॥** वृद्धिशब्देन विहिता या वृद्धिस्तद्धेतुर्यस्तद्धितोऽरक्तविकारार्थस्तदन्ता स्त्री न पुंवत्। स्रौघ्नीभार्यः। माथुरीयते। माथुरीमानिनी। वृद्धिनिमित्तस्य किं मध्यमभार्यः। तद्धितस्य किं काण्डलावभार्यः।

स्त्री पत्नी है जिसकी, प्राप्त पुम्का निषेध पञ्चमी पाशा निन्दिता अशिष्टा याप्ये--निन्दा अर्थ पाशप। पांचवीं फूहर है जिसकी। तसिलादिषु से प्राप्त पुम् का निषेध।

।८४०। **वृद्धेर्निनित्तं**---हेतुः। रक्तञ्च विकारश्च, समाहारद्वन्द्वः। नञ्समास। वृद्धि शब्द काउच्चारकसूत्रसे हुई वृद्धि (आ ए औ) **तद्धेतु**=उसका कारण (ञित् णित् कित्) तद्धिश अन्तमें हो, रक्त, विकार अर्थको छोड़कर **तद्धिता**=तद्धितप्रत्यय अन्तवाली स्त्री० को पुम् न हो। वृद्धि शब्दसे वृद्धि होना इष्ट। **स्रुघ्नो देशः**, तत्र भवा स्त्री, अण् अलोप आदिवृद्धि ङीप्, **स्रौघ्नी भार्या यस्य स स्रौघ्नीभार्यः** स्त्री० को पुम् प्राप्तिका निषेध। मथुरायां भवा **माथुरीकन्या** तत्र भवः, अण् अलोप, आदिवृद्धि, ङीप। **माथुरी इव आचरति** माथुरावालीकी तरह चलती है। क्यङ् सनाद्यन्तधातुः लडादिः, आदिवृद्धि। वह वृद्धि--उच्चारक सूत्रमे हैं। उसमें हेतु--णित्, ङित् तद्धित हैं। अतः प्राप्त पुम्का निषेध। माथुरीं मन्यते अपनेको मथुरावाली मानती है। **माथुरीमानिनी**। मनःसे णिनि उपधामें वृद्धिः उपपद, सुपः लुक् नान्त ङीष्, मानिन्परे प्राप्त पुम्का सूत्रेण निषेध। वृद्धिका हेतु **तद्धित क्यों** कहा ? मध्ये भवा **मध्यमा** (मध्यान्मः) सा भार्या यस्य बीचवाली पत्नी है जिसकी, **मध्यम भार्यः**। पुम् हुआ। म वृद्धिका निमित्त नहीं, न निषेध। **तद्धित क्यों** पढ़ा ? कृदन्तमें निषेध न हो। यथा **काण्डं लुनाति** कर्मणि अण्, अचः वृद्धिः, आव् समास ङीष् (कण्डा बीननेबाली) **काण्डलावी** भार्या यस्य कुम्भकारिणी। **काण्डलावभार्यः** पुम्से ङीप हटा। कृत है न निषेध। **वृद्धि** शब्द से **विधान क्यों ? तत्परिमाणमस्य अस्ति तावति** वतुप तद्धित है। **आसर्वनाम्नः** त को आ तावत् ङीप्। **तावती भार्या यस्य** उतनी मात्रा फीट इंच की पत्नी है ,जिसकी। पुं० से ङीप् हटा, यहाँ आत्व वृद्धि शब्दके उच्चारणसे नहीं पुं० का न निषेध। **रक्ते--रङ्ग** अर्थमें विराजमान तद्धित हो, तब पुं० का न निषेध **काषायः गैरिको धातुः** गेरुआ रंगसे रंगी हुई। तेन रक्तं रागात्। अण् यस्येति अलोप, आदिवृद्धि, अणन्तङीप्। **काषायी कन्था यस्य**, गेरुसे रंगी कथरी जिसकी **काषायकन्था** पुम्भावसे।

किंवृद्धिशब्देन तामद्भार्यः। रक्ते तु, कषायी कन्था यस्य स काषायकन्थः विकारे तु, हैमी मुद्रिका यस्येति हैममुद्रिकः। वृद्धिशब्देन वृद्धिं प्रति फलोपधानाभावादिह पुंवत् वैयाकरणभार्यःसौवश्वभार्यः। **४१ स्वाङ्गाच्चेतः ६।३।४०॥** स्वाङ्गाद्यः ईकारस्तदन्ता स्त्री न पुंवत्। शुकेशीभार्यः। स्वाङ्गात् किं। पटुभार्यः। ईतः किम्। अकेशभार्यः।* 'अमानिनीति वक्तव्यम्' सुकेशमानिनी **४२ जातेश्च ६।३।४१॥** जातेः परो यः स्त्रीप्रत्ययस्तदन्तं न पुंवत्।

विकारे **तु**- विकार अर्थमें विराजमान तद्धित हो, तब पुं न हो। हैमी सोनेकी अँगूठो हो जिसकी, हेम्नो विकारः हेमन्से अनुदात्तादेश्च अञ्, टिलोप, वृद्धिः ङीप्। हैमी मुद्रिका यस्य **हेममुद्रकः**। पुंवत्से ङीप् चला। **विकारार्थाक अञ्** पुम् निषेघ नहीं। ठीक है। व्याकरणमधीते अधिकार पूर्वकम् उच्चारणं करोति वेत्ति– अर्थ ज्ञानजननीं क्रियां करोति या स्त्री सा **वैयाकरणी**। तदधीतेतद्वेद अण् अलोप, ङीप। वैकरणीभार्यायस्य **वैयाकरणभार्यः**। स्वश्वस्यापत्यं स्त्री। अत इञ् बाधकर शिवादि अण् ङीप्। दोनोंमें आदिवृद्धि बाधकर **न य्वाभ्यां** ऐच् प्रत्याहार "य,, व" के पहले ऐ औ। वृद्धिकी स्वरुपयोग्यता का कारण है, पु-**निषेध क्यों नहीं**? तदा अगदत्– **वृद्धिशब्देन**=वृद्धि का उच्चारण करके वृद्धिकी स्वरुपयोग्यता फलित नहीं है। **फलोपधानाऽभवात्**=वृद्धिमें कारण अण्, उसका फल वृद्धि, उससे उपधान=तात्कालिकसाहित्य तत्क्षण सह भावका अभाव होनेसे निषेध नही किन्तु पुंवत्

।।४१। **स्वङ्गात्** शरीरके अङ्गसे ई--अन्तमें हो, ऐसा स्त्री पुलिङ्ग नहो, यथा–सु= शोभनाः केशाः यस्याः सा, स्वाङ्गाच्च ङीष्। **सुकेशी भार्या यस्य स** (सुन्दर बाल वाली पत्नी जिसकी। **सुकेशीभार्यः** स्त्रियाः पुं० का निषेध। सूत्रमें **स्वाङ्ग क्यों** कहा? पट्वी भार्या यस्य **पटुभार्यः**। चतुर स्त्रीवाला, पटुता अङ्ग नही, पुं०का निषेध नहीं। उसका फल **वोतोगुणवचनात्** का ङीष् हटना। **ईतः किम्** ईकारान्त क्यों? अविद्यमानाः केशाः यस्याः सा **अकेशा भार्या यस्य** (चण्डुल औरत वाला) नञ्समास विद्यमान का लोप, स्वाङ्ग होने पर भी **सहनञ्विद्यमान**–के निषेधसे न ङीष्। ईकारान्त नहीं न निषेध किन्तु पुंवत्से टाप् निवृत्त। **अमानिनी**= मानिन्परे स्वाङ्गसे **पुं**-का निषेध न हो। **सुकेशीं मन्यते** सुन्दर केशवाली मानयी है। मनश्च णिनिः वृद्धि, समास, सुकेश स्वाङ्ग है पु- के निषेध का निषेध वार्तिकसे। पु- हुअ ङीष् हटा।

।४२। **जातेश्च** जाति शब्दसे परे जो स्त्रीप्रत्यय टाप् ङीप् तदन्तको

शूद्राभार्यः। ब्राह्मणीभार्यः सौत्रस्यैवायं निषेधः। तेन हस्तिनीना समूहो हास्तिकमित्यत्र।* 'भस्याढे' इति तु भवत्येव। ४३ **संख्ययाव्ययासन्नादूराधिकसंख्या संख्येये २।२।२५॥** संख्येयार्थया संख्यया अव्ययादयः समस्यन्ते स बहुव्रीहिः। दशानां समीपे ये सन्ति ते उपदषाः। नव एकादश

नहीं शूद्रत्वजातिविशिष्टा स्त्री, जातिलक्षण ङीष् को बाँधकर टाप्। शूद्रा भार्या यस्य, **शूद्राभार्यः** जातिः शूद्रः उससे परे स्त्री टाप् तदन्त शूद्रा को पु० का निषेध। ब्राह्मणत्वजातिसहिता स्त्री शार्ङ्गरवादि ङीन्–**ब्रह्मणी भार्या यस्य** निषेधसे ङीन् सुरक्षित। जातेश्च सूत्रसे विधान हुआ **पुंवत्** का निषेध करता है। वार्तिकसे होने वाला पु- का निषेध नहीं अतः बोले **सूत्रात्जातः सौत्रः तस्य निषेधः** अयं करोति, नतु वार्तिकस्य तेन–उसका फल है कि हथिनियों का झुण्ड **हास्तिकं** है। समूह अर्थमें **अचित्तहस्ति से ठक् इक्**। यहाँ भस्याऽढ़ेः से पु०होता ही है जो सूत्र नहीं वार्तिकसे है

।४३। **सङ्ख्यया**=इस सूत्रमें केवल बहुव्रीहि आया, सुप्सुपाभी। **सङ्ख्यया और सङ्ख्येयं** गणनाकी वस्तु अर्थमें विराजमान एकादिका सुबन्तके साथ अव्यय आसन्न अदूर, अधिक, सङ्ख्याका एकर्थ अन्यपदार्थ ही, यहाँ संख्या स्वरुप नही किन्तु एक द्वि त्रि परक है जो पदार्थमान्य। **अत्रेदमवधेयं**–विंशतिके पहले एक दो तीन संख्या सङ्ख्येय गणनीय वस्तु परक **विशेष्यलिङ्ग, दश आदिसे नित्यबहुवचन। विंशति आदि नित्य एकवचन, सं०संख्येय गणनीय वस्तु परक** हो,**नवति** ९० तक नित्य स्त्री० **विंशतिर्ब्राह्मणाः, ब्राह्मणानां विंशतिः** एक वचन मात्र की बीस सङ्ख्या अर्थमे द्वि, बहुवचनभी हो **गवां द्वे विंशति** गायोंका दो बीस ४० **गवांतिस्रः विंशतयः**साठ षष्ठी। अमरमें **विंशत्याद्याः सदैत्वेक सङ्ख्या सङ्ख्येच संख्योः। संख्यार्थे द्विबहुत्वे स्तः। तास्चानवतेः स्त्रियाः।** शब्दे तक स्त्रीलिङ्ग। **अव्ययका उदाहरण**– दशके समीपमें जो है (नौ, ग्यारह) वे **उपदशाः।** दश समीप **वर्तिनः।** उपका समीप अर्थ, अव्ययीभाव कहा है। **अन्य पदार्थ** नहीं तो प्रथमान्त भी नहीं, अनेकमन्यपदार्थे प्राप्त नहीं, तब यह सूत्र। **दशनां** से वृक्ष, उसके समीप अन्य का भ्रम नहो, अतः बोले नव एकादश ना। दश–शब्द का अर्थगतसमीप लें, एकार्थीभाव के बलसे दशन् आम् उप सङ्ख्याका अव्ययके साथ समास उपदशन मान्य। बहुव्रीहीमें सङ्ख्येय नौ या एकादश अर्थमें डच् अ। टि लोप जस **उपदशाः**। विंशतेः आसन्ना, षष्ठी

ईत्यर्थः । बहुव्रीहौ संख्येये' इति वक्ष्यमाणो डच् । ४४ ति विंशतेर्डिति ६।४।१४२।। विंशतेर्भस्य तिशब्दस्य लोपः स्याड्डिति । आसन्नविंशाः विंशतेराशन्ना इत्यर्थः । अदूरत्रिंशाः । अधिकचत्वांरिशाः । द्वौ वा त्रयो वा द्वित्राः दश द्विदशाः । विंशतिरित्यर्थः । ८४५ दिङ्नामान्यन्तराले २।२।२६।। दिशोनामान्यन्तराले वाच्ये प्राग्वत् । दक्षिणस्याश्च पूर्वस्याश्च दिशोऽन्तरालं

समासे सङ्ख्येय १९ या २१ अन्य अर्थ है, उससे डच् "नस्तद्धिते" इकार मात्र का लोप प्राप्त अतः

। ४४ । तिर्विशतेः= भसंज्ञक ति लोप हो डिपरे । तिका लोप हुआ । भ का अधिकार । अलोन्त्यस्य नहीं लगेगा, अनर्थकमें निषिद्ध होनेसे। तिलो सवर्णदीर्घम् बाधि अतो गुणे पररुपे, बहुवचने **आसन्नविंशाः** बीस के आस पास अदूरकाउदाहरण **त्रिंशतो अदूराः अदूरत्रिंशाः** । तीसके आस पास २९–३१ डच् टिलोप । अधिक का -- चत्वारिंशतो अधिकाः, **अधिक चत्वांरिशाः** चालिससे डच् टिलोप । सङ्ख्याका सङ्ख्याके साथ समास- **द्वित्रा** दो या तीन । वाऽर्थे बहुब्रीहिः । द्वि औ त्रिजस् समासे, डच् टिलोप, बहुवचने **द्वित्राः** । दोनोंमें एक अन्यपदार्थ । **द्वित्राः आनीयन्तां** जब दो लायेगा, तब बहुवचन कैसे ? भाष्यमें, **अनिश्चये बहुवचनं प्रयोक्तव्यं**, कहा तथा **कार्यान्वये विकल्पः शब्दात्तु नियमेन कोटिद्वयोपस्थितः तदुपस्थित्यनन्तरं अन्यतरानयनमिच्छा । पञ्चानामुपस्थितिः इत्यपि समाहितम्** । अनेकमन्यपदार्थसे समास नहीं, शेषाद्विभाषासे कप्के भयसे संख्याका संख्याके साथ अन्य उदाहरण–दो वार आवृत्त उच्चारित दश **द्विदशा**-बीस अर्थ दो बार दश । सुच्का अर्थ आवृत्ति है । शब्दशक्ति स्वभाव उस अर्थको समास बोल रहा है । अतः सुच् सुनायी नहीं देता । **संख्या क्यों** पढ़ा ? **संख्येय क्यों ? अधिका विंशतिर्गवां**, यहां संख्या संख्यार्थी है क्योंकिसे **आदशतः संख्या संख्येये वर्तन्ते, न तु संख्यायाम्** । **विंशत्याद्याः** संख्यास्तु संख्यासंख्येयोः वर्तन्ते । संख्येयमें समास संख्यामें नहीं ।

। ८४५ । **दिङ्**–दिशावाची तथा नाम, संज्ञा सुबन्त हों, परस्परमें बहुब्रीहि (अन्य पदार्थ, अन्तराल=दो दिशाओंका मध्य वाच्य अर्थमें) समास हो नामानि का बहुत्व अविवक्षित है । उदाहरण-**दक्षिणपूर्वा** (दक्षिणदिशा पूर्वदिशाका अन्तराल मध्य अग्निकोण दिशाओंका बीच होनेसे) समासादिकार्यं, स्त्रीत्वं लोकात् । अन्तराल दिशाओंका ही मान्य । **सर्वनामका** वृत्तिमात्रमें पुलिङ्ग होना प्रमाणित । यद्यपि उपसर्जनमें सर्वनाम धर्म नहीं रहता, तथापि

दक्षिणपूर्वा। नामग्रहणाद्यौगिकानां न। ऐन्द्र्याश्च कौबेर्याश्चान्तरालं **दिक्**। ४६ **तत्र तेनेदमिति सरूपे** २।२।२७।। सप्तम्यन्ते ग्रहणविषये सरूपे पदे तृतीयान्ते च प्रहणविषये इद युद्धं प्रवृत्तमित्यर्थे समस्येते कर्मव्यतिहारे द्योत्ये स बहुव्रीहिः। इतिशब्दादयं विषयविशेषो लभ्यते। अन्येषामपि दृश्यते' दीर्घ इत्यनुवर्तते। **इचि कर्मव्यतिहारे बहुव्रीहौ पूर्वपदान्तस्य दीर्घः**। इच्समासान्तो

भूतपूर्वगतिसे सर्वनामसे, पुंभाव स्वीकार। सूत्रमें **दिशोः अन्तराले** यही पढ़ते नाम क्यों पढ़ा ? तब बोले **नामग्रहणात्**–नाम उच्चारणसे दिशाओंमें रूढ़ 'दक्षिणा पूर्वा उत्तरा' पश्चिमा, ही लिए जाँय। **यौगिकानां**=प्रकृत्यर्थ प्रत्ययार्थसे सिद्ध शब्द न लिये जाँय। यथा—इन्द्रो देवता अस्याः ऐन्द्री, पूर्वदिशा। कुबेरः देवता अस्याः कौबेरी उत्तरदिशा। ये इन्द्रसम्बन्ध, कुबेर सम्बन्धसे यौगिक है, रूढ़ नहीं, अतः समास नहीं।

। ४६। **तत्र तेन**। इस सूत्रमें समास, बहुव्रीहि अधिकारसे आये। तत्रसे सप्तम्यन्तपद इष्ट है। तेन-से तृतीयान्तपद इष्ट, ग्रहणविषये, **प्रहरणविषये** द्विवचनान्त विशेषणमानकर अध्याहार। **सरूपे** समानरूप पदविशेषण। ग्रहणविषय और प्रहरण विषयमें सप्तम्यन्त, तृतीयान्तका गणनाक्रम मान्य। 'इदं' से अर्थ तथा युद्धं प्रवृत्तं विशेष्यका अध्याहार। **कर्मव्यतिहार**=क्रियाके अदला बदली का भी अध्याहार गृह्यते। अस्मिन्नति **ग्रहणं**, केशादिः। अधिकरणमें ल्युट्। ग्रहणका विषय वाच्य हो, ऐसा केशादि ग्रहणका विषय हो समान रूपवाला पद हो, ग्रहणका वाचक हो, एवं प्रह्रिते अनेनेति **प्रहरणं**, जिससे ताडन किया जाय **दण्डादिः** वह हो विषय=वाच्य अर्थ ययोः=जिन दोनों पदोंके प्रहरण-वाचक हों, समानरूप हों 'तब इदं युद्धं प्रवृत्तम्' इस अर्थमें समास ह क्रियाकी अदला बदली, समानता प्रकाशित होनेपर अन्यपदार्थ मान्य। 'इदं' सामान्य अर्थ 'युद्धं' विशेष अर्थसे पुनरुक्ति नहीं। परस्परका ग्रहण और प्रहार कर्मव्यतिहार है। ग्रहण या प्रहरणविषयमें प्रमाणके लिए बोले—इति-शब्दात्=सूत्रमें इति पढ़ा ? वह लौकिक इच्छाका प्रकाशक **केशाकेशि** आदि प्रयोगमें जितना अर्थ प्रसिद्ध है उतनेमें बहुव्रीहि मान्य।

। **अन्येषां**–(नहि वृत्तिवृषि–आदि सूत्रोक्तको दीर्घ होता ही है) अन्य शब्दोंसे भी दीर्घ देखें। 'ढ्रलोप' से दीर्घ आया। अतिप्रसंगकी शंका, से इच्प्रत्ययपरे कर्मव्यतिहारे=क्रियाके आदान-प्रदान अर्थपर बहुव्रीहिसमासमें पूर्वपदके अन्तमें दीर्घ होता है। **बहुव्रीहौ चेत्कर्मव्यतिहारे एव, पूर्वपदान्तस्यैव**

वक्ष्यते । तिष्ठद्गुप्रभृतिष्वच्प्रत्ययस्य पाठादव्ययीभावत्वमव्ययत्वं च । केशेषु केशेषु गृहीत्वेदं युद्धं प्रवृत्तं केशाकेशि । दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्येदं युद्धं प्रवृत्तं दण्डादण्डि । मुष्टीमुष्टि ८४७ ओर्गुणः ६।४।१४६॥ उवर्णान्तस्य भस्य गुणः स्यात्तद्धिते । आवादेशः । बाहूबाहवि । ओरोत्' इति वक्तव्ये गुणोक्तिः

दीर्घ इत्यर्थः । अतः तुराषाट् में दीर्घ । दृश्यते=से यह अर्थ निकला । इच्कर्मव्यतिहारे सूत्रसे समासान्त इच् कहेंगे । वृत्तिग्रन्थके ही प्रमाणसे, तिष्ठद्गु इत्यादिमें इच्का पाठ है, उसीसे अव्ययीभाव समास तथा अव्ययसंज्ञा, जिसका फल अव्ययादाप्सुपः से सुप् लुक् । परस्परमें एक दूसरेका झोंटा, जटा, बाल, पकड़कर गृहीत्वा स्थितयोः—यह युद्ध आरम्भ हुआ, उसका नाम **केशाकेशि । अस्य केशेषु सः, तस्य केशेषु अयम्** एवं **परस्परं गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तं** लौकिक विग्रह । केशसुप्-$_2$ ग्रहणका विषय है, समानरूप है, सप्तम्यन्त भी, उक्त अर्थमें **तत्रतेनेदमिति** सरूपे, सूत्रेण समासादिः समास होनेपर सुपो लुक्, पूर्वपदस्य दीर्घः, समासान्त इच्, यस्येति अ लोप, अव्ययात्सुपो लुक् । समानरूपसे प्राप्त एकशेषको बाधकर । अन्यार्थ लक्षणबहुव्रीहिसमास । प्रथमान्त नही, अनेकमन्य भी नही । प्रहरणका विषय दण्डोंसे एक दूसरेपर प्रहार करके आरम्भ युद्धका नाम **दण्डादण्डि । अस्य दण्डैः सः तस्य दण्डैः अयम्** एवं परस्परं प्रहृत्य स्थितयोः इदं युद्ध प्रवृत्तं, दण्डभिस्-$_2$समानरूप, एकशेषको बाधकर प्रहरण (मार) का विषय दण्ड आदि होनेसे तृतीयान्त भी है । उक्ते अर्थे सूत्रेण समासे सुपः लुक्, पूर्वपदस्य दीर्घे इच्, अलोपे अव्ययात्सुपः लुक् । **मुष्टीमुष्टि** (मुक्केबाजी) अस्य मुष्टिभिः सः तस्य मुष्टिभिः अयं परस्परं-प्रहृत्य इदं युद्ध प्रवृत्तं सरूप है । एकेशेषको बाधकर सूत्रेण समासे आदिः प्राचिनोंका **'आत्वं वा'** कहना अपाणिनीय है ।

। ४७ । **ओर्गुणः** भसंज्ञाकाअधिकार, नस्तद्धिते अनु० । उकार अन्तमें हो, भसंज्ञकको गुण हो, तद्धितपरे (भुजाका भुजाके साथ परस्पर पकड़कर लड़ाई) **बाहौ च बाहौ च परस्परं गृहीत्वा स्थितयोः** इदं युद्ध प्रवृत्तं विग्रहे सप्तम्यन्त-ग्रहणका विषय, समानरूप दोनों पदोका **तत्र तेनेदं** सूत्रेण समासे, सुपो लुक् । **अन्येषां**—पूर्वपदस्य दीर्घे, इच्, उकारस्य गुणे अवादेशे, सुप्, अव्ययात्—लुक् । अत्र शङ्का—उकारस्थाने गुणकी स्थानसमानतासे ओ होगा, तब **लाघवात् 'ओरोत्'** पढ़े गुणका गुरुनिर्देश क्यों ? व्यर्थ होकर बोला—**संज्ञापूर्वकविधि अनित्य है** । गुण—संज्ञा है । उससे विधान किया गया 'ओ' अनित्य है कही

,सञ्ज्ञापूर्वको विधिरनित्यः' इति ज्ञापयितुम्। तेन स्वाम्भुवमित्यादि सिद्धम्। सरूपे इति किं हलेन मुसलेन। ४८ **तेन सहेति तुल्ययोगे** २।२।२८॥ तुल्ययोगे वर्तमानं सह इत्येतत्तृतीयान्तेन प्राग्वत्। ४९ **वोपसर्जनस्य** ६।३।२८। बहुव्रीहेरवयवस्य सहस्य सः स्याद्वा। पुत्रेण सह सपुत्रः सहपुत्रो वा आगतः तुल्ययोगवचनं प्रायिकम्। सकर्मकः। सलोमकः। ५० **प्राकृत्याऽऽशिषि** ।६।३८३। सहशब्दः प्रकृत्या स्यादाशिषि। स्वस्ति राज्ञे सहपुत्राय सहामात्याय।

नहीं होता। उसका फल **स्वायम्भूवोऽपत्यं** ब्रह्माकी सन्तान अर्थमें अण्, आदि वृद्धि, ओर्गुणः गुणसंज्ञा पूर्वक है अनित्य हे। नहीं हुआ, किन्तु उवङ् इत्यादि की सिद्धि हुई। सूत्रमें **सरूप क्यों** पढ़ा? जहाँ समानरूप नहीं है, वहाँ समासादि न हो, इसका फल **हलेन मुसलेन परस्परं** प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तं, समास नहीं हुआ समानरूप न होनेसे।

।४८। **तेन सह तुल्ययोगे** युगपत्कालिक क्रियासम्बन्धे=एकसाथमें क्रिया-वर्तमान हो, तब सहअव्ययका तृतीयान्तके साथ अन्यार्थ समास हो। **तुल्ययोग क्यों** कहा? **सहैव दशभिः पुत्रैः भारं नहति गर्धभिः।** यहाँ सहका तुल्य अर्थ नहीं क्योंकि भावकर्मक वहनक्रिया गर्दभीमें हे, पुत्रोंमें नहीं, अन्यथा वहन्ति होता। दशपुत्रोंके रहते ढ़ोती है। पुत्र नही ढ़ो रहे है। सहका विद्यमान अर्थ है तुल्य क्रिया योग नहीं।

।८४९। वो **उपसर्जनस्य** उत्तारपदके अधिकारमें सहस्य स आया। उपसर्जनम् अस्ति अस्य **उपसर्जनः** बहुव्रीहिः। अन्यपदार्थ समासका अवयव सहको स हो विकल्पसे। सभी समासोंका अवयव उपसर्जन ही है। तथापि सर्वावयव उपसर्जन बहुव्रीहि है। अवयव षष्ठी। **बहुव्रीहि क्यों, सह योधितवान्** सहयुद्ध्वा, सहकृतवान् सहकृत्वा यहां सह को स न हो, मुख्य उदाहरण **पुत्रेण सह** युगपत् आगतः **सपुत्रः** गुरुः। आगमन क्रियामें दोनोंका तुल्ययोग, तेन सहेति–समासे, वोपसर्जनस्य सह स्थाने स। तुल्ययोग प्रायः लिया जाता है, कहीं नहीं भी, **विभाषा सपूर्वस्य उच्चारणसे**। यथा **सकर्मकः** विद्यमानंकर्म। **सलोमकः**, रोमवाला, रोमसहित सहका तुल्ययोग अर्थ नहीं, स हुआ।

।५०। **प्रकृत्या** आशीर्वाद अर्थमें सह शब्दको **प्रकृतिभाव**=यथा स्थिति हो, स न स्वस्तिहत **वराज्ञे भूयात्** राजाका कल्याण हो, **सहपुत्राय**–पुत्रोंके सहित, **अमात्याय**—मन्त्रियोंके सहित, तेन सहेति तुल्ययोगे क्रियासम्बन्धे समासे आशीर्वाद अर्थ है, सहको स भाव न हो। प्रकृतिभाव हो गया, किन्तु **जायमानस्य सपुत्रस्य सभ्रातृकस्य सपरिवारस्य आयुः आरोग्यता ऐश्वर्यम् अभि-**

गोवत्सहलेष्विति वाच्यम् । सगवे सवत्साय सहलाय । ५१ **बहुव्रीहौ सङ्ख्येये डजबहुगणात्** ।५।४।७३। संख्येये यो बहुव्रीहिस्तस्माड्डच् स्यात् । *न तु बहुगणात्] उपदशाः । अबहुगणात्किम्? । उपबहावः । उपगणाः । अत्र स्वरे विशेषः । * **संख्यास्तत्पुरुषस्य वाच्यः** । निर्गतानि त्रिंशतो–निस्त्रिंशानि वर्षाणि चैत्रस्य । निर्गतस्त्रिंशतोऽङ्गुलिभ्यो–निस्त्रिंशः खड्गः । ५२ **बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच्** ।५।४।११३।व्यत्ययेन षष्ठी । स्वाङ्गवाचिसक्थ्यक्ष्यन्ताद्बहुव्रीहेः षच् स्यात् । दीर्घे सक्थिनी यस्य स दीर्घसक्थः । जलजाक्षी

वृद्धिरस्तु इस वाक्यमें सहको स भाव कैसे ? **भवन्तो अनुगृह्णन्तु,** से प्रार्थना वाक्य है आशीर्वचन नहीं । वार्तिककार सूत्रकी अपूर्णताको पूर्ण करते है **अगो,** **गो, वत्स,** हलसे परे हो तब सहको सभाव न हो । **सगवे गोसहिताय** राज्ञे स्वस्ति, **सवत्साय** वछड़ेके सहित **सहलाय** हल कृषि कार्य प्रजाके साथ, राजाका कल्याण हो । यहां स को प्रकृतिभावका वार्तिकसे निषेध ।

। ५१ । **बहुव्रीहौ** समासमें संख्येय (गणनाकी वस्तु) अर्थमें बहुव्रीहिसे डच्–अ हो । यह असाधारण समासान्त है, पञ्चमी अर्थे सप्तमी । **अबहुगणात्**=बहु और गणके साथ समास हो तब इ. न हो । ये=दशानां समीपे सन्ति ते **उपदशाः** छात्राः । दशन् आम् उप् संख्ययाव्ययासन्न–सूत्रेण बहुव्रीहि समासे, सुपो लुक् । उपदशन्शब्दात् इच् नस्तद्धिते टिलोपे स्वादिःसूत्रमें बहुगणको इच् नहीं, ऐसा क्यों बहूनां समीपे ये छात्राः सन्ति ते **उपबहवः** गणस्य समीपे ये सन्ति ते **उपगणाः** प्रजाः बहुतोंके पासमें रहे समुदायके समीपमें रहें वे । बहुगणवतुडतिसे संख्यासंज्ञा संख्ययाव्ययासन्नसे समास, इच् निषेधके लिए । ननु उपगणाः इत्यत्र इच् भवतु, न भवतु वा । एकरूपता मिलति निषेधस्य किं फलं, स्वरमें अन्तर पड़ेगा । इच् से चितः, अन्तोदात्त होगा । **संख्या अन्त** हो ऐसे तत्पुरुषसे समासान्त इच् वोले–**निर्गतानि**=तीस संख्याके पार कर गई चैत्रकी आयु वर्ष **निस्त्रिंशानि** । त्रिंशत्ङसि निर् । निरादयः क्रान्ताद्यर्थे तत्पुरुषसमासे, वार्तिकेन इच् । टि (अत्) लोपे, नपुंसके, स्वादिकार्ये, त्रिंशत अधिकानि (तीससे अधिक वर्ष) निर्गतानि चत्वारिंशतः **निश्चत्वारिंशानि** । चालीससे अधिक, निर्गतः=पार हो गया । **निस्त्रिंशः** (तलवार तीस अंगुलसे बड़ी) समासादिः पूर्ववत् ।

। ५२ । **बहुव्रीहि** समासमें स्वाङ्ग=शरीरका अवयव, सक्थि अक्षि अन्तमें हो ऐसे बहुव्रीहि अन्यार्थप्रधानसमाससे षच् (अ) समासान्त तद्धित हो । **व्यत्ययो बहुलं छन्दसि** वचनसे पञ्चमी अर्थे षष्ठी । **छन्दोवत्सूत्राणि भवन्ति** ।

स्वाङ्गात्किम्? दीर्घसक्थि शकटम्। स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः। 'अक्ष्णोऽदर्शना'दित्यच्। ५३ अङ्गुलेर्दारुणि।५।४।११४। अङ्गुल्यन्ताद्बहुव्रीहेः षच् स्याद्दार्वर्थे। पञ्चाङ्गुलयो यस्य तत् पञ्चाङ्गुलं दारु। ङ्गुलिसदृशावयवं धान्यादिविक्षेपणकाष्ठमुच्यते। बहुव्रीहेः किम्। द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्याः द्व्यङ्गुला यष्टिः। तद्धितार्थे तत्पुरुषे 'तत्पुरुषस्याङ्गुले':इत्यच्। दारुणि किम्। पञ्चाङ्गुलिर्हस्तः
५४ द्वित्रिभ्यां षोमूर्ध्नः।५।४।११५ आभ्यां मूर्ध्नः षः स्याद्बहुव्रीहौ। द्विमूर्धः।

पञ्चमी अर्थे सप्तमी बहुव्रीहौमें। **दीर्घसक्थः** दीर्घ औ शक्थि औ। समासे, सूत्रेण षच्। यस्येति लोपे स्वादिः। जलजे इव अक्षिणी यस्याः सा **जलजाक्षी** (कमलनयनी) समासादिकार्ये। सूत्रेण षच्, नस्तद्धिते टिलोपे, षित्। इस सूत्रमें **अद्रवं मूर्तिमत्स्वाङ्ग** लेते हैं। अतः शोभनाक्षी प्रतिमा च चित्स्वर। सूत्रमें स्वाङ्ग क्यों पढ़ा? दीर्घे सक्थिनी (**इषादण्डौ**) यस्य **दीर्घसक्थि** गाड़ीके लम्बे हल सदृश दण्ड है जिसके। उत्तस्वाङ्ग नहीं, षच् नही। स्वाङ्गका दूसरा प्रत्युदाहरण—**स्थूलानि अक्षीणि पर्वग्रन्थयो अङ्कुराणि वा यस्या सा स्थुलाक्षा,** वेणुयष्टिः। नेत्रके कोनेमें अंकुरित, चटक, अङ्कुर है जिसकी, बांसकी छड़ी। यहां षच् नहीं, स्वाङ्ग न होनेसे। नान्त ङीप् भी नही अक्षणों अदर्शनात्के अच् होनेसे। षच् होता, ङीष् हो जाता।

।५४। **अङ्गुलेः**। बहुव्रीहि हो, अङ्गुल अन्तमें हो, तब षच् हो, लकड़ी के विषयमें। **पांच** है अंगुल जिसके, वह पांचा लकड़ीका बना **पञ्चाङ्गुलं** दारुमें अङ्गुल कैसे? उसके सदृश अवयववाला धान्यादि दँवाईकी, दशामें धान गेहुं आदि पैरा खीचने फेंकनेका काष्ठ अर्थ लक्षणासे। पञ्चन् जस् अंगुल जस्। अनेकमन्यपदार्थे समासादिकार्ये। सूत्रेण षच् इलोपे। सूत्रमें बहुव्रीहि **क्यों**? दो अङ्गुल प्रमाण मोटाई है जिस छड़ीकी, वह **द्व्यङ्गुला** दो अंगुलवाकी यह बहुव्रीहि नही, न षच्, प्रमाण अर्थमें मात्रच् उसका लुक्। **द्व्यङ्गुली** क्यों नही हुआ। तद्धितार्थ वाले तत्पुरुषमें तत्पुरुषस्याङ्गुलेःसे अच् इलोप हुआ षच् नही। सूत्रमें **दारुणी** क्यों पढ़ा, पांच अंगुलवाला हांथ। लकड़ी अर्थ नही है, षच् न हो जाय।

।८५५। **द्वित्रिभ्यां**=दोनोंसे परे मुर्धन्को ष हो, बहुव्रीहिमें **द्वौ मुर्धानौ यस्य स द्विमर्धः**। द्वि औ मूर्धन् औ। समासे द्वि से परे ग, अ, टिलोप दो सिरवाला। **त्रयो मूर्धानो यस्य त्रिमूर्धः** त्रिशिरा-तीन सिरवाला। षच् होत चित स्वर होने लगता। अतः पढ़ा। **नेतुः नक्षत्र**=अर्थमें विराजमान नेतृ—

त्रिमूर्द्धः । * **नेतुर्नक्षत्रेऽब्वक्तव्य** । मृगो नेता यासां रात्रीणां ताः मृगनेत्रा रात्रयः । पुष्यनेत्राः । ८५५ **अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः** । ५।४।११७। आभ्यां लोम्नोऽप्स्यादबहुव्रीहौ । अन्तर्लोमः । बहिर्लोमः ५६ **अञ्नासिकायाः संज्ञायां नसं चास्थूलात्** ५।४।११८। नासिकान्ताद्बहुव्रीहेरच्स्यान्नासिकाशब्दश्च नसं प्राप्नोति न तु स्थूलपूर्वात् । ५७ **पूर्वपदात्सञ्ज्ञायामगः** ।८।४।३। पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य नस्य णः स्यात्संज्ञायां न तु गकारव्यवधाने । द्रुरिव नासिका

तदन्त=वह अन्तमें हो ऐसे बहुव्रीहि अन्यार्थप्रधानसे अप् कहें । मृगो जेताः= मृगशिरा नक्षत्र नायक हो, जिन रात्रियोंका **मृगनेत्राः** । चन्द्रः रातका नायक चन्द्रमाकी रातें । चन्प्रके सम्बन्धसे नक्षत्र भी । मृगनेतृशब्दात वार्तिकसे अप् । ऋ-यण् रेफ, टाप् **मृगनेत्राः** । पुष्यः नक्षत्रः नेता नायकः यासाँ रात्रीणां ताः (**पुष्यनेत्राः रात्रयः**) नक्षत्रवाली रातें सकास, अप् यण् टाप् ।

। ५६ । अन्तः=भीतर बहि (बाहर) शब्दसे परे लोमन्से अप् हो, बहुव्रीहिमें अन्तः आभ्यन्तरे लोमानि रोमणि यस्य । बहुव्रीहि समासे **अन्यर्लोमन्** सूत्रेण अप्, टिलोप् स्वादिः । (भीतर रोयें वाला) **वहिर्लोमन्** समास, अक्, टिलोप आदिः । 'अञ्नासिकायाः' बहुव्रीहिमें विशेषण, तदन्त । **नासिका अन्त** बहुव्रीहि से अच् हो, नासिकाको नसः आदेश हो, संज्ञा—माम होनेपर । स्थूलपूर्वमें हो तब नस् आदेश ह हो ।

। ५७ । **पूर्वपदमें** स्थित **निमित्त**=णत्वका कारण र ष, उससे परे **न** को ण हो, संज्ञा—नाम अर्थ रहनेपर । **अगः**=ग के व्यवधानमें णत्व न हो । रषाभ्यां आया पूर्वऐदस्य लक्षणासे, अट्कुप्वाङ्नुम् आया । तभी अगः सफल । खण्ड पदमें णत्व नहीं होता, उसके लिए सूत्र । **द्रुरिव** वृक्षको तरह ऊँची नाक है वह **द्रुणसः** । बहुव्रीहि समासे अञ् नासिकायाःसे अच्, नासिकाको नस् आदेश द्रुनस् पूर्वपदात्से णत्व, द्रुणसः । खर इव नासिका यस्य, भद्दीखरोटी नाकवाला **स्वरणसः** । समासे, अच् नस्, णत्व पूर्ववत् । **अगः** क्यों ऐढ़ा ग के अन्तरालमें णत्व न हो । **ऋचाओं**—मन्त्रोंका ययन् घर **ऋगयनं** ग के अन्तरमें णत्व नहीं हुआ । संज्ञा है । ऋचागयनं विग्रह ठीज नहीं, वाक्यसे संज्ञाका ज्ञान न होनेसे । **रघुनाथः रामनाथः** भी संज्ञा हैं णत्व क्यों नहीं, इसलिए कि णत्वसे संज्ञा नष्ट होगी । अतः भृओ असंज्ञायांके भाष्यमें **य येते संज्ञायामिति केविधीयन्पे तेषु नैवं विज्ञायते, संज्ञायामभिधेयायां किं तर्हि, प्रत्ययान्तेन चेत्संज्ञावगम्यते**, संज्ञा जान पड़नेपर ही अच् णत्व, नस् होगें । **संज्ञाशब्दाः अनादि**

यस्य द्रुणसः। खरणसः। अगः किम्। ऋचामयनम् ऋग्यनम्। 'अणृगयनादिभ्यः' इति निपातनाण्णत्वाभावमाश्रित्य अगः इति प्रात्याख्यातं भाष्ये। अस्थूलात् किं स्थूलनासिकः। 'खुरखराभ्यां वा नस्। खुरणाः खरणाः। पक्षेऽजपीष्यते' प्रयुक्ताः नियमानुपूर्विका एव सिद्धा। यत्र इदानीं कः तद्विपरीतं प्रयुक्तमर्हति॥ खुरणसः। खरणसः। ५८ उपसर्गाच्च।५।४।११९। प्रादेर्यो नासिकाशब्दस्त-दन्ताद्बहुहेरच् नासिकाया नसादेशश्च। असञ्ज्ञार्थमिदं वचनम्। उन्नता नासिका यस्य सः उन्नसः उपसर्गादनोत्परः इति सूत्रम्। तद्भङ्क्त्वा भाष्यकार आह–५९ उपसर्गाद्बहुलम् ८।४।२८। उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य नसो

जनादिकालसे आते नियतसंज्ञाशब्दोंका विपरीत प्रयोग कौन करें। अग् ऋगयनादिभ्यः सूत्रमें निपातनसे णत्वका अभाव मानकर 'अग' को चाट गये। सूत्रे 'स्थूलात्' न पढ़ते तब स्थूला नासिका यस्य (मोटी नाकवाला) स्थूलनासिकः। यहाँ भी नस् आदेश होता। खुर और खर से परे नासिकाको नस् हो विकल्पसे वहुव्रीहि और संज्ञामें। सूत्रसे ही नस् आदेश सिद्ध था, अच् की निवृत्तिवास्ते वार्तिक पढ़ा। खुरौ इव नासिके यस्य (खुरकी तरह फटी नाकवाला) समासे वार्तिकेन नस् आदेशे पूर्वपदात् णत्वं खुरणस् दशायां जस् अत्वसन्तस्य दीर्घे, सुलोपे, रुवि। खुरणाः। खररूपा नासिका यस्य (चिपटी नाकवाला) समास, नस्, णत्व, आदि पूर्ववत्। पक्षमें खुरनासिकः खरनासिकः होता, किन्तु अच् भी इष्ट है। अच्सहितनस् आदेशसें खुरणसः भी भी वना भाष्ये इदं न। ५८। उपसर्गात् प्रादेः=प्र, परा अप आदिसें नासिका हो ऐसे बहुंब्रीहिसमाससे अच् हो। नासिका-नस् आदेश भी। यह कार्य अञ्नासिकायाः सूत्रसे सिद्ध था, यह सूत्र क्यों? असंज्ञाके लिए। यह सूत्र है वह संज्ञामें करता है। उपसर्ग प्रादि का बोधक है। क्योंकि क्रिया योग न होनेसे उपसर्गसंज्ञा नहीं होती। उपसर्गादनोत्परा यह सूत्रहै इसमें नश्च धातुस्थो–से नस् आया, रषाभ्यां नोऽणः आया। उपसर्गमें स्थित रेफ, ष से परे नसके न को ण हो। ओ परे न को ण न हो। खण्डपद होनेसे अप्राप्त था प्रण आयूंषि तारिषत्–। णहुआ। अनोत्परः क्यों पढ़ा? प्र नो मुञ्चतम्। ओ परे णत्व न हो। तद्भङ्क्त्वा=उसे तोड़कर भाष्यकार ने अनोत्परः को अलगकर उसके स्थानमें बहुलं पढकर कहा

५९ उपसर्गाद्बहुलम्'' उपसर्ग का लाक्षणिक (प्र परा) आदिमें स्थित णत्व का निमित्त र ष से परे नस् के न को ण हो, बहुल=इच्छानुसार।

नस्य णः स्याद्बहुलम् । प्रणसः । 'वेर्ग्रो वक्तव्यः' विगता नासिका यस्य विग्रः 'ख्यश्च' विख्यः । कथं तर्हि "विनसा हतबान्धवा' इति भट्टिः । विगतया नासिकयोपलक्षितेति व्याख्येयम् । ८६० **सुप्रातसुश्वसुदिवशारिकुक्षचतुरश्रैणीपदजपदप्रोष्ठपदाः** ५।४।१२०। एते बहुंब्रीह्योऽच्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । शोभनं प्रातरस्य सुप्रातः । शोभनं श्वोऽस्य सुश्वः । शोभनं दिवा अस्य सुदिवः । शारेरिव कुक्षिरस्य शारिकुक्षः । चतस्रोऽश्रयोऽस्य चतुरश्रः । एण्या इव पादावस्यैणीपदः । अजपदः । प्रोष्ठो गौ, तस्येव पादावस्य प्रोष्ठपदः । ८६१ **नञ्दुःसुभ्यो हलिसक्थ्योरन्यतरस्याम्** ५।४।१२१। अच्स्यात । अहलः–अहलिः ।

इसका फल **प्र णो नय** । **प्र नः पूषा** इच्छित ण हुआ, नहीं भी । **प्रगता** नासिका यस्य=बड़ी नकवाला **प्रणसः** । समासे "उपसर्गाच्च" से अच नासिकयाः नस् उपसर्गाद्बहुलं णत्व, स्वादिः । **वेः**=वि से परे नासिका को ग्र आदेश हो । **विगता**= नष्ट हुई नाकवाला विग्रः । वि उपसर्ग, नासिका को ग्र आदेश । **ख्यश्च** नासिका को ख्य भी हो । **विगता नासिका विख्यः**=नाककटा । यदि ऐसा तब **विनसा हतबान्धवाः** भट्टिप्रयोगमें ग्र या ख्य क्यों नहीं ? क्योंकि नस् आदेश का बाधक है । **समधान**–विगता नासिकासे उपलक्षित मानकर नस् आदेश । **विगता नासिका** प्रादि समास है, बहुव्रीहि नहीं, आदेश भी नहीं किन्तु पद्दन्नों०से नस् । विनसा तृतीयान्त है ।

। ८६० । **सुप्रात** आदि सूत्र पठित शब्दसे बहुव्रीहिमें अच् हो सुन्दर सबेरा है, इसका **सुप्रातः** प्रातः कालीन क्रिया अधिकरणशक्ति प्रभानका समानाकरण असम्भव । **प्रातः शब्देन प्रातस्तनं कर्म लक्ष्यते** । सूत्रेण अच्, **अव्ययानां भमात्रे टिलोपे** स्वदिः । सुखदायीं आगामी दिन है इसका **सुपूवः** । समासे अच् टि लोप स्वच्छ दिनवालाहै **सुदिवः मासः** । दिवा आकारान्त अव्यय, भ मात्रमें टिलोप अच्परे सारसपक्षी की तरह कुक्षि हृदय उन्नतग्रीवा छाती है वह **शारिकुक्षः** । अच यश्येति इलोप,चार आश्रय कोण कोनावाला **चतुस्श्रः** चौतरा चौकी । चतुरश्रि से अच्, इ लोप । **एणी मृगी** की **तरह** पाँव हैं जिसके । अच् निपातनसे पादः पत् । प्रोष्ठका अर्थ गाय । उसकी तरह पाँव है **प्रोष्ठपदः श्रच्, पादः पत्** स्वादिः । सूत्रके शब्दानुसार प्रत्ययकी कल्पना निपात है

६१ **नञ्दुः** सु से हलि या सक्थिसे समास हुआ हो तब विकल्पसे अच् हो । **अविद्यमानो हलिः** यस्य । नहीं है हल जोतनेजा सामान **श्रहलः** । इकारान्त,

असक्थः—असक्थिः। एवं दुःसुभ्याम्। शक्त्योः इति पाठान्तरम्। अशक्तः—अशक्तिः। ६२ नित्यमसिच्प्रजामेधयोः ५।४।१२२। नञ्दुःसुभ्यः इत्येव अप्रजाः। दुष्प्रजाः। सुप्रजाः। अमेधाः। दुर्मेधाः। सुमेधाः। ६३ धर्मादनिच्केवलात् ५।४।१२४। केवलात्पूर्वपदात्परो यो धर्मशब्दस्तदन्ताद्बहुव्रीहेरनिच्स्यात्। कल्याणधर्मा। केवलात् किं। परमः स्वो धर्मो यस्येति त्रिपदे बहु-

---

हलका पर्याय हलि। नञ्समास तदन्तसे अच यस्येति इलोप, यदा न अच तदा अहलिः। अनुक्त समासान्तो नास्ति, नकप् अविद्यमानं यस्य नञ् समासे अच इलोप। असक्थः। पक्षे असक्थिः। यही अनुशासन दुरके साथ। कोई आचार्य सक्थि न पढ़कर शक्तिः, केचित्पाणनीयाः पठन्ति, पाणिनिशिष्या. वदन्ति। तन्मते न शक्तिर्यस्य अशक्तः निर्बलः। नञ् समास अच इलोप। यदा न अच तदा अशक्तिः, सामर्थ्यहीनः।

। ६२। नित्य—प्रजा और मेधा शब्दसे नित्य असि च हो, समासान्तद्धितमान्य। नञ् दुः और सु के साथ समास होने पर। च इति। इ उच्चारणार्थ। अस् सत्य। अन्यतरस्यां नहीं आया, नित्य पढ़ने से अस्वरितसे भी न आता। नित्य अन्यत्रके लिए। अप्रजाः अविद्यमानाः प्रजा यस्य निःसन्तान। नञोऽस्त्यर्थानामिति समासः प्रजासे असिच् = अस्। यस्येति अकार लोपे। अप्रजस् शब्दात्सु अत्वसन्तस्य—सान्त उपधाको दीर्घ, हल्ङ्याप् सुलोपे रुवि०। यद्यपि असिच् का अकार न रहता तब भी प्रयोग बनता, तथापि भसंज्ञा न होती, अजादि न मिलनेसे। आलोप न होता। सुमें अप्रजाः बनता, अप्रजसौ न बनता किन्तु अप्रजासौ होता। अतः अकार भसंज्ञार्थ पढ़ा। दुर्गता प्रजा यस्य दुष्प्रजा, दुर्दशाप्राप्त हुई प्रजावाला। प्रदिभ्योः धातुजस्य समासे असिच् आदिः पूर्ववत्। 'इदूदुपधस्य' षत्व। शोभनाः प्रजा यस्य सुप्रजाः अच्छीप्रजा-वाला असिजादिः पूर्ववत्। अविद्यमाना मेधा बुद्धिःप्रतिभा यस्य अमेधाः बुद्धिहीन। समासे असिजादिः पूर्ववत्। दुर्गता मेधा यस्य। शोभनामेधायस्य सुमेधाः। केचित् नित्यका फल अन्यत्र=असिचिके लिए। अल्पमेधसः सिद्धयति

। ६३। धर्मांत्। पूर्वपद आया। केवल पूर्वपदसे परे जो धर्म तदन्तात्= वह अन्तमें हो ऐसी बहुब्रीहसे अनिच् हो। च इति। इकार उच्चारणार्थ। मध्यमपद न होना, केवल पूर्वपद है। कल्याण धर्मो यस्य (परोपकार करना कर्म है जिसका) कल्याणधर्मा बहुब्रीहिसमास। धर्मांत् अनिच् अन् यस्येति अलोप। नान्त उपधादीर्घ, आदिः। सूत्रमें केवल क्यों पढ़ा ? इसलिए कि

व्रीहौ मा भूत। स्वशब्दो हीह न केवलं पूर्वपदं, किं तु मध्यमत्वादापेक्षिकम् 'सन्दिग्धसाध्यधर्मा। इत्यादौ तु कर्मधारयपूर्वपदो बहुव्रीहिः। एवं च परमस्व-धर्मा इत्यपि साध्येव। निवृत्तिधर्मा, अनुच्छित्तिधर्मा इत्यादिवत्। पूर्वपदं तु बहुव्रीहिणा आक्षिप्यते। ६४ **जम्भासुहरिततृणसोमेभ्यः ५।४।१२५।** जम्भा इति कृतसमासान्तं निपात्यते। जम्भो भक्ष्ये दन्ते च। शोभनो जम्भोऽस्य

मध्यम पदरहने पर अनिच् न हो धर्मके पूर्वमें पूर्वपद होना चाहिए इसका **परमः स्वोधर्मो यस्य** उत्त है अपपना कर्तव्य जिसका। त्रिपद बहुव्रीहि समास में अनिच् न हो अतः केवल पढ़ा। **स्वशब्द** निश्चय ही पूर्वपद नहीं है, किन्तु मध्यम पद है। केवल का अर्थ है मध्यम पद न होना। अतः त्रिपद तहुव्रीहिमें **परमस्वधर्मः** यही होता है, अनिच् नहीं। नन्वेवं **संदिग्धः साध्यो धर्मो यस्य** सन्देहमें है साध्य–वह्नि, धर्म–धूम जिसका वह अनुमान **संदिग्धसाध्यधर्मा** है। यहाँ अनिच् कैसे ? केवल पूर्वपद नहीं। साध्य मध्यम पदका व्यवधान है। तब मूलमें कहा–पहले **संदिग्धश्चासौ साध्यश्च** कर्मधारय है **संदिग्धसाध्यो धर्मो यस्य** कर्मधारयगर्भ बहुव्रीहि है। केवल पूर्वपद मिला, अनिच् हुआ। एवं परमश्चासौ स्वश्च **परमस्वः**। कर्मधास्य, ततः **परमस्वोः धर्मो यस्य** केवल पूर्वपदसे अनिच् परम्स्वधर्मो भी साधु ही है। एवं **निवृत्तिः धर्मो यस्य निवृत्तिधर्मा** सन्यासी। **अनुच्छित्तिः धर्मो यस्य** गृहस्थ, इत्यादिमें समासे, केवल पूर्वपदसे यथायोग्य अनिच्। सूत्रमें पूर्वपद नहीं है, अनुवृत्ति होगी नहीं पूर्वपदका लाभ कैसे ? तब बोले बहुव्रोहि समासे पूर्वपदका आक्षेपसे।

। ८६४। **जम्भा-सु** हरित तृण सोम से परे जम्भके साथ बहुव्रोहिसे अनिच निपासनसे हो, कृत-किया हुआ समासान्त मान्य। भक्ष्य=खाने की वस्तु **और** दाँत दो अर्थमें जम्भ है। शोभनः, रुचिकरः, दर्शनीयः जम्भः (भोजन या दाँत) अस्ति अस्य समासे, सुजम्भशब्दात् सूत्रेण। अनिचे अन्। यस्येति अलोपे। सुजम्भन् सु। नान्त दीर्घ लोपादिः। **सुजम्भा सुजम्भानौ सुजाम्भानः**। बढ़िया भोजन या चमकीला दाँत वाले। **हरितः जम्भो यस्य**। हरा भोजन या दाँत है जिसका, समास, अनिच, आदिः पूर्ववत्। **हरितजम्भा**। तृण भक्ष्यं यस्य घास भोजन हो या तृण की तरह दुर्बल दाँत हो **तृणजम्भा**। कार्य पूर्ववत्। तृण का तत्सदृशमें लक्षणा। **सोमजम्भा** सोमः चन्द्रः इव शुभ्रः जम्भाः दन्ता यस्य **चन्द्रवत् श्वेतदन्त** अथवा सोमः = सोमलता सा इव जम्भः भक्ष्यं यस्य **सोमरस** पानकर्ता समास, अनिच् आदि **स्वादिभ्यः**=सु हरित आदिसे

सुजम्भा । हरितजम्भा । तृणं भक्ष्यं यस्य तृणमिव दन्ता यस्येति वा तृणजम्भा। सोमजम्भा । स्वादिभ्यः किं पतितजम्भः । ८६५ **दक्षिणेर्मा लुब्धयोगे ५।४।१२६।** दक्षिणे ईर्म व्रणं यस्य दक्षिणेर्मा मृगः । व्याधेन कृतव्रण इत्यर्थः ६६ **इच्कर्मव्यतिहारे ५।४।१२७।** कर्मव्यतिहारे यो बहुंब्रीहिस्तस्मादिच्स्यात्स-समासान्तः । केशाकेशि । मुसलामुसलि ।६७**द्विदण्ड्यादिभ्यश्च ५।४।१२८।** तादर्थ्ये चतुर्थ्येषा । एषां सिद्धयर्थमिच्प्रत्ययः स्यात् । द्वौ दण्डौ यस्मिन्प्रहरणे तद् द्विदण्डि प्रहरणम् । द्विमुसलि । उभाहस्ति । उभयाहस्ति । ६८ **प्रसंभ्यां जानुनोर्ज्ञुः ६।४।१२९।** आभ्यां परयोर्जानुशब्दयोर्ज्ञुरादेशः स्याद्बहुव्रीहौ ।

परे जम्भासे अनिच् हो ऐसा क्यो ? **पतिताः जम्भाः दन्ताः भोजनादिर्वा यस्य पतितजम्भः** । दाँतझड़ा या वमनकर्ता

। ८६५ । **दक्षिणे ईर्मं व्रणं यस्य** दाहिनी ओर घाव हो (**लुब्धो=व्याधः**) उसके योग सम्बन्धमें अनिच् और बहुव्रीहि निपातनसे हो । व्यधिकरण होनेसे अनिच् अलोप । लुब्धका निर्णय व्याधसे किया गया **घाववाला मृग** । यदि रोग से व्रण घाव हो तब अनिच् नहीं । **दक्षिणेर्मः । वाली हेमाब्जमाली गुणनिधि-रिपुणा निर्मितो दक्षिणेर्मा, कथचिन्नेयः** ।

। ६६ । **इचकर्म व्यतिहारे** =क्रिया की अदलाबदलीमें जो बहुव्रीहि, उससे इच् हो, समासान्त तद्धित मान्य । यथा **केशैश्च केशैश्च परस्परं गृहीत्वा इद युद्धं प्रवृत्तं केशाकेशि** बहुव्रीहि समासे, उक्तसूत्रेण इच्, पूर्वपदस्य दीर्घे । **मुसलेन मुसलेन गृहित्वा परस्परं प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृतम्** इच्, दीर्घे

। ६७ । **द्विदण्ड्य** आदि गण पठित शब्दों की सिद्धिके लिए इच् निपा-तनसे करें । परन्तु वे इजन्त है उनसे इच् विधान व्यर्थ है तब बोले **तादर्थ्ये चतुर्थी** तस्मै अर्थः तदर्थ तस्य भावः । दो दण्डे परस्परमें प्रहारके लिए हो जिस युद्धमें वह **द्विदण्डि प्रहरणं** दण्डादि । युद्धका डण्डा कर्मव्यतिहार नहीं पूर्वपदको दीर्घ नहीं, **सूत्र**से इच् आदि प्रक्रिया **दण्डादण्डि** इतिवत् । समुदायको इच् निपातनसे अतः द्विदण्डा शाला इच् न । **द्वे मुसले यस्मिन्प्रहरणे** दो मुसल प्रहारके विषय हो वे **द्विमुसलि** । समासे इच् । **उभौ हस्तौ यस्मिन्प्रहरणे ऊभाहस्ति** इ पूर्व पदस्य दीर्घे । ,**उभयोऽन्यत्रा** से नित्य अयच् प्राप्त, निपा-तनसे विकल्प । क्रियाके आदान प्रदान बिना भी दीर्घ **उभयाहस्ति**

। ६८ **प्रसम्** से परे जानुशब्दों को ज्ञु आदेश हो, बहुव्रीहिमें । पूर्वपदवत् उत्तर पद को द्वित्व । **जानुनः** पञ्चमी होता, तब प्रत्ययः परश्चके अधिकारमें

प्रगते जानुनी यस्य प्रज्ञुः । सञ्ज्ञुः । ६९ **ऊर्ध्वाद्विभाषा ५।४।१३०।** उर्ध्वज्ञुः उर्ध्वजानुः ८७० **धनुषश्च ५।४।१३२।** धनुरन्तस्य बहुव्रीहेरनङादेशः स्यात् द्विधन्वा । शार्ङ्गधन्वा । ७१ **वा सञ्ज्ञायाम् ५।४।१३३।** शतधन्वा–शतधनुः । ७२ **जायाया निङ् ५।४।१३४।** जायान्तस्य बहुव्रीहेर्निङादेशः स्यात ७३ **लोपो व्योर्वलि ६।१।६६।** वकारयकारयोर्लोपः स्याद्वलि । पुंवद्भावः युवतिर्जाया अस्य युवजानिः । ७४ **गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः ५।४।१३५।**

पञ्चमीसे ज्ञुः प्रत्यय मानाजाता । आदेश होनेके लिए षष्ठी द्विवचन । **प्रगते जानुनी यस्य** सुदृढ़ घुटनेवाला । द्विववचनसे दो जानुशब्द दोनोंके स्थानमें ज्ञु आदेश । प्रज्ञुः तगड़ा घुठनावाला । **सङ्गते जानुनी यस्य**, सटे घुटनेवाला संज्ञुः जानुनी-ज्ञुः । ६६ । **उर्ध्व** से परे जानु शब्द स्थाने ज्ञु आदेश विकल्पसे बहुव्रीहिमें हो । उर्ध्वे जानुनी यस्य ऊँचे है जङ्घे जिसके **उर्ध्वज्ञुः**जानुनी स्थाने यदा न, तदा **उर्ध्वजानुः** । ८७० । **धनुषश्चय** इसमें (ऊधसो) अनङ् आया । धनुः शव्दअन्त ऐसी बहुव्रीहिसे अनङ् आदेश हो । ङित् से अन्तादेशमें धनुषी यस्य, वाला । दो चाप समासे द्विधनुष्के ष को अनङ् । ङ इत् अकार उच्चारणार्थ द्विध- । उ--यण् द्विन्धवा । श्रृंगस्य इदं शार्ङ्गं, तस्येदम् अण् । तद्धनुर्यस्य समासे धनुष । सींग अनङ् आदि पूर्ववत । यदि ऐसा तब **स्वलावण्याशंसा धृतधनुषमह्लाय तृणवत्** इसमें समासान्तविधि अनित्य है । आर्षः ।

। ७१ । **वा-संज्ञा** अर्थमें विकल्पसे अनङ् हो । शतं धनुर्यस्य **शतधन्वा** (राजा का नाम स्मयन्तक कथामें) **संज्ञायां वा अनङ्** । शतधन्वन् स्वदिकार्ये पक्षे **शतधन्वा** । ७२ । **जाया** अन्तबहुव्रीहिसे निङ् हो अन्त्य अल्के स्थनमें

। ७३ । **लोपो** =व् य् अनयोः द्वन्द्वः, द्विवचने ओस् **व्योः**= व य का लोप हो बलि परे । **युवतिः** नवयौवना जाया--पत्नी वाला, वह पुरुष **युवजानिः** । बहुव्रीहिसमासे जायाके आको निङ् इत् । लोपो व्योः यलोपे, स्त्रियाः पुंवत्, ति हटा, नलोप । ७४ । **गन्धस्य–इत्** = उत् पूति, सु, सुरभि इनसे परे गन्ध को इ अन्त आदेश हो, पूर्वोत्तरदृष्टि से इकार अदेश । समासान्तके अधि कारमें आदेः परस्य नहीं लगता । उग्दतो **गन्धो यस्य** उठरहा **गन्धवाला** । गन्धस्येत्सूत्रेण इ अन्तदेशे **उग्दन्धि** मृगः । महक न होना पूति है।पूतिर्गन्धस्य इव गन्धो यस्य **पूतिगन्धिः** किंशुकाः निर्गन्धाः । शोभनः गन्धो यस्य **सुगन्धिः वायुः सुरभिर्गन्धो यस्य** तीव्रमँहकवाला, वायुः विशेष्य है । सर्वत्रान्ते इत्व । **गन्धस्य**= गन्धोको इव दशामें तस्य= प्रधानद्रव्यस्य **एकान्तः** एकशेष इव प्रतीयमान

एभ्यो गन्धस्येकारोऽन्तादेशः स्यात् । उद्गन्धिः । पूतिगन्धिः । सुगन्धिः । सुरभिगन्धि । 'गन्धस्येत्त्वे तदेकान्तग्रहणम्' एकान्त एकदेश इवाविभागेन लक्ष्यमाण इत्यर्थः । सुगन्धि पुष्पं सलिलं च । सुगन्धिर्वायुः । नेह सु शोभनाः गन्धाः द्रव्याण्यस्य सुगन्ध आपणः । ८७५ अल्पाख्यायाम् ।५।४।१३६। सूपस्य गंधो लेशो यस्मिंस्तत्सूपगंधि भोजनम् । घृतगंधि 'गंधो गंधक आमोदे लेशे सम्बन्धगर्वयोः । इति विश्वः । ७६ उपमानाच्च ५।४।१३७। पद्मस्येव गंधोऽस्य पद्मगंधि । ७७ पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः ५।४।१३८। हस्त्यादिवर्जितादुपमानात्परस्य पादशब्दस्य लोपः स्यत् समासान्तो बहुव्रीहौ । स्थानिद्वारेणायं समासान्तः । व्याघ्रस्येव पादावस्य व्याघ्रपात् । अहस्त्यादिभ्यः

गन्ध गुण है । द्रव्यके एक भागमें युक्त नहीं, अतः एकान्तको एकदेशमें लाक्षणिक माना । एकदेशकी तरह अविभागेन--अलग लक्षित न हो सुगन्धिः वायु है । पुष्प और जल भी है गन्ध द्रव्यसे अलग प्रतीत हो अभिन्न जान पड़े । अतः नेह=यहाँ नहीं हुआ सु शोभनः मुग्धकारी गन्धवाला, मतुपका लुक् । यहाँ गन्धका द्रव्य अर्थ (चन्दन आदि) । वहति जलमियं पिनष्टि गन्धानिति प्रयोगसे गन्ध नपुंसक, द्रव्यका विशेषण' नियत पुलिङ्ग ठीक है गन्धस्तु सोरभे नृत्ये गन्धके गर्वलेशयोः । स एवं द्रव्यवचनो बहुत्वे पुंसि च स्मृत इति कोशात् सुगन्ध आपणिकः । यहाँ सुगन्धितचन्दन दुकानसे अलग जान पड़ते हैं अतः इत्व नहीं । ८७५ । अल्पाख्या=थोड़ी अख्या कथन हो, गन्धशब्दको इ अन्तादेश हो बहुव्रीहिमें । यहाँ गन्धका अर्थ लेश है । सूप दाल का गन्ध लेश थोडी महक हो, वह सूपगन्धिः भोजनं, समासे, अन्ते इ-आदेश । पूर्वसूत्र या वार्तिक का विषय न होनेसे यह सूत्र । इस उदाहरणमें अनेकपद प्रथमान्त नहीं, इससे सिद्ध है कि व्यधिकरण=विषम विभक्ति भी बहुव्रीहि होती है । घृतस्य गन्धो लेशो यस्मिन् घृतगन्धि भोजनं, घी की थोड़ी मँहक । गन्धशब्दके अल्प अर्थमें प्रमाण गन्धो=मूलमें । ७६ । उपमान शब्दके अन्तमें इकार हो बहुव्रीहिमें । फलितार्थ कथन है । पद्मस्य इव=कमलके गन्ध की तरह गन्ध हो जिसका पद्मगंधिः मिष्ठः । उपमानकर्मसे गन्धके साथ समास होने पर अन्तमें इकार पद्मसम्बन्धित गन्धसदृशे लक्षणा । सप्तम्युपमानपूर्वपदस्य समासः ।

। ७७ । पादस्य उपमानसे परे पादके अन्तका लोप हो, हस्ति आदिको वर्जितकर, बहुव्रीहिमें, वह लोप समासान्त मान्य । शैषिक कप् निवृत्तिवास्ते अन्यथा अनुक्त समासान्तसे कप् होता । लोप=अश्रवण, अदर्शन है समासका

किम्। हस्तिपादः। कुसूलपादः। ७८ **कुम्भपदीषु च** ५।४।१३९ कुम्भपद्यादिषु पादस्य लोपो ङीप् च निपात्यते स्त्रियाम्। 'पादःपत् कुम्भपदी। स्त्रियां किम्। कुम्भपादः। ७९ **संख्यासुपूर्वस्य** ५।४।१४०। पादस्य लोपः स्यात्समासान्तो बहुव्रीहौ। द्विपात्। सुपात् ८८० **वयसि दन्तस्य दतृ** ५।४।१४१। सङ्ख्यासुपूर्वस्य दन्तस्य दतृ इत्यादेशः स्याद्वयसि। द्विदन्। चतुर्दन्।

अन्त अवयव कैसे ? तब बोले **स्थानी** = अन्त्यअल्के द्वारा समासका अवयव मान्य, वचन बलसे। औपचारिक अवयव, फलितार्थ कथन। व्याघ्र पौदा इव पदौ यस्य, बाधके चलते समय चुट-२ करते पाँव की तरह पैर है जिसका उपमान पूर्वपद मानकर समास पादस्य अन्त्य अकारस्य लोपे **व्याघ्रपात्**। हस्ति आदि पदिक क्यो ? हस्तिपादः हाथी को तरह पीलपाँव वाला। **कुसुलपादः** सुराही इव। अन्त का लोप न हो

८७८। **कुम्भपदीषु**=बहुवचन उच्चारण से, गणपाठसे इत्यादि अर्थ। कुम्भपदो आदि गण पठितके पादके अन्त्य अल् वर्णका लोप हो, ङीप भी, निपातन से स्त्री–। एकपदी जानपदी जैसा समुदाय गणमें मान्य। उसीके लिए स्त्रियां कहा। **पादोन्यतरस्यां**के विकल्पको बाँधकर नित्य ङीष् हो। **कुम्भस्य इव पादौ** यस्य घड़ाकी तरह **पाँववाला**। समाससे, कुम्भपदीषु **च** सूत्रेण अन्त्यलोपे नित्यं ङीप जो। **पादस्य लोपः** का अनुबाद। **स्त्रियां क्यों** पढ़ा ? **कुम्भपादः** में उक्त कार्य न हो। ८७९। **सङ्ख्या** और सु पूर्वमें **हो** पादके अन्त्य अल् का लोप हो, वह लोप समास का अन्त अवयव, बहुव्रीहिमें मान्य। उपमान से परे नहीं, लोप अप्राप्त था। **द्वौ पादौ** अस्य **द्विपाद्** मनुष्यः। शोभनौ पादौ अस्य **सुपात्** बालकः। अन्यार्थसमासे पादके अन्य 'अ' का लोप।

८८०। **वयसि**=अवस्था बोध होने पर संख्या और सु पूर्वमें हो दन्तस्थाने दतृ आदेश हो। द्वौ दन्तौ यस्य द्विदन्तः दो दाँत का शिशु अवस्था बालकः। दन्तको दतृ ऋ इत्। उगित्से नुम् सु–लोप' संयोगान्तलोप उसकी असिद्धिसे उपधादीर्घ नहीं। **द्विदन्**। चत्वारो दन्ता यस्य **चतुर्दन्**। चार दातका वत्स बच्चा बछड़ा। अवस्थाज्ञानके लिए दन्तस्थाने दतृ आदि कार्य पूर्ववत्। छः दातकी अवस्थाका बालक **षोडन्**। षड् दन्ताः यस्य दतृ आदेशादिः षृप् दत् षष उत्वंसे दूसरे ष को उत्व, द को टवर्ग ड, स्वादि कार्ये। समस्त दाँतोंके परे होनेकी अवस्था का सूचक **सुदन्**। शोभनाः दन्ताः समस्ताः जाता यस्य। अवस्था विशेष ज्ञानके लिये समस्त कहा। सुदन्। स्त्रीकी इच्छामें उगितश्च

षट् दन्ता अस्य षोडन् । सुदन् दसुतौ । वयसि किं । द्विदन्तः करी द्विदन्तो नटः । ८१ **स्त्रियां सञ्ज्ञायां** ।५।४।१४३। दन्तस्य दतृ स्यात्समासान्तो बहुव्रीहौ । अयोदती । फालदती । सञ्ज्ञायाम् किं ? समदन्ती । ८२ **विभाषा श्यावारोकाभ्याम्** ५।२।१४४। दन्तस्य दतृ स्याद्बहुव्रीहौ । श्यावदन्–श्यावदन्तः, अरोकदन् अरोकदन्तः । ८३ **अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यश्च** ५।४।१४५। एभ्यो दन्तस्य दतृ वा । कुड्मलाग्रदन् --कुड्मलाग्रदन्तः ८४ **ककुदस्यावस्थायां लोपः** ५।४।१४६। अज्ञातककुत् ।। पूर्णककुत् ।

ङीप **सुदती**--बाला, सुन्दर दाँतवाली । सूत्रमें **वयसि** अवस्था अर्थ क्यों ! **द्विदन्तःकरी**, हाथीके दो दाँत सदा है, उससे बालयुवा वृद्धका निर्णय नहीं होता । **सुदन्तः** शोभना दीप्यमानाः दन्ताः चमकते दाँतवाला । अवस्था सूचित नहीं, दतृ भी नहीं । ८१ । **स्त्रियां संज्ञा**=किसीका नाम **हो** तब दन्तस्थाने दतृ हो वह समासका अन्त अवयव मान्य, बहुव्रीहिमें । किसीका नाम है **अयोदती** अयः लौह इव दन्ताः यस्याः लोह दाँतवाली शबरी । और संज्ञा दन्तको दतृ, समास हो, ङीपभा । किसीका नाम **फालदती** फारकी तरह दाँतवाली सूर्पनखा । दतृ ङीपआदि । **संज्ञामें क्यों कहा** समाः दन्ताः यस्याः । एक समान दाँतवाली कोई भी हो नासिकोदर से ङीप । ८८२ । **विभाषा** श्यावा=मलिन दाँत, अरोका (अछिद्र) से परे दन्तको दतृ हो, अन्यार्थसमासमें । **श्यावा धूमाः दन्ताः यस्य** । धूमिल दाँतवाला **श्यावः स्यात्कपिशोधूम्रः** इत्यमरः । समासे दतृ आदेश विकल्पे पक्षे न, **श्यावदन्तः** । अरोकाः=स्वच्छाः अछिद्राः दन्ताः यस्य स्वच्छ दृढ़ दाँत । पक्षमें दतृ पूर्ववत्कार्य ।

८८३ । **अग्रान्त**=अग्र शब्द अन्तमें हो, शुद्ध शुभ्र वृष वराह इनसे **परे** दन्तस्थाने दतृ हो । च से अनुक्तसंग्रह तभी **मुषिकदन्** बना । कुड्मलानां मुकुलानां अग्राणि (खिले कमलके अग्रभागकी तरह) तानि इव दन्ताः यस्य खिल रहे हैं कमलके अग्रभागकी तरह दाँत जिसके । अग्र अन्तमें अतः दतृ आदि पक्षे न । शुद्धा=स्वच्छाः दन्ताः यस्य शुद्ध दन्, शुद्धदन्तः । शुभ्राः श्वेताः **शुभ्रदन्–दन्तः** । वृषा वर्धनशीलाः दन्ताः यस्य **वृषदन–दन्तः** । वराहः शूकर इव दन्ताः यस्य **वराहदन्=दाँतः** । ८८४ । **ककुद**के अन्त्य अल अ का लोप हो । अवस्थाका बोध होनेपर, समासमें । ककुदके अनेक अर्थ है जैसे शिखर स्वस्थ शरीर, उमड़ती युवा, इत्यादि आहारकालिक, व्यायामक्रिया अङ्ग, चढ़ता रङ्ग, हृष्ट पुष्ट अवस्था मांसलशरीर, अङ्गोका उपचय अपचय वृद्धिह्रासका

८८५ **त्रिककुत्सर्वते ५।४।१४७।** त्रीणि ककुदान्यस्य त्रिककुत् । सञ्ज्ञैषा पर्वतविशेषस्य । त्रिककुदोऽन्यः । ८६ **उद्वभ्यां काकुदस्य ५।४।१४८।** लोपः स्यात् । उत्काकुत् विकाकुत् । काकुदं तालु । ८७ **पूर्णाद्विभाषा ५।४। १४६।** पूर्णकाकुत्-पूर्णकाकुदः । ८८ **सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः ५।४। १५०।** सुदुर्भ्याहृदयस्य हृद्भावो निपात्यते । सुहृन्मित्रम् । दुर्हृदमित्रः । अन्यत्र सुहृदयः । दुर्हृदयः । ८९ **उरः प्रभृतिभ्यः कप् ५।४।१५१।** व्यूढोरस्कः प्रियसर्पिष्कः । इह पुमान्, अनड्वान, पयः, नौः, लक्ष्मीः इत्येकवचनान्तानि

नाम अवस्था है । **बलीबर्द दोर्मूल गती वाल्ये उद्भूतावयवः ककुदम्** डील, भरीदेह, न जातं ककुदमस्य अभी विकास नही पा रहा बालक अवस्था सूचित है । ककुदके अन्त अ का लोप आदिः । **पूर्णककुत्** युवा अवस्था पूर्ण है, पूर्ण ककुदम् अस्य, समासे अन्त्य अलोपे ।

८८५ । **त्रि** से **ककुद** के अन्त अ का लोप हो, पर्वत विशेष त्रिकुटाचल पहाड़ अर्थ हो तब । **त्रिणि ककुदानि शृङ्गाणि** यस्य समासे । पर्वत अर्थे अन्त्य अकारस्य लोपे **त्रिककुद** । यह पर्वतका **नाम** है । यदि नाम न होता तो अलोप नहीं होता । **त्रिककुदः** तीन शिखरका कोई भी पहाड़ ।

। ८६ । **उदधि** से परे काकुद का अन्त्य अ लुप्त हो बहुव्रीहिमें । काकुद का तालु अर्थ है उन्नतं काकुदं यस्य, ऊँचा तालु वाला । **उत्काकुत्** समास अकार लोप । विगतं काकुदं यस्य तालु इव हो । अन्त्य अलोप, **विकाकुत**

। ८७ । **पूर्णात्** से परे काकुदके अन्त्य अ का लोप विकल्पसे हो । **पूर्णं काकुदं यस्य** पूर्णतालु वाला । समास अन्त्य अलोप, यदा लोपो न, तदा **पूर्णकाकुदः** । ८८ । सुहृत्= मित्र, दुर्हृत्=शत्रु अर्थमें रहे तब सुदुरसे परे हृदय को **हृत्** आदेश निपातनसे हो । सु शोभनं हृदयं यस्य समासे, हृदय हृत् आदेशे **सुहृत्** निर्छल दुःख मैं सहायक । **दुःखदं हृदयं यस्य** छली कपटी, दुःखमें धोखा देनेवाला **दुहृत् शत्रुः** । **अन्यत्र** = जहाँ मित्र या अमित्र अर्थ म हो, वहाँहृत् नहीं । शोभन हृदय वाला दुष्ट भूदयी

। ८९ । **उरः प्रभृति** आदि अन्त हो बहुव्रीहिसे कप् । समासार्थ उत्तर-पदार्थ प्रधानका अवयव मान्य । कप्के क की इत्संज्ञा नहीं, लशकु अतद्धिते पढ़नेसे ब्यूढ़ विशालं उरः वक्षस्लं यस्य चौड़ी छातीवाला **व्यूढ़ोरस्कः** महाबाहु समासे **व्यूढ़ोरः** सूत्रेण कप् । 'सोऽपदादौ' विसर्ग को स । **प्रियं सर्पिर्यस्य** घी का प्रेमी । समासे कप् इण ष् विसर्ग को ष, **प्रियसर्पिष्कः** । ननुद्वौ पुंमासौ

पठ्यन्ते । द्विवचनबहुवचनान्तेभ्यस्तु 'शेषाद्विभाषा, इति विकल्पेन कप् । द्विपुमान् द्विपुंस्कः । 'अर्थान्नञः' । अनर्थकम् । नञः किं अपार्थम् अपार्थकम् । ८९० इन स्त्रियाम् ५।४।१२।। बहुदण्डिका नगरी । 'अनिनस्मन्ग्रहणान्य-र्थवता चानर्थकेन च तदन्तविधिं प्रयोजयन्ति' बहुवाग्मिका । स्त्रियां किं बहुदण्डी बहुदण्डिको ग्रामः । ८९१ शेषाद्विभाषा ५।४।१५४।। अनुक्तसमासान्ताच्छे-षाधिकारस्थाद्बहुव्रीहेः कब्वा स्यात् । महायशस्कः-महायशाः । अनुक्त इत्यादि

द्विपुमान् यह नहीं बनेगा उरः प्रभृतिमें पुमान् पढ़नेसे, कप् होगा । तब बोले गण सूत्रमें अविभक्तिकों का ही पाठ है । इह तु=केषाञ्चित् एकवचनान्तानामेव पाठः अनड्वान् पयः नौः एकवचनान्त मान्य । लक्ष्मी पाठ एकवचनान्तका बहुव्रीहिमें ही नित्य कप् हो । अन्यत्र=शेषाद्विभाषा विकल्प नियमार्थ । अन्यथा नद्यृतश्चसे कप् सिद्ध था, नियमका फल अकृशमकृशलक्ष्मीश्चेतसा शंसितं नः । भारवि प्रयोगसफल । द्विवचन बहुवचन अन्तके लिए शेषाद्विभाषा विकल्प कप् द्विपुंस्कः सम्पुंकानांसे विसर्गको स । गणसूत्र नञ्से परे अर्थशब्द हो तदन्तबहु-व्रीहिसे कप् । अविद्यामानो अर्थो यस्य समासे कप् । अनर्थकं विद्यमानका लोप । अपगतो अर्थो अस्मात् नष्ट है अर्थ जिससे । विकल्प कप् । नञ्पूर्वक है, नित्य कप् नहीं । अपार्थकं निरर्थक ।

। ८९० । इनः=इन् अन्तमें हो बहुव्रीहिसे कप् । स्त्रीलिङ्गमें, दण्डी अस्याः अस्ति दण्डी अत इनठनौ, इन् अन्त है । बहवः दन्डिनो यस्यां नगर्यां बहुतसे दण्डधारी हो जिसमें बहुदण्डिका । समासके बाद इनः कप् नलोप, टाप । बहुवाग्मिनका नगरी । वाक् अस्ति अस्याः वाग्मी, वक्ता, वाचोग्मिनिः । समासे बहुवाग्मिन् । इनः स्त्रियां कप्, नकारलोप, ग इत् न । अतद्धितपाठसे । च को कुत्व क, जश् ग । वहव वाग्मिनः अस्यां बहुतसे नेता वक्ता । यहाँ क इन् अनर्थक है कप् कैसे ? तब परिभाषा बोले—अन्, इन्, अस्, मन् इनका ग्रहण अर्थवान्, अनर्थकके साथ तदन्तविधि का प्रेरक है । परिभाषा बलसे कप् होगा । तब सुपथीनगरीमें कप् क्यों नहीं, समासान्तविधिकी अनित्यता से । भाष्यमें सुपथी पढ़नेसे । स्त्रियाः क्यों ? जहाँ पुं- हो, वहाँ नित्य कप् न हो । वहवः दण्डिनः यस्मिन्ग्रामे बहुदण्डी । विकल्प कप् । स्त्री नहीं नित्य कप् न । ९१ । शेषात् इस सूत्रसे जो समासान्त कहे गये, उनसे बचा हुआ शेष, अनुक्त समासान्तसे और शेषाद्विभाषाके अधिकारमें स्थित बहुव्रीहिसे कप् विकल्प हो । महत् यशो यस्य विग्रहे समासे । आन्महतः तकारस्य 'आ'

किं व्याघ्रपात् सुगन्धिः। प्रियपथः। शेषाधिकारस्थात् किम्। उपबहवः। उत्तरपूर्वा। सुपुत्रः तन्त्रादिनां शेषशब्दोऽर्थद्वयपरः। ८९२ आपोऽन्यतरस्याम् ७।४।१५॥ कप्याबन्तस्य ह्रस्वो वा स्यात्। बहुमालाकः, बहुमालकः। कबभावे बहुमालः। ८९३ न सञ्ज्ञायाम् ५।४।१५५॥ 'शेषात्' इति प्राप्तः कप् न स्यात्सञ्ज्ञाम्। विश्वे देवा अस्य विश्वदेवः। ८९४ ईयसश्च ५।४। १५६॥ ईयसन्तोत्तरपदान्न कप्। बहवः श्रेयांसोऽस्य बहुश्रेयान्। 'गोस्त्रियोः

शेषाद्विभाषा कप् 'सोऽपदादौ' विसर्ग को स महायस्कः। यदा न कप् तदा अत्वसन्तस्य दीर्घे। अनुक्तसमासान्त क्यों पढ़ा? व्याघ्र इव पादौ यस्य व्याघ्रपात् पादस्य लोपो-सूत्रसे स्थानिद्वारा लोप भी समासान्त है कप् न हो। शोभनः गन्धो यस्य सुगन्धिः वायुः। गन्धस्येत् सूत्रसे इकार समासान्त है कप् न हो। प्रियपथःमें अप् हुआ है। सूत्रमें शेषाधिकारस्थ क्यों कहा, बहूनां समीपे ये सन्ति ते उपबहवः। अत्र सङ्ख्याव्ययासन्नासे बहुव्रीहि शेषाधिकारस्थ नहीं कप् न हो। उत्तरस्याः पूर्वस्याश्च अन्तरालं दिक् उत्तरपूर्वा ईशानकोण यहाँ का समास 'दिङ्नामान्यन्तरालेसे' है जो शेषाधिकारमें नहीं कप् न हो। पुत्रेण सह आगतः सुपुत्रः में 'तेन सहेति' का समास शेषाधिकारस्थ नहीं। सकृदुच्चारितः शेषः, अर्थद्वयं कथं लभते अनुक्तसमास और शेषाधिकार दो अर्थ का लाभ कैसे? अर्थभेदे शब्दभेदः, सत्यपि अर्थभेदे शब्दस्य अभेदः तन्त्रादिना सकृदुच्चरिते सति बह्वर्थबोधकः। एकबार पढ़ा दो अर्थ समझा, एकम् अनेकोपयोगि तन्त्रम्। आदिसे आवृत्ति=दो बार उच्चरण। तन्त्रसे बोले, आवृत्तिसे समझें। यथा श्वेतो धावति। एक उच्चारण दो अर्थ। श्वा इतो धावति कुत्ता यहाँसे दौड़ता है, या श्वेतगुणवाला धावति। अनेक अर्थ दृष्ट है

। ९२। आपो कप् परे टाप वाले आ को ह्रस्व विकल्प हो। प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणं (शृद्प्रां) ह्रस्वो वा आया न कपिके नित्य निषेधका बाधक। बह्वयः माला यस्य बहुतसे मालावाला। समासे, कपि, सूत्रेण ह्रस्व विकल्पे, बहुमालकः यदा न कप् बहुमालः ढ़ेर माला वाला। स्त्रियाः पुंवत् भी।

। ९३। न। संज्ञा-में। शेषाद्विभाषासे प्राप्त कप् न हो। नाम अर्थमें व्यवधानके कप् का निषेध नहीं जैसे नद्युतश्चसे कप्। विश्वदेवः कप् का निषेध संज्ञामें नित्य समास है, लौकिक विग्रह चिन्त्य।

। ९४। ईयसश्च=ईयसुन्प्रत्यय अन्तमें हो ऐसे उत्तरपदसे कप् न हो नित्य, विकल्प सभी कप् का निषेधक। बहुश्रेयान् बहुत कल्याणवाला। शैषिक कप्

इति ह्रस्वत्वे प्राप्ते। 'ईयसो बहुव्रीहेर्नेति वाच्यम् बह्वः श्रेयस्योऽस्य बहुश्रेयसी बहुव्रीहेः किं, अतिश्रेयसिः। **८९५ वन्दिते भ्रातुः ५।४।१५७॥** पूजितेऽर्थे यो भ्रातृशब्दस्तदन्तान्न कप्स्यात्। प्रशस्तो भ्राता यस्य प्रशस्तभ्राता, सुभ्राता 'न पूजनात्' इति निषेधस्तु 'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः इत्यतः प्रागेवेति वक्ष्यते। वन्दिते किं मूर्खभ्रातृकः। **८९६ नाडीतन्त्र्योः स्वाङ्गे ५।४।१५९॥** स्वाङ्गे यौ नाडीतन्त्रीशब्दौ तदन्तात्कब्न स्यात्। बहुनाडिः कायः। बहुतन्त्री-ग्रीवा। बहुतन्त्रीर्धमनी। स्त्रीप्रत्ययान्तत्वाभावाद्ध्रस्वो न। स्वाङ्गे किं,

---

का (**ईयसन्त** देखकर) निषेध। बहुतसी कल्याणीवाला बहुश्रेयसी पुरुषः। अन्य पदार्थप्रधानमें उपसर्जन **स्त्री**प्रत्ययान्त श्रेयसी को गोस्त्रयोरुपतर्जनस्यसे ह्रस्व प्राप्त, तब **ईयसः**=ईयस्प्रत्ययान्त बहुव्रीहिसे परे स्त्रीप्रत्यय को ह्रस्व न हो, इति निषेधे। नद्यृतश्च नित्यकप् का भी, लिङ्गविशिष्टपरिभाषासे निषेध। सूत्रमें बहुव्रीहि **क्यों** पढ़ा ? तत्पुरुषमें निषेध न हो। यथा श्रेयसीम-तिक्रान्तः अतिश्रेयसिः ह्रस्व हुआ, भगवतीसे भी भाग्यवान्।

। ८५९। **वन्दिते** (वदि अभिवादनस्तुत्योः) प्रणाम स्तुतिके **योग्य** पूजित अर्थमें भ्रातृ अन्तसे कप् न हो। **प्रशस्तो भ्राता यस्य** अभिनन्दनीय भाई-समासे, ऋदन्त कप् का निषेध। शोभनः भ्राता यस्य **सुभ्राता** रामः। ऋदन्त कप् का निषेध। स्तुतियोग्य **भाई**वाला। यह निषेध '**न** पूजनात्'से भी सिद्ध तब बोले – न पूजनात् का निषेध बहुव्रीहौ सूत्रसे पहले ही होता है। इति वक्ष्यते ऐसा कहेगें। **नद्यृतश्चसे कप्** का निषेध, न पूजनात् न करपाता, तव यह सूत्र। **वन्दिते**—पूजित भाई **अर्थ क्यों** ? मूर्खः भ्राता यस्य **मूर्खभ्रातृकः** लण्ठ भाईवाला। कपः निषेधो न। । ९६। **नाडी** शरीर की नाडियाँ, **तन्त्री नश** तार ये **शब्द** स्वाङ्ग=मनुष्यके प्राणिस्थमात्रके **अङ्ग शरीर** सम्बन्धी हो **तब** तद-न्तसे कप् नहो। वह्वचः नाड्यः यस्य बहुत नाडीवाला काय-शरीर **बहुनाडिः** **नद्यन्त** मानकर प्राप्त कप् का निषेध। उपसर्जन ह्रस्व। बह्वचः तन्त्र्यः यस्याः नद्यन्त कप् का निषेध। **बहुतन्त्रीग्रीवा** अनेक नाडी प्राणिस्थ है, स्वा-ङ्गभी, कप् का **निषेध**। वीणा तन्तुमें तन्त्री प्रसिद्ध, किन्तु यहाँ धमनी (वाह्यप्रयत्नविवार श्वास घोष आदि) तन्त्री गलेमें है। बहुतन्त्रीमें गोस्त्रियोः से ह्रस्व क्यों नहीं, स्त्रीप्रत्यान्तके अभावसे। लक्ष्मीकी तरह ईकारान्त है। आवितृस्तृतन्त्रीभ्य ईः। औणदिक सूत्र, स्त्रियांके अधिकारमें नहीं। स्वाङ्ग चेतनका अवयव क्यों कहा ? बहुत नाडीवाला खम्भा। कप् का निषेध नहो,

बहुनाडीकः स्तम्भः बहुतन्त्रीका वीणा । ८९७ निष्प्रवाणिश्च ५।४।१६०।। कबभावोऽत्र निपात्यते । प्रपूर्वाद्वयतेर्ल्युट् । प्रवाणी तन्तुवायशलाका । निर्गता प्रवाण्यस्य निष्प्रवाणिः पटः । समाप्तवानः । नव इत्यर्थः । ८९८ सप्तमी-विशेषणे बहुव्रीहौ २।२।३५।। सप्तम्यन्तं विशेषणं च बहुव्रीहौ पूर्वं प्रयोज्यम् । कण्ठेकालः । अतएव ज्ञापकाद्व्यधिकरणपदो बहुव्रीहिः । चित्रगुः* 'सर्वनाम-'सङ्ख्ययोरुपसंख्यानम्' सर्वश्वेतः । त्रिशुक्लः ।* 'मिथोऽनयोः

खम्भा प्राणि नहीं है । । ९७ । निष्प्रवाणी को भी कप् का अभाव निपातनसे कहें । प्रपूर्वक वेञ् (तन्तु सन्ताने) का सूत नाथने, कपड़ा बुननेके अनुकूल क्रिया । प्र पूर्व वेञ्से आधारमें ल्युट् । प्रोयते अस्यामिति प्रवाणी पूर्वपदात्संज्ञायां णः तन्तुवायशलाका-जुलाहेका साधन निर्गता- निकल गयी है । प्रवाणी तूणी बीमा जिससे वह वस्त्र-निष्प्रवाणी, कप् का अभाव । समाप्तवानः समाप्तं वानं बुनने की क्रिया जिसकी वह) पटः, शैषिक कप् का अभाव ।

। ९८ । सप्तमी=विशेषण का बहुव्रीहिमें पहले प्रयोग हो । प्रत्यय ग्रहणे -तदन्तविधिः । कण्ठे तिष्ठति कण्ठेस्थः । स काली यस्य, कण्ठेपूर्वक स्थासे 'क' सप्तमी उपमानपूर्वपदका समास, स्थ का लोप । अमूर्धमस्तकात्-सप्तमी अलुक् । कण्ठेकालः शङ्करः । कण्ठेस्थः प्रथमान्त, कालः भी, समान आधार अनेकमन्य-पदार्थे समास होगा सप्तमीग्रहण व्यर्थः । व्यधिकरण=भिन्नविभक्तिके साथ समासका नियामक व्यापक आधार विशेषण कहना पूर्ण था, सप्तमी क्यो पढ़ा । जब स्थ को हटाकर कण्ठे हीं रहेगा, अप्रथमान्तहै, समास अप्राप्त, तब पूर्वनिपात और अप्रथमान्त का भी अन्यार्थ समास होता है । सप्तमीका अभाव सच्छास्त्रजन्मा इति । इसी ज्ञापनसे व्यधिकरण समास सुनिश्चित है । चित्रा गावो यस्य चित्रगुः दोनो प्रथमान्त, निश्चित विभक्ति । दोनों को पूर्वनिपात प्रप्त, उत्तरपदको ही पूर्व हो विशेष पढ़ा । सर्वनाम या संख्या का ही पूर्व निपात हो बहुव्रीहिमें । सर्वः श्वेतो यस्य स सर्वश्वेतो धावति । दोनों गुणवचन हैं । विशेषण कौन विशेष्य कौन किसका पूर्व निक्षेप, तब वार्तिकसे सर्वनाम का पूर्व निवास । उपसर्जन भूतपूर्वगतिसे । सर्वनाम, द्वौ शुक्लौ यस्य दो अङ्ग सफेद, हों । त्रयः शुक्लाः यस्य तीन अङ्ग सफेद । किसको पूर्व प्रयोग प्राप्त था संख्या ही पूर्वपद हो, द्वि दोनोंमें । ननु द्वौ अन्यौ यस्य स द्व्यन्यः दो अन्य पुरुषवाला । सर्वनाम औंर संख्यामें इसके पूर्वप्रयोगका पक्षपात होगा द्वि अन्य दोनो सर्वनाम है मिथोः अनयोः= दोनोंके बीच संख्याका पू निपात

समासे सङ्ख्या पूर्वं शब्दपरविप्रतिषेधात्' । द्व्यन्यः ।* 'संख्याया अल्पीयस्याः' द्वित्राः । द्वन्द्वेऽपि । द्वादश । 'वा प्रियस्य' गुडप्रियः, प्रियगुडः ।* 'गड्वादेः परा सप्तमी, गडुकण्ठः । क्वचिन्न । वहेगडुः । ८९९ निष्ठा २।२।३६॥ निष्ठान्तं बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात् । कृतकृत्यः* जातिकालसुखादिभ्यः परा निष्ठा वाच्या' सारङ्गजग्धी । मासजाता । सुखजाता । प्रायिकं चेदम् । कृतकटः पीतोदकः । ९०० वाऽऽहिताग्न्यादिषु २।२।३७॥ आहिताग्निः । अग्न्या-

---

पूर्व निवास हो । शब्दपर विप्रतिषेधके पाठसे वार्तिकमें संख्या परमें पढ़ा उसी का (**तुल्यबलविरोधे परं कार्यं**) पूर्व प्रयोग द्व्यन्यः । संख्यायां=संख्यावाचकोंके ससासमें **अल्पीयस्याः** कम का पूर्व प्रयोग । यथा **द्वौ वा त्रयो वा** समासे द्वि (कम संख्या का पूर्वप्रयोग द्वन्द्वके समासमें भी कमसंख्या पूर्वमें हो । इसका बहुव्रीहिमें प्रयोग कैसे ? **अपि** से द्वन्द्व अद्वन्द्व दोनों मान्य । **द्वौ च दश च** द्वादश तत्पुरुषमें **शतानां विंशति विंशतिशतं**, सहस्त्राणां शतं, शतसहस्त्रं, भाष्यकैयट प्रयोग भीं अल्पसंख्याके पूर्व प्रयोगमें प्रमाण ।**(वा)प्रियस्य** बहुव्रीहिमें प्रिय का पूर्व प्रयोग **गडुः प्रियो यस्य** या **गडूना प्रियः** दोनों का पक्षमें पूर्व० **गड्वादयः** माँसकी गाँठ **दुर्मांसग्रन्थिः का** नाम, **गडु कण्ठे यस्य** गलगण्ड । किस की संज्ञा नहीं, सप्तमी का अलुक् नहो, किन्तु लुक्से । सप्तमी का पर प्रयोग कहीं नहीं । **बहेः गडुः** कन्धे पर दुर्मासग्रन्थिः सप्तमीका पर प्रयोग नहीं । पद्मन्नाभौ यस्य पद्मनाभः, पूर्णौ नाभौ यस्य पूर्णनाभः ।

१९९ । **निष्ठा प्रत्यय** अन्तमें हो उसका पूर्वनिवास । अन्यपदार्थमें हो । क्त क्तवतुकी निष्ठासंज्ञा । कृतं कृत्यं येन, कार्यपूर्ण किया जिसने **कृतकृत्यः** । दोनों क्रिया रुप, इच्छानुसार पूर्वप्रयोग प्राप्त, निष्ठान्त का ही पूर्वप्रयोग । कृत=कृसे क्त निष्ठा है । **जातिकालसुख** आदि निष्ठा (क्त क्तवतु) वाले शब्द पर-पश्चात्प्रयोग हो । **अनाच्छादनात्** से ज्ञापित । सारङ्गः हरिणः जग्धः खादितः यया सा **सारङ्गजग्धी** । सिंहिनी हरिण खा **गयी** । **अस्वाङ्ग**से ङीष । हनसे क्त निष्ठासंज्ञकः जग्धी का पर प्रयोग । यह जाति का उदाहरण । कालपूर्वका-**मासो जातो यस्या मासजाता** बाला, एकमहीनाकाल अर्थ, निष्ठान्त जातका परप्रयोग । **सुखं जातं यस्या** सुखसे बीता जिसका । जातका पर प्र । **प्रायिकं**=यह परप्रयोग प्रायः होता है कहीं नहीं भी । **कृतः कटो येन कृतकटः** । चटाई जाति है, पर निष्ठाका पर प्रयोग नहीं देखा जाता । **पीतमुदकं येन पीतोदकः** पीया है जिसने, उदक जाति है तब भी पीत का पर निवास नहीं

हितः । आकृतिगणोऽयम् ।* 'प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ' । अस्युद्यतः । दण्डपाणिः । क्वचिन्न । विवृतासिः ।

॥ इति बहुव्रीहिसमासप्रकरणम् ॥

अथ द्वन्द्वसमास प्रकरणम्

९०१ **चार्थे द्वन्द्वः** २।२।२९॥ **अनेकं सुबन्तं चार्थे वर्तमानं वा समस्यते । स द्वन्द्वः ।** समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोगसमाहाराश्चार्थाः । परस्परनिरपेक्षस्याने-

---

हुआ । ९००। **वाऽऽहि**=आहिताग्नि आदिमें निष्ठाका पूर्व प्रयोग हो । **आहिताः आधानेन संस्कृताः अग्नयो येन आहिताग्निः** । निष्ठा आहित का पूर्वनिवास विकल्पसे, पक्षमें परप्रयोग, यह गण-आकृति देखकर मान्य । **प्रहरणार्थेभ्यः** अस्त्र अर्थके साथ निष्ठा और सप्तमीका परमें निवास । निष्ठामें असिः उद्यतो येन तलवार उठाया जिसने **अस्युद्यतः** पर निवास । दण्डः पाणौ यस्य हाथमें डण्डा वाला पाणौ सप्तमी का पर प्रयोग । **दण्डपाणिः** कहीं पर प्रयोग नहीं भी, व्याख्यानसे । **विवृतासिः** विवृतः कोषान्निष्काशितो येन—म्यानसे निकाला तल-वार जिसने । यहाँ विवृतका पूर्वनिवास हुआ, पर नहीं । इस प्रकार गणमें मानकर अनुकूलता सम्हालें । **इति प्राभाकर्यां बहुव्रीहिः**

अथद्वन्द्वः—

समासमें दोनो पदोंका अर्थ प्रधान होनेपर दो या अनेक पदके समास= एकअर्थ, एकपद, एकशक्तिका अध्याय आरम्भ । दोनों पदप्रधान हों, क्रियामें मिलकर समर्थ हों, इसका प्रस्तावक सूत्र । ९०१ । **चार्थे**-च के अर्थमें अनेक-सुबन्त विद्यमान हों विकल्पसे समास हो । **समस्यते=एकीभूय भवति**, वह एकार्थीभाव द्वन्द्वसमास मान्य । अनेकमन्यपदार्थेसे अनेकं, सुबामन्त्रितेसे सुप् आया । समास और विभाषाका अधिकार । एकम् अनेकं २, ३, ४, आदि । चकारका अर्थ बोले **समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतरयोग, समाहार** । अमरकोशमें **चाऽन्वाचयसमाहारेतरेतरसमुच्चये** । सम्मुच्चय बोले—**परस्पर**=एक दूसरेकी अपेक्षा न कर एकमें सम्बन्ध समुच्चयः । सम् उत्पूर्वक चिञ् चयने धातुका विना सम्बन्धके संग्रहके अनुकूल परस्पर निरपेक्ष्य क्रिया अर्थः । यथा **ईश्वरंगुरुं च भजस्व** भगवान और गुरुकी सेवा करो, इश्वर गुरु परस्परमें निरपेक्ष्य हैं । सम्बन्ध नहीं, एक च से गुरुको, ईश्वरकी अपेक्षा हो, किन्तु ईश्वरका सम्बन्ध जोड़नेवाले दूसरा च नहीं, अतः एक ही च पढ़ा । **ईश्वरं भजस्व गुरुं च**

कस्यैकस्मिन्नन्वयः समुच्चयः। अन्यतरस्यानुषङ्गिकत्वेऽन्वाचयः। मिलितानामन्वये इतरेतरयोगः। समूहः समाहारः। तत्रेश्वरं गुरुं च भजस्व इति समुच्चये भिक्षामट गां चानय इत्यन्वाचये च न समासोऽसमर्थ्यात्। धवखदिरौ। सञ्ज्ञा-

---

भजस्व। ईश्वरका भजन करो गुरुका भी भजन करो, दो वाक्य। क्रियामें, द्रव्यका संग्रह। **राज्ञो गजश्च अश्वश्च** राजाका हाथी है घोड़ा भी। द्रव्यमें द्रव्यका संग्रह। **पटःकृष्णो रक्तश्च**। वस्त्र काला है लाल भी। द्रव्यमें गुणोंका संग्रह। **रक्तः पटः कुण्डलं च,** लाल कपड़ा है कुण्डल भी। गुणमें द्रव्यका मिलित अन्वय। **अनु० आ पूर्वक चि** धातुका प्रसङ्गवशात्संग्रहके अनुकूलक्रिया **अन्वाचय** है। एकपदके साथ प्रसङ्गसे दूसरे पदको जोड़ना, एकका दूसरेमें उद्देश्य होना **अन्वाचयः चार्थः**। यथा **भिक्षामट गां चानय**। भिक्षा माँगो यदि गाय मिले तो लेते आओ। अट्गतौ, भिक्षा माँगकर लाओ, **यदा गौः सङ्गताचेत् तामपि आनय**। मुख्य भिक्षाटन, प्रसङ्गसे गायका आनयन, दोनों कर्मोंका परस्पर समानसम्बन्ध क्रियाके साथ न होनेसे सामर्थ्य निश्चित नहीं। **इतरेतरयोगका लक्षण**–परस्पर मुखापेक्षी=मिलाकर एक क्रियापदमें जुड़ना इतरेतरयोग **परस्परसाहचर्यं च** का अर्थः। इतरस्य इतरेण सह योगः सम्बन्धः क्रियायामन्वयः। यथा **धवश्च खदिरश्च धवखदिरौ** छिन्धि। धव किसी वृक्षका नाम, (खैर, चूना) प्रसिद्ध दोनोंको, एकसाथ काटो। परस्पर सह भावका सूचक दो चकार। **समाहार=समुदाय** अर्थ परस्पर सहभावसे एक समूह अर्थ होना। यथा **संज्ञापरिभाषयोः समूहः संज्ञापरिभाषम्**। इतरेतरयोगमें सहभाव विशेषण है, समाहारमें विशेष्य। संज्ञापरिभाषाका समुदाय। **तत्र इति**। समुच्चय अन्वाचयमें समास नहीं होता, **सामर्थ्य**=एकार्थीभाव न होनेसे। धवश्च खदिरश्च लौकिकविग्रह, धवसु खदिर सु अलौकिकविग्रहे **चार्थे द्वन्द्वः अनेकं सुबन्तं चार्थे वर्तमानं दृष्टवा समासे समासत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां सुपोधातुप्रातिपदिकयोः सुपो लुक् एकदेशविकारन्यायेन प्रातिपदिकसंज्ञा द्विवचने औ धवखदिरौ एवं संज्ञा च परिभाषा च तयोः समाहारः**। संज्ञासु परिभाषासु समासादिः। समुदाय एक है। अतः एकवचन, स नपुंसकम्। **अनेकोक्तेः**=चार्थे द्वन्द्वःमें सुप्सुपा आता तो धवखदिरौ आदि बनते, **'अनेक' कहना** व्यर्थ है। तत्र बोले नहीं, जहाँ अनेक=दो चार दस अधिक सुबन्त हों, वहाँके लिए अनेकोक्तेः सफल। यथा **होता च पोता च नेष्टा च उद्गाता च** बहुतोंके साथ द्वन्द्वके लिए 'अनेक' पढ़ा। **आनङ्ऋतो** द्वन्द्वसे नेष्टाका आनङ् होगा, उत्तरपद परे।

परिभाषम्। अनेकोक्तेर्होतृपोतृनेष्टोद्गातारः। द्वयोर्द्वयोर्द्वन्द्वं कृत्वा पुनर्द्वन्द्वे तु होतापोतानेष्टोद्गातारः। ९०२ राजदन्तादिषु परम् २।२।३३॥ एषु पूर्वप्रयोगार्हं परं स्यात्। दन्तानां राजा राजदन्तः।* 'धर्मादिष्वनियमः' अर्थधर्मौ-धर्मार्थौ। दम्पती-जम्पती-जायापती। जायाशब्दस्य जम्भावो दम्भावश्च वा निपात्यते। आकृतिगणोऽयम्। ९०३ द्वन्द्वे घि २।२।३२॥ द्वन्द्वे घिसंज्ञं पूर्वं स्यात्। हरिश्च हरश्च हरिहरौ।* 'अनेकप्राप्तावेकत्र

होतृ पोतृको आनङ् नहीं मध्यपदके अन्तरसे, उत्तरपद नहीं मिला। यदि द्वयोः=दो दोका द्वन्द्व करें, **होता च पोता च** होता पोतारौ होतृमें आनङ्। ततः नेष्टा च उद्गाता च द्वन्द्वपूर्वको आनङ् ततः **होतापोतारौ च नेष्टोद्गातारौ च** दो द्वन्द्वका द्वन्द्व, पूर्वको आनङ्। ङ इत् ङिच्च अन्त्य अल्स्थाने आदेशे। **अन्तर्वर्तिनी**=समासके भीतरकी लुप्त विभक्तिको प्रत्ययलक्षणसे मानकर षट्संख्या, नलोप। **होता पोता नेष्टोद्गातारः** भी सिद्ध।

।९०२। **राजदन्तादिगणमें** पढ़े हुए उपसर्जन पूर्वके पूर्वप्रयोगको बांधकर **पर** निवास हो। जो पूर्वके योग्य है वह परमें हो जाय दांतोंका राजा **राजदन्तः** तत्पुरुषमें उपसर्जन विशेषण बना, दन्तका **पर** प्रयोग। उसी गणमें **विश्वक्सेनार्जुनौ** आदि द्वन्द्व पढ़े गये पूर्वनिपात बाधकर परनिपातार्थ सूत्र। **गणसूत्र धर्मादिगणमें** पठितके पूर्व निवासका नियम निश्चित नहीं पर निवास भी हो। अर्थश्च धर्मश्च **अर्थधर्मौ** द्वन्द्वसमास **धर्मार्थौ** भी होगा। **जाया च पतिश्च दम्पती**। विवाहितास्त्री पुरुष। जायाशब्दको दम्भाव। जम् हुआ तब **जम्पति**। विकल्पपक्षमें **जायापती**। निपातनसे द्वन्द्वमें आकृति=स्वरूपको देखकर गणपाठ मान ले। जहां भी पूर्वप्रयोगके योग्य परमें मिलें वहां गण मान्य। ९३। **द्वद्वे**=द्वन्द्वसमासमें जिसको घिसंज्ञा हुई हो उसका पूर्वप्रयोग हो। यथा हरि विष्णु, हर शङ्कर एकसाथ 'नमामि' नमनक्रियामें **हरिहरौ** का मिलित सम्बन्ध। **हरि सु हर सु चार्थे** द्वन्द्वः **समासे, हरिशब्दः घिसंज्ञकः द्वन्द्वे घि** हरिको पूर्वनिपात। ननु हरिहर गुरुवः, हरिश्च हरश्च गुरुश्च समासे। गुरु घिसज्ञक हैं, पूर्वनिपात क्यों नही, तब बोले **अनेक प्राप्तौ**=दो तीन घिसंज्ञक हों, द्वन्द्वमें **एकत्र**=एक घिसंज्ञकको नियमसे पूर्वनिपात हो। शेष= अन्य घिसंज्ञकका पूर्वनिपात विकल्पमें हो। **आकृतौ पदार्थे समुदाये सकृल्लक्षणं प्रवर्तते न प्रतिव्यक्तिषु आवृत्यादि=एकस्यपूर्वनिपाते सति जातौ प्रवृत्तं लक्षणं पुनः न प्रवर्तते** लक्ष्यके अनुरोध से। व्यक्तिपक्ष–अमान्य। अल्पाच्तरं

नियमोऽनियमः शेषे' हरिगुरुहराः हरिहरगुरवः। ९०४ अजाद्यदन्तम् २।२।३३।। इदं द्वन्द्वे पूर्वं स्यात्। ईशकृष्णौ, बहुष्वनियमः। अश्वरथेन्द्राः, इन्द्राश्वरथाः। 'घ्यन्तादजाद्यदन्तं विप्रतिषेधेन' इन्द्राग्नि। ९०५ अल्पाच्तरम् २।२।३४।। शिवकेशवौ।* ऋतुनक्षत्राणां समाक्षराणामानुपूर्व्येण' हेमन्तशिशिरवसन्ताः। कृत्तिकारोहिण्यौ। समाक्षराणां किं ग्रीष्मवसन्तौ।* 'लघ्वक्षरं पूर्वम्' कुशकाशम्।* 'अभ्यर्हितं च'। तापसपर्वतौ।

सूत्रके भाष्यमें अनेक घिसंज्ञक समुदायमें हर गुरु शब्दका अनियमः कोई भी पूर्वमें हो। हरिगुरुहराः भी होगा।

।९०४। **आजादि** हो **अदन्त** भी तब दोनों **पदार्थ**प्रधान समासमें पूर्व निवास हो। यथा **ईशश्च कृष्णश्च भक्तान् पालयतः**। पालन क्रियामे शिव-माधव दोनों मिलित है ईश अजादि हैं अदन्य भी तस्य पूर्वनिवासः। कृष्ण अदन्त है अजादि नहीं। **बहुषु**=बहुतका द्वन्द्व समास हो, तब **अनियमः**=नियम नहीं। यथा **अश्वश्च रथश्च इन्द्रश्च** अनेकका द्वन्द्व है, नियम नहीं रहा। किसीका पूर्वनिवास, **इन्द्राश्वरथाः** मार्ग तिष्ठन्ति। **घ्यन्तात्**=घिसंज्ञक अन्तमें हो, ऐसे द्वन्द्वसमासमें 'द्वन्द्वे घि' के पूर्वनिवासको **विप्रतिषेध**=तुल्यबल विरोधमें परकार्य के बलपर अजादि अदन्त इन्द्रका पूर्वनिवास हो। **इन्द्रश्च अग्निश्च** समासे **इन्द्राग्नी** परीक्षाङ्कुरुतः। अग्नि घिसंज्ञकका पूर्वनिवास, बाधकर अजादि अदन्त इन्द्रका पूर्वनिपात।

।९०५। अल्पः संख्यः अच् यस्य स **अल्पाच्** कम स्वर। तदेव स्वार्थे तरप्। **अल्पाच्तरम्** कम स्वरका पूर्वनिवास हो। द्वन्द्वमें। **शिवश्च केशवश्च शिवकेशवौ** एकरूपौ स्तः। शिवाय विष्णुरुपाय विष्णवे शिवरुपिणे। पाखण्ड-भेदवाद, प्रकर्ष अर्थमें तरप मानकर (शिवको प्रकर्ष केशवका अपकर्ष मानना पाखण्ड है) ऋतुनक्षत्रोंका **समाक्षराणां**=समानं सदृशमक्षरं येषां, समान अक्षर हों द्वन्द्वसमासमें **अनुपूर्वेण**=जिस क्रमसे उच्चारण हो उसी क्रमसे प्रयोग मान्य। **हेमन्तश्च शिशिरश्च बसन्तश्च** तीनों ऋतुओंका क्रमिक लोकप्रसिद्ध समान अक्षरसे। तथा पूर्वविराम। कृत्तिका च रोहिणी च। सम अक्षर। नक्षत्रका तथा निवास। वार्तिकमें समान अक्षर क्यों पढ़ा, विषम अक्षरमें यथा उच्चरित न रहे, किन्तु अल्प अच्का पर्वप्रयोग हो **ग्रीष्मश्च बसन्तश्च** ग्रीष्म वसन्तो गतौ। विषम अक्षर अल्प अच् ग्रीष्मका पूर्वनिपात। **लघुअक्षर**का भी पूर्वनिवास हो द्वन्द्वमें। **कुशाश्च काशाश्च** एतेषां समाहारः **कुशकाशं**, लघु

'वर्णानामानुपूर्व्येण' ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः ।* 'भ्रातुर्ज्यायसः' युधिष्ठिरार्जुनौ । ९०६ द्वन्द्वश्च प्राणितुर्यसेनाङ्गानाम् २।४।२।। एषां द्वन्द्व एकवत्स्यात् । पाणिपादम् । मार्दङ्गिकपाणविकम् । रथिकाश्वारोहम् । समाहारस्यैकत्वादेकत्वे सिद्धे नियमार्थं प्रकरणम् । प्राण्यङ्गादीनां समाहार एव यथा

एकमात्र अच्वाला कुशका पूर्वप्रयोग । अभ्यर्हित श्रेष्ठ पूजितका पूर्वनिवास । तापसश्च पर्वतश्च तापसपर्वतौ स्तः । पर्वत जड़ है तापस चैतन्य, अपेक्षासे पूज्य । तापसका पूर्वनिवास । भाष्ये मातापितरौ पढ़ा । गर्भधारणपोषाभ्यां (पितुर्माता गरीयसी 'स्मृतिसे माताश्रेष्ठ) वर्णानां (ब्राह्मण क्षत्रिय विट शूद्राः वर्णाः इत्यमरः) इनका आनुपूर्व्येण=जैसे क्रमसे पढ़े है, उत्पन्न है उसी क्रमसे रहें । प्रजापतिः अकामयत स मुखतस्त्रिवृत्तं निरमिमीत तैत्तिरीये । भ्रातुः भाइयोंमें ज्यायसः=जेठ भाईका पूर्वनिवास हों । युधिष्ठिरश्च अर्जुनश्च कृष्णं नमतः जेष्ठ भाईका पूर्वनिवास । यद्यपि अर्जुन की अभ्यर्हित है इन्द्रपुत्र, विष्णु अंश, वीर होनेसे । पूर्वनिवास नहीं वार्तिककी कृपासे ।

। ९६ । द्वन्द्वश्च प्राणि=चेतन, तुर्य=वादन, सेनाङ्गानि द्वन्द्वगर्भ षष्ठी । अङ्गका तीनोंसे सम्बन्ध । द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पद प्रत्येकं सम्बध्यते इनके प्राण्यङ्ग, तुर्य अङ्ग, सेना अङ्गको द्वन्द्व समासमें एकवचन हो । प्राणिका प्राणिके साथ, तुर्यका तुर्यके साथ, सेनाका सेनाके साथ समासमें (एकं वक्ति एकवचनं,) पाण्योः पादयोश्च समाहारः पणिपादम् । समाहारे नपुसकम् एकवचनं, हाथ पैर प्राणिके अङ्ग है, उनके साथ समासमें एकवचन । मृदङ्ग पणव बाद्यकलाके अङ्ग है, मृदङ्ग वादनं शिल्पं कला अस्य, (ठक् आदिवृद्धि) मार्दङ्गिकश्च पाणविकश्च पणववादनं शिल्पं, अस्य भोंपू बजानेकी कला, मार्दङ्गिकपाणविकयोः समाहारः बजानेवालोंका समुदाय नपुंसक । सेनाङ्ग—रथेन चरति रथिकाः रथकी सेना 'पर्पादिभ्यष्ठन्' रथिकानाम् अश्वारोहिणां समाहारः सेनाके अङ्ग रथ घोड़ावालोंका समुदाय, एकवचन नपुंसक । समाहार द्वन्द्वमें समुदाय प्रधान, जो एक है एकवचन होगा । यह सूत्र व्यर्थ, तब बोले समाहारके एक होनेसे सिद्ध था, नियमके लिए यह प्रकरण । प्राणि अङ्ग सेना आदिको समाहारमें ही एकवचन हो । इतरेतरयोगमें एकवचनके लिए सूत्र नहीं कह सकते, समाहार ग्रहणं कर्तव्यं, वार्तिकके आनेसे इस प्रकरणमें समाहार द्वन्द्वका उदाहरण भाष्ये में है । रथिकमार्दङ्गिकौमें एकवचन रोकनेके लिए प्राण्यङ्गानां परस्परं द्वन्द्वः एकवत्, तुर्याङ्ग नां,

स्यात्। ९०७अनुवादेचरणानाम् २।४।३।। चरणानां द्वन्द्वः एकवत् स्यात्सिद्धस्योपन्यासे।* 'स्थेणोर्लुङीति वक्तव्यम्' उदगात्कठकलापम्, प्रत्यष्ठात्कठकौथुमम्। ९०८ अध्वर्युक्रतुरनपुंसकम् २।४।४।। यजुर्वेदे विहितो यः क्रतुस्तद्वाचिनामनपुंसकलिङ्गानां द्वन्द्व एकवत्स्यात्। अर्काश्वमेधम्। अध्वर्युक्रतुः किम्। इषुवज्रौ, सामवेदे विहितौ। अनपुंसकं किं?। राजसूयवाजपेये। अर्धर्चादी। ९०९ अध्ययनतोऽविप्रकृष्टाख्यानाम् २।४।५।। अध्ययनेन

सेनाङ्गनां परस्परं द्वन्द्वः एकवत्स्वीकारात्। द्वन्द्वश्च प्राणितुर्य—प्रकरणसे समाहार द्वन्द्व होता है, अतः **सर्वो द्वन्द्वो विभाषा एकवद्भवति।**

। ९०७। **अनुवादे**=सिद्धस्य उपन्यासे, ज्ञात अर्थका उच्चारण होनेपर। **चरणानां**=शाखा अध्ययन विशेषवाचीका परस्पर द्वन्द्वमें एकवचन हो। **स्थेणों**=स्थाधातु इण् धातुके लङ् लकारके अन्तमें प्रयोग हुआ हो तभी अनुवादे चरणानां=द्वन्द्व एकवत् हो। यथा उदगात्=प्रादुर्भूत प्रकट हुआ। इण्के लुङ्में रूप। कठेन प्रोक्तमधीयते इति कठाः। कठ आचार्यसे दृष्ट मन्त्रोंका अध्ययन करनेवाले, अन्तेवासित्वात् णिनि, उसका कठ चरकात्से लुक् तद्धितके अण्का प्रोक्ताल्लुकि। कलापिना प्रोक्तमधीयते **कालापाः** अण्। सब्रह्मचारि, अण् टिलोप अध्ययन **अण्**का प्रोक्ताल्लुक्। कठानां कलापानां च समाहारः **अनुवादे चरणानां** सूत्रेण एकवत्—**कठकालाप** समुदायका प्रादुर्भाव **प्रत्यष्ठात्**=प्रति स्था लुङि रूपं, कठेन **प्रोक्तमधीयते कठाः। कौथुमिना प्रोक्तमधीयते कौथुमाः।** तेन प्रोक्तं अण् स ब्रह्मचारि। टिलोप, अध्येता-अण्का लुक्। कठानां कौथुमानां च समाहारः **कठकौथुमम्** चरण मानकर एकवत्। स्थेणोः क्यों? अभूवन् कठकालापाः लुङ् है स्था, इण् नहीं, न एकवत्। लुङि क्यों? **अतिष्ठन् कलापाः।** लङि एकवत् न हो।

। ९०८। **अध्वर्यु**=कर्मविधायक=यजुर्वेदमें विधान किया गया जो क्रतु—यज्ञ उसका वाचक नपुंसकलिङ्गोंका द्वन्द्व एकवचन हो। **अर्काश्च अश्वमेधश्च** अर्कः=महाक्रतुः और अश्वमेध दोनों यजुर्वेदमें प्रसिद्ध है। द्वयोः समाहारः **अर्काश्वमेधं** सूत्रेण एकवचनम्। अध्वर्यु क्यों? यजुर्वेदसे लक्षित यज्ञ मान्य, उससे भिन्न अमान्य। इषुश्च वज्रं च **इषुवज्रौ** दोनों यज्ञ है। सामवेदमें प्रसिद्ध है। एकवत् न हो। **अनपुंसक क्यों?** यजुर्वेदमें राजसूयंच वाजपेयं च, ये दोनों नपुंसक है एकवत् न हो। दोनों यदि पुलिङ्ग है, तब इनको अर्धर्चादि मानें। ९०९। **अध्ययनतो** (तृतीया अर्थमें तस्) अध्ययनके

प्रत्यासन्ना आख्या येषां तेषां द्वन्द्वः एकवत्। पदकक्रमकम्। ९१० जातिरप्राणिनाम् २।४।६।। प्राणिवर्जजातिवाचिनां द्वन्द्वः एकवत्। धानाशष्कुलि। प्राणिनां तु, विट्शूद्राः। द्रव्यजातीयानामेव। नेह–रूपरसौ। गमनाकुञ्चने।

अविप्रकृष्टप्रत्यासन्न–समीपमें आख्या कथन हो उनका द्वन्द्वमें एकवचन हो। **पदानि अधीयते पदकाः। क्रमानधीयते क्रमकाः** क्रमादिभ्योः वुन् पदकानां क्रमकाणां समाहारः। वेदके पद और क्रमका उच्चारयिताका समुदाय। पदके वाद क्रमका अध्ययन। अध्ययनके समीपमें अध्येताका आरोप (पद पढ़कर क्रग पढ़ें) यह प्रत्यासत्ति है। **अध्ययनतः क्यों ?** पितापुत्रौ। एकवत् न हो। **प्रत्यासन्न क्यों** ? याज्ञिकनैयायिकौ। दूर है न एकवत्।

। ९१०। **जातिः**। जातिवाचिनां=षष्ठीका व्यत्यय प्रथमा अप्राणि=चेतनको छोड़कर जातिवाचकोंका द्वन्द्वमें एकवचन हो। **धानाश्च शष्कुल्यश्च** तासां समाहारः (धान, पूड़ीका ढ़ेर) जाति अर्थमें एकवचन, नपुंसक ह्रस्व। चेतनोंका समाहार हो तब एकवत् नहीं। **विश्च शूद्राश्च** समासे यह सूत्र प्राणिभिन्न प्राणिसदृश द्रव्यजातिवालोंका एकवत् गुणगतजाति, क्रियागतजातिका एकवत् नही। रुपंच रसश्च **रूपरसौ** पिबतः। न एकवत्। गमनं च आकुञ्चनंच, क्रियागत जातिगमन संकोचक्रिया, न एकवत्। ननु बदर्याः फलानि **बदराणि** आमलक्याः फलनि **आमलकानि** वेर या आवलाका विकार उसकाफल है विकार प्रत्ययका 'फले लुक्' तद्धितलुक्परे ङीपका लुक्। बदर आमलक फलत्व जातिके अर्थमें क्योंकि समस्त बेर आंवलाका ज्ञान होगा बदराणि च आमलकानि च एतेषां समाहारः **बदरामलकम्** एक रुप होगा। **बदरामलकानि** रूप नहीं बनेगा। जातिरप्राणिनांसे एकवचन नित्य है। **जाति-प्राधान्य**=जहाँ जाति अर्थ मुख्य हो वहाँ एकवद्भाव। **सामान्यं जातिः** एक हो अनेक में रहे, फलत्व एक है। सभी वेरमें, आमलकत्व सभी आवलेमें। क्योंकि सभी वेर व्यक्तिमे, आंवला व्यक्तिमें 'अनुस्यूत (मालामें सूत इव) है जाति अमूर्त है (आश्रये आधार) व्यक्ति चाहिए। क्रियाजातिका उपयोग व्यक्तिके माध्यमसे। चूंकि जाति सब व्यक्तिका बोधक है अतः प्रधान जातिमें एकवचन **बदरामलकम्**। यदि **अरण्यानि बदरामलकानि** कहें जंगलीवेर आंवला का ज्ञान होगा, ग्रामीण, पहाड़ीका नही। अतः कहा द्रव्यविशेष व्यक्ति पक्षका महत्व हो, तब एकवचन नहीं होता। **बदरामलकानि**। क्षीरोदके कप्रत्ययः। **क्षीरञ्च उदकञ्च** दूध पानी मिलगये। जो मिल गये उसी दूध

प्राणिप्राधान्य एवायमेकवद्भावः । द्रव्यविशेषविवक्षायां तु, बदरामलकानि ।
९११ विशिष्टलिङ्गो नदीदेशोऽग्रामाः २।४।७।। ग्रामवर्जनदीदेशवाचिनां भिन्नलिङ्गानां समाहारे द्वन्द्वः एकवत्स्यात् । उद्धयश्च इरावती च उद्धयेरावती । गङ्गा च शोणश्च गङ्गाशोणम् । कुरवश्च कुरुक्षेत्रं च कुरुकुरुक्षेत्रम् । भिन्नलिङ्गानां किं गङ्गायमुने । मद्रकेकयाः । अग्रामाः । किं ? जाम्बवं नगरम् । शालूकिनी ग्रामः । जाम्बवशालूकिन्यौ । ९१२ क्षुद्रजन्तवः २।४।८।। एषां समाहारे एव द्वन्द्वः एकवत्स्यात् । यूकालिक्षम् । आनकुलात्क्षुद्रजन्तवः । ९१३

जलका ज्ञानद्रव्यप्रधान । अतः एकवचन नहीं । यदि सभी दूध सभी जलका ज्ञान होता तब जाति मानकर एकवचन होता । रञ्जिता तु विविधाः तरु शैला इति सिद्धम् ।

। ११ । विशिष्टलिङ्ग=विपूर्वकशिष धातु का भेद डालना अर्थ । इसी धातुसे ल्युट् करके बना विशेषण और ण्यत् करके बना विशेष्यको भेदकभेद्य कहते है । अतः भिन्नलिङ्ग वाले नदीवाचकोंका द्वन्द्व हो, या देशवाचकोंका द्वन्द्व समास हो, उनको समाहारसमासमें एकवचन हो । देशसे प्रसिद्ध जनपद मान्य ग्राम नहीं, ग्राम भिन्न ग्रामसदृश समुदायका शहर नगर । विशिष्टं लिङ्ग येषां समाहारमें ही एकवत् उक्त है । यथा उद्ध्यो नदः । नदी भी अर्थ नदी, इरावती दोनों नदी वाचक है । समासे, नदी नदसे भिन्नलिङ्ग । अतः एकवचन, नपुंसक ह्रस्व गंगानदी और शोण नद है भिन्नलिङ्ग समासमें एकवत् गङ्गाशोणं, कुरवश्च पुलिङ्ग है, कुरुक्षेत्रम् नपुंसक । समासे एकवचन । सूत्रमें भिन्नलिङ्ग क्यो पढ़ा गङ्गा च यमुना च समान लिङ्ग है न एकवत् । मद्राश्च केकयाश्च देशअर्थमें समानलिङ्ग न एकवत । नदीं देश का न एकवत । गंगाकुरुक्षेत्रे देशसे जनपद मान्य । पहाड़ नहीं —कैलाशगन्धमादने सूत्रमें अग्रामाः क्यों पढ़ा, ग्राम या अप्रसिद्ध नगरसे एकवचन होजाय, निषेध नहो । जाम्बवम् अप्रसिद्ध नगर ग्राम का नाम जाम्बवञ्च शालूकिनी च समास । एकवचन का निषेध हुआ । १२ । क्षुद्राश्च जन्तवश्च ऐतेषां समाहारः छोटे जीवो का समुदाय समासमें एकवचन हो जाय । क्षुद्रजन्तु का निर्णय आ—नकुलात्= नेवलेसे लेकर कीटाणु तक क्षुद्र जन्तुः अत्र स्मर्यते क्षुद्रजन्तुरनवस्थिः स्यादथवा क्षुद्र एव यः । शतं वा प्रवृतौ येषां केचिदानकुलादपि । जो एक जगह स्थिर न हो, छोटा ही, सौ स्थलमें दौडता रहे । सर्व साधारण उदाहरण यूकाश्च लिक्षाश्च (घने केश बाल जटाके शिर भागमें श्वेदज पसीनेसे पैदा ढ़ील लीख

येषां च विरोधः शाश्वतिकः २।४।६।। एषां प्राग्वत्। अहिनकुलम्। गोव्याघ्रम्, काकोलूकमित्यादौ परत्वात् 'विभाषा वृक्षमृग' इति प्राप्तं चकारेण बाध्यते। ६१४ **शूद्राणामनिरवसितानाम् २।४।१०।।** अवहिष्कृतानां शूद्राणां प्राग्वत्। तक्षायस्कारम्। पात्राद्वहिष्कृतानां तु चण्डालमृतपाः ११५ **गवाश्वप्रभृतीनि च २।४।११।।** यथोच्चारितानि साधूनि स्युः। गवाश्वम्

जू प्रसिद्ध है) एकवचन, नपुंसक ह्रस्व। १३। **येषां** जिन प्राणियोंका विरोध और शत्रुता हो, कभी भी एक साथ न रहे, ऐसा शाश्वतिक शश्वतः भावः निरन्तर स्वाभाविक हो, उनके परस्पर समाहार द्वन्द्वमें एकवचन हो। छाया धूप अँधेरा प्रकाश, विरोधसे एक साथ नहीं रहते **शाश्वतिक क्यों** पढ़ा **देवासुरैरमृतमम्बुनिधिर्ममन्थे**। देवता दानव अमृत लिए समुद्र मन्थन करनेमें एक साथ रहे, नित्य विरोध नहीं है। साँप नेवलेका नित्य स्वभाविक विरोध। **अहयश्च नकुलाश्च एतेषां समाहारः** इनका समुदाय **अहिनकुलम्**। सहज विरोधके अर्थ का सूचक एकवचन। **गावश्च व्याघ्राश्च** इनका समुदाय नित्य वैर का सूचक एकवचन, **काकाश्च उलूकाश्च काकोलूकं** सहज विरोधका सूचक एकवचन। यद्यपि यहाँ **विभाषावृक्षमृग** आदि सूत्र। गोमहिषं गोमहिषाःमें चरितार्थ। **येषाञ्च विरोधः** सूत्र अहिनकुलंमें सफल। **गोव्याघ्र**'में दोनों प्राप्त तब परत्वात् विभाषा वृक्ष मृग सूत्र प्राप्त होता है उसे बाँधनेके लिए येषां च सूत्रमें च पढ़ा, बाधनेके लिये। १४। **शूद्राणां**=३जातिसे भिन्न वर्णशङ्कर शूद्रत्व जाति नहीं। **क्यों** कि अनिरवसितानाम्=अवहिष्कृतानां सत्पात्र छूनेपर अशुद्ध न हो। ऐसे शूद्रोंका समाहार द्वन्द्व, समासमें एकवचन हो। **यैर्भुक्तं पात्रं क्षारोदकप्रक्षालेन संस्कारेणापि न शुध्यति ते निरवसिताः** चाण्डालादयः। जिनके भोजन किये पात्र भस्म जलसे धोनेपर न शुद्ध हों। **ययैस्तु भुक्तं पात्रं क्षारोदक प्रक्षालनेन शुद्धयति ते अनिरवसिता** सत्शूद्र। यथा **तक्षाणश्च अयस्काराश्च** (बढ़ई और लोहार का समुदाय) समासे सत्शूद्र अर्थ प्रकाश एकवचन **तक्षायस्कारम्**। जो पात्रात्=शुद्धतासे जल ग्रहणसे बहिष्कृत हैं। वहाँ एकवत् नहीं होता। **चण्डालाश्च मृतपाश्च एतेषां समाहारः**। जीवजीवी जङ्गली चर्मकार, कसाइयों का समुदाय। धर्मशास्त्रमें ये निषिद्ध है।

। ६१५) **गावश्च** इत्यादि यथोच्चारितानि जैसे पढ़े गये वैसे साधु, निपातनसे। **गावश्च अश्वाश्च** इनका समुदाय **गवाश्वं**, विभाषा वृक्षमृगसे विकल्प एकवत् प्राप्त था नित्यएकवचन अवङ्। यदा न अवङ् सर्वत्रविभाषा गोः

दासीदासमित्यादि। **१६ विभाषा वृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्जनपशुशकुन्यश्ववडवपूर्वापराधरोत्तराणाम्। २।४।१२।।** वृक्षादीनां सप्तानां द्वन्द्वः, अश्ववडवेत्यादि द्वन्द्वत्रयं च प्राग्वद्वा। * 'वृक्षादौ विशेषाणामेव ग्रहणम्' प्लक्षन्यग्रोध, प्लक्षन्यग्रोधाः। रुरुपृषतं, रुरुपृषताः। कुशकाशं, कुशकाशाः। व्रीहियवं व्रीहियवाः। दधिघृतं, दधिघृते। गोमहिषं गोमहिषाः। शुकबकं, शुकबकाः। अश्ववडवम्–अश्ववडवौ। पूर्वापरं पूर्वापरे। अधरोत्तरम् अधरोत्तरे।* 'फलसेनावनस्पतिमृगशकुनिक्षुद्रजन्तुधान्यतृणानां बहुप्रकृतिरेवद्वन्द्व एकवदिति वाच्यम्'

प्रकृति भावे **गोऽश्वं** पक्षे **गोअश्वः** । दास्यश्च दासाश्च इनका समुदाय एकवचन। **पुमान् स्त्रिया**:से एकशेष नहीं, निपातनसे। आदि=**गावश्च आविकाश्च** गाय भेड़ों का समुदाय **गवाविकं गवैडकम्**।

।१६। **विभाषा वृक्ष** द्वन्द्व आया। एक षष्ठी विषयभेदसे भिन्न है। अवयवषष्ठी वृक्ष मृग तृण धान्य व्यञ्जन पशु शकुनि उनका अवययके साथ द्वन्द्व। अश्ववडव पूर्वापर अधरोत्तर तीनका द्वन्द्वमें एकवत् हो। **वृक्षादौ**=वृक्ष तृण धान्य पशुके विषयमें विशेष (श्रेष्ठ, मान्य) का ग्रहण। वृक्ष द्वन्द्वका उदाहरण **प्लक्षाश्च न्यग्रोधाश्च** (पलाश बरगदका समुदाय) समासे एकवत्, विकल्पसे, पक्षे प्लक्षन्यग्रोधाः। **जातिरप्राणिनां** से नित्य एकवचन प्राप्त था। मृगका द्वन्द्व–**रुरवश्च पृषताश्च समाहारः एतेषां रुरुपृषतम्** मृगक्शेिषका झुण्ड। तृणका द्वन्द्व–**कुशाश्च काशाश्च** एकवचन। धान्यद्वन्द्व **व्रीहयश्च यवाश्च व्रीहियवं**, धान जौ की ढ़ेर। व्यञ्जनका द्वन्द्व–दधि च घृतं च अनयोः समाहारः दहीघी का ढ़ेर। विकल्प एकवचन, पक्षमें **दधिघृते**, दोवचन। पशुका–**गावश्च महिषाश्च** गायों भैंसोंका झुण्ड, सूत्रसे एकवचन, पक्षे गो–**गोमहिषाः**। पक्षीका **शुकाश्च वकाश्च** एतेषां समाहारः। एकवचन, पक्षे बहुवचव। **अश्वाश्च** पक्षे **वडवाश्च** घोड़ा घोड़ीका झुण्ड। एकवद्भाव पक्षे द्विवचन। अश्ववडवौ पूर्वपदवत्पुलिङ्ग। **पूर्वश्च अपरश्च** अनयो, समाहारः पश्चात्का समुदाय। **अधरश्च उत्तरश्च** अनयोः समाहारः। इन सभीमें सूत्रसे एकवचन, पक्षमें यथायोग्यवचन। **फल सेना** एकवद्भाव, प्रकरणका अन्तिम नियम वार्तिक है। फलसेनासे लेकर तृण तक। द्वन्द्वश्च प्राणितुर्य-जितने एकवचन करनेवाले है उनकी बहुवचनकी प्रकृति ही द्वन्द्वसे एकवचन हो। **बहवः बहुवचनान्ताः प्रकृतिः=कारणं यस्य बहुप्रकृतिः** एकवचन द्विवचनकी प्रकृति हो तब वार्तिक नहीं लगता। फलका द्वन्द्व–**बदरीफलानि आमलकीफलानि** विकार प्रत्ययका

बदराणि चामलकानि च बदरामलकम्। 'जातिरप्राणीनाम्' इत्येकवद्भावः। नेह, बदरामलके, रथिकाश्वारोहौ, प्लक्षन्यग्रोधावित्यादिः। विभाषा वृक्ष–' इति सूत्रे येऽप्राणिनस्तेषां ग्रहणं 'जातिरप्राणिनाम्' इति नित्ये प्राप्ते विकल्पार्थम्। पशुग्रहणं हस्त्यश्वादिषु सेनाङ्गत्वान्नित्ये प्राप्ते 'मृगाणां मृगैरेव शकुनीनां तैरेवो भयत्र द्वन्द्वः, अन्यैस्तु सहेतरेतरयोग एव' इति नियमार्थं मृगशकुनिग्रहणम्। एवं पूर्वापरम्, अधरोत्तरमित्यपि। अश्ववडवग्रहणं तु पक्षे नपुंसकत्वार्थम्। अन्यथा

'फले लुक्' परे ङीप्का लुक्। तब **बदराणि च आमलकानि च** इनका ढ़ेर **बदरामलकम्** बहुवचनान्तके नाते एकवचन हुआ। **जातिरप्राणिनां** सूत्रके एकवचनको बाधकर। बहुत्वप्रकृतिका फल बोले नेह=यहाँ नहीं, **बदरञ्च आमलकञ्च एकवचनान्त है** एकवत् नहीं। यदि बहुवचनान्तका द्वन्द्व नहीं तब नित्य एकवत् भी नहीं। **रथिकश्च** अश्वा**रोहश्च** सेनाके अङ्ग है। किन्तु-जातिका प्राधान्य न होनेसे न एकवत्। **प्लक्षश्च न्यग्रोधश्च** वहुवचनान्त नहीं, एकवत् नहीं। इत्यादि। **रुरुश्च पृषतश्च रुरुपृषतौ** मृगौ द्वन्द्व है बहुत्व नहीं, न एकवत्। **हंसचक्रवाकौ** पक्षी है। न एकवत्। **यूकालिक्षे** क्षुद्र जन्तु हैं बहु-वचन नहीं, न एकवत्। **व्रीहियवौ**। **कुशश्च काकश्च कुशकाशौ** तृणका यहाँ एकवत् नहीं होता। बहुवचन प्रकृति न होनेसे। ये सभी प्रयोग **चार्थे द्वन्द्वः**से सिद्ध, एकवचन विकल्प भी सिद्ध, **विभाषा वृक्ष मृग क्यों**? पढ़ा? इसलिए कि **येऽप्राणिनः**=जो चेतन नहीं है उनका ग्रहण जहां हो, उक्त सभी **कुशकाशं दधिघृतम्** आदिको (जातिरप्राणिनांसे नित्य एकवत् प्राप्त था) विकल्पके लिए सूत्र पढ़ा?। न कहिये कि **पशुप्राणि** हे उसे नित्य एकवत् नहीं होगा? तब बोले–पशुका ग्रहण जैसे हाथी घोड़े इत्यादि है, उन्हें सेनाका अङ्ग मानकर नित्य प्राप्त है। विकल्पके लिए सूत्र। मृग शकुनि भी व्यर्थ न हों अतः **मृगाणां मृगैरेव** मृगोंके साथ मृगका, पक्षीके साथ पक्षीका चाहे इतरेतर हो या समाहार) एकवचन हो विकल्पसे। **अन्यैस्तु** इतरेतरयोगद्वन्द्व ही होता है, समाहार नहीं। यथा **रुरुशुकाः** रुरुमृग है शुक इतर है। इसीतरह शकुनि-का इतरके साथ, इतरेतरयोग ही होता है समाहार नहीं। इसीनियमके मृग और शकुनि पढ़ा? 'चार्थे' सूत्रसे सिद्ध, सूत्रमें पूर्वापर पढ़ना व्यर्थ, जातिभी नहीं। जैसे मृगोंका मृगोंके साथ, पक्षीका पक्षीके साथ, द्वन्द्व कहा है एवं पूर्वका अपरके साथ इतरेतरयोग, समाहार हो, अन्यके साथइतरेतर-योग ही हो (**पूर्वोत्तरौ अधरोत्तरौ**) न **समाहारः**, यही फल है। सेनाकाअङ्ग

अन्यथा परत्वात् 'पूर्ववदश्ववडवौ' इति स्यात्। १७ विप्रतिषिद्धं चानधिकरणवाचि ।२।४।१३। विरुद्धार्थानामद्रव्यवाचिनां द्वन्द्व एकवद्वा स्यात्। शीतोष्णम्–शीतोष्णे। वैकल्पिकः समाहारद्वन्द्वः 'चार्थे' इतिसूत्रेण प्राप्तः स विरुद्धार्थानां यदि भवति तर्ह्यद्रव्यवाचिनामेवेति नियमार्थमिदम्। तेन द्रव्यवाचिनामितरेतरयोग एव। शीतोष्णे उदके स्तः। विप्रतिषिद्धं किं? नन्दकपाञ्चजन्यौ। इह पाक्षिकः समाहारद्वन्द्वो भवत्येव। १८ न दधिपय

पशुके साथ द्वन्द्वमें एकवत् होगा। अश्ववडवका ग्रहण एकपक्षमें नपुंसक लिङ्गके लिए, समाहारमें ही। द्वन्द्व एकवत्का नियम पशुके साथ विकल्प एकवत् समाहारमें या इतरेतरयोग–कोई नियम नही रहेगा, तब बोले **अन्यथा**=नपुंसक विधानका नियम न रहनेपर, समाहार द्वन्द्वमें भी नपुंसकको बाधकर पूर्वपद का पुलिङ्ग होगा। यदि नपुंसक विधान रहता है उसके सामर्थ्यसे पुं० को बाधकर नपुं० होगा।

। १७ । **विप्रतिसिद्धं** विप्रतिपूर्वक सिधधातुका विरोधी आचरण अर्थ। जिनका एक साथ रहना न हो (अधिकरणं द्रव्यं) विरोधी हो द्रव्य (वस्तु) अर्थ न हो, ऐसे अनेक सुबन्तके अवयवोंका द्वन्द्व हो, विकल्प, एकवचन हो। यथा **शीतञ्च उष्णञ्च** विरोधो गुण है (द्रव्य नहीं) सूत्रेण एकवत्। पक्षमें **शीतोष्णे**। सुखञ्च दुःखञ्च **सुखदुःखे सुखदुःखे**। **गोत्वाश्वत्वं गोत्वाश्वत्वे** ये विरोधी एक स्थलमें टिकते नहीं। 'चार्थे द्वन्द्व' समासमें विकल्प एकबत् सिद्ध, यह सूत्र व्यर्थ है। **जातिरप्राणिनां** जाति आधार सहितमें लगता है तब बोले **विकल्पात् जातः वैकल्पिकः**–चार्थे द्वन्द्वसे पक्षपाती समाहार प्राप्त था, यह सूत्र व्यर्थ होकर नियम किया कि **विरुद्धार्थानां**=विरोधी अर्थवलाका एकवचन हो तब **अद्रव्य**=गुणक्रिया जातिके समाहारमें हो, वस्तुके साथ नहीं। इसका फल हुआकि **द्रव्य**=वस्तु अर्थवाचक शब्दोंका **इतरेतरयोग** ही होता है। समाहार नहीं। यदि उदक जल ठंडा गरम है, द्रव्य हो गया विरोधी अर्थ है। न समाहार किन्तु इतरेतर हो। सूत्रमें विप्रतिसिद्ध विरोधियोका समास क्यों कहा? अनुरोधमें नियम न लगे। **नन्दति ध्वनिं करोति विष्णोः खड्गः, पाञ्चजन्य शङ्ख** है दोनों विष्णुके पास है विरोधी नहीं। अतः विकल्प समाहार नहीं। यदि **विप्रतिषिद्धं** यही कहते **विरुद्धार्थानां समाहारश्चेति अद्रव्य वाचिनामेव**। द्रव्य है दोनों द्रन्द्व होगें। तभी बोले, यहा पाक्षिक समाहार होता ही है (१८) **न दधि** इत्यादिकोंका समाहार द्वन्द्व नहीं होता। **दधि च पयश्च**

आदीनि २।४।१४॥ एतानि नैकवत्स्युः। दधिपयसी। इध्माबर्हिषी। निपातनाद्दीर्घः। ऋक्सामे। वाङ्मनसे। १९। **अधिकरणैतावत्त्वे च २।४।१५॥** द्रव्यसंख्यावगमे एकवदेवेति। नियमो न स्यात्। दश दन्तोष्ठाः। ९२० **विभाषा समीपे २।४।१६॥** अधिकरणैतावत्त्वस्य सामीप्येन परिच्छेदे समाहार एव इत्येवं रूपो नियमो वा स्यात्। उपदशम्, दन्तोष्ठम्। उपदशाः, दन्तोष्ठाः। २१ **आनङृतो द्वन्द्वे ६।३।२५॥** विद्यायोनिसम्बन्धवाचिना-

---

अनयोः समाहारः। दूध दहीका ढेर, नपुंसक द्विवचन **दधिपयसी**, जातिसे नित्य, व्यञ्जनसे प्राप्त विकल्पको बाधकर निषेध। **मधुसर्पिषी सर्पिर्मधुनी** एकवत् न, **इध्मञ्च बर्हिश्च** न एकवत्,किन्तु द्विवचने इध्मामें दीर्घ निपातन। **ऋक्च साम च ऋक्सामे**, दोनों वेद है उनका समुदाय एकवचन नहीं हुआ। अचतुरविचतुर- से अच्। **वाक्च मनश्च** वणीमनके मिलित एकवचनका निषेध समासान्त अच्। इस गणमें प्रजापती शिववैष्णवौ इत्यादिमें समाहार का निषेध करके इतरेतरकी व्यवस्था मान्य।

।१९। **अधिकरण**=द्रव्य, समासार्थका आधार, उसका एतावती-का नियम इतनी संख्या जानपड़े तब **एकवदेव**=एकवचन होता है यह नियम नहीं अतः बोले - द्रव्यकी संख्याका ठीक ज्ञान होने पर। **प्रजापति** आदिमें समाहार द्वन्द्व का निषेध **दन्ताश्च ओष्ठाश्च दन्तोष्ठाः** रक्ताः। दश संख्याका दाँत और ओठसे एकवचन नियमका निषेध हुआ। समाहारमें पदान्तर असमर्थ है। इतरेतरमें समासपद प्रधान है। यद्यपि **सविषेषणानां वृत्तिर्न** इनके विशेषण सहित पर, समास नहीं होता। तथापि **भाष्यमें भवति वै प्रधानस्य सापेक्षस्यापि** वृत्तिः जिज्ञासा वाले विशेषण रहने पर समास होता ही है।

। ९२०। **विभाषा** अधिकरण=द्रव्य वस्तु हो, इतनी संख्या गिनी हो, तब समीप सम्बन्धसे परिच्छेदे भेदनिर्णय होता हो, **तब समाहार एव** ऐसा नियम विकल्पसे लगता है। **दशाना समिपे ये सन्ति अर्थ**में अव्ययीभाव। वचन सामर्थ से समाहार द्वन्द्व, लिङ्ग वचनकी समानतासे अव्ययीभाव एकवचन। **दन्ताश्च ओष्ठाश्च अनयोः समाहार दन्तोष्ठं**, नियम विकल्पसे लगा। पक्षमें इतरेतरयोग **दशानां समीपे ये सन्ति ते उपदशाः** दशके पासमें नव एकादश रहते है

।२१। **आनङृतः** विद्या= गुरुपरम्परा सम्बन्धवालोंका, **योनि**=जन्मसे सम्बन्ध वाले ऋदन्तोंके द्वन्द्वमें ऋको आनङ् हो उत्तरपदपरे। **ऋतो=विद्यायोनीसम्बन्धेभ्यः** की अनुवृत्ति, ऋतकी अनुवृत्ति होती ही पुनः ऋ पढ़ना, विद्या

मृदन्तानां द्वन्द्वे आनङ् स्यादुत्तरपदे। होतापोतारौ। होतृपोतृनेष्टोद्गातारः। मातापितरौ। 'पुत्रेऽन्यतरस्याम्' (सू९८०) इत्यतो मण्डूकप्लुत्या 'पुत्रे' इत्यनुवृत्तेः। पितापुत्रौ। २२ देवताद्वन्द्वे च ६।३।२६॥ इहोत्तरपदे परे आनङ्। मित्रावरुणौ।* 'वायुशब्दप्रयोगे प्रतिषेधः' अग्निवायू-वाय्वग्नी। पुनर्द्वन्द्वग्रहणं प्रसिद्धसाहचर्यस्य परिग्रहार्थम्। तेन ब्रह्मप्रजापती इत्यादौ नानङ्। एतद्धि नैकहविर्भागित्वेन श्रुतम्, नापि लोके प्रसिद्धं साहचर्यम्। २३ ईदग्नेः सोमवरुणयोः ६।३।२७॥ देवताद्वन्द्वे इत्येव २४ अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः

और योनि सम्बन्धी ऋको आनङ्। (अलुक्) उत्तरपदे आया। होता च पोता च होतापोतारौ हवन कर्ता, पवन कर्ताका विद्या द्वारा यज्ञसे सम्बन्ध, समास होनेपर सूत्रेण होतृ-ऋस्थाने आनङ् ङ् इत्। अ उच्चारणाय। ङिच्च अन्त आदेश नलोपे। नकार क्यों पढ़ा रपर नहो, उत्तरपद परे पोतृ है। एवं होता च पोता नेष्टा च उद्गाता च (हवनकर्ता पवनकर्ता गानकर्ता) समासे उत्तरपद उद्गाता परे नेष्टके ऋको आनङ् अन्यको आनङ् नहीं। मध्यमपद परे होनेसे। योनि सम्बन्धका उदाहरण माता च पिता च मातापितरौ उत्तरपद पितरौ परे मातृके ऋको आनङ्। पितृपितामहौ में आनङ् नहीं, ऋदन्तके सबका अवयव न होनेसे। यदि ऐसा पितापुत्रौ में आनङ् कैसे ? तब बोले पुत्रेऽन्यतरस्यां सूत्रसे मेढ़क उछलन्यायसे पुत्र आया। पुत्रपरे आनङ् हो अर्थ निकला, आनङ् हुआ पितापुत्रौ बना। २२। देवता का द्वन्द्वसमास हो उत्तरप्रद परे आनङ् हो। मित्रश्च वरुणश्च मित्रावरुणौ देवता दोनों है समासमें आनङ् हुआ मित्रा बना। वायु शब्द पूर्वपद या उत्तरपदमें हो तब आनङ् नही होता। अग्निश्च वायुश्च अग्निवायू दोनों देवता है। वायुके सम्बन्धमें आनङ् का निषेध। पूर्वसूत्रसे द्वन्द्व आता ही, पुनः द्वन्द्व पढ़नेका फल जहाँ साहचर्य=सहवास प्रसिद्ध हो से स्वीकारके लिए। तेन=अप्रसिद्ध द्वन्द्व ब्रह्मप्रजापतिमें आनङ् नहीं हुआ। एतद्धि=ब्रह्म और प्रजापति दोनोंका साहचर्य एकसाथ, पूजा, स्वागत यज्ञमें बैठना, साथमें हवि भोजनके भागीदार नहीं सुने गए। न लोकमें, न वेदमें सहभाव प्रसिद्ध है। परन्तु परो विवादः वरीयताकी बोली मात्र है वेदमें सह निर्वाप निर्दिष्टः। इस भाष्यसे लोक प्रसिद्धको आनङ् कहेंगे, तब पार्वतीपरमेश्वरौ लोक प्रसिद्ध है यहा आनङ् न हो।

। २३। ईत=देवता देवताओंका द्वन्द्व समास हो तब सोम और वरुण उत्तरपदपरे अग्निको इत् आदेश हो आनङ्को बाधकर।

। २४। अग्नेःस्तुत्स्तोम सोमाः। षष्ठी अर्थे प्रथमा। अग्निसे परे इनके

८।३।८२॥ अग्नेः परेषामेषां सस्य षः स्यात्समासे । अग्निष्टुत् । अग्निष्टोमः । अग्नीषोमौ । अग्नीवरुणौ । **१२५ इद्वृद्धौ ६।३।२८॥** वृद्धिमत्युत्तरपदे अग्नेरिदादेशः स्याद्देवताद्वन्द्वे । अग्नामरुतौ देवते अस्य आग्नीमारुतं कर्म । अग्नीवरुणौ देवते अस्य अग्निवारुणम् । 'देवताद्वन्द्वे च' इत्युभयपदवृद्धिः। अलौकिके विग्रहवाक्ये आनङमीत्वं च बाधित्वा इत् । वृद्धौ किम् । आग्नेन्द्रः । नेन्द्रस्य परस्य इत्युत्तरपदवृद्धिप्रतिषेधः ।* 'विष्णौ न' आग्नावैष्णाव ।

सको ष हो, एकार्थीभावमें। समासेऽङ्गुलेःसे समास आया । **अपदान्तस्य मूर्धन्य** आया । **सात्पदाद्योः** षत्व निषेधका बाधक । **अग्निः स्तूयते यस्मिन्** अग्निष्टुत् । यज्ञविशेष जिसमें अग्निकीं स्तुति, समास होनेपर अग्निसे परे स को ष हुआ । **आग्नीनां स्तोमः स्तुतिः संस्थाविशेषः अग्निष्टोमः** । समासमें अग्निसे परे ष्टोमके स को ष । **अग्निश्च सोमश्च अग्निसौमौ** पूजयति देवताओंका द्वन्द्वसमास जग्निके ईत् । **अग्निश्च वरुणश्च अग्नीवरुणौ** ईत्वे । सूत्रमें **देवताद्वन्द्व क्यों ?** अग्नि न सोम किसीका नाम हो, देवता न हो, तब ईत्व न हो । **अग्निसोमौ** । दीर्घ अग्निसे षत्व है ।

।९२५। **इद्** वृद्धिमान् उत्तरपद हो **अग्नि**को इत् आदेश हो । देवता द्वन्द्व अर्थमें । उच्चारणार्थ विधीयमान सवर्णीको स्वीकार नहीं करता । अग्निश्च मरुतश्च अग्नामरुतौ । देवता द्वन्द्वे आनङ, तौ देवते यस्य सास्य देवता **अण्** आदिवृद्धि **आग्निमारुतं** वृद्धिमान् उत्तरपद मारुतं अग्निको इत् । एवं **अग्निश्च वरुणश्च** ईत्वे अग्नीवरुणौ देवते यस्य **अग्निवारुणम्** । यहां देवता द्वन्द्वे च सूत्रसे दोनोंपदकी वृद्धि है । तब उत्तरपद मारुत या वारुण वृद्धिमान् मिलेंगे । ई को इ का विधानसे क्या लाभ, तब बोले आनङ् और ईत्वको बाधनेके लिए । पहलेके आनङ् दूसरेमें इत् प्राप्त था । **परिहृत्यापवादविषय-मुत्सर्गोऽभिनिविशते** न्यायसे आनङ् इत्व नहीं होगें, सूत्रमें **वृद्धौ**=उत्तरपदको आदिवृद्धि हुई हो क्यों ? **अग्निश्च इन्द्रश्च आग्नेन्द्रौ** (आनङ् आद्गुणः) तौ देवते यस्य साऽस्य अण् आदि वृद्धि आग्नेन्द्रं हविः । इन्द्र उत्तरपद है उसको वृद्धि नहीं, इत्व न हो जाय । क्योंकि **नेन्द्रस्य परस्य** सूत्र है । **वह** इन्द्रपरे हो उत्तरपदको वृद्धिका निषेध करता है । विष्णौ न=विष्णुपरे अग्निको इत् न कहें । इसका फल **अग्निश्च विष्णुश्च अग्नाविष्णू** (आनङ्) तौ देवते अस्य देवता अर्थे अण **देवता द्वन्द्वे च उभयपदवृद्धिः** आग्नावैष्णवं हविः विष्णुपरे इत्वका निषेध, आनङ् ही हुआ ।

२६ दिवो द्यावा ६।३।२९॥ देवताद्वन्द्वे उत्तरपदे । द्यावाभूमी । द्यावाक्षामे। **२७ दिवसश्च पृथिव्याम् ६।३।३०॥** दिवः इत्येव, चाद्द्यावा । आदेशेऽकारोच्चारणं सकारस्य रुत्वं माभूदित्येतदर्थम् । द्यौश्च पृथिवी च दिवस्पृथिव्यौ द्यावापृथिव्यौ । 'छन्दसि दृष्टानुविधिः' । द्यावा चिदस्मै पृथिवी । 'दिवस्पृथिव्योररतिः' इत्यत्र पदकाराः विसर्ग पठन्ति । **२८ उषासोषसः ६।३।३१॥** उषश्शब्दस्योषासादेशो देवताद्वन्द्वे । उषासासूर्यम् । **२९ मातरपितरावुदीचाम् ६।३।३२॥** मातरपितरौ । उदीचाम् किं मातापितरौ । **९३० द्वन्द्वा-**

। २६ । **देवताद्वन्द्वमें** दिवसे परे आनङ् हो, उत्तरपदपरे । **द्यौश्च भूमिश्च द्यावाभूमी** समासे । द्यौ को द्यावा आदेश । **द्यौश्च छामा च विग्रह क्षामा भूमि पर्यायः** । वेदे दिवकों द्यावा आदेश । षष्ठयास्तु सुपां सुलुक् डादेश। **देवता द्वन्द्वे च पूर्वोत्तरपदयोः प्रकृतिस्वरः** ।

। २७ । **दिवसश्च** देवताद्वन्द्वमें दिवस्थाने दिवस आदेश । च=पढ़नेसे द्यावा आदेश भी पृथ्वीशब्द उत्तरपद परे । **आदेश** दिवसमें आकारके अन्त उच्चारण का फल है, स को रु न होना । सामर्थ्यात्=स सजुषोरुः प्राप्त था, आकाश और पृथ्वी व्यापक हैं । **दिवस्पृथिव्यौ** दिव स्थानमें दिवस-मुख्यपद और पक्षमें **द्यावा आदेश** भी हुआ । ननु **द्यावाचिदस्मै पृथ्वीसन्नमेते** यहाँ दिव-पृथ्वी का द्वन्द्व कैसे ? दिव को द्यवा कैसे ? क्योंकि बीचमें चिदस्मै बैठा है । तब कहा **छन्दसिवेदमें जैसा देखा गया हो उसकी अनुविधि अनुसरण भी वैसा (यथा दृष्टं तथा प्रक्रिया कल्पनीया)** चिदस्मै के व्यवधानमें देखा गया दिवस या द्यावा आदेश मान्य । दिवस्पृथिव्यौके अवग्रहमें विसर्ग पढ़ते हैं । पद पाठ आधुकि का सूचक । पदका विसर्ग पाठ प्रामादिक हैं । अकार उच्चारणके कारण है ।

। २८ । उषा–उषस् के स्थान **उषासा** आदेश हो देवताओंके द्वन्द्वसमासमें । **उषाश्च सूर्यश्च अनयोः समाहारः** प्रातःकाल सूर्यका संगम **उषासासूर्य**–सूत्रेण उषासा आदेश । । २९ । **मातरपितरौ** उत्तरदिशा वालोंके मतमें समासमें मातृशब्दको अरङ हो, तब वह **मातरपितरौ** बना । जब उत्तर दिशावालो का मत नहीं रहा तब ऋत अनङ् **माताच पिताच** मातापितरौ ।

। ९३० । द्वन्द्वात् =समासान्त और तद्धितके अधिकारमें यह सूत्र । चु=चवर्गान्त और द ष ह अन्तमें हों ऐसे द्वन्द्व समाससे टच् अ हो । समाहार समुदाय अर्थमें : यथा **वाक्च त्वच अनयोः समाहारः वाणी** और स्पर्श इन्द्रियका समूह **वाक्त्वचम्** । द्वन्द्वात् चुदष चवर्गान्त मानकर टच् । त्वक्चस्रक्च अनयोः समा

च्चुदषहान्तात्समाहारे ५।४।१०६।। चवर्गान्ताद्दषहान्ताच्च द्वन्द्वाट्च् स्यात्समाहारे। वाक्च त्वक्च वाक्त्वचम्। त्वक्स्रजम्। शमीदृषदम्। वाक्त्विषम्। छत्रोपाहनम्। समाहारे किं? प्रावृट्छरदौ।

।। इति द्वन्द्वसमासप्रकरणम् ।।

अथ एकशेषप्रकरणम् ।।

अथैकशेषः। 'सरूपाणाम्' रामौ, रामाः। 'विरूपाणामपि 'समानार्थानाम्'

समास, से टाल। **वाक्च त्विट्च अनयोः समाहारः** वाणी और तेजका ढेर **वाक्त्विषम**। षान्त मानकर टच् जशको अशुद्ध करके। **छत्रंच उपनच्च** विग्रहे हकारान्त मानकर टच्। सूत्रमें समाहार क्यों पढ़ा इसलियेकि **प्रावृट्च शरच्च प्रावृट्शरदौ** वर्षा शरद ऋतु। इतरेतयोग समास। टच् नहो अतः समाहार पढ़ा

।। इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्राभाकर्यां द्वन्द्वससासः ।।

अथएकशेषप्रकरणम्—द्वन्द्व समास दोनों पदार्थप्रधान एकार्थीभावका विवेचन पूर्णकर उसका बाधक एकशेषप्रकरणका आरम्भ। **अथैकशेष** इति। अनेकेषु एकः शिष्यते एकशेषः यह वृत्ति है। परार्थाभिधान समुदायका अर्थ कहती है। द्वन्द्वका विषय सभी पदोंकी प्रधानतासे मिलकर अन्वय। **सह** विवक्षा=**सह वक्तुं वक्तुः** इच्छामें समास और एकशेष भी होते हैं। परस्पर विरोधमें बाध्य बाधकभाव चलता है। अतः द्वन्द्वसमासके बाधक एकशेषका अध्याय।(**यः** शिष्यते सः लुप्यमानार्थाभिधायी) जो बचता है वह लोप हुयेके अर्थको कहता हैं पहले व्याख्यात् है। सूत्रका पुनः उच्चारण सन्दर्भ शुद्धिके लिये। **सरूपाणां= समानं रूपं येषां तेषाम्** इक्कीस विभक्तियोंमें समान रूप होना मान्य। एक विभक्तिमें **भी रूप** विषमता अमान्य एवकार की अनुवृत्ति प्रमाणसे **मेङ् पालने अर्थमें माता, माङ् माने, माप तौल अर्थमें माता** शब्दके रूपमें समानता है।औ जसमें विषमतासे एकशेष नहीं। **रामौ पठतः, रामाः प्रेरयन्ति**। दो राम पठन क्रियामें साथी सह भाव, सह विवाक्षासे प्राप्त द्वन्द्वकों बधकर सरूपाणां सूत्रसे एकशेष, जो लोप हुआ उसके सहितका भी बोधक द्विवचन औ है (विभक्त्यन्तानामेंशेषः) इसपक्षमें अनेक राम प्रेरणा क्रियामें सहयोग--सह विवक्षासे द्वन्द्व प्रांप्तको बाधकर एकशेष, जो लुप्त हुये को कहेगे। जिसका सूचक वहुवन जस् है। **यदि समान रूपलोंका एकशेष होगा, तब वि रुद्धरूपवाले कहां जायेगे** ? तब बोले **विरूपाणामपि**। समान अर्थवालोका एकशेष कहा गया अर्थ है

वक्रदण्डश्च कुटिलदण्डश्च वक्रदण्डौ कुटिलदण्डौ । ३१ वृद्धो यूना तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः १।२।६५।। यूना सहोक्तौ गोत्रं शिष्यते, गोत्रयुवप्रत्ययमात्रकृतं चेत्तयोः कृत्स्नं वैरूप्यं स्यात् । गार्ग्यश्च गार्ग्यायणश्च गार्ग्यौ । वृद्धः किं ?

भेदमें भी, शब्द एकरूप हो। एकशेष कहा गया। यदि एक अर्थहो शब्द भिन्न हों। उसका भी एकशेष बोलें। **वक्रदण्ड और कुटिलदण्ड** दोनोका एक अर्थ टेढ़ीं लकडी लाठी। शब्द भेद है अन्यतरः शिष्यते=कोइ एक शेषरहे अतः, या **वक्रदण्डौ** दोनों सत्य। **अतः रूप्यते बोध्यते रूपेअर्थ एकः** । विरूपः शब्द।

। ३१। **वृद्धो। रूपतोअर्थतश्च भेदेऽपि** = शब्द भेद अर्थ भेद रहने पर भी कहाँ—कहां एकशेष होता है। **यूना**=युवप्रत्ययान्त फक् फिञ् अन्तहो **सहोक्तौ** साथ बोलनेकी इच्छा हो, तो गोत्रसंज्ञक शेषरहे, युवप्रत्ययान्तका लोप हो। वृद्धका अर्थ **अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रं** से गोत्रसंज्ञा है। प्रचीनोंने उसीगोत्रको वृद्ध कहा। **अपत्यमन्तर्हितं वृद्धं न पतन्ति पितरो येन तदपत्यं**, पुत्रपौत्र प्रपौत्रादि अपत्य संतान परम्परा है। जिससे पितर प्रसन्न होते है उसी अपत्य के अन्तरित=भीतर प्रविष्ट पौत्र को गोत्रसंज्ञा हो। वृद्ध पूर्वाचार्य सम्मत गोत्र का पर्याय है यूना=युवसंज्ञाके साथ **सहयुक्ते अप्रधाने च तृतीया। जीवति तु वंश्ये युवा। वंशेभवः वंश्यः प्रपौत्र**, तीसरी पीढ़ीसे परम्परा पितामह प्रपितामह वृद्ध प्रपितामह जीवित हों, तब युवसंज्ञा। उसका फल फक् फिञ आदि गोत्र यूना नहीं पढ़ा, अपत्याधिकारसे अलग अन्यत्र लौकिक गौत्र लेनेके लिये। **विशेषः=वैरूपप्यं शब्दभेदः अर्थभेदः तल्लक्षण**= होना चहिये। **स गोत्रप्रत्ययः युवप्रत्ययश्च लक्षणं निमित्तं भेदकारणं यस्य**, यदि भेदका कारण दोनों अप्रत्यय हीं हों यञ् फिञ् आदि, अन्य कोई इसलिये कहाकि गोत्रप्रत्यय युवप्रत्ययसे ही किया हुआ वैरूप्य हो। **एव** का अर्थ कृत्स्नं पूर्णभेद है यथा **गर्गस्य गोत्रापत्यं** गार्ग्यः गोत्र अगली पीढ़ी की परंम्परा अर्थमें गर्गादिभ्यो यञ् गार्ग्यः। गर्ग वंश का पौत्र आदिगोत्रसे रूप बना। इसके विरुद्ध अर्थशब्दभेदसहित रूप **गार्ग्यस्यापत्यं युवा** चौथी पीढ़ीकी युवसंज्ञा होती है। यदि प्रपितामह वृद्धप्रपितामह जीवित हो। तब उस अर्थमें यञ् से फक—आयन **गार्ग्यायणः** गर्गगोत्रमें चौथी पीढ़ीसे अर्थभेद शब्दभेद प्रत्ययसे हुआ। इन दोनोंके बीच **गोत्रं शिष्यते गार्ग्यौ**। उसका अर्थ गर्गकुलका पौत्रप्रपौत्रौ स्तः। सूत्रमें वृद्ध क्यों पढ़ा, गोत्रके साथ ससह विवक्षा हो, एक शेष रहे ऐसा क्यों ? **गर्गश्च गार्ग्यायणश्च** यहां एक शेष न हों। दोनोंमें भेद, युवप्रत्य से ही फिञ् है। यदि वृद्धको गोत्र नहीं

गर्गगार्ग्यायणौ । यूना किं ? गर्गगार्ग्यौ तल्लक्षणः किं ? भागवित्तिभागवित्तिकौ । कृत्स्नं किं ? गार्ग्यवात्स्यायनौ **३२ स्त्रीपुंवच्च** १।२।६६।। यूना सहोक्तौ वृद्धा स्त्री शिष्यते तदर्थश्च पुंवत् । गार्गी च गार्ग्यायणौ च गर्गाः । 'अस्त्रियामित्यनुवर्तमाने 'यञञोश्च' इति लुक् । दाक्षी च दाक्षायणश्च दाक्षी ।

कहेगें, यहां भी एकशेष होगा । **न गोत्रं, नैकशेषः** । **यूना किं** ठक् फिञ् प्रत्ययसे भेद । वैरुप्य क्यों कहा ? **गर्गश्च गार्ग्यश्च** तहाँ एकशेष न हो । क्योंकि गोत्रप्रत्यय यञसे ही विरूप है । युवके साथ न होंनेसे एकशेष नहीं हुआ । **तल्लक्षणं किं**, भेदमें गोत्र और युव प्रत्ययही कारण हो ऐसा क्यों ? **भगवित्तस्य गोत्रापत्यं भागवित्तिः** । राजाका लड़का अतइञ् । **भागवित्तेः सौबीरस्य अपत्यं युवा कुत्सितः निन्दितः भागवित्तिकः** वृद्धाट्ठक् । यहाँ भेदमें कुत्सित सौबीर अधिक कारण है । केवल गोत्र या युव नहीं । इसलिये गोत्रप्रत्ययन्त भागवित्ति का शेष नहीं हुआ । कृत्स्नं=सम्पूर्णवैरूप्य ऐसा क्यों ? **गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः वत्सस्य-वत्स्यः गर्गादि-यञ्** । **वत्सस्यापत्यं युवा वात्स्यायनः**, **वात्स्यायन फक्** । **गार्ग्यश्च वात्स्यायनश्च** यहाँ गोत्र युव प्रत्ययसे ही भेद नहीं, क्योंकि प्रकृतिके विरूपमें गोत्र युवमात्र कारण नहीं अतो न शेषः ।

। ३२ । **स्त्री** । वृद्धो यूना आया । वृद्ध स्त्री बना । यूना=युवसंज्ञक (फक् फिञ्) प्रत्ययान्तके साथ बोलनेकी इच्छा हो, तब वृद्धा=गोत्रसंज्ञक स्त्रीलिङ्ग शेष रहता है । स्त्रीधर्मसे अधिक विरूप है । पूर्वसे शेष प्राप्त नहीं अतः यह सूत्र । **तदर्थः=तस्य शिष्यमाणस्य**–शेष बचे स्त्री गोत्रप्रत्ययान्तका **पुंवत्**=पुलिङ्ग की तरह हो । उसका स्फोरक द्विवचनान्त विग्रह **गर्गस्यापत्यं गार्गी**, लुक् यञश्च ङीप् । तथा गार्ग्यायणौ गर्गसे यञ् उससे युवापत्य अर्थमें फक् दोनोंमें वृद्धा=गोत्रवालो स्त्री गार्गी शेष रहीं, पुंलिङ्ग हुआ । स्त्री अ अधिक होने पर भी शेष गर्गा । यदि ऐसा तब यञ् कहाँ गया, सुनायी नहीं पड़ा क्यों ? अस्त्रियां की अनुवृत्तिसे पुवद्भाव होनेपर यञञोश्चसे य का लुक् हुआ । गर्गाः बना । निमित्तापाये नौमित्ति कस्याप्ययायः **तद्राराजस्य बहुषु तेनैव** से अस्त्रियाम् आया । इससे पुंवत्का फल कहा **गार्गी च गार्ग्यायणश्च** नहीं पढ़ा ? बहुवचन नहीं होता, तब यञ्का लुक् भी न होगा । पुंस्त्वे स्त्रीत्वे समानरूपं, पुम्भाव व्यर्थ होता । अन्य उदाहरण **दक्षस्य गोत्रापत्यं स्त्री दाक्षी**, इञ् **इतोमनुष्यजातेः** ङीष्, **दक्षस्यापत्यं पुमान् दाक्षिः तस्या अपत्यं युवा दाक्षायणः** उसकी चतुर्थ परम्परा यञिञोश्च फक् **दाक्षीच** । **दाक्षायणश्च** गोत्रसंज्ञक स्त्री

३३ पुमान् स्त्रिया: १।२।६७।। स्त्रिया: सहोक्तौ पुमाञ्छिष्यते, तल्लक्षण एव विशेषश्चेत्। हंसी। **३४ भ्रातृपुत्रौ स्वसृदुहितृभ्याम् १।२।६८।।** भ्राता च स्वसा च भ्रातरौ। पुत्रश्च दुहिता च पुत्रौ। **९३५ नपुंसकमनपुंसकेनैकवच्चास्यान्तरस्याम् १।२।६९।।** अक्लीबेन सहोक्तौ क्लीबं शिष्यते, तच्च वा एकवत्स्यात्तल्लक्षण एव विशेषश्चेत्। शुक्ल: पट:। शुक्ला शाटी। शुक्लं वस्त्रम्। तदिदं शुक्लम्। तानीमानि शुक्लानि। **३६ पिता-**

दाक्षी शेषरहा, पुं से ङीष् हटा। द्विवचन दाक्षी तल्लक्षणश्चेति भी आया। पूर्ववत् भाव। **गार्गीच वत्स्यायनश्च न एकशेष:।**

।३३। **पुमान्** वृद्धो युना हटा। सरुपाणां आया, अत: स्त्रीलिङ्गके साथ कहागया पुरुष धर्म शेष रहता है। तल्लक्षण एव विशेष:=स्त्री पुरुष धर्म मात्रसे विरूप भेद हों तब पुम्का शेष। हंसी और हंसकी साथमें अन्वय हो हंस शेष रहे। स्त्रीपुरुषकृत्विरूपसे सरूपाणां नहीं लगा। **माता**—पालनेवाली, **माता**—तौलने वाला **दोनोंमें** एकशेष नहीं, इक्कीस विभक्तिमें सामान रूप न होनेसे। **हंसश्च वरटाच यहाँ** भी न एकशेष:। अन्यथा अतिप्रसङ्ग होता

।३४। **भातृ=स्वसृ** बहन, दुहितृ लड़कीके साथ कहे हुए भ्राता पुत्र शेष रहे यहाँ न सरूप, न विरूप हैं पूर्वसे अप्राप्त था। अत: यह सूत्र। भ्राता और श्वसा—भाई और बहन है **भ्रातरौ स्त:**। स्वसाका लोप हुआ। भ्रातरौ दोनों अर्थको कहेगा। **पुत्रश्च दुहिताच** बेटा बेटी की इच्छामें पुत्र शेष रहा

।९३५। **नपुंसकका अनपुंसकके** साथ सह इच्छामें नपुंसक शेष रहे, **तच्च**=वह एकवचन विकल्पसे हो, तल्लक्षण=नपुंसक भेद विरूपमें कारण हो। शुक्ल: शुक्ला शुक्लं विग्रह पट:, साटी वस्त्र, तीनों लिंगोंका सूचक (**गुणेशुक्लादय: पुंसि गुणलिङ्गास्तु तद्वति**) तीनोंमें नपुंसक शेष रहा, लिङ्गके कारण विरूप भी है। **तदिदं शुक्लं** या जो तीनों लिङ्गके गुणका सूचक विशेष। बहुवचनमें **शुक्ला: शुक्ला: शुक्लानि च** बहुवचन। एवं **स च सा च तच्च तत्=अयञ्च इयञ्च इमानि**। तीनों लिङ्गके साथ इच्छामें नपुंसकका शेष। समाहार में एकशेष नहीं होता। अनपुंसक क्यों? **शुक्लञ्च** २ **शुक्ले** एकवत् न हो। जातिपक्षे **भाष्ये प्रत्याख्यात: एकशेष:।**

।३६। पिता माताके साथमें पिताका विकल्प एकशेष। माता और पिताके सहभावमें पिता रह गये। द्विवचने पितरौ। **यदा न एकशेष: तदा मातापितरौ। पितुर्दशगुणामाता गौरवेण अतिरिच्यते।** माता पूजित है पूर्व-

मात्रा १।२।७०॥ मात्रा सहोक्तौ पिता वा शिष्यते। माता च पिता च-पितरौ--मातापितरौ वा। ३७ श्वसुरः श्वश्र्वा १।२।७१॥ श्वश्र्वा सहोक्तौ श्वशुरो वा शिष्यते, तल्लक्षण एव विशेषश्चेत्। श्वश्रूश्च श्वशुरश्च श्वशुरौ–श्वश्रूश्वशुरौ वा। ३८ त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम् १।२।६२॥ सर्वैः सहोक्तौ त्यदादीनि नित्यं शिष्यन्ते। स च देवदत्तश्च तौ।* 'त्यदादीनां मिथः सहोक्तौ यत्परं तच्छिष्यते'। स च यश्च यौ, (सा च या च ये)। 'पूर्वशेषोऽपि दृश्यते' इति भाष्यम्। स च यश्च तौ।* त्यदादितःशेषे पुन्नपुंसकतो लिङ्ग-

---

निपात, आनङ् भी। ३७ ।**श्वसुर**=सासके साथ ससुरका विकल्पसे शेष हो। दोनों विरूप जान पड़े तब, जब एकशेष, रहा तब **श्वसुरौ**। पक्षमें दूसरारूप **श्वश्रू: पूर्वज पत्नीच मातृतुल्या प्रकीर्तिता। अभ्यर्हितं च पूर्वनिपात**। ३८। **त्यदादीनि सर्वैं**=सभीके साथ कहे गये साथ विवक्षामें त्यद् तद् यद् इत्यादि नित्यएकशेष होते हैं। **जैसे** स च देवदत्तश्च **तौ** पठतः। **त्यदादि**=तत्का शेष, देवदत्त लुप्त। तौ **पठतः**। तद्देवदत्तौ नहीं बना। **सर्वैः क्यों**? केवल त्यदादिमें ही सहभाव न समझा जाय। **त्यादादीनाम्**=त्यद् तद् यद् इत्यादि गणपठितके बीच सह भाव हो, **तब यत्परं**=जो परमें पढ़ा हो वही शेष रहे **परं कार्यम्**। **सच यश्च** वह **और** जो भी। सहभावमें परमें यत् शेष **रहा**। सा च या च विग्रहमें भी पर होनेसे यत् शेष रहा। परं कार्यका इष्टं कार्यम् अर्थ है। **पूर्वके एकशेषसे अनुकूल अर्थ हो तब पूर्वशेषोऽपि**=पूर्वका भी एकशेष होता है। **स च यश्च** पूर्वमें तत् ही शेष रहा, यत् लुप्त हुआ। इसमें प्रमाण-**अहं च भवांश्च आवाम्** अस्मद् ही शेष रहा। भवत् लुप्त हुआ। **त्यदादितः** षष्ठी अर्थे तस् त्यदादिगणमें स्त्रीके शेषमें भी सहभाव शेष हो, उनमें जो पुरुष, जो नपुंसक उनके अनुकूल लिङ्ग और प्रातिपदिक **होते** है। सा और देवदत्तके साथमें सा का मूल तत् शेष, देवदत्तका लोप। उसका पुलिङ्ग **तौ**। **एवं तच्च च** देवदत्ता यज्ञदत्ताके साथ समास। नपुंसकलिङ्ग। जो शेष रहा **तानि**। यदि पुं और नपुंसक का सहभाव हो तब नपुंसक ही शेष रहे। पाठक्रमसे वही पर है। तत् और देवदत्तके सहभावमें तत् शेष द्विर्वचन वक्ता 'ते' बना। **अद्वन्द्व** द्वन्द्व और **तत्पुरुषसमासमें त्यदादीनां** और त्यदादितः शेषके नियमका लिङ्ग वचन नियम नहीं होता। दो सूत्रका बाधक है। **कुक्कुटश्च मयूरी च** द्वन्द्वः **अयं च इयं च** यहा त्यदादिके शेषमें पुलिङ्ग नियम नहीं लगा। किन्तु प्रधानलिङ्ग परपदका परलिङ्ग। **अयंच इयंच** स्त्रीशेषभी नही होता। **पुमान्स्त्रियाः** कहनेसे। **इयं च अयं च इमौ** पुरुषका (स्त्रीके साथ सहभावमें)

वचनानि' सा च देवदत्तश्च तौ। तच्च देवदतश्च यज्ञदत्ता च तानि पुंन्नपुंसकयोस्तु परत्वान्नपुंसकं शिष्यते। तच्च देवदत्तश्च ते। 'अद्वन्द्वतत्पुरुषविशेषणानामिति वक्तव्यम् कुक्कुटमयूर्याविमे। मयूरीकुक्कुटाविमौ। तच्च सा च अर्धपिप्पल्यौ ते। ३९ ग्राम्यपशुसङ्घेष्वतरुणेषु स्त्री १।२।७३।। एषु सहविवक्षायां स्त्री शिष्यते। 'पुमान् स्त्रिया' इत्यस्यापवादः। गाव इमाः। ग्राम्य इति किं, रुरव इमे। पशुग्रहणं किं, ब्राह्मणा इमें। सङ्घेषु किं, एतौ गावौ। अतरुणेषु किं, वत्सा इमे।* 'अनेकशफेष्विति वाच्यम्' अश्वा इमे। इह सर्वत्रैकशेषे कृतेऽनेक-

---

एकशेष हो। परलिङ्ग, पुमान् स्त्रियाःसे पुं० शेष। अन्यका वार्तिकसे बाध। तत्पुरुषका उदाहरण तच्चपिप्पल्याः, अर्धं नपुंसकं तत्पुरुष-समास

अर्धपिप्पली च पिप्पल्यर्धञ्चअर्धपिप्पल्यौ। तच्च सा चनपुंसक और स्त्रीके सूचकपुमान् स्त्रियाः नहीं लगेगा। त्यदादितः शेषे नपुंसकत्वं निषिध्यते। ३९। ग्राम्यपशुसङ्घ-अतरुणेषु युवा तगड़े न हों, तब ग्रामे भवः ग्राम्यः देहाती और पशु समुदायकेसाथ स्त्रीका शेष होता है। पुमान् स्त्रियाः को बाँधकर। गौश्च गौश्च पुं०, स्त्री० गाय साथमें इष्ट हैं। पुमान् स्त्रियाःको बाँधकर स्त्रीगौः शेष। लोप हुएको भी कहनेके लिए जस् गावः। स्त्री शेष हो, या पुरुष, कोई भेद नहीं। बोले इमाः त्यदादितः शेष नहीं होता। गावः इमा इमे च इमाश्च इमाः, भाष्यप्रयोगसे रुरव इमे। रुरुः कृष्णः मृगः गाँवका पशु नहीं है स्त्री शेष नहीं किन्तु पुमान्का शेष उसका अनुप्रयोग इमे। पशु क्यों पढ़ा? ब्राह्मणी च ब्राह्मणाश्च ब्राह्मणाः। इमे पशु नहीं, न स्त्रीशेष किन्तु स्त्रीके साथ पुरुषका शेष। अन्यथा ब्राह्मण्यः इमाः। सङ्घ समुदाय क्यों, एतौ गावौ स्त्री० पु० के साथ पढ़ी है। संघ नहीं स्त्रीशेष भी नहीं। बहूनां समुदायो सङ्घः। स्त्रीशेष होता, एते अनुप्रयोग बनता। अतरुण क्यों? वत्साः इमे। वत्साश्च २ इति विग्रहे तरुण युवा है स्त्री शेष नहीं तो इमाः अनुप्रयोग होता। शफेषु=अनेक खुर हों, तभी स्त्रीशेष कहें। एकशफ खुर घोड़ेका है वहाँ ग्राम पशु सूत्र नहीं लगता अश्वाश्च २ अश्वाः इमे। एकशफ स्त्रीशेष नहीं। इमे पुलिङ्ग अनुप्रयोग। इह=इस प्रसङ्गमें एकशेष-विषयक अनेक सुबन्त न होनेसे एकशेष द्वन्द्वको बाधता है। अनवकाशत्वात्कृते एकषेशे अनेक सुबन्त न होनेसे द्वन्द्व नहीं होता। द्वन्द्वापवाद एकशेष यदि नहीं होगा तब विभक्ति आयेगी द्वन्द्व होगा। सह विवक्षा दोनोंका विषय। यदि द्वन्द्वसमास होनेपर एकशेष हो तब दोष क्या होगा? शिरसी द्विवचनमें

सुबन्ताभावाद् द्वन्द्वो न। शिरसी शिरांसि इत्यादौ समासस्येत्यन्तोदात्तः प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावश्च न। पन्थानौ पन्थानः, इत्यादौ समासान्तो न।

॥ इत्येकशेषप्रकरणम् ॥

अथ सर्वसमासशेषप्रकरणम्

कृत्तद्धितसमासैकशेषसनाद्यन्तधातुरूपाः पञ्च वृत्तयः। परार्थाभिधानं वृत्तिः। वृत्त्यर्थावबोधकं वाक्यं विग्रहः स द्विविधः। लौकिकोऽलौकिकश्च। परि-

---

शिरांसि बहुवचनमें, समासस्य सूत्रसे अन्तोदात्त होगा। प्राणिका अङ्ग सिर है एकवचन होता। ये दोष हटानेके लिऐ एकशेष पहले हो। **शिरोभ्यां सिरोभिः** इत्यादि द्वन्द्व होनेपर एकशेष करेगे तब **पन्थानौ पन्थानः पथिभ्यां पथिभिः** में ऋक्प्यूरब्धूः से 'अ' प्रत्ययान्त होता। वह नहो अतः एकशेष।

॥ इति एकशेषः ॥

अथसर्वसमासशेषः—अनेक अर्थ, समानशब्द। समान अर्थ, शब्दभेद, विरुपशब्द, विरुप अर्थ आदिके सम्बन्धमें एकशेषवृत्ति कहा। अब सभी **समास**=अलग अर्थोंके एकार्थका शेष=अवशिष्ट सामान्य व्यापक विषयका अध्याय आरम्भ। परार्थाभिधानं समुदाय अर्थ हो (वृत्ति) है। **वर्तते एकीभूय भवति अर्थः अनया जहत्स्वार्था,** अपने अर्थका महत्व न देखकर समुदायका अर्थ कहना। **वृत्यते सम्बध्यते दुग्धजलवत् मेलयते, घृततैलवत् एकीभूयते अर्थः अस्याः इति वृत्तिः।** यह सभी समास=एकार्थीभावमें रहती है सभी समासके उपयोगी वृत्तिके पांच रुप जैसे—**कृदन्तरूप तद्धितरूप समासरूप एकशेषरूप सन्यकाम्यच् आदि प्रत्ययान्त धातुरूप में पांच प्रकारकी वृत्तियां मिलती।** दीक्षितने लक्षण लिया कि **परार्थाभिधानं वृत्तिः। समर्थः पदविधि के भाष्यसे। परस्य समुदायस्य अर्थः परार्थः मिलितार्थः।** विग्रहमें जो पद है उनके अर्थोंसे विशिष्ट एकार्थ, समुदायका अर्थ। **विग्रहे पदानां समुदायशक्तिः परः, तम् अभिधीयते उच्चते प्रकाश्यतेऽनेन परर्थाभिधानं करणे ल्युट्,** एकपद, एकअर्थ, एकशक्ति कहनेका साधन वृत्ति है। **सामान्ये नपुंसकम्।** इन पांचोंमें समास तद्धित दो पूर्ण पदविधि है। **सुप्सुपा** सुबन्तका सुबन्तके साथ समास। सुबन्तसे तद्धितकी उत्पत्ति। कृदन्तमें भी **उपपदविधि कर्मण्यण् पदविधि** है। **सुप आत्मनः क्यच् पदविधि** है **विभक्तयन्तानां एकशेषः पक्षमें** एकशेष भी **पदविधि** एकार्थभाव। सबमें प्रकृति प्रत्यय अर्थ मिलकर या पदोंके अर्थ मिलकर

निष्ठितत्वात्साधुर्लौकिकः । प्रयोगानर्होऽसाधुरलौकिकः । यथा राज्ञः पुरुषः, राजन् अस् पुरुष सु इति । अविग्रहो नित्यसमासः, अस्वपदविग्रहो वा । समासश्चतुर्विध इति तु प्रायोवादः । अव्ययीभावतत्पुरुषबहुव्रीहिद्वन्द्वाधिकारबहिर्भूतानामपि 'सह सुपा' (सू ६४६) इति समासविधानात् पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावः, उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषः, अन्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिः, उभयपदार्थ-

---

एक अर्थ हों वर्थह अखले जिससे यह लक्षण तिङन्त सुबन्तमें नहीं जात, एकार्थभाव न होनेंसे । क्योंकि रामः अपूपं खादति, यहां खादका दो अर्थ चबाकर लीलना फल, मालपूआ में है उसकी क्रिया राममें, अर्थ भेद हुआ । ति का भी चार अर्थ कर्ता कर्म संख्या काल, एकार्थीभाव बनेगा नही । मृदुपचति मुलायम पकाता है । पच का दो अर्थ पाक और पकानेके अनुकूल क्रिया । अन्वयफल में है पूरे पचतिमें नहीं सविशेषणानां वृत्तिर्न वृत्तस्य च विशेषणयोगो न **वृत्यर्थ**=उनवृत्तियोंके अर्थका बोधक वाक्य विग्रह है । यद्यपि वृत्तिमें ही समुदायशक्तिसे एक अर्थ है, वाक्यमें एकार्थीभाव नहीं, तथापि समासके योग्य विभक्त्यन्त समुदाय ही विग्रह वाक्य है । **स द्विविधः** वह विग्रह वाक्य दो है लौकिक अलौकिक । जो व्याकरण प्रक्रियासे संस्कार किया हुआ हो या शिष्टों से मान्य हों वह साधुशव्द **लौकिक**=लोके समाजे प्रयोगयोग्य है समाजमें उपयोगके **अनर्ह** अयोग्य वह असाधु सूत्र संस्कारहीन **अलौकिक** है । उदाहरणके स्थानमें यथा—**राज्ञःपुरुषः** यह लोक में उपयोग योग्य लौकिक है **राजनङस् पुरुष सु** अलौकिक वाक्य, ऐसे से समाज में अर्थ नहीं लगता, यह केवल शास्त्रमें उपयोगी है । जो नित्य समास है उनका **अविग्रह**=लौकिक विग्रह वाक्य नहीं होता, क्योंकि उस वाक्यसे संज्ञाविषयक समासमें संज्ञा अर्थ नहीं खुलता । क्योंकि वह नित्य समास है । **अस्वपदविग्रह**=समास अर्थवाले पद जैसे (एव, मात्र) एवके साथ विग्रह मात्रके साथ समास जैसा स्वपद (नहि स्वपदेन) विग्रह है । यह गौण है । क्योंकि वाक्य की वृत्ति समानार्थिका नहीं है ।

समासभेदके विषय (चतुर्विधः) चार प्रकारके है प्रायः उनके लक्षणके अनुकूल अर्थ घटता है । **अव्ययीभावः** पूर्वपदका अर्थप्रधान एकार्थीभाव जैसे दिशयोर्मध्ये उपदिशं (दिशाओंके मध्यमें) 'अप' का मध्य अर्थ प्रधान । **तत्पुरुष**=पुरुष उत्तरपद है, उसके अर्थकी प्रधानता प्रायः अधिकांश है । **उत्तरपदार्थप्रधानः तत्पुरुषः, अन्यपदार्थप्रधानः बहुव्रीहिः** जेसे **पीतमम्बरं यस्यस**

प्रधानो द्वन्द्वः, इत्यपि प्राचां प्रवादः प्रायोऽभिप्रायः। सूपप्रति उन्मत्तगङ्गम्। इत्याद्यव्ययीभावे, अतिमालादौ तत्पुरुषे, द्वित्राः इत्यादिबहुब्रीहौ, दन्तोष्ठम् इत्यादिद्वन्द्वे चाभावात्। तत्पुरुषविशेषः कर्मधारयः। तद्विशेषो द्विगुः। अनेकपदत्वं द्वन्द्वबहुव्रीह्योरेव। तत्पुरुषस्तु क्वचिदेवेत्युक्तम्। किं च—

सुपां सुपा तिङा नाम्ना धातुनाऽथ तिङां तिङा।
सुबन्तेनेति विज्ञेयः समासः षड्विधौ गुणैः॥

पीताम्बरः विष्णु अर्थ हुआ। न पीत अर्थ रहा, न अम्बर। **उभयपदार्थ प्रधानः द्वन्द्वः रामलक्ष्मणौ व्रजतः**। गमनक्रियामें दोनों प्रधान है। प्रायस् अव्ययका बहुल अर्थ, अधिकांशका सूचक, इसका कारण कहा कि उन चारों समासोंके अधिकारसे **बहिर्भूत**—अलग पढ़े गये समासोंके लिए भीं **सहसुपा** सूत्र पढ़ा। उसकी सफलताके लिए प्रायः कहना ठीक है। क्रमसे पूर्वपदका अन्यपदका, दोनों पदका अर्थप्रधान समास प्राचीनोंने कहा। उनका यह **बाद**, लक्षण प्रायः बहुलताके विचारसे है **। व्यभिचार दोष प्रस्तुत करते है**। सूपस्य लेशः दालका गन्ध उत्तरपद, प्रतिका **अर्थ** प्रधान हो गया अव्ययीभावका लक्षण नहीं घटा। **उन्मत्ता गङ्गा यस्मिन्देशे उन्मत्तगङ्गं लोहितगङ्ग** देशः से अन्यपद देशका **अर्थ** निकला, पूर्वपदका अर्थ मुख्य नहीं रहा। इससे सिद्ध है **सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु चविभक्तिसु**। लिङ्ग और विभक्तिकी किसी दशामें भेद न होना मुख्य लक्षण है।

तत्पुरुषमें व्यभिचार=मालामतिक्रान्त अतिमालः इस तत्पुरुषमें पूर्वपद का **अर्थ** मुख्य है। उत्तरपदका अर्थ प्रधान नहीं। **द्वौ** वा त्रयो वा दो या तीन बहुब्रीहि है। अन्य पदार्थ दुर्लभ। किन्तु अभयपदार्थ मुख्य। **दन्तोष्ठं दन्ताश्च ओष्ठौच** इस द्वन्द्वमें समुदाय अर्थ प्रधान है। उभय पदार्थं नही। प्रायः का यही अभिप्राय है। **तत्पुरुषका वह भेद कर्मधारय है जो समानाकिरण** समान विभक्ति समान आधारवाला तत्पुरुष है। **तद्विशेषः द्विगुः** वही कर्मधारयका एक भेद द्विगु समास है। जो सङ्ख्या पूर्वमें प्रसिद्ध हो जैसे **पञ्चानां राज्ञां समाहारः पञ्चराजम्** पञ्चसंख्या, राजा,—संख्येय गणनाकी वस्तुदोनों के बीच समास द्विगु है द्वौ **गवौ** अवयवौ यस्य स द्विगुः। **अनेकपद**=दो तीन चार आदि पदका समास द्वन्द्वमें और बहुब्रीहिमें ही होता है। **अनेकमन्यपदार्थे** सूत्रमें अनेक पढ़नेसे तत्पुरुषमें कहीं अनेकपद है जैसे **द्वयह्न जातः** भाष्यमें प्रमाण है। सामान्य रुपसे समास लक्षण बोले—**सुपां सुपा**=सुबन्तका सुवन्तके साथ, सुबन्त

सुपां सुपा् राजपुरुषः। तिङा, पर्यभूषयत्। नाम्ना, कुम्भकारः। धातुनाप कटप्रूः। अजस्रम्। तिङां तिङा पिबतखादता। खादतमोदता। तिङां सु कृन्तविचक्षणेति यस्यां क्रियायां सा कृन्तविचक्षणा। एहीडादयोऽन्यपदार्थे इति मयूरव्यंसकादौ पाठात्समास। ।

।। इति सर्वसमासशेषप्रकरणम् ।।

तिङन्तके साथ, सुबन्तका प्रातिपदिकके साथ, सुबन्तका धातुके साथ समास। अथ=अनन्तर तिङन्तका तिङन्तके साथ, तिङन्तका सुबन्तके साथ समास छः प्रकारके है। पण्डितोसे विज्ञेयः निर्णीत है। एकका उदाहरण–सुपां सुपा= राजपुरुषः राजन् ङस् का पुरुषसु के साथ सुबन्त समास, सुबन्तका तिङ्न्तके साथ पर्यभूषयत्, सह सुपाके 'सह' योग विभागसे सुबन्तसे परिका तिङन्त अभूषयत्का समास। सुबन्तका प्रातिपदिकके साथ कुम्भकारः कुम्भ ङस् कार उपपद समास। सुबन्तका धातुके साथ कटपूः कटं प्रवते चटाई बुनता है। प्रू–गतौ धातु है। क्विब्वचि–क्विप् दीर्घ प्रू (कृदन्तशब्द प्रायः धातु धर्म नहीं छोड़ते) के साथ सुबन्त कटं का समास। उपपद का भ्रम न करें सप्तमीके अभावसे। अन्य उदाहरण। अजस्रं न जस्यते अवरोध न होना, निरन्तर नमिकम्पि सूत्र–से 'र' जस धातुके साथ न समासः, निपातनसे। तिङन्तका तिङन्त के साथ उदाहरण पिबतखादत पियो खाओ ऐसा उच्चारण जिस क्रियामें हो उसका नाम पिबतखादता मयूरव्यंसकादिसे समास। खाओ मस्त रहो खादत मोदता। दोनों तिङन्तका एकार्थीभाव। तिङ्का सुबन्तके साथ समास कृन्त हे विचक्षण छिन्धि हे साहसी काटो, ऐसी आवाज जिस क्रियामें हो कृन्तविक्षणाः तिङन्तका सुबन्तके समासके साथ एकार्थीभाव कैसे ? तब बोले एहीडादयः एहि इड (आओ स्तुति करो) यहाँ अन्य पदार्थमें समास। सुप्का तिङ के साथ तिङ्का सुप्के साथ समास एक ही बात है। अतः च्चविध समास कहना ठीक है कोइ पूर्वपद उत्तरपद भेदसे खड्विधि समासको साधु कहते है।

। इति सर्वसमास एकशेषः।

अथसर्वसमास–साधारणप्रत्यय समासका अन्तिम अवयवके प्रत्ययो अध्याय ।

। ९४० । **ऋक्पू–ऋगाद्यन्तस्य**=ऋक् पुर् अप धुर् पथिन् ये अन्तमें हों, ऐसे समास का अवयव अप्रत्यय हो। अ अनक्षे=सूत्रमें अ लुप्त प्रथमान्त हैं समासान्ताःका अधिकार। समास विशेष्य, विशेषणमें तदन्त। अनक्षे–धुरसे

अथ सर्वसमासान्तप्रकरणम्

९४०:**ऋक्पूरब्धू:पथामानक्षे ५।४।४७।।** अ अनक्षे इति च्छेदः। ऋगाद्यन्तस्य समासस्य अप्रत्ययोऽन्तावयवः स्यात्, अक्षे या धूस्तदन्तस्य तु न। अर्धर्चः। अनृचवह्वृचावध्येतर्येव। नेह, अनृक्साम। बह्वृक्सूक्तम्। विष्णोः पूर्विष्णुपुरम्। क्लीबत्वं लोकात्। विमलापं सरः। ४१ **द्व्यन्तरूपसर्गेभ्यो ऽप ईत् ६।३।९७।।** अप इति कृतसमासन्तस्यानुकरणम्। षष्ठ्यर्थे प्रथमा।

ही सम्बन्धित है, अन्तसे नहीं। अतः कहा **अक्षेतु**=अक्षसम्बन्धिनी या धूः। अधिकरणे सप्तमी। अक्षके आधारकी धुरी हो तब। तदन्तसे अ प्रत्यय नहीं होता। **ऋचाम् अर्धमर्धर्ध** मन्त्रों का आघा, अर्धनपुंसकं समासे। ऋक्पू०से समासका अन्त अवयव अ। अर्धर्चाः पुंसि। अनक्षे=यदि अक्ष पूर्वपद हो तब 'अ' हो ऐसा कहे। **दृढ़धूरक्षः** मजबूत धुराकी पहिया। यहाँ अ प्रत्ययका निषेध नहीं होगा। यदि कहेंकि अक्षे समासार्थे न, तब अक्षधूः। अतः दोनोंके संग्रह के लिए व्याख्यान उचित। **अनृचः=अविद्यमानाः ऋचो यस्य बह्वृचः ऋच यस्य बह्वृचः।** ऋग्वेदकी शाखाका अध्ययनकर्ता अर्थ में ही, 'अ' प्रत्यय हो। इस नियमका फल नेह=यहाँ नहीं हुआ, **अविद्यमानाः ऋचो यस्मिन् अनृक्साम।** यहाँ ऋग्वेद अध्ययनकर्ता अर्थ नहीं है। ऋचि—अध्यूढं **प्रजापतेर्हृदयं साम।** मंत्र प्रजापतिका हृदय न हो, वह साम गायन यदि समासान्त अप्रत्यय नहीं रहेगा तब शेषाद्विभाषासे कप् अनृचकः भी होगा। **बह्वचऋचो यस्मिन् बहु-ऋक्सूक्तम्** बहुत मन्त्रोवाला देवस्तुति। **पुर--अन्त=विष्णोः पूः** समासे सूत्रेण 'अ' प्रत्यये **विष्णुपुरं** वैकुण्ठः। पुर् शब्द स्त्री० है। परलिङ्ग उचित-तब कहा-क्लीबत्वं नपुंसक लोकप्रसिद्धिसे। **अप अन्त-विमलापं विमला आपो यस्मिन्** निर्मल जलवाला तालाब अन्यपदार्थमें समास सूत्रसे अप्रत्यय नपुं०। ४१। **द्व्यन्त**=द्वि, अन्त और उपसर्ग इनसे परे कप्को ईत्। यहाँ अप कृत समासान्त=अप्रत्यय अन्तमें अवश्य हो। अतः येनविधिः सूत्रमें **आपस्तिष्ठन्ति स्वापस्तिष्ठन्ति** प्रमाण, वहाँ अप अकारान्त है। आदेः परस्यसे आदि अ को ही ई होगा। **द्वीपं द्वयोः पार्श्वयोः गता आपो यस्मिन्स्थले** दो तरफसे पानी भरा हो जिसमें, इससे व्यधिकरण विषमविभक्तिकी बहुव्रीहि सूत्रसे अप्रत्यय, द्व्यन्तसे ईत् सवर्णदीर्घ **द्वीपम्।** अन्तर्गता आपो यस्मिन् **अन्तरीपं** भीतर भरा जलका स्थान। समास 'अ' अप्के अ को ई। **पतिकूला आपो यस्मिन्समीपं** त्रिवेणी सङ्गम। सर्वत्रसमास, अन्त 'अ' अप्के आदि अ को ई होगा। **उपसर्गसे परे आपसमापो देवयजनं** यह श्रुति है। यदि उपसर्गसे

एभ्योऽपस्य ईत्स्यात्। द्वयोर्गता आपो यस्मिन्निति द्वीपम्। अन्तरीपम्। प्रतीपम्। समीपम्। 'समापो देवयजन' मिति तु समा आपो यस्मिन्निति बोध्यम्। कृतसमासान्त ग्रहणान्नेह स्वप् स्वपी।* 'अवर्णान्ताद्वा' प्रेपं परेपम्। प्रापम्। परापम् ४२ ऊदनोर्देशे ६।३।९८॥ अनोः परस्यापस्य ऊत्स्याद् देशे। अनूपो देशः। राजधुरा। अक्षे तु—अक्षधूः। दृढधूरक्षः। सखिपथः रम्यपथो देशः। ४३ अच्प्रत्यन्ववपूर्वात्सामलोम्नः ५।४।७५॥ एतत्पूर्वा-

---

परे नहीं, आपको ईत्व भी नहीं, क्योंकि **समा आपो यस्मिन्** (समान जल हो जिसमें) वह यज्ञ भूमि कौन, **देवाः इज्यन्ते यस्मिन्** देवताओंकी पूजा सङ्गति दानकी यज्ञभूमिः का समाप अर्थ है। तुल्य जलका स्थान। पुलिङ्ग छान्दस्। भाष्यमें **समापः ईत्वप्रतिषेधो वक्तव्यः**। समीप समृद्धिसे समीप भी प्रमाणित। कृत=किया हुआ समासान्त 'अ' प्रत्यय हो, तभी ईत्व, शोभना आपो यस्य मीठा जल है जिसका **स्वप्** गङ्गा। न पूजनात्के निषेधसे समासान्त अ नहीं, तब दीर्घ भी नहीं। स्वपी द्विवचन औ शी। **अवर्णान्तात्**= अकारान्त उपसर्गसे परे अपस्य=अपके अ को ई विकल्प हो। **प्रगताः आपो यस्मिन्प्रापं** (बहुत बड़ा जल का बाँध) समासे समासान्त 'अ'। प्र अवर्णान्त है। अपके अको ई, गुण प्रेपम्। इत्व नहीं हुआ। तब दीर्घ प्रापं, वाढ़का स्थान। **परागता आपो यस्य** लौटा हुआ जलवाला स्थान। यहाँ भी समास 'अ' विकल्प इत्, गुण **परेपं** पक्षे दीर्घे **परापम्**।

।४२। **ऊदनोः** अनु० से परे अप्के अको ऊत् हो देश अर्थमें। इत्को बाँधकर। आदेः परस्य। **अनुकूला आपो यस्मिन्देशे स अनूपः**। सर्वप्रिय जलवाला, समास, 'अ' ईको बाधकर सूत्रसे ऊ, सवर्णदीर्घ। **जलप्रायमनूपः स्यादित्यमरः**। **अनूपो गोमान् गोभिः इति नावगृह्णन्ति केचित्**। सूत्रोंमें अपका प्रपञ्च पूर्ण। अथ धुरअन्तका उदाहरण—**राज्ञो धूः राजधुरा**। यहाँ धुरका राज्य अर्थ (राजाका राज्य) समासे अ प्रत्यये परलिङ्ग स्त्री टाप्। **अक्षेतु** अक्ष संम्बन्धिनीं या धूः। वह अन्तमें हो उससे अप्रत्यय न हो ऐसा कहनेका फल अक्षधूः रथके दोनों पहियोंको जोड़नेका दण्ड अक्ष है उस दण्डके दोनों अग्र भागको चक्रके छिद्रमें आशक्त। उसका अग्रभाग धुर है **रथाऽवयवो दण्डः अक्षः तस्य अग्रं धूः** 'अ, का निषेध हुआ **अक्षस्याग्रं धूः**। **दृढा धूर्यस्य दृढधूः**। समासे अनक्षे तु अ प्रत्ययका निषेध। यदि अक्ष पूर्वपद, धुरको अ,न हो ऐसा कहें तब निषेध नहीं होगा। पथिनका प्रयोग—**सखा च पन्थाश्च सखि**

त्सामलोमान्तात्समासादच् स्यात् । प्रतिसामं, अनुसामं, अवसामं प्रतिलोमम् अनुलोमम् । अवलोमम् ।* कृष्णोदक्पाण्डुसङ्ख्यापूर्वाया: भूमेरजिष्यते कृष्णभूमः । उदग्भूमः पाण्डुभूमः । द्विभूमः प्रासादः ।* 'सङ्ख्याया नदीगोदावरीभ्यां च' । पञ्चनदम् । सप्तगोदावरम् । अच् इति योगविभागादन्यत्रापि । पद्मनाभः । ४४ अक्ष्णोऽदर्शनात् २।४।७६।। अचक्षुः पर्यायादक्ष्णोऽच्स्यात्स-

---

पथः । द्वन्द्व अ,प्रत्ययः नस्तद्धिते । अथवा सख्युः पन्था सखिपथः । रम्यः पन्था यस्य रम्यपथो देशः । रमणीय रास्ताका देश । समासान्त अ टिलोप स्वादिः ।

। ४३ । अच् प्रति अनु अव पूर्वमें सामन् लोमन् अन्तमें हो, ऐसे समाससे अच् कहें । प्रतिगतं साम प्रतिसामं समासे प्रतिपूर्वक सामन्से अच् तद्धित परे टिलोपे अनुगतं साम अवसामं अच् टिलोप । प्रतिगतं लोम प्रतिलोमं विपरीत रोंगटे, अनुगतं लोम अनुलोमं अनुकुल अर्थ । अवगतं लोम अवलोमं कृष्णप्रतिकूल । अनुकूल आदि अर्थ समास होने पर अच् टिलोप सबमें । प्रामाणिक वचन कृष्ण काला, ऊदक–पाण्डु–सफेद और संख्या पूर्वमें हो, भूमि अन्तमें ऐसे समाससे अच् होंना इष्ट है । कृष्णाभूमिर्यस्य कृष्णभूमः प्रासादः (काली भूमि वाली महल) समासे वचनसे अच् । टिलोप स्वादिः । ऊदीची भूमिर्यस्य उत्तरदिशाकी भूमिवाला महल । अच् टिलोप । पाण्डुः भूमिर्यस्य पाण्डुभूमः ग्रामः । द्वे भूम समाजः तिस्रोभूमयो यस्य त्रिभूमः प्रसादः । सभीमें समास, अच् टिलोप स्वादिकार्य समझें (वा०) संख्या का नदी, नदी और गोदावरी शब्दके साथ समास होने पर अच् होना पसन्द है । पञ्चानां नदीनां समाहारः पञ्चनदम् एवं सप्तानां गोदावरीणां समाहारः सप्तगोदावरं पाँच नदीयों, का समुदाय, सात गोदावरीका समुदाय । नदीभिश्चसे अव्ययीभाव समास । वार्तिकसे अच् । यस्येति च इलोपे । सु को अम् नाव्ययीभावात्सूत्रसे । सूत्रमें अचिके योगविभागसे अन्यत्र भी अच् इष्ट है पद्मं नाभौ यस्य विष्णुके नाभिमें कमल है । अच् इलोपे । यह योग विभाग भाष्यमें देखा नहीं गया अतः पृषोदरादीनि यथोपदृष्टंसे सिद्ध । जैसा उपदेश वैसा मान्य

। ४४ । अक्ष्णोः । दृश्यते अनेन दर्शनं चक्षुः । करणमें ल्युट् । अदर्शनम् आंखसे दर्शनका विषय न हो, उसके पर्याय अक्षन्से समासका अन्त अच् हो । गावः किरणानि अक्षीव । रन्ध्रः छिद्रं गवां अक्षीव गायकी आँखकी तरह छिद्र को गवाक्षः (झरोखा) 'इव'से लक्षणा । मुख्य अर्थ न होनेसे । लोकके अनुकूल पुं० समासे अवङ् । गवाक्षिन्–से अच् । नान्त, टिलोप दीवालका छिद्र ।

मासान्तः। गवामक्षीव गवाक्षः। १४५ अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनडुहर्क्सामवाङ्मनसाक्षिभ्रुवदारगवोर्वष्ठीवपदष्ठीवनक्तन्दिवरात्रिन्दिवाहर्दिवसरजसनिःश्रेयसपुरुषायुषद्व्यायुषत्र्यायुषर्ग्यजुषजातोक्षमहोक्षवृद्धोक्षोपशुनगोष्ठश्वाः ५।७।७७।। एते पञ्चविंशतिरजन्ताः निपात्यन्ते। आद्यास्त्रयो बहुव्रीहयः। अविद्यमानानि चत्वारि यस्य अचतुरः। विचतुरः। सुचतुरः।* 'त्र्युपाभ्यां चतुरोऽजिष्यते' त्रिचतुराः। चतुर्णां समीपे उपचतुराः। तत एकादश द्वन्द्वाः। स्त्रीपुंसौ। धेन्वनडुहौ। ऋक्सामे। वाङ्मनसे। अक्षिणी

। ९४५। अचतुर विचतुर आदि २५ शब्दको निपातनसे (समास) अच् टिलोप आदि हो। आरम्भके तीन बहुव्रीहिमें ही मान्य। तत्पुरुषमें अचत्वारः विचत्वारः सुचत्वारः आदि होते है। अविद्यमानानि=अनुपस्थित है ४ जिसके वे अचतुरः समास, विद्यमानपदका लोप। 'अचतुरः—सूत्रेण अच् आदि, निपातनसे। विगतानि चत्वारि यस्य चार वस्तु खो गयी है जिसकी' विचतुरः समासे अच् आदि। शोभनानि चत्वारि यस्य। समासे न पूजनात् के निषेध को बाधकर अच् आदि निपातनसे। अच्छी चार वस्तु है जिसकी। वार्तिक त्र्युपा=त्रि और उप पूर्वमें हो उससे परे चतुर शब्दसे अच् हो। त्रयो वा चत्वारो वा त्रिचतुरा ३ या ४ 'सङ्ख्याव्यय'—बहुव्रीहिसमासे डच् को बाधकर निपातनसे अच्। डच् होता टिलोप हो जाता। ४ के समीपमें जो है वे उपचतुराः ३ या ५ लगभग ४ पूर्ववत् समासादिः। ततः उसके बाद ११– द्वन्द्व ही है। यह भाष्यवचन। स्त्री च पुमाँश्च द्वन्द्व समासे, बड़े सूत्रसे अच् आदि निपातनसे। अच न होता, स्त्री० बनता। धेनुश्च अनड्वांश्च गया और बैल धेन्वनडुहौ। अच् होने पर द्विवचन औ। नहीं तो अनड्वाहौ बनता। समाहार द्वन्द्व होता, द्वन्द्वाच्चुदषसे सिद्ध होता। ऋक्च साम च ऋक्सामें अच् और टिलोप, शी गुण अच् न होता ऋक्सामनी बनता। वाक्च मनश्च वाङ्मनसे अच् का फल है। नहीं तो वाङ्मनसी होता। अतिभ्रुवम् आँख और भौ, द्वन्द्व समास, अच्। प्राणि का अङ्ग एकवन रूप। नहीं तो अक्षिभ्रु होता। दारा स्त्रियाँ और गायें हैं। दारगवं, तेषां समाहारः, द्वन्द्वसे अच् अव् नपुंसक। अच् न होता दारगु बनता। इतरेतर द्वन्द्वमें दारगावः सन्ति स्त्रियाँ और गायें है। उरू—सक्थिनी जंघे अष्ठीवन्तौ जानुनी घुठने। एतेषां समाहारः। सक्थि क्लीबे पुमानूरू जानूरूपर्वाष्ठीवदस्त्रियां, जानु उरु पर्व अष्ठीवत्। ये सब घुठना गाँठ अर्थमें। समासे अच् टिलोपे। उर्वष्ठीवं, डित्

च भ्रुवौ च अक्षिभ्रुवम् । दाराश्च गावश्च दारगवम् । ऊरू च अष्ठीवन्तौ च ऊर्वष्ठीवम् । निपातनाट्टिलोपः । पदष्ठीवम् । निपातनात्पादशब्दस्य पद्भावः । नक्तं च दिवा च नक्तंदिवम् । रात्रेर्मान्तत्वं निपात्यते । अहनि च दिवा चाहर्दिवम् । वीप्सायां द्वन्द्वो निपात्यते । अहन्यहनीत्यर्थः । सरजसमिति साकल्येऽव्ययीभावः । बहुव्रीहौ तु सरजः पङ्कजम् । निश्चितं श्रेयो निःश्रेयसम् । तत्पुरुष एव नेह । निःश्रेयान् पुरुषः । पुरुषस्यायुः पुरुषायुषम् । ततो द्विगुः द्वयायुषम् । ततो द्वन्द्वः ऋग्यजुषम् । ततस्त्रयः कर्मधारयाः । जातोक्षः । महोक्षः । वृद्धोक्षः :

नहीं, नान्त नहीं, टिलोप कैसे ? निपातनसे । **पादौ च अष्ठीवन्तौ च** पाँव घुटने प्राणिके अङ्ग एकवचन **पदष्ठीवं** भसंज्ञा नहीं, पादको पद कैसे ? निपातनसे पादको पद हुआ । नक्तं मान्त अव्यय, दिवा आ अन्त अव्यय । रात का द्वन्द्व एकार्थसे अच् । यस्येति आलोप, अव्ययसंज्ञा, नपुंसक **नक्तन्दिवं** नाव्ययीभावात्से सु को अम् । **रात्रौ च** रातमें दिनमें रात और दिन का द्वन्द्व सुपो लुक् । रात्रि को मान्त निपातनसे । यस्येति आलोप अम्भाव, **रात्रिन्दिवं** कोलाहलम् । **अहन् दिवा च** प्रतिदिनम् **अर्हदिवं** कार्य, निपातन से अच्, आलोप । रोऽसुपि न को **र**, अच् आलोप अम्भाव । अहन्शब्द, और दिवा का अर्थ एक है, सह भाव नहीं है समास कैसे ? यदि एक-एकदिन का भेदमानकर द्वन्द्व हो भी तब विरुपाणामपि समानार्थानाम् अर्थ एक हो रूप-भेद हो, एक शेष अवश्य होगा । तब बोले **वीप्सायां= नित्यवीप्सयोः** से द्वित्व होने पर एक शेष को बाधकर निपातन से समास । उसका अर्थ अहन्यहनि प्रतिदिन होगा । रजोऽपि अपरित्यज्य **सरजसं** धूलि को भी न छोड़कर सम्पूर्ण शाकल्य अर्थमें रजस् के साथ अव्ययीभाव । अव्ययीभावे च काले-सह को स, अच् अव्ययीभाव मान्य । बहुव्रीहि समास में **रजोभिः परागैः सह सरजः कमलं तेन सहेति तुल्ययोगे समासे (वा—उपसर्जनस्य** सह को सह, अच् नहीं हुआ । निश्चित है श्रेय कल्याण कर्मधारय समाससे अच् **निःश्रेयसम् अस्तु** निश्चित कल्याण हो । तत्पुरुष से ही अच् हो, अतः बहुव्रीहि में **निश्चितं श्रेयो यस्य निःश्रेयान्पुरुषः** यहाँ अच् नहीं हुआ । इयसश्च के निषेध से । कप् भी नहीं । पुरुष की आयु **पुरुषायुषं** षष्ठी समास से अच् । ततो द्विगुः । संख्यापूर्व के समास से अच् । **द्वयोः आयुषोः समाहारः** दो की आयुका मेला **द्वयायुषं** वर्धतां दुगुनी आयु हो । **त्रयाणां आयुषां समाहारः त्र्यायुषम् जमदग्नेः** तिगुनी आयु हो । तद्धितार्थोत्तर द्विगुसमास अच् । ततो द्वन्द्वे तिभाष्य वचनम् । **ऋचश्च यजूंषि च येषां समाहारः**

शुनः समीपमुपशुनम्। टिलोपाभावः सम्प्रसारणं च निपात्यते। गोष्ठे श्वा गोष्ठश्वः। ४६ ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः ५।४।७८॥ अच्स्यात्। ब्रह्मवर्चसम्। हस्तिवर्चसम्।* 'पल्यराजाभ्यां चेति वक्तव्यम्' पल्यवर्चसम्। राजवर्चसम्। ४७ अवसमन्धेभ्यस्तमसः ५।४।७९॥ अवतमसम्। अन्धयतीत्यन्धम्। पचाद्यच्। अन्धं तमोऽन्धतमसम्। ४८ श्वसो वसीयः श्रेयसः ५।४।८०॥ वसुशब्दः प्रशस्तवाची। तत ईयसुनि वसीयः। श्वस्शब्दः उत्तरपदार्थप्रशंसामाशी-

---

ऋग्वेद यजुर्वेदका समुदाय। अच्। ततः तीन कर्मधारय है। जातश्चासौ उक्षाच महोक्षः। तगड़ा विशाल बैल। समास आन्महतः से आ, अचि टिलोप। वृद्धोक्षः बूढ़ा बैल। वृद्धश्चासौउ क्षा च, अचि टिलोप। शुनः समीपं कुत्ताके पास उपशुन् गच्छ। समीप अर्थ में अव्ययीभाव समाससे अच्, नपुंसक। शङ्का—नस्तद्धिते टिलोप क्यों नहीं। श्वयुवमघोनां' सूत्र तद्धितमें सम्प्रसारण नहीं करता। तब बोले बड़ा सूत्र ही टिलोपका अभाव औस सम्प्रसारण कार्य निपातन से करता है। गोष्ठेश्वा, गोशालामें कुत्ता। सप्तमीसमाससे अच्, इसी भाष्यसे सप्तमी समास टिलोप। अतद्धिते कहनेसे सम्प्रसारण नहीं। गोष्ठस्य श्वा षष्ठीसमासमें अच् नही होता।

।४६। ब्रह्म और हस्तिसे वर्चस् से अच् हो। ब्रह्मणो वर्चः ब्रह्माका तेज, अच् हुआ। हस्तिनो वर्चः हाथियोंका हावी झुण्ड। अच अन्त हुआ। पल्य और राज से परे वर्चस् से भी अच् कहे। पलं मांसं तदर्हति पल्यः मांस भोजी, तस्य वर्चः प्रभावः अजन्तः। राज्ञां वर्चः राजाओंका तेज प्रभाव। अच् अन्त।४७। अव सम अन्ध इनसे परे तमस् से अच् हो। अवहीनं तमः अवतमसं घोर अन्धकार। सततं तमः निरन्तर अंधेरा। सन्तमसं प्रादि समास, अच् अन्त दोनों है। अन्ध दृष्टचुपघाते, चुरादिः। आँख ज्योति नाश के अनुकूल क्रिया। अन्धयति दृटिं प्रतिबध्नाति अन्धं, पचादिः अच्, टिलोपे अन्धंगाढं तमः अन्धतमसंघोर अन्धकार हाथ न सूझे। कर्मधारयसमासे अच्। ।४८। श्वसः इस अव्ययसे परे वसीयस् और श्रेयस् शब्दसे अच् हो। वसीय-प्रशस्त बहुमूल्य अर्थमें 'यं कामयते वसीयान्स्यात् प्रशस्त अर्थ में वसीय देखा गया। अतिशयेन वसुः वसीयः बहुत धनवान्। द्विवचन विभज्य-ईयस्। टिलोपे वसीयस्। श्वस् यद्यपि कालवाची आगामी दिन अर्थ में हैं, तथापि यहाँ शब्दशक्तिके स्वभावसे उत्तरपदके अर्थमें प्रशंसा और आशीर्वादका विषय प्रकाशित करता है आशिषो विषयः आशीर्विषयः तं प्रकाशति श्वस् उत्तार-

दित्यर्थः। मयूरव्यंसकादित्वात्समासः। श्वोवसीयसम् श्वाश्रेयसं ते भूयात्
४६ अन्ववतप्ताद्रहसः ४।५।८१।। अनुरहसम्। अवरहसम्। तप्तरहसम्।
५० प्रतेरुरसः सप्तमीस्थात् ५।४।८२।। उरसि प्रति प्रत्युरसम्। विभ-
क्त्यर्थेऽव्ययीभावः। ५१ अनुगवमायामे ५।४।८३।। एतन्निपात्यते
दीर्घत्वे। अनुगवं यानम्। यस्य चायामः' इति समास। ५२ द्विस्तावा
त्रिस्तावा वेदिः ५।४।८४।। अच्प्रत्ययष्टिलोपः समासश्च निपात्यते। यावति

पदके अर्थगत प्रशंसाका प्रकाशकः। यदि ऐसा समान आधारके विना समास कैसे ? तब कहा **मयूरव्यंसकादिगण** मानकर समासे। **श्वोवसीय**–सूत्रसे अन्त अच्। अधिक प्रशंसनीय धन। **श्वश्रेयसम् अतिशयेन प्रशस्तं धनं** बहुत प्रशंसनीय कला, प्रशस्तसे ईयस् 'श्र' आदेश। "प्रकृत्या एकाच्" से न का लोप। आद्‌गुणे श्रेयस्। श्वस् शब्द उत्तारपदके अर्थकी प्रशंसा का प्रकाशक **श्वः श्रेयसं शिवं भद्रं ते भूयात्। श्ववसीयसं** ते भूयात्। श्व श्रेयसं भूयात्। ४६। **अनु, अव, तप्त** इनका समाहार द्वन्द्व। इनसे परे रहससे अच् हो। एकान्त अप्रकाशप्रदेशा रहः का अर्थ। **अनुगतं रहः अनुरहसम्** ज्ञातशून्यस्थानम् **अवहीनं रहः** इति विग्रहे प्रादिसमासे अच्। **अवरहसम्** एकान्तका अभाव। **तप्तं रहः तप्तरहसम्** उष्ण एकान्त। अच्।

। ९५०। **प्रतेः** सप्तमी अर्थमें स्थित द्योतक, प्रतिसे परे उरससे अच् हो उरसि इति। हृदयमें जो हो, **अनेन यदुच्यते तदेव प्रत्युररसं**, सप्तमी अर्थका द्योतक प्रति विभक्ति अर्थमें है। अतः अव्ययं विभक्ति समीप आदिसे समासे, 'प्रतेरुरसः' सूत्रेण अच्। ५१। **अनुगवम्** यह आयाम विस्तार दीर्घ अर्थ प्रकाशक अनु पूर्वमें हो, गो से अच्प्रत्यय का निपातन हो। आयामका दीर्घ अर्थ, उसका सूचक अनुगोः गायकी दीर्घताके तुल्य **दीर्घयानम् अनुगवम्**। यस्य चायामः सूत्रेण अव्ययीभावसमासे, अनेन अच् अवादेशे। गायकी लम्बाई के समान यानका नाम। ५२। **द्विस्तावा**=दुगुनी, **त्रिस्तावा**–तिगुनी वेदिका **परिणाम** हो, तब अच्प्रत्यय, टिलोप और समास निपातनसे हो। यावती प्रकृतौ=जिती अङ्गकार्य कलापकी आवश्यकताका आरोह हो वह प्रकृति है। जैसे अश्वमेधकी प्रकृति अग्निष्टोम कार्यकलाप है। कल्पसूत्रमें–**सर्वसोम क्रतूनां अग्निष्टोमः प्रकृतिः**। कल्पसूत्रमें अष्टाविंशत्यूनं पदसहस्रं महावेदि। उस अग्निष्टोममें जितनी वेदि हैं उसका दुगुना तिगुना अश्वमेधकी वेदि कहनी हों तब **द्विस्तावा त्रिस्तावा** बनता है। द्वि और त्रिसे २ वार ३ वार क्रिया अर्थमें

प्रकृतौ वेदिस्ततो द्विगुणा वा अश्वमेधादौ तत्रेदं निपातनम्। वेदिः इति किं द्विस्तावती त्रिस्तावती रज्जुः। ५३ उपसर्गादध्वनः ५।४।८५॥ प्रगतोऽध्वानं प्राध्वो रथः। ५४ न पूजनात् ५।४।६९॥ पूजनार्थात्परेभ्यः समासान्ता न स्युः। सुराजा। अतिराजा।* 'स्वतिभ्यामेव' नेह:-परमराजः। पूजनात् किं, गामतिक्रान्तोऽतिगवः। 'बहुब्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः इत्यतः प्रागेवायं निषेधः। नेह सुसक्थः। स्वक्षः। ९५५ किमः क्षेपे। ५।४।७०॥ क्षेपे

सुच द्विः त्रिः तत्प्रकृतं कल्पितं प्रमाणं यस्याः सा द्विःतावती विग्रहे प्राकृत= अग्निस्टोमके परिमाणसे द्विगुणित त्रिगुणित अश्वमेधकी वेदि है। निपातनसे समासे। सूत्रसे अच् तावतीको भस्याढ़े से पुंवत्। ङीप् हटा। निपातनसे टिलोप भी। टाप **द्विस्तावा त्रिस्तावा। वेदि अर्थ क्यों** ? जहाँ बेदि न हो वहाँ समास अच् टिलोप न हो। यथा **द्विस्तावती** दुगुनी तिगुनी रस्सी यहाँ द्विः भिन्न पद है। अच् टिलोप आदि नहीं हुए।

।५३। **उपसर्ग** से परे अध्वन्शब्दसे अच् हो। **प्रगतो अध्वानं प्राध्वो** (रास्ताको पार कर गया) रथः। **अत्यादयःसे** समास. उपसर्गसे अध्वनको अच्। नस्तद्धिते अन्का लोप आदि।५४। **न पूजनात्**-पूजा आदर स्वागत अर्थवाचक शब्दसे परे समासका अन्त अवयव अच् आदि न हो। **पूजायां स्वति=सु अति ग्रहणं कर्तव्यम्** उसका उदाहरण-शोभनोराजा सुराजा आदरणीय प्रादि समास। **राजानमतिक्रान्तः अतिराजा** पूज्य प्रभावशाली। दोनोंसे राजाहः टच् नहीं होता, पूज्य अर्थमें निषेधसे। यह निषेध **स्वतिभ्यामेव**=सु अतिसे परे राजन्से निषेध निश्चित अन्यसे नहीं **नेह=इह न निषेधः परमश्चासौ राजा च परमराजः**। यहाँ टच् हुआ निषेध नहीं। पूजनात् क्यों पढ़ा ? **गामतिक्रान्तः अतिगवः** (बैलसे भी बढ़कर मूर्ख) अत्यादयः समासे, पूज्य अर्थ नहीं, टच् निषेध भी नहीं **परमराजः** इत्यादि। **बहुब्रीहौ शक्थ्यक्ष्णोः** इसके पहले यह निषेध चलता है। **प्राग्बहुब्रीहिग्रहणं कर्तव्यम्**। अतः नेह यहाँ नहीं हुआ, **सु शोभने सक्थिनी अक्षिणी यस्य** समासे समासान्त षच्, टिलोप **सुसक्थः** सुन्दर जङ्घेवाला। सुन्दर आँख वाला **स्वक्षः**।।

।९५५। **किमः** क्षेप निन्दा कुत्सा अर्थमें किंशब्द, उससे परे जो शब्द, उससे समासान्त अच् टच् आदि नहीं होते। निन्दित भ्रष्ट अर्थमें **किंराजा**। निन्दा अर्थ, **किं क्षेपे सामासेः राजाहः** से टच् का निषेध। **कुत्सितः सखा किंसखा** धोखेबाज मित्र। किंका क्षेप निन्दित अर्थमें समास **सखिभ्यः न टच्**।

यः किंशब्दस्ततः परं तदन्तात्समासान्ता न स्युः। कुत्सितो राजा किंराजा। किंसखा। किंगौः। क्षेपे किं किं किंराजः, किंसखः, किंगवः। **५६ नञस्तत्पुरुषात् ५।४।७१॥** समासान्तो न। अराजा, असखा। तत्पुरुषात् किम्, अधुरं शकटम्। **५७। पथोविभाषा ५।४।७२॥** नञ्पूर्वात्पथो वा समासान्तः। अपथम्, अपन्था। तत्पुरुषात् इत्येव। अपथो देशः, अपथं वर्तते।

॥ इति सर्वसमासान्तप्रकरणम् ॥

कुत्सितः गौः कायर गादर बैल। क्षेप अर्थमें समास समासान्त का अभाव। क्षेपे किं, निन्दा अर्थमें निषेध क्यो, प्रश्न अर्थमें किं हो तब टच्, निषेध नहो। **कस्य राजा किराजा**। प्रश्न अर्थमें किम् है, निन्दा में नहीं। अतः निषेध नहीं, किन्तु टच् निषेधः। एवं **कस्य सखा कः सखा किंसखा**। किसका मित्र कौन। **कस्य गौः कः गौः** किसकी गाय कौन **किंगवः**। समास टच् अव्। ।५६। **नञ्पूर्वपद** हो ऐसे तत्पुरुषसे टच् आदि नहीं होते। **न राजा अराजा**। **न सखा असखा**। समासमें **टच्** प्राप्त था, उसका निषेध हुआ। नञके साथ तत्पुरुष होनेसे। तत्पुरुष क्यों पढ़ा ? इसलिए कि बहुव्रीहिसे निषेध न हो। **अविद्यमाना धूर्यस्य**। नहीं है धुरा आधार जिसका ऐसा **अधुरं शकटं** गाड़ी यहां निषेध नहीं किन्तु '**ऋक्पूः**' से अ हुआ।

।५७। **पथोः**। नञपूर्वमें हो, पथिन्से अ प्रत्यय विकल्प मान्य। **न पन्थाः अपथं नगरं** नञ् तत्पुरुष है अप्रत्यय। अपथिन् अ। **नस्तद्धिते टिलोपे पथः नपुंसकं**, पक्षमें 'अ' नहीं हुआ तब अपन्थाः तत्पुरुषसे ही विकल्प मान्य। बहुव्रीहिमें नित्य अ। **अविद्यमानः पन्था यस्य** समासे, ऋक्पूः से अ हुआ निषेध नहीं। देशका नाम **अपथम् अर्थाऽभावे अव्ययीभावः** अ—प्रत्ययका निषेध नहीं। पथाऽभावो वर्तते।

। इतिसमासान्त प्रकरणम्।

अथालुक्समासः—समास होने पर विभक्तिलुक् का नियम है। कुछ स्थलोंमें नियम का बाध आवश्यक। उसका अध्याय। अलुक् क्या है कहाँ तक है निर्णायक अधिक र सूत्र–

। ९५८। **अलुगुत्तर—अपूर्व** विधायक न होनेसे विधिसूत्र नहीं। **राजपुरुषःमें** अलुक् न हो। पञ्चाम्यःस्तोका दिभ्य इत्यादिके आरम्भसे भी विधि नहीं, किन्तु अधिकराः कहाँ तक, तब बोले प्रागानङ्=आनङ् ऋतो द्वन्द्वे सूत्रके पहले उत्तर पदका अधिकारपादसमाप्ति तक, छठें अध्यायके सीसरे पादका पहला

* अथालुक्समासप्रकरणम् *

९५८ **अलुगुत्तरपदे** ।६।३।१। अलुगधिकारः प्रागनङः, उत्तरपदाधिकारस्त्वापादसमाप्तेः । **५९ पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः** ६।३।२। एभ्यः पञ्चम्या अलुक्स्यादुत्तरपदे । स्तोकान्मुक्तः । एवमन्तिकार्थदूरार्थकृच्छ्रेभ्यः । उत्तरपदे किं निष्कान्तः स्तोकान्तिस्तोकः । *'ब्राह्मणाच्छंसिन उपसंख्यानम्' ब्राह्मणे विहितानि शस्त्राण्युपचाराद् ब्राह्मणानि तानि शंसतीति ब्राह्मणाच्छंसी ऋत्विग्वि-

---

सूत्र । पाद पर्यन्त अधिकार, भाष्यसे प्रमाणित । ५९ । पञ्चम्याः । स्तोकादिगणमें पठित शब्दसे परे पञ्चमीका सुपो धातुप्रातिपदिकयोःसे लुक् न हो, उत्तर पद परे । उत्तरपद समासके अन्तिम अवयव को कहते हैं जैसे **स्तोकान्मुक्तः समासे सति पञ्चम्याः अलुक्** । समासका प्रयोजन एकपद एकअर्थ एकशक्ति विशेषणसे सम्बन्धका अभाव है । तथा **स्तोकान्मुक्तस्यापत्यं स्तौकान्मुक्तिः** । थोड़ेसे मुक्त हुएकी सन्तान । यदि स्त्री है तब स्तोकान्मुक्तायाः अपत्यं स्तौकान्मुक्तेयः स्त्रीभ्यो ढक् । समुदायसे तद्धित । इसी प्रकार **अल्पान्मुक्तः तस्यापत्यम्** आल्पान्मुक्तिः । स्तोकान्तिकदुरार्थ ही मान्य । पञ्चमीका अलुक् । एवं समासविधिसूत्रमें गृहीत अन्तिक आदि शब्दसे अलुक् ।**अन्तिकादागतः अभ्याशादागतः** समीपसे आया । **दुरादागतः विप्रकृष्टागतः कृच्छ्रादागतः** कष्टसे आया सूत्रमें उत्तरपदपरे विभक्तिका लुक् नहीं ऐसा क्यों ? **निष्क्रान्तः** स्तोकात् थोडेसे मुक्त हुआ, निकला हुआ व्यक्ति **निस्तोकः** । क्रान्त आदि अर्थमें निर आदिका समास । स्तोक स्वयं उत्तरपद है । उसके उत्तरमें आगे कोइ पद नहीं, अतः अलुक् न, किन्तु लुक् हुआ । समासका फल समासस्वर, तद्धितप्रत्यय, विशेषणका अभाव । द्विवचनान्तबहुवचनान्तसे समास अप्रसिद्ध **स्तोकाभ्यामुक्तः, अन्तिकेभ्यः आगतः, वाक्यमेव तिष्ठति, ब्राह्मणात्**=वेदके ब्राह्मण भागके मन्त्रों की शंसिनः प्रशंसकोंसे पञ्चमी का लुक् न हो एसा कहें । **ब्राह्मणानि शंसति** ब्राह्मणभागके मन्त्रोंका प्रशंसनीय उच्चारण करने वाला, ब्राह्मणाच्छंसी ऋत्विज, होता । यहाँ पञ्चमी कैसे होगी, क्योंकि ब्राह्मणशब्द विधायक वाक्य ही है । कर्मनोदना ब्राह्मणानि कल्पसूत्रमें क्रिया प्रेरक,मन्त्रशेषे-ब्राह्मणशब्दः मन्त्र भागसे बँचा ब्राह्मणभागशेष है इति जैमिनिः । ऐसे भाग की प्रशंसाका विधायक नहीं । **ऋच. शंसति** किन्तु **ब्राह्मणं** शंसति ऐसा नहीं, ब्राह्मण भागमें वितानिहि **शस्त्राणि**=विधान किये गये ऋचां निविदां च सङ्घः शस्त्रम् । उपचारात्=लक्षणासे सङ्घ शास्त्र ही ब्राह्मणानि है । पञ्चमीका अलुक् । **प्रमितमन्त्र साध्य गुणिनः गुणकथनं शस्त्रमिति याज्ञिकाः** । द्वितीयार्थे=द्वितीया अर्थमें पञ्चमी

शेषः। द्वितीयार्थे पञ्चमी उपसंख्यानादेव। ९६० **ओजः सहोऽम्भस्तमसस्तृतीयायाः ६।३।३।** ओजसाकृतमित्यादि। *'अञ्जस उपसङ्ख्यानम्' अञ्जसाकृतम्। आर्जवेन कृतमित्यर्थः। *'पुंसानुजो जनुषान्ध इति च'। यस्याग्रजः पुमान्स पुंसानुजः। जनुषान्धो जात्यन्धः। ६१ **मनसः संज्ञायाम् ६।३।४।** मनसागुप्ता। ६२ **आज्ञायिनि च ६।३।५।** मनसः इत्येव। मनसा ज्ञातुं शीलमस्य मनसाज्ञायी। ६३ **आत्मनश्च ६।३।६।** आत्मनस्तृतीयाया अलुक्स्यात्। *'पूरण इति वक्तव्यम्' पूरणप्रत्ययान्ते उत्तरपदे इत्यर्थः। आत्मनापञ्चमः

है पञ्चमीके अलुक्प्रमाणसे। ९६०। **ओजस् सहस्** अम्भस् तमस् इनके समाहार द्वन्द्वमें, इनमें परे तृतीयाका अलुक हो, उत्तरपद परे रहते। ओजसाकृतं तेज ताकतसे किया। **ओजो दीप्तौ बले इत्यमरः**। कृत=किया हुआ इसके साथ कर्तृकरणे वा समास, प्रातिपदिकसंज्ञासे सुप् लुक् प्राप्त था, ओजः **सहो–सूत्रेण निषेध** आदि, **सहसाकृतम्** एकाएक झटिति किया। **अम्भसाकृतम्** जलसे पूरीपूजाकी। **तमसावृतम्** अन्धकारसे ढ़का हुआ। इन सबोंमें कर्तृकरणेसे बहुल समास उत्तर पदपरे कृतं है। तृतीया का सूत्रेण अलुक्। यदि ऐसा तब सततनैश तमो वृतं (निरन्तर घोर अन्धकारसे ढ़का) इति असाधुएव। **अंजसा कृतम्** बड़ी सरलता कोमलतासे कार्य किया। **अञ्जस् आर्जवेवर्तते। क्षेत्रज्ञः अञ्जसा नयति**। कृपासे पहुचता है। पुंसानुजः जिसका अग्रज बड़ा भाई पुरुष हो। **यस्य पुमान्पूर्वजः सः पुरुषः, कारणेन अनुजः कनीयान्** छोटा भाई। जनुषान्धः जन्मसे अन्धा। **जनुषा जन्मना हेतुना अन्धः जनुर्जननं जन्मनान्ध अमरः**। जनुके अर्थ जनुषा या पुंसा के तृतीया का अलुक् उत्तरपद अनुज या अन्ध है।

। ६१। **मनस्** के तृतीयाका लुक् न हो, उत्तरपदपरे, संज्ञा अर्थमे। **मनसागुप्ता** मनसे सुरक्षित किसीका नाम है। तृतीयाका अलुक्। मनोगुप्ता में मनसंरक्षित वह किसका नाम नहीं, अलुक् नहीं। ६२। **आज्ञायिनि** मनस्के तृतीयाका लुक् न हो आज्ञायिनि परे असंज्ञार्थ, मनसा या ज्ञातुं प्रेरयितुं, मनसे आज्ञा करना या जानना स्वभाव हो जिसका। **सुपि अजातौ णिनिः**, आतोयुक् मनसाज्ञायी। तृतीया अलुक्। ६३। **आत्मन्** से परे तृतीयाका लुक् न हो। **च** से तृतीया आती है उत्तरपदपरे। इस सूत्रपर वार्तिक पढा **पूरण इति** पूरण अर्थवाला प्रत्यय अन्तमें हो ऐसा उत्तरपद प्रत्ययग्रहणे तदन्तविधि। आत्मना पंचमः स्वयं पाँचवाँ प्रकृत्यादिगणसे प्रथमा अर्थमें तृतीया, अथवा **आत्मना कृतः पञ्चमः** करणे तृतीया समासे। तृतीयाका अलुक् स्वयं पाँचवा

'जनार्दनस्त्वात्यचतुर्थः एव' इति बहुव्रीहिर्बोध्यः। पूरणे किम्, आत्मकृतम् ।६४ **वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः ६।३।७।** आत्मनः इत्येव । आत्मनेपदम् । आत्मनेभाषा । तादर्थ्ये चतुर्थी। चतु० इति योगविभागात्समासः ।६६५ **परस्य च ६।३।८** परस्मैपदम् । परस्मैभाषा ।६६**हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम् ६।३।६** हलन्तादन्ताच्च सप्तम्या अलुक्संज्ञायाम् । त्वचिसारः । ६७ **गवियुधिभ्यः स्थिरः ८।३।६५।** आभ्यां स्थिरस्य संस्य षः स्यत् । गविष्ठिरः । अत्र गवीति वचनादेवालुक् । युधिष्ठिरः । अरण्येतिलकाः । अत्र 'संज्ञायामिति' सप्तमी-

---

बना समासार्थ । यदि ऐसा तब जनार्दनः भगवान् **स्वात्मचतुर्थः** यहाँ आत्मना चतुर्थः तृतीयाका लुक् कैसे ? शङ्कर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध ३ व्यूह है । जनार्दनः एषां नियन्ता चतुर्थ एव । तृतीयाका लुक् कैसे ? बहुव्रीहि है । **आत्मा चतुर्थो यस्य स्वयं** एक है । उसमें ४ भेद औपाधिक कल्पनासे । वृत्तिका अर्थ अन्य पदार्थ मान्य । पूरण क्यों कहा ? **पञ्चानां पूरणः पञ्चमः चतुर्णां पूरणः चतुर्थः** । उत्तरपद क्यों ? **आत्मना कृतम् आत्मकृतम्** स्वयंका किया हुआ । यहाँ पूरण प्रत्ययान्त नहीं है, लुक् निषेध नहीं है ।

।६६४। **वैयाकरण** । आत्मनः आया । व्याकरणे भवा वैयाकरणी । **अण्** ऋगयनादिभ्यः । **आख्यायते इति आख्या** व्याकरणशास्त्रमें जो प्रसिद्धि हो वहाँ चतुर्थीका लुक् न हो । **आत्मन् शब्दसे ही आत्मनेपद**-त आतां झ आदि व्याकरणमें प्रसिद्ध हैं । उसका सूचक आत्मनेसे चतुर्थीका अलुक् है । उसीका दसरा नाम **आत्मनेभाषा** । अतः यहाँ भो चतुर्थीका अलुक् । तादर्थ्य= **तस्मै अर्थ तदर्थः तस्य भावः** अर्थमें चतुर्थी आत्मनेका आत्मार्थ=आत्मगामिनी क्रियाफले, तभी यह संज्ञा होती है । तदर्थ चतुर्थी प्रकृति विकृति कारणकार्य भावमें होती है । आत्मन में कारण कार्य नहीं, चतुर्थी कैसे ? तब बोले— **योगविभाग**—सूत्र अलगावसे चतुर्थी । तभी धर्माय नियमो धर्मनियमः प्रयोग सफल होगा । ६६५ । व्याकरणमें हुई प्रसिद्धिसे पर शब्दसे चतुर्थीका लुक् न हो । परस्मैपदं=तिप्तस्झि आदिका नाम प्रसिद्ध है आख्या होनेसे । परस्मैमें समास होनेपर प्राप्त लुक्का निषेध हुआ । उसीका संज्ञान्तर **परस्मैभाषा** चतुर्थीका अलुक् ।

। ६६ । **हलदन्तात्** हलन्तसे और अदन्तसे परे सप्तमीका लुक् न हो, संज्ञा-नाम होनेपर त्वचा (चर्ममें) सार तत्व भरा हो **त्वचिसारः** घड़ियाल वंश, त्वक्सारः, (कर्मारः, त्वचिसारः तृणध्वजा) हलन्त त्वच् से सप्तमीका

समासः । 'हृद्द्युभ्यां च' हृदिस्पृक् । दिविस्पृक् । ६८ **कारनाम्नि च प्राचां हलादौ** ।६।३।१०। प्राचां देशे यत्कारनाम हलादावुत्तरपदे हलदन्तात्सप्तम्या अलुक् । मुकुटेकार्षापणम् । दृषदिमाषकः । पूर्वेण सिद्धे नियमार्थम्, कारनाम्न्येव प्राचामेव हलादावेवेति । कारनाम्नि किम् । अभ्यर्हित पशुः । कारादन्यस्यैतद्ध्येयस्य नाम । प्राचां किं यूथपशुः, हलादौ किम् । अविकटोरणः । हल

लुक् नहीं । ६८ । गवि और युधि से परे स्थिरके स को ष हो । गवि तिष्ठतीति **गविष्ठिरः विष्णुः त्रिदेवः** । गायमें रहते है । गवि युधि सप्तमी रूप । स्थिरः में प्रथमा, षष्ठी अर्थे । सहे साडःसे स आया । सस्य अपादान्तस्य मूर्धन्यः का अध्याहार । सप्तमीका अलुक् । अन्तरङ्गानपि विधीन्बहिरङ्गो लुक् बाधते इस परिभाषासे लुक् पहले होगा । औ आदेश होगा नहीं, हलन्त नहीं, अलुक् कैसे ! तब कहा गवि पढ़नेकी ताकतसे ही अलुक् होगा, तब ओ-अव्से हलन्त । युधि तिष्ठति **युधिष्ठिरः** युधसे भावे क्विप्, सप्तमी एकवचन, उपपदसमास-सुपोलुकि प्राप्ते हलन्तात्सप्तमी–अलक् । सूत्रेण ष–ष्टुत्व पाण्डवमें धर्मपुत्रका नाम । हलन्तसे अलुक् कहा । अब अकन्तसे सुनिये । **अरण्येतिलका** किसीका नाम है । यद्यपि तिलक शौण्डादिमें नहीं, सप्तमी समास कैसे ? तब बोले संज्ञायांसे । समासे, अदन्त सप्तमीसे अलुक् । **हृद** और **दिक** से सप्तमीका लुक् न हो उत्तरपदपरे । **हृदयं स्पृशति हृदिस्पृक् हृदयस्पर्शी** । ङीपरे पद्दन्नोंसे हृदयको हृत् आदेश, स्पृक्के साथ समास, हृद् से परे सप्तमीका अलुक् । दिवं स्पृशति स्वर्गको छूता है । **दिविस्पृक्** सप्तमीका अलुक् । दोनों स्थलमें कर्ममें सप्तमी कैसे ? अलुक्–विधान बलसे । इति भाष्यम् । अमूर्धमस्तकात्से अलुक् नहीं, संज्ञायां कहनेसे ।

। ६८ । **कार नाम्नि** राजाका अंश **राजग्राह्यः भागः करः** (टैक्स) **स एव कारः स्वार्थे अण्** प्राचीन देशमें टैक्सका वाचक हो, हलादि उत्तरपद हो, तब हलन्त, अदन्दसे सप्तमी का अलुक् हो । **मुकुटेकार्षापणं** मुकुट्में कौड़ी, राजाका ग्राह्य भाग है । हलादि है, मुकुटें में सप्तमीका अलुक् । **दृषदिमाषकः** चक्कीमें उरद । हलन्तसे सप्तमीका अलुक् । यह माषक राजग्राह्य टैक्स है । प्राचीन कालके अनुसार । यह कार्य पूर्वेण सिद्धे=हलदन्तात् से अलुक् सिद्ध था यह सूत्र नियमके लिए **प्राचां देशे हलादौ परे अलुक् चेत् कार नाम्न्येव** । **कार नाम्नि हलादौ चेत्प्राचामेव । प्राचां कार नाम्निचेत् हलादौ एव** । तीन नियम है । कार नाम्नि टैक्स वाचक क्यो पढ़ा ? **अभ्यर्हितः पशुः** गऊ पूज्य है, कर

दन्तात् किम् । नद्यां दोहो नदीदोहः । ६९ मध्याद्गुरौ।६।३।११। मध्येगुरुः । *'अन्ताच्च' अन्तेगुरुः । ९७० अमूर्धमस्तकात्स्वाङ्गादकामे ६।३।१२। कण्ठेकालः । उरसिलोमा । अमूर्धमस्तकात् किं मूर्धशिखः । मस्तकशिखः । अकामे किं मुखे कामोऽस्य मुखकामः । ७१ बन्धे च विभाषा ६।३।१३। हलदन्तात्सप्तम्या अलुक् । हस्तेबन्धः–हस्तबन्धः । हलदन्त इति किं गुप्तिबन्धः ७२ तत्पुरुषे कृति बहुलम् ६।३।१४। स्तम्बेरमः–(स्तम्बरमः) कर्णेजपः-कर्ण-जपः)क्वचिन्न । कुरुचरः । ७३ प्राबृट्छरत्कालदिवां जे ६।३।१५ प्रावृषिजः

का वाचक नहीं, अलुक् नहो । कारात=करसे भिन्न एतद्देयस्य=इस दान वस्तु का नाम गौः । देशस्य ाचां क्यों पढ़ा ? यूथपशुः झुण्ड का जानवर, अलुक् नहो । हलादि क्यों ? अविकटे उरणः भेड़ झुण्डमें, भेड़ार्थ अविशब्दसे सङ्घाते टच, उरणो मेषः । उरण हलादि नहीं, अलुक् नही, लुक् हुआ । हलन्त अदन्त क्यों पढ़ा ? नद्यां दोहः नद्युत्तारणे तात्कालिको दोहः कारः भाड़ा टैक्स । नदी पार करनेमें वणिक् पशुपाल कृषकोंसे चुङ्गी भाग सर्वकार का अंश कर ही दोह है टैक्स दुहना नदीदोहः सप्तमी का अलुक् नहीं हुआ ।

९७० । मध्यात । गुरुशब्द परे हो मध्यशब्दसे सप्तमीका लुक् न हो, असंज्ञार्थम् । मध्येगुरुः बीच वाले, सप्तमीका लुक् नहीं हुआ । अन्तमे सप्तमी का अलुक् हो गुरु परे । ९७१ । अमूर्ध मूर्ध और मस्तक को छोड़कर स्वाङ्ग-वाचक से सप्तमी का लुक् न हो । अकामे=काम शब्द परे लुक् हो । संज्ञायाम् आया । अतएव हृद्ग्रहणमवर्थवत् । कण्ठेकालः गलेमें नीलिमा–विष, कण्ठ शरीराङ्ग है । सप्तमी अलुक् हुई , शिवनाम । उरसिलोमा किसी का नाम । इस प्रमाण से विषयविभक्ति में भी बहुव्रीहिः । मूर्धमस्तक स्वाङ्ग न हो, ऐसा क्यों ? मूर्धनि शिखा मूर्धशिखः मयूरः । शरीर का अङ्ग मूर्ध हो मस्तक हो, तब सप्तमी का लुक् होता है । मस्तके शिखा यस्य (जिसकी चोटी मस्तक पर भी हों) न अलुक् । अकामें क्यों पढ़ा ? मुखमें काम इच्छा स्वाद है, मुखकाम काम परे अलुक् नहीं हुआ । ७२ । बन्धे, बन्ध शब्द उत्तर-पद परे हो । हलन्त अदन्तसे सप्तमीका अलुक्, विकलपसे हो।हस्तेबन्धः हस्तब-न्धः हाथमें बँधा हुआ । सप्तमी तत्पुरुष, बन्ध परे अलुक् किसीका नाम है। वि-कल्पसे हलन्त अदन्त क्यों पढ़ा । गुप्तौबन्ध गुप्तिबन्धः समासमें सुप् लुक् हुआ । निषेध नहों, न हलन्त न अदन्त मिलने से ।७३ । तत्पुरुष समासमें सप्तमी का बहुल इच्छानुसार लुक् न हो, उत्तरमें कृदन्त हो, संज्ञामें । स्तम्बे–तृणसमूहे

शरदिजः । कालेजः । दिविजः । पूर्वस्यायं प्रपञ्चः । ७४ **विभाषा वर्षक्षरशरवरात्** ।३।१६। एभ्यः सप्तम्या अलुग्जे । वर्षेजः–वर्षजः । क्षरेजः–क्षरजः । शरेजः–शरजः । वरेजः–वरजः । ९७५ **घकालतनेषु कालनाम्नः** ६।३।१७। सप्तम्या विभाषया लुक् स्यात् । घे–पूर्वाह्णेतरे–पूर्वाह्णतरे । पूर्वाह्णेतमे पूर्वाह्णतमे । काले–पूर्वाह्णेकाले–पूर्वाह्णकाले । तने–पूर्वाह्णेतने पूर्वाह्णतने ।७६ शय-

---

रमते–आनन्दमनुभवति हस्ती स्तम्बेरमः यहां रम परे अलुक् हुआ । **स्तम्बकर्णयोः** रमिजपोःसे अच् उपपद समास । **करणे–श्रवण**साधने जपति, **परदोषम् उपाशुं** (फुस फुस) **आविष्करोतीति करणेजपः** । कानमें फुस फुसाने वाला **पिशुनः** चुगुलखोर । यहां भी विकल्पसे अलुक् । यदा लुक् करणजपः, क्वचिन्न कुरुषु **चरति कुरुचरः** । सप्तमी पूर्वपदमें हो, तब चर से -ट' होता है । उपपद समास बहुन् अर्थात् लातीति लहुलं, का फल हैं अलुक् न होना, हलन्त, अदन्त नहीं आयें । (९७४) **प्रावृट्** शरद्काल, दिव इनके सप्तमीका अलुक् हो जे= ज शब्द परे, संज्ञा नाम हो तब । प्रावृषि जातः **प्रावृषिजः** (मेढक कीड़े आदि वर्षामें) जन धातु से प्रत्यय । सप्तमीका अलुक् । **शरदिजातः शरदिजः** शरद ऋतुमें उत्पन्न । काले जातः **कालेजः** । दिविः जातः **दिविजः** । पुच्छल तारा । सर्वत्र 'ध' परे सप्तमीका अलुक् हलदन्तात्से सिद्ध । इस सूत्र का फल पूर्व का ही प्रपञ्च, सफल विस्तार । पचि विस्तारे । **संख्या विभाषा वर्ष** क्षर शर वर इनसे सप्तमी का लुक् न हो ज परे । वर्षे जातः **वर्षेजः** ईख,आम, इमली आदि फल वर्षमें पैदा होते है । सप्तमी का लुक् नहीं । यदा लुक् **वर्षजः** । क्षरे जातः **क्षरजः** । गोबरमें पैदा विच्छू । यदा लुक् क्षरजः, वास्तुकं बथुआ घास आदि । शरेजातः **शरजः**, **कार्तिकेयः** शरकण्डा में पैदा । वरेजातः बड़ोंमें पैदा हुआ **बरेजः** , इन सबमें सप्तमीका लुक् निषेध, पक्षमें लुक् होगा ज परे है ही,

९७५ । **घकाल** तरप्तमपौ घः घसंज्ञक प्रत्यय परे हो, काल और तन परे हो, सप्तमीका विकल्प से लुक् हो । **अ**तिशायने=अधिक अर्थमें सप्तमींसे तरप् । अधिक सबेरे पुर्वाह्णेतरे घसंज्ञक तरप्परे सप्तमी का अलुक् औंर लुक् भी । अतः उन विभक्तियों से अतिशय अर्थमें तरप् तमप् मान्य । एव पूर्वाह्णतमे बहुतसबेरे, सप्तमी का अलुक् लुक् भी काल परे-पूर्वाह्णे काले सवेरेके समय पहले प्रहरमें । अलुक् और लुक् भी । तन परे पूर्वाह्णेतने सवेरे पैदा हुआ जात अर्थमें ट्यु तुट् । तने परे सप्तमीका अलुक् लुक् भी ।

७६ । **शय वास वासिन्** इनके परे रहते सप्तमी का लुक् न हो । अका-

वासवासिष्वकालात् ६।३।१८। खेशयः—खशयः। ग्रामेवासः—ग्रामवासः। ग्रामेवासी—ग्रामवासी। 'हलदन्तात्' इत्येव। भूमिशयः। 'अपो योनियन्मतुषु' अप्सु योनिरुत्पत्तिर्यस्य सोऽप्सुयोनिः। अप्सु भवः अप्सव्यः। अप्सुमन्तावाज्यभागौ। ७७ **नेन्सिद्धबध्नातिषु च** ६।३।१९। इन्नन्तादिषु सप्तम्या अलुग्न स्थण्डिलशायी। सांकाश्यसिद्ध। चक्रबद्ध। ७८ **स्थे च भाषायाम्** ।६।३।२०। सप्तम्या अलुग्न। समस्थः। भाषायां किम्। कृष्णोऽस्याः खरेष्ठः। ७९ **षष्ठया आक्रोशे** ६।३।२१। चौरस्यकुलम्। आक्रोशे किं बाह्मणकुलम्

लात्=कालसे भिन्न हो **खे-आकाशे शेते खशयः** अन्तरिक्षयान अपोले, सोयूज, शय परे खे के सप्तमी का अलुक्, लुक् भी। वसनंवासः **ग्रामेवास ग्रामवासः** अलुक् लुक् भी। ग्रामे **वसति ग्रामवासी** अलुक् लुक् भीं। हलन्त अदन्तसे ही। **नेह-भूमौ** शेते भूमिशयः। इन् हलन्त, है न अदन्त। अलुक् नहीं। (वा०) **अपो**= योनि शव्द यत् और मतुप्प्रत्यय परे अपशब्दके सप्तमीका लुक् न हो **अप्सु योनिः** जलमें उत्पत्ति हो जिसकी **अप्सुयोनिः** ब्रह्मा। समासमें सुप् का लुक् प्राप्त था योनि परे निषेध। **अप्सव्यः**। अपप्सु से दिगादि यत् उ को ओर्गुणः वान्त अव् आदेशे। मतुप् अन्तका अवयव=**अप्सुमन्तौ आज्यभागौ कर्मविशेष अप्सुसोमोऽब्रवीत्**। अप्स्वग्नेः अप्सुमतिः। मतुप् परे सुप् का लुक् नही। जिस मन्त्रमें अप्सु पद हो उनका नाम।

।७७। **नेन्सिद्ध** इन् अन्त हो। उसके परे सप्तमीका अलुक्, निषेध नहो। एवं **सिद्ध बन्ध** परे भी। **स्थण्डिले**=ऊँची भूमि पर सोतीं हैं णिनि **स्थण्डिलशायी** सप्तमीका लुक् हुआ निषेध नहीं। साङ्काश्यसिद्धः किसी देशमें बना, सप्तमीका लुक्। **चक्रेबन्ध** पहियामें बधा **चक्रबन्ध** लुक्। निषेध नहीं

।७८। **सप्तमी** का अलुक् **हो** स्थपरे, बोल चालमें। **समे तिष्ठतीति समस्थ** उपपद समासमें ङिका लुक् हुआ, निषेध नहीं स्थपरे है। तत्पुरुषे कृतिका निषेध है। अमूर्धमस्तकात् का नहीं। भाषा क्यों पढ़ा ? **खरे तिष्ठतीति खरेष्ठः** गधे पर चढ़ता है। सप्तमी का अलुक् हुआ।

।७९। **षष्ठीका** उत्तर पदपरे लुक् न हो, आक्रोश निन्दा फटकार अर्थमें **चौरस्य कुलं** चोरोंका वंश एक अर्थ होने पर षष्ठी का अलुक् हुआ। चौरस्य एकार्थीभाव रहेगा। आक्रोश क्यों पढ़ा ? **ब्राह्मणस्य कुलं ब्रह्मणकुलं** सत्यता है निन्दा नहीं। उसको चोर कुल कहना निन्दा है। **वाग्दिक्**=वाक्—दिक्—पश्यत् इनसे परे षष्ठीका लुक् न हो। युक्ति, दण्ड, हर, इनके क्रमसे परे। **वाचो-**

*'वाग्दिक्पश्यद्भ्यो युक्तिदण्डहरेषु' वाचोयुक्तिः । दिशोदण्डः । पश्यतोहरः *'आमुष्यायणामुष्यपुत्रिकामुष्यकुलिकेति च' अमुष्यापत्यमामुष्यायणः । नडादित्वात्फक् । अमुष्यपुत्रस्य भावः आमुष्यपुत्रिका । मनोज्ञादित्वाद् वुञ् । एवमामुष्यकुलिका । *'देवानाम्प्रिय इति च मूर्खे' अन्यत्र देवप्रियः । *'शेपपुच्छलाङ्गूलेषु शुनः शुनश्शेपः । शुचः पुच्छः । शुनोलाङ्गूलः । *'दिवश्च दासे' दिवोदासः ।

युक्तिः वाणी की कला सटीक प्रयोग समासे, एकार्थभावे षष्ठी का अलुक् युक्ति परे है । दिशोदण्डः दिशाका सहारा । अधिकरणकी अविवक्षासे षष्ठी । पश्यन्तमनादृत्य हरति पश्यतोहरः । अनादरे अर्थे षष्ठी । देखते हरनेवाला स्वर्णकार । षष्ठीका अलुक् आमुस्यायणः अमुष्यपुत्रिका अमुष्यकुलिका । षष्ठीका अलुक् हो निपातनसे । अमुस्यापत्यं इसकी सन्तान अर्थमें नडादि–फक् । फस्थाने आयन, आदिवृद्धिः । समुदायसे तद्धितान्त मानकर सुप् का लुक्प्राप्त था वार्तिकेन निषेध, नस्य णः । आमुष्यायणः । अमुष्यपुत्रः अमुक का बेटा । षष्ठी समासे । षष्ठीका अलुक् । अमुस्य पुत्रस्य भावः मनोज्ञादिभ्यश्चसे वुञ् अक टाप् इत्व आदिवृद्धि । आमुष्यपुत्रिका, अमुककी पुत्रसम्बन्धी गुण विशेषता । एवं–इसी प्रकार अमुष्यकुलम् अमुक का बंश । समासे अलुकि । आदि=अमुष्य कुल शब्दसे वुञ् अक् आदि पूर्ववत् । देवानां वार्तिक है । प्रिय मूर्ख अज्ञ अर्थ हो, उसका सूचक षष्ठी का अलुक् । दिव क्रीडायां, देवा मूर्खाः क्रीडायामाशक्त । तेषां प्रियोऽपि मूर्ख एव । उसका प्रिय अवश्य मूर्ख होगा, मुर्खा हि देवानां प्रीतिं जनयन्ति देवपशुत्वादिति मनोरमा । ब्रह्मज्ञानरहित संसारी मूर्ख है । वे कर्म अनुष्ठान हवन दान द्वारा देवताओं को प्रसन्न करते है ब्रह्मज्ञानमें लीन को यज्ञादि अनुष्ठान अनावश्यक । अतः मूर्खा एव देवपशवः यत्रमूर्खत्वंनास्ति तत्र लुग्भवति, देवानां प्रियः देवप्रियः धर्मात्मा । शेप पुच्छ लाङ्गुल परे रहते शुनः की षष्ठीका लुक न हो । शुनः शेप इव शेपो यस्य कुत्तेके रूपकी तरह रुप हो जिसका, गौलिङ्गचिह्नशेपशो: शीङ्धातुसे निपातनसे प हुआ। अकारान्त भी शेप (कुत्ते की तरह शयन क्रिया, हल्की नींद वाला) षष्ठीका अलुक् मेढ्रो मेहनशेपशोः । शेफ भी है शेफाय स्वाहा । शुनः पुच्छमिव पुच्छं यस्य समासे कुत्ते की पूछ समान पूछवाला शुनोलाङ्गलः शुनके षष्ठीका अलुक् । ये ऋषिविशेषके नाम है । दिवश्च दास परे दिवके षष्ठी का लुक् नहो । दिवोदासः राजर्षि, अलुक् हुआ

। ९८० । पुत्रपरे षष्ठी का अलुक् विकल्पसे हो, निन्दा आक्रोश चढ़ि

९८० **पुत्रेऽन्यतरस्याम्** ६।३।२२। षष्ठ्याः पुत्रे परेऽलुग्वा निन्दायाम् । दास्याः पुत्रः दासीपुत्रः । निन्दायां किं । ब्राह्मणीपुत्रः । ८१ **ऋतो विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः** ६।३।२३। विद्यासम्बन्धयोनिसम्बन्धवाचिनः ऋदन्तात्षष्ठ्या अलुक् । होतुरन्तेवासी होतुः पुत्रः । पितुरन्तेवासी पितुः पुत्रः । *'विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यस्तत्पूर्वोत्तरपदग्रहणम्' । नेह, होतृधनम्। **विभाषस्वसृपत्योः** ६।६। २४। ऋदन्तात्षष्ठ्या अलुग्वा स्वसृपत्योः परयोः । ८३ **मातुःपितुर्भ्यामन्यतरस्याम्** ८।३।८५। आभ्यां स्वसुः सस्य षो वा स्यात्समासे । मातुः ष्वसा—मातुः स्वसा । पितुःष्वसा—पितुः स्वसा । लुक्पक्षे तु-९८४ **मातृपितृभ्यां स्वसा** ८।३।८४। आभ्यां परस्य स्वसुः सस्य षः स्यात्समासे । मातृष्वसा पितृष्वसा । असमासे तु । मातुः स्वसा । इत्यलुक्समासप्रकरणम् ।

अर्थमें । दास्याःपुत्रः, पुत्रपरे है । षष्ठीका अलुक् । वह दासीका पुत्र है । पक्षमें लुक् । निन्दा क्यों कहा ? ब्राह्मण्याः पुत्रः **ब्राह्मणीपुत्रः** है दासीका नहीं । सत्य है, निन्दा नहीं । (८१)। **ऋतः**--विद्या गुरु परम्परा, योनिजन्मसम्बन्धमें ऋदन्त शब्दसे षष्ठीका अलुक् हो उत्तरपद परे । विद्यासम्बन्ध **ऋग्वेद** विहित कर्म कर्ता होता, उसका शिष्य-शिक्षासे शासन का विषय, अन्तेवासी **होतुरन्तेवासी** षष्ठी का अलुक् । विद्या सम्बन्ध मुख्य हैं **होतुःपुत्रः वेद**-विहित कर्मकर्ताका लड़का , षष्ठीका अलुक् । जायते, जन्म भवति यस्यां सा योनिः जन्महेतुः । पितुरन्तेवासी जन्मसम्बन्ध । षष्ठी लुक् का निषेध । यदि ऐसा तब पितृधनं,, होतृजनं, यहाँ भी अलुक् क्यों नहीं ? तब बोले **विद्यायोनि** सम्बन्धके लिए तत्पूर्वोत्तर= समासका पूर्वपद, उत्तरपद दोनोंका विद्या सम्बन्ध या योनिसम्बन्ध मान्य। धनका न विद्या, न योनिसे सम्बन्ध है। अतः अलुक् नहीं । ८२ । **विभाषा स्वसृ** औंर पति परे हो, तब ऋदन्तसे परे षष्ठीका लुक् न हो । विद्या या योनि सम्बन्ध रहने पर नित्यको बाधकर विकल्प । ८३ । **माता पिता** शब्दसे परे स्वसाके स को ष विकल्पसे हो, समास में । मातुः ष्वसा एकार्थीभाव होने पर षष्ठी का अलुक् । स्वासाके स को षत्व । पक्षमें दन्त ही रहा । एवं पितुःष्वासा समासे अलुक् षत्वं, पितुःष्वसा जब पक्ष में लुक् हुआ, तब विशेष सूत्र । ८४ । मातृपितृसे स्वसाके स को ष हो समासमें। मातृष्वसा नित्य षत्व । आदेश का प्रत्यय न होनेसे अप्राप्त था षत्वविधिमें समासके आनेका फल षत्व, जब समास नहीं तब षत्व भी नहीं पितुः स्वसा । इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्राभाकर्यामलुक्समासः ।

* अथ समासाश्रयविधिप्रकरणम् *

९८५ घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्रमतहतेषु ङ्योऽनेकाचो ह्रस्वः ६।३।४३
भाषितपुंस्काद्यो ङी तदन्तस्यानेकाचो ह्रस्वः स्याद्धरूपकल्पप्रत्ययेषु परेषु। च'लडादिषु। ब्राह्म,णितरा। ब्राह्मणितमा। ब्राह्मणिरुपा। ब्राह्मणिकल्पा। ब्राह्मणिचेली। ब्राह्मणिब्रुवा। ब्राह्मणिगोत्रा इत्यादि। ब्रूञः पचाद्यचिबच्यादेशगुणयोरभावोऽपि निपात्यते। चेलडादीनि वृत्तिविषये कुत्सनवाचीनि। तैः कु-

---

अथ समासाश्रयविधिः— एकार्थीभाव, एकपद, एकशक्ति स्वरूप समास होने पर जो विधियाँ ह्रस्व हृत् पत्, उद, स, ष, आदि समास होने पर होगी वही समासाश्रय है। समासवृत्ति एकार्थीभाव न हो, तब नहीं होती है। प्रथम ह्रस्व विधि सूत्र। ९८५। **घरूप** अतिशय अर्थमें **तरप्तमपौ** घः। रूपप्-प्रशंसा अर्थे, कल्पप्-सदृश, लगभग अर्थे। चिल वसने परिधानके अनुकूल क्रिया, पचादि अच्। **ब्रुवगोत्र महत्** इनके उत्तरभाग में, परे या उत्तर पद रहने पर **ङ्यऽनेकाचो**=भाषितपुंस्क पुलिङ्ग, स्त्री० में एकधर्म हो उससे ङीप हुआ हो, ऐसे अनेक अच् को ह्रस्व हो। **घ, रूप**,कल्पप्रत्यय हैं, इनके तदन्त होनेपर या उत्तरपद हो **उत्तरपदाधिकारे प्रत्ययग्रहणे तदन्त ग्रहणं नास्ति। अतिशयिता ब्राह्मणी ब्राम्हणीतरा** (व्रत सदाचार त्याग **आदर्शगुण** की अधिकता से भरी हुई) अत्र तरप्तमपौ घः (से 'तर' को घ संज्ञा जिसके आधार पर) धरूप कल्प० सूत्रेण ईकारस्य ह्रस्वे **ब्राह्मणितरा** एवं अतिशयिता ब्राह्मणी **ब्रम्हणितमा त्याग तप सदाचार सम्पन्ना**। तसिलादिषु से पुंवत् शङ्का न करें 'जातेश्च' के निषेध से। प्रशस्ता ब्राह्मणी प्रशसायां रूपप्। जिसके आधार पर ह्रस्व **ब्राह्मणिरूपा। सदाचारेण स्वभावेन किञ्चित ब्राह्मणी ब्राम्हणिकल्पा**। ईषदसमाप्ति अर्थमें कल्पप् **यं निमितीकृत्य ह्रस्वो जायते ब्राह्मणी चासौ चेली च (चिल विसने**) उससे अक चेलट् पचादि में टित्से ङीप्। चेली परे ह्रस्व, वस्त्रधारण वाली। **ब्राह्मणीगोत्रा** ह्रस्व हुआ। **ब्रह्मणिहता** ब्राह्मणी इति ब्रवीति **ब्रम्हणिब्रुवा**। ब्रुसे अच् करने पर वच आदेश और गुणका अभाव निपातनसे। **चेल डादीनि** समास एकार्थी **भाव** वृत्तिके विषयमें चेलट् ब्रुव गोत्र ये उत्तरपद हों, उनको कुत्सन वाची कुत्सितानि कुत्सनै से समास निन्दासमासार्थः। **ब्राह्मणी चासौ गोत्रा च। गां त्रायते गोत्रा वंश** की रक्षिका। ब्राह्मणी चासौ हता च ब्राह्मणिहता। सूत्रमें ङ्यः=ङी अन्त क्यो ? **दत्तातराः –अतिशयने** दत्ता पूर्णसमर्पिता ङ्यन्त नहीं,

कुत्सितानि कुत्सनैः इति समासः। ङ्यः किं दत्ततरा। भाषितपुंस्कात्किं, आम -लकीतरा। कुवलीतरा। ८६ नद्याः शेषस्यान्तरस्याम् ६।३।४४॥ अङ्यन्त -नद्यः ङ्यन्तस्यैकाचश्च घादिषु ह्रस्वो वा स्यात्। ब्रह्मबन्धूतरा ब्रह्मबन्धुतरा। स्त्रितरा-स्त्रीतरा।* कृन्नद्या न। लक्ष्मीतरा।८७ उगितश्च ६।३।४५।उगितः परा या नदी तदन्तस्य घादिषु ह्रस्वो वा स्यात्। विदुषितरा। ह्रस्वाभावपक्षे तु'तसिलादिषु - इतिपुंवत्। विद्वत्तरा इत्यादिषु विदूषीतरा इत्यप्युदाहृतम्' तन्निर्मूलम्। ८८ हृदयस्य हृल्लेख यदण्लासेषु ६।३।५०॥ हृदयं लिखतीति

न ह्रस्व। भाषित हो पुलिङ्ग ऐसा क्यों ? जहाँ पुलिङ्ग न जान पड़े वह ह्रस्व न हो। यथा अतिशयेन आमलकी बहुत खट्टा आवला नित्य स्त्रीलिङ्ग, पुलिङ्ग का झलक भी नहीं) ह्रस्व भी न हो। यदि न पदान्तसूत्रके भाष्यमें बिम्बा बदरी आमलक इनमें पुलिङ्ग झलकता है नित्यस्त्री० कैसे ? तब बोले कुवलीतरा अतिशयेन कुवली, वृक्ष अर्थमें नित्य स्त्रीलिङ्ग है ह्रस्व न हो। कर्कन्धुर्बदरी कोली घोण्टाकुवलफेनिले इति अमरः।

।८६। नद्याः शेषस्य उक्तादन्यः शेषः ङी—अन्त नदीसे ह्रस्व उक्त है उससे शेष अङ्यन्त=ङीप् अन्तमें न हो, ऐसे नदीसंज्ञकको और ङीप्वाले एकाच् को ह्रस्व हो। घादिषु=घरूप पाश कल्प इत्यादि परे, विकल्पसे। ब्रह्मबन्धुतरा। वह नदीसंज्ञक अङ्यन्त है। ह्रस्व हुआ। वेद ब्राह्मणका अतिशय सहायक। भाषित पुं० नहीं आया। अतिशयिता स्त्री बहुत बच्चा देने गर्भधारणयोग्यतावाली तरप् स्त्रितरा नदीसंज्ञक है ह्रस्व हुआ। कृन्नद्याः= कृदन्त प्रत्ययके कारण नदीसंज्ञा हुई हो, तब ह्रस्व नहीं होता। अतिशयिता लक्ष्मी लक्ष्मीतरा। लक्ष धातुसे मुट आगम ई-प्रत्यय लक्ष्मी कृदन्त है। ह्रस्वका निषेध। ८७। उगित—उक्=उ ऋ ऌ इत् हो उकसे परे नदीसंज्ञक अन्तको ह्रस्व हो, घादिषु=घ-कल्प इत्यादि परे। विदसे वसु उ, इत्, विद्वस् स्त्री— इच्छामें ङीप् षत्व। अतिशयिता विदुषी विदुषितरा ह्रस्वे। विद्योत्तमा। यदा न ह्रस्वः तदा तसिलादिषु पुंवद्भावे ङीपः निवृत्तिः। विद्वत्तरा सरस्वती। वृत्यादिषु—वृत्तिकारादिके ग्रन्थोंमें विदुषितरा पढ़ा है। वह निर्मूलं—प्रमाण रहित है। पुंवत् अवश्य होगा। विद्वत् श्रेयस्के पुलिङ्ग न होनेमें प्रमाण नहीं।

।८८। हृदयस्य—लेख यत् अण् लास इनके परे रहते हृदयको हृत् आदेश हो। हृदयके भाव को लिखता है। कर्ममें अण् उपपद समास हृदय लेखके आ- धार पर सूत्रेण हृदयस्य हृत् आदेश। हृदयको जो प्रिय लगे वह हृद्यः प्रिय

हृल्लेखः। हृदयस्य प्रियं हृद्यम्। हृदयस्येदं हार्दम्। हृल्लासः। लेख–इत्यणन्तस्य ग्रहणं। घञि तु हृदयलेखः। लेखग्रहणं ज्ञापकम् 'उत्तरपदाधिकारेतदन्तविधिर्नास्ति' इति। ८९ **वा शोकष्यञ्रोगेषु ६।३।५१॥** हृच्छोकः-हृदयशोकः सौहार्दम्-सौहृदय्यम्। हृद्रोगः। हृदयशब्दपर्यायो हृच्छब्दोऽप्यस्ति। तेन सिद्धे प्रपञ्चार्थमिदम्। ९९० **पादस्य पदाज्यातिगोपहतेषु ६।३।५१॥** एषूत्तरपदेषु पादस्य पद इत्यदन्त आदेशः स्यात्। पादाभ्यामजतीति-पदाजिः। पदातिः। 'अज्यतिभ्यां पादे च' इतीण्प्रत्ययः। अजेर्व्यभावो निपातनात्। पदगः। पदोपहतः। ९१ **पद्यत्यतदर्थे ६।३।५३॥** पादस्य पत्स्यादतदर्थे यति

अर्थमे यत्। हृदय का भाव विचार वस्तु हर्दमिदम्। अर्थमें अण्, हृत् आदेश, आदिवृद्धि। हृदयं लसति **हृल्लासः** (हृदय ओत प्रोत करने वाला (घञन्त। हृदयं लिखति हृलेखः यह अणन्त है। घञ् होनेपर हृत् आदेश नहीं होगा। हृदयलेखः यही बनेगा। लेख अणन्त ही मान्य। यदि एसा तब अण् से अणन्त मानकर कार्य होता **लेखग्रहण व्यर्थ है**। वह कल्पना किया कि उत्तरपदके अधिकारमें तदन्तविधि नहीं होती। इसका फल लेख वचन की सिद्धि घरुप।दिमें तदन्तका लिया जाना है। ८९। **वा** शोक ष्यञ् और रोग परे हृदय को हृत् विकल्प से हो। हृदयस्य शोकः चित्तस्य ग्लानिः समासे, सूत्रसे हृत् श्चुत्व छत्व। पक्षमें **हृदयशोकः** उमड़ पड़ा। **सुहृदयस्य भावः सौहार्दम**। सुहृदय य। आदिवृद्धि, हृत् आदेश। भग सन्धि अन्तमें हो दोनो पदकी वृद्धि हृत् नहीं हुआ तब आदिवृद्धि तब यस्येति अलोप। हृदयस्य रोगः **हृदयरोगः** हृत् आदेश रोग परे। दिल का दौरा हृदय पर्याय समानार्थक 'हृत्' शब्द भी है। उसीसे काम चलता, प्रपञ्चार्थ–पचि विस्तारे फैलाव वास्ते।

।९९०। **पादस्य आजि आति** ग, उपहत, इनके परे इनके उत्तरपद रहते, पाद स्थाने पद अदन्त आदेश हो। उत्तर सूत्रमें हलन्त पद है। अज गति क्षेपणयोः। चलना फेंकना अर्थ वाचक अज। पादाभ्याम् अजति पैरोसे चलता है **पदाजिः**। पादको पद आदेश (राही, पदयात्री) अत गतौ पादाभ्यामतति गच्छति पाँवो से चलता रहे **पदातिश्चलति**। पाद स्थाने 'पद'। **अजि अति** को इण् हो, पाद उपपद रहते। अज अतसे इण् हुआ। अजेर्व्यघञ्जपोः सूत्रसे अज स्थाने वि का अभाव कैसे ? निपातनसे, आदि उच्चारणसे। **पादाभ्यां गच्छति अन्येभ्योऽपि दृश्यते** गमधातु से ड—अ। टिलोप, पादको पद **पदगः** पैदली। **पादाभ्यामुपहतः** (पैर से ठुकराया हुआ) ताडितः **पदोपहतः**। पाद को पद गुण। यदि हलन्त होता तव पद्गः पदुपहतः होता।

परे। पादौ विध्यन्ति पद्याः शर्कराः। अतदर्थे किम्। पादार्थमुदकं पाद्यम्। 'पादार्घाभ्यां च' इति यत्।* 'इके चरतावुपसंख्यानम्' पादाभ्यां चरति पदिकः पर्पादित्वात् ष्ठन्। ९२ हिमकाषिहतिषु च ६।३।५४॥ पद्धिमम्। पत्काषी। पद्धतिः। ९३ ऋचः शे ६।३।५५॥ ऋचः पादस्य पत्स्याच्छे परे। गायत्री पच्छः शंसति। पादंपादमित्यर्थः। ऋचः किं? पादशः कार्षापणं ददाति। ९४ वा घोषमिश्रशब्देषु ६।३।५५॥ पादस्य पत्। पद्घोषः–पादघोषः। पन्मिश्रऽ–पादमिश्रः। पच्छब्दः–पादशब्दः।* 'निष्के चेति वाच्यम्'

।९१। पद यति–हलन्त आदेश हो, अतदर्थे=पैरके लिए न हो तब। न तदर्थः अतदर्थ। यतिपरे–पादौ विध्यन्ति (पैरों से वेधा, मसला कुचला जाने वाला) विध्यति अधनुषा से यत् वेधने अर्थमें। पाँव में चिपकनेवाला या गड़नेवाला शक्कर। वह पैरके लिए नहीं है। अतदर्थ है, पाद को पत शसि रूपम्। अतदर्थ क्यों पढ़ा? पादार्थम् पाँव धोनेके लिय पाद्यं जलं, पादार्घाभ्यां च से तादर्थ्य पाँवके लिये यत्, पत नहीं हुआ। इके= चरति अर्थमें हुए ठनके ठ को हुआ इक् परे पादको पत् आदेश कहें। पैरोंसे चलनेवाला पदिकः पैदली। पर्पादि मानकर पदसे चरति अर्थमें ठन् इक।

।९२। हिम–बर्फ काषी खीचनेवाला, हति रास्ता, धूल परे रहते पादको पद हो। पादस्य हिमं पाँवकी शीतलता पद्धिमम् अस्ति। हिम परे पादको पत्। इ को पूर्वसवर्णे। पादौ पादाभ्यां वा कषति पावको या पांवोसे वस्तु खीचता है सुपि अजातौ णिनिः। घड़ियाल चप्पलचोर। हन्यते इति हतिः (कर्ममें क्तिन्) धूलिः पादाभ्यां हतिः पैरोंसे ठुकराई हुई। करणे कृता सह समासे, पादको पत्। पद्धतिः रास्ता।

।९३। ऋचः मन्त्रका पाद चरण हो तब उसको पत् हो, शपरे रहते गायत्री के पाद चरण एक की प्रशंसा व्याख्याकर्ता है, पच्छः पादं पादं शंसति पादसे वीप्सा अनेक वार अर्थमें शस्, मन्त्र का पाद है अतः पद हुआ श्चुत्व, छत्व,। ऋचः क्यों पढ़ा? पादं पादं कार्षापणं सुवर्णं ददाति पादशः। यहां सोनेका टुकड़ा है, मन्त्रका पाठ नहीं, पद भी नहीं। ।९४। (वा) घोष मिश्र शब्द परे रहते पाद स्थाने पत आदेश हो पादयोःघोषः पावोंकी ध्वनि घोष परे पाद को पत् विकल्प। पक्षे पाद्घोषः। पादयोः मिश्रः पाँव मिलाने वाला। पद अनुनासिक पन्मिश्रः। पादयोः शब्दः पाँवोंकी आवाज, पाद को पत्। श्चुत्व छत्व पच्छब्दः। पक्षे न। निष्के परे पद आदेश। पादयोः निष्कः

पन्निष्कः-पादनिष्कः । ६६५ **उदकस्योदः संज्ञायाम्** ६।३।५७।। उदमेघः ।* 'उत्तरपदस्य चेति वक्तव्यम्' क्षीरोदः । ६६ **पेषंवासवाहनधिषु च**६।३। ५८।। उदपेषं पिनष्टि। उदवासः। उदवाहनः। उदधिर्घटः। समुद्रे तु पूर्वेण सिद्धम्। ६७ **एकहलादौ पूरयितव्येऽन्यतरस्याम्** ६।३।५६।। उदकुम्भः- उदककुम्भः। एक-इति किं उदकस्थाली। पूरयितव्ये इति किम्। उदकपर्वतः। ६८ **मन्थौदनसक्तुबिन्दुवज्रभारहारबीवधगाहेषु च** ६। ३। ६०।। उदमन्थः-उदकमन्थः, उदौदनः-उदकौदनः इत्यादि। ९९ **इको ह्रस्वोऽङ्यो**

पैरोंका लाल पन्निष्क, पाद को पद, परोऽनुनासिक हुआ।

। ६९५। **उदक** के स्थान में उद आदेश हो, संज्ञा-किसी का नाम हो तब। उत्तरपद परे हो। उदकपूर्णमेघइव **उदमेघः** जल भरे बादलके समान हो वह घनश्याम। उदक को उद हुआ। उत्तरपदमें उदक हो, उसे भी उद हो, नाम में। क्षीरमुदकस्थानीयस्य **क्षीरोदः**। उदक-जलके स्थान में दूध देता है इस अर्थमें उदकं को उद आदेश। **क्षीरोदं सरः** असाधु है। । ९६। **पेषं** वासः वाहन और धि परे हो तब उदक को उद आदेश हो। उदकेन पिनष्टि जल मिलाकर पीसता है। स्नेहने पिष इति ण्मुल्। उदक स्थाने उद आदेशे। **उद पेषं** पीस कर पानी बना रहा है। **उदकस्य वासः**, जल का स्थान वास परे 'उद' आदेश **उदकस्य वाहनः** जल ढोने वाला उद आदेश। उदकं जलं धीयते पूर्यते अस्मिन् **उदधिः** उदकको उद आदेश। यह संज्ञा नहीं है इसका स्पष्टीकरण घट से है। समुद्र अर्थ। संज्ञा होता तब पूर्वसूत्रसे उदक को उद आदेश सिद्ध होता है।

। ९७। **एकहलादौ** एकवर्णमें हल्धर्म है। एक क्यों पढ़ा ? असंयुक्त लाभके लिए। **पूरयितव्ये**=पूरणार्ह यत्कुम्भादिः भरने योग्य घड़ा पात्र, संयुक्त हल न हो, तब उदकको उद् आदेश हो। **उदकस्य कुम्भः**। जल भरा घड़ा, उद आदेश। पक्षे **उदककुम्भः**। एक क्यों। कहा-संयुक्त अक्षर न हो, ऐसा क्यों ? **स्थालीसंयुक्त** है। उद नहीं हुआ। **भरने योग्य** क्यों जलका पहाड़ भारी वर्फ से भरणीय नहीं उद् भी नहीं।

। ९८। **मन्थ ओदन** शक्तु, बिन्दु, बज्र, भार, हार, बीबध, ग्राह इनके परे उदक को उद् आदेश विकल्पसे हो। भरने पात्र न हो तब। उदकमिश्रो मन्थः जल मिलाकर मन्थन क्रिया-मही भोग बूटी जलं भरणीय नहीं। उदक को उद आदेशके दो रूप द्रवद्रव्यसम्पृक्ताः। **संयोगमन्थः**, पिघलीवस्तु

गालवस्य ६।३।६१॥ इगन्तस्याङ्यन्तस्य ह्रस्वो वा स्यादुत्तरपदे। ग्राम-मणिपुत्रः-ग्रामणीपुत्र इकः किं रमापतिः अङ्यः इति किं गौरीपतिः। गालवग्रहणं पूजार्थम्। अन्यतरस्यामित्यनुवृत्तेः।* 'इयङुवङ्भाविनामव्ययानां च नेति वाच्यम्' श्रीमदः। भ्रूभङ्गः। शुक्लीभावः।* 'अभ्रुकुंसादीनामिति वक्तव्यम्' भ्रुकुंसः—भ्रूकुंसः। भ्रुकुटिः—भ्रूकुटिः। 'अकारोऽनेन विधीयते' इति व्याख्यान्तरम्। भ्रकुंसः। भ्रकुटिः। भ्रुवा कुंसो भाषणं शोभा वा यस्य सः स्त्रीवेषधारी

मिलाकर माँड़ना। **उदकमिश्रः ओदनः** घृत मिश्रितभात। उद आदेश गुण। भर्जित यव, पिसा सक्तु, उदकमिश्राः शक्तवः: उदसक्तवः, **उदकसक्तवः** **उदकस्य विन्दवः उदविन्दवः। उदकस्य बज्रं उदबज्रः।** उदकस्य भारः उदक भारः, **उदभारः** । जलका बोझा। उदकस्य **हारः उदहारः** उदकहारः। जल का आहरण जलकी बन्धी **उदवीवधः** जल आहरण योग्यम्। उभयतः शिक्या स्कन्धबाह्यः काष्ठविशेषः। उदकस्य गाहः अव गाहनं **उदकगाहः**। ९९। **इको ह्रस्व** इक्=इ उ ऋ ऌ अन्तमें हो। ङी अन्तमें न हो, ऐसे शब्दको ह्रस्व हो विकल्पसे, उत्तरपद परे। गालव आचार्यके मतमें। **ग्रामं नयति ग्रामणीः तस्य पुत्र ग्रामणिपुत्रः** के उत्तरपद रहते इगन्तको ह्रस्व। णी धातुमें धातुका **ई** है, ङीप् नहीं। गालवचार्यके मतमें। अन्यमते न ह्रस्वः इक् से परे नि को ह्रस्व क्यों कहा? रमापतिः में टाप् है। अङ्यन्त है किन्तु इगन्त नहीं। अङी क्यों गौरीपतिः ङीप् है ह्रस्व नहीं हुआ। गालवको पूजार्थ, सन्मानके लिए पढ़ा? विकल्प तो अन्यतरस्यांकी अनुवृत्तिसे सुनिश्चित। जहाँ **इयङ् उवङ्** भावी हो। और जो अव्यय हो, उनको ह्रस्व नहीं होता। श्री और भ्रू को अजादिपरे इयङ् **उवङ्** भावी है। श्रियाः मदः **श्रीमदः** धनकी नशा। ह्रस्व नहीं हुआ, वार्तिककी कृपासे। भ्रुवः भङ्गः **भ्रूभङ्गः** टेढ़ा भौं। वार्तिकसे ह्रस्व निषेध नहीं। अशुक्लं शुक्लं जो श्वेत नहीं था। कुण्ठसे शुक्ल हुआ। **अभूततद्भावे च्विः** जो नहीं था अब हो गया, च्विका अर्थ है। अस्य च्वौ इत्वे, दीर्घ भी 'उर्यादि' से अव्ययसंज्ञा वार्तिकसे ह्रस्वनिषेध (वा०) **अभ्रुकुंस**—इत्यादिको अङ् भावी हो, तब ह्रस्वनिषेध न हो। भ्रुवः कुंसः भौह की वक्रता। समास में इगन्त मानकर ह्रस्व होता है अच्परे इवङ् **भावी** है ह्रस्वका निषेध प्राप्त था उसका इस वार्तिकसे निषेध। दो निषेधका समर्थन अर्थ। एवं भ्रुवः कुटिः **भ्रुकुटी** भौहों की कुटिलता। यदा न ह्रस्व तदा **भ्रूकुंसः**। किसी व्याख्याकारका मत है कि यह वार्तिक भ्रू के उ को अकार आदेश करता है। अ ऐसा पढ़ते हैं उनके मतमें **भ्रकुंसः** भी बनता है। प्रमाण

नर्तकः । भ्रुवः कुटिः कौटिल्यम् । १००० **एकतद्धिते च** ६।३।६२॥ एक शब्दस्य ह्रस्वः स्यात्तद्धिते उत्तरपदे च। एकस्य आगतमेकरूप्यम् । एकक्षीरम् । १ **ङ्यापोः सञ्ज्ञाछन्दसोर्बहुलम्** ६।३।६३॥ रेवतिपुत्रः अजक्षीरम् । २ **त्वे च** ६।३।६४॥ त्वप्रत्यये ङ्यापोर्वा ह्रस्वः । अजत्वम् अजात्वम् । रोहिणित्वम्—रोहिणीत्वम् । ३ **ष्यङः सम्प्रसारणं पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे** ६। १।१३॥ ष्यङन्तस्य पूर्वपदस्य सम्प्रसारणं स्यात्पुत्रपत्योरुत्तरपदयोस्तत्पुरुषे । ४ **सम्प्रसारणस्य** ६।३।१३९॥ सम्प्रसारणस्य दीर्घः स्यादुत्तरपदे । कौमुद-गन्धायाः पुत्रः कौमुदगन्धीपुत्रः । कौमुदगन्धीपतिः । 'व्यवस्थितविभाषया ह्रस्वो

देते है--भ्रुवा कुंसः, भौंहसे टेढ़ापन, भाषण, आकर्षण, भावप्रदर्शन हो जिसका ऐसा स्त्रीवेश, बनानेवाला नर्तक। भौंहोंका टेढ़ापन भावार्थ ज्ञापन। भ्रकुंसश्च भ्रुकुंसश्च भूकुंसश्च नर्तक—इति अमरकोशे एवं भ्रकुटी भ्रुकुटी भ्रूकुटी स्त्रियाम्।

। १००० । **एका** शब्दको ह्रस्व हो तद्धितपरे, उत्तरपदपरे भी। यथा एकस्याः आगतं **एकरूप्यम्** एकस्त्री का आना। हेतु-हेतु मनुष्योभ्योसे आया हुआ अर्थमें रूप्यःएकारूप्य यह जो तद्धितपरे है एका को ह्रस्व। एकस्याः क्षीरं **एकक्षीरं** एक गायका दूध, एकाको ह्रस्व उत्तरपदक्षीरं है (१) **ङ्यापोः** ङीप् टाप् को ह्रस्व हो उत्तरपदपरे, संज्ञा अर्थमें। **छन्दसि**—वेदमें बहुल= आवश्यकतानुसार। रेवत्याः पुत्रः बलरामकी पत्नीका पुत्र रेवतिपुत्रः किसीका नाम है। ह्रस्व हुआ छन्दमें आजायाः क्षीरं बकरीका दूध। आप्को ह्रस्व **अजक्षीरम्**। परमं र्वा एतत्पयो यदजक्षीरं तैत्तिरीये।

। २ । **त्वे च**। त्व परे रहते ङी टाप् के इ, आ, को ह्रस्व हो। आजायाः भावः बकरीका धर्म विशेषता **अजत्वं** भावमें त्व परे ह्रस्वविकल्प। पक्षे **अजात्वम्**। एवं रोहिण्याः भावः रोहणीके धर्म विशेषताभाव अर्थ में त्व **रोहिणित्वम्**। पक्षमें यह संज्ञा न ही। छन्दमें ही, विना उत्तरपदके ह्रस्वके लिए। ३। ष्यङ् प्रत्यय है तदन्तविधि होगी। ष्यङ् प्रत्यय अन्तमें हो ऐसे पूर्वपदके '**य**' को इ सम्प्रसानण हो पुत्र या पति उत्तरमें हो। तत्पुरुष=उत्तर-पदार्थप्रधान अर्थमें। उत्तरपदपूर्वपद दोनोंका तत्पुरुषसे लाभ, अधिकारसे भी, आक्षेपसे भी। ४। **सम्प्रसारण** को दीर्घ हो उत्तरपदपरे। 'ढ़लोपे' से दीर्घ आया। अलुगुत्तरपदेसे उत्तरपदका अधिकार। **कुमुद गन्धइव गन्धो यस्य** रात्रि कमलके सुगन्धके समान महक हो, वह कुमुदगन्धिः। सप्तम्युपमान-

न'। 'स्त्रीप्रत्यये चानुपसर्जने न' इति तदादिनियमप्रतिषेधात्। परमकारीष-गन्धीपुत्रः। उपसर्जने तदादिनियमान्नेह—अतिकारीषगन्ध्यपुत्रः। १००५

पूर्वपदस्यसे बहुव्रीहिसमास, उत्तरपद गन्धका लोप। उपमानाच्च से इत्व, **कुमुदगन्धिः** तस्य अपत्यं स्त्री अर्थमें अण्। उसकी सन्तान 'अणिञो.' से अण को ष्यङ्। कुमुदगन्धि य। यस्येति इलोप, आदिवृद्धि, यङश्चाप्। **कौमुदगन्ध्या तस्या पुत्रः**, षष्ठीसमास कुमुदगन्धवालेकी पुत्री का पुत्र, अर्थ। **कौमुदगन्ध्य-पुत्र** इस दशामें ष्यङः सम्प्रसारणसे य को इ। या में आ का सम्प्रसारणाॅच्चसे पूर्वरूप, सम्प्रसारणस्य इकारस्य दीर्घे **कौमुदगन्धीपुत्रः**। हलः से दीर्घ नहीं, अङ्गका अवयव न होनेसे। इसीप्रकार **कौमुदगन्धीपतिः**। कुमुदगन्ध इव गन्धो यस्या सा तस्याः पतिः समासादिः ष्यङादिः सम्प्रसारणादिः पूर्ववत्। कुमुदगन्ध वालेकी पुत्री का पति। इ को **ह्रस्वे से ह्रस्व** क्यों नहीं? व्यवस्थितविभाषासे। **विविधा अवस्था** व्यवस्था सा प्रयोगसिद्धिके अनुसार। **करीषं-गोमहिषादि पुरीषं**, गोवरके गन्ध इव गन्धो यस्य वह पुरुष **करीषगन्धिः** तस्यापत्यं स्त्री उसकी सन्तान पुत्री अण, आदिवृद्धि टाप्, **कारीषगन्ध्या**, परमाचासौ सा तस्याः पुत्र **परमकारीषगन्धी** पुत्रः यहाँ भी ष्यङः संम्प्र-सारणं पूर्व रूप दीर्घ भी, **गोबरगन्ध** की तरह गन्ध वालेकी लड़की का पुत्र। अत्र शंका—सम्प्रसारण कैसे, ष्यन्ङते करीषगन्ध्या पूर्वपद है, परमकारीषगन्ध्या है, वह ष्यङन्त नहीं, जिससे प्रत्ययका विधान है वहीं तदन्तमान्य। तब बोले—स्त्रीप्रत्यय, ष्यङ् स्त्रीके अधिकारमें है। जहाँ स्त्रीप्रत्यय अनुप सर्जन हो। अन्य अर्थ में समर्पित **न** हो प्रत्ययग्रहणे यस्मात्, तदादि परिभाषा नहीं लगती जब तदादिनियम की परिभाषा नहीं लगी, तब **परमकारीष-गन्ध्या** शब्द ष्यङन्त मान्य हुआ। सम्प्रसारण, दीर्घ में बाधा नहीं। अनुप सर्जनमें परिभाषा **न** लगने का फल है कि उपसर्गन=**विशुद्ध**विशेषणमें परि-भाषा लगती है। तदादि तदन्त नियम है। यथा करीषगन्ध्यामतिक्रान्तः **अतिकारीषगन्धः** गोबर गन्ध वाले की लड़कीसे भी अधिक गन्धवालींका पुत्र। अतिक्रान्त अर्थमें समास, उपसर्जन संज्ञा, ह्रस्व स्त्रीं प्रत्ययमें तदादि नियम की परिभाषा अनुपसर्जनमें नहीं लगती, उपसर्जनमें लगती है। अतिक्रान्त अर्थमें पराधीन है अतिक्रान्त अधिक होनेसे ष्यङन्त नहीं रहा, सम्प्रसारणनहीं हुआ। १००५। **बन्धुनि** उत्तरपद परे रहते ष्यङ् को सम्प्रसारण इ हो अन्य अर्थप्रधानमें **कारीषगन्ध्या** है। बन्धु सहायक

बन्धुनि बहुव्रीहौ ०।१।१४।। बन्धुशब्दे उत्तरपदे ष्यङः सम्प्रसारणं स्यात् बहुव्रीहौ। कारीषगन्ध्या बन्धुरस्येति कारीषगन्धीबन्धुः। बहुव्रीहौ इति किं, कारीषगन्धायाः बन्धुः कारीषगन्ध्याबन्धुः। क्लीबनिर्देशस्तु शब्दस्वरूपापेक्षया (मातज्मातृकमातृषु वा') कारीषगन्धीमातः--कारीषगन्ध्यामातः। कारीषगन्धीमातृकः--कारीषगन्ध्तामातृकः। कारीषगन्धीमाता--कारीषगन्ध्यामाता। अत एव निपातनात्मातृशब्दस्य मातजादेशः। 'नद्यृतश्च' इति कब्विकल्पश्च। बहुव्रीहावेवेदं नेह्। कारीषगन्ध्याया माता कारीषगन्ध्यामाता। चित्वसामर्थ्या - च्चित्स्वरो बहुव्रीहिस्वरं बाधते **६इष्टकेषीकामालानां चितातूलभारिषु ६।३।६५।।** इष्टकादीनां तदन्तानां च पूर्वपदानां चितादिषु क्रमादुत्तरपदेषु ह्रस्वः स्यात्। इष्टकचितम्। पक्वेष्टकचितम्। इषीकतूलम्। मुञ्जेषीकतूलम्।

पड़ोसी। बन्धु परे सम्प्रसारण और दीर्घ। बहुव्रीहि क्यों पढ़ा? तत्पुरुषमें न लगे, बन्धुभिमें क्लीब नपुंसक उच्चारण, शब्दके स्वरुपाधार पर। **मातजमातृक** और मातृ परे ष्यङ्को सम्प्रसारण विकल्पसे हो। कारीषगन्ध्यायाः माता। समास मातच् परे य को इ सम्प्रसारण पूर्वरूप दीर्घ आदि। पक्ष में नहीं। मातृको मातच् आदेश है। मातृक परे गन्ध्यामाता यस्य। सम्प्रसारणादि विकल्प से। न द्यृतश्च मातृ परे कारीषगन्धीमाता। शैषिक कप् का अभाव। मातृ शब्दको मातज् आदेस में क्या प्रमाण, पक्ष में कप् भी दुर्लभ है। तब बोले-**तस्मादेव**, सूत्रमें पढ़नेके प्रमाण से, मातृ शब्दको मातज् और कप् विकल्प ही होता है। बन्धुनि बहुब्रीहौ सूत्रपर यह वार्तिक पढ़ा है। तदनुसार प्रक्रिया उसका फल हुआ कि उत्तरपदार्थप्रधानअर्थमें वार्तिक नहीं लगा। (गोबरगन्धवालीकी मां) **करीषगन्ध्यामाता** यहां मातच् में चित् पढ़नेके सामर्थ्यसे चित्स्वर बहुब्रीहि स्वरको बाँधता है।

। ६। **इष्टका इषीका माला** इनका तदान्तानां=वे शब्द अन्तमें हों, ऐसा शब्दपूर्वपद हो तब क्रमसे चित्त, तूल, भारि उत्तरपद परे ह्रस्व हो। व्यवहार भावसे उनका भी ग्रहण, उत्तरपदके अधिकारमें भी पदका अधिकार। **पदाङ्गधिकारे तस्य तदन्तस्य च** स्वीकार करनेसे पदका ग्रहण। ह्रस्व आया। इष्टाकाभिः चितं इष्टोंसे चुना, जड़ा हुआ **इष्टकचितं भवनं** इष्टका पदको ह्रस्व हुआ। चित्तपदपरे। कर्तृकरणे कृतासे समास। **पक्वाभिः इष्टकाभिः चितं चिञ्** चयने पके इटोंसे जड़ा हुआ। समास, सुपो लुक्, ह्रस्व, गुण आदि। तदन्तपद। इषीकायाः तूलं इषीकतूलं इषीकका अग्रभाव कोई कहते हैं।

मालभारी। उत्पलमालभारी। ७कारेसत्यागदस्य ६।३।७०॥ मुम्स्यात्। सत्यङ्कारः अगदङ्कारः। *अस्तोश्चेति वक्तव्यम्। अस्तुङ्कारः* 'धेनोर्भव्यायाम्'। धेनुम्भव्या * लोकस्य पृणे, लोकम्पृणः। पृण इति मूलविभजादित्वात्कः। *इत्यऽनभ्याशस्य। अनभ्याशमित्यः, दूरतऽ परिहर्तव्यः इत्यर्थः। भ्राष्ट्राग्न्योरिन्धे' भ्राष्ट्र

कपासकी रुई। समास, पूर्वपदको ह्रस्व। मुञ्जा इषीका। मूंज और कासका अग्रभाग पदान्तपूर्वको ह्रस्व। मालां विभर्ति 'सुपि-अजातौ णिनिः' मालभारि पत्थर बोझा वाहक। भारी ट्रक। पदान्त पूर्वपद मालाको ह्रस्व।

।७। **सत्य** और अगदको मुम् हो कार परे। म इत्। उ उच्चारणार्थ। अन्त्य अच् परे मित्। **सत्यं शपथं प्रतिज्ञां वा करोति सत्यङ्कारः।** अथवा करणङ्कारः भावे घञ्। क्रिया सत्यस्य कारः सपथकरणम्। कारपरे सत्यके अन्त्य अच्को मुम्। मोऽनुस्वारः परसवर्णः। **गदो रोगः तस्य अभावः अगदः निरोगः, अगदस्यकारः अगदङ्कारः वैद्यः।** मुम् अनुस्वार परसवर्ण। निरोग करना। **अस्तु** शब्दसे कारपरे मुम् हो। अस्तु अस्तु (तिङन्तबोधक अव्यय) उससे मुम् हुआ। **अस्तुङ्कारः। धेनोः**=धेनुसे मुम् हो। भव्या परे। **भविष्यन्ती धेनुः भव्याः** दूध देने, व्यानेवाली। **ददाति सत्वं धेनुः** सा **चासौ भव्या च समासे, मुम्** धेनुम्भव्या व्यानेवाली है। **लोकको** मुम् हो पृणपरे। **लोकं पृणति लोकम्पृणः**, मुम्। कर्ममें अण् होगा, तब गुण रपरसे पर्ण बनेगा। तब बोले पृणसे मूलविभुजादि मानकर **कः**, कित्से गुण निषेध, इत्यपरे। अनभ्याश को मुम् हो। **अभ्याशः समीपम्, अनभ्याश दूरं**, प्रापणार्थक इण्से क्यप् समासादिः, मुम् **अनभ्यासमित्यः**। दूरं प्रापयितव्यः, न तु समीपं, दूर करना चाहिये। **भ्राष्ट और अग्निको** मुम् हो इन्ध परे। **भ्राष्ट्रं धानादिभर्जनपात्रं,** तदिन्धे **तापयति भ्राष्ट्रमिन्धः**। भाड़=दानाभूजनेके लिए अग्नि जलाया जाय जिसमें। कर्ममें अण्, उपपदसमास, सुपो लुकि मुम्। **अग्निं प्रज्वालयति अग्निमिन्धः**, आग धधकानेवाला। समास, मुम् आदि। **गिलेऽगिलः** लीलनेवाला शब्दपरे **अगिलस्य** गिलसे भिन्न शब्दको मुम् हो। गॄ निगरणे, लीलने अर्थ मे गॄ से मूलविभूजादि से क। धातोः ऋ इत्, रपर। अचि विभाषा' र को ल। तिमि—लम्बी मछली तं गिलति **तिमिङ्गिलः** गिल परे तिमिको मुम्, अनुस्वारपरसवर्ण। तिमि मछलीको लीलनेवाला, उसको भी लीलनेवाली, **गिलं गिलति गिलगिलः तिमींनां गिलगिलः। सामान्य सम्बन्धे षष्ठी या तिमिषु गिलगिलः** निर्धारणे सप्तमी। संज्ञायांसे समास, गिलगिले परे मुम्।

मिन्धः अग्निमिन्धः । *गिलेऽगिलस्य' तिमिङ्गिलः । अगिलस्य किम् गिलगिलः गिलगिले च'* तिमिङ्गिलः। *उष्णभद्रयोः करणे' उष्णङ्करणम् । भद्रङ्करणम्-८ रात्रेः कृति विभाषा ।६।३।७२।। कृदन्ते परे । रात्रिञ्चरः-रात्रिचरः । रात्रिमटः-रात्र्यटः । अखिदर्थमिदं सूत्रम् । खितितु 'अरुर्द्विषत् -इति नित्यमेव वक्ष्यते । रात्रिम्मन्यः । ९ सहस्य सः सञ्ज्ञायाम् ६।३।७८।। उत्तरपदे। सपलाशम् । सञ्ज्ञायाम्' किं ? सहयुध्वा । १०१० ग्रन्थान्ताधिके च ६। ४।९७।। अनयोरर्थयोः सहस्य सः स्यादुत्तरपदे । समुहूर्तं ज्यौतिषमधीते। सद्रोणाखारी । ११ द्वितीये चानुपाख्ये ६।३।८०।। अनमेये द्वितीये सहस्य सः स्यात् । सराक्षसीका निशा । राक्षसी साक्षादनुपलभ्यमाना निशयाऽनु

उष्ण और भद्रको मुम् न हो करण परे। उष्णस्य करणं भद्रस्य करणं, गर्म और मङ्गल करना । उत्तमं करण परे मुम्, अनुस्वार परसवर्ण ।

।८। रात्रेः कृति–कृदन्त परे रहते । रात्रिको मुम् हो विकल्पसे। रात्रौ चरति रात्रिञ्चरः, चरेष्टः उपपदसमास । कृदन्त–चर परे रात्रिको मुम् अनुस्वार परसवर्ण। रात्रौ अटति याति रात्रिमटः विकल्प मुम् । यदि कृति परे रात्रिको मुम् होगा तब रात्रिमन्यः में मुंम् विकल्प क्यों नहीं, तब कहा अखिदर्थ–जो खित नहीं, वह विकल्प मुम्का पात्र है । जो खित है वहां विकल्पको बाधकर नित्य मुम् । कृतके अधिकारमें कहेगें । आत्मानः रात्रि मन्यते रात्रिम्मन्यः आत्माने खश् । शित्से सार्वधातुक, उससे परे श्यन् । खित्से नित्यमुम् । ९ । सह के स्थानमें स आदेश हो, उत्तरपदपरे । किसीका नाम होनेपर, वा उपसर्जनस्यको बाधकर । पलाशेन सह वर्तते सपलाशः, वनं, 'तेन सह' से अन्यपदार्थ समास । सहको स । संज्ञा क्यो पढ़ा ? सह युध्यति सहयुध्वा साथ लड़ता है 'सहे च' क्वनिप् न संज्ञा है, स आदेश न हो।

। १०१० । ग्रन्थ अन्त अर्थ हो और अधिक हो ऐसे अर्थपरे सहको स हो, उत्तरपदपरे । मुहूर्तविधिपरकग्रन्थपर्यन्तग्रन्थं ज्योतिः शास्त्रमधीयते । सहको स आदेश, अन्तवचने अव्ययीभावः । अकाले=काल अर्थ रहे तब स नहीं होता, अतः ग्रन्थान्त पढ़ा । यहाँ सह का मुहूर्त पर्यन्त ग्रन्थार्थ है। द्रोणपरिमाणात् अधिका सद्रोणा । अधिक अर्थमें सहको स । मयूरव्यसंकादिसे अधिकवाचीसहके साथ समास और स आदेश । ११ । द्वितीये अप्रधानः असहायः, न एकः यः स द्वितीयः लक्षणया ज्ञातः । अनुपाख्ये=उपाख्यायते क्रियते अनुमीयते उपलभ्यते उपाख्यानं=प्रत्यक्षं, तद्भिन्नमनुमानका विषय हो, दूसरा जान पड़े

मीयते । १२ समानस्य च्छन्दस्यमूर्धप्रभृत्युदर्केषु ६।३।८४।। समानस्य सः स्यादुत्तरपदे न तु मूर्धादिषु। 'अनु भ्राता सगर्भ्य। अनु सखा सयूथ्यः। यो नः सनुत्यः। 'तत्र भवः, इत्यर्थे 'सगर्भसयूथसनुताद्यत्' अमूर्धादिषु किं ? समानमूर्धा। समानप्रभृतयः। समानोदर्काः। समानस्य इति योगो विभज्यते। तेन सपक्षः साधर्म्यं सजातीयमित्यादि सिद्धिमिति काशिका। अथवा सह-

---

सहायकबाची उत्तारपदपरे, सह को सह हो। अनुमेय राक्षसी सहिता निशा घोर अँधेरी रातमें राक्षसीका अनुमान भान ज्ञान हो रहा हो। निशा प्रत्यक्ष है राक्षसी अनुमेय। साक्षात् उपलब्ध नहीं गाढ़तमसे प्रतीत। सहको स। **नदीसंज्ञक से** कप् टाप् **शराक्षसीका**।

।१२। **समानके** स्थानमें स आदेश हो उत्तरपदपरे वेदमें, किन्तु मूर्धन्, प्रभृति, उदर्क परे न हो तब। सम्राने **गर्भे भवः सगर्भ्यः**। एक गर्भ आशयसे उत्पन्न भाई। **समाने यूथे भवः** एक झुण्डमें हुआ। **सयूथ्यः, समाने नुतेभवः सनुत्यः**। एक मर्यादामें पला। ऐसे स्थलमें तद्धितार्थोत्तरपदसमासे समानको वेदमें 'स' भाव और सगर्भ सयूथसनुतसे तत्रभवः(आधारमें) हुआ **अर्थ** बोधक यत्। सूत्रमें अमूर्धा आदि क्यों ? **समानः मूर्धा यस्य**=सिर है जिसका। समास होनेपर सभाव न हों। सभावका निषेध किया। **समानः प्रभृतिः आद्यवज्ञवो येषां** एक है प्रथम अबयव जिन समासोंके, वे **समानप्रभृतयः** यहां प्रभृतिपरे समानको स **न** हो। समान उदर्कः येषां एक ढ़ंगका है उच्चारण जिन समासों के, वे **समानोदर्काः**। सभाव नहीं हुआ। जैसे तैत्तिरीये—सजूर्विधाभिः रूद्रैः आदित्यैः देवैः—सादयतामिह त्वा। मन्त्राः पञ्च पठिताः। सबका आदि अवयव सजूः अनेक मन्त्रोमें समान उच्चारण। ननु **सपक्षः** आदिमें समानको स आदेश कैसे ? तब बोले **योगो विभज्यते** सूत्रका अलगाव करेंगें। **समानस्य सह स्यात्**। दूसरा वाक्य होगा। छन्दसि के अभावसे लोकमें भी समानको स होगा।तेन=विभाग का फल **सामनःपक्षो यस्य** एक आधार है जिसका, समास होने पर समान को स हुआ। समानः धर्मो यस्य **सधर्मा**। समासे समानस्य स तस्य धर्मः। ब्राह्मणादि मानकर ष्यञ्, समान धर्म वालों की एकता। समानजातिर्यस्य, एक जाति वाला। समानको स जात्यन्त से छ–ईय, बन्धु अर्थमें। सजातीयं, समानः ग्रामः सग्रामः इत्यादि समझें। यह तर्क काशिका का है। भाष्यमें सूत्र विभाग से अर्थ नहीं निकाला गया। तब बोले **अथवा** सह शब्दसदृश अर्थ में है। उसके साथ बहुब्रीहि, अन्य

शब्दः सदृशवचनोऽस्ति । सदृशः सख्या ससखीति यथा । तेनायमस्वपदविग्रहो बहुव्रीहिः । समानः पक्षोऽस्येत्यादि । १३ **ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु** ।६।३।८५।। एषु द्वादशसूत्तरपदेषुण समानस्य सः स्यात् । सज्योतिः । सजनपद इत्यादि । १४ **चरणेब्रह्मचारिणि** ६।३।८६।। ब्रह्मचारिण्युत्तरपदे समानस्य सः स्याच्चरणे समानत्वेन गम्यमाने । चरणः शाखा । ब्रह्म वेदः । तदध्ययनार्थं व्रतमपि ब्रह्म, तच्चरतीति ब्रह्मचारी ।

पदार्थ परक=सह धर्मो यस्य **सधर्मा**, सह पक्षो यस्य **सपक्षः**, यहां 'वा उपसर्जनस्य' से सह को सभाव मान्य । जैसे **सख्या** सदृशः ससखि । मित्रके समान जो सहका अर्थ है, ससखि बना । यदि ऐसा-तब समानः पक्षो यस्य विग्रह कैसे सह शब्द का प्रवेश उचित, तब बोले अयम् अस्वपद=न स्वपदेनविग्रहो यस्य समानके साथ विग्रह । सह के साथ समास । यहाँ सह शब्द सदृश अर्थमें है अतः **सपक्षः** इत्यादि बनेगें ।

। १३ । **ज्योतिः** । ये १२ शब्द उत्तरपदमें हों, तब समानको स हो । बिना छन्दके उपयोगी है । जिस मुहूर्त-सूर्यनक्षत्रमें पैदा हो, उसके अस्त तक आशौचम् । **सज्योतिः-समानं ज्योतिर्यस्य** एक प्रकाश, मुहुर्त, कार्य हो जिसका सूत्रेण समानस्थाने स आदेश, एवं **समानं जनपदं यस्य** एक नगर हो जिसका समानको स । **समाना रात्रिः सरात्रिः**, समानः नाभिः सनाभिः । समानं नाम सनामा । एकही नामवाला । समानः गोत्रः सगोत्रः, समानं रुपं यस्य सरुपः । समानं स्थानं यस्य सस्थानः । समानः वर्णो यस्य सवर्णः, समानं वयो यस्य **सवयाः**, समवयस्कः समानं **वचनं** यस्य सवचनः । सबन्धुः । सर्वत्र समास होने पर समानको स भाव ।

। १४ । **चरणे** समानस्य और स आया । उत्तरपद का अधिकार । ब्रह्मचारी उत्तरपद परक हो तब समानको स आदेश । चरणे सप्तमीका समानस्य से योग । चरण अर्थ समान रुपसे जान पड़ता हो । चरण क्या है–तब बोले शाखा । वैदिक प्रसिद्धि प्रमाण है । **ब्रह्मचारी पद क्या** है स्पष्ट बोले **ब्रह्मा वेदः वेदस्तत्वं तपो ब्रह्म इत्यमरः** । **तदध्ययनार्थ**=उस वेदके अध्ययनके लिए । तस्य वेदस्य **चरण**मध्ययनं व्रत, भी । प्रतिज्ञा संकल्प, दृढ़निश्चय भी ब्रह्म है । गौणी वृतिसे । **तच्चरति अनुतिष्ठति**–उस व्रतका सफल आचरण कर्ता **सब्रह्मचारी** है । सुपि अजातौ णिनिः । समानः ब्रह्मचारी कर्मधारय समासः । सूत्रेण समानस्य स आदेशे, **सब्रह्मचारी** समानता वेद से है । समान वेदाध्य-

समानस्य सः सब्रह्मचारी। १०१५ तीर्थे ये ६।३।८७॥ तीर्थे उत्तरपदे यादौ प्रत्यये विवक्षिते समानस्य सः स्यात्। सतीर्थ्यः। एकगुरुकः। 'समान-तीर्थे वासी' इति यत्प्रत्ययः। १६ विभाषोदरे ६।३।८८॥ यादौ प्रत्यये विविक्षिते इत्येव। सोदर्यः—समानोदर्यः। १७ दृग्दृशवतुषु ६।३।८९॥ सदृक्—सदृशः।* 'दृक्षे चेति वक्तव्यम्' सदृक्षः। वतुरुत्तरार्थः। १८ इदङ्किमोरीश्की ६।३।९०॥ दृग्दृशवतुषु इदम ईश् किमः की स्यात्। ईदृक्—ईदृशः। कीदृक्—कीदृशः। वतूदाहरणं वक्ष्यते,* 'दृक्षे चेति वक्तव्यम् ईदृक्षः कीदृक्षः।

यानार्थ व्रताचरणकर्ता। भाष्ये तु समाने ब्रह्मणि व्रतं चरिते अर्थे णिनिः, व्रतका लोप निपातनसे।१०१५। तीर्थे ये सप्तमीका एकवचन, तदादिविधि, तीर्थपद उत्तरमें हो,। यकारादिप्रत्यय विवक्षित हो, तब समानको स हो। न च य प्रत्ययान्त से परे तीर्थ हो, ऐसा कहे' क्या दोष होगा। यप्रत्यय समास होने के बाद ही हो, वह अन्तरङ्गसे स भाव होने पर ही होता हैं। और परिनिष्ठितसे तद्धित होनेका नियम भी है। स होने पर एकदेश विकृतन्यायसे, या भूतपूर्व गतिसे समान तीर्थ मिलेगा। यपरक समानको स कैसे—तब बोले विवक्षिते—समाने एके तीर्थे गुरौ वसति, एक गुरुके पास जो रहे। समीप अर्थमें सप्तमी, तीर्थ गुरुकानाम। समान एक का पर्याय। एकः गुरुर्यस्य एकगुरुः। तद्धितार्थ परे समाससूचक, सामान तीर्थेवासी से यत्। सतीर्थे वसति सतीर्थ्यः

।१६। विभाषा यकारादिप्रत्ययविवक्षिते—वक्ताको इष्ट हो तभी उदरपद परे विकल्पसे समान को स हो। समानमुदरं यस्य स सोदर्यः सगा भाई। समास पर समानको स, गुण, भावे यत्।१७। दृग दृश वतु परे रहते समानको स हो समानो दृश्यते एकरुपसे दिखायीदे। एकरुप तुम भ्राता दोऊ। समानान्य योश्च—दृश धातो क्विन् पूर्णलोपे समानको स, दृशपरे। सदृशः। क्विन्परे कुत्व सदृक्, जब कञ् अ हुआ तब सदृशः। दृक्ष परे भी समान को स हो।और क्सोऽपि वाच्यः दृश से क्स, स षत्व, कुत्व कष-क्षः। वतु-उत्तरार्थ बादमें बोलेगें

।१८। इदं को ईश् किं को की आदेश हो दृग दृश, वतु परे। इदामिव दृश्यते इदृक् ऐसा, त्यदादिषु दृशेः क्विन। पूर्ण लोपे। इदं सूत्रसे इदं को ईश् शित=सर्वादेश कुत्व। यदा कञ् तदा ईदृशः; किमिव दृश्यते कीदृक् कैसा किसकी तरह है, क्विन्। जब कञ् तब कीदृशः। सूत्रसे किमः की। वतु का उपयोग इयान् उदाहरण— तद्धितमें कहेंगें। दृक्ष दृक्षपरे भी इदं ईश् किं को की बोले, इदमिव दृश्यते ईदृक्षः इसकी तरह दिखायी पड़ता है। क्ससे बना

'आ सर्वनाम्नः' ।* 'दृक्षे च' तादृक्-तादृशः । तावान्—तादृक्ष । दीर्घः मत्वोत्वे अमूदृशः—अमूदृक्-अमूदृक्षः । १६ **समासेऽङ्गुलेः सङ्गः** ८।३।८०।। अङ्गुलि शब्दात्सङ्गस्य सस्य मूर्धन्यः स्यात्समासे । अङ्गुलिषङ्गः । समासे किं? अङ्गुलेः । सङ्गः । १०२० **भीरोःस्थानम्** ८।३।८१।। भीरुशब्दात्स्थानस्य सस्य मूर्धन्यः स्यात्समासे । भीरुष्ठानम् । असमासे तु भीरोः स्थानम् । २१ **ज्योतिरायुषः स्तोमः** ८।३।८३।। आभ्यां स्तोमस्य सस्य मूर्धन्यः समासे । ज्योतिष्टोमः । आयुष्टोमः । समासे किं? ज्योतिषः स्तोमः । २२ **सुषामादिषु च** ८।३।९८।। सस्य मूर्धन्यः । शोभनं साम यस्य सुषामा । सुषन्धिः ।२३ एति

दृक्ष परे इदं को ईश ईदृक्षः, किं कों की, किमिव दृश्यते कीदृक्षः । सर्वनाम को आत्व हो, दृक्ष परे भी आत्व हो । तदिव दृश्यते तादृक् त्यदादिसे परे दृशसे क्विन् कञ् भी । तत् दृक्, सर्वनाम्नः आत्वे तादृक् । यदा कञ तादृशः । तद् के दको 'आ' सवर्णदीर्घ । तत्परिमाणमस्य तावान् । यद्से वतुप्, द को आत्व उतना परिमाण, उतनी मात्रा है इसका । तदिव दृश्यते तादृक्षः ।वैसा दीखता है । आत्व, दीर्घ । अमुङ् इव दृश्यते, इसकी तरह दीखता है अदस् से स को आत्व सवर्णदीर्घः अदादृश तब उत्व मत्व अ, आ दोनोको उत्व । द को म अमूदृक् । जब कञ् अमूदृशः । जब क्स तब अमूदृक्षः ।

। १६ । समासे अङ्गुलिसे परे सङ्गके स को मूर्धास्थानी 'ष' होसमास होनेपर । अङ्गुलिका सम्पर्क, चिपकना समासार्थमें स को ष हुआ । समास होनेपर क्यों कहा अङ्गुलेः सङ्गः समास नहीं, ष नही ।

। १०२० । भीरो भीरुशब्दसे परे स्थानके 'स' को मूर्धन्य हो समासमें डरपोकका स्थान । एक अर्थ होनेपर स को ष । भीरुष्ठानं, भयभीत की जगह । जब समास नहीं, तब ष भी नहीं (। २१ ।) ज्योति और आयुष्से परे स्तोमसे स को ष हो, समासमें । ज्योतिषः स्तोमः नक्षत्रोंका झिलमिलाहट, विद्याका चमत्कार अर्थमें स को ष । पक्षे ज्योतिस्तोमः । आयुषस्तोमः आयुष्तोमः । समास क्यों पढ़ा ? ज्योतिषः स्तोमः में न समास, न षत्व । तीनों सूत्रोंसे उत्तारपदके आदि स को ष ।

। २२ । सुषामा आदि गणपठितके स को ष । शोभनं—सुन्दर सामवेद, मधुरगायन हो जिसका वह सुषामा । उत्तरपद सामाके 'स' को ष । शोभनः सन्धिर्यस्य दृढ़ गाँठ, घनिष्ट मित्रता अर्थमें सन्धिके स को ष । १३ । एति— एकारपरे स को ष हो संज्ञा—नाम में, अगात्=गकार परे न हो । हरेः सेना

सञ्ज्ञायामगात् ८।३।९९।। सस्य मूर्धन्यः। हरिषेणः। एति किं?। हरिसक्थम्। सञ्ज्ञायां किं?। पृथुसेनः। अगकारात्किं? । विश्वक्सेनः। इण्कोः इत्येव। सर्वसेनः। २४ **नक्षत्राद्वा** ८।३।१००।। एति सस्य सञ्ज्ञायामगकारान्मूर्धन्यो वा। रोहिणीषेणः–रोहिणीसेनः। अगकारात् किम्। शतभिषक्सेनः। आकृतिगणोऽयम्। **१०२५ अषष्ठ्यतृतीयास्थस्यान्यस्य दुगाशीराशास्थास्थितोत्सुकातिकारकरागच्छेषु** ६।३।९९।। अन्यशब्दस्य दुगागमः स्यादाशीरादिषु परेषु। अन्यादाशीः। अन्यदाशा। अन्यदास्था। अन्यदास्थितः अन्यदुत्सुकः। अन्यदूतिः। अन्यद्रागः। अन्यदीयः। अषष्ठी--किं? अन्यस्यान्येन वाशीरन्याशीः। * 'कारके छे च नायं निषेधः' अन्यस्य कारको-

---

हरिसेना किसीका नाम। से के 'ए' परे स को ष। नारायणीसेनाका नाम। एति–एपरे क्यों? हरिसक्थं भगवान्के धुठने। यह स में 'अ' परे है ष नही हुआ। संज्ञामें क्यों? पृथोः सेनाः पृथुसेनः। किसीका निश्चित नाम नही, ष न हो। अगात् क्यों =**विष्वक्सेना** चर्त्वकी असिद्धिसे ग। यह मूर्धन्य इण्कोः=इ उ, ण् तक और क वर्गसे हीं ष हो। सर्वसेनः व में अ, न इण् है, न कबर्ग। पूर्वसूत्रमें इण्कोः नही आता व्याख्यानसे।

। २४। **नक्षत्रात्**=नक्षत्रसे परे एति परक स को ष हो, नाम होनेपर गकारसे परे नही, विकल्पसे। रोहिणीसेना। जब एकत्व नहीं। तब णत्व नही। अ-गकार क्यों कहा? ग से परे स को ष न हो। यह षत्वविधि ष की आकृति देखकर गण मान लें, चर्त्वकी असिद्धसे ग मान्य। १०२५। अषष्ठी—विग्रहमें षष्ठी तृतींया अर्थ न रहे, ऐसा अन्य शब्द, उसको दुक् 'द' आगम हो। आशीः आशा, आस्था, आस्थित, उत्सुक, अति, कारक राग छ इनके परे रहते। क इति। अ उच्चारण। कित् से अन्त अवयव। सभीमें कर्मधारय समास। अन्यः आशीः **अन्यदाशीः** शुभाशंसा दुक् द। अन्या आशा **अन्यदासा** दुसरी लिप्सा, अन्या आस्था, दुसरी श्रद्धा। अन्य आस्थितः, बदलाभाव। अन्यः उत्सुकः, दुसरा उत्सुक, अन्या ऊतिः दुसरा मिश्रण। अन्यो रागः, भिन्न रंग, अन्यः अयं **अन्यदीयः** इन सेवामें समासे दुक् 'द' आगमसे साधुत्वमान्य षष्ठीतृतीया अर्थमें नही, ऐसा क्यों? अन्यका अन्यसे आशीः हो, तब दुक् न हो अन्याशीः दुक् नही हुआ अन्याशा होगा। अन्येन आस्थितः, अन्योत्सुकः इत्यादि। **कारक** और द परे यहाँ निषेध नहीं लगता अन्यस्य कारकः षष्ठी अर्थ रहनेपर भी दुक्, अन्यस्य अयम् **अन्यदीयः**। षष्ठी रहने पर ही दुक् छ

ऽन्यत्कारकः। अन्यस्यायमन्यदीयः। गहादेराकृतिगणत्वाच्छः। २६ अर्थे विभाषा ६।३।१००॥ अन्यदर्थः। अन्यार्थः। २७ कोः कत्तत्पुरुषेऽचि ६।३।१०१॥ अजादावुत्तरपदे। कुत्सितोऽश्वः कदश्वः। कदन्नम्। तत्पुरुषे किं कूष्ट्रो राजा।* 'त्रौ च'। कुत्सितास्त्रयः कत्रयः। २८ रथवदयोश्च ६।३।१०२॥ कद्रथ। कद्वदः। २९ तृणे च जातौ ६।३।१०३॥ कत्तृणम्। १०३० का पथ्यक्षयोः ६।३।१०४॥ कापथम्। काक्षः। अक्षशब्देन तत्पुरुषः, अक्षिशब्देन बहुव्रीहिर्वा। ३१ ईषदर्थे ६।३।१०५॥ ईषज्जलं काजलम्।

प्रत्यय गहादिके आकृत गण माननेसे हुआ।

। २६। **अर्थपरे** अन्यसे दुक्। **अन्योऽर्थः अन्यदर्थः** पक्षमें दुक नहीं **अन्यार्थकः**। (२७)। **कु के स्थानमें** पत् आदेश हो अचपरे, उत्तरपदके आदिमें। दुष्ट हरामी घोड़ा, कुत्सितोऽश्वः अर्थमें कु को कत् आदेश, अजादि परे अ है। कदश्वः। कुत्सितम् अन्नं कदन्नं भ्रष्टखाद्य। कु को कत्में कुगति प्रादयः समास। सूत्रमें तत्पुरुष उत्तरपदार्थमुख्य क्यों कहा ? कुत्सितः उष्ट्रो यस्य हरामी ऊँट है जिसका। वही राजते शोभते। अन्यार्थमें कत् आदेश हो। **त्रौ च**, तृ परे कु को कत् आदेश हो। निन्दित तीनका समुदाय **कत्रयः अनजाद्यर्थमिदम्**।

। २८। **रथ** और वदपरे कु को कत् आदेश हो। वदति बदः बोलता। **कुत्सितो बदः कद्वदः** भ्रष्ट वक्ता, कुगति-समास, कद् आदेश। कुत्सितो, रथः कद्रथः। (२९)। **तृणे** जाति अर्थ मे कु को क हो, तृण परे। तृणजाति कत्तृणं जाति अर्थमें कु को कत् हुआ। **अस्त्रीकुशं कुठो दर्भः, पवित्रमथपत्तृणि** अमरकोशे। १०३०। **का पथि अक्षि** परे क को का आदेश हो। कुत्सितः पन्था **कापथं**, भ्रष्ट रास्ता। कु को का आदेश। **ऋक्पूः** से अप्रत्यय। टिलोप पथःसे नपुंसक। बहुव्रीहिमें कापथः कुत्सितम् अक्षं नेत्रेन्द्रियं पीडित फूटी आँख। **काऽक्षः**। कुगति समास, अक्षपरे 'का' कादेश। इसमें दो समास अक्षशब्दके साथ तत्पुरुष, अक्षिके साथ बहुव्रीहिः। कुत्सिते अक्षिणी यस्य परे ष च, टिलोप आदिः फूटी आँखवाला।

। ३१। **इषत्** थोड़े अर्थमें विराजमान कु को का हो। **ईषद् जलं काजलं** थोड़ा पानी अर्थ कहनेके लिए कु को का आदेश, नित्यसमास, अस्वपदविग्रह। ईषत्। **अजादावपि**=परपद अजादि हो, तब भी थोड़ा अर्थमें आदेश हो। यथा कुत्सितः अम्लः थोड़ा खट्टा अर्थमें अच् आदिः। अम्लपरे 'का' आदेश, वत् आदेशकी बाधकर। (३२)। **विभाषा** पुरुष परे कु को 'का' हो

अजादावपि परत्वात्कादेशः । काम्लः ३२ विभाषा पुरुषे ६।३।१०६।। कापुरुषः कुपुरुषः । अप्राप्तविभाषेयम् । ईषदर्थे हि पूर्वविप्रतिषेधान्नित्यमेव । ईषत्पुरुषः कापुरुषः । ३३ कवं चोष्णे ६।३।१०७।। उष्णशब्दे उत्तरपदे कोः कवं का च वा स्यात् । कवोष्णं कोष्णं कदुष्णम् । ३४ पृषोदरादीनि-यथोपदिष्टम् ६।३।१०९।। पृषोदरप्रकाराणि शिष्टैर्यथोच्चारितानि तथैव साधूनि स्युः । पृषदुदरं पृषोदरम् । तलोपः । वारिवाहको--बलाहकः । पूर्व पदस्य वः । उत्तरपदादेश्च लत्वम् ।

'भवेद्वर्णागमाद्हंसः सिंहो वर्णविपर्ययात् ।
गूढोऽऽत्मा वर्णविकृतेर्वर्णनाशात्पृषोदरम्' ।

विकल्पसे । थोड़ा खराव कापुरुषः पक्षमें कुपुरुषः । दोनोंका समान अर्थ अप्राप्त विभाषा है । ननु 'कु' का ईषत् थोड़ा अर्थ है इषदर्थेसूत्रसे का आदेश प्राप्त ही है उसके ही प्रभावसे विकल्प होता, तब बोले ईषद् अर्थमें पूर्ववि-प्रतिषेध=समानबल विरोधमें पहलेका कार्य हो । अतः नित्य 'का' आदेश होता ही है ।यह प्रमाण वृत्तिकारका है, भाष्यका नहीं। (३३)। (कवं अशुद्ध जल अर्थमें) कु, को, कव आदेश है, उष्ण, पूरेका और कद् भी हो। कवोष्णम् आँसू गरम, अपेय। कु-कव गुण । जब 'का' आदेश तब गुणे, कोष्णं ३ रूप एक अर्थ ।

। ३४ । पृषोदरादीनि आदिका इत्यादि अर्थ, व्यवस्था नहीं यथोपदिष्टं जैसा उदेश पढनेके प्रमाणसे । प्रकारः सादृश्यम् । इसगणमें लोप, आगम आदेश आदि जो सम्भव हैं । उनको शिष्टैः तपस्वी अभ्यासी, प्रामाणिक लोगोंसे जैसा उच्चरित=उच्चारण किया गया हो तथैव=उसी प्रकारसे वे साधु मान्य। लोप आगमन आदेश आदि मानले । पाणिनि व्यकरणमें वे स्वीकृत नहीं है ।किन्तु शिष्टके प्रमाणसे मान्य है। उपदिष्टं उपदेशः उच्चारणं तदनतिक्रम्य यथोप-दृष्ट पदार्थके अनुल्लँघन, वृत्तिमें—अव्ययीभाव । प्रथमोच्चारणं=शब्दतत्वं साक्षात्कारवन्तो योगिनः यानि यानि शिष्टैरुपदृष्टानि उसी प्रकार लोप आदि की कल्पना करलें । यथा पृषद्उदरं भारी पेट । यहाँ त का लोप हुआ, गुण पृषोदरं, षष्ठी समास, शिष्ट उपदेशसे लोप हुआ किसी सूत्रसे नहीं । वारि-वाहकः पानी ढ़ोने वाला बादल । बलाहकः पूर्वपद वारिके ब आदेश उत्तरपद वाहक के ब को ल। शिष्ट प्रमाणसे वर्णके विपर्यसे बदलनेसे सिंह बनता है। यथा हिसि (हिंसायाम्) से अच् इदित् नुम, नश्च अनुस्वार हिंस ह का विपर्य स हुआ, सको ह हुआ, तब सिंह बना । उणादिसूत्र शाकटायन प्रणीत है ।

'दिक्छब्देभ्यस्तीरस्य तारभावो वा' दक्षिणतारं दक्षिणतीरम् । उत्तरतारम्--उत्तरतीरम् ।* 'दुरो दाशनाशदभध्येषूत्वमुत्तरपदादेः ष्टुत्वं च' दुःखेन दाश्यते दूडाशः । दुःखेन नाश्यते दूणाशः । दुःखेन दभ्यते दूडभः । खल् त्रिभ्यः । दम्भेर्नलोपो निपात्यते । दुःखेन ध्यायतीति दूढ्यः । 'आतश्च--' इति कः । बृवन्तोऽस्यां सीदन्तीति बृसी । बृवच्छब्दस्य बृ आदेशः । सदेरधिकरणे डट् । आकृतिगणोऽयम् । **१०३५ संहितायाम् ६।३।१०४॥** अधिकारोऽयम् ३६

अन्य शास्त्रसे व्युत्पत्ति ठीक नहीं । **वर्ण विकृते**=अक्षर बदल होना, जैसे **गूढ़ आत्मा यस्य** इस समासमें उत्तरपद आत्मा का अ विकृत हो उ बना, गुणे गूढ़ोत्मा, वर्ण विकृत हुआ । **वर्णनाशा पृषत्**+उदरम् त का लोप-नाश हुआ । गुण पृषोरम्, राजा का पेट । वा० दिक्शब्द=दिशा वाले शब्दसे तीर को तार आदेश विकल्प हो । **दक्षिणस्याः तीरं दक्षिणतारम्**, पक्षे न । **उत्तरस्याः तीरम् उत्तरतारम्** उत्तर दिशाका तट । **दुरो** दाश नाश दभ ध्य इनके परे रहते दुरके र को ड हो, उत्तर पदके आदिमें । ष्टुत्व=टवर्ग हो । **दुःखेन दास्यते** कष्टसे दिया जाता है है । **दूडाशः** दूरदास ड को दीर्घ, दाशके द को ड । दुःखसे दबाया जाय **दूडभः** । दुर दभ, र को ड । द को ड । धाशृदाने, णश अदर्शने, ण्यन्त, दभि हिंसायां, इन तीनो धातु ईषद्ः से खल् । दुर का थोड़ा अर्थ, थोडा दान थोडा नाश, थोडी हिंसा, दम्भ के न का लोप कैसे ? किति ङिति परे नहीं है । तब बोले दम्भ का नलोप निपातनसे । दुःखसे ध्यान करता है जो **दूढ्यः** दूध्यः । र को ड दीर्घ ध को ढ़ । ध्यै चिन्तायां धातुसे आतश्चोपसर्गे कः आदेच् के उपदेशमें आत्व हो, उसका आतो लोपःसे लोप हो । **मुनीनामाशनं या ब्रुवन्तो** अस्यां सिदन्ति वक्ताका जो आशन् बोलने वाले बैठें वह वृसी बूव को वृ । सद् धातुसे अधिकरण अर्थमें डच् डितसे बिना भसंज्ञाके टिलोप ब्रूवत् स । समासके बाद ब्रूवत्को वृ वृससे टित् ङीष् वृसी । मुनियों वक्ताओं का मंच । यहाँ तक पृषोदरादि का प्रपञ्च=विस्तार पूर्ण हुआ । यह गण आकृतसे मान्य । कर्तुकामाः **कर्तुमनाः अवश्यंगन्तव्याः** अन्तलोप मान्य सहितः संहितं सतत सन्ततः, मांसपचनं संयोगान्त लोप ।

। १०३५ । **संहितायां**=सन्धि-मिलित अर्थ क्योंकि सम्पूर्वक धा धातु (से दधातेर्हि) का जोडना शक्ति प्रकाशन अर्थ इससे **द्विगुणाकर्णः** दुगुना कान चिह्न लक्षण वाला स्वामी । अवग्रहमें दीर्घ नहीं होता । अधिकार का फल विद्या हित्वाके पदपाश कालमें **द्वयचो** अतस्तिङःसे दीर्घ नहीं इत्यादि ।

कर्णे लक्षणस्याविष्टाष्टपञ्चमणिभिन्नच्छिन्नच्छिद्रस्रुवस्वस्तिकस्य ६।३।११५॥ कर्णशब्दे परे लक्षणवाचकस्य दीर्घः । द्विगुणाकर्णः । लक्षणस्य किम् । शोभनकर्णः । अविष्टादीनां किं विष्टकर्णः अष्टकर्णः । पञ्चकर्णः । मणिकर्णः, भिन्नकर्णः, छिन्नकर्णः, छिद्रकर्णः । स्रुवकर्णः, स्वस्तिककर्णः । ३७ नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ ३।६।११६॥ क्विबन्तेषु एषु परेषु पूर्वपदस्य दीर्घः । उपानत् । निवृत् । प्रावृट् , मर्मावित्, नीरुक् । अभिरुक् । ऋतीषट् । परीतत् । क्वौ इति किं परिणहनम् । 'विभाषापुरुषे' इत्यतो

। ३६ । कर्णे-ढ्लोपे से दीर्घ आया । लक्षण अर्थ होता हो कर्णपरे रहते लक्षणवालेशब्दकोदीर्घ हो, अविष्ट अष्ट आदि परे नहो तब । पशु व्यापार किन पशुओं का कौन स्वामी है, इसका सूचक लक्षण (चिह्न चक्र दात्र हँसियाका) अपने पशुओ पर छाप था । कोई त्रिशूल, कोई चक्र आदि चिह्न उनके लक्षणसे उनके स्वामी का ज्ञान होता था । यथा द्विगुणाकर्णः द्विगुणरेखौ कर्णौ यस्य दुगुनी रेखा वाला कान है जिसका । कर्ण परे द्विगुण लक्षण को दीर्घ । सूत्रमें लक्षण क्यों पढ़ा ? शोभनौ कर्णौ यस्य सुन्दर कानवाला । यह किसी स्वमी सूचक न होनेसे दीर्घ नहीं हुआ । अविष्ट अदि क्यों पढ़ा ? अष्टकर्णः आठ अक्षर चिह्न वाला कान, यहाँ दीर्घ प्राप्त था निषेध के लिए पढ़ा । विष्टकर्णः विष्टौ कर्णौ यस्य सटे कान । पञ्च रेखाङ्कितौ कर्णौ यस्य, मणिइव कर्णौ यस्य, भिन्नौ विदीर्णौ कर्णौ यस्य, कटेफटेकानवाला, छिद्र सहितौ कर्णौ यस्य कानमें छेद बाला, श्रुवौ इव कर्णौ यस्य, स्वस्तिक इव कर्णौ यस्य, इन सबोमें कर्ण परे दीर्घ न हो, अतः अविष्ट पढ़ा ।

। ३७ । नहि वृति-इन धातुओंके क्विप् अन्त रहते पूर्वपदको दीर्घ हो । जैसे णह बन्धने, णो न, नह धातुसे सम्पदादिक्विप् कर्म अर्थमें उप नह्यते उपनाद् पाँवमें बधा हुआ, नहि वृतिसे, पूर्वपद उप इत्यस्य दीर्घे, न हो धः-न ह की ध चर्त्व (जूता चप्पल) निर्वतते इति निवृत् लौटता है । निवृतु वर्तने कर्ता में क्विप् । पूर्णलोप दीर्घ, ह को ध चर्त्व । प्रवर्षति तगड़ी वर्षा वाला प्रावृट् पानी ढ़केलने वाला । वृषु सेचने सीचने अर्थमें वृष धातुसे क्विप्, दीर्घ आदि वर्षाऋतु । मर्माणि विध्यति हृदय को भेदन करने वाला मर्मावित् कड़ी चोट कर्त्ता । व्यध ताडने चुभोने अर्थमें व्यधसे क्विप्, ग्रहिज्या-सम्प्रसारण समासादि दीर्घ । निरोचते नीरुक् नीरस अरुचिकर । रुचि दीप्तौ । ऋतिं सहते ऋतीषट् सह मर्षणे, क्विप्, दीर्घ, होढ़ः चर्त्वे । सहनशील परितनोति परीतत, तनु विस

मण्डूकप्लुत्या विभाषा अनुवर्तते । सा च व्यवस्थिता । तेन गतिकारकयोरेव । नेह । पटुरुक् । **३८ वनगिर्योः सञ्ज्ञायां कोटरकिंशुलुकादीनाम् । ६-३।११७॥** कोटरादीनां वने परे, किंशुलुकादीनां गिरौ परे च दीर्घः स्यात्सञ्ज्ञायाम् । **३९ वनं पुरगामिश्रकासिध्रकासारिकाकोटाराग्रेभ्यः । ८।४।४॥** वनशब्दस्योत्तरपदस्य एभ्य एव णत्वं नान्येभ्यः । इह कोटरान्ताः पञ्च दीर्घविधौ कोटरादयो बोध्याः । तेषांकृतदीर्घाणां णत्वविधौ निर्देशो नियमार्थः । अग्रशब्दस्य तु विध्यर्थः । पुरगावणम् । मिश्रकावणम् । सिध्रकावणम्

तारे क्विप् परे क्यों कहा ? **परिगणनं** यहाँ ल्युट् यु अनपरे है, दीर्घ नहो। चारो ओर बन्धन । यदि ऐसा तब **पटुरुक्** इत्यादिमें **दीर्घ क्यों** नहीं ? तब बोले विभाषा पुरुषे सूत्रसे **मेढ़क उछालन्याय** से विकल्प आता है **वह व्यवस्थित** है । विविधा अवस्था व्यवस्था सा संयाता अस्याः । इससे गतिसंज्ञक और कारक, पूर्वपदको ही दीर्घ हो, अन्यको न हो। पटुः रोचते **पटुरुक्** चतुर अच्छा लगता है तिग्मं रोचते **तिग्मरुक** वक्र कुटिल प्रियः या पक्षीप्रेमी, यहाँ दीर्घ न हो, विभाषाके प्रभावसे ।

। ३८ । **वनगिर्योः**—सप्तमी । कोटरश्च किंशुलकश्च कोटरकिंशुलुकौ आदिर्येषां, कोटरादिगणमें पढ़ेशब्दसे वन परे किंशुलुक आदिको गिरि परे, दीर्घ हो, किसीका नाम होनेपर । संख्या क्रमसे सम्बन्ध । ३९ । **वन–पुरगा** वनशब्द उत्तरभागमें पद हो, तब पुरगा मिश्रका सिध्रका, सारिका, कोठर, अग्र इन शब्दोंसे परे ही उत्तरपदसे बनके न को ण हो । णो नः आया। भिन्नपद होनेसे, अट्कुप्वाङ्से णत्व नहीं, इस कारण यह विधिसूत्र है । 'एव' पढनेसे नियमसूत्र कैसे ? तब बोले इह णत्वके प्रसङ्गके पुरगा मिश्रका, सारिका सिध्रका कोटर ये पाँच शब्दको ही, (और गिरिपरे कोटरादिको) दीर्घ हो । तब इससे भाव क्या मिकला, **कृतदीर्घेभ्यः तुरगादिभ्यः एव णत्वं ततः किमित्याह तेषाम्**=उन पाँचों शब्दों को दीर्घ किया हुआ रूप, पढ़े गये संज्ञा अर्थमें दीर्घ होगा। अन्यथा पूर्वपदात्संज्ञायामगः से णत्व सिद्ध होता। पाँचों को दीर्घ करनेपर ही णत्व हो यही नियम है। अग्र शब्दका उच्चारण **अग्रेवणं** में णत्व, अपूर्व है, विधिसूत्रं न, नियमात् । वह संज्ञा नहीं है। पुरगा आकारान्त है, गकारान्त नहीं अगः निषेध प्राप्त नहीं, इस सूत्रसे सिद्ध शब्द सभी नरक का नाम है । पुरं गच्छति **पुरगः** तस्य बनं **वनगिर्योः** से दीर्घ बनं पुरगासे णत्व । मिश्रयति **मिश्रकः तस्य वनं** मिलाने वाला नरक का नाम ।

। शारिकावणम् । कोटरावणम् । एभ्यएव इति किं असिपत्रवनम् वनस्याग्रे अग्रेवणम् । राजदन्तादिषु । निपातनात्सप्तम्या अलुक् । प्रातिपदिकार्थमात्रे प्रथमा किंशुलुकागिरिः । १०४० वले ६।३।११८।। वलप्रत्यये परे दीर्घः स्यात्संज्ञायाम् । कृषीवलः । ४१ मतौ बह्वचोऽनजिरादीनाम् ३।६।११९।। अमरावती । अनजिरादीनां किम्, अजिरवती । बह्वचः किं व्रीहिमती । सञ्ज्ञायामित्येव । नेह । वलयती । ४२ शरादीनाम ३।६।१२०।। शरावती ४३ इको वहेऽपीलोः ३।६।१५१।। इगन्तस्य दीर्घः । स्याद्वहे । ऋषीवहम् ।

मिश्रकावर्ण दीर्घ णत्व । सिध्रकावणं । काँटेदार वनवाला नरक । सारिका= चोंचसे नोचने वाली पक्षियों का झुण्ड । कोटर खड्डा खुद्ड़ी का बना दीर्घ ओर णत्व । इन पाँचोसे दीर्घ होनेपर णत्वका नियम क्यों ? असिपत्रवनं तलवारके समान पत्तों वाला वन। नरकका नाम है । संज्ञा होनेपर पूर्वपदात्से णत्व न हो, यही नियम का फल है । वनके अगले भागमें अग्रेवणं षष्ठी समास है । विधिसूत्र मानकर णत्व, सप्तमी का सुपोधातुसे लुक् नहीं । राजदन्तादिगणमें पाठ है निपातनसे लुक् न वनका पर निपातन भी सूचित है । जब सप्तमी अर्थ प्रधान होगा तब प्रथमा कैसे ? सप्तमी अर्थके प्रातिपदिकमें प्रवेशसे उक्तें प्रथमा होगी । (इतिकोटरादयः । अर्थाकिंशुलुकादयः) किंशुलुक पहाड़का नाम है गिरि परे दीर्घ हुआ । अञ्जनागिरिः, कृष्णगिरिः, रामगिरिः आदिमें दीर्घ न हो अतः किंशुलुक् पढ़ा ? इत्यादि ।१०४०। बल प्रत्ययपरे पूर्वको दीर्घ हो, किसी का नाम होनेपर । कृषिः अस्ति अस्य सम्बन्ध में बलच् । रजः कृष्या–सूत्रसे बल परे पूर्व को दीर्घ, खेतिहर किसान । (४१)। मतौ मतुप्प्रत्ययपरे बहुत अच् को दीर्घ हो. नाम होनेपर । अजिर आदिको न दीर्घ । अमराः सन्ति अस्यां अमरावती, इन्द्रनगरीका नाम । अमरा मत्, म को व । , ङीप्, दीर्घ । किसी नदीका नाम अजिरवती, यहाँ दीर्घ न हो । अतः निषेध पढ़ा । बहु अच् क्यों कहा ? एक या दो अच् वालेको दीर्घ न हो। व्रीहिः अस्ति अस्यां व्रीहिमत धानवाली दो अच् है, दीर्घ नहीं हुआ । संज्ञा किसी का नाम होने पर ही दीर्घ हो । बलयवती कंकण धारण वाली बलयानि सन्ति यस्याः बलयवती अनजिरादि=परसंज्ञा न होनेसे दीर्घ नहीं ।

।४२। शरादीनां को दीर्घ हो मतुप् परे, संज्ञा में । जहाँ बहु अच न हो वहाँ के लिए । शराः सन्ति अस्यां शरावती, नदी का नाम । सेत्रार हो जिसमें । दीर्घ हुआ पूर्वपद को । ४३ । इको=इक् अन्तमें हो उसेदीर्घ हो,

कपीवहम् । इकः किं पिण्डवहम् । अपीलोः किं पीलुवहम् ।* 'अपील्वादीनामिति वाच्यम्' दारुवहम् । ४४ **उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्** ३।६।१२२।। उपसर्गस्य बहुलं दीर्घः स्याद् घञन्ते परे न तु मनुष्ये । परीपाकः-परिपाकः । अमनुष्ये किम् । निषाद. । १०४५ **इकः काशे** ६।३।१२६।। इगन्तस्योपसर्गस्य दीर्घः स्यात्काशे। नीकाशः ।इकः किं । प्रकाशः । ४६ **अष्टनः सञ्ज्ञायाम्** ३।६।१२५।। उत्तरपदे दीर्घं। अष्टापदम् । सञ्ज्ञायां किम् अष्टपुत्रः । ४७ **चितेः कपि** ६।६।१२७।। एकचितीकः । द्विचितीकः १०-४८ **नरे सञ्ज्ञायाम्** ६।३।१२६।। विश्वानरः।। ४६ **मित्रे चर्षौ** ६।३।-

---

वह परे, पीलु परे दीर्घ नहो । **ऋषीवहम्** **कपीवहम्** यह नदी का नाम है। वह परे दीर्घ हुआ, पिण्डं वहतीति **पिण्डवहम्** यहाँ वह परे दीर्घ नहो, अतः इगन्त पढ़ा । पीलुं वहति **पीलुवहः** तं, यहाँ दीर्घ न हो अतः अपीलु पढ़ा ? **अपिल्वादीनाम्**=आदिपदसे पीलुके अतिरिक्तको भी दी निषेध हो, जैसे **दारुवहम्** रु को दीर्घ नहीं हुआ । लकड़ी ढोनेवाइाला ।

४४ । **उपसर्ग को** दीर्घ हो बहुलम्–आवश्कतानुसार घञ् अन्त शब्दपरे मनुष्य अर्थ नहो तब । पूर्णरूप से पका अर्थ मे परीपाकः, परिउपसर्ग को दीर्घ हुआ । घञन्तपाक है । मनुष्य अर्थ न हो ऐसा क्यों? मनुष्य जातिः **पुलिन्द** **निषादः** निसीदन्ति पापानि यस्मिन्, हिंसादि पाप जिसमे सदा रहे, निवास करें । हलश्च आधार अर्थ में घञ, यदि ऐसा तब दौवारिक और प्रतीहार में दीर्घ कैसे? क्योंकि वह मनुष्य है । **अप्रामाणिकः** । या **प्रतीहारः द्वारं तव दीर्घंस्तत्र तिष्ठति** । मनुष्य अर्थ गौंण है । ।।१०४५।। **इकः**= इक् अन्तमें हो ऐसे उपसर्ग को **दीर्घ** हो, काशपरे । अच् अन्तकाश परे नि को दीर्घ **नीकाशः वीकाशः**, इक् क्यों कहा? **प्रकाशः** । दीर्घ नहीं हुआ, इक् न होने से ।।४६।**अष्टनः** को दीर्घ हो उत्तरपदपरे, संज्ञा नाम होने पर। अष्टौपादा यस्य अष्टानां पदानां समाहारः **अष्टापदम्** पदपरे दीर्घ, किसी का नाम अज्ञात है। यदि संज्ञा न हो तब दीर्घ नही, अष्टौ पुत्राः यस्य **अष्टपुत्रः** कोई भी हो सकता है । (४७) **चिति** को दीर्घ हो । शेषे कप् होने पर । **एकाचितिर्यस्यः** धूमाग्नि का थान हो, जिसका, समासादि कप् परे दीर्घ । **एक चितीकः** द्वे चिती यस्य दो अग्नि का स्थान कुण्ड है जिसके । समासे कपि दीर्घे **द्विचित्तीकः** । (४८) । **नरे** परे पूर्व को दीर्घ हो नाम होने पर। विश्वस्य नरः संसारका मनुष्य **विश्वानरः** नर परे दीर्घ । विश्वस्य वसुराटोःसे विश्वस्य आया (४६) **मित्रपरे**

१३०।।विश्वामित्रः । ऋषौ किं,विश्वमित्रो माणवकः ।*'शुनो दन्तदंष्ट्राकर्णकुन्द वराहपुच्छपदेषु दीर्घो वाच्यः'। श्वादन्त इत्यादि। १०५० प्रनिरन्तःशरेक्षुप्लक्षाम्रकार्ष्यखदिरपीयूक्षाभ्योऽसञ्ज्ञायामपि ८।४।५।। एभ्यो वनस्य णत्वं स्यात्। प्रवणम्। कार्ष्यवणम् । इह षात्परत्वाण्णत्वम् । ५१ विभाषौषधिवनस्पतिभ्यः ८।४।६।। एभ्यो वनस्यणत्वं वा स्यात्। दूर्वावणम्–दुर्वावनम्। शिरीषवणम्–शिरीषवनम्।* 'द्व्यच्त्र्यज्भ्यामेव' नेह।

विश्व को दीर्घ हो ऋषि अर्थ होने पर। विश्वस्य मित्रः विश्वामित्र ऋषि हैं मित्र परे दीर्घ। ऋषि क्यों कहा? बालक विश्वमित्रः संसारका दुःख मिटाने वाला, न दीर्घ (वा०) शुनु –कुत्ता श्वन् शब्द के समास होने पर दीर्घ न हो। दन्त द्रष्टा कर्ण कुन्द वराह पुच्छ पदपरे। सुनो 'दन्दः कुत्तेका दाँत, समासादि होनेपर दन्तपरेदीर्घ श्वाद्रंष्ट्रा। षष्ठी समास। वार्तिकमें दीर्घ पढ़ा है कोई ह्रस्व मानते है। श्वा इव द्रंष्ट्रा यस्य श्वादंष्टः कुत्तेकी तरह दाँतवाला अन्यपदार्थ समास। श्वा इव कर्णौ यस्य श्वाकर्णः। श्वाकुन्दः। श्वा च बराहश्च येषाञ्चविरोधः शाश्वतिकः श्वावराहम् श्वापुच्छं श्वापदः कुत्तेकी पूंछ, पाँव।१०५०। प्रनिरन्तः प्र, निर् अन्तर, शर, इक्षु प्लक्षः आम्र कार्ष्य, खदिर प्रीयूक्षा इनसे परे वनके न को ण हो। 'वनं पुरगा' से वन आया। प्रकृष्टं वनं प्रवणं विशालजंगल। वन के न को ण हुआ। वनात् निर्गतं निर्वणं, निरसे परे वन के न को 'ण'। अन्तः मध्ये वनं अन्तर्वणं, शराणां वनं शरवणं, शरपतका क्षेत्र। इक्षूणां वनं गन्नेका विशाल खेत। प्लक्षवणं पाकड़ का जंगल। आमका जंगल, आम्रवणं, कार्ष्यवणं, घना जंगल यहाँ ष से परे ण है रेफ से परे नहीं। क्योंकि अडादिसे भिन्न व्यवधान है। खदिरवनं, खैरका जंगल पीयूक्षावण, किसमिसका वन।

।५१। विभाषा औषधि और वनस्पति वाचकशब्दोसे परे वनके न को ण हो पक्षपातसे। ओषधिका उदाहरण–दूर्वावर्ण दूबका जंगल ओषध्यः फल पाकान्ताः अमरकोशे। फलपकनेके बाद जिनका अन्त हो, वे ओषधि है न को ण हुआ, पक्षसे नहीं। वनस्पतिका उदाहरण–शिरीषवणं वनस्पति है न को ण हुआ। यद्यपि बिना फूलके फल लगे वही उदुम्बर गूलर आदि वनस्पति है, वानस्पत्यः फलैः पुष्पात्तैरपुष्पाद्वनस्पतिः इस अमरकोश से। शिरीषवृक्ष फूल फलवाला है, णत्व कैसे ? 'लुपि युक्तवत्'–सूत्रके भाष्यमें शिरीषवणं का वनस्पनि अर्थमें उपयोग है इससे वृक्षमात्रका सूचक है। शिरीषाणामदूरभवो

देवदारुवनम् ।* 'इरिकादिभ्यः प्रतिषेधो वक्तव्यः'। इरिकावनम्। मिरिकावनम्। तिमिरावनम्। **५२ वाहनमाहितात् ८।४।८॥** आरोप्य यदुह्यते तद्वाचिस्थान्निमित्तात्परस्य वाहनन्नकारस्य णत्वं स्यात्। इक्षुवाहणम्। आहितात् किं। इन्द्रावाहनम्। इन्द्रस्वामिकं वाहनमित्यर्थः। बहतेर्ल्युटि वृद्धिरिहैव सूत्रे निपातनात्। **५३ पानं देशे ४।८।९॥** पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य पानस्य नस्य णत्वं स्याद् देशे गम्ये। क्षीरं पानं येषां ते क्षीरपाणाः उशीनराः। सुरापाणाः प्राच्याः। पीयत इति पानम्। कर्मणि ल्युट्। **५४ वा**

ग्रामः शिरीषाः, तेषां **शिरीषवणं**, णत्वसे लिए वनस्पतिका आरोप आवश्यक। पक्षमें णत्व नहीं। यह णत्व दो अच् से परे वनके न को होता है। चार अच् वाला देवदारुसे परे वनके न को ण नहीं हुआ। **इरिकादिगण**पठित शब्दोंके ओषधि मानकर प्राप्त णत्वका निषेध हो: इरिकायाः वनं किसी औषधिका नाम है मिरिकाभिः या मरिचि मुनक्काका वन णत्व निषेध हुआ। (५२)। **वाहन** के न को ण हो। **आहितात्**=उसपर लादा गया हो **आधीयते आरोप्य यदुह्यते** लादकर ढोया जानेवाला **इक्षवो हि वहनाय परैरारोप्यन्ते नतु स्वयमेवारोढुं शक्नुवन्ति**। दूसरोंसे चढ़ाये जाते है स्वयं चढ़ नही सकते। ईखसे लदी ट्रक जैसा वाहन हो तब णत्व। **इक्षुणां वाहनं** णत्व करें। सूत्रमें आहित क्यों पड़ा? जो चड़ाया जाय स्वयं चढ़ नही सके ऐसा क्यो? **इन्द्रवाहनम्** ऐरावत इन्द्रका वाहन है उसपर स्वयं चढ़ते है किसीसे उठाकर लादे नहीं जाते। उस दशाका उदाहरण। **इन्द्रः स्वयमेव आरोहति तदा प्रत्युदाहरणं** यह सोचकर बोले–इन्द्रः स्वामीं यस्य तत् इन्द्रस्वामिकं वाहनं, णत्व नहीं हुआ। वह धातुसे साधन अर्थमें ल्युट्। तब वृद्धि कैसे? ञित् णित्परे नहीं है। अतः बोले **वृद्धिरिहैव**–इसी सूत्रके निपातनसे वृद्धि मान लें।

।५३। **पानं** देश अर्थ खुलता हो तब पूर्वपदमें स्थित निमित्त र ष से परे पानके न को 'ण' हो। क्षीर दूध है पानं पोनेकी वस्तु जिन लोगोंकी वह उशीनरदेशका नाम **क्षीरपाणाः** देशअर्थमें बहुवचन, **पीतिः पानं, पीयते अनेन पानं, क्षीरस्य पानं विग्रह होना चाहिए,** तब बोले–पीयते कर्ममें ल्युट् **पाणं** न को ण। (५४)। (**वा**) **भावः** क्रिया करणसाधन अर्थमें पानशब्दके पूर्वपदमें र ष हो, तब नको ण विकल्पसे हो। क्षीरस्य पानं भावे करणे वा ल्युट्। दूधका पीना, या दूध पिया जाय जिसमें, पात्र। पूर्वपद क्षीरमें र निमित्त है, अतः पानके नको ण। **गिरि और नदी** आदि परे नको ण विकल्पसे हो।

भावकरणयोः ८।४।१०॥ पानस्य इत्येव। क्षीरपानम्--क्षीरपाणम्।* 'गिरिनद्यादीनां वा' गिरिनदी--गिरिणदी। चक्रनितम्बा--चक्रणितम्बा १०५५ प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु च ८।४।११॥ पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य एषु स्थितस्य नस्य णो वा स्यात्। प्रातिपदिकान्ते माषवापिणौ। नुमि--व्रीहि-वापाणि, विभक्तौ--माषवापेण। पक्षे--माषवापिनावित्यादि।* 'उत्तरपदं यत्प्रातिपदिकं तदन्तस्यैव णत्वम्' नेह। गर्गाणां भगिनी गर्गभगिनी। अत एव

गिरेः नदी पहाड़ी सरिता णत्व विकल्प। **चक्रमिव चौका** जैसा **नितम्बं यस्या सा** चक्रकी तरह गोलाकार पिछला भाग हो विकल्पसे नको ण।

।१०५५। **प्रातिपदिकान्त**=पूर्वपदमें स्थित णत्वका कारण, र ष उसीमें स्थित हो और एषु=उन्हीं प्रातिपदिकान्त और विभक्तिमें विराजमान हो, ऐसे नको ण विकल्पसे हो। जिसको प्रातिपदिकसंज्ञा हो उसके अन्तमें नको ण का उदाहरण—माषान्वपते मासवापी 'बहुलमाँभीक्ष्ण्ये' यह जाति अर्थमें भी णिनि करता है। कृदन्त मानकर प्रातिपदिकसंज्ञा, नको 'ण' **माषवापिणौ** विकल्प णत्व नुम् णत्व। व्रीहीन्वपन्ति व्रीहिवापाणि (ज्ञानानि जैसा नुम् आदि कार्य) कृषीवलकुलाणि, किसानवर्ग नुं के न को ण हुआ। पक्षमें नहीं, कर्मणि अण्। विभक्तिमें ण का उदाहरण—माषवापसे टा को इन। उसमें विभक्ति का न है, विकल्प ण। पक्षमें णत्व नहीं हुआ। तब **माषवापानि। मासवापेन** (वा०) **उत्तरपदं**--समासके उत्तरभागमें जो पद है वह प्रातिपदिक हो उसीके अन्त्य नको 'ण' हो। इसका फल यह हुआ कि **गर्गभगिनी** गर्भजातिकी बहन, यहाँ उत्तरपद भगिनी हैं, भगिन् नहीं। जो उत्तरपद है, उसीमें प्राति-पदिक विशेषण है। **अतएव**-इसीलिये सूत्रकारसे पढ़ा गया। नुम्ग्रहण अर्थवान् है, नहीं तो अनर्थक होता। क्यों होता—अङ्गस्य=नपुंसकस्य झलचः सूत्र अङ्ग को नुम्विधान करता है, अजन्त अङ्गका भक्त-अवयव नुम् है, उत्तरपदका नहीं। प्रातिपदिकके उत्तरपदमें विशेषण नुम्ग्रहण ही प्रमाण है। वस्तुतः यह प्रमाण नहीं, अतः बोले—**किञ्च विशेषभाव प्रहिण्वन्** (विशेष प्रसन्न करता हुआ) हिवि प्रीणने, इदित् नुम्, लट् शतृ--आदि स्थलमें हिविको नुम् होना णत्वके लिए भी है। इसलिए सूत्रमें नुम् पढ़ा। **प्रेन्वनं** इवि व्याप्तौ ल्युट् आदि प्रकृष्टं इन्वनं पूर्ण व्याप्ति, प्रादि समास, यहाँ नुम्के न को ण क्यों नहीं? ऐसे स्थलमें **क्षुभ्नादिषु** से णत्वका निषेध होता है। **युवादेः**-युव इत्यादिके नको ण न हो। **रम्यश्च असौ युवश्च रम्ययूना** सुन्दर युवक।

नुम्ग्रहणं कृतम् । अङ्गस्य नुम्बिधानात्तद्भक्तो हि नुम्, न तूत्तरपदस्य । किञ्च प्रहिण्वन्' इत्यादौ हिवेर्नुमो णत्वार्थमपि नुम्ग्रहणम् । प्रेन्वनमित्यादौ तु क्षुभ्नादित्वान्न ।* 'युवादेर्न' रम्ययूना । परिपक्वानि । 'एकाजुत्तरपदे णः ।नित्य मित्युक्तम् । वृत्रहणौ । हरिं मानयतीति हरिमाणी । नुम्-क्षीरपाणि विभक्तौ, क्षीर पेण, रम्यविणा ।५६ कुमति च ८।४।१३।। कवर्गवत्युत्तरपदे प्राग्वत् । हरि कामिणौ । हरिकामणि । हरिकामेण । ५७ पदव्यवायेऽपि ८।४।३८।। पदेन व्यवधानेऽपि णत्वं न स्यात् । माषकुम्भवापेन ।* चतुरङ्गयोगेन 'अतद्धित

प्रातिपदिकान्त नकार मानकर णत्व प्राप्त था, वार्तिकसे निषेध । **परिपक्वानि**=पूर्ण पके फल, यहाँ भी न को विकल्पसे प्राप्त ण का निषेध । कुमति च के नित्यको भी बाधकर निषेध । **एकाच्** उत्तारपद हो तब नित्य णत्व हो जाय, आरम्भ सामर्थ्यसे । वृत्रं हतवन्तौ **वृत्रहणौ** । विकल्पको बाधकर उत्तारपद एकाच् हन् है नित्य णत्व । हरिको माननेवाला **हरिमाणी** । मनसे णिच् क्विप्, सुप् आनेके पहले समास, नान्तङीष्, मानके न को विकल्प बाधकर नित्य णत्व । क्षीरं पिबति **क्षीरपाणि** । कर्म पहले रहते आदन्त 'पा' से क, आलोप क्षीरप् बहुवचन (ज्ञानानिकी यरह) नुम्के नको ण । विभक्तिमें **क्षीरपेण** क्षीरं पीबति क्षीरपेन बालकेन । टा को इनका न विभक्तिका है णत्व हुआ । इसका दूसरा उदाहरण--रम्य. सुन्दरः विः पक्षिः तेन **रम्यविणा** सुन्दर पक्षीसे टा को ना । विभक्तिके नको ण हुआ । समासके भीतरी विभक्तिको मानकर णत्व निषेध नहीं होगा, उत्तरपदत्वे चापदादिविधौ, प्रत्यय लक्षणके प्रतिषेधसे ।

। ५६ । **कुमति** कुः कवर्गः अस्ति अस्मिन् क ख ग घ ङ वाले उत्तरपदमें प्रातिपदिकान्तनुम्--विभक्तिनकारको नित्य ण हो । अनेक अच् उत्तरपदके लिए सूत्र--हरिं कामयतः **हरिकामिणौ**, वार-वार भगवानको चाहनेवाले । आभीक्ष्ण अर्थमें णिनि । **हरिकामिन्** उत्तरपद कवर्गवाला । कामिन् प्रातिपदिकका अन्त न को ण नित्य । **माषान् वपन्ति** कर्ममें अण, नपुंसक नपुंसकस्य झलचः नुम् । न को ण, ज्ञानानिवत्रूप । हरिं कामयति हरिकामः तेन **हरिकामेण** । विभक्तिके न को ण । भगवान्को चाहनेवालोंसे ।

। ५७ । **पदके व्यवाये**=व्यवधानमें भी र ष से परे न को 'ण' नहीं होता । न भामूपूसे 'न' आया । माषाणां कुम्भो **मासकुम्भः** (उरदका घड़ा) तस्य वापः उसको खेतमें बोना, षष्ठी समास, ष और न के वीच कुम्भपदका

इति वाच्यम्। आर्द्रगोमयेण। शुष्कगोमयेण। ५८ कुस्तुम्बुरूणि जातिः ६।१।१४३॥ अत्र सुण्निपात्यते। कुस्तुम्बुरुर्धान्याकम्। क्लीबत्वमतन्त्रम्। जातिः किं कुतुम्बुरूणि। कुत्सितानि तिन्दुकीफलानीत्यर्थः। ५९ अपरस्पराः क्रियासातत्ये ६।१।१४४॥ सुण्निपात्यते। अपरस्पराः सार्था गच्छन्ति। सततमविच्छेदेन गच्छतीत्यर्थः। क्रिया इति किम्, अपरः परा गच्छन्ति। अपरे च परे च सकृदेव गच्छन्तीत्यर्थः। १०६० गोष्पदं सेवितासेवित-

---

भेद होनेसे णत्व निषेध हुआ, जो कुमति च से प्राप्त था। चत्वारि अङ्गानि रथगज'-अश्वपदानि रूपाणि यस्य तच्चतुरङ्गं सैन्यं तेन योगेन। निमित्त र, कार्यी, न के बीच अङ्गका व्यवधान है। णत्वका निषेध हुआ। अन्तर्वर्तिनी= समासके भीतरी लुग्विभक्तिको मानकर पद समझें। अतद्धिते=तद्धितप्रत्यय परे जी पद उसके व्यवधानमें यह निषेध न लगे। आद्र गोमयेन, गोः पुरीषं गोमयं गायका गोबर 'गोश्च पूरीषे' मल अर्थमें मयट् तद्धित है। सुप्का लुक्, आद्रमगोमयं कर्मधारय, गीला गोबर। यद्यपि प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणसे भीतरी सु लुक् है। विभक्ति मानकर गोशब्द पद है। तेन आद्र गोमयेन तद्धित मयट्के व्यवधानमें 'र' से षरे न को ण हुआ। वह पद नहीं, तथापि इस प्रसङ्गमें अट्कुप्वाङ् नुम् भी बाधक नहीं। ष से परे पदके व्यवधानमें णत्वका उदाहरण—शुष्कगोमयेण सूखे गोबरसे, गोके व्यवधानमें भी न को ण। ५८। सुट्। कात्पूर्वः से सुट् आया। कुछ सूत्रोंको समझानेके लिए। कुस्तुम्बुरुः 'सुट् निपातनसे होता है। जाति अर्थ खुलनेपर। धान्याकं--गुल्म लता की जाति अर्थ होनेपर। सूत्रमें नपुंसक लिङ्गही इष्ट नहीं। बहुवचन नेष्ट। सूत्र जाति अर्थे सुट् कहाँ ? जहा जाति अर्थ नहीं वहाँ सुट् न हो, अतः तिन्नीका चावल अर्थमें कुतुम्बुरूणि शब्द है। प्रमाण गवेषणीय। सुट् नहीं हुआ। ५९। अपरः अपराश्च निरन्तरं गच्छन्ति दूसरे अन्य लोगों की प्रिया हमेशा होने का अर्थका सूचक सुट् निपातनसे। अपरस्पराः सार्थाः (समानो अर्थ येषान्ते) गच्छन्ति सततं लगातार अविच्छिदेन बिनारोके सूर्यके घोड़े चलते रहते है। क्रियाका निरन्तर अर्थ क्यों अपरपराः अपने और पराये लोग। सकृदेव=एक ही बार चलते है। क्रिया के लगातार न होनेसे सुट् नहीं हुआ। १०६०। गोष्पदं गवां पदं, गायोंके ठहरने का स्थान षष्ठीसमास होने पर उसके आश्रयमें, तब समूह स, उसको ष निपातनसे हो, जब सेवित गाय

प्रमाणेषु ६।१।१४५।। सुट् सत्य षत्वं च निपात्यते। गावः पद्यन्तेऽस्मिन्देशे स गोभिः सेवितो गोष्पदः। असेविते, अगोष्पदान्यरण्यानि। प्रमाणे, गोष्पदमात्रं क्षेत्रम्। सेविते–इत्यादि किं गोः पदं गोपदम् ६१ आस्पदं प्रतिष्ठायाम् ६।१।१४६। आत्मयापनाय स्थाने सुट् निपात्यते। आस्पदम्। प्रतिष्ठायामिति किम्, आ पदात् आपदम्। (आपदापदम्)। ६२ आश्चर्यमनित्ये।६।१ १४७। अद्भुते सुट्। आश्चर्यं यदि स भुञ्जीत। अनित्ये किम्। आचर्य कर्म शोभनम्। ६३ वर्चस्केऽवस्करः ६।१ १४८। कुत्सितं वर्चो वर्चस्कमन्नमलम्। तस्मिन् सुट्। अवकीर्यत इत्यवस्करः। वर्चस्के किम्, अव

की सेवाका देश हो। पद्यन्ते गावः (जाते हैं बैल जिस देशसे वह गायोंसे सेवित) गोष्पदः हरियाणा। असेविते=गवा संचारो यत्र नैव सम्भवति तत्रापि सुट्, अरण्यानि हिंसक जन्तु भरे जंगल अर्थ में अगोष्प{दा}नि। यहाँ भी सुट् हुआ। प्रमाणार्थमें भी सुट्, गायके खुरके बराबर अति अल्पक्षेत्र, प्रमाण अर्थ सूचक सुट् गोष्पमस्ति अस्य गोष्पदमात्र। सेवित, असेवित प्रमाण अर्थमें सुट् क्यों कहा? इसलिये कि गोपदं गायका खुर कहनेसे कोइ अर्थ नहीं झलकता, अतः सुट् नहीं हुआ। ६१। आस्पदम् आत्मयापनं, शरीरसंरक्षणं देहरक्षाके लिये जो स्थान हो अर्थका सूचक सुट् हो। प्रतिष्ठायां=शरीरके स्थान अर्थके आ पदात् विग्रहमें अव्यीभाव समास आपदं शरींररक्षाके स्थान अर्थमें सुट् हुआ। आस्पदं, प्रतिष्ठा क्यों कहा? आपदातृसे अपद बना जिसका विपत्ति शरीरकष्ट अर्थ है। संरक्षण नहीं सुट्, न हो

।६२। आश्चर्य–अद्भुत अर्थ खुलता हो आङ्पूर्वक चर से सुट् हो। टित्से आदिमें हुआ, चरे राङि चागुरौ यत्। आचर्य अद्भुत अर्थ में सुट् हुआ आश्चर्य-अनित्यग्रहण हटा। तेन आश्चर्यं नीला द्यौः, आश्चर्यमन्तरिक्षे नक्षत्राणि न पतन्ति। अधः इत्यादि ग्रहण के लिये अनित्यः। अद्भुत क्यों पढ़ा? आचर्यं आचार्योंका काम आदर्श है, सुट् न हो। ६३। वर्चस्केकुत्सित, भ्रष्ट सड़ा नीरस वर्क वस्तु वर्चस्कं अन्नका मल अर्थ सूचक सुट् हो जाय। अवकीर्यंते विखेर दिया, फेका जाय त्यागदे वह अवस्करः मल मूत्र। मूत्रं प्रस्राव उच्चारौ अवस्करौ शमलंशकृत् गूथं पुरीषं वर्चस्कं, मस्ति विष्ठाविशौ स्त्रियामित्यमरः। वर्चस्क=मल मूत्रका सूचक सुट् क्यों? अवकरोतीति अवकरः नीचे करना सुट् न हो। ।६४। अवस्करो रथ का अङ्ग अर्थ खुलता हो, उसका सूचक सुट् अप करोति अपस्कर। दूर लेजाने वाला, चक्रं रथाङ्गं अपस्करः इत्यमरः।

६४ **अपस्करो रथाङ्गम्** ६।१।१४९।अपकरोऽन्यः। १०६५ **विष्किरः शकुनौ वा** ६।१।१५०। पक्षे विकिरः। वावचनेनैव सुड्विकल्पे सिद्धे विकिर-ग्रहणं तस्यापि शकुनेरन्यत्र प्रयोगो मा भूत् इति वृत्तिः। तन्न, भाष्य-विरोधात्। ६६ **प्रतिष्कश्च कशेः** ६।१।१५२। 'कश गतिशासनयोः' इत्यस्य प्रतिपूर्वस्य पचाद्यचि सुट् निपात्यते णत्वं च। सहायः पुरोयायी वा प्रतिष्कश इत्युच्यते। कशेः किं प्रतिगतः कशां प्रतिकशोऽश्वः। यद्यपि कशेरेव कशा, तथापि कशेरिति। धातोर्ग्रहणमुपसर्गस्य प्रतेर्ग्रहणार्थम्। तेन धात्वन्तरोपसर्गान्न। ६७ **प्रस्कण्वहरिश्चन्द्रावृषी** ६।१।१५३। हरिश्चन्द्रग्रहणममन्त्रार्थम्। ऋषी

गाड़ी दूरले जाती है। जहाँ रथका अङ्ग नहीं वहाँ सुट् नहीं, अपकरः दूर करने वाला कोई भी उससे भिन्न होगा।

।६५। विष्किरः विकिरति विखेरने वाला विकिरः। कृ विक्षेप इगुप-धज्ञासे क। पक्षी अर्थ खोलनेवाला सुट् स परिनिविभ्यःसे ष। **नौगोकावाजि-विकिर विष्करः पतत्रयः**, अमरः। पक्षमें सुट् नहीं **विकिरः**। दोनोंका समान पक्षीं अर्थ। वा०। वचनेन वृत्तिग्रन्थमें विष्किरः शकुनौ विकारो वा० इति सूत्र पाठः। उसमें वा से सुट् पक्षपात सिद्ध था। विकिर और विष्किर दोंनों का पढ़ा जाना दोनों पक्षी अर्थमें नियमार्थ है। अन्यत्र प्रयोग मिलता भी नहीं। भाष्यमें **विस्किरः शकुनौ वा०** पढ़कर विकल्प सुट् कहा और अन्यत्र प्रयोजन सुझाया जैसे **विकिरं वैश्वदेविकं**। इसी भाष्य विरोधसे वृत्ति ग्रन्थ अमान्य। ६६। **प्रतिष्कः**=अग्रगामी कड़े शासनमें तेज प्रतिस्पर्धी अर्थका सूचक सुट् हो। कश गतिशासनयोः प्रतिपूर्वस्य पचाद्यचि, प्रतिकश। उक्त अर्थमें सुट् निपातनसे, ष भी। सूत्रमें कशेः क्यों पढ़ा? कशा कोड़ा **प्रतिकशः** सुट् नहीं हुआ। सहायक या अग्रणी न होनेसे। यद्यपि कश धातुसे ही कशा कोड़ा निष्पन्न हुआ। तथापि कशधातुका ग्रहण क्यों मान्य? उपसर्गसंज्ञक प्रतिके स्वीकारके लिए। क्योंकि **यत्क्रिया युक्ताः प्रादयः तं प्रति गत्युपसर्ग-संज्ञकाः**। जिससे गम् धातुके सम्बन्धमें प्रतिको उपसर्ग संज्ञा हो। कशाके उपसर्ग नहीं। धातुसे भिन्नमें उपसर्ग होनेसे सुट् नहीं हुआ।

।६७। **प्रस्कण्व** और हरिश्चन्द्र **ऋषि** अर्थमें सुट् सहित मान्य। मन्त्र अर्थमें **प्रस्कण्वः मन्त्रः** हरिश्चन्द्रका स्वीकार करना मन्त्र अर्थसे भिन्नके लिए। ऋषि क्यों पढ़ा? देश अर्थमें सुट् न हो, प्रकृष्टः कण्वः यस्मिन् देशे **प्रकण्वः हरिश्चन्द्रः** बालकका नाम, न ऋषि, न सुट्। हरिश्चन्द्रः राजर्षिः

इति किं प्रकण्वो देशः । हरिचन्द्रो माणवकः । ६८ **मस्करमस्करिणो वेणुपरिव्राजकयोः ।६।१५४।** मकरशब्दोऽव्युत्पन्नः, तस्य सुडिनिश्च निपात्यते वेणु-इति किं, मकरो ग्राहः। मकरी समुद्रः । **कास्तराजस्तुन्दे नगरे ६।१।१५५।** इषत्तीरमस्यास्तीति कास्तीरं नाम नगरम्। अजस्येव तुन्दमस्येति अजस्तुदं नाम नगरम् । नगरे किं कातीरम् । अजतुन्दम् १०७० **कारस्करो वृक्षः ६।१।१५६।** कारं करोतीति कारस्करो वृक्षः । अन्यत्र कारकरः ! केचित्तु कस्कादिष्विदं पठन्ति, च सूत्रेषु । ७१ **पारस्करप्रभृतीनि च सञ्ज्ञायाम् ३।१।१५७।** एतानि ससुट्कानि निपात्यन्ते नाम्नि । पारस्करः । किष्किन्धा

*'तद्बृहतोः कारत्योश्चोरदेवतयोः सुट् तलोपश्च' तात्पूर्व चर्त्वेन दकारो बोध्यः।

सुट् हुआ । ह्रस्वाच्चन्द्रो मन्त्रे सुट् ।

। ६८ । मस्कर वेणु मसकबाजा अर्थमें और मस्करी परिव्राजक सन्यासी अर्थमें सुट्के पात्र, मान्य । मकरशब्द अव्युत्पन्न है । उसको सुट् और इनि भी निपातनसे । सूत्रमें वेणु अर्थ परिव्राजक क्यों पढ़ा ? जहाँ मसकबाजा अर्थ न हो, वहाँ सुट् न हो । मकरो ग्राहः घड़ियालका नाम, मकराः सन्ति यस्मिन् मकरी समुद्रः ग्राहसे भरा है । ६९ । कास्तीरा और अजस्तुन्दशब्द सुट् सहित हों, नगर शहर अर्थ होनेपर ईषत्तीरं संकीर्ण तट, किनारेका भाग है कास्तीरं नगरका नाम 'कु' के स्थानमें का आदेश । ईषद अर्थमें हुआ । आजस्येव बकराकी तरह तोंद है इसका अजस्तुन्दं नगर अर्थका सूचक सुट् नगर क्यों वढ़ा न दूसरे अर्थमें सुट् न हो । कातीरं सङ्कीर्ण तट् अजकी तोंद, सुट् नहीं हुआ, नगर अर्थ न होनेसे ।

। १०७० । कारस्करः कारं करोति उपकार करना जिनका स्वभाव हो ऐसे अर्थसूचक सुट् हो । कृञो हेतुताच्छील्ये ट-अ सुट् कारस्करः । अन्यत्र जहां वृक्ष अर्थ नहीं, वहां सुट् भी नहीं कारकरः कुशलकार्यकर्ता । कोई कस्कादि गणमें इसको पढ़ते हैं सूत्रोंमें नहीं (७१) पारस्करः पारङ्करोति पार करना जिसका स्वभाव हो या जो कारण हो । हेतु तत्शील अर्थमें ट । किसीका नाम अर्थका सूचक सुट् हो । किं-किं वानरसैन्यं धत्ते किष्किन्धा आकारान्त धासे क-अ-टाप् निपातनसे । किम्को द्वित्व मलोप सुट् स ष । एक पहाड़का नाम है अतः सुट् । इस गणमें रूढशब्द है । कथञ्चित् व्युत्पत्ति करें । प्रकृति या प्रत्ययके अर्थपर विचार अनिवार्य नहीं (ग०) तद् पारस्करादिगणका सूत्र

तद्बृहतोर्दकारतकारौ लुप्येते। करपत्योस्तु सुट्। चोरदेवतयोः इति समुदायोपाधिः। तस्करः। बृहस्पतिः। *'प्रायस्य चित्तिचित्तयोः' प्रायश्चित्तिः। प्रायश्चित्तम्। वनस्पतिरित्यादि। आकृतगणोऽयम्।

इति समासाश्रयविधिप्रकरणम्।

है। तत् और वृहत् शब्दको क्रमसे कर और पति शब्दपरे चोर अर्थमें, देवता अर्थमें सुट् हो, तकार लोप भी। परन्तु विग्रहमें त रहेगा, त से पहले चर्त्व और दकार भी समझें। तद्का द, वृहत् का त लुप्त होते है।(वा) करको चोर, पतिको देवता अर्थमें सुट् समझें। चोर और देवता अपने समुदायकी उपाधि सूचक है। तत्-चौर्यं करोति हेतु या तत्शील अर्थमें ट। तस्करः। ति का लोप, चोरसमुदाय अर्थमें सुट्। वृहती वाणी तस्याः पतिः कुक्कुटचादि गण मानकर पुंवत्, तलोप, सुट् स, वृहस्पतिः वाणीका स्वामी वाग्देवता अर्थ सूचक सुट्। वाक् हि वृहती तस्याः पतिः इति छन्दोग्ब्राह्मणम्। (ग०)प्रायसे चित्ति या चित्त परे रहते सुट् हो, पापकी शुद्धि अर्थमें। यहां प्रायका पाप अर्थ,चित्तका शोधन अर्थ। प्रायस्य चित्तिः चित्तं वा विग्रहे समासे समासाश्रय सुट्। प्रायं पापं विजानीयात् चित्तं तस्य विशोधनं, शब्देन्दुशेखरमें पुलिङ्ग प्राय शब्द अकारान्त, तप उसका अर्थ है। प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते इति स्मृतिः। तपका निश्चय अर्थमें सुट् प्रायश्चित्तं। वनस्य पतिः बनस्पति वनका पालक, तत्व अर्थसूचक सुट्। पारस्कर आदि आकृतिगण है। रूप देखकर स्वरूप सुट् समझ लें। अतः शतात्पराणि परश्शतानि कार्याणि सन्ति। राजदन्तादि मानकर शत्का परनिपात। पारस्करगण मानकर सुट्।

। इति प्राभाकरीटीकायां प्रभाकरमिश्रकृतायां समासाश्रयविधिः।

अथ तद्धितेषु अधिकारः अथ-सुबन्तसे पदसिद्धि समाससे अनेकपदोंकी एकपदसिद्धि, जिससे तद्धित होना है उनके पदस्फोटार्थ निर्णयके बाद प्रातिपदिकके अधिकारमें तद्धित प्रकरणका प्रसङ्ग प्राप्त हुआ, इसके सभी प्रत्यय पदसे या समासपदसे, उसीके किसी अर्थमें अवश्य होगें। प्रकरण सम्बन्धजोड़नेके लिए प्रसङ्ग प्राप्त **तद्धितेषु=तेभ्यः प्रातिपदिकार्थेभ्यः (प्रयोगेभ्यः)** हिताः **तद्धिताःतेषु**। प्रातिपदिकके अर्थ=जाति व्यक्ति लिङ्ग संख्या कारक पाँच है इन्हींके उपकारमें प्रत्यय होते है। जिनकी प्रातिपदिकसंज्ञा होंनी है, उन्हींमें वे रहते है। प्रथम जाति अर्थः, जननात् जायते या सा

अथतद्धिताधिकारप्रकरणम् ॥ २६ ॥

अथापत्यादिविकारान्तार्थसाधारणप्रत्ययाः।

७२ समर्थानां प्रथमाद्वा ४। १। ८२॥ इदं पदत्रयमधिक्रियते।

जातिः, जन्म लेने मात्रसे जो उपाधि **मनुष्यत्व** पशुत्व देवत्व ब्रह्मणत्व आदि। अतः **जन्मसे सम्बन्धित** जातिपरम्पराका बोधक जननयोग्यताका सूचक तद्धितो **में** अपत्याधिकार है। अपत्य जनन योग्यता (पैदा करेनेकी शक्ति) का सूचक है। अथवा **न पतन्ति पितरो अनेन तदपत्यं, औरससन्तान** अर्थमें ही अपत्य प्रत्यय होगा। द्रोणस्यापत्यं **द्रौणिः** द्रोणकी जननयोग्यताका सूचक सन्तान अश्वत्थामा अर्थमें (अत) इञ् प्रत्यय हुआ। समासपदसे भी सुनिये- अश्वानां पतिः अश्वपतिः घोड़ोंका स्वामी, तस्यापत्यं उसकी जननयोग्यतासे उत्पन्न सन्तानअर्थका सूचक अण्प्रत्यय **आश्वपतम्**। **व्यक्ति अर्थमें**, तत्र जातः, तत्र भवः, राष्ट्रेजातः राष्ट्रीयः पुरुषः। ग्रामे भवः ग्राम्यः गाँवका आदमी। **लिङ्ग अर्थमें** त्वान्तं, क्लीबं, तलन्तं स्त्रियां, **कारक क्रिया सम्बन्ध**, ब्राह्मणस्य भावः कर्मवा **ब्राह्मण्यम्** संख्या प्रसङ्गसे सूचित है। इस प्रकार क्रियाकारक संख्या, **शतेन क्रीतः शत्यः** तृतीया कारक। सभी प्रातिपदिकार्थमें सभी तद्धित **अर्थ गतार्थः** द्योतक या **वाचक** है। अपत्याधिकार=उन तद्धितप्रत्ययोमें **प्रथम** जन्मना जातिका सूचक। पितरतारक अपत्य (सन्तान) अर्थका अधिकार, उसका प्रसङ्ग प्रस्तुत करते है। वे प्रत्यय किससे हों ? समर्थ, सम्बद्धार्थ मिलकर **एकार्थ** होनेपर प्रथम उच्चारित शब्दसे हो, विकल्प से। पक्षमें समास भी वाक्य भी रहें। इसका सूचकसूत्र—

७२ **समर्थानां**–एकार्थीभाव समासका सूचक हैं। कृत्तद्धितसमाससनाद्यन्त- एकशेषरूपाः पञ्चवृत्तयः। समासवृत्तिका बाधक तद्धितवृत्ति है दोनोंके परस्पर सम्बद्धार्थ समर्थ होनेसे। यह भाव आगे खुलेगा। सूत्रमें विधेय--विधानके विषय वस्तुका दर्शन नहीं, तब स्वतंत्र विधिसूत्र नहीं। तीनों पदोंका अधिकार चलाते हैं, स्वरित प्रतिज्ञा बलसे। **स्वरितेनाधिकारः**। कहां तक चलेगा–**प्राग्दिशो विभक्तिः** सूत्र तक। 'समर्थानां प्रथमात्' जायेगा 'वा' आगे भी। क्योंकि प्राग्दिशो विभक्तिः के उत्तर भागके प्रत्यय स्वार्थिक हैं, **स्वंप्रकृति तस्य अर्थः स्वार्थः तत्र भवः**। **स्वार्थिकमें** समर्थ और प्रथमात्का प्रयोजन नहीं **समर्थानां**=निर्धारणे षष्ठी सम्बद्धार्थानां उपकाराय, विसूत्राणां मध्ये **प्रथमात्**= सूत्रमें प्रथम उच्चारितपदसे प्रत्यय हो विकल्पसे। जैसे तस्यापत्यं तस्य समूहः,

'प्राग्दिशः' इति यावत् । सामर्थ्यं परिनिष्ठितत्वम् । कृतसन्धिकार्यत्वमिति । यावत् । ७३ प्राग्दीव्योऽण् ४।१।८३।। 'तेन दीव्यति–' इत्यतः प्रागणधि-

---

तस्येदं, तस्य विकारः, इत्यादि सूत्रोंमें प्रथम उच्चारण 'तस्य' है, जो षष्ठ्यन्त पदका सूचक है, उसीसे प्रत्यय होगें, समर्थ=सम्बद्ध अर्थसे प्रत्यय, उसमें प्रथम उच्चारित समर्थाद् प्रथमात् वा पढ़ना ठीक है सम्बद्ध अर्थमें प्रथम उच्चारणसे प्रत्यय हों। केचिद्बहुवचन पढ़ने की शक्तिसे अनेक शक्तिवालोंके शक्ति-वाले समुदायमें ही यह सूत्र लगेगा। क्योंकि प्रग्दिशः तक समर्थ जायेगा, स्वार्थिकमें नहीं लगेगा, ऐसा कहे हैं। अत्र शङ्का--समर्थः पदविधिः (तद्धितानां एकार्थीभाव एव प्रवृत्तिः समर्थः) परिभाषासे सम्बद्ध अर्थसे प्रत्यय होगे, समर्थानां पढना व्यर्थ है ? यदि कहिये कि पदविधि नहीं है, तन्न घकाल तनेषु सूत्रसे अलुक्के विधानसे, जव सुप् रहेगा तभी अलुक् सम्भव।

सुबन्तात्तद्धितोत्पत्तिः सिद्धान्त हैं सुप् अन्तमें होने पर पदविधि, सिद्ध एकार्थ सामर्थ्यके लाभ से समर्थानां व्यर्थ है। तब कहा कि परिनिष्ठितसामर्थ्यके लिए समर्थः शक्तः पटुः संबद्धार्थः पर्याय हैं। जिसमें विधिसूत्र की प्रवृत्ति नहो वह परिनिष्ठित है शक्त शब्द वह है जिसमें कार्य उत्पादन, अर्थ बोधन की योग्यता हो। कृतानि सन्धिकार्याणि येषु तेषु, सन्धिकार्य करने पर ही शक्ति सामर्थ्य खुलता है। अतः कृतसन्धिकार्यत्वं सामर्थ्यं कहा। यथा सु–उत्थितः कल्पनासे अर्थवान् है सन्धि करने पर ही प्रत्यय होगा। तद्धित का उपसर्गप्रधान विधिसूत्र (७३) प्राग्दीव्यतः=तेन दीव्यति खनति जयति जितं–सूत्रके प्राक् पहले तक अण् का अधिकाँर चलेगा। दीव्यति का अंश अनुकरण दीव्यत् है। उससे जुड़ा सूत्र सूचित हुआ। अतः तेन दीव्यति खनति सूत्रके पहले तक अण् का अधिकार चलेगा। इस बीच अर्थ अपत्य, समूह, निवास, निवृत्ति, रक्त, अदूरभवः विकार, जात इत्यादि अर्थ आये हैं सबमें अण् पहुचेगा, बाधकसे ही बाध्य होगा। कोइ दीव्यत् में शतृ कहते हैं। तेन देवन कर्ता अर्थ एव अवधिः। एकदेशविकृतन्यायसेभी। यह अण् किससे हो, कैसे हो ? क्यों हो! किस अर्थमें हो, कहाँ हो ? बादके सूत्र तस्यापत्यम् आदिमें सन्तान अर्थ, इदम् अर्थ, निवास भवन होना, विकार, जातः भवः पैदा हुआ आदि केवल अर्थ बोलने वाले सूत्रोंमें विधेय–विधान किये जाने वाले प्रत्ययोंका उच्चारण नहीं है किन्तु अर्थ बोलते हैं। उसका वाचक या द्योतक नहीं कहते, उन स्थलोमें अण् शीघ्र उपस्थित होता है जो विधेय है। परन्तु कस्मा-

क्रियते। ७४ **अश्वपत्यादिभ्यश्च** ४।१।८४।। एभ्योऽण्स्यात्प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु। वक्ष्यमाणस्य ण्यस्यापवादः।१०७५ **तद्धितेष्वचामादेः** ८।२।११७।। ञिति णिति च तद्धिते परेऽचमादेरचो वृद्धिः स्यात्। ७६ **किति च** ७।२।११८।। किति तद्धिते च तथा। अश्वपतेरपत्याद्याश्वपतम्। गाणपतम्।

द्भवति किससे हो तब **समर्थानां प्रथमात् उपस्थित** होगा कहेगा कि अर्थ प्रतिपादन कुशल, शक्त=शक्ति सम्पन्न प्रथम उच्चारित शब्दसे तद्धित हो, **समर्थानां मध्ये प्रथमोच्चरित सांकेतित शब्दात् अण् भवतु** जैसे तस्यापत्यंमें तस्य प्रथम उच्चारित है, वह षष्ठचन्तका सूचक है तब समर्थषष्ठचन्तशब्दसे अण् अर्थ निकलेगा। जहाँ विधेय प्रत्यय (अत) इञ्। फक् फिञ् ठक् ठञ् यत् ण्य आदि जिन सूत्रसे होगा, उनमें अण् नहीं जायेगा। अण् उत्सर्ग हैं इञ् फक् फिञ् अपवाद बाधक है (७४) **अश्वपति** आदि गणमें पढ़े शब्दोंसे अण् होता है। **प्रादीव्यतीयेषु**=तेन दीव्यति खनति जयति सूत्रके पहले जितने अर्थ आये हैं, अपत्य, इदं निवास, समूह जात, भव, विकार इत्यादि, अर्थो में अण् हो। **दीव्यतः प्राक्** प्राञ्चः, मानकर अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्याः से अव्ययीभाव समास (झयः से टच् नहीं पाक्षिक होनेसे) तत्र भवा प्राग्दीव्यतीया वृद्धाच्छः अव्यय मानकर त्यप् नहीं होगा। अव्ययीभाव संज्ञा का फल (लुक् मुखस्वर उपचार) प्रयोजन है अमेहक्वतसित्रेभ्यः। परिगणन होनेसे भी अतेरेव=अव्ययानां भमात्रे टिलोप भी नहीं। अत्र शङ्का-प्राग्दीव्यतोऽण् से अण् होता, यह सूत्र क्यो ? **वक्षमाणस्य** दित्यदित्यादित्य—सूत्रसे प्राप्त ण्य को बाधनेके लिए।

। १०७५। **तद्धितेषु**- अचोञ्णिति, (मृजेः) वृद्धि आया। अचां निर्धारण षष्ठी। ञिति, ण इत् णिति वाला तद्धितप्रत्यय परे अचोंके आदि अच् के स्थानमें वृद्धि हो। ७६। **किति**=क इत्प्रत्यय परे रहते भी तथा उसी प्रकार वृद्धि हो। यह सूत्र यहाँ उपयोगी नहीं, व्याख्यान सुविधाके लिए कहा इसका उपयोग बाहीकः आदिमें होगा। अश्वानां पतिः अश्वपतिः समास पद है। तस्याः अपत्यं उसकी सन्तान जनन योग्या सूचक अण्, ण-इत्। अश्वपति अ तद्धितेष्वचामादेः अचो वृद्धिः अ को आ हुआ। यस्येति च इकार लोपे **आश्वपतम्** आदि पदसे अश्वपतेः समूहः निवासः, विकारः, **आश्वपतः** आदि समझें। गणानां पतिः गणपतिः तस्य अपत्यं निवासः समूहः इत्यादि अर्थमें अश्वपत्यादि गणमें पढ़े जानेसे अण् आदिवृद्धिः इकार लोप **आश्वपतं** गणेशकी सन्तान, निवास इत्यादि। हरदत्तके ग्रन्थमें गणपतिः देवता अस्य मन्त्रस्य

'गाणपत्यो मन्त्र' इति तु प्रमादिकमेव। ७७ **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः ४ । १ । ८५ ॥** दित्यादिभ्यः पत्युत्तरपदाच्च प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ण्यः स्यादणोऽपवादः। दैत्यः। अदितेरादित्यस्य वा आदित्यः। प्राजापत्यः। 'यमाच्च' इति काशिकायां याम्यः। 'पृथिव्या ञाञौ'। पार्थिवा पार्थिवी।*

गाणपत्यो मन्त्रः। उन्होंने ण्य किया है, जो प्रमाद वश हुआ। क्योंकि अश्वपति गणपति राष्ट्रपति कुलपति गृहपति पशुपति क्षेत्रपति के पाठ वृत्तिमें है। अण् होगा, ण्य नहीं। यदि देवतार्थक अणन्त चातुर्वर्ण्य आदिको आकृतिगण माने ण्य हो तब निर्दोष प्रयोग। ७७। **दित्य**=दितिःदैत्यमाता, देवमाता **अदितिः आदित्य** सूर्य इनसे और पति उत्तरपदं यस्य तस्मात् पतिशब्द उत्तरभागमें हो उन शब्दोसे प्राग्दीव्यतीय अपत्य निवास आगत आदि अर्थोमें ण्य प्रत्यय हो, प्राग्दीव्यत् आता है आतेहुए अण् को बाधकर। दितेः अपत्यं कश्यप ऋषि की पत्नी दिति कीं संन्तान अर्थमें शब्दसे ण्य, अण् को बाधकर। चुटू ण इत् आदिवृद्धिः। दैतिअ यस्येति च, इकार लोंपे। तद्धितान्ततत्वात्प्रातिपदिक संज्ञायां स्वादिकार्ये **दैत्यः**। हिरण्यकश्यपुः हिरण्याक्षः। अदितेः देवमातुः अपत्यं देवमाताकी सन्तान अर्थमें सूत्रेण ण्य आदिवृदिः, यस्येति अकारलोप **आदित्यः**। इस प्रकार सभी अर्थोमें अदितेः जातः भवः निवासः आदि अर्थोमें **आदित्यः** बनेगा। आदित्य शब्दसे ण्य इन्द्र सूर्य आदि देवता अर्थ। अदित्यस्य अपत्यं निवासः समूहः भी आदित्यः। ण्य होनेपर वृद्धि अलोपके बाद यणोभयो से पूर्व को द्वित्व–दो बार उच्चारण। हलोयमां यमि–यलोपः, एक य है। द्वित्व नहीं, लोप नहीं, तब दो य, द्वित्व नहीं यलोप तब एक य। जात, निवास आदि अर्थमें (आपत्यस्य च) से य लोप नहीं होगा, अपत्य अर्थमें प्रत्यय होने पर यलोप होता है। पति उत्तरपद-प्राजापतेः अपत्यं **प्राजापत्यः** प्रियव्रतः उत्तानपादः, । प्रजापतिसे ण्य=इलोप आदिवृद्धि। सूत्रमें अर्थविशेष क्यों पढ़ा? **औष्ट्रपतम्** उष्ट्रपतिर्नाम पत्रं तस्येदं अर्थमें अञ्। यहाँ ण्य नहीं होगा। **दैत्येयः** कैसे ? कृदिकारात्से ङीष् होने पर दित्याः अपत्यं अर्थमें स्त्रीभ्यो ढक्-एय होकर बनेगा। लिङ्गविशिष्टपरिभाषा की अनित्यतासे। या **दैत्येयाः** असाधुः तब पृषोदरादि का शरण। **यमाच्च**-काशिकामें यमसे भी ण्य कहा है, भाष्यमें नहीं है यमस्यापत्यं **याम्यः** सूर्यः, ण्य वृद्धि अलोप। **याम्या** यमुना। पृथिवीसे ञ्, अञ् हो। दीव्यति तक सभी अर्थोमें। **पृथिव्याः अपत्यं विग्रहे**, वार्तिकसे ञ् अ। चुटू-ञ् इत् आदिवृद्धि-इलोप अदन्त मानकर टाप् **पार्थिवा** मूर्तिः। जब अञ् होगा तब ङीप् टिड्ढाणञ्से। जब ञ होगा ङीष् नहीं, अञ होगा टाप् नहीं,

'देवाद्यञञौ'। दैव्यं दैवम् ।* 'बहिषष्टिलोपो यञ् च' वाह्यः ।* 'ईकक्च' बाहीकः ।* 'स्थाम्नोऽकारः' अश्वत्थामः। पृषोदरादित्वात्सस्य तः ।* 'भवार्थे तु लुग्वाच्यः' अश्वत्थामा ।* 'लोम्नोऽपत्येषु बहुष्कारः' बाह्वादीञोऽपवादः। उडुलोमाः। ऊडुलोमान्। बहुषु किं, औडुलोमिः ।* 'सर्वत्र गोजरादिप्रसङ्गे यत्'

दोनों विधिके निर्णयार्थ स्त्रीलिङ्ग। वा देवशब्दसे यञ् और अञ् प्रत्यय हो, दीव्यति से पहले के अर्थोमें। देवस्यापत्यं निवासः समूहः आदि विग्रह में यञ् अनुबन्ध लोप, वादिवृद्धि, यस्येति अलोप दैव्यं, यदा अञ् तदा दैवं देवकी सन्तान या देवताओं से आया हुआ, पैदा हुआ जन्म लिया। अथवा देवानां समूहः निवासः दैवः। वा बहिष यह षकारान्त अव्यय है प्राग्दीव्यतीय अर्थमें यञ् हो, टि=इस् का लोप भी। बहिर्भवः विग्रहे वार्तिक से यञ् टि-अस लोपे आदिवृद्धिः बाह्यः बाहरी व्यक्ति। स्वादिकार्य। यहाँ का टिलोप अव्ययानां भमात्रे को अनित्य सिद्ध करता है। उसका फल अराद्भवः आरातीयः समीप पैदा हुआ। यहाँ टिलोप नहीं हुआ वा ईकक्च-बहिष्से उक्त अर्थमें ईकक् हो, प्रकृतिके टि इष् का लोप भी हो। वहिजातः बाहीकः बाहर पैदा हुआ। ईकक् टिलोप, किति च आदिवृद्धि (वा) स्थाम्नः स्थामन्से अ हो, प्राग्दीव्यतीयमें कहे हुये अर्थोमें अण् को बाँधकर। अश्वस्य इव स्थामा स्थितिर्यस्य विग्रहमें समास अश्वत्थाम्नोऽपत्यं निवासः तत्र भवः जातः इत्यादि सभी अर्थमें अ प्रत्यय हो, अण् को बाँधकर। नस्तद्धिते अन् का लोप अश्वात्थामः की सन्तान निवास, उसमें जन्म लिया, पैदा हुआ, या उससे आया व्यक्ति। अण् होता आदिवृद्धि होती। ननु उदसे परे स्थाके स को थ होता है। यहाँ उद नहीं थ कैसे? तब बोले पृषोदरादीनि यथोपदिष्टं शिष्टों से पढ़ा। स को त मान्य। भवार्थे तु=यदि उत्पत्ति अर्थ हो, तब अकार प्रत्ययका लुक् बोलें। इससे नान्त उपधा को दीर्घ, सु और न लोपसे अश्वत्थमा भी बना। जिसका सन्तान निवास जन्म आदि अर्थ है। वा लोमन शब्दसे अपत्य आदि अर्थवाचक प्रकाशक अप्रत्यय हो, बहुवचन जस् शस् भिस भ्यस् आदि परे। वाह्वादिभ्यश्चके इञ् को बाधकर। उडूनि नक्षाणि इव लोमानि यस्य, तारागण की तरह चमकते रोम हो वह ऋषि उडुलोमा, तस्यापत्यं उसकी सन्तान। अप्रत्यय जस, उडुलोमाः केवल लोमन् से सन्तान सम्भव नहीं। जैसे बल अर्थमें स्थामन् का सन्तानसे योग नहीं, अतः तदन्तविधि उडुलोमानं उडुलोमानौ उडुलोमान् शस् विभक्तिमें भी अप्रत्यय। सूत्रमें बहुवचन क्यों पढ़ा? एकवचनमें अ

गव्यम्। अजादिप्रसङ्गे किं, गोभ्यो हेतुभ्य आगतं गोरूप्यं, गोमयम्।
७८ उत्सादिभ्योऽञ् ४। १। ८६॥ औत्सः।* 'अग्निकलिभ्यां ढग्वक्तव्यः' अग्नेरपत्यादि आग्नेयं, कालेयम्।

इत्यपत्यादिविकिरान्तार्थसाधारणाः प्रत्ययाः।

न हो। यथा उडुलोम्नो अपत्यं **औडुलोमिः** बहु० नहीं, अ भी नहीं, किन्तु उडुलोमिन्, वाह्वादि मानकर इञ्। टिलोपे आदिवृद्धिः। **वा सर्वत्र** गोशब्दसे अजादि प्रत्ययके सङ्गमें सभी अर्थमें (तेन दीव्यति तक जितने अर्थ हैं) यत् हो। केवल अपत्य अर्थमें ही नहीं। गोः अप्रत्यं **गव्यं,** गाय की सन्तान गो य, अव्। अण को बाधकर, गवि भवं जातं गव्यं गाय का बच्चा रोग विकृति, गोर्विकारः **गव्यम्** गोरिदं गायसम्बन्धि वस्तु। गोः आगतं निवासः गव्यम्। गौर्देवता अस्य गव्यः **गोभक्त**। **गवां** समुहः, गवे हितं गायके हित की सारी वस्तु गव्य है। अच् आदि प्रत्ययके प्रसङ्गमें यत् क्यों? गोभ्यः गायोंके लिये आयी वस्तु चारा भूसा खलो कराई आदि अर्थमें **रूप्य और मयट्** हेतु मनुष्येभ्यो रूप्यः मयड्वा दोनों त्यय। **गोरूप्यम्**। हलादि में ऐसा प्रत्यय है उसको बाधकर यत् नहीं हुआ।

। ७८। **उत्सादि** गणमें पढ़े शब्दोंसे अञ् हो, तेन दीव्यति से पहले के अर्थोमें। अण् इञ् आदिको बाधकर। यथा **औत्सः** उत्सस्यापत्यम् (उसकी सन्तान) सूत्रेण अञ् उत्स अ, आदिवृद्धि यस्येति अलोप, उत्सस्य इदं, निवास, विकार, अथवा उत्से जातः भवः। उत्सः देवता अस्य, उत्सादागतम् आदि अर्थ। **'दृष्टं साम'** सूत्रभाष्यमें सर्वत्र **अग्निकलिभ्यां ढक् वक्तव्यः** वार्तिक पढ़ा। **दृष्टं साम** उससे भी अन्य अर्थमें ढक् बोले। 'सास्य देवता' के अधिकारमें अग्नेर्ढक्, दृष्टं सामके अधिकारमें कलेर्ढक्। वार्तिकको हटा, कर प्रग्दीव्यतीयमें पढ़ा? उसका फल हुआकि अग्निके अपत्य आदि अर्थों **आग्नेयम्** अग्निशब्दात् अग्निकालिभ्यां ढक्-एय आदिवृद्धि तद्धितान्तत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां किति च आदिवृद्धिः, यस्येति अलोप। एवं कलिः देवता अस्य कलियुगका भक्त, कहल प्रेमी। कलेः आगतम्, इदं, निवासः अपत्यं **कलिना दृष्टं कालेयं** इत्यादि। कलौ जातं भवं। इस प्रकरणमें अपत्याधिकारसे लेकर विकार प्रकरण तक जितने अर्थ है, वे साधारण=सबमें व्यापक प्रत्यय है इसके प्रत्यय तद्धितमात्रमें व्याप्त हैं।

॥ इति प्राभाकरीटीकायां तद्धितेषु साधारण प्रत्ययाः॥

अथापत्याधिकारप्रकरणम् ॥ २७ ॥

७९ स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् ४।१।८७॥ 'धान्यानां भवने-' इत्यतः प्रागर्थेषु स्त्रीपुंसाभ्यां क्रमान्नञ्स्नञौ स्तः। स्त्रैणः। पौंस्नः। वत्यर्थे न। 'स्त्रीपुंवच्च' इति ज्ञापकात्। स्त्रीवत्पुंवत्। १०८० द्विगोर्लुगनपत्ये

॥ अथ अपत्याधिकारप्रकरणम् ॥

। ७९ । **स्त्री और** पुंस पुरुषसे नञ्स्नञ्प्रत्यय होता है, **भवनात्**=धान्यानां भवने क्षेत्रे, खञ् सूत्र तक जितने अर्थ है उन सभी अर्थोंमें। प्राग्दीव्यत्से प्राक् आया। 'अचतुर' से अच्। **स्त्रैणः** के बहुत अर्थ–स्त्रियाः अपत्यं, निवासः इदं **विकारः**। निवास, वस्तु, जन्म, उत्पत्ति, समुदाय, गति आगमन सफलता सभी अर्थमें स्त्रीशब्दात्–सूत्रेण नञ्, अ। आदिवृद्धि, णत्व तद्धितान्तत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां स्वादिकार्ये। **पौंस्नः** पुरुषकी सन्तान, उत्पत्ति निवास समुदाय, आगत, जात, विकार आदि अनेक अर्थमें स्नञ् पुंसः, अपत्यं निवासः इदं, विकारः पुंसु जातः, भवः। पुंसा समूहः अर्थे पुंसशब्दात् स्नञ् 'स्वादिषु'-पदसंज्ञा, संयोगान्तलोप। एक स का लोप हुआ। आदिवृद्धि प्रत्ययका सकार सुना गया आदिः। **स्त्रैणाः पौंस्नाः** में अञ् लुक् **यञञोश्च** से क्यों नही। **स्त्रैणानां सङ्घः** अर्थमें सङ्घाङ्कलक्षणेषु से अण् क्यों नहीं, दोनो विधिमें गोत्रे आता है **प्रवराध्यायप्रसिद्धं हि तत्र गोत्रम्** अन्यथा पौत्राः दौहित्रा इत्यत्रापि अञः लुक् स्यात्। **वत्यर्थे**=स्त्री और पुरुषसे नञ् स्नञ् (तेन तुल्यं क्रिया चेत्) वतिः के अर्थमें नही होता, ऐसा क्यों! **स्त्रीपुंवत्** के प्रमाणसे। **स्त्रियाः तुल्यं स्त्रीवत्** समान क्रिया अर्थमें **वति** हुआ, नञ् नहीं, ज्ञापनसे, सूत्रमें पुंवत् पढ़नेसे। अन्यथा पुंवत् पढ़ना व्यर्थ होगा, भाष्ययोगापेक्षं ज्ञापकं। (सूत्रके अनुसार नियम) पुंसा तुल्यं पुंवत्। स्नञ नहीं हुआ उक्त ज्ञापनसे।

। १०८० । **द्विगोः** संख्या पूर्व द्विगु है उसको निमित्त हेतु कारण मानकर आया हुआ, जो तद्धित, वह अच् आदि वाला, **अनपत्यार्थः**=उसका सन्तान अर्थ न हो, तेन दीव्यतिके पहलेके अर्थोंमें हो, तब प्रत्ययका लुक् अदर्शन हो, द्विगुके कारण तद्धित ही होता है तद्धितके अर्थ के विषयमें उसका विधान भी है। पञ्चसु=पाँचकसोरोंमें संस्कार किया, पकाया हुआ पुरोडाश हवनकी वस्तु, संख्यापूर्वमें है। संस्कृतं भक्षासे अण्, तद्धित अर्थमें। द्विगुसमास, द्विगोर्लुक्से अण्का लुक् हुआ। आदिवृद्धि नहीं, प्रत्ययलक्षण न होनेसे **पञ्चकपालः**। सूत्रमें द्विगुसमासका कारण तद्धित हो, ऐसा क्यों कहा? इसलिए कि पञ्चकपालस्य इदं विग्रहे पञ्चकपालशब्दात्, तस्येदम् अण् आदि

४।१।८८।। द्विगोर्निमित्तं यस्तद्धितोऽजादिरनपत्यार्थः प्राग्दीव्यतीयस्तस्य लुक्स्यात्। पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः पञ्चकपालः। द्विगोर्निमित्तमिति किं, पञ्चकपालस्येदं खण्डं पाञ्चकपालम्। अजादिः किं, पञ्चगर्गरूप्यम्। अनपत्ये किं, द्वयोर्मित्रयोरपत्यं द्वैमित्रिः। ८१ गोत्रेऽलुगचि ।४।१।८९।। अजादौ प्राग्दीव्यतीये विवक्षिते गोत्रप्रत्ययस्यालुक्स्यात। गर्गाणां छात्राः

वृद्धि पाञ्चकपालं, यहाँ अण् का लुक् न हो। यह अण द्विगुसमासमें निमित्त नहीं। पाँच कसोरोंका टुकड़ा। अजादि प्रत्यय क्यों कहा? पञ्चेभ्यो गर्गेभ्य आगतं **पञ्चगर्गरूप्यं**, हेतुमनुष्येभ्यः रूप्यः। पाँच गर्गोंसे आया हुआ अर्थमें रूप्य। तद्धितसमासका निमित्त द्विगुका निमित्त है किन्तु अजादि नहीं। अजादि हो, न लुक्। **अनपत्ये**=सन्तान अर्थ न हो, ऐसे प्रत्ययका लुक क्यों? द्वयोः मत्रयोः दो की सन्तान, जननयोग्यता सूचक **द्वैमित्रिः**द्वाजः। द्विमित्र शब्दसे (अत) इञ् का अपत्य अर्थ है, लुक् न हो। न च तिस्रः विद्या अधी यानस्त्रैविद्यः यहाँ भी अण्का लुक् ही तन्न, त्र्यवयवा विद्या त्रिविद्या मध्यमपदलोपे ताम् अधीयते विदन्ति वा **त्रैविद्यः** तीन विद्याओंको गुरुसे सुनें समझें यहां अण् द्विगुका निमित्त नहीं, न लुक्। **प्राग्दीव्यतीय** अर्थमें क्यों कहा? पञ्चभ्यः कपालेभ्यः हितं **पञ्चकपलीयं**,हित अर्थमें छ–ईय है। यहाँ लुक् न हो। तेन दीव्यतिकी अवधिसे बाहर है।

१८१। **गोत्रे अलुक्**। प्राग्दीव्यत् आया। प्रत्ययका अधिकार। अचिमें विशेषण, तदादिविधि, विषयसप्तमी। गोत्र अर्थमें हो, अजादि हो, तेन दीव्यतिके पहले पढ़ा हो, वक्ताको इष्ट हो, तब प्रत्ययका लुक् नहीं होता। अदर्शनरूपः लुक। विषयसप्तमीमें विवक्षित अर्थ निकला। गोत्र अर्थमें प्रत्ययका अलुक् हो। गोत्र नहीं तब अलुक् भी नहीं। यथा कुबलस्य इदं **कौबलं**, बदरस्य इदं **बादरम्**। **कुवली बदरी** ङीष् अन्त है। फलरूप विकार अर्थमें अञ्। अनुदात्तादेश्च, फले लुक्। इदमर्थे अलुक् नहीं हुआ। गर्गाणां छात्राः **गार्गीयाः**, गर्गजातिके विद्यार्थी। गर्गस्य गोत्रापत्यं **गार्ग्यः** गर्गादिभ्यो यञि। गर्गवंशकी सन्तान, बहुवचनमें **गर्गस्य गोत्रापत्यानि** वंशके बहुतसन्तान यञ् उसका यञिञोश्चसे लुक् **गर्गाः** बना। गार्ग्यशब्दसे गोत्र प्रवर वंश परम्परा अर्थमें बृद्धाच्छः। आदि अच्में वृद्धि हो, ऐसा पद वृद्ध है। उससे छ--ईय आदेश, अजादि परे यञ्का लुक् प्राप्य था, गोत्रे अलुक् हुआ। **गार्ग्य इति दशायां यस्येति च अलोपे।** यकार लोपार्थसूत्र—

'वृद्धाच्छः'। ८२ **आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति** ६।४।१५१॥ हलः परस्यापत्ययकारस्य लोपः स्यात्तद्धिते परे, न त्वाकारे। गर्गीयाः। प्राग्दीव्यतीये किं, गर्गेभ्यो हितं गार्गीयम्। अचि किं, गर्गेभ्य आगतं गर्गरूप्यम्। ८३ **यूनि लुक्** ४।१।९०॥ अजादौ प्राग्दीव्यतीये प्रत्यये विवक्षिते युवप्रत्ययस्य लुक्स्यात्। ग्लुचुकस्य गोत्रापत्यं ग्लुचुकायनिः। वक्ष्यमाणः फिन्। ततो यून्यण्। ग्लौचुकायनः। तस्य च्छात्रोऽपि ग्लौचुकायनः। अणो लुकि वृद्धत्वाभावाच्छो न।

।८२। **आपत्यस्य च अनाति** (ढ़े) लोप, सूर्यतिष्यसे य, हलस्तद्धितस्यसे हल् आया। हलसे परे अपत्य अर्थके य का लोप हो तद्धितपरे। **अनाति**=आ परे न हो, तब। इससे य का लुक् हुआ। निमित्त न रहनेपर कार्य (आदि वृद्धि) नहीं होगी। आभीय होनेसे अलोप असिद्ध नहीं। इति यलोपे। बहुवचने **गार्गीया**। प्राग्दीव्यतीय अर्थमें प्रत्ययका लोप क्यों कहा? गर्गेभ्यो हितं गर्गीयं गार्गीशब्दसे हित अर्थमें छ। हित अर्थ (तेन दीव्यति की) सीमा से बाहर है। लुक् हुआ, निषेध नहीं अजादि क्यों पढ़ा? **गर्गरूप्यं** गर्गोंसे आया हुआ मनुष्य मानकर रूप्यः। तेन दीव्यतेके पहले अर्थोंमें रूप्य है। पर अजादि नहीं, यञ् का लुक् हुआ, निषेध नहीं। आपत्यस्य क्यों पढ़ा? सङ्काशेन निर्वृत्तं नगरं **शाङ्काश्यं**, **वुञ्**- साङ्काश्यकः काम्पिल्यकः संकाशादिभ्यो ण्यः। यहाँ निर्माण अर्थ है, अपत्य नहीं, लोप नहीं। तद्धित परे क्यों कहा? गार्ग्ये गार्ग्योः, यहाँ ङि ओस परे है। अनाति क्यों पढ़ा? **गार्ग्यायणः** आयन आ परे यञ का लुक् न हो (८३) **यूनि**=**विषय** सप्तमी न तु परसप्तमी। तेनदीव्यति सूत्र के पहले जितने आजादि प्रत्यय हैं। उनकी विवक्षामें युवसंज्ञक चौथी पीढ़ीके प्रत्ययका लुक् हो, लुक् से प्रत्ययका लाभ। ग्लुचुकस्य गोत्रापत्यं अर्थमें अत इञ को बाधकर प्राचामवृद्धात् **फिन्**=फ को आयन ग्लुचुकायनिः ततः तस्य अपत्यार्थे तस्यापत्यम् अण्। चौथी पीढ़ी का युवसंज्ञक है। जब **ग्लौचुकायनस्य** छात्राः कहेगें, तस्येदम् से अण् होगा, तब युवसंज्ञक तस्या अपत्यं के अण् का यूनि लुक् होगा। तब **ग्लौचुकायनः**। छात्र अर्थमें भी।

ननु युवसंज्ञक अण् के अ का यस्येति च से लोप हो, उसका लुक् विधान क्यों? तब बोले अणो लुक् होने पर वृद्ध का लक्षण नहीं रहता, छ प्रत्यय भी नहीं होता, उसके पहले लुक् है। यदि लुक् न करते तब वृद्ध रहता, छ होता, चौथी पीढ़ी के युवप्रत्ययका लुक् कहा। द्वितीय पीढ़ीके लुक् का सूत्र।

।८४। **पैलादि-गणपठित** शब्दसे युवसंज्ञक प्रत्ययका लुक् हो जो ण्य

(८४) **पैलादिभ्यश्च २।४।५९॥** एभ्यो युवप्रत्ययस्य लुक् ।* 'पीलाया वा' इत्यण् । तस्मात् 'अणो द्वयचः' इति फिञ् । तस्य लुक् । पैलः पिता पुत्रश्च । 'तद्राजा च्चाणः 'द्वयज्मगध' इत्यण्णन्तादाङ्गशब्दात् 'अणो द्वयचः' इति फिञो लुक् । आङ्गःपिता पुत्रश्च ८५ **इञः प्राचाम्** २।४।६०॥ गोत्रे य इञ् तदन्ताद्युवप्रत्ययस्य लुक्स्यात् तच्च गोत्रः प्राचां भवति । पन्नागारस्याअपत्यम् । 'अत् इञ्' 'यञिञोश्च' इति फक् । पान्नागारिः । पिता पुत्रश्च । प्राचां किम् । दाक्षिः पिता । दाक्षायणः पुत्रः । ८६ **न तौल्वलिभ्यः** २।४।६१॥ तौल्वल्या-

---

क्षत्रियार्षे से आया । अजादि प्रत्यय परे अविवक्षित दशामें भी । **पीलायाः गोत्रापत्यमित्यर्थे** स्त्रीभ्यो ढक् को बाधकर, पीलाया वा से अण् आदिवृद्धि **तस्मात्**=पैलस्य अपत्यं युवा चौथी पीढ़ी । अणोद्वयचः से फिञ् उसका पैलादिभ्यश्चसे लुक् **पैलः** पिता गोत्रापत्य है । उनका अपत्य पुत्र भी **पैलः=पीलायाः युवापत्यं** पीला की चौथी पीढ़ी पुत्र है, तीसरी पिता । गोत्रापत्य और युवापत्य दोनोमें एकरूप **पैलः, यूनः पिता यूवा च**। पैलादिगणमें शालंङ्कि सात्यकि औदमेयि, पैङ्गलि इत्यादि इञ् अन्त है । इञः प्राचांसे लुक्–सिद्ध, अप्राचां पाठ । (ग०) पैलादि (गणसूत्र) तद्राज–प्रत्ययसे परे युवसंज्ञक अण् का लुक् हो । द्वयच्मगध–सूत्रसे अण् अन्त, अङ्गशब्द देश अर्थमें, तस्य राजा **आङ्गः** गोत्रापत्य **आङ्गः** । राजा उसका पुत्र दोनों आङ्ग है तस्यापत्यं युवा भी **आङ्गः** है । अणो द्वयचः से फिञ उका तद्राज से परे लुक् ।

१०८५। **इञः प्राचां** पञ्चमी, तदन्तविधि, ण्य क्षत्रिय-यूनि लुक् आयो । गोत्र अर्थमें इञ् अन्त हो, उससे यूवसंज्ञक प्रत्ययका लुक् हो । **तच्चेत्**=वह गोत्र प्राचां =पूर्व सम्बन्ध का हो । प्राचीनदेशका नाम **पन्नागार**, उसका राजा भी, **तस्य** गोत्रात्पत्यं उसकी परम्परा की सन्तान **पान्नागारिः** तस्य अपत्यं युवा अर्थमें यञिञोश्च–फक् उसका इञः प्राचांसे लुक् । गोत्रापत्य हो या युवापत्य, दोनों का पान्नागारिः एकरूप । पिता और पुत्र अर्थ । प्राचां क्यों पढ़ा ? गोत्रमें विशेषण क्यों माना, इसलियेकि दक्षस्य गोत्रापत्य **दाक्षिः** पिता है, तस्य युवापत्यं दाक्षायणः **पुत्रः**, चौथी पीढ़ी फक् आयन उसका लुक् न हो । दाक्षिः प्राग्दिशीय गोत्र नहीं, युव प्रत्यय प्राग्दिशीय गोत्रसे नहीं हुआ, न लुक् ।

८६ । **न तौल्वलिभ्यः** । **तौल्वलि** इत्यादिशब्दसे परे युवप्रत्ययका लुक् न हो, जो इञः प्रायां से प्राप्त था दैवमित्रिः । **दैवयज्ञिः** स्वाफल्किः आसुरिः नेमिषिः पौष्करसादि० वैकार्णः इत्यादि, तुल्वलः प्राच्यः कश्चित्, तस्य गोत्रा-

दिभ्यः परस्य युवप्रत्ययस्य लुक् न स्यात्, पूर्वेण प्राप्तः। तुल्वलः। अत इञि फक्। तौल्वलिः पिता। तौल्वलायनः पुत्रः ८७ **फक्फिञोरन्यतरस्याम् ४।१।९१॥** 'यूनि लुक्' इति नित्ये लुकि प्राप्ते विकल्पार्थं सूत्रम्। कात्यायनस्य छात्राः कातीयाः कात्यायनीयाः। यस्कस्यापत्यं यास्कः शिवाद्यण। तस्यापत्यं युवा यास्कायनिः। 'अणो द्व्यचः' इति फिञ्। तस्य छात्राः यास्कीयाः-यास्कायनीयाः ८८ **तस्यापत्यम् ४ १ ९२॥** षष्ठ्यन्तात्कृतसन्धेः समर्थादपत्येऽर्थे उक्ता वक्ष्यमाणाश्च प्रत्यया वा स्युः उपगोरपत्यमौपगवः। आदिवृद्धिरन्त्योपधावृद्धी बाधते।

त्पत्यम्-इञ्, आदिवृद्धि, **तौल्वलिः** पिता, तीसरी पीढ़ी। तस्यापत्यं युवा **तौल्वलायनः** पुत्रः चौथीपीढ़ी। 'इञः प्राचां से फक् का लुक्, प्राप्त था सूत्रेण निषेधे। (८७) **फक्फिञ का** लुक् **तब** हो **जब** युवसंज्ञक हो। उनका लुक् हो, यूनिलुक् आया। उससे नित्य लुक प्राप्त था, विकल्पके लिए यह। यथा कतस्य गोत्रापत्यं **कात्यः**—ऋषियों की सन्तान। गर्गादि यञ् तस्यापत्यं युवा यञन्तत से फक्, **कात्यायनः** तस्य छात्राः इत्यर्थे **वृद्धाच्छः** —ईय आदेश, छात्र अर्थमें छ प्रत्यय की इच्छा हुई, तभी युव अर्थक फक् का लुक् हुआ। कात्य ईय स्थितिमें यस्येति अ लोप, आपत्यस्य यलोपे, कातीयाः। जब फक्का लुक् नहीं, तब **कात्यायनीयाः**। एवं यस्क नामक शिष्ट, उनकी सन्तान अर्थ में अत इञ् को बाधकर शिवादिभ्योऽण् आदिः। **यास्कः** अस्यापत्यं युवा उसके पौत्र की सन्तान अर्थमें अणो **द्व्यचः** फिन्—आयन, **यास्कायनिः** तस्य छात्राः अर्थमें वृद्धाच्छप्रत्यय- ईय आदेश छात्र अर्थमें छ की इच्छा पर फिञ् का लुक् अलोपे **यास्कीयाः**। यदा फिञः न लुक् तदा **यास्कायनीयाः**। यास्कके पौत्र के छात्र। (८८) **तस्य**=सभी षष्ठयन्त का परिचायक है। स्वरूपका नहीं। षष्ठयन्त हो, आवश्यक होने पर सन्धि हुई हो, प्रथमात्=प्रथम उच्चारण हो, **तब** अपत्य अर्थमें **उक्ताः**=ण्य अण् और **वक्ष्यमाणाः**=अत इञ् आदि विशेष-प्रत्यय **विकल्प** से हो। सूत्रमें प्रत्ययः परश्च का अधिकार। तत्सर्वनाम बुद्धिस्थ विषयका सूचक है। सभी प्रत्यय परे हों। तद्धितमें किससे परे हो, **समर्थानां प्रथमात्**=सम्बद्ध एक अर्थ वक्ता प्रथम उच्चारित उपगु अश्वपति दक्ष आदिके षष्ठयन्त से हों। घकालतनेषु सूत्रमें तरतमप्परे सप्तमी का अलुक् विधानसे सुबन्तसे तद्धित होना ज्ञापित है। शब्द अर्थ जुड़कर एकपद एकार्थ एक सन्धि होना **कृतसन्धि कार्यत्वं सामर्थ्यं समर्थः पदविधिः**से विशिष्ट एकार्थ

'तस्येदमित्यपत्येऽपि बाधनार्थं कृतं भवेत्
उत्सर्गः शेष एवासौ वृद्धान्यस्य प्रयोजनम् ॥'

मान्य। सुबन्तसे तद्धितविधियाँ पदविधि है। यथा—उपगोः अपत्यं उपगु ऋषि की सन्तान। उपगुसे तस्यापत्यम् अण्। उपगु अ। तद्धितेष्वचमादेः सूत्रेण आदिवृद्धिः औपगुअ ओर्गुण उकारस्य गुणे, अवादेशे, अपत्यं प्रत्ययका अर्थ। स्वादिकार्ये। ननु उपगु अ इति स्थिते ओर्गुणः को परत्वाद्बाधकर अचोऽञ्णिति से वृद्धि हो। ओर्गुणः पाशव्यः में सफल है, यदि गुण, अव् आदेश होगा अत उपधायाः वृद्धि होगी, तब कहाकि, अन्त्य वृद्धि अचो ञ्णिति, अत उपधायाः वृद्धि दोनोमें आदिवृद्धि बाधती है। इसमें प्रमाण पुष्करसदः अपत्यं अनुशतिकादिगणमे पढ़ा गया है। दोनों पदकी आदिवृद्धि, यदि आदि वृदि अन्त्य और उपधादीर्घ को बाधति, तब आदिवृद्धि उपधा वृद्धिसे सिद्ध होती, अनुशतिकादिमें पुष्करसत का पाठ व्यर्थ होता है, सत्यपि सम्भवे बाधनं भवति।

श्लोकवातिक—**तस्येदमित्यपत्येपि**=प्रथम चरणका अर्थ। तस्येदं सूत्रसे अपत्यअर्थमें भी अण् होता ही, यतः इदंके अर्थमें सारा जगत, सन्तान अर्थ भी अतर्भूत है, तस्यापत्यं सूत्रसे अण् विधान व्यर्थ, प्रथम चरणसे शङ्का=तीन चरणसे समाधान, (यदि अत इञ् के लिए तस्यापत्यं सूत्र होता, तब तस्यापत्यमतइञ् ऐसा एकसूत्र पढ़ते, अलग पढ़ना व्यर्थहोता) उसकी सफलताके लिए बोले—**बाधनार्थं कृतं भवेत्** तस्येदं सूत्रके अण्को बाधकर वृद्धाच्छः से अपत्य अर्थमें छ प्राप्त था, उसको बाधनेके लिए तस्यापत्यं सूत्र अलग पढ़ा, इति सफलता। **पुनःशङ्का—**वृद्धाच्छः शेषः के अधिकार में है, जो चतुरर्थसे बाहर है। अपत्य अर्थ, शेषके अधिकार में नहीं आता, छप्रत्यय प्राप्त नहीं, उसको बाधनेके लिए तस्यापत्यं सूत्र अलग पढ़नाभी व्यर्थ है। तब सफलता बोले कि **उत्सर्गः शेष एवासौ**। उत्सर्गः शेष एव उत्सृज्यते अपवियुज्यते इति उत्सर्गः कर्मणि घञ्। अत इञ् और बाह्वादिभ्यश्च से जो अदन्त हो बह्वादिभिन्नप्रकृतिसम्बद्ध अपत्यार्थ हो वह शेष ही है। तस्यापत्यम् अत इ॰ **बाह्वादिप्रकृतिक संयुक्तः अपत्यार्थः शेष एव** इस प्रकार अपत्य अर्थ शेष है, विनियुक्तादन्यः शेषः। अदन्तसे विधान किया बाह्वादि, शिवादि आदि द्वारा अपत्य उक्त है, सामान्य प्रातिपदिकसे उक्त नहीं, अन्य अपत्य शेष है। अतः प्राप्त छ को बाधनेके लिए तस्यापत्यं सूत्र अलग आवश्यक। इञ् प्रत्ययका

योगविभागस्तु । भानोरपत्यं भानवः । कृतसन्धेः किं सौत्थितिः । अकृत व्यूहपरिभाषया सावुत्थितिर्मा भूत् । समर्थपरिभाषया नेह वस्त्रमुपगोरपत्यं चैत्रस्य । प्रथमात किम्, अपत्यवाचकात्षष्ठ्यर्थे मा भूत् । वाग्रहणाद्वाक्यमपि । 'दैवज्ञि' इति सूत्रा 'दन्यतरस्यां' ग्रहणानुवृत्तेः समासोऽपि । उग्वपत्यम् । जाति-

---

बाधक तस्यापत्यं सिद्ध हुआ । परन्तु प्रयोगमें उपगोः अपत्यंमें वृद्धसंज्ञा छ प्राप्त नहीं तस्यापत्यं क्यों बाधक बनेगा, तब बोले—**वृद्धान्यस्य प्रायोजनं** जहाँ कहीं वृद्ध संज्ञक हो वहांके लिए तस्यापत्यम् है । यथा मानोः अपत्यं **भानवः** यहां भानु वृद्धिसंज्ञक है, आदि अच आ होनेसे । ऐसे स्थलमें और नामको वृद्धसंज्ञा हुई हो, उनसे छ प्रत्यय बाधनेके लिए । तस्यापत्यं इस वार्तिकके प्रमाणसे भी इदमर्थमें अपत्य अर्थ गतार्थ है । प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली आर्षः । योगविभागका फल पूरा हुआ । **कृतसन्धि**=किया हुआ सन्धि कार्य हो या सुसंस्कृत हो ऐसा सूत्रमें क्यो ? क्योंकि सु **उत्थितः** में अन्तरङ्ग होनेसे, पहले सवर्णदीर्घ होगा ही, तभी तद्धितप्रत्यय होंगे । अधिकार सूत्रमें समर्थ एकार्थीभाव हुआ सन्धि क्यों पढ़ा, इसलिए कि अकृतव्यूह परिभाषा= **निमित्तं विनाशोन्मुखं दृष्ट्वा तत्प्रयुक्तं कार्यं न** कुर्वन्ति । वृद्धि होने पर दीर्घ का निमित्त उकार नष्ट होगा, अतः पहले आदि वृद्धि नहीं होगी । जब सूत्थित तस्यापत्यं (विकाश शीलकी सन्तान) अर्थमें अत इञ्, सुपः लुक् सुउत्थित इस **दशा में सवर्णदीर्घं बाधित्वा आदिवृद्धि, आव्** आदेशे **सावुत्थि-तिरनिष्टं स्यात् तन्मा** भवतु, अतः पहले दीर्घ है । अन्य कार्य वृद्धि बादमें हो सौत्थितिः बने । अन्तरङ्गपरिभाषाकी बाधिका अकृतव्यूह **परिभाषा** है । सन्धिके पहले प्रत्यय आयेगा तब दीर्घ नहीं होगा अन्तरङ्ग-त्वात् आदिवृद्धि होगी अतः कृतसन्धि पढ़ा । समर्थ परिभाषाके बलसे जहाँ परस्पर सम्बद्ध अर्थ हो एकीभूत हो, तभी तद्धित आये । **नेह**—यहाँ नहीं हुआ, **वस्त्रमुपगोः** (कपड़ा उपगुका) सन्तान चैत्रका । यहाँ **उपगुका** अपत्यसे सम्बन्ध नहीं, सामर्थ्य नहीं, एकार्थीभाव नहीं, प्रत्यय भी नहीं । **ऋद्धस्य** औपगवं में विशेषणवर्जनके लिए एकीभूतार्थ सामर्थ्य आवश्यक । यदि **परि-निष्ठितात् तद्धितोत्पत्तिः** तदा व्यर्थः समर्थः । **प्रथमात्**—प्रथम उच्चारित शब्दसे प्रत्यय हो ऐसा क्यों ? तस्यापत्यं में 'तस्य' प्रथम पढ़ा, वही प्रकृति होगी अपत्य नहीं । प्रकृतिसे षष्ठयन्त लिया ही जायगा प्रथमात् क्यों ? इसलिए कि अपत्यवाचक **शब्दसे** षष्ठी अर्थमें प्रत्यय न हो । जैसे—उपगुः

स्वाङ्गीप्। औपगवी। आश्वपतः। दैत्यः। स्त्रैणः। पौंस्नः। १०८९ अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् ४।१।१६१॥ अपत्यत्वेन विवक्षितं पौत्रादि गोत्रसञ्ज्ञं

अपत्यम् अस्य देवदत्तस्य, औपगवः देवदत्तः। ऐसा प्रयोग न हो। इन्द्रो देवता अस्य हविषः इति ऐन्द्रं हविः। प्रथमान्तसे प्रत्यय हुआ है। यहाँ ऐसा न हो, इसलिए प्रथमात् पढ़ा। अतएव तस्यापत्यं सूत्रमें प्रथम षष्ठयन्त उच्चारित है। उसीसे प्रत्यय होगा।

अपवाद तद्धित समासको नित्य बाधे। सूत्रमें वा पढ़नेसे वाक्य भी रहे। दक्षस्यापत्यं वाक्य भी रहा। दाक्षिः भी बनेगा, जब विकल्प नहीं होगा तब नित्य होनेसे वाक्य ठहरेगा नहीं। जब तद्धित नहीं, तब समास भी होता है दाक्ष्यपत्यम्, उपग्वपत्यं, तद्धित समासके बाधक हैं, परन्तु पक्षमें समास निर्बाध है तत्र, **अपवादेन मुक्ते उत्सर्गो न प्रवर्तते** समास नहीं होगा, तब बोले दैवज्ञीति 'सूत्रसे अन्यतरस्यां आता है, विकल्प से समास भी होता है। अपत्य अर्थमें अण् होनेपर 'गोत्रं च चरणैः सह' नियमसे शाखासे सम्बन्धित गोत्र भी जाति है। ङीष् हुआ **औपगवी**। अश्वपतेः अपत्यम् **आश्वपतः**। उत्तरपद पति मानकर प्राप्त ण्य को बाधकर अश्वपत्यादिसे अण्। दिते अपत्यं **दैत्यः**। अण् का बाधक ण्य हुआ। उत्सस्यापत्यं **औत्सः**, उत्सका लड़का, उत्सादिः अञ् अतः इञ् को बाधकर। औत्सः स्वरमें अन्तर। अथवा **उत्सः प्रस्रवणं वारि प्रवाहो निर्झरो झरः इत्यमरः**। झरना पसीजना प्रवाह, वेग इनके सन्तान कैसे? **गाङ्गेयोभीष्मः** गगां लड़कीका पुत्र स्त्रियाः अपत्यं, पुंसों अपत्यं अर्थमें अण्को बाधकर नञ् स्नञ्।

। ८९। **अपत्यम्** अपत्य अर्थके रूपमें जो पौत्र पुत्रस्यापत्यं प्रभृति इत्यादि प्रपौत्र आदि सबको गोत्रसंज्ञा हो। परन्तु सूत्रमें अपत्य पढ़ना व्यर्थः, पुत्र पौत्र प्रपौत्र सैकड़ों पीढी सभी अपत्य है अधिकार में है। तब बोले अपत्य-रूपमें इष्ट हो, तभी गोत्रसंज्ञा, जब पौत्रत्व या प्रपौत्रत्वरूपमें हो तब पौत्र आदिको गोत्रसंज्ञा नहीं। उपगोः अपत्यम् औपगवः यहां अपत्यत्व शक्यता-वच्छेदक है पौत्रत्व आदि नहीं, गोत्रके अधिकारमें स्थित यञ् इञ् अण् आदि अर्थ को ही गोत्र समझें **सन्ततिर्गोत्र–जननकुलान्यभिजनान्वयौ** इस कोशसे वंशमें पैदा हुआ, पुत्र भी गोत्रसंज्ञक होगा। परन्तु सूत्रमें पौत्र आदि पढ़नेसे पुत्रको गोत्रसंज्ञा नहीं होगी। पौत्र क्यों पढ़ा? कौञ्जिः गार्गिः पुत्रकों न यस्य पौत्रादिः तं प्रत्येव गोत्रसंज्ञा स्वीकारात्।

स्यात् १०९० **जीवति तु वंश्ये युवा** ४।१।१६३।। वंश्ये पित्रादौ जीवति पौत्रादेर्यदपत्यं चतुर्थादि तद्युवसञ्ज्ञमेव, न तु गोत्रसञ्ज्ञम्। ९१ **भ्रातरि च ज्यायसि** ४।१।१६४।। ज्येष्ठे भ्रातरि जीवति कनीयांश्चतुर्थादिर्युवसञ्ज्ञश्च

ननु **आत्मजस्तनयः सुनुः सुतः पुत्रः स्त्रियां त्वमी। आहुर्दुहितरं सर्वेऽपत्यंतोकं तयोः समे।** इस कोशसे भी अपत्य शब्द पुत्र अर्थमें रूढ़ है, पौत्र आदिको अपत्य कैसे ? तन्न, अपत्यः आत्मज आदिका पर्याय ही नहीं, किन्तु पुत्रपौत्रादि परम्पराका बोधक है। **न पतन्ति नरके पितरो येन तत् अपत्यं** जिनके पैदा होनेसे पितर नरकमें नहीं गिरते वह अपत्य है। पक्तिविंशति-भाष्ये पौत्र प्रपौत्र इत्यादि **दशपूर्वान्** पीढ़ीके पितामह आदिको नरकसे बचाते है, इस लक्षणसे पौत्र आदि भी सन्तान हैं **एको गोत्रे**-भाष्ये उसका दृष्टान्त महाभारत में जरत्कारूकी कहानीमें प्रसिद्ध। कोश उपेक्ष्य है सूत्र भाष्य विरुद्ध होने से।

। १०९० । **जीवति**= पितापितामह आदिकी उत्पादकपरम्पराका नाम वंश है, तत्र भवः वंश्यः उस परम्परामें जितने पैदा हो, दिगादि यत् वंश्ये पितापितामहकीपरम्परामें **पित्रादौ**=पितापितामह आदिके **जीवति**= जीवित रहनेपर **पौत्रादेः**=पोता आदिके जो अपत्य सन्तान चौथी पीढ़ी उसको युवसंज्ञा ही हो, गोत्रसंज्ञा न हों। पूर्वसूत्रसे पौत्रप्रभृतिः आया। षष्ठीरूप 'तस्यापत्यं से अपत्य आया। तु-का अवधारण एव निश्चयकरना अर्थ एक-संज्ञाके अधिकारसे बाहर होनेपर भी, एकही संज्ञा होगी, दोनों नहीं। यदि युवसंज्ञाके साथ गोत्रसंज्ञा भी करें, तब शालङ्काः पैलीयाः नहीं वनेंगें, शलङ्कोःगोत्रापत्यं **शालङ्कि** तस्यापत्यं **शालङ्कि** ही होगा। फक्--पैलादि लुक् पुनः सालङ्के. यूनः छात्राः शालङ्काः, पीलायाः अपत्यं पैलः, तस्य युवापत्यं **पैल** एव फिञ् तस्य, लुक्। पैलस्य यूनश्छात्राः **पैलीयाः** यदि दोनों संज्ञायें होती, फक् फिञ् का गोत्रमें अलुक् होता।

। ९१ । **भ्रातरि** अतिशयेन ज्येष्ठः ज्यायान् तस्मिन् **ज्यायसि** बडेभाईके जीवित रहनेपर छोटेभाईके कनीयान् अनुजः (**चौथीपीढ़ी को युवसंज्ञा हो।** इस सूत्रका आरम्भ बिना वंश परम्पराके लिए है। पुत्रपौत्रप्रपौत्रकी परम्परा वंश है, भाई उत्पादकप्रबन्धपरम्परामें नहीं आतः, भिन्न परम्परा होनेसे। पौत्र प्रभृतिआया। षष्ठीमें बदला। अपत्याधिकार **पौत्रादेः**=अपत्यंका फल-चतुर्थादिपीढ़ी। **मृतेषु पित्रादिषु जेष्ठेभ्रातरि जीवति** अनुजः युवसंज्ञकः पिता-

स्यात्। ६२ वान्यस्मिन्सपिणडे स्थविरतरे जीवति ४।१।१६५॥
भ्रातुरन्यस्मिन्सपिण्डे स्थवितरे जीवति पौत्रप्रभृतेरपत्यं जीवदेव युवसञ्ज्ञं वा स्यात्। एकं जीवतिग्रहणमपत्यस्य विशेषणम्। द्वितीपं सपिण्डस्य। तरब्निर्देश उभयोरुत्कर्षार्थः। स्थानेन वयसा चोत्कृष्टे पितृव्ये मातामहे भ्रातरि वा जीवति गार्ग्यस्यापत्यं गार्ग्यायणः—गार्ग्यौ वा। स्थविर=इति किं, स्थानवयो न्यूने गार्ग्य

पितामह मृत हों, बड़ा भाई जीता हो तब–

।६२। वाऽन्यस्मिन् अन्यस्मिन्सपिण्डे–वंश परम्परासे अन्य भाईवन्धु का कुल सपिण्ड सगोत्री=समान गोत्रवाले, घर गाँवके लोग। **सपिण्डास्तु**=स्वयं पिता पितामह प्रपितामह, उन लोगोके पिता पितामह प्रपितामह सात पुरुष सपिण्ड है। माताके वंशमें भी स्वयं माता मातामही प्रमातामही उनकी माताकी नानीकी परम्परा। सात पीढ़ीतक सपिण्ड धर्म शास्त्रमें मान्य। उनमें **स्थवितरे अतिशयेन स्थूलः स्थेष्ठः** है। अतिवृद्धः स्थविरतरः तस्मिन् अतिबूढ़ा के जीवति=जीते रहने पर, सबसे पुराने सपिण्डके भाईयोंसे अन्य गाँव घरके लोग हों, तब उनके **जीवित** रहते पौत्र प्रपौत्र आदि की सन्तान की युवसंज्ञा हो, विकल्पसे, दोनोंके जीवित रहते। इस सूत्रमें सगोत्री समानगोत्रवाले गाँवके लोगोंके लिये है। इसके पहले के सूत्रमें भाईयोंके लिये संज्ञा थी। **यो जीवति स युवसंज्ञकः। मृतस्तु स्थविरतरे जीवत्यपि गार्ग्य एव न तु गार्ग्यायणः**। एकं=इस सूत्रमें जो जीवति शब्द पढ़ा, वह तिङन्त है, अपत्य का विशेषण। द्वितीय आया हुआ जीवति–सपिण्डमें विशेषण, तरप्प्रत्यय का उच्चारण दोनोंके उत्कर्ष श्रेष्ठताका हेतु कारण है, उसी का विशेषण, सपिण्डका ऊँचा पद स्थान। अथवा वयसा–अवस्थासे उत्कृष्ट, बड़ा हो, जैसे स्थान पदमें बड़ा पितृव्य (पितुः भ्राता) चाचा जो पिता तुल्य है स्थानी है, अवस्थामें श्रेष्ठ मातामह नाना, अथवा बड़ा भाई या नानाके भाईके जीवित रहने पर युवसज्ञा। पितृव्यः पुत्र इति अन्ये। गार्ग्यस्यापत्यं गर्ग जी के चाचा सगोत्री नाना दादा की चौथी पीढ़ी वाली सन्तान युवसंज्ञाका फल फक् आयन है। पक्षमें गार्ग्य अर्थ वही होगा, **वृत्तौ तु** पितृव्ये पितामह भ्रातरि वा इति पाठः। सूत्रमें स्थविर क्यों पढ़ा? स्थान और अवस्थामें कम हो, तब युवसंज्ञा नहीं होती। गार्ग्य यही बनता है। फक् नहीं होता दो जीवतिशब्द पढ़ने का फल क्या है? जिन्दा रहने पर ही युवसंज्ञा, उसका फल फक् है। **मृते सपिण्डे**=समान गोत्रवाला मर गया हो, उसकी चौथी पीढ़ी गार्ग्य ही है।

एव। जीवति इति किं, मृते मृतो वा गार्ग्य एव।* 'वृद्धस्य च पूजायामिति वाच्यम्, गोत्रस्यैव वृद्धसञ्ज्ञा प्राचाम्। गोत्रस्य युवसञ्ज्ञा पूजायां गम्यमानायाम्। तत्र भवान् गार्ग्यायणः। पूजा इति किं गार्ग्यः। यूनश्च कुत्सायां गोत्रसञ्ज्ञेति वाच्यम्' गार्ग्यो जाल्मः। कुत्सा इति किम्। गार्ग्यायणः। ९३ एको गोत्रे ४।१।९३॥ गोत्रे एक एवापत्यप्रत्ययः स्यात्। उपगोर्गोत्रापत्यमौपगवः। गार्ग्यः नाडायनः।

चौथा अपत्य गार्ग्य ही होगा। फक् आयन नहीं होगें।

वृद्धश्च वार्तिक है वार्तिककारके मतमें गोत्रको वृद्धसंज्ञा होती है वही वृद्ध है ऐसा प्राचीन आचार्यका आचरण है उसका फल हुआ कि, गोत्रको युवसंज्ञा हो। जब पूजा आदर सम्मान अर्थ खुलता हो तब। यथा तत्र भवान् गार्ग्यायणः पूज्य आपसे, पूजा आदर स्वागत अर्थ खुल रहा है, वार्तिकसे गर्ग गोत्रके ही वृद्धको युवसंज्ञा। अल्प वयस्क, वृद्ध और सुखी होना पूजा है। **गोत्र प्रभृति तृतीयोऽपि तथा**। यहाँ का युवसंज्ञा स्वार्थमें पूजाका सूचक है। **युवनश्च** युवसंज्ञा को निन्दा अर्थमें गोत्रसंज्ञा हो, **गार्ग्यो जाल्मः**। वृद्धादीनां= सनातनका अपमानकर स्वेच्छा, मनमानी आचरण विषय है। कुत्सा अर्थमें गोत्रसंज्ञा गार्ग्यः। कुत्सा निन्दा क्यों? **गार्ग्यायणः** यहाँ गोत्रसंज्ञा नहो।

। ९३। **एकः संख्या** अर्थ, जाति अर्थमें एकवचन। गोत्र पौत्रादि अर्थमें प्रत्यय विधान करना हो तब। अपत्य का बोधक एक ही प्रत्यय हो, गोत्रापत्य अर्थमें। प्रथम शब्द ही प्रत्यय का लाभ करे। अनन्तरापत्य प्रत्ययान्तसे भी प्रत्यय हो, तब एक ही हो, चाहे सैंकड़ो पीढ़ीके हो। जैसे उपगोः उपगुसे गोत्रापत्य प्रपौत्र आदि अर्थमें तस्यापत्यं सूत्रसे अण् आदिवृद्धिः स्वादिकार्ये। एवं गर्गस्य गोत्रापत्यं प्रपौत्रादिः, गर्गादिभ्यो यञि **गार्ग्यः**। सैंकड़ों पीढ़ी तक यही रूप होगा। नियम सूत्र है चौथी पाँचवीं सैंकड़ों परम्परा तक एक ही प्रत्यय होगा। यञन्त से आगेकी पीढ़ी अर्थमें फक् नहीं होगा। गोत्रमें सैंकड़ो पीढ़ी अर्थके लिये एक ही त्यय का नियम है। **नाडायनः** नडस्य गोत्रापत्यं प्रपौत्रसे परम्परा है। नडादिसे फक् विधान हुआ, गोत्र अर्थमें एक ही प्रत्यय के नियम से अत इञ् नहीं लगा, किन्तु फक् नाडायनस्यापत्यं कहेगें तब भी फक् अन्तसे इञ् नहीं, एक प्रत्यय होनेके नियमसे। यदि नियम न होता तब पाँच दस बीस सौ पीढ़ी कहनी हो, तब प्रत्ययों की बड़ी संख्या बनेगी जो अनिष्ट होगा। उसपर नियन्त्रण के लिये **एको गोत्रे** सूत्र—

'गोत्रे स्वैकोनसङ्ख्यानां प्रत्ययानां परम्परा,
यद्वा स्वद्व्यूनसंख्येभ्योऽनिष्टोत्पत्तिः प्रसज्यते ॥
अपत्यं पितुरेव स्यात्ततः प्राचामपीति च ।
मतभेदेन तद्धान्यै सूत्रेनेतत्तथोत्तरम् ॥'

शङ्का—एकही गोत्रमें, एकसाथ अनेकप्रत्यय अनेक अर्थमें प्राप्त नहीं, 'एकोगोत्रे' नियमसूत्र व्यर्थ है, क्योंकि अपत्यशब्द पुत्र अर्थमें रूढ़ है। **आत्मजस्तनयः सुनुः सुतः पुत्रः स्त्रियां त्वमी** इत्यमरः। एकः पक्षः। दूसरे पक्षमें साधारण पुत्रपौत्रप्रपौत्र अपत्य, गोत्रापत्य, युवापत्य आदि सभी मान्य है। परन्तु मूल पुरुषसे सौ पीढ़ीके गोत्र तक **अष्टनवतेः** ९८ या ९९ प्रत्ययका विशाल स्कोर खड़ा हो। वहाँ नियम—गोत्रे एक एव प्रत्ययः मूल-प्रकृतिमें जो योग्य होगा, वहीं प्रत्यय होगा। **एके मुख्यान्य केवलाः। मुखेः भवः मुख्यः एको ऽन्यार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा।** गोत्र अर्थमें प्रथमशब्दसे ही प्रत्यय होगा, योग्यतानुसार। **गोत्रे स्वैकोन** इति। स्वं=गोत्रं मूलपुरुषः उपगु, गर्ग, दक्ष आदिकी अपेक्षासे, जिस संख्या की पीढ़ी दसवीं या सौवीं एकोन= एक कम संख्या रहेगी। जैसे तीसरीपीढ़ी है तब दो प्रत्यय। चौथीपीढ़ी तीन पांचवी पर चार, इस विशाल परम्परा सट जायेगी **औपगवः** नही सिद्ध होगा, फक् इञ, फक् इञ् अण् आदिकी भीड़ लग जायेगी।

यद्वा—अथवा स्वं=गोत्रं मूलपुरुष उपगु, गर्ग, आदिसे जितनी संख्या कहनी हो उनमें से द्व्यून दो कम संख्या सौवीं, पीढ़ी कहनी है तब ९८ प्रत्यय होंगें जो अनिष्ट है। इस अनिष्टकी उत्पत्ति में अथवा दो पक्ष होनेंमें कारण बोले—**अपत्यं पितुरेव स्यात्** पितासे ही अपत्य अर्थमें प्रत्यय स्वीकार पक्ष प्रथम है, उन्मिषति। ततः प्राचामपि=पिताकी अपेक्षा जो प्राचीन है पितामह प्रपितामह इत्यादि उनसे ही अपत्य अर्थ हों, परम्परा ली जाय। द्वितीयः पक्षः। **न पतन्ति पितरौ अनेन** विग्रहे पितरोंकी स्थिरतामें कारण अपत्य व्यापक है पितामह आदिके स्वर्गबास या पतनमें पौत्रादि भी कारण है। सात पूर्व या पर पीढ़ी प्रभावित। **यन्निमित्तं यस्य अपतनं तत्तस्य अपत्यं** जरत्कारू के उपाख्यानमें ब्यवहित संन्तान भी पितामह आदिका उद्धर्ता है। मतभेदकी **हान्यै--दोनों पक्षोंका विवरण पितुरेव अपत्यम्** पुत्र ही संतान है। इति प्रथमः पक्षः उन्मिषति खुलता है। पुत्र पौत्र प्रपौत्र आदि सभी अपत्य हैं द्वितीयपक्षः। मूलपुरुष उपगु, गार्ग्य, दक्ष आदिके तृतीय पौत्र वाच्य कहना

पितुरेवापत्यमिति पक्षे ह्युपगोस्तृतीये वाच्ये औपगवादिञ्स्यात्। चतुर्थे त्वजीवज्ज्येष्ठे मृतवंश्ये वा औपगवेः फक्। इत्थं फगिञोः परम्पराया मूलाच्छ-ततमे गोत्रे एकोनशतं प्रत्ययाः स्युः। पितामहादीनामपीति मुख्यपक्षे तु तृतीये वाच्ये उपगोरणा इष्टे सिद्धेऽप्यणन्तादिञपि स्यात्। ततश्चतुर्थे फगिति, फगिञोः परम्परायां शततमे गोत्रेऽष्टनवतेरनिष्टप्रत्ययाः स्युः। अतो नियमार्थमिदं सूत्रम्। एवमुत्तरसूत्रेऽप्युह्यम् १०९४ गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्। ४।१।४९।

हो, तब औपगवःसे इञ् उपगुके पुत्रका पुत्र इञ्का अर्थ तद्धितार्थ है । **चतुर्थे** प्रपौत्र–चौथीपीढ़ी अर्थ बोलना हो, औपगवेः अपत्यम् या उपगोः युवापत्यं उपगुकी चौथी पीढ़ी अर्थमें अजीवत्=**जीवन जेष्ठो यस्य** जेठ अग्रज जीवित न हों, मृतः **वंश्यो यस्य** जेठ भाई मृत हो, तव गोत्रसंज्ञा । यदि जेठ जीता होगा तब चतुर्थ प्रपौत्र अर्थमें भ्रातरि च ज्यायसि युवसंज्ञासे गोत्रसंज्ञाका बाध होगा । जीवति तु युवाके युवसंज्ञासे ही गोत्रका बाध होगा । इञ् होनेपर यञिञोश्चसे फक् होगा । **इत्थं** इस प्रकार फक् इञ्फक् इञ्को एक लम्बीं परम्परा बनेगी, मूलपुरुषसे सौ पीढ़ी कहनी है तब एकोनशतं= ९९ प्रत्यय अनिष्ट होंगे। यह प्रथमपक्षका दोषः। अब द्वितीया पक्षका अनिष्ट सुनिये । जब वंशके सभी प्राणि अपत्य है, इस पक्षमें पिता पितामह आदिका ग्रहण मुख्यपक्षः। **अपत्यं पौत्रप्रभृतिगोत्रं** सूत्रके रससे सिद्ध है। मुख्यपक्षमें तृतीये वाच्ये=तीसरी पीढ़ीकी अपत्य कहना हो, तब उपगुसे अण्, तस्या पत्यांसे निर्बाध है। यहाँ तीसरी पीढ़ी अपत्य है। इष्टसिद्धि होनेपर भी उस अणन्त औपगवः से अत इञ् (गोत्रापत्य अर्थमें) ततः इञ् अन्त **औपगविः से चौथी** पीढ़ी अर्थमें फक् होगा, पाचवीमें फिञ् छठीमें फक् इस प्रकार फक् इञ् फकइञ, की परम्परा लम्बीलाईन सौ तक पहुचनेपर गोत्र अर्थमें अष्टनवतेः=अट्ठानबे प्रकृतिसे उतने प्रत्यय अनिष्ट, इच्छाके विरुद्ध होगें इन दोनों पक्षों पर नियन्त्रणके लिए नियम सूत्र **एको गोत्रे** आवश्यक। प्रथम पक्षमें पिता वाचकसे ही प्रत्यय। मूलपुरुष अपगु, गर्ग, से नहीं। अनन्तरापत्य प्रपौत्र या पितामह से मुख्यपक्षमें चरितार्थ अण् आदि गौण सम्बन्धमें भी लगेगे। इस प्रकार विध्यर्थ कह सकते है। तथापि गर्गसे गोत्र अर्थमें यञ् होनेपर गार्ग्यकी सिद्धिसे उक्त परम्परा चल पड़ेगी, उत्तरसूत्रे=अगले नियम सूत्रोंमें अट्ठानवे, निन्यानवे, प्रत्यय अशिष्टसे लगेगें, उनपर भी नियन्त्रण मान्य।

यून्यपत्ये गोत्रप्रत्ययान्तादेवापत्यप्रत्ययः स्यात्, स्त्रियां तु न युवसञ्ज्ञा। गर्गस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः। स्त्रिया गोत्रत्वादेक एव प्रत्ययः। १०९५ अत इञ् ४।१।९५॥ अदन्तं यत्प्रातिपदिकं तत्प्रकृतिकात्षष्ठ्यन्तादिञ्स्यादपत्येऽर्थे।

।९४। गोत्रसंज्ञक प्रत्ययान्तसे ही प्रत्यय हों। यूनि=युवसंज्ञक प्रत्यय होनेपर ही हो, स्त्री० अर्थ होता हो तब। युवसंज्ञा नहीं होती। गर्गस्य गोत्रं गार्ग्यः पौत्र, तीसरी पीढ़ी, गोत्र अर्थमें यञ्, गर्गस्य पञ्चमः, युवापत्यं बोध करना हो गोत्रप्रत्ययान्त गार्ग्यसे फक् गार्ग्यायणः। रूपसिद्धः। युवापत्य अर्थमें छठीं या सातवीं पीढ़ी सबमें गार्ग्यायणः यही होगा। मूलपुरुष प्रकृति बनेगा तब अनन्तरापत्य पहली पीढ़ीके अपत्यसे और युवप्रत्ययान्तसे ही प्रत्यय होगें। पुत्रपौत्रादि साधारण अपत्य भाष्यमें प्रसिद्ध।

स्त्रीलिङ्गमें युवसंज्ञा नहीं होती। सूत्रके 'अस्त्रियां' योगका विभाग करते हैं। उसमें यूनि आया। दोनों प्रथमा। **स्त्रीभिन्ने यूनि गोत्रादेव** अथवा स्त्री० उक्ता युवसंज्ञिका न। गर्गस्य **पञ्चमादौ** यूनि पाँचवीं पीढ़ीके गार्ग्यसे गोत्र अर्थमें फक् **गार्ग्यायणः**। स्त्री अर्थमें युवसंज्ञाके निषेधका फल बोले—पाँचवीं पीढ़ीको युवतिकी युवसंज्ञा नहीं होगी, तब **गोत्रत्वात्**=एकोगोत्रे सूत्रके नियमसे एकही प्रत्यय होगा। गार्गी एकरूप। गार्ग्यायाणि नहीं। यदि स्त्रीभिन्ने गोत्रादेव अर्थ हों, तब युवसंज्ञासे गौत्रसंज्ञाका बाध होगा। एको गोत्रेसे प्रत्ययकी माला रुकेगी।

।१०९५। **अत इञ्** अकार अन्तमें हो ऐसा जो प्रातिपदिक, प्रकृति षष्ठ्यन्तसे अपत्य अर्थमें इञ् प्रत्यय हो। प्रातिपदिक अधिकारसे आया। अतमें विशेषण। तस्यापत्यं, समर्थानां प्रथमाद्वा, प्रथम उच्चारित शाब्दबोधित एकार्थीभावसे सम्पन्न प्रातिपदिकसे कार्य हो, षष्ठ्यन्त दशामें जो प्रातिपदिक षष्ठ्यन्त की प्रकृति हो। अतः कहा **तत्प्रकृतिकषष्ठ्यन्तात्**। 'घकालतनेषु'के ज्ञापनसे सुबन्तात्तद्धितस्य उत्पत्ति, स्वीकार पर भी। अधिकृत प्रातिपदिक का प्रयोजन बोले—वह प्रातिपदिक अकारान्त हो उ, इ आदि, अन्तमें नहीं। यदि सुबन्त अकारान्त कहते, तब दक्षस्य शब्द सुबन्त है अकारान्तभी है परन्तु दक्षयोः अपत्यं, दक्षाणाम्, यहाँ सुबन्त है अदन्त नहीं, इञ् नहीं हो पायेगा। तपर क्यों पढ़ा? विश्वपः अपत्यं **वैश्वपः** संसार रक्षक की सन्तान। यहाँ आ अन्त है। **दक्षस्यापत्यं** विग्रहे अत इञ्। अनुबन्ध लोपे समासत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां स्वादि। दाक्षिः। आदिवृद्धिः, यस्येति अकारलोपे। प्रदीयतां दाश-

दाक्षिः। ९६ बाह्वादिभ्यश्च ४।१।९६।। बाहविः। औडुलोमिः। आकृतिगणोऽयम्। ९७ सुधातुरकङ् च ४।१।९७। चादिञ्। सुधातुरपत्यं सौधातकिः। '* व्यासवरुडनिषादचण्डालबिम्बानां चेति वक्तव्यम्'। ९८ न

रथाय मैथली कैसे ? दशरथस्यापत्यम् अत इञ् दाशरथिः क्यों नहीं, ऋषिणा प्रोक्तः आर्षः होनेसे या तस्येदंकी कृपासे।

। ९६। बाह्वादिगणमें पठित शब्दसे सन्तान अर्थमें इञ् हो, बाहु किसी ऋषिका नाम, ऋषयः के अधिकारमें आश्वलायनसूत्र (जानन्ति बाहवि गार्ग गौतमौ) प्रमाणसे बाहोरपत्य सन्तान अर्थमें इञ्। उकारस्य गुणे अव् स्वादिः वाहविः, उडुलोम्नो अपत्यं चमकीले रोमवालेकी सन्तान, गण पाठसे इञ् उडुलोमन् इ ! नस्तद्धिते टिलोप, आदिवृद्धि। अदन्त नहीं अतः सूत्रम्। यह गण आकृतिसे अनुमेय है। यद्यपि गणमें बाहु कृष्ण युधिष्ठिर अर्जुन प्रद्युम्न आदि अनेक है। यहाँ लोमन् शब्द पढ़ा तथापि सामर्थ्यसे तदन्त। तारकापि उडु वा स्त्रियाम् इस अमर प्रमाणसे उडूनि नक्षत्राणि इव लोमानि यस्य, तस्यापत्यं औडुलोमिः। शरा इव लोमानि यस्य शारलोमिः। बहुवचनमें इञ् को बाधकर अकार, तब उडुलोमाः शरलोमाः। पुराणप्रसिद्ध संज्ञाशब्द शीघ्र उपस्थित है। आधुनिक जो बाहु है उनसे अण् वाहवः। हरिने कहा भी है। अभिव्यक्तपदार्थाः ये, स्वतन्त्राः लोक विश्रुता। शास्त्रर्थस्तेषु कर्तव्यः, शब्देषु न तदुक्ति। इससे तीन लाभ शास्त्रार्थके लिए पदार्थ खुला हुआ हो, अनर्थक नहो, लोकमें प्रसिद्ध विश्वस्त हो संदिग्ध नहीं, प्रयुक्त हो अप्रयुक्त नहीं। इतनाध्यान देकर शास्त्रार्थ करना चाहिए। तदुक्तिषु=उसके समान उक्ति हो तब भी नहीं, अतएव श्वशुरस्यापत्यं श्वाशुरिःमें यत् नहीं, सदृस होनेसे। मिमीते पालयति माता तस्याः स्वसा भगिनी मातृस्वसा—मौसी, अत्र षत्वं न।

। ९७। सुधातु शब्दसे षष्ठयन्त होनेपर अपत्य अर्थमें इञ् हो। प्रकृतके अन्तको अकङ् हो। ङ् इत्, अन्त आदेश शोभनं धातुः सुधाता तस्य अपत्यं इञ् अकङ्, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि, सौधातकिः। च से इञ् आया। इस प्रसङ्गमें व्यास वरुड निषाद चण्डाल विम्ब इनसे इञ् कहें। प्रकृतिके अकङ् अन्त आदेश हो (९८) न य्वाभ्यां-य और व पदान्त हों, उससे परे वृद्धि नहीं होती। यवभ्यां=यव से पूर्वमें क्रमसे ऐच् आगम हो, य से पूर्व ऐ, व से पूर्व औ, हो। य् च वश्च य्वोः अकार उच्चारणार्थः। परका आध्याहार, मृजेर्वृद्धिःसे वृद्धिका

य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् ७।३।३ पदान्ताभ्यां यकारवकाराभ्यां परस्य न वृद्धिः। किं तु ताभ्यां पूर्वौ क्रमादैचावागमौ स्तः। वैयासकिः। वारुडकिः इत्यादि। १०९९ **गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्चफञ् ४।१।९८।** ११०० **व्रातचफञोरस्त्रियाम् ५।३।११३।** व्रातवाचिभ्यः चफञन्तेभ्यश्च स्वार्थे ञ्यः स्यात् न तु स्त्रियां। कौञ्जायन्यः। बहुत्वे तद्राजत्वाल्लुग्वक्ष्यते।

आगमन। तु शब्द किन्तु अर्थमें। पूर्वका अवयव कहनेसे आगम स्पष्ट। ऐच्-प्रत्याहारः ऐ औ। **य्वाभ्यां क्यों पढ़ा** ? जहाँ का य व पदान्त नहीं, वहाँ ऐच् न हो, यथा न अर्थो यस्य स, नार्थः निर्धनः। तस्य संतानः नार्थिः यहाँ ऐच् नहीं हुआ। पदान्त क्यों कहा ? यज्ञे भवः याज्ञिकः। यज्ञमें दीक्षित, ऐच् नहीं हुआ, पदान्त य न होनेसे। ऐच् का विषय खोलनेके लिए निषेधक (न) पढ़ा। इसलिये= दध्यश्वस्य अपत्यं, माध्वश्विः, यहाँ य व से परे वृद्धि प्राप्त नहीं, अतः ऐच् नहीं। कहीं वृद्धि सम्भव, तथापि ऐच् न, द्वे अशीती भृतो, भूतो भावी वा द्वयाशीतिकः।

वैयासकिः वेदान्व्यस्यति बिविधं अस्यति नाना प्रकारेण भेदेन शाखां विभजति, **वेदव्यासः** वेदकी शाखाओं का विभाग कर्ता। कर्ममें नाम का एकदेश। व्यासस्य अपत्यं विग्रहे सन्तान अर्थे अत इञ्प्रत्यये। प्रकृतिके अन्त्य अल् वर्ण को, अकङ् आदेश, व्यासक इ। वि आस् दशामें वि के इको यण् जो पदान्त है, उस य से परे आ को जलवर्षणन्यायेन आदिवृद्धि प्राप्त, उसका निषेध। और य से पूर्व ऐ—आगम स्वादिः **वैयासकिः**। शोभन अश्वो यस्य स **स्वश्वः** तस्य अपत्यं सुन्दर घोड़ेवालेकी सन्तान, इञ होने पर प्राप्त आदिवृद्धिका निषेध, व से पूर्व औ आगम। **बरुड** आदि जाति अर्थमे है, वरुडस्यापत्यं **बारुडकिः**, वरुडसे अकङ् इञ्। निषादस्यापत्यं **नैषादकिः** मल्लाह जाति की सन्तान, निषादसे अकङ इञ्। चण्डालस्यापत्यं **चाण्डालकिः**। विम्बायाः अपत्यं **बैम्बकि**(९९) **गोत्रे** अर्थ मे, कुञ्जादिगण मे पढे शब्दो से चफञ् हो इ को बाधकर। च इत्। फ—शेष। ११०० **व्रात** [संस्कारहीन] वाची शब्दसे और चफञ् अन्त मे हो उनसे स्वार्थ-निजी, प्रकृति अर्थ मे ञ्यप्रत्यय हो किन्तु स्त्रीलिङ्ग मे नही। **पूगाञ्ञ्यः** से ञ्य आया। **कपोतपाक्यः**। व्रात का उदाहरण कहेगे। अस्त्रियां पढने से कपोतान् पाचयति कपोतपाका, तस्यापत्यं स्त्री अर्थ रहने पर ञ्य नहीं हुआ, जो स्त्राधिक मे परिगणित है। **कौञ्जायन्यः** कुञ्जस्य गोत्रापत्यं [वंश मे उत्पन्न] विग्रहे गोत्रे कुञ्जादिभ्यः चफञ्। अनुबन्ध

ब्राध्नायन्यः। स्त्रियां कौञ्जयनी। गोत्रत्वेन जातित्वाद् ङीप्। अनन्तरापत्ये कौञ्जिः। ०१ नडादिभ्यः फक् ४।१।९९। गोत्र इत्येव। नाडायनः। चारायणः। अनन्तरो नाडिः। ०२ हरितादिभ्योऽञः ४।१।१००। एभ्यो-ऽन्तेभ्यो यूनि फक्। हारितायनः। इह गोत्राधिकारेऽपि सामर्थ्याद्यून्ययम्। नहि गोत्रादपरो गोत्रप्रत्ययः। विदान्तर्गणो हरितादिः। ०३ यञिञोश्च ४।१।१०१। गोत्रे यौ यञिञौ तदन्तात्फक्स्यात्। 'अनाति' इत्युक्तेः 'आपत्यस्य'

लोपे, फ को आयन आदिः वृद्धि कौञ्जायनसे स्वार्थे ञ्य इति। ञइत्, यस्येति अलोप। तद्राजसंज्ञा हुई हो, तब बहुवचन मे लुक्। तद्राजस्य बहुषु- सूत्रसे लुक् कहेगे। ब्राध्नायन्यः ब्रध्नस्य गोत्रापत्यं [नातीपोता आदि)च्फञ् फको आयन , ञ्य स्वादिः। स्त्रीलिङ्ग मे ञ्य नही होता। यथा कुञ्जस्यापत्यं स्त्री कौञ्जायनी, फको आयन होने पर अदन्त रहा, टाप क्यो नही हुआ, तब बोलें गोत्रत्वेन चरणैःसह गोत्रजातिः मानकर ङीष हुआ। ञ्य होता योपध (य उपधा मे) मानकर ङीष का अभाव हो जाता। च्फञ्प्रसङ्ग मे गोत्रपढने का क्या फल ? अनन्तरापत्य पुत्र अर्थ मे अत इञ् हो, कौञ्जिः बने इसलिये।

११०१। नडादिभ्यः नड आदि गणमें पढ़े शब्दोंसे गोत्र अर्थमें ही फक् हो, इञ्को बाधकर। नडस्य गोत्रापत्यं नाडायनः। अतः इञ्को बाधकर फक्। चरस्य गोत्रापत्यं चारायणः, चरशब्दात्फक्—आयन, इञको बाधकर, अनन्तारापत्य (पुत्र) अर्थ हो, गोत्र न हो, तब इञ् नाडिः नडकी सन्तान (२) हरित आदि गणमें पठित शब्द, अञ् अन्त हो, उनसे युवप्रत्ययान्त फक् हो। हरितस्य युवापत्यं हरितायनः हरितस्य युवापत्यं हारितः उससे युव (चौथी पीढ़ी) अर्थमें फक् आयन आदि। यहां पर गोत्रके अधिकारमें भी इस सूत्रके, सामर्थ्यसे युव अर्थमें फक् मान्य। क्योंकि गोत्रसे दूसरागोत्र प्रत्यय नहीं होता। विदादिगणके भीतर हरितादि पढ़े गये है उनसे गोत्रअर्थमें प्रत्यय होता ही है।

३। यञ् इञ् प्रत्यय गोत्र अर्थमें हुए हों, तदन्तात्=वे अन्तमें हो उससे फक् हो। गोत्रका अधिकार है इस सूत्रमें भी सामर्थ्यसे युव अर्थमें फक् होगा। गोत्रसे गोत्रप्रत्यय नहीं होता, एकोगोत्रे सूत्र के नियमसे। गोत्र क्यों पढ़ा? द्वीपे भवः द्वैप्यः। द्वीपादनुसमुद्रंसे यञ् भव अर्थमें है, गोत्रमें नहीं। सुतङ्गमस्य अदूरभवः इञ् सौतङ्गमिः तस्यापत्यम् अर्थमें फक् न हो। यथा गर्गस्य गोत्रं गार्ग्यः यञ् गार्ग्यस्यापत्यं युवा अर्थमें फक् आयन णत्व गार्ग्यायणः। आपत्यस्य च से यलोप नहीं होता, इसमें अनाति पढ़ा है। आकारपरे यलोपो

चेति यलोपो न। गार्ग्यायणः। दाक्षायणः। ०४ शारद्वच्छुनकदर्भाद्भृगुवत्साग्रायणेषु ४।१।१०२। गोत्रे फक्। अञिञोरपवादः। आद्यौ विदादी। शारद्वतायनो भार्गवश्चेत्, शारद्वतोऽन्यः। शौनकायनो वात्स्यश्चेत्, शौनकोऽन्यः दार्भायणः आग्रायणश्चेत्, दार्भिरन्यः। ११०५ द्रोणपर्वतजीवन्तादन्यतरस्याम् ४।१।१०३। ॥ एभ्यो गोत्रे फग्वा। द्रोणायनः–द्रौणिः। पार्वतायनः पार्वतिः, जैवन्तायनः जैवन्तिः अनादिरिह द्रोणः। अश्वत्थाम्न्यनन्तरे तूपचारात् ११०६ अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ् ४।१।१०४॥ एभ्योऽञ् गोत्रे, ये

न, उसका अर्थ है। दक्षस्य गोत्रं दाक्षिः पौत्र। अत इञ्, दाक्षेः अपत्यं युवा दाक्षायणः प्रपौत्र, दाक्षि शब्दसे फक् आयन आदि।

।४। शरद्वत् शुनक और दर्भसे गोत्र अर्थमें फक् हो, यदि भृगु वत्स आग्रायण अर्थ निकलता हो। अञ् इञ् को बाँधकर। आदि-दो शब्दके विषयमें विदादि अञ् प्राप्त था, उसे बाँधकर फक्। शरद्वतोऽपत्यं शारद्वतायनः अञ् को बाँधकर फक् आयन। भृगुः यद्यपि सन्तान नहीं हो सकते, पहले पैदा होनेसे परन्तु भृगुत्व का आरोप करके सन्तान अर्थ बनेगा। इसी प्रकार वत्सभी शुनक ऋषिके सन्तान नहीं हो सकते, पूर्वमें पैदा होनेसे। अतः शुनककी सन्तान अर्थ में वत्सका आरोप। ऋषि अर्थ न हो तब शारद्वतः अञ् होगा वत्स अर्थ न हो, तब, अञ् शौनकः। शुनक ऋषि की सन्तान। दर्भः ऋषिः तस्य वंशः अर्थमें ऋष्यन्धक सूत्रके अण् को बाँधकर, बाह्वादि इञ् प्राप्त। किन्तु अग्रोनाम कश्चिद् ऋषिः नडादि फक् आग्रायण अर्थ होता हो, तब इञ् को बाँधकर फक् आयन् दार्भायणः। अन्य अर्थ होने पर इञ् ही रहेगा दार्भिः।

।११०५। द्रोण पर्वत और जीवन्त शब्दसे गोत्र अर्थमें फक् हो विकल्पसे, द्रोणस्य अपत्यं द्रौणिः तस्य गोत्रापत्यं अर्थमें, द्रौणिसे फक् (इञ्को बाँधकर) आयन द्रौणायनः, यदा न फक् तदा इञ् द्रौणिः। पर्वतस्यापत्यं पार्वतिः तस्यापत्यं पार्वतायनः इञ् को फक् आयन। यदा न फक् तदा इञ्। जीवन्तस्यापत्यं जैवन्तायनः जीवन्तस्यगोत्रापत्यं फक् आयन। ऋषिका नाम है। विशेष विचार अश्वत्थामाके पिता केरल देशके महाभारतमें प्रसिद्ध है, उनसे भिन्न कोइ अनादिकालिक जिनके जन्म का आदि पता नही वह अनादि प्रसिद्ध द्रोण है, द्रोणाचार्य नहीं। द्रोणाचार्यके अनन्तरापत्य अश्वत्थामामें द्रौणायन का प्रयोग लाक्षणिक है (६) अनृषि – लुप्ता पञ्चमी। विदादिके अञ्का दो उच्चारण। एक का अनृष्यानन्तर्य–विदादिभ्यो अञ् एक वाक्य। विदादिभ्योऽञ्

त्वात्रानृषय:(पुत्रादय:)तेभ्य: अनन्तरे । सूत्रे स्वार्थे यञ् । बिदस्य गोत्रापत्यं बैदः अनन्तरो बैदिः । बाह्वादेराकृतिगणत्वादिञ् । पुत्रस्यापत्यं पौत्रः । दौहित्रः

११०७ गर्गादिभ्यो यञ् ४।१।१०५ ॥ गोत्रे इत्येव । गार्ग्य: वात्स्य: ।

११०८ यञञोश्च २।४।६४। ॥ गोत्रे यद्यञन्तमञन्तं च तदवयवयोरेतयोर्लुक्स्यात्तत्कृते बहुत्वे न तु स्त्रियाम् । गर्गाः । वत्साः बिदाः, उर्वाः । तत्कृते इति

दूसरा वाक्य । गोत्रकी विवक्षामें विदादिगणपठित शब्दसे अञ् हो । प्रथम वाक्यके पूरे सूत्रका अर्थ । जो ऋषि नहीं है ऐसे विदादिगणमें पढे हुएसे अनन्तरापत्य पुत्र अर्थमें अञ् हो । जो ऋषि हैं उनसे गोत्र अर्थमें अञ् हो । सूत्रसे स्वार्थे ष्यञ् । अनन्तर शब्दसे चतुर्वर्णमें आनेसे, विद ऋषिसे गोत्र परम्परा अर्थ बोधक अञ् हो । गोत्रमात्र अर्थमें ऋष्यन्धकके अण् को बाधकर । स्वरमें अन्तर । यदि अनन्तरापत्य हो तब अञ् न होने पर इञ् को बाँधकर अण् उचित था । **बैदिः** में इञ् कैसे ? तब बोले बाह्वादिगणके आकृतिगण होनेसे । **विदपूर्व** कश्यप कुशिक भरद्वाज उपमन्यु विश्वानर आदिसे आकृतिगणमानकर इञ् होगा । पुत्रकी सन्तानको पौत्र कहते है । दुहितुः अपत्यं **दौहित्रः** अनन्तरापत्य विग्रह यथायोग्य अण् । इञ् को बाँधकर ।

। ७ । **गर्ग वत्स** व्याघ्रपाद पुलस्ति बभ्रु, मण्डु, वतण्ड, कपि, कत, शकल, कण्व, अगस्ति, कुण्डिन्, याज्ञवल्क्य, पराशर यमदग्नि आदि से गोत्र अर्थमें ही यञ् हो । **रामो जामदग्न्य:, पाराशर्यो व्यास:**, यमदग्नि का अनन्तर पुत्र परशुराम, पराशर का ही पुत्र व्यास, इन दोनों में यञ् कैसे ? गोत्रत्वके आरोपसे । गर्गस्य गोत्रापत्यं **गार्ग्य:** गर्गका पोता, वत्सस्य गोत्रापत्यं, वत्सका पौत्र **वात्स्य:** यञ् स्वादिः ।

। ८ । **यञ्** गोत्र अर्थमें यञ् और अञ् हुआ हो वे अन्तमें हों, ऐसे शब्दके अवयव अंश यञ् अञ्का लुक् हो । **तत्कृते**=तयो: कृत: यञ् अञ् प्रत्ययके अर्थमें बहुवचन भरा हो, वह गोत्र स्त्री अर्थमें न हो तब दूसरे चौथेपादमें यह सूत्र है । चातुरर्थिक नहीं । **बहुषु तेनैवास्त्रियां**, ण्यक्षत्रिजसे लुक्, यस्कादिभ्य: से गोत्र आया, **गर्गाः** । गर्गस्य अपत्यानि बहुत सी सन्तान बहुतसे बच्चे । गर्गादिभ्यो यञ् में बहुत संख्या और गोत्र दोनों अर्थ भरा है, गार्ग्य: गार्ग्यौ गर्गाः बहुवचनमें गार्ग्य जस् । यञिञोश्चसे गोत्र अर्थ और बहुवचन रहते लुक् हुआ निमित्ताऽपाये नैमित्तिकस्य अपाय: । कारण हटने पर कार्य वृद्धि समाप्त । वत्सस्य अपत्यानि **वत्साः** बहुवचन यञ्का लुक् । वत्सगोत्रिय

किं, प्रियगार्ग्याः । स्त्रियां तु गार्ग्यस्त्रियः । गोत्रे किं । द्वैप्याः । औत्साः । प्रवराध्यायप्रसिद्धमिह गोत्रम् । तेनेह न । पौत्राः । दौहित्राः । ११०९ **मधुबभ्रोर्ब्राह्मणकौशिकयोः** ४।१।१०६ ॥ गोत्रे यञ्। माधव्यो ब्राह्मणः । माधवोऽन्यः । बाभ्रव्यः कौशिक ऋषिः । बाभ्रवोऽन्यः बभ्रूशब्दस्य गर्गादिपाठात्सिद्धेऽपि निय-

---

वहुत संन्तान, यञ का लुक् । वैदः वैदौ **विदाः** विदस्य अपत्यानि बहुत बच्चे । गोत्र अर्थमें हुये अञ का लुक् । उर्वः उर्वौ **उर्वाः** अनेक संन्तान, अर्थे लुक् । तत्कृते किं=यञ् अञ्के गोत्र अर्थमें बहुवचन हो ऐसा क्यों पढ़ा ? प्रियः गार्ग्यो येषां प्रियगार्ग्याः प्रिय है गर्गगोत्रके लोग जिन लोगोंको । यहाँ अन्य-पदार्थ येषांमें बहुवचन है । अतः लुक् नहीं हुआ स्त्रीलिङ्गमें लुक् न हो ऐसा क्यों ? गार्गी गार्ग्यौ **गार्ग्यः**, स्त्रियां यहाँ य का लुक् न हो । गोत्र क्यों कहा ? द्वीपे भवाः द्वैप्याः मानवाः । द्वीपसे समुद्रतक अर्थमें यञ्, यहाँ भव अर्थ है गोत्र नहीं । उत्से भवाः **औत्साः** उत्सादि-अञ् भव अर्थमें, गोत्रमें नहीं है । अतः यञ् अञ्का लुक् नहीं । अत्र शङ्का—पुत्रस्य अपत्यानि **पौत्राः** दुहितुः अपत्यानि **दौहित्राः** (बहुत पोता नाती) विदादिलक्षण अञ्का भी लुक् हो जाय, वंश परम्परा होनेसे । न कहिये कि अनन्तरापत्य-दूसरीपीढ़ी है । तीसरीसे गोत्रमान्य तत्र, **अपत्याधिकारादन्यत्र लौकिकमेव गोत्रं गृह्यते** सिद्धान्त है तब बोले प्रवराध्यायमें प्रसिद्ध गोत्र यहाँ लेना चाहिये । जैसे

"कश्यपोऽत्रिर्भरद्वाजो विश्वमित्रोऽथगौतमः
जमदग्निर्वशिष्ठश्च सप्तर्तै ऋषयः स्मृताः"

एतेषां यदपत्यं तद् गोत्रं इनकी सन्तन गोत्र है बोधायनीयादिके प्रवराध्यायमें प्रसिद्ध भार्गवादि ही यहाँ गोत्र पदसे इष्ट है । वह अर्थ पुत्र पौत्रादि में नहीं है, अञ्का न लुक् ।

। ९ । **मधु** और **बभ्रू** शब्दसे गोत्र अर्थमें यञ् हो, क्रमसे, ब्राह्मण और कौशिक अर्थ निकलने पर । मधोः गोत्रापत्यं, वंश परम्पराकी संन्तान ब्रह्मण हो, तब मधुसे यञ् आदिवृद्धिः, ओर्गुणे यकारादिप्रत्यय परे अव् आदेशे । यदि ब्राह्मण अर्थ न हो, । यञ् नही होता, तब अञ् होगा, **माधवः** बभ्रोर्गोत्रापत्यं वंशकी संन्तान कौशिक ऋषि हों, तब यञ् **बाभ्रव्यः** । बभ्रू शब्द गर्गादिपाठसे प्रसन्न रहेगा । यहांका पाठ, नियमादि=नियमार्थक है । गर्गादिमें पढ़े हुएको, लोहितादि कार्य हों , ष्फ आदि षित्के सामर्थ्य से ङीष् भी हो, **बाभ्रव्यः** से सर्वत्र लोहितादि ष्फ— आयन ङीष् **बाभ्रव्यायणी**

मार्थमिदम्। गर्गादिपाठफलंतु लोहितादिकार्यं, बाभ्रव्यायणी **१११० कपिबोधादाङ्गिरसे** ४।१।१०७॥ गोत्रे यञ्स्यात्। काप्यः बौध्यः। अनाङ्गिरसे किं कपेयः बौधिः **१११ वतण्डाच्च** ४। १। १०८॥ आङ्गिरसे इत्येव। वातण्ड्यः। अनाङ्गिरसे तु गर्गादौ शिवादौ च पाठाद्यञणौ। वातण्ड्यः, वातण्डः। **१११२ लुक्स्त्रियाम्** ४।१।१०९॥ 'वतण्डाच्च' इति विहितस्य लुक्स्यात्स्त्रियाम्। शार्ङ्गरवादित्वान्ङीन्। वतण्डी। अनाङ्गिरसे तु वातण्ड्यायनी, लोहितादित्वात्ष्फः। अणि तु वातण्डी ऋषित्वाद्वक्ष्यमाणः ष्यङ् न **१११३ अश्वादिभ्यः फञ्** ४।१।११०। ॥गोत्रे—आश्वायनः। 'पुंसि जाते' पुंसीति तु प्रकृतिविशेषणम्। जातस्य गोत्रापत्यं जातायनः। पुंसि इति किं, । जाताया अप-

---

। १११० । कपि और बोध शब्दसे यञ् हो अङ्गिराका गोत्र जान पड़ने पर। कपेः अपत्यं आङ्गिरसः, कपिसे यञ् वृद्धि इलोप। बोधस्या अपत्यं आङ्गिरसः बोधसे यञ् आदिवृद्धि अलोप। अङ्गिरस क्यों पढ़ा ? कपेः अपत्यं जो आङ्गिरस नहीं है वहाँ यञ् न हो, किन्तु इतश्चानिञः से ढक्। बोधस्य अपत्यं कोई भी हो, तब बाह्वादि इञ् होगा यञ् नहीं। गर्गादिसे सिद्ध था, आङ्गिरस्य एव नियमार्थ है। गर्गादिमें पाठ लोहितादि ष्फके लिए **काप्यायनिः**।

। ११ । वतण्डसे अङ्गिरावंशमें ही यञ् हो। वतण्डस्य अपत्यं अङ्गिराकी सन्तान अर्थमें यञ् आदि। **अनाङ्गिरसे**=वतण्डसे गर्गादि और शिवादिगणमें यञ् अण् दोनों प्राप्त थे। अङ्गिरा वंश अर्थमें यञ् ही हो, इस नियमके लिए । १२। लुक् वतण्डसे विधान किया गया यञ्का लुक् हो, स्त्री अर्थमें वातण्डस्य गोत्राऽपत्यं स्त्री आङ्गिरिसी यञ् हुआ उसका लुक्, तब ङीष् **वतण्डी**। अङ्गिरागोत्रकी स्त्री। अङ्गिरा गोत्र न हो तब **वातड्यायनी** अञ् आदिवृद्धि। लोहितलक्षण ष्फ षित् ङीष् यदि अण् होगा शिवादि मानकर गोत्रत्वेन जातिलक्षण ङीष् **वातण्डी**। यदि अणिञोरनार्षयोः से ष्यङ् सम्भव हैं। तब बोले ऋषि होनेसे वक्ष्यमाण=होनेवाला ष्यङ् नहीं होगा। उसमें अनार्षयोः (ऋषि न हो ऐसा) पढ़ा है

। १३। अश्वस्य गोत्रापत्यं ऋषिकी सन्तान अर्थमें अश्वादिगणमें पढ़ेसे फ—आयन इको बाधकर आदिवृद्धि। गोत्र अर्थमें यहाँ अङ्गिरसे नहीं आया। इस गणमें बलेः गोत्रऽपत्यं **वैल्यः**, **आनडुह्यः**, **आत्रेयः** गोत्रप्रत्ययान्त है गोत्राद्यूनि यञ् ढक् क्रम। (ग०) सूत्रसे **पुंसि** जातशब्द पुलिङ्ग अर्थमें हो, उससे फक् हो। किससे हो जातशब्दसे। इसलिए प्रकृतिविशेषण कहा।

त्यं जातेयः। १४ भर्गात्त्रैगर्ते ।१।१।१११।। गोत्रे फञ्। भार्गायणस्त्रैगर्तः। भार्गिरन्यः। १११५ शिवादिभ्योऽण् ४।१।११२। गोत्रे इति निवृत्तम्। शिवस्यापत्यं शैवः। गाङ्गः। पक्षे तिकादित्वात्फिञ्। गाङ्गायनिः, शुभ्रादित्वा-ड्ढक् गाङ्गेयः। १६ अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः ४।१ ११३ ।। अवृद्धेभ्यो नदीमानुषीनामभ्योऽण्स्यात्। ढकोऽपवादः। यामुनः। नार्मदः चिन्तिताया अपत्यं चैन्तितः। अवृद्धाभ्यः किं। वासवदत्तेयः। नदीइत्यादि किम्

जात ऋषिकी सन्तान पुरुष अर्थमें फ– आयन आदि जातायनः। पुंसि न कहते, जातायाः (स्त्रीकी सन्तान) जातेयः में फञ् होता। किन्तु स्त्रीभ्यो: ढक् हो (१४) भर्गसे गोत्र अर्थमें फक् हो। त्रिगर्त्तो नाम भर्गस्य पुत्रः तस्या ऽपत्यं त्रैगर्तः ऋषि–अण्। अर्थ निकलनेपर भार्ग्गायणः। पुत्र अर्थ होनेपर फ- आयन। अन्य कोई अर्थ हो तब भार्गिः, अत इञ्।

। १११५। शिवादि, शिव ककुत्स्थ जरत्कारु विपाट तक्षन् विश्रवण खण ऋषिषेण विरूपाक्ष इत्यादिसे अण् प्रत्यय हो, अपत्य अर्थमें, इञ् आदिको भी बाधकर। गोत्र, लौटा । यह वृत्तिकर और कैयटका मत है। यूनि लुक्के भाष्य कैयटमें गोत्रसंज्ञा सूत्रपर्यन्तं गोत्राधिकार तथापि मतान्तर मानें। शिवकी सन्तान भक्त शैवः। शिवशब्दात् अण् आदिवृद्धिः। गङ्गायाः अपत्यं गाङ्गः अण् आदिः। आलोप स्वादिकार्ये। पक्षमें तिकादिभ्यः से फिञ–आयन आदि गाङ्गायनिः। शुभ्रादि मानकर ढक् एय गाङ्गेयः। जरत्कारु शब्दका पाठ अण् के लिए जरत्कारवः। यदि ढक् होगा तब ढे लोपो अकद्रा जरत्कारयकः। विपाट्से अण् वैपाशः। विपाशायाः अपत्य वैपाशायन्यः। सेनान्तलक्षण ण्य। उदीचामिञ् प्राप्ते तब तक्षन्से अण् पाठका फल ताक्ष्णः ताक्षण्यः। विश्रवण विश्रवसः अपत्यं वैश्रवणः रवणो अपत्य रावणः।

१६। अवृद्धाभ्यो वृद्धसंज्ञक न हो, ऐसा नदी मानुषी मनुष्यकी स्त्री उनके नामसे अपत्य अर्थसे अण हो, ढक् को बाधकर। नदीका उदाहरण यमुनायाः अपत्यअर्थमें स्त्रीभ्यो ढक् प्राप्त था, उसे बाधकर यमुनाके आदि अच् आ ऐ औ नहीं हैं। अतः अवृद्ध नदी है अण हुआ। आदिवृद्धि आलोप यामुनः नार्मदः नर्मदायाः अपत्यं ढक्को बाधकर अणादिः । चिन्तिता कोई मानुषी है उसकी सन्तान अर्थमें अण, आदिवृद्धि आदि चैन्तितः। तस्यापत्यं अण हो जाता, ढक् बाधनेके लिए सूत्र। अवृद्धाक्यों पढ़ा ! आदिमें आ ऐ औ न हो। मनुष्यस्त्री– वासदत्ता तस्याः अपत्यं उसकी सन्तान अर्थमें

वैनतेयः । तन्नामिकास्य: किं, शोभनाया अपत्यं शौभनेयः । १७ **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** ४।१।११४ ॥ ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः । वासिष्ठः वैश्वामित्रः अन्धकेभ्यः, श्वाफल्कः वृष्णिभ्यः । वासुदेवः आनिरुद्धः ।शौरिः इति तु बाह्वादित्वात् । कुरुभ्यः नाकुलः, साहदेवः । इञ एवायमपवादः, मध्येऽपवादन्यात् ।अत्रि-

स्त्रोभ्योः ढक्-,एय हुआ । अण नहीं । आदि अक् । वा में आ होनेसे । नदी मानुषी और उसका नाम ऐसा क्यों पढ़ा ! विनता गरुणमाता उसकी सन्तान अर्थमें ढक्-एय आदिः । **वैनतेयः** यहाँ न नदी है न मानुषी अण् नहीं । तन्नाम क्यों पढ़ा ? शोभनायाः अपत्यं **शौभनेयः** शोभना नदीका नाम न मानुषीका, अण नहीं हुआ किन्तु ढक् ।

१७ । **ऋषि**-मन्त्रद्रष्टा अन्धक वृष्णि और कुरु इनसे अपत्यअर्थ अण् होता हैं । प्रलीनाः अन्तर्भूताः प्रलयमें छिपे वेदोंके मन्त्रों को तपस्या बलके अर्षन्ति प्राप्नुवन्ति खींचकर पाने वालोंको ऋषि कहते । त्रैत्तिरीय शाख **अजान्ह वै पृश्नि तपस्यमाना ब्रह्म स्वयं अभ्यानार्षत् त ऋषयोः अभूवन् तदेव र्षीणामृषित्वम्** आजान् नित्य पृश्नीन्-शुक्ल शुद्ध मन्त्रोंके तपस्या करते हुए स्वयंभु अनादि ब्रह्म वेद मन्त्र अभ्यानार्षत् सीधे साक्षात्कार प्राप्त किये ऋषि गतौ । जो वेदको प्राप्त किये वे हीं ऋषि हैं **वेदस्य अर्षवात् ऋषि शब्द वाच्याऽभवन् इति वेद भाष्यम्, सर्गादि समये वेदान्सेतिहासान्महर्षयः लेभिरे तवसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयंभुवा** इति पुराणप्रमाणम् । कात्यायनप्रणीत सर्वानुक्रमणिकासे प्रमाणित । वशिष्ठस्यापत्यं **वाशिष्ठः** अत इञको ऋष्यन्धक सूत्रेण अण् आदिः । मन्त्र द्रष्टा ऋषिकी सन्तान । **विश्वामित्रस्यापत्यं** जन्म क्षत्रिय वंशमें किन्तु तपोबल मन्त्र । विश्वामित्रशब्दात् अण् आदिः । इञ्को बाधकर । वंशपरम्परामें अन्धक राजाका वंशसे अण् **स्वफल्कस्य** अपत्यं अण् आदि वंशका उदाहरण—वसुदेवस्यापत्यं **वासुदेवः** । अनिरुद्धस्यापत्यं **आनिरुद्धः** वृष्णि वंशमानकर अण्, अञ् को बाधकर आदिः । अत्र शङ्का वृष्णिवंश शूरसेन भी है तस्यापत्यं **शौरिः** में इञ कैसे ? अण् होना चाहिए । तब बोले कि शौरिःमें बाह्वादिगण मनकर इञ् हुआ है । कुरुवंशवाचीसे अण्का प्रमाण नकुलस्यापत्यं **नाकुलः** ।सह देवस्य **साहदेवः** अण् आदिः । नकुल सहदेव पाण्डवों में प्रसिद्ध है । अत्र शङ्का—अत्रेः अपत्यं विग्रहमें अत्रिसे ढक् (इतश्चानिञः) एय अत्रिकी सन्तान दुर्वासा । **आत्रेयः** कैसे ? ढक् बाधकर अण् क्यों नहीं ? तब बोले **इञ एव**, यह अण् इञ्का ही बाधक है ढक्का नहीं । क्योंकि मध्यमें

शब्दात्_ परत्वाड्ढक् आत्रेय. । **१११८ मातुरुत्संख्यासम्भद्रपूर्वायाः ४।१।११५ ।।** सङ्ख्यादिपूर्वस्य मातृशब्दस्योदादेशः स्यादण्प्रत्ययश्च । द्वैमातुरः षाण्मातुरः । साम्मातुरः । भाद्रमातुरः । आदेशार्थं वचनम् । प्रत्ययस्तूत्सर्गेण सिद्धः । स्त्रीलिङ्गनिर्देशोऽर्थापेक्षः तेन धान्यमातुर्न सङ्ख्या इति किं, । सौमात्रः । शुभ्रादित्वात् द्वैमात्रेयः **१११९ कन्यायाः कनीन च ४।१।११६ ।।** ढकोऽपवादोऽण्, तत्सन्नियोगेन कनीनादेशश्च । कानीनो व्यासः कर्णश्च । अनूढाया एवापत्यमित्यर्थः । **११२० विकर्णशुङ्गच्छगलाद्वत्सभरद्वाजात्रिषु**

पढ़े हुए अपवाद पूर्वके बाधक है परके नहीं । अतः पर होने से ढक् ही होगा।

१८। **मातुरुत्संख्या** सम और भद्र पूर्वमें हो तब मातृ के ऋ को उद् आदेश हो, अण् प्रत्यय भी द्वयोः मात्रोः अपत्यं **द्वैमातुरः** गणेशः । दो माताकी सन्तान, द्विमातृशब्दात् मातुरुसूत्रेण संख्या पूर्वं दृष्ट्वा अण् । ऋस्थाने ,उ—रपरे, आदिवृद्धि । द्वैमातुरः । एवं षट् माता यस्य **षाण्मातुरः** कार्तिकेयः संख्या पूर्वमें है पूर्ववत्कार्य । समीचीना माता संमाता पालनकलाकुशला सम्मातुः अपत्ययं **साम्मातुरः** अण् उत्, रपर । भद्राचासौ माता च भद्रमाता उसकीं सन्तान **भाद्रमातुरः** अण् आदिः पूर्ववत् । तस्यापत्यंसे अण् होता, यह यह सूत्र क्यों ! तब कहाकि **आदेशार्थो**=अण्के साथ उत् आदेशके लिए विधि सूत्र पढ़ा । प्रत्यय तो **उत्सर्गेण**=स्वभाव से सिद्ध है । सूत्रमें स्त्रीलिङ्ग पूर्वा का उच्चारण स्त्री अर्थका आक्षेप करनेके लिए । मातृशब्दमें स्त्री अर्थ अवश्य होना चाहिए अतः जननीवाची मातृ शब्द मान्य इसका फल हुआ कि धान्यमातृ धानको तौलनेवाला माता परिच्छेत्ता मापक । मातृ पुलिङ्ग है । उससे अण् 'उ' नहीं हुआ । संख्या क्यों पढ़ा ! शोभना माता सुमाता तस्यापत्यम् । अण् आदिः **सौमात्रः** संख्या- सम्मद्र पहले नहीं , न अण्, उसके साथ उत् भी नहीं । द्विमातुः अपत्यं **द्वैमात्रेयः** । यहाँ अण् उत् को बाधकर शुभ्रादिभ्यश्चसे ढक् समझें ।

१९ **कन्यायाः** कन्याके स्थानमें कनीन आदेश हो, उसके साथ अण् भी ढक् को बाधकर । अण् होने पर ही कनीन होगा । कन्यायाः अपत्यं कानीनो व्यासः कर्णश्च । कन्या अविवाहिता अनूढा, जिसकी सादी न हुई हो, अक्षत योनिः, प्रादुर्भूतयौवना, पुरुषके योग्य नहीं, तब बोले अनूढा- कन्या दशामें (कुन्तीसे कर्ण, धीवरीसे व्यास) अण् कानीन आदेश । आदिवृद्धि **कानीनः**

।११२०। **विकर्ण शुङ्ग** छगल इनसे वंश अर्थं अपत्यमें अण् हो । यदि

४।१।११७ ॥ अपत्येऽण् वैकर्णो वात्स्यः। वैकर्णिरन्यः। शौङ्गो भारद्वाजः शौङ्गिरन्यः छागल आत्रेयः। छागलिरन्यः। केचित्तु 'शुङ्गा' इत्याबन्तं पठन्ति तेषां ढक्प्रत्युदाहरणम्। शौङ्गेयः २१ पीलाया वा ४ १ ११८ ॥ तन्नामिकाणं बाधित्वा 'द्व्यच' इति ढकि प्राप्ते पक्षेऽण्विधीयते। पीलाया अपत्यं पैल:-पैलेयः।२२ ढक्च मण्डूकात् ४।१।११९ ॥ चादण्। पक्षे इञ्। माण्डूकेय:=माण्डुकः-माण्डुकिः। २३ स्त्रीभ्यो ढक् ४।१।१२० ॥ स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यो

वत्सका वंश, भरद्वज वंश, अत्रिवंश गोत्र खानदान अर्थ निकला हो। वत्स आदिके मूलपुरुष (जिससे अण् होना है) मान्य। अथवा बिकर्ण आदिसे वात्स्य आदि अर्थमें ऋष्यन्धकसे अण्। नियमार्थ सूत्र। विकर्णस्य अपत्यं वात्स्य है वत्स गोत्रवाले अर्थमें विकर्ण अण् आदि। यदि वत्सवंश अर्थ न निकलता हो, तब अत इञ् आदि वैकर्णिः। शुङ्गस्यापत्यं यदि भारद्वाज गोत्र वाले हों, तब शुङ्गसे अण् आदि। अन्य=भारद्वाजसे भिन्न सन्तान हो तब इञ् शौङ्गिः। छगलस्यापत्यम् अत्रि गोत्रवाले अर्थ हों, अण् आदि। अन्यकी सन्तान हो, तब इञ् छागलिः। केचित्=कोईशुङ्गा आरान्त पढ़ते है। उनके मतमें स्त्रीभ्यो ढ़क् का उदाहरण-शुङ्गायाः अपत्यं शौङ्गेयः।

।२१। पीलायाः अपत्य अर्थमें तन्नामिक=नदी या मानुषी नाम वालेके अण् को बाधकर द्व्यचः से ढक् प्राप्त पक्षमें अण् विधानके लिये सूत्र। कोइ मनुष्य स्त्री पीलासे वंश अर्थमें अण् आदिः पैलः। पक्षमें ढक् पैलेयः। महाविभाषाके अधिकारमें अण् विकल्प होता ही, यह सूत्र क्यों पढ़ा? ज्ञापन कियाकि महाविभाषया अपवादे निषिद्धे उत्सर्गों न प्रवर्तते यह ज्ञापन है अन्यथा शैवः शैविः होते (२२) ढ़क् मण्डूक (ऋषि) से ढक् हो, अण् भी, पक्षमें इञ्। मण्डूक की सन्तान अर्थमें (तीन सन्तान) ढ़क्—एय आदिवृद्धि जब अण् माण्डूकः। २३। स्त्रीभ्योः बहुवचन शब्दसे या अर्थसे नहीं किन्तु स्त्रीके अधिकारमें कहे गये टाप् ङीप् आदि प्रत्यय अन्त मान्य हैं व्याख्यानसे। अतः टाप् ङीप् इत्यादि अन्तमें हो, उससे ढक् कहें। यथा विनता गरुणमाता, तस्या अपत्यं उसके बच्चे अर्थमें विनता ढक् एय आदि वैनतेयः। स्त्रीप्रत्यय न पढ़ते दरदोऽपत्यं दारदः क्षत्रियके बच्चे। दरत् स्त्रीलिङ्ग है स्त्रीप्रत्ययान्त नहीं। अतः न ढक्। शोभनं मित्रं पतिः यस्याः सा सुमित्रा तस्याः अपत्यं सौमित्रिः लक्ष्मणः। बाह्वादि मानकर इञ् हुआ। ढ़क् नहीं। सपत्न्याः अपत्यं सौत का बच्चा सापत्नः ढ़क् को बाधकर अण् हुआ। टाप् ङीप् देखकर ढ़क प्राप्त

ढक्स्यात्। वैनेतेयः। बाह्वादित्वात्सौमित्रिः। शिवादित्वात्सापत्नः।२४ द्व्यचः ४।१।१२१ ॥द्व्यचः स्त्रीप्रत्ययान्तादपत्ये ढक्। तन्नामिकाणोऽपवादः। दात्तेयः। पार्थ इत्यत्र तु 'तस्येदम्' इत्यण् ११२५ इतश्चानिञः ४।१।१२२॥ इकारान्तात् द्व्यचोऽपत्ये ढक्स्यात्, न त्विञन्तात् दौलेयः, नैधेयः। आत्रेयः। २६ शुभ्रादिभ्यश्च ४।१।१२३ ॥ ढक्स्यात्। शुभ्रस्यापत्यं शौभ्रेयः २७ विकर्णकुषीतकात्काश्यपे ४।१।१२४॥ अपत्ये ढक् वैकर्णेयः।कौषीतकेयः अन्यो वैकर्णिः। कौषीतकिः ।२८ भ्रुवो वुक्च ।४।१।१२५॥ चाड्ढक्, भ्रौवेयः

।२४। द्व्यचः दो अच् वाला स्त्रीप्रत्यय टाप् ङीप् अन्तमें हो उससे सन्तान अर्थमें ढक्, तन्नामिका नदी मानुषी नामवाले अवृद्धके अण् को बाधकर। काचिन्मनुषी दत्ता, तस्याः उसके बच्चे अर्थमें दो अच् टाप् अन्त दत्तासे ढक्–एय आदि दात्तेयः। यदि स्त्रीभ्यो ढक् होता उसे तन्नामिक अण् बाध लेता। यदि ऐसा तब पृथायाः अपत्यं पार्थः अर्जुनः यहाँ अण् कैसे ? द्व्यचःसे ढक् क्यों नहीं।

इसलिएकि तस्येदंसे इदमर्थमें अण् होता है, कोइ शिवादि अण् कहते है।

।११२५। इतश्च इकारान्त हो, दो अच् हो उससे अपत्य अर्थमें ढक्, इञ् अन्त न हो तब। इसके अन्तमें टाप् ङीप् आवश्यक नहीं। दूलि निधि कोइ पुरुष है उनके बच्चे अर्थमें इकारान्त दुलि या निधि से ढ–एय आदि। दौलेयः। अत्रेः अपत्यं आत्रेयः इकारान्त अत्रिसे ऋषि अण् को बाँधकर ढक्। इतः= इकारान्त क्यों पढ़ा ? दाक्षिःमें ढक् न होनेके लिए। इञ् अन्त न हो ऐसा क्यों ? दाक्षेः अपत्यं दाक्षायणः इञ् अन्त दाक्षिसे ढक् न हो। दो अच् क्यों उदधेः सन्तानः औदधः चद्रमा (सिन्धुके सन्तान) तीन अच् से ढक् न हो।

।२६। शुभ्रादिगणपठित शब्दोंसे वंश अर्थमें जो स्त्रीप्रत्ययान्त नहीं उनके लिए सूत्र। चकार आकृतिगण का सूचक। मृकण्ड का वंश मार्कण्डेयः। शुभ्र, मृकण्ड, अश्व, विमातृ, विधवा, प्रवाहण इत्यादि।पाण्डोः वंशः पाण्डवेयः की सिद्धि आकृतिगण मानकर। इस सूत्रमें आकारान्तसे इञ् भी। विधवासे क्षुद्रालक्षण ढ्रक्। चतुष्पादसे ढक् आदि भी होगें।

।२७। विकर्ण कुषीतसे कश्यप वंश अर्थमें ढक् हो। यद्यपि शुभ्रादिभ्यः से ढक् सम्भव है तथापि कश्यप अर्थमेंही हो, अतः नियमार्थ सूत्र पढ़ा। विकर्ण कीसन्तान कश्यप गोत्रअर्थमें ढक् आदि। अन्य अर्थ हो, कश्यप गोत्र न हो, तब इञ्। वैकर्णिः। कुषीतक ऋषिकी सन्तान कश्यप गोत्र का हो, तब ढक् आदि अन्य गोत्र हो तब इञ्।२८। भ्रूशब्दसे वंश अर्थमें ढक् हो. प्रकृतिसे वुक्

२९ **प्रवाहणस्य ढे** ७।३।२८।। प्रवाहण शब्दस्योत्तरपदस्यामादेरचोवृद्धिः, पूर्वपदस्य तु वा ढे परे। प्रवाहणस्यापत्यं प्रावाहणेयः प्रवाहणेयः ११३० **तत्प्रत्ययस्य च** ७।३।२९।। ढ प्रत्ययान्तस्य प्रवाहणस्योत्तरपदस्यादेरचो वृद्धिः पूर्वपदस्य तु वा प्रावाहणेयस्यापत्यं प्रवाहणेयिः प्रवाहणेयिः ।बाह्यतद्धितनिमित्ता वृद्धिर्ढाश्रयेण विकल्पेन बाधितुं न शक्यते इति सूत्रारम्भः। ३१ **कल्याण्यादीनामिनङ्** ४।१।१२६ ।। एषामिनङादेश स्यात्, ढक्च । काल्याणिनेयः बान्धकिनेयः ३२ **कुलटाया वा** ४ ११२७ ।। इनङ्मात्रं विकल्प्यते । ढक् तु, नित्यः पूर्वेणैव । कौलटिनेयः। कौलटेयः सती भिक्षुक्यत्र कुलटा । या तु व्यभि-

---

य आगम हो कित्से अन्तका अङ्ग । भ्रू नामकी कोई स्त्री है उसकी सन्तान भ्रौवेयः। ढक् वुक्-आगम आदिवृद्धि । वुक् न होता तब आदिवृद्धिको आव् होता (२९) **प्रवाहण**शब्दके उत्तरपद वाहनके आदि अच्को वृद्धि हो, पूर्वपद को विकल्पसे, ढ परे रहते । तगड़ाभार ढ़ोने वालेकी सन्तान अर्थमें शुभ्रादि मानकर ढक् आदि । ढ़ परे पूर्वपदको विकल्पवृद्धि । अतः द अबने । सूत्रमें उत्तरपदका अधिकार । अजादेः और (मृजेः) वृद्धि आये । सर्वत्र तु वा आया।

११३० **तत्प्रत्ययस्य** । पूरी अनुवृत्ति इसमें भी आयेगी । तत्=ढ़ का बोधक ढ अन्तमें हो ऐसे प्रवाहणेयके उत्तरपदके आदि अच्को वृद्धि हो, पूर्वपदको विकल्पसे हो । प्रवाहणेयकी सन्तान अर्थमे ढक् अन्त प्रवाहणेयसे इञ् आदि पूर्वपदको वृद्धिविकल्प । यद्यपि पूर्वसूत्रसे विकल्पवृद्धि सिद्ध थी । यह सूत्र क्यों? तब बोले–ढक् प्रत्यय अन्तशब्दसे बहिर्भूत जो इञ् उसको ञित् मानकर नित्य आदिवृद्धि बाधनेके लिए सूत्र पढ़ा । अन्यथा ढ़ को मानकर विकल्पसे वृद्धि बाधना कठिन होता । (३१) **कल्याणी**, सुभगा दुर्भगा बन्धकी इत्यादिके अन्त्य अल्को इनङ् आदेशभी हो, ढक् भी । इस गणमें सभी स्त्रीप्रत्यान्त है । ढक् होगा ही, इनङ्का मुख्य विधान । **कल्याण्याः** अपत्यं सुमङ्गलीकी सन्तान कल्याणीसे इनङ् आदेश । ढक्-एय इके स्थानमें इनङ् हुआ । आदिवृद्धि, **कल्याणिनेयः** । बन्धक्याः बन्ध्यास्त्रीकी सन्तान बन्धकीके ईको इनङ्, ढक् आदिवृद्धि **बान्धकिनेयः** परस्यस्त्री (परके शुक्रको अपने शोणितमें धारणवाली)। षष्ठी सम्बन्धित एकार्थीभाव परस्त्रियाः **पारस्त्रैणेयः** दूसरेकी स्त्रीमें पैदा हुआ ।अनुशतिकादिगण मानकर दोनों पदकी वृद्धि । विदादिगणमें परस्त्री परशुंच, परशु आदेश होनेपर **पार्शवः** बनेगा । ब्राह्मणसे शूद्राके साथ विवाहसे हुई सन्तान ।

११३२ । **कुलटा** - कुलानि अटति घर-घर घूमनेवाली । शकन्ध्वादि पर

चारार्थं कुलान्यटति तस्याः 'क्षुद्राभ्यो' वा इति पक्षे ढक्। कौलटेरः ३३ हृद्भग-सिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च ७।३।१९ ॥ हृदाद्यन्ते पूर्वोत्तरपदयोरचामादेरचो वृद्धिर्ञिति णिति किति च, सुहृदोऽपत्यं सौहार्दः। सुभगाया अपत्यं सौभागिनेयः। सक्तुप्रधानाः सिन्धवः सक्तुसिन्धवः। तेषु भवः साक्तुसैन्धवः। ३४ चटकाया ऐरक् ४।१।१२८। चटकादिति वाच्यम्, लिङ्गविशिष्टपरिभाषया स्त्रिया अपि। चटकस्य चटकाया वा अपत्यं चाटकैरः। *'स्त्रियामपत्ये लुगवक्तव्यः' तयोरेव स्त्र्यपत्यं चटका। अजादित्वाट्टाप्। ११३५ गोधाया ढ्रक् ४।१।

रूप। कुलटासे इनङ् हो, ढक् होने पर। कुलटाशब्दात् स्त्रीभ्यो ढक् जो नित्य सिद्ध है। केवल इनङ हो, ढक् होने पर कुलटा शब्दात् स्त्रीभ्यो ढक्, जो नित्य सिद्ध है केवल इनङ् विधान। टामें आ को इनङ्, ढको एय, कौलटिनेयः इनङ् नहीं हुआ तब कौलटेयः। घर-धरमें भिक्षाटन करने वालीकी सन्तान पतिव्रता भिक्षुकी। कुलटा जो स्त्री द्रव्यलोभसे शीलभङ्ग कराये। कुलका उल्लङ्घन करे उसकी सन्तान अर्थमें क्षुद्राभ्यो ढ्रक् होगा, ढको एय। लोपो व्योः से यलोप। अथ बान्धकिनेयः स्यात् बन्धुलश्च सतीषु कौलटेयो भिक्षुकी तु सती यदि, तदाकौलटिनेयो स्यात् कोलटेयोऽपि चात्मजः इत्यमरः। (३३)। हृद्भग सिन्धु शब्द अन्तमें हो, समास हुआ हो, पूर्वपद और उत्तरपदके अचोंके आदि अच्को वृद्धि हो, ञिति णिति किति परे, सुन्दरहृदय वालेका पुत्रादिः सौहार्दः सुहृदसे वंश अर्थमें अण्। सु और हृद दोनो पदके आदि अच् को वृद्धि आदिः। सौभाग्य वालेकी सन्तान सौभागिनेयः सुभगाशब्दसे कल्याण्यादि-इनङ् ढक्-एय। हृद्भग-से दोनों पदकी वृद्धि आदि। महते—सौभाग्यमें उद्गात्रादि मानकर भावमें अञ्, उत्तरपदवृद्धि नहीं, वेद होनेसे। शक्ति प्रधान घोड़ा शक्तिसिन्धवः उसमें होने वाला अण् दोनों पदको वृद्धि।

३४ चटकायाः अपत्यं चिड़िया बटेरका बच्चा अर्थसूचक ऐरक् हो। चटकस्य अपत्यं अर्थमें भी हो। इससे सिद्ध है कि स्त्रीलिङ्ग और पुलिङ्ग दोनोंसे ऐरक् प्रत्यय होता है। प्रातिपदिकके अधिकारमें लिङ्गबोधकप्रत्यय सहित का भी ग्रहण हो। इस परिभाषासे स्त्रीप्रत्ययसे भी होगा। चटकादैरक् इति साम्प्रदायिकः। वार्तिकविरोधादुपेक्ष्यः। चटका या चटकसे बच्चा अर्थमें ऐरक्। अनुबन्धलोप आदिवृद्धि। चाटकैरः स्त्रीलिङ्ग, अपत्य अर्थमें दोनोंके ही ऐरक्का लुक् हो। इसका फल, चटका नरमादा दोनोंकी बच्ची अर्थ लुक्तद्धित लुकिसे टाप्का लुकि। जाति लक्षण ङीषको०। आजदि टाप् चटका।

२६। गौधेरः। शुभ्रादित्वात्पक्षे ढक्। गौधेयः। ३६ **आरगुदीचाम् ४।१।१३०।** गौधारः। रका सिद्धे आकारोच्चारणमन्यतो विधानार्थम्। जडस्यापत्यं जाडारः षाण्डस्यापत्यं पाण्डारः। ३७ **क्षुद्राभ्यो वा ४।१।१३।** अङ्गहीना शीलहीनाश्च क्षुद्राः ताभ्यो वा ढ्रक्। पक्षे ढक्। काणेरः=काणेयः। ३८ **पितृष्वसुश्छण् ४२।२।३२।** अणोऽपवादः। पैतृष्वस्रीयः। ३९ **ढकि लोपः ४।१।१३३** पितृष्वसुरन्त्यस्य लोपः स्याड्ढकि। अत एव ज्ञापकाड्ढक्। पैतृष्वसेयः ११४० **मातृष्वसुश्च ४।१।१३४।।** पितृष्वसुर्यदुक्तं तदस्यापि स्यात्। मातृष्वस्रीयः-मातृष्वसेयः। ४१ **चतुष्पाद्भ्यो ढञ् ४।१।१३५॥ ४२ ढे लोपोऽकद्वाः**

। ११३५। **गोधा**शब्दसे सन्तान अर्थमें ढ्रक्। गोधायाः अपत्यंगिरगिटान का बच्चा अर्थमें ढ्रक्, ढ़स्थाने एय आदेशे। लोपो व्योः से यलोप। किति च आदिवृद्धि **गौधेरः**। सापिनिका बच्चा। एकपक्षमें शुभ्रादिगणमानकर ढक्। **गौधेयः** अर्थ पूर्ववत् (११३६) **गोधा** से आरक् हो। पक्षमें उत्तरदिशा वालोंके मतमें। गोधासे आरक् **गौधारः** अर्थ पूर्ववत्। 'रक्' प्रत्यय ही पढ़ते आ-क्यों पढ़ा? **अन्यतः**=अकारान्त स्थलमें भी विधानके लिए। यथा जडस्य मूढ़स्य अपत्यं जाडारः **मौढ़ारः** आरक् होनेपर ही बनेगा। रक् होता, आकार न सुनायी पड़ता। षण्ढो नपुंसकः उसकी सन्तान उसके खेतमें पैदा हुआ। **षाण्डारः** षण्डसे आरक्।

। ३७। **क्षुद्रा** अर्थमें रहनेवाली स्त्रीधर्मको शब्दमें आरोपकर स्त्रीलिङ्ग। **अङ्गहीन— नाक कान** आँख आदिसे विकलाङ्ग निःशीलहोना, स्वेच्छाचारिणी इच्छागम्या, सदाचारहीना आदिको क्षुद्रा कहते है। उनसे ढ्रक्। पक्षमें ढक् हो (भाष्यमें **अनियतपुंस्काः अङ्गहीना वा क्षुद्राः**)। कानाकी सन्तान काणसे ढ्रक्। ढ़—एय, यलोप काणेरः। दास्याः अपत्ययं स्वेच्छाचारिणी दासीका वच्चा ढ्रक् **दासेरः**, ढक् **दासेयः** (३८) **पितृष्वसा** से पुत्रादि अर्थमें ण हो, अण्को बाधकर। पितृष्वसुः अपत्यं (पिताके वहनका बच्चा फुफेरा भाई अर्थमें) पितृस्वसृ तस्यापत्यंके अण्को वाधकर छ—ईय् आदेश आदिवृद्धि। सकारात्=सकारके ऋ को यण् र आदि पैतृ अ।

। ३९। ठक् परे अन्त्य अल् ऋ का लोप हो। इसी सूत्रके ज्ञापन प्रमाण से ढक् मान लें। अन्यथा ढक् दुर्लभ है। अन्त ऋ का लोप हुआ। ११४०। मातृष्वसासे पृत्रादि अर्थमें छण् हो, अणको बाँधकर। ढक् परे अन्त ऋ का लोप भी हो। माताकी वहन मौसी मातृष्वसृसे छ—ईय यण्। पक्षे ढक् परे ऋ का लोप् ढ़—एय मातृष्वसेयः मौसेरा भाई (४१) **चतुष्पाद** पशुवाचकसे

६।४।१४६ ॥ कद्रूभिन्नस्योवर्णान्तस्य भस्य लोपः स्यात् ढे परे। कामण्डलेयः। कमण्डलुशब्दश्चतुष्पाज्जातिविशेषे । ४३ गृष्टयादिभ्यश्च ४।१।१३६ ॥ एभ्यो ढञ् स्यात्। अण्ढकोरपवादः। गार्ष्टेयः। मित्रयोरपत्यम्, ऋष्यणि प्राप्ते ढञ् । ४४ केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरियः ७।३।२॥ एषां यकारादेरियादेशः स्यात् ञिति णिति किति च तद्धिते परे। इति इयादेशे प्राप्ते ॥११४५ दाण्डिनायनहास्तिनायनाथर्वणिकजैह्माशिनेयवाशिना-

---

ढञ् हो । ४२ । ढ़परे उवर्णान्तके भसंज्ञकका लोप हो कद्रूको छोड़कर ओर्गुणः के अन्त्य अल्को गुण बाधकर। चारपैरवाले की जातिका नाम कमण्डलु है। उससे बच्चे अर्थमें ढ़ आदि। ढ़ परे अन्त्य अल् उ का लोप, ढ को एय। जब जलपात्र लेगें, तब अचेतन होनेसे वंश नहीं बनेगा। इसलिए 'कमण्डलुपदे आदधीत' यह मन्त्र सङ्गत हुआ।

।४३। गृष्टि हलि ऋषि बलि कुठि, कुद्रि अगस्ति मित्र–इत्यादिसे ढञ् हो वंश अर्थमें। अन्तिम दो को ऋषि अण् प्राप्त, अन्यको इतश्चानिञः से ढक् प्राप्त। सकृत्प्रसूता एकबार ब्यायी हुई स्त्री, नर हो या पशु केवल गाय ही नहीं, अतः चतुष्पादसे ही ढ़क् नहीं होता। गृष्टेः अपत्यं अर्थमें ढ़ञ्-एय आदि गार्ष्टेयः गायका प्रथम बच्चा। मित्रमिच्छति मित्रयुः तस्य अपत्यं मित्रचाहने वालोंकी संतान। ऋष्यन्धक से अण् प्राप्त था। उसे बाँधकर ढ़ञ् एय आदिः। (४४) केकय, मित्रयु, प्रलय इनके अकार आदिके इय आदेश हो ञिति, णित्, किति, तद्धितपरे। इस सूत्रसे यु को इय् आदेश प्राप्त, ओर्गुणको बाँधकर केकयस्य अपत्यं कैकेयी मैत्रेयिकया श्लाघते। मित्रयोर्भावः यह लौकिकगोत्र है। लोकमें ऋषीका गोत्र अर्थ। प्रलयादागतं प्रालेयं, सब जगह यकारादिको इय प्राप्त। ११४५। दाण्डिनायन आदि सूत्रमें जो पढ़े हैं वे निपातनसे सिद्ध मान्य, प्रयोगके अनुकूल कल्पना, दण्डिनः हस्तिनःका बच्चा अर्थमें दण्डिन् या हस्तिन्से नडादि मानकर फक् आयन आदि, निपातनसे। टिलोप नहीं अथर्वणा प्रोक्तो ग्रन्थः उपचारसे वही अथर्वा ऋषिप्रणीतो ग्रन्थः तमधीते आथर्वणिकः वसन्तादिमानकर ठक्–इक आदि। निपातनसे टिलोप जिह्माशिनोऽपत्यं जैह्माशिनेयः। शुभ्रादि मानकर ढ़, निपातनसे टिलोप। औषध चाटनेवाले ऋषिकी सन्तान। वासिनोऽपत्यं वाशिनायनिः। वाशिन ऋषि की सन्तान। उदीचां वृद्धात्से फिञ्, फको आयन, निपातनसे टिलोप। भ्रूणहन् धीवन्से भावमें ष्यञ्। न को त, निपातन भ्रूणघ्नोः भावः भ्रौणहत्यं

यनिभ्रौणहत्यधैवत्यसारवैक्ष्वाकमैत्रेयहिरण्मयानि ६।४।१७४ ॥ एतानि निपात्यन्ते । इति युलोपः । मैत्रेयः मैत्रयौ । ४६ **यस्कादिभ्यो गोत्रे २।४।६३॥** एभ्योऽपत्यप्रत्ययस्य लुक्स्यात्तत्कृते बहुत्वे, न तु स्त्रियाम् । मित्रयवः । ४७ **अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च २।४।६६ ॥** एभ्यो गोत्रप्रत्ययस्य लुक्स्यात्तत्कृते बहुत्वे, न तु स्त्रियाम् । अत्रयः । भृगवः । कुत्साः । वशिष्ठाः । गौतमाः । अङ्गिरसः ।४८ **बह्वच इञः प्राच्यभरतेषु २।४।६६॥**

भ्रण हन्से ष्यञ् आदिवृद्धि, न को त । गर्भका बच्चा गिराना । यद्यपि हनस्तः से न को त हो जाता परन्तु **धातोः कार्यमुच्चमानं तत्प्रत्ययेऽपि भवति** परिभाषासे धातुसे विधान किये गये प्रत्यय परे ही हनस्तः सूत्र लगेगा । अतः वार्तघ्नं में न को त नहीं हुआ । धीवतो भावः **धैवत्यं,** न को त निपातनसे । सरय्वांभवं **सारवं**, सरयूजलं, भव अर्थमें अण् यू को व आदेश, निपातनसे । इक्ष्वाको अपत्यं **ऐक्ष्वाकः** जनपद क्षत्रियसे अञ्, कु के 'उ' का लोप, निपातनसे बहुवचनमें तद्राज संज्ञासे अञ्का लुक् । **इक्ष्वाकः** । कोपधादण्, 'उ' का लोप सूत्रसे अण्-एय मान्य । इक्ष्वाकूणां दूरापेऽर्थे इति रघुवंशे । हिरण्यस्य विकारः **हिरण्मयः** । मयट्परे य में 'अ' का लोप । इस सूत्रसे मित्रयु–ढ–एय युका लोप टिड्ढाणञ् ङीप् **मैत्रेयी** मित्रोंकी बाला ।

।४६। **यस्कादिगण** में पढ़े शब्दोंसे गोत्रापत्य अर्थवाले प्रत्ययका लुक् हो **तत्कृते**=उस प्रत्ययमें बहुवचन हों तब । किन्तु स्त्रीलिङ्ग में नहीं । यह सूत्र अपत्याधिकारमें नहीं है । अतः लौकिक गोत्र मान्य, जो प्रवराध्यायमें प्रसिद्ध अपत्याधिकारसे बाहर हे । ण्यक्षत्रियसे लुक् तद्राजस्य से । बहुषु तेनैवास्त्रियां मित्रयोः अपत्यानि पुमांसः अर्थमें गृष्टयादि मानकर आया हुआ ढक् का लुक् **मित्रयवः** बहुवचने।तत्कृत क्यों ? **प्रिययास्काः** यहाँ प्रत्ययगत बहुवचन नहीं।बहुवचन क्यों? यास्कः, शिवादि अण् ।यस्क द्रुह्य कर्णाटक वस्ति कुद्रि मित्रयु आदि ।

।४७। **अत्रि** आदिसे हुए गोत्र प्रत्ययका लुक् हो, उस प्रत्ययमें बहुवचन भरा हो, स्त्री अर्थ न हो । अत्रेः अपत्यानि पुमांसः । अत्रिगोत्रके अनेक सदस्य 'इतश्च' इकारान्त मानकर ढक् गोत्र अर्थमें हुआ था । उसका इस सूत्रसे लुक् बहुवचन **अत्रयः** । एवं भृगोः कुत्सस्य वशिष्ठस्य, गौतमस्य अंगिरसश्च अपत्यानि पुंमासः विग्रहमें सबसे ऋष्यन्धक सूत्रसे अण् । उसका इससे लुक् । पौत्रादिमें बहुत संख्या है । **भृगवः गोतमाः** इत्यादि ।

।४८। **बह्वचः** अच्से परे जो इञ् वह प्राच्यगोत्र और भरत गोत्रमें

बह्वचः परो य इञ् प्राच्यगोत्रे भरतगोत्रे च वर्तमानस्तस्य लुक्स्यात्। पन्नागाराः, युधिष्ठराः। ४६ न गोपवनादिभ्य २।४।६७॥ एभ्यो गोत्रप्रत्ययस्य लुक् न स्यात्। विदाद्यन्तर्गणोऽयम्। गौपवनाः। शैग्रवाः। ११५० तिककितवादिभ्यो द्वन्द्वे २।४।६८॥ एभ्यो गोत्रप्रत्ययस्य बहुत्वे लुक्स्यात् द्वन्द्वे। तैकायनयश्च कैतवायनयश्च। 'तिकादिभ्यः फिञ्' तस्य लुक्। तिककितवाः। ५१ उपकादिभ्योऽन्यतरस्यामद्वन्द्वे २।४।६९॥ एभ्यो गोत्रप्रत्ययस्य बहुत्वे लुग्वा स्यात् द्वन्द्वे चाद्वन्द्वे च। [औपकायनाश्च लामकायनाश्च। 'नडादिभ्य फक्' तस्य लुक्। उपकलमकाः-औपकायनलामकायनाः]। भ्राष्ट्रककापिष्ठलाः भाष्ट्रकिकापिष्ठलयः। [उपकाः औपकायनाः। लमकाः लामकायनाः। ५२

हुआ हो। उस गोत्रप्रत्ययमें बहुवचन भरा हो। प्राच्य गोत्रका उदाहरण--पन्नागरस्य अपत्यानि, पूर्वदेशीय राजाकी सन्तान 'अत इञ्', उसका लुक्, बहुवचन पन्नागाराः। भरत गोत्रका उदाहरण=युधिष्ठिराः। अपत्यानि-बहुतसे सन्तान अर्थमें कुरु लक्षणं ण्यं बाधित्वा बाह्वादि इञ् तस्य लुक् आदिः। युधिष्ठिराः एक वचनमें यौधिष्ठिरः लुक्, नहीं होगा। ४९॥ न-गो-पवन आदि गण में पढ़े शब्दोंसे गोत्रप्रत्ययका लुक् न हो। यह सूत्र विदादिगणके भीतर पढ़ा हैं। उससे हुए विदादि अञ्का यञिञोश्च से प्राप्त लुक् न हो। गोपवनस्य वंश्याः गौपवनाः।शीग्रोः पुत्रादयः शैग्रवाः अञ्का लुक् नहीं हुआ। आदिवृद्धि रह गयी ११५०॥ तिककितव- गणमें पढ़ेसे गोत्रका बहुवचनमें लुक् हो, तैकायन कितवायनमें द्वन्द्वसमास होनेपर। इस सूत्रसे तिकादि से हुए फिञ् का लुक हुआ। तिककितवाः। इसी प्रकार औपकायनाश्च लामकायनाश्च उपलमकाः नडादिफक् लुक्। भ्राष्टकयश्च कपिष्ठलयश्च। इञ् का लुक (५१) उपकादिगण में पढे शब्दो से बहुवचन अर्थमे गोत्रप्रत्ययका लुक् हो। द्वन्द्व समास हो, या नहो। पूर्वसूत्र द्वन्द्वमे ही लगता है। अद्वन्द्व कहने से अधिकार का न आना सिद्ध है, किन्तु गण मे द्वन्द्व का पाठ है उपकादिमें तीन द्वन्द्व है। तिककितवादि उपलमकाः इनके पूर्वसूत्रसे नित्य लुक्प्राप्त, विकल्पविधान। उपकस्य गोत्रापत्यानि औपकायनाः।लमकस्य वंश्याः लामकायनाः नडादि फक् का लुक्। पक्ष मे नही, अतः दो रुप। द्वन्द्वका उदाहरण-भ्राष्टकस्यापत्यानि भ्राष्ट्रकिः, कपिष्ठलस्यापत्यानि कापिष्ठलिः इन दोनोका द्वन्द्व समास, गोत्रप्रत्यय इञ का बहुवचन मे लुक हुआ, विकल्पसे औपकायनाः। जब लुक तब उपकाः। बहुत अपत्य अर्थ में प्रत्यय का लुक् तब लमकाः (लमश्री)

आगस्त्यकौण्डिन्ययोरगस्तिकुण्डिनच् २।४।७०।। एतयोरवयवस्य गोत्रप्रत्ययस्याणो यञश्च बहुषु लुक्स्यात् । अवशिष्टस्य प्रकृतिभागस्य यथासंख्यम् अगस्ति कुण्डिनच् एतावदेशौ स्तः । अगस्तयः कुण्डिनाः **५३ राजश्वशुराद्यत्** ४।४।१३७।। * राज्ञो जातावेवेति वाच्यम्' **५४ ये चाभावकर्मणोः** ६।४।१६८ ।। यादौ तद्धिते परेऽन्प्रकृत्या स्यान्न तु भावकर्मणोः । राजन्यः । श्वशुर्यः । जातिग्रहणाच्छूद्रादावुत्पन्नो राजनः । **११५५ अन्** ६।४।१६७ ।। अणि अन् प्रकृत्या स्यात् । इति टिलोपो न । भावकर्मणोः किं । राज्ञः कर्म भावो वा राज्यम् । **५६ संयोगाश्च** ६।४।१६६।। इन् प्रकृत्या स्यादणि परे । चक्रिणोऽपत्यं चाक्रिणः । **५७ न मपूर्वोऽपत्येऽवर्मणः** ६ ।४ । १७०।।

---

(५२) **आगस्त्य**–अगस्त से ऋषि अण् और ,कुण्डिन् से यञ् । आगस्त्य कौडिन्यमें गर्गादि यञ् अन्य है,उनके अवयव वहुवचन गोत्रप्रत्यय अण् और यञ्का लुक् हो । अवशिष्ट शेष भागको (जो अण् यञ् की प्रकृति है) क्रमसे संख्याके अनुसार **अगस्ति** और कुण्डिन**च्** । वंश अर्थ में आगस्त्य के अणका, कौण्डन्य के यञ् का लुक् । वृद्धि लौट गया । अगस्ति अस गुणादिकार्ये कुण्डिनच् आदेशे । रामा इव कुण्डिनाः (५३) **राजन** और श्वशुरशब्द से सन्तान अर्थ में यत् हो इञको बाधकर राजनसे जाति अर्थमें समुदायका जाति अर्थहोने पर **योगरुढ** (५४)।। ये च यादौ- य आदि में हो ऐसे तद्धियप्रत्यय परे अन का लोप नही , नस्तद्धिते नही लगता, भावकर्म में प्रकृतिभाव नही होता । टिलोप होता है राज्ञः अपत्यं राजन्यः । क्षत्रियसे स्वपत्नी में उत्पन्न सन्तान इति धर्मशास्त्रे । क्षत्रिय जाति अर्थ में यत्प्रत्यय । नस्तद्धिते से टिलोप प्राप्त था । प्रकृतिभावसे नही हुआ । श्वशुरस्य वंश्यः श्वशुर्यः । सूत्रसे यत् अलोप । जाति पढने से यदि क्षत्रिय से शूद्रा स्त्री मे उत्पन्न सन्तान हो या अविवाहिता से अन्य किसी जाति के हो तब 'अण' राजनः (बनेगा)वर्णशङ्करः टिलोप प्राप्त हुआ (११५५) **अन्** अण् परे प्रकृतिभाव हो (अन्का लोप न हो) इससे टिलोप नहीं हुआ । भावकर्ममें टिलोप हो प्रकृतिभाव न हो ऐसा क्यों? राजाका कर्मभाव वीरता प्रशासन क्षेत्ररक्षा राज्यं है । गुण वचन मानकर ष्यञ् । टिलोप हुआ (५६) ।।**संयोग** संयुक्त अक्षर हो तब अण परे इनका प्रकृति भाव हो, लोप न हो । प्रकृत्यैकाच् आया । चक्रण : अपत्यं अर्थ में अण् चक्रधारी का वंश , आदिवृद्धि आदि (५७) नम, मपुर्व में हो ऐसे अन् को प्रकृतिभाव न हो, किन्तु लोप हो वंश अर्थक अण् परे भद्रसा-

पूर्वोऽन् प्रकृत्या न स्यादपत्येऽणि । माद्रसामः । मपूर्वः किं? । सौत्वनः । अपत्ये किं? । चर्मणा परिवृतश्चार्मणो रथः । अवर्मण किं? । चक्रवर्मणोऽपत्यं चाक्रवर्मणः * 'वा हितनाम्न इति वाच्यम्' । हितनाम्नोऽपत्यं हैतनामनः हैतनामः ॥५८ **ब्राह्मो जातौ** ६।४।१७१॥ योगविभागोऽत्र कर्तव्यः । ब्राह्मः इति निपात्यतेऽनपत्येऽणि। ब्राह्मं हविः । ततो जातौ । अपत्ये जातावणि ब्रह्मणष्टि लोपो न स्यात् । ब्रह्मणोऽपत्यं ब्राह्मणः । अपत्ये किम् ! ब्राह्मी औषधिः । ५६ **औक्षमनपत्ये** ६।४।१७३॥ अणि टिलोपो निपात्यते । औक्षम् पदम् ।

नही, निषेध नही प्रकृतिभाव हुआ । अपत्य अर्थ में अण् परे क्यो ? चमड़ेसे घिरा. ढका हुआ रथ, **चार्मणः** यन अण् भिन्न है । प्रकृतिभाव हुआ निषेध नही । अवर्मणः क्यो पढा ? चक्रवर्माकी सन्तान अर्थमे वर्मनके अन्का निषेध नही हुआ । स्वभाव रह गया (वा०) विकल्प से हितनाम की सन्तान अर्थ में प्रकृतिभाव का निषेध हो, टिलोप **हैतनामः** हितनामके बच्चे, पक्षमें निषेध क्योकि मपूर्वक अन है । मपूर्व क्यो पढ़ा ? सुत्वनो अपत्यं **सौत्वनः** । म पूर्व

। ५८ । ब्रह्मन् शब्दसे अपत्य पौत्रादि अर्थमें अण् हुआ हो तब न म पूर्वोऽपत्ये । से प्रकृतिभावका निषेध, जाति अर्थ में ही हो । यदि ऐसा तब ब्रह्मणोऽपत्यं **ब्राह्मणः** (जाति अर्थ है प्रकृतिभाव बाधकर टिलोप होगा) रूप कैसे ? अथवा ब्रह्मा देवता अस्य **ब्राह्मं** हविः । ब्रह्माका भोग । यहाँ टिलोप नहीं हो सकेगा। क्योंकि प्रकृतिभावका निषेध जातिमें ही कहा गया। तब बोले योग विभागः=सूत्रका अलगाव करना चाहिए । ब्राह्म एक सूत्र, इसमें अनपत्ये अणि आयेगा । अस्य देवता अर्थमें अण् है । टिलोप होगा नियम नहीं लगेगा । टिलोप फलित । साऽस्य देवतासे अण् ब्राह्मः स्थाली पाकः, मुहूर्तश्च । तब (अ) जातौ दूसरा भाग । पुत्रादि अर्थमें स्वजातिकी विवाहितामें, उत्पन्न हो, तब टिलोप नहीं होता । ब्रह्माकी सन्तान अर्थमें अण् आदिवृद्धि **ब्राह्मणः** टि अन्का लोप नहीं हुआ । यह योगविभाग भाष्यमें है । अपत्य क्यों पढ़ा ? ब्राह्मी औषधिका नाम है । ब्रह्माकी बच्ची नहीं । अन्का लोप हुआ । जाति क्यों पढ़ा ? ब्राह्मणः अपत्यं, नारदः । विधिसे उत्पन्न । जाति नहीं, निषेध नहीं ब्रोऽपत्यं विग्रहे वंश अर्थमें अण टिलोपको प्रकृतिभाव प्राप्तका निषेध हुआ

। ५९ । उक्षन्शब्दसे अण् परे जो पुत्रादिसे भिन्न अर्थमें है अनका लोप निपातनसे हो । सूत्रमें पढ़े शब्दकी सिद्धिके अनुकूल क्रियाका लाभ निपातन है। उक्ष्णः इदं **औक्षं** पदम् उक्षा जी का स्थान 'टि' (अन्का) लोप निपातन

अनपत्ये किं । उक्ष्णोऽपत्यमौक्ष्णः । **११६० षपूर्वहन्धृतराज्ञामणि** ६।४। १३५। षपूर्वो योऽन् । तस्य हनादेश्च भस्यातो लोपोऽणि । औक्ष्णः । ताक्ष्णः । भ्रौणघ्नः । धृतराज्ञोऽपत्यं धार्तराज्ञः । षपूर्व इति किं ! साम्नोऽत्यं सामनः । अणि किं ! ताक्ष्ण्यः । ६१ **क्षत्राद्घः** ४।४।१३८।क्षत्रियः । जातौ इत्येव । क्षात्त्रिरन्यः । ६२ **कुलात्खः** ४।४।१३९। कुलीनः । तदन्तादपि । उत्तरसूत्रे

से । पुत्रादि अर्थ नहीं । अनपत्य क्यों ? वंश अर्थमें टिलोप नहीं, उक्षाकी सन्तान **औक्षणः** । यहाँ वंश अर्थ है, अन्लोप नहीं हुआ, किन्तु अलोप हुआ । जब टिलोप नहीं होगा तब प्रकृतिभाव होनेसे अन्लोप भी नहीं कहा । ११६० । **षपूर्व**-अल्लोपोऽनः आया भ- अधिकृत । ष पूर्वमें हो, ऐसा अन् उसका और हन् आदिके भसंज्ञक ह्रस्व अकारका लोप हो, अण् परे । बढ़ई का बच्चा अर्थमें, **तक्ष्णोः** अपत्यं अण् कहें । कारि-शिल्पि कलाकार अर्थमें ण्य को बाधकर अण् । तक्षन् अ षपूर्व हन् सूत्रसे भसंज्ञक अन्के अ का लोप हुआ । प्रकृतिभावको ढकेलकर । भ्रूण हन्ताका लड़का अर्थमें भ्रूणहन्से अण् लक्तसूत्रसे प्रकृतिभावको बाधकर अन्के अ का लोप हो । हन्तेः घः **भ्रौणघ्नः** धृतराजाकी सन्तान **कौरव** आदि अर्थमें धार्तराज्ञः । धृतराजन्–अण् अलोप, श्चुत्व । **षपूर्व क्यों** ? सामन्से सन्तान अर्थमें अण् आदि सामनः । यहाँ अ, लोप नहीं । क्योंकि षपूर्वमें नहीं है । अण् परे क्यों ? तक्षन् से लड़का अर्थमें (शिल्पि सेनान्त लक्षण ण्य ताक्ष्ण्यः) अन्का लोप न हो । अकारका लोप हो (६१) **क्षत्र** से अपत्य अर्थमें जाति अर्थ–समुदायसे खुले तभी 'घ' हो । क्षत्रस्यापत्यं अपनी जातिकी विवाहितासे पैदा हुआ । जाति अर्थ खुल रहा है घ--इय आदेश । यस्येति अलोप आदिः । क्षत्रियः जातिका बच्चा अर्थ अन्यक्षेत्रे क्षत्रियसे शूद्रामें उत्पन्न सन्तान । अत इञ् ।

। ६२ । **कुलात्** कुलवंश अर्थमें ख हो । कुलस्य वंशः अच्छी परम्पराके छात्र **ख–ईन आदिः कुलीनः तदन्तात्**=कुल अन्तमें हो उससे भी ख हो । यद्यपि समास प्रत्ययविधौ परिभाषासे तदन्तविधिका निषेध हैं । तथापि उत्तर (अगले) सूत्रमें अपूर्वपदात्=पढ़नेके प्रमाणसे तदन्तविधि मान्य । अन्यथा उसका निषेधक अपूर्वपद व्यर्थ होता । यथा आढ्यश्च कुलीनश्च इससे कुलका धनी होना सिद्ध नहीं होता । अतः कर्मधारय माननेपर **कुले आढ्यत्व प्रतीतिः** । यही ख होनेका फल है । धनवान्वंशका विद्यार्थी (६३) **अपूर्वपदात्** कुलशब्दसे यत् ढकञ् ख तीनों प्रत्यय हों विकल्पसे । पूर्वमें पद न रहे

अपूर्वपदात् इति लिङ्गात् । आढ्यकुलीनः । ६३ **अपूर्वपदादन्यतरस्यां यड्ढकञौ** ४।४।१४०। कुलात् इत्येव । पक्षे खः । कुल्यः–कौलेयः–कुलीनः । पदग्रहणं किं । बहुकुल्यः, बाहुकुलेयकः, बहुकुलीनः । ६४ **महाकुलादञ्खञौ** ४।४।४४१। अन्यतरस्याम् इत्यनुवर्तते । पक्षे खः । माहाकुलः, माहाकुलीनः, महाकुलीनः । **दुष्कुलाड्ढक्** ४।१।१४२। पूर्ववत्पक्षे खः । दौष्कुलेयः–दुष्कुलीनः ६६**स्वसुश्छः** ४।१।१४३। स्वस्रीयः । ६७ **भ्रातुर्व्यच्च** ४।१।४४। चाच्छः अणोऽवादः । भ्रातृव्यः–भ्रात्रीयः । ६८ **व्यन्सपत्ने** ४।१।१४५। भ्रातुर्व्यन् स्यादपत्ये, प्रकृतिप्रत्ययसमुदायेन शत्रौ वाच्ये ।भ्रातृव्य :, शत्रुः । 'पाप्मना भ्रातृ-

---

तब । पक्ष में ख भी होता है । कुलस्यापत्यं खानदानी परिवार कुलसे यत् अलोप कुल्यः ढ़कञ् ढ़–एय आदिवृद्धि **कौलेयकः** ख–ईन् **कुलीनः** । अच्छे कुल की सन्तान । सूत्रमें पूर्वपद **क्यों** पढ़ा ? इसलिए बहुकुल्य, बहुत अधिक कुलीन अर्थमें विभाषा सूपः से बहुच्प्रत्यय है, पद नहीं तत्र मा भवतु अतः यत् ढ़कञ् ख होते हैं । पद न पढ़ते तब **अपूर्ववान्**=पूर्वमें कुछ न हो ऐसा **अर्थ** होता तब उक्त प्रत्यय न होते । अतः तीनों रूप बने । बहुच्का इषदूनः थोड़ा कम अर्थ थोड़े दिनों का **कुलीनः** ।

। ६४ । महाकुल शब्दसे अञ् खञ् विकल्पसे हो पक्षमें ख भी । अन्यतरस्यां भी आता है । अन्यथा **महाविभाषाधिकारे अपवादेन मुक्ते उत्सर्गस्य अप्रवृत्तेः** से खञ् न होता महाकुलस्यापत्यं (सम्राटकी सन्तान सूर्यवंशमें) अञ् आदिवृद्धि घ खञ् ईन् तव **माहाकुलीनः** । जब घ--इय हुआ । तब आदिवृद्धि नहीं । ११६५ । **दुष्कुल** शब्दसे ढ़क् हो विकल्पसे । पक्षमे ख भी । दुष्टं कुलं यस्य स **दौष्कुलेयः** चरित्रभ्रष्ट वंश परम्परा के बच्चे । दुष्कुलसे ढ़--एय, किति च वृद्धि । जब 'ख' तब ईन दुष्कुलीनः चाण्डालः (६६) **स्वसासे** छ हो, पुत्रादि अर्थमें । स्वसृसे छ-ईय ऋ को र यण् स्वादिः ।

। ६७ । **भ्रातृ** से वंश अर्थमें अर्थमें व्यत् । च पढ़नेसे 'छ' भी हो, अण्को बाधकर । भ्रातुः अपत्यं **भ्रातृव्यः** । भ्रातृसे व्यत् जब छ हुआ तब ईय, ऋको 'र' यण् **भ्रात्रीयः** भतीजा । ६८ । व्यन्सपत्ने शत्रु अर्थ (प्रकृति प्रत्यय समुदायसे) निकलता हो तब भ्रातृशब्दसे पुत्रादि अर्थमें व्यन् प्रत्यय हो । **भ्रातृभ्यः** दुष्मन् भतीजा भाईका पुत्र कौरवादि । भ्रातृका महत्व नहीं, किन्तु व्यन्प्रत्ययार्थ शत्रु अर्थका प्राधान्य, भाईका लड़का शत्रु हो । यदि ऐसा **पाप्मनाभ्रातृव्येण** पाम्नःमें अपत्य अर्थ नहीं व्यन्--कैसे ! तब बोले **उपचारात्**=

व्येण' इति तूपचारात्। ६९ **रेवत्यादिभ्यष्ठक्** ४।१।१४६। ११७० **ठस्येकः** ७।३।६०। अङ्गात्परस्यठस्येकादेशः स्यात्। रैवतिकः। ७१ **गोत्रस्त्रियाः कुत्सने ण च** ४।१।१४७। गोत्रं या स्त्री तद्वाचकाच्छब्दाण्णठकौ स्तः कुत्सायाम्। सामर्थ्याद्यूनि। गार्ग्या अपत्यं गार्गः—गार्गिको वा जाल्मः। 'भस्याऽढे तद्धिते:' इति पुंवद्भावाद्गार्ग्य शब्दाण्णठकौ। 'यस्य' इति लोपः। आप-

---

हिंसकत्वगुणयोगात् लाक्षणिकः अस्त्रीपङ्कं पुमान्पाप्मा पाप्मकिल्बिषकल्मष इत्यमरः। नहि पाप्मं भ्रातुः अपत्यं भवति। अतः भाक्त एवायं प्रयोगः। भाईका पुत्र पाप नहीं होता उसका पापीमें लक्षणा, हिंसा सम्बन्धसे।

। ६९। **रेवती** अश्वपाली इत्यादिगण पठितसे ठक् हो पुत्रादि अर्थमें ढ़क् आदिको बाँधकर (११७०) ठस्येकः। अङ्गसे परे ठ के स्थानमें इक आदेश हो रेवत्याः अपत्यं--**रैवती**की सन्तानका नाम **रैवतिकः**। रेवतीको अङ्गसंज्ञा यस्मात्प्रत्ययविधिसे। ठ को इक अदन्त आदेश आदिः। अङ्गसे परे ठ को इक क्यों कहा ? कर्मठः का ठ अङ्गसे परे नहीं, उसको इक् न हो। **ठस्येति सङ्घातग्रहणम्** इस भाष्यसे, ठ का अ उच्चारणार्थ नहीं। सङ्घात एव समुदाय ही मान्य इक का अ उच्चरणार्थ है।

७१ **गोत्रस्त्रियाः**। **ण** लुप्ता प्रथमा। चसे ठक आया। गोत्र अर्थ में उसके वाचकशब्दसे ण और ठक हो निन्दामे गोत्रसे गोत्र अर्थमें प्रत्यय नही होते, ऐकोगोत्र के नियम से। तब बोले **सामर्थ्यात्**=सूत्र पढनेकी शक्ति से युवा अपत्य अर्थमें ण ठक होगे। **गार्गस्य** गोत्रा अपत्यं स्त्री **गार्गी**। गर्गादि यजश्च डीप यस्येति अलोप। हलस्तद्धितस्यसे अकारलोप। **गार्गी** अपत्यं युवा प्रपौत्र अर्थ पिता के अज्ञान में माता का आक्षेप निन्दा है। अज्ञात पिता के पुत्र अर्थ में गार्गी का सन्तान निन्दा में ण अ **आदि**। पक्षमें ठक इक **गार्गिकः** यस्येति लोप। जाल्म = गार्गी का ऐसा पुत्र है, जिसके बाप का पता नही इस प्रयोगमें भस्याढेःसे पुलिङ्ग होकर ङीप हटेगा। गार्ग्य शब्द से ण, ठक होगा यस्येति अलोप, आपत्यस्य से य लोप होगा। **गर्गः गार्गिकः** बनेगे। यह वार्ता समूहाधिकारमें भिक्षादिभ्यो पर स्फुट होगा **स्त्रियाः क्यो** पढा ? औपगवस्य अपत्यंयुवा **औगवी** प्रपौत्री जिसके बाप का पता नही इति निन्दा। गोत्र क्यो कहा ? **कारिकेयो** जाल्मः जिसके पिता का पता नही। ण पढ़नेका गल ग्लुचुकायन्याः अपत्यं **ग्लौचुकायनः** जाल्मः फिञ् अन्त से ण वृद्ध्यर्थ है कुत्सने किं निन्दा क्यो **गार्गेयो** माणवकः ण ठक नही हुए। निन्दा होनेसे

त्यस्य, इति यलोपः । ७२ **वृद्धाट्ठक सौवीरेषु बहुलम्** ४।१।१४८। सुवीर-देशोद्भवाः सौवीराः । वृद्धात्सौवीरगोत्राद्यूनि बहुलं ठक्स्यात्कुत्सायाम् । भागवित्तेः, भागवित्तिकः । पक्षे फक् । भागवित्तायनः । ७३ **फेश्छ च** ।४।१।१४९। फिञन्तात्सौवीरगोत्रादपत्ये छः ठक्च कुत्सने गम्ये । यमुन्दस्यापत्यं—यामुन्दायनिः । तिकादित्वात्फिञ् । तस्यापत्यं यामुन्दायनीयः—यामुन्दायनिकः । कुत्सने किं ! यामुन्दायनिः । औत्सर्गिकस्याणो ण्यक्षत्रिय इति लुक् सौवीर इति किं ! तैकायनिः । ७४ **फाण्टाहृतिमिमताभ्यां णफिञौ** ४।१।१५०। सौवीरेषु । नेह, यथासंख्यम् । अल्पाच्तरस्य परनिपातालिङ्गात् इति वृत्तिकारः । भाष्ये तु यथासंख्यमेव इति स्थितम् । फाण्टाहृतः, फाणाहृतायनिः मैमतः, मैमतायनिः । ११७५ **कुर्वादिभ्यो ण्यः** ४।१।२५१। अपत्ये । कौर-

---

७२ ।। बृद्धसे वृद्धिर्यस्याचामादिः से वृद्धसंज्ञा हुई हो, उससे ठक हो । बहुलम् इच्छानुसार । सुवीरदेशमें उत्पन्न व्यक्ति सौवीराः तेषु, उनके अपत्य अर्थमें ठक् पढ़ा , ण निवृत्तिके लिए । वृद्धसंज्ञकसे सौबीर गोत्रसे प्रपौत्र अर्थमें इच्छानुसार ठक हो, निन्दा अर्थमें भागवित्तस्य सौवीर गोत्रापत्यं **भागवित्तिः** तस्यापत्यं युवाअर्थमें ठक-इक **भागवित्तिकः** पक्षमें यञिञोश्चसे फक्आयन **भागवृत्तायनः**

७३ ।। **फेश्छ** फिञअन्तमें हो ऐसे सौबीर गोत्रसे अपत्य **अर्थमें** छ, ढक् भी हो । निन्दा अर्थ में । यमुन्दा सुवीर देशका नाम, उससे फिञ, वंश अर्थमें तिकादि मानकर इञ, उससे युवा अर्थमें छ-ईय और ठ—इक **यामुन्दायनिकः** निन्दा अर्थ है । कुत्सन क्यो कहा ? छ या ठक न होने के लिए । जैसे यामुन्दा यनि तस्यापत्यमे अण औत्सर्गिक स्वाभाविक है । सौबीर क्यों पढ़ा? तैकायनेः अपत्यं युवा अर्थ में सौवीर नही है । छ, ठक न हो, किन्तु अण् लुक् पूर्ववत

७४ ।। **फाणटाहृति** मिमत और सौबीर से गोत्र अर्थमें, ण फिञ् -हो । फाण्टाहृतस्य गोत्रापत्यम् अत इञ् तस्याः अपत्यं युवा, ण और फिञ-आयन, यहां गणना क्रम नही है । **अल्पाच्तरस्य** = कम अच्वाले को पर निपात होना प्रमाण है । इति वृत्तिकारः । भाष्यमतमें गणनाक्रम ही है निन्दा अर्थमें प्रत्यय होगे । ण हुआ **फाण्टाहृतः** फिञ होनेपर दुसरा रुप । मिमतस्यापत्यं (सुबीर गोत्र असम्भव व्याख्यानसे) अण, मैमतः । फिञमें दूसरा रुप (७५)। **कुर्वादि** गण में पढ़े शब्दोंसे पुत्रादि अर्थमें ण्य हो । सौवीर नही आया । कुरुनाम ब्राह्मण का, तस्य अपत्यानि उसके बच्चे अर्थमें ण्य, कुरुय ओगुणें, अव्, आदिवृद्ध । ण्य कहेगे उसको तद्राजसंज्ञा बहुवचनमें लुक । **कुरवः** क्षत्रियाः इसका सूचक

क्याः ब्राह्मणाः, वावदूक्याः सम्राजः क्षत्रिये। साम्राज्यः। साम्राजोऽन्यः।
७६ **सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च** ४।१।१५२। एभ्यो ण्यः। एतिसञ्ज्ञायाम् । इति सस्य षः। हारिषेण्यः। लाक्षण्यः। कारिः शिल्पी, तस्मात् तान्तुवाय्यः। कौम्भकार्यः। नापित्यः। ७७ **उदीचामिञ्** ४।१।१५३।। हारिषेणिः। लाक्षणिः। तान्तुवायिः। कौम्भकारिः। नापितात्तु परत्वात्फिञेव।* नापिता-

---

बहुवचन-ब्राह्मणाः गार्ग्याः। वावदूकस्य अपत्यानि पुनः पुनः अतिशयेन वक्ति यङन्त से (हर क्षण वक्ता) ण्य आदि बहुवचने **वावदुक्याः सम्राजः** कुर्वादि का गण सूत्र हैं। **सम्राट** शब्द से क्षत्रिय अर्थमें ण्य हो, क्षत्रिय संन्तान अर्थमें ही हो, नियमके लिये गण सूत्र पढ़ा। आदिवृद्धिः **साम्राज्यः**। अन्य कोई अर्थ हो तब अण होगा, ण्य नही। **सम्राट से साम्राज्यः** धृतराष्ट्रः पाण्डुः **सम्राजः**। विदुरः (शूद्रादौ उत्पन्नः दासीमें पैदा हुआ) **वामरथस्यापत्यं** वामरथ्यः बहुवचनमें **लुक् वामरथाः** छात्राः। वामरथी प्राचां ष्फ। यञन्तसे **वामरथ्यायनी** स्त्री वामरथानां सङ्घः अङ्कः लक्षण, छ को बाँधकर अण्। **सत्यङ्कुरः** बलभीकार, बुद्धिङ्कार इत्यादि।

।७६। **सेनान्त**, लक्षण, कारि इनसे ण्य हो पुत्रादि अर्थमें। सेना अन्त-हरिषेण नामक कोई है, एतत्संज्ञायाम्से ष, उसको असिद्ध कर, सेनान्त मिलने पर 'ण्य' अनुबन्धलोप आदिवृद्धि अकारलोप **हारिषेण्यः** दौर्योधनिः। हरिकी नारायणी सेना जिसकी तरफ हो उसकी सन्तान। लक्षणम् अस्ति अस्य लक्षणः पुरुषः, तस्य अपत्यं **लाक्षण्य** होनहारकी सन्तान, लक्षणसे ण्य आदि। कारिः शिल्पी कलाकार अर्थवाचक शब्दसे ण्य हो, तन्तुवायस्य अपत्यं **वस्त्र** बुननेवाले शिल्पीकी सन्तान अर्थमें तन्तुवायसे ण्य, आदिवृद्धि आदिः। जुलाहाके बच्चे। कुम्भं करोतीति कुम्भकारः तस्य पुत्रादिः **कौम्भकार्यः**। घड़ा बनानेवालेका बच्चा कलाकार है। नापितस्यापत्यं **नापित्य** ण्य आदि नाईका कलाकार पुत्र।

।७७। **उदीचाम्** उत्तरदिशावालोंके मतमें सेनान्तशब्द लक्षण और कारिशब्द से इञ् होता है। उनके मतमें हरिसेनासे पुत्रादि अर्थमें इञ् **हारिषेणिः**। लक्षणवालोंकी सन्तान **लाक्षणिः**। बस्त्र बुननेवालेका वंश तन्तुवायसे इञ् आदिवृद्धि आदि **तान्तुवायिः**। मिट्टीका वर्तन बनानेवालो का वंश **कौम्भकारिः**। **उत्तरवालोंके मतमें** इञ् अन्यके मतके भेदक दो सूत्र। नापितशब्दसे **परत्वात्**=पर होनेसे इञ् को बाधकर फिञ्

यनिः। तक्ष्णोऽण् उपसंख्यानम्। 'षपूर्व–' इत्यनोऽकारलोपः। ताक्ष्णः। पक्षे ताक्षण्यः। ७८ **तिकादिभ्यःफिञ् ४।१।१५४॥** तैकायनिः। ७९ **कौसल्यकार्मार्याभ्यां च ४।१।१५५॥** अपत्ये फिञ्। इञोऽपवादः। परमप्रकृतेरेवायमिष्यते। प्रत्ययसन्नियोगेन प्रकृतिरूपं निपात्यते। कोसलस्यापत्यं कौसल्यायनिः। कर्मारस्यापत्यं कार्मार्यायणिः।* 'छागवृषयोरपि'। छाग्यायनिः। वार्ष्यायणिः। ११८० **अणो द्व्यचः ४।१।१५६॥** अपत्ये फिञ्। इञोऽपवादः। कार्त्रायणिः। अणः इति किं! दाक्षायणः। द्व्यचः किम्! औपगविः।

होगा। उदीचां वृद्धात् सूत्रसे फको आयन नापितायनिः। नाईका परिवार (वा०) **तक्षन्** से अण् कहें, उत्तरवालोंके मतमें। तक्ष्णोः अपत्यं शिल्पी बढ़ई का बच्चा अर्थमें अण्। तक्षन् अ। अन्के अ का लोप (षपूर्वहन् सूत्रके प्रकृति भावसे) टिलोप नहीं। प्राचीनोंके मतमें। कारि लक्षण कलाकार अर्थमें ण्य ताक्ष्ण्यः। ये चाभावकर्मणोः प्रकृतिभावसे टिलोप नहीं।

।७८। **तिकादिगण** में पढ़े शब्दोंसे इञ्को बाधकर फिञ् कहें। तिकस्यापत्यं **तैकायनिः** फिञ् आयन आदि। ७९। **कौशल्य** और कार्मार्यसे वंश अर्थमें फिञ् हो, इञ्को बाधकर। यह सूत्र परमप्रकृति कोशल कर्मारसे ही कार्य करेगा फिञ्, युट् भी होगें, प्रत्ययके सम्बन्धमें परम प्रकृतिका निपातन होता। अतः कौशल्यकी प्रकृति कोशलस्यापत्यं **कौशल्यायनिः** कोशलसे फिञ् युट्। अलोप आदिवृद्धि फ–आयन। कर्मारकी परम्परा अर्थमें फिञ् युट आदि (वा०) **क्षाग वृष** से भी फिञ् युट् कहें। छागस्योपत्यं बकरेका बच्चा युट् फिञ् छाग य, फ–आयन अ लोप। वृषस्यापत्यं वर्धनशील का वंश **वार्ष्यायणिः**। फिञ् प्रकरणें उपगुकोशलकर्मारछागवृषाणां युट् चादिष्टस्य।

।११८०। **अणो**–दो अच् वाले अण् प्रत्यय अन्त शब्दसे पुत्रादि अर्थमें फिञ् हो, इञ को बाँधकर। कर्तुः छात्रः कार्त्रः (कर्तृसे तस्येदंसे अण् यण् आदिवृद्धि) कार्यकर्ता का शिष्य। उसकी सन्तान कार्त्रस्यापत्यं **कार्त्रायणिः** फिञ् आयन। अण् अन्त क्यों कहा? दक्षस्यापत्यं दक्षिः में इञ् अन्त है, उससे फिञ् न हो किन्तु दाक्षेरपत्यं विग्रहमें यञिञोश्चसेफक् आयन णत्व, **दाक्षायणः**। दोअच् क्यो कहा! उपगोः गोत्रस्य अपत्यं औपगवः। उसकी सन्तान युवा **औपगवी**। उपगुकी प्रपौत्री, अनेक अच् है, दो अच् नहीं फिञ् न हो। कर्तुः अपत्ये, कहेगें तब कुर्वादिगणमें पाठसे ण्य ही होगा। (वा०) **त्यादादिगण** पठित हो उनकेसम्बन्धमें फिञ् विकलपसे बोले। त्यद् से फिञ् **त्यादायनिः** पक्षमें अण्

'त्यदादीनां फिञ्वा वाच्यः' त्यादायनिः-त्यादः)। ८१ **उदीचां वृद्धादगोत्रात्** ४।१।१५७॥ आम्रगुप्तायनिः। प्राचां तु आम्रगुप्तिः। वृद्धात्किम्! दाक्षिः। अगोत्रात् किम्! औपगविः। ८२ **वाकिनादीनां कुक्च** ४।१।१५८॥ अपत्ये फिञ् वा। वाकिनस्यापत्यं वाकिनकायनिः—वाकिनिः। ८३ **पुत्रान्तादन्यतरस्याम्** ४।१।१५९॥ अस्माद्वा फिञ्सिद्धः, तस्मिन्परे पुत्रान्तस्य वा कुग्विधीयते। गार्गीपुत्रिकायणिः-गार्गीपुत्रायणिः--गार्गीपुत्रिः। ८४

त्यादः। ये दोनोंको त्यदादीनि च से वृद्धसंज्ञा, उदीचां वृद्धात्से फिञ् सिद्ध। भाष्यमें वार्तिक अदृष्ट (८१)। **उदीचां** उत्तरदिशाके मतमें जो वृद्धसंज्ञक हो, गोत्रप्रत्यय अन्तमें न हो उस शब्दसे **फिञ्** हो। आम्रगुप्तस्य वंशः विग्रहमें फिञ् आयन किन्तु प्राचां मते इञ् अदन्तसे **आम्रगुप्तिः**। वृद्धसंज्ञक क्यों कहा? दक्षस्यापत्यं दक्षका आदि अच् वृद्ध नहीं, फिञ् न हो। अगोत्र क्यों पढ़ा? औपगविः गोत्र अर्थमें इञ् है, फिञ् न हो। (८२) **वाकिनि** आदिगण पठित शब्दके सम्बन्धमें फिञ् विकल्प। प्रकृतिको कुक् क आगम हो। वचनं वाकः सो अस्ति अस्य वाकिनः (वकील) अतएव निपातन। सूत्रमें पढ़े जानेके सामर्थ्यसे इनन् प्रत्यय। वाकिनस्य अपत्यं वकीलकी सन्तान अर्थमें फिञ् कुक् फ-आयन आदिः वाकिन फ आयन इ मिलकर **वाकिनायिनि**; पक्षमें इञ् **वाकिनिः** फिञ् नहीं, कुक् भी नहीं, एकयोग निर्दिष्टानां सहैव प्रवृति सहैव निवृत्तिः। अगारे एधते। **पृषोदरादीनि यथोपदिष्टं** से आदि अ का लोप **गारेधः**, बन्धनमें बढ़ता है। शकन्ध्वादिपररूप, गारेधस्यापत्यं **गारेधकायनिः**। **चर्मिवर्मिणोश्च**, न लोपश्च **चर्म वर्म**से वृह्यादि इनि, उससे अपत्य अर्थमें फिञ् कुक् नलोप, आदिवृद्धि **चार्मिकायिणिः** (चर्मकारका परिवारः) वर्म अस्ति अस्य वर्मी, तस्य अपत्यं (वर्म कवच बनाने वाले का वंश) **वार्मिकायिणिः**। कुक् होनेपर अन्त्य नकार नहीं, लोप कैसे? अतः वचन पढ़ा। जब फिञ् नहीं, तब **गारेधिः**। **चार्मिणः** वार्मिणः आदि। **पुत्रान्तात्** पुत्र अन्तमें हो उससे फिञ् विकल्पसे हो और कुक् भी। पुत्रान्तको विकल्पसे कुक्। उदीचां वृद्धात् आया, उसीसे फिञ् होता इससे कुक् मात्रका विधान। गार्गीपुत्र शब्दसे फिञ् और पुत्रान्तको कुक्, जब कुक् नहीं तब दूसरा रूप, जब फिञ् नहीं तब अत इञ् आदि गार्गिः पुत्रिः।

। ८४। **प्राचीनके मतमें** अवृद्धात् - जिसको वृद्धसंज्ञा न हुई हो। उससे फिञ् हो, प्रयोजनके अनुसार। ग्लुचकस्यापत्यं विग्रहमें फिन् आदि। सूत्रमें अवृद्ध क्यों पढ़ा! राजदन्तीं यह वृद्धिसंज्ञक है क्योंकि अचोंके आदि अच् रा में

प्राचामवृद्धात्फिन्बहुलम् ४।१।१६०।। ग्लुचुकायनिः । ८५ **मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च** ४।१।१६१।। समुदायार्थो जातिः मानुषः--मनुष्यः । ८६ **जनपदशब्दात्क्षत्त्रियादञ्** ४।१।१६६।। जनपदक्षत्त्रिययोर्वाचकादञ्स्यादपत्ये। 'दाण्डिनायन' इति सूत्रे निपातनाट्टिलोपः। ऐक्ष्वाकः। ऐक्ष्वाकौ। 'क्षत्त्रियसमानशब्दाज्जनपदात्तस्य राजन्यपत्यवत्'। तद्राजमाचक्षाणस्तद्राज इत्यन्वर्थसञ्ज्ञासामर्थ्यात्। पञ्चालानां राजा पाञ्चालः।* 'पूरोरण्वक्तव्यः' पौरवः।* 'पाण्डोर्ड्यण्' पाण्ड्यः। ८७ **साल्वेयगान्धारिभ्यां च** ४।१।१६७।। आभ्यामपत्येऽञ्। 'वृद्धेत्—' इति ञ्यङोऽपवादः। साल्वेयः।

आ वृद्ध है। बहुल पढ़नेसे दाक्षिःमें फिञ् नहो हुआ।

११।८५। मनु शब्दसे उत्पन्न अर्थमें अञ् यत् हो, षुक् भी,। यदि प्रकृति-प्रत्यय मिलकर जाति अर्थ कहें। मनोः अपत्य मानुषः प्रियव्रतः उत्तानपादः आदिः। मनुसे अ षुक् मनुष् अ आदिवृद्धिः। मानुषः। जब यत् हुआ मनुष्यः आदिवृद्धिः नहीं। **अपत्ये कुत्सिते मूढ़े मनोरौत्सर्गिकः स्मृतः। नकारस्य च मूर्धन्य तेन सिद्धयति माणवः** मनुसे अण् होगा। तब माणवः बनेगा। विहित का अनुष्ठन न होना कुत्सित हैं। वेद न पढ़ना मूढ़ता है।

।८६। जनपद अर्थ हो, क्षत्रिय अर्थभी निकलता हो, ऐसे शब्दसे अञ् हो सन्तान अर्थमें। इक्ष्वाकु राजाका नाम और देशका भी नाम हैं। तस्य राज्ञो अपत्यं उस देशके राजाकी सन्तान अर्थमें अञ्। अण् को बाधकर। ओर्गुणः को बाधकर दाण्डिनायनहास्तिनायन से उकार का लोप। आदिवृद्धि, ऐक्ष्वाकः देशके राजाकी सन्तान बहुवचनमें लुक् कहेगें पाञ्चाल आदि जनपद =जिला अर्थमें बहुवचन, क्षत्रिथ अर्थमें एकवचन। जनपद क्यों पढ़ा? द्रौह्यवः द्रुष्ट की सन्तान यहाँ अञ् न हो। केवल क्षत्रिय अर्थ है देश नहीं।

।८७। क्षत्रिय वाचक शब्दके समान जनपदवाचक शब्द हो उसके षष्ठयन्तसे राजन्य अर्थमें अपत्यतुल्य प्रत्यय हो। यह वार्तिक सूत्रके सिद्ध अर्थको कहता है। तद्राजसंज्ञक जदपद आदिसे विधान किये गये अञ् आदिको **आचक्षाणः**=कहनेवाला राजाका वाचक (तद्राजा अन्वर्थ घटितसंज्ञाके सामर्थ्यसे) अपत्य तुल्य प्रत्यय हो। क्षत्रियेण समानः शब्दो यस्य जनपदस्य सोऽयं समानशब्दः पंजाबियों का राजा, देश अर्थमें बहुवचन अपत्यकी तरह अण् आदिवृद्धि आदि। पाञ्चालः क्षत्रिय क्यों? पाञ्चालोनाम कश्चित् ब्राह्मणः तस्यापत्यं पाञ्चाली। विदेहस्यापत्यं वैदेही (वा०) पुरु से अण् कहें। यह जनपद

गान्धारः। तस्य राजन्यप्येवम्। ८८ द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण् ४।१।१६८।। अञोऽपवादः। द्व्यच्। आङ्गः। वाङ्गः। सौह्मः। मागधः। कालिङ्गः। सौरमसः। तस्य राजन्यप्येवम्। ८९ वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ् ४।१।१६९।। वृद्धात्। आम्बष्ठ्यः। सौवीर्यः। इत् - आवन्त्यः। कौन्त्यः। कौसल्यः। अजादस्यापत्यमाजाद्यः। ११९० कुरुनादिभ्यो ण्यः ४।१।१७०।।

वाची नहीं, तेन दोव्यतिसे अण् होता, यह अण् क्यों कहा? तद्राजसंज्ञाके लिए देश अर्थमें द्व्यच् मगधसे ही अण् होगा। पुरुसे अण् पौरवः आदिवृद्धि उकार का गुण अवादेशे। पाडुसे ड्यण् हो देश या राजा अर्थमें। यहाँ पाडुका न श्वेत गुण अर्थ हैं न युधिष्ठिर पिता अर्थ है, जनपद पढ़े जानेसे। पाण्डोः अपत्यं पाण्डुदेशस्य राजा वा पाण्ड्यः पाण्डुसे ड्यण्। डित्से भसंज्ञक टिका लोप। आदिवृद्धि।(८७) साल्वेय और गान्धारिसे देश या देशके राजाके अपत्य अर्थमें अञ् हो। जनपदशब्दात्से इञ् होता यह सूत्र क्यों? तब बोले वृद्धेत्कोशल आदि सूत्रसे ञ्यङ्को बाँधनेके लिए। शाल्वानां राजा, देशस्य वा राजा वा शाल्वेयः अपत्य अर्थमें अञ् आदि। गन्धारीणां राजा तस्या अपत्यं गान्धारः राजनि अण्। राजा अर्थमें भी वही रूप। (८८) दो अच् वाले शब्द मगध कलिङ्ग सूरमस इनसे अण् हो, अञ् को बाँधकर। जनपद शब्दसे जो अञ् होता है। दो अच् अङ्ग वङ्ग सुह्म ये दो देश और क्षत्रियवाची है उनकी सन्तान अर्थमें अण् आदि। अङ्गस्यापत्यं आङ्गः वङ्गस्य वाङ्गः सौह्मस्य सौह्म उड़ीसा बंगाल आसाम तस्य=उनके राजा अर्थमें भी वही रूप। अङ्गस्य राजा आङ्गः मगधस्यापत्यं या मगधानां राजा तस्य वंशः मागधः। कलिङ्गानां राजा तस्य वंशः केरलके राजा की सन्तान या केरल देशमें उत्पन्न। सौरमस देशके राजा अर्थमें अण्। (८९) वृद्धेत, वृद्धसंज्ञा हुई हो, इत् कोशल अजादसे जनपद और क्षत्रिय राजासे अपत्य अर्थमें ञ्यङ हो। वृद्धका उदाहरण—आम्बष्ठ और सौवीर शब्द जनपद और क्षत्रिय अर्थमें है पुत्रादि अर्थमें। आम्बष्ठदेशस्य राजा तस्य अपत्यं, सुवीरदेशस्य राजा तस्य अपत्यं अर्थे ञ्यङ्। इत् अन्त आवन्त्यः अवन्ती देश और राजा अर्थमें ञ्यङ् आदि। कुन्त्याः अपत्य कौन्त्यः कोशलस्य कौशल्यः। अजादस्य देशस्य राजा उसकी सन्तान या अजानां राजा अजाद्यः दोनों अर्थमें साधु है।

११९० कुरु और नादि-न आदिर्यस्य, नकारादि शब्द जनपद या क्षत्रिय अर्थ में हो, तब अपत्य और राजा अर्थ में ण्य हो, अनुबन्धलोपे कुरोः अपत्यं

कौरव्य: । नैषध्य: । 'स नैषधस्यार्थपते:' इत्यादौ तु शैषिकोऽण् । ९१ साल्वावयवप्रत्यग्रथकलकूटाश्मकादिञ् ४।१।१७१।। साल्वो जनपदस्तदवयवा उदुम्बरादयस्तेभ्य: प्रत्यग्रथादिभ्यस्त्रिभ्यश्च इञ् । अञोऽपवाद: । औदुम्बरि: । प्रात्यग्रथि: । कालकूटि: । आश्मकि: । राजन्यप्येवम् । ९२ ते तद्राजा:४।१।१७२।। अञादय एतत्संज्ञा: स्यु: । ९३ तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम् २।४।६२।। बहुष्वर्थेषु तद्राजस्य लुक्स्यात्तदर्थकृतबहुत्वे, न तु स्त्रियाम् । इक्ष्वाकव:, पञ्चाला: इत्यादि । कथं तर्हि 'कौरव्या: पशव:' 'तस्यामेव रघो:

या कुरुणां राजा संतान और राजा अर्थ में कुरु से ण्य, उ स्थाने ओगुंण वान्त (अव) आदिवृद्धि कौरव्य: । नैषधानां राजा निषेधस्य नैषध्य:। स नैषधस्य अर्थपति: धनवान् । नैषध राजा, यहां ण्य क्यो नही तब बोले-शेषे भव: शैषिक: अण् वोध्य: वस्येदवंता । (९१)। शाल्व एक जनपद प्रान्त, है उसका अवयव उदुम्बर, तिलखला:, भद्रकार, युगन्धरा, भूलिङ्गत दण्डाश्च, शाल्ववयव, सङ्गिता अजमीढ़ अजकडा भी भाष्यमें, ये शाल्व प्रान्तके अवयव है। इनसे और प्रत्यर्थ कलकूट अस्मक, देश और राजाअर्थमें इञ् हो अञ् को बाधकर । उदुम्बरस्य अपत्यं या उदुम्बराणां राजा जनपदसे प्राप्त अञ को बाधकर । शाल्वका अवयवसे इञ आदि । एवं तैलखलि: तिलखल देश की सन्तान या उसके राजा । मद्रकारदेश के या उनके राजा माद्रकारि: युगन्धर देश की जनता उनके राजा यौगन्धरि: इत्यादि । प्रत्यग्रथ जनपद के लोग या उनके राजा अर्थ में अण् को बाधकर इञ् । कलकुटस्यापत्यं कलकूटनां राजा अर्थ इञ् आदि कालकूटि: अस्मकानां राजा आस्मकि: । राजा अर्थमें भी ऐसे ही बनेगे (९२) ते अञादयऽ = जनपद शब्दात = से लेकर अञ, अण, यण, ञ्यङ, ण्य, इञ् इन प्रयत्यों की तद्राजसंज्ञा हो क्यकि ये अवन्त्यऔर राजा अर्थमें होते है । इसलिये इनकी तद्राजसंज्ञा कही गयी । तत् शब्दसे इन्ही का ग्रहण । यह संज्ञा गोत्र युव, काण्डसे अलग है(९३) तद्राजसंज्ञकअञ अण ण्य इञ् का बहुवचन अर्थमें लुक् हो । तेनैव तदकृते तद्राजसंज्ञक प्रत्ययके अर्थमें बहुवचन रहनेपर वह अर्थ स्त्री० हो, तब न लुक । सूत्रमें तेन क्यो पढ़ा ? प्रियो वाङ्गो येषांते प्रिय बङ्गा: बंगालियोके प्रिय लोग । यहां बहुवचन राज संज्ञाके अन्दर नही है । लुक न हो इक्ष्वाको: अपत्यानि इक्ष्वकूणां राजन: अर्थमें जनपदशब्द से अण् । उसको तद्राजसंज्ञा, उसका फल प्रत्ययगत बहुवचन रहनेपर अण् का लुक तब आदिवृद्धि नही रही । जसमें इक्ष्वाकव: । पञ्चालस्य अप-

पाण्ड्याः' इति च। कौरव्ये पाण्ड्ये च साधव इति समाधेयम्। 'रघूणा मन्वयं वक्ष्ये' 'निरुध्यमाना यदुभिः कथञ्चित्' इति तु रघुयदुशब्दयोस्तदपत्ये लक्षणया। ६४ **कम्बोजाल्लुक् ४। १। १७३** ॥ अस्मात्तद्राजस्य लुक्। कम्बोजः। कम्बोजौ।* 'कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम्' चोलः। शकः। द्व्यच्लक्षणस्याणो लुक्। केरलः। यवनः। अञो लुक्। 'कम्बोजाः समरे' इति पाठः। सुगमः। दीर्घपाठे तु कंबोजोऽभिजनो येषामित्यर्थः। 'सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽणञौ' इत्यण्। ११६५ **स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च ४।१।१७४।** तद्राजस्य

त्यानि अर्थमें अण् आदिपूर्ववत् वृद्धि नहीं रही। जस्में **पञ्चाला** इत्यादि अङ्गस्य अपत्यानि अङ्गाः। बंगस्य अपत्यानि **बङ्गाः** राजसंज्ञा लुक प्राग्वत्। यदि ऐसा तब कुरोः अपत्यानि **कौरव्याः** पशवः दुर्योधनादिः। यहा ण्यका लुक क्यों नहीं। पाण्डोः अपत्यानि **पाण्डवाः** यहा ड्यणका लुक क्यो नही, क्योंकि तद्राजसंज्ञक है। तब बोले **साधवः**=तत्र साधुः सूत्रसे कौरव्ये साधवः कौरव्याः यत्। पाण्डौ साधवः कुसलाः निपुणाः यहा यत् को उक्तसंज्ञा नहीं, अतः न लुक यहा समाधान है। अत्र शङ्का—रघूणां = रघुवंश को बोलेगे। यहा रघो अपत्यानि रघवः तेषां रघुणां यहां अपत्य प्रत्यय का लोप कैसे? इसी तरह यदोः अपत्यानि यदवः तैः यदुभिः यदुवंशियो से किसी तरह रोका हुआ। जनपदवाची नही, अण भी प्राग्दीव्यतीय है। राजसंज्ञा नहीं, लुक कैसे? तब बोले **लक्षणया** रधु यदु शब्द का लक्षणा वृत्तिसे अपत्य अर्थः। समानवृत्ति लक्षणामें वीज है। (६४) **कम्बोज** शब्दसे परे राजसंज्ञक प्रत्ययका लुक् हो। पूर्व सूत्रसे लुक् होता यह सूत्र विना बहुवचनके लिए है। कम्बोजस्य कम्बोजयोः अपत्यं एकवचन द्विवचनमें कम्बोज शब्दसे विधान किया गया अञ्का लुक् हुआ। **कम्बोजादि** गण पढ़ना चाहिए। **आदिसे** चोल और शक देश नाम। राजा का नाम, अर्थसे प्रसिद्ध है, उनसेभी एक दोवचनमें लुक् कहें। चोलस्यापत्यं चोलानां राजा वा चोलके लोग उनके राजा अर्थमें अणो द्व्यचः हुए अण् का लुक् **चोलः**। शकस्य अपत्यं राजा वा अण् का लुक् आदि पूर्ववत्। केरल यवन दोनों देश और राजा अर्थमें है। केरलके लोग उनके राजा अर्थमें अण् का लुक् केरलः यवनके लोग उनके राजा जनपद मानकर हुए अञ्का लुक् कम्बोज कैसे? अण् का लुक् क्यों नहीं। तब बोले **कम्बोजाः** पढ़ना ही सुगम ठीक है तब कम्बोज देश है। अभिजन पूर्वजो का निवास जहाँ हो वह अभिजन स्थान है। तब सिन्धु तक्षशिला आदिमें कम्बोज पढ़े जाने

लुक्स्यात् । अवन्ती । कुन्ती । कुरुः । ९६ अतश्च ४।१।१७५।। तद्राजस्याकारस्य स्त्रियां लुक्स्यात् । शूरसेनी । मद्री कथं 'माद्रीसुतौ' इति ? 'ह्रस्व एव पाठः' इति हरदत्तः । भर्गादित्वं वा कल्प्यम् । ९७ न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः ४।१।१७६।। एभ्यस्तद्राजस्य न लुक् । पाञ्चाली वैदर्भि । आङ्गी । वाङ्गी । मागधी । एते प्राच्याः भार्गी । कारूशी । कैकेयी । केकयीत्यत्र तु जन्यजनकभावलक्षणे पुँयोगे ङीष् । युधाः शुक्रा आभ्यां 'द्व्यचः' इति ढक् । ततः स्वार्थे 'पार्श्वादियौधेयादिभ्योऽणञौ' इत्यञ् । 'शार्ङ्गरवाद्यञः-' इति अण्

सम्भव अतः बहुवचन आदि वृद्धि सुरक्षित । ९५। स्त्रियां स्त्री लिङ्गमें अवन्ति कुन्ति और कुरुसे राजसंज्ञक अण् इञ आदिका लुक् हो । अवन्तेः कुन्तेः अपत्यं राज्ञी वा वृद्धेत्कोशल-सूत्रसे हुए ञ्यङ्का स्त्री अर्थ मेंलुक् । इतो मनुष्यजातेःसे ङीष् अवन्ती कुन्ती । कुरोः अपत्यं स्त्री राज्ञीसे हुए कुरुनादिभ्यः से ण्य का लुक् । ९६ । अतश्च तद्राजसंज्ञक अकारका स्त्री अर्थमें लुक् हो । शूरसेनस्य अपत्यं स्त्री रानी शूरसेनी । अञ् का लुक् प्रत्ययलक्षणसे गोत्र जाति मानकर ङीष् । सम्मद्र की स्त्रीलोग और रानी अर्थमें हुए अञ् का लुक् आदि । यदि ऐसा तब माद्रीसुतौमें आदिवृदि कैसे ? हरदत्त बोले ह्रस्व पढ़ना ठीक है अथवा भर्गादिगणमें मानकर हुए अञ् का लुक् नहीं हुआ । ऐसी कल्पना करें

। ९७ । न प्राच्यभर्गादि और यौधेयादिगणमें पढ़े शब्दोंसे तद्राजप्रत्यय अञ् अण् आदि का लुक् न हो । प्राच्यका उदाहरण—पञ्चालानां स्त्री या राज्ञी पंजाबिन या उनकी रानी पाञ्चाली द्रौपदी । पञ्चालसे हुए अण् का लुक् नहीं हुआ । इसी तरह विदर्भदेशकी स्त्रीयाँ रानी वैदर्भी । अङ्ग या बङ्ग देश की स्त्रियां रानी मगध देश की भी । क्षत्रिया अर्थमें यथायोग्य अण् अञ् लुक् हो । भर्गादि=भर्गदेशकी स्त्री या रानी अर्थमें हुए प्रत्ययके लुक् का निषेध । करोति करः तं वष्टि करुशः (वश कान्तौ) तस्यापत्यं राजा करूशः कारूशी । मूर्धन्यपाठ अप्रमाणिक । केकयदेशस्यापत्यं स्त्री राज्ञा वा कैकेयी राजसंज्ञक का लुक् नहीं, आदिवृद्धि टिक गयी । केकयी-यहाँ पर जन्यजनक भाव सूचक केकयराजाके जननयोग्यताकी परिचायिका केकयी पुरुष सम्बन्धमें ङीष् । यौधेयादि-यौधेय गणमें युधायाः अपत्यं शुक्रायाः अपत्यं स्त्री तन्नामिक अण् को बाधकर द्व्यचः सूत्रसे दो अच् देखकर ढक्-एय आदिवृद्धि यौधेय शौक्रेय से स्वार्थ- प्रकृतिके अर्थमें पार्श्वादि यौधेयादिसे अण् अञ् उसको तद्राजसंज्ञा । यस्येति अकार लोप, अतश्च अञ् का लुक् प्राप्त था उसका निषेध

ङीन्। 'अतश्च' इति लुकि तु ढगन्तत्वान्ङीप्युदात्तनिवृत्तिस्वरः स्यात्। यौधेयी। शौक्रेयी। ९८ **अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे ४।१।७८॥** न्यादीनामन्त्यमुत्तमं, तस्य समीपमुपोत्तमम्। गोत्रे यावणिञौ विहितावनार्षौ तदन्तयोर्गुरूपोत्तमयोः प्रातिपदिकयोः स्त्रियां ष्यङादेशः स्यात्। 'निर्दिश्यमानस्यादेशाः भवन्ति' (प १३) इत्यणिञोरेव। षङावितौ। 'यङश्चाप् कुमुदगन्धेरपत्यं स्त्री कौमुदगन्ध्या। वाराह्या। अनार्षयोः। किम्। वासिष्ठिः। वैश्वा-

---

हुआ। शार्ङ्ग से ङीन् **यौधेयी शौक्रेयी**-यद्यपि अतश्चसे अञ् का लुक् होकर टिड्ढाण-से ङीप् होकर रूप बनता यौधेयगण क्यों ? यदि अतश्चसे लुक् होने पर उगन्त मानकर ङीप् होता, तब उदात्तनिवृत्तिस्वर होने लगता। अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः से ङीप् उदात्त होता। सिद्धान्तमें नञ्के लुक् निषेधसे ङीन् होनेपर आदि उदात्त होता है। (९८) **अण् इञ्** अन्तमें हो अनार्ष हो। ऋषिसे न कहे गये हों, **गुरूपोत्तम** हो, (उत्तमस्य समीपं उपोत्तमम्) तीनों के अन्तमें या अन्तके समीपमें गोत्र अर्थमें अण् इञ् हुए हो। अन्तमें हो गुरू हो उपोत्तम हो, प्रातिपदिक हो, तब स्त्री अर्थमें ष्यङ् हो। प्रातिपदिक और स्त्रियां का अधिकार स्थानषष्ठी उच्चारणसे आदेशका लाभ। अत्र शङ्का-अण् इञ् ष्यङ् आदेश कहा गया। अनेकाल होनेसे सर्वादेश क्यों नहीं, तब बोले निर्दिश्यमान उच्चार्यमाण अण् इञ्का उच्चारण है उसीको आदेश होगा सम्पूर्ण को नहीं। ङिच्चसे अन्त आदेश उचित नहीं। ष्यङ् सम्प्रसारण में ङित् कृतकृत्यः ष ङ इत्। यथा कुमुदगन्ध इव गन्धो यस्य रात्रिकमलकी तरह महक हो जिसकी बहुव्रीहि समासे। उपमानाच्च इत्वे कुमुदगन्धेः अपत्यं स्त्री अण्। यस्येति इलोप आदिवृद्धि कौमुद्गन्धिः ध में अण् का अ उत्तम है। उसके समीपमें गुरू गकार है संयोगे गुरुः कहनेसे। गुरु और उपोत्तम अणन्त प्रातिपदिक कौमुदगन्ध है। उसका अवयव अण् स्थाने ष्यङ् अनुबन्धलोपे। यङः चाप आ **कौमुदगन्ध्या** रात्रिकमलके गन्धकी तरह गन्धवाले की बच्ची। इञन्त बराहस्य अपत्यं स्त्री अत इञ् अलोप आदिवृद्धि वाराहिः। इकार उत्तमः, उसके पास में 'रा' गुरु है। इ को ष्यङ्, चाप् **वाराह्या**। **अनार्षयोः किम्** अण् इञ् ऋषि अर्थमें न हुए हो ऐसा क्यों ? **वासिष्ठी वैश्वामित्री** वशिष्ठ और विश्वामित्रकी बच्ची ऋष्यन्धक से अण् उसको ष्यङ् नहो। अण् इञ् क्यों कहा ? ऋतभागस्यापत्यं आर्तभागी। यहाँ विदादि अञ् स्थाने, आदेश न हो। गुरु और उपोत्तम् क्यों पढ़ा ? औपगवीमें उपोत्तम् गुरु नहीं है। आदेशनहीं हो

मित्री। गुरूपोत्तमयोः किम् औपगवी। जातिलक्षणो ङीष्। गोत्रे किम्! अहिच्छत्त्रे जाता आहिच्छत्त्री। ९९ **गोत्रावयवात्** ४।१।७९॥ गोत्रावयवाः गोत्राभिमताः कुलाख्यास्ततो गोत्रे विहितयोरणिञोः स्त्रियां ष्यङादेशः स्यात् अगुरूपोत्तमार्थं आरम्भः। पौणिक्या भौणिक्या। १२०० **क्रौड्यादिभ्यश्च** ४।१।८०। स्त्रियां ष्यङ्प्रत्ययः स्यात्। अगुरूपोत्तमार्थोऽनणिञन्तार्थश्चारम्भः क्रौड्या। व्याड्या। गौकक्ष्या। 'सूत युवत्याम्' सूत्या। 'भोज क्षत्रिये' भोज्या। ०१ **दैवयज्ञिशौचिवृक्षिसात्यमुग्रिकाण्डेविद्धिभ्योऽन्यतरस्याम्** ४।१।८१। एभ्यश्च तुर्यः ष्यङ् वा। अगोत्रार्थमिदम्, गोत्रेऽपि। परत्वात्प्रवर्तते। पक्षे 'इतो मनुष्य-'इति ङीष्। दैवयज्ञ्या दैवयज्ञी। इत्यादि। इत्यपत्याधिकारप्रकरणम्॥

गोत्रञ्च चरणैः सह से जाति मानकर ङष्। गोत्र क्यों पढ़ा? अहिच्छत्रमें पैदा हुई स्त्री (मुरादाबादी) यहाँ जात अर्थमें अण् है गोत्रमें नहीं

।९९। **गोत्रावयवात्**=शब्दार्थ बोले कि गोत्राभिमताः=गोत्रं कुलं वंशः अभिमतं प्रख्यातं देशविशेषे प्रसिद्धं याभिस्ताः। कुलकी प्रसिद्धिसे व्यवहारसे **कुलाख्या=कुलमाख्यायते** व्यपदिश्यते आभिः।कुलस्यनामानि कुलाख्या पुणिका आदि शब्दोंसे ख्यात हो। जैसे वयं पुणिकाः वयं भुणिकाः मुखराः। अवयवकाः अर्थ। अवपूर्वक यु मिश्रण धातुका उपसर्गबलसे प्रसिद्धि अर्थः। पचादि अच् कुल का प्रतिष्ठापक कुलावयव है। उन शब्दोंसे गोत्र-वंशमें हुए अण् इञ् के स्थानमें स्त्री अर्थमें ष्यङ् हो। यह कार्य पूर्वसूत्रसे होता, यह सूत्र जहाँ गुरु उपोत्तम अर्थ नहीं है वहाँ के लिए है। **गोत्रादवयुतम्** मिश्रितं अनन्तरापत्यं तदर्थमित्यपि भाष्ये। अपत्याधिकारसे बहिर्भूत है। अतः पारिभाषिक गोत्र भाष्य का भाव है। पुणिकस्य अपत्यं स्त्री (अत) इञ् स्थाने ष्यङि चाप् **पौणिक्या** एवं भुणिकस्य अपत्यं इञ् ष्यङ् चाप् **भौणिक्या**। मुखरस्यापत्यं **मौखर्याः** मनुष्य नाम हो, तब तन्नामिक अण् स्थाने ष्यङ्।

॥ १२०० ॥ **क्रौड्यादि** गणमें पढ़े शब्दसे स्त्री० अर्थमें ष्यङ् हो। यह सूत्र जहाँ गुरु उपोत्तम अर्थ नहीं। अण्, इञ् अन्तमें नहीं, वहांके लिए। क्रोडस्यापत्यं स्त्री। इञ् अन्त से ष्यङ, चाप **क्रौड्या** क्रोड नाम से प्रसिद्धकी स्त्री। व्याडेः अपत्यं **व्याड्या**। अपिशलेः अपत्यं **आपिशल्याः** **गौकक्ष्या** इञ् आदिकार्य। मनुष्य नाम हो तब अण स्थाने कार्य। सूतीसे। युवती से ष्यङ हो, **सूत्या** प्राप्त-यौवना। जातिमें सूति ही होता है। भोजसे क्षत्रिय अर्थमें ष्यङ् गण सूत्रार्थ **भोज्या** भोजवंशकी क्षत्राणी। क्रिया शब्दसे टाप् भोजयति भोज्या ।१२०१॥

॥ * अथतद्धितेषु रक्ताद्यर्थकाः * ॥

१२०२ तेन रक्तं रागात् ४।२।१। रज्यतेऽनेति रागः, कषायेण रक्तं वस्त्रं काषायम्। माञ्जिष्ठम्। रागात् किं! देवदत्तेन रक्तं वस्त्रम्। ०३ ला-

---

दैवज्ञि शौचि वृक्षि सात्यमुग्रि, ये चार इञन्त है। इनसे ष्यङ–पूर्ववत् विकल्प से। यह सूत्र गोत्रमें नही लगता, किन्तु अन्तरापत्य, पुत्री अर्थ में, गोत्र अर्थ में भी कहें, परत्वात् लगता है। पक्षमें इतो मनुष्य ङीष्। देवयज्ञा यस्य स देवयज्ञः तस्य पुत्री अर्थमें अत इञ्। तब ष्यङ् चाप दैवयज्ञा पक्षमें ङीष्। इत्यादि। शुचिर्वृक्षः यस्य शुचिवृक्षः तस्य पुत्री शौचिवृक्ष्या वृक्षी। सत्य मुग्रं यस्य सत्यमुग्रः तस्य पुत्री सात्यमुग्र्या सात्यमुग्री। मुम् निपातनसे काण्डेन विद्धः काण्डेविद्धः (एत्व निपातनसे) तस्य पुत्री। काण्डेविद्ध्या-विद्धी।

इति प्रभाकरमिश्रकृतायामपत्याधिकारः

अथतद्धितेषु रक्ताद्यर्थकाः—

प्रातिपदिकार्थं भरे शब्दोसे हुए प्रत्ययोमें रक्त (रंगा हुआ) अर्थमें प्रत्यय होंगे। आदिका अर्थ–अन्यप्रत्यय–जैसे नक्षत्रयुक्तसे, जुडा हुआ काल, दृष्टं साम –देखा हुआ मन्त्र, परिवृत (पुर्ण रूप से ढ़का हुआ) उद्धृत निकाला हुअ, शेते सोता है, संस्कृत संस्कार गुण विशेषता, स्वादभरा हुआ, सा अस्मिन्–आधार ,सा अस्य सम्बन्ध, पिताका भाई, माताका भी, पिताका पिता, समूह,अस्या प्ररहणं युद्ध, क्रिया, पात, अधीत वेद, आख्यान आख्यायिका, प्रोक्त, नाम परदेश निवास, अदूरभव इत्यादि अर्थोंमें प्रत्यय होगे, जो सभी प्रातिपदिकार्थ भरे प्रयोगो के हितकारी हैं। इतिप्रकरणस्य संक्षिप्तिः।

१२०२तद्धितमें चातुर्थिकका प्रथम सूत्र-रज्यते वर्णान्तरं प्राप्यते अनेन जिस साधन (रङ्ग द्रव्य)से बस्त्र, दीवाल, चित्र आदिका रंङ्ग बदले जैसे सफेद लाल हुआ, पीला-नीला, आदि। रञ्ज, रागेका रंगसे रूपबदलनेके अनुकूल क्रिया अर्थमें करणे घञ् का साधन अर्थ है। रञ्ज अ। धञ्परे भाव और करणमें न लोप। च जोःसे कुत्व-ग। अतउपधायाःवृद्धिः रागःका रज्जन साधन द्रव्य चूना, रामरज, गेरू गुलाबी काला पीला लाल वस्तु। तेन = सभी तृतीया का सूचक। तेन रक्तं=तृतीयान्त वाचकसे रगा (वर्ण बदला) हुआ, अर्थमें रागात्का =रंञ्जन द्रव्यवाचकात् रगनेकी वस्तु तृतीयान्त पढा हो उससे अण् हो। प्राग्दीव्यति तक अधिकारः। शुक्लस्य वर्णान्तरापादनमिहरञ्जेरर्थः। कषाय-गेरू धातु विषय (रगना) से रक्तं (रंगा हुआ) वस्त्र सफेद रङ्गमें बदल गया, ऐसा वस्त्र

क्षारोचनाट्ठक् ४।२।२। लाक्षिकः रौचनिकः ।*शकलकर्दमाभ्यामुपसङ्ख्यानम् शाकलिकः। कार्दमिकः। 'आभ्यामणपि' इति वृत्तिः । शाकलः । कार्दमः । *नील्या अन्' नील्या रक्त' नीलम्। *'पीतात्कन्' हरिद्रामहाराजनाभ्यामञ्' हारिद्रम्। महाराजनम्। ०४ **नक्षत्रेण युक्तः कालः** ४।२।३। पुष्येण युक्तं

काषायम् कषायशब्दात रक्तम् अर्थं अण्, अनुबन्धलोपे, आदिवृद्धिः यस्येति अलोपे तद्धितान्तत्वात्प्रातपदिकसंज्ञा स्वादिकार्यं मञ्जिष्ठा रञ्जनद्रव्य मींसी आदि रंगने का साधन (तेन रक्त **माञ्जिष्ठम्** अण आदि। भूरा रङ्ग, रागा त्कि रगने का वाचक प्रत्यय क्यों– देवदत्त से रगा हुआ वस्त्र, देवदत्त साघन है परन्तु रञ्जन द्रव्य –रंग नही है। उनसे अण न हो वस्त्रका वर्णान्तर(सफेद से लाल होने का साधन) नहीं (०३) **लाक्षा रोचन** से ठक् हो अण् को बाँध-कर लाक्षया रक्तः, लाहीसे रंगा हुआ। **लाक्षिकः मठः**, मोहर, मुद्रा। लाक्षा शब्दसे ठक्, ठस्य इक, भसंज्ञा यस्येति आलोप। **रौचनिकः रोचनया रक्तः** गोरोचनरंगसे रंगा हुआ। कुडच दीवाल। रोचनासे ठक् इक आलोप आदि। (वा०) **शकल कर्दम** से भी ठक कहें। रंगका नाम शकल–उससे ठक् आदिवृद्धि **शाकालिकः**। कर्दमेन रक्तः **कार्दमिकः** कीचड़से लथफथ लिप्त पुरुषः। वृत्तिकार के मतमें **आभ्यां**=दोनोंसे अण् भी हो शकलेन रक्तः **शाकलः**। रंगके अंशसे रंगा हुआ। **कार्दमः** अञ् आदि। सूत्रमें शकलकर्दम प्रक्षिप्त है। इति वृत्ताकारः। क्योंकि उनका अर्थ **शकलं त्वचि खण्डे च राजवस्तुनि वल्कले** इति विश्वः (वा०) **नीलीसे** अन् कहें, अण् बाँझकर। नीली औषधिः उससे रंगा हुआ। वस्त्र **नील** नीलदिया हुआ कपड़ा। अन्, इ लोप। (वा०) **पीतसे** कन् कहें, अण् बाँधकर **पीतेन** रक्त पैतम्। हरितालिका आदिसे रंगा हुआ वस्त्र। (वा०) **हरिद्रा** महारजनसे अञ् हो, अण् को बाँधकर । स्वरमें अन्तर। हरिद्रया रक्त धौत-वस्त्रम्। हरिद्रासे अञ् आदि हरिद्रम् महारजनेन रक्तं **रामरजसे रंगा हुआ**। अञ् आदि **इति तेनरक्ताधिकारः**। अथ नक्षत्रसे जुड़ा हुआ कालका अधिकार

।०४। **नक्षत्र** से युक्त काल अर्थमें प्रथम उच्चारित नक्षत्रवाचक शब्द से तेन दीव्यतिके पहले सभी प्रत्यय यथा योग्य हों, तद्धितके विषयमें चन्द्रमा अर्थ खुलनेपर। यथा **पुष्येण युक्तं**=पुष्य नक्षत्रसे युक्त चन्द्रमासे जुड़ा हुआ अह-रह दिन **पौषम्**। पुष्यशब्दसे उक्त अर्थ खुलने पर नक्षत्रेण युक्तः कालःसे अण् पुष्य अ तिष्यपुष्योर्नक्षाणिसे यलोप आदिवृद्धिः। स्त्री-इच्छामें टिड्ढाणञ्से ङीप् **पौषी**। पुष्य नक्षत्रसे जुड़े चन्द्रमासे संयुक्त रात्रि सभी दिन पुष्ययुक्त हों।

पौषमहः। पौषी रात्रिः। १२०५ लुबविशेषे ।२।४। पूर्वेण विहितस्य लुप्स्यात् षष्टिदण्डात्मककालस्यावान्तरविशेषश्चेन्न गम्यते। अद्य पुष्यः। कथं तर्हि 'पुष्ययुक्ता पौर्णमासी पौषी' इति 'विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्रीभ्यः इति निर्देशेन पौर्णमास्यामयं लुब्नेति ज्ञापितत्वात्। श्रवणशब्दात्तु अत एव लुप् युक्तवद्भावाभावश्च। अबाधकान्यपि निपातनानि। श्रावणी। ०६ सञ्ज्ञायां

किन्तु उसके समीप चन्द्रमा का योग कभी-२ मिलता है। नक्षत्रेण क्यों कहा? चन्द्रेण युक्ता रात्रिः। यहाँ नक्षत्र का योग नहीं। चन्द्रसे अणादि नहीं हुए। काल क्यों यहा? पुष्येण युक्तः चन्द्रमा।

।१२०५। लुप्=पूर्वेण नक्षत्रेण युक्तः कालः सूत्रसे विधानकिये गये प्रत्ययका लुप् हो। अविशेषे ६० घड़ीसे सीमित नक्षत्र हैं। षष्ठिदण्डः आत्मा यस्य जिस कालका एकनक्षत्रसे युक्त चन्द्रमा जुड़े हो। उसमें अवान्तर विशेष=दिन है कि रात यह निश्चित न हो तब। यथा अद्य पुष्यः। अद्य अव्यय है। दिन रात उसका अर्थ, अधिकरण शक्ति प्रधान है। उससे युक्त अहोरात्र काल इष्ट है। पुष्ययुक्तचन्द्रमसा युक्तः अर्थमें पुष्यसे अण्। दिन है कि रात यह जान नहीं पड़ता, इसलिए अण्का लुक् हुआ। यद्यपि न द्वयचः, न श्वः यह विशेष अन्तर जान पड़ रहा है। तथापि अहोरात्रात्मक कालमें भेद नहीं, लुप् नहीं। यद्यपि पौषः अहोरात्रः, यहां रात दिन पूरा है किन्तु दो भाग जान पड़नेसे अण्का लुक् नहीं। अतः मूलेनावाहयेद्देवीं श्रवणेन विसर्जयेत्। यहाँ मूलयुक्तचन्द्रमासे युक्त कालमें दिनरातका विशेष अन्तर भेद नहीं है, अण् का लुक्। एवं श्रवणेन=श्रवणयुक्तचन्द्रमासे युक्तकालमें भेद नहीं, अण्का लुक् हुआ। यदि ऐसा तब पुष्यसे जुड़ी हुई ६० दण्डवाली पौर्णमासीमें भी प्रयोग दर्शनसे ज्ञापन होता है कि पौर्णमास्यां नक्षत्रयुक्तायां दशायां लुबविशेषसे लुप् नहीं होता। अतः पौषीमें अण्, लुक् नहीं हुआ। यदि ऐसा श्रवण नक्षत्रसे जुड़ी पौर्णमासीमें लुक् नहीं होगा, तब श्रवणः कैसे बनेगा, तब बोले श्रवणके निपातन (सूत्रमें स्वीकार करनेसे) ही लुप् हुआ।

ननु कृत्तिकाश्रवणः पुष्यः चित्रास्वात्योर्यदन्तरम् आदिमें पुलिङ्ग दर्शनसे श्रवणके अण्का लोप होनेपर लुपि युक्तवत्से पुलिङ्ग होगा। श्रवण स्त्रीलिङ्ग कैसे? तब कहा निपातनसे। युक्तवत् वचनका अभाव भी है। पुलिङ्ग नहीं होगा। यदि ऐसा तब श्रावणी में भी अण् का लुक् हो जाय। तब कहा अबाधकानि=जो निपातन है वे बाधक नहीं भी होते। इति वृत्तिकारः। तब श्रावणीमें अण् ङीप् बना रहेगा।

श्रवणाश्वत्थाभ्याम् ४।२।५। विशेषार्थोऽयमारम्भः। श्रवणा रात्रिः। अश्वत्थो मुहूर्तः। सञ्ज्ञायां किं! श्रवणी। अश्वत्थी। ०७ **द्वन्द्वाच्छः ४।२।६।** नक्षत्रद्वन्द्वाद्युक्ते काले छः स्याद्विशेषे सत्यसति च। तिष्यपुनर्वसवीयमहः। राधानुराधीया रात्रिः। ०८ **दृष्टं साम ४।२।७।** तेनेत्येव। वसिष्ठेन दृष्टं वासिष्ठं साम। *'अस्मिन्नर्थेऽण् डिद्वा वक्तव्यः' उशनसा दृष्टमौशनम्–औशनसन्। ०९

।१२०६। **संज्ञामें श्रवणा** और अश्वत्थसे परे नक्षत्रसे युक्तकालमें प्रत्ययका लुप् हो। यह कार्य 'लुप् अविशेषे' सूत्रसे सिद्ध होता, यह सूत्र क्यों? विशेष अर्थके लिए। वह सूत्र अविशेष २४ घंटेके भीतर भेद न हो तब। यह भेदमें लगता है। जैसे श्रवणनक्षत्रसे युक्त चन्द्रमासे जुड़ी रात्रि होना विशेष है। श्रवणा उच्चारणसे युक्तवद्भाव नहीं होता। श्रवणयुक्त-रात्रि चन्द्रमा अर्थमें अण् उसका संज्ञायांसे लुप्। अश्वत्थेन=अश्विनी नक्षत्रेण युक्तः कालो **अश्वत्थः** मुहुर्तका नाम जो आज रहे न श्वः तिष्ठति। अण्का लुक् आदि। संज्ञा क्यों पढ़ा? किसीका नाम होनेपर ही लुप् हो। श्रवणेन युक्ता **श्रावणी**। अश्वत्थेन युक्ता **आश्वत्थी** किसीका नाम नहीं, न लुप्। आदिवृद्धि इत्यादि।

।१२०७। **द्वन्द्व समाससे** नक्षत्रसे युक्तकाल अर्थमें छ हो। विशेष ६० घड़ी के भीतर भेद विभाग हो या न हो। तिष्यश्च पुनर्वसू च, ताभ्यां युक्तम् अहः दिनं तिष्यपुनर्वसू नक्षत्रसे जुड़े काल अर्थमें छ—ईय। ओर्गुणे—उके स्थानमें गुण हुआ। अव् आदेश। विशाखा नक्षत्रका नाम राधा च अनुराधा च, समास होनेपर विशाखा अनुराधासे जुड़ी हुई रात्रि अर्थमें छ ईय आदि। ।१२०८। **दृष्टं साम** (देखा गया, साक्षात्किया हुआ मन्त्र) अर्थमें तृतीयान्तसे ही अण् आदि हो। वशिष्ठसे साक्षात्कार आकर्षण किया हुआ। मन्त्रका नाम **वाशिष्ठम्**। वशिष्ठसे अण् आदि। (वा०) **अस्मिन्**=दृष्टं साम अर्थमें जो अण् वह डित् विकल्पसे हो। जिसका फल टिलोप है। दृष्टं सामनि जाते वाप्यण् डित् द्विर्वा विधीयते। तीयादीकक्। न विवक्षायाः गोत्रादङ्कवदिष्यते। साम और जात अर्थमें अण् के बाँछकको बाधकर अण् हुआ हो, तब डित् विकल्पसे शतभिजि जातः **शातभिषजः** टिलोप शातभिषः, द्वितीकः द्वितीया विद्या ईकक् नहीं। **उसनसा दृष्टं साम**, शुक्राचार्यसे देखा गया मंन्त्र उशनस्से अञ् आदिवृद्धि। जब डित्, तब टि-अस्का लोप **औसनम्** (०९) **कलिसे** ढक्-एय दृष्टं साम अर्थमें ढक् हो। कलिसे देखा हुआ मन्त्रका नाम **कालेयम्** आदि।

कलेर्ढक् ४।२।८। कलिना दृष्टं कालेयं साम । १२१० वमदेवाड्ड्यड्ड्यौ ४.२।६। वामदेवेन दृष्टं साम वामदेव्यम्

'सिद्धे यस्येति लोपेन किमर्थं ययतौ डितौ ।
ग्रहणं माऽतदऽर्थेऽभूद्वामदेव्यस्य नञ्स्वरे ॥'

इति भाष्यम्। ११ **परिवृतो रथः** ४।१।१०॥ वस्त्रैः परिवृतो वास्त्रो रथः । रथः किं ! वस्त्रेण परिवृतः कायः । समन्ताद्वेष्ठितः परिवृत उच्यते । तेनेह न–छात्रैः परिवृतो रथः । १२ **पाण्डुकम्बलादिनिः** ४।२।११॥

। १२१० । **वामदेव** से देखा गया साम अर्थमें ड्य, ड्यत् दोनों प्रत्यय हुए **वामदेव्यम्**। डित् टिलोपवास्ते । त इत् स्वरार्थ, **अत्रशङ्का**–यस्येति च से अकार लोप होता उसके लिए डित् क्यों पढ़ा ? य यत्के डित् का फल बोले–जहाँ य और यत् लिया जाता हो वहाँ ड्य ड्यत् न लिया जाय। जैसे **ययतोश्च चातदर्थे** यह सूत्र नञ् से परे य अथवा यत् अन्तमें हो उदात्त स्वर करता है । उस स्वरके अभावके लिए । डित् पढ़ा क्योंकि **निरनुबन्धकग्रहणे-सति न सानुबन्धकस्य** ग्रहणं, तदनुबन्धकग्रहणे सति **नातदनुबन्धकस्य** । दो परिभाषाएँ ज्ञापित होतीं हैं । अनुबन्धरहित प्रत्यय जहां **स्वीकृत** है वहाँ अनुबन्धसहित अमान्य हैं । जहाँ अनुबन्ध सहित मान्य है, वहाँ अनुबन्ध रहित अमान्य । **अवामदेव्यं में** नञ्से परे स्वर नहीं हुआ । अनुबन्ध सहित **होनेसे** । इसी भावको भाष्य श्लोक–भाषण करता है । **(आधेसे शङ्का–आधेसे समाधान) यस्येति लोपेनैव सिद्धे, ययतौ किमर्थं डितौ कृतौ स्तः**, इति प्रश्नः । **अतदर्थे ययतोः** सूत्रे ड्यत् इत्यस्य **ग्रहणं मा भवतु** । नञ्स्वरे न, **वामदेव्यं** (वामदेवसे भिन्न व्यक्तिसे देखा गया) साम अर्थमें हुए प्रत्ययको अन्तोदात्तस्वर न हो ।

। ११ । **परिवृतः** तृतीयान्तसमर्थ रथसे ही घिरा, पूर्णरूपसे ढका हुआ अर्थमें अण् आदि हो । रथढ़कनेके लिए त्रिपाल, वस्त्र आदि अर्थमें होगा । यदि छात्र रथको घेरे हों तब अण् आदि नहीं होंगे । अतः कहा कि **समन्तात्**:= चारो तरफसे लपेटा हुआ परिवृतका अर्थ है । परि सर्वतोभावे वर्तते । **वस्त्रसे** घिरा पूर्ण लपेटा, वस्त्रसे अण् आदि **वास्त्रः** । रथके वेष्टनमें वस्त्र समर्थ है । **रथ क्यों पढ़ा** ? वस्त्रसे घिरा हुआ देह **शरीर** है रथ नहीं, **वस्त्रमें** लपेटनेका सामर्थ्य होते हुए भी अणादि नहीं हुए । पूर्ण वेष्टनका फल (छात्रोंसे घिरा है) पूरा घेरनेमें असमर्थ छात्र से अणादि नहीं हुए ।

पाण्डुकम्बलेन परिवृतः पाण्डुकम्बली । पाण्डुकम्बलशब्दो राजास्तरणवर्ण-कम्बलस्य वाचकः । मत्वर्थीयेनैव सिद्धे वचनमणो निवृत्त्यर्थम् । १३ **द्वैपवैयाघ्रादञ् ४।२।१२।।** द्वीपिनो विकारो द्वैपम् । तेन परिवृतो द्वैपो रथः । एवं वैयाघ्रः । १४ **कौमारापूर्ववचने ४।२।१३।।** कौमार इत्यविभक्तिक निर्देशः अपूर्वत्वे निपातनमिदम् । अपूर्वपतिं कुमारीं पतिरुपपन्नः कौमारः । यद्वा । अपूर्वपतिः कुमारी पतिमुपपन्ना कौमारी भार्या । १२१५ **तत्रोद्धृत-**

। १२ । पाण्डु और कम्बलसे पूर्ण लेपेटा हुआ अर्थमें इन् आदि हो । **पाण्डुकम्बली,** नान्त उपधा दीर्घ आदि हुए । सफेद कम्बलसे लपेटा हुआ रथ (क्योंकि तेन **परिवृतो रथः** आता है) यद्यपि यह इन, 'अत इन्ठनौ से भी सिद्ध था । यह सूत्र क्यों पढ़ा ? तब कहा कि मत्वर्थीय - इन्से सिद्ध, किन्तु उसे बाँधकर प्राप्त अण् को बाँधनेके लिए यह सूत्र । यहाँ कम्बलका राजा स्तरपर रथको ढकनेसे है ।

। १३ । **द्वैप** (**वैयाघ्र**) बाघके **चर्म**से घिरा हुआ अर्थमें तृतीयान्तसमर्थसे अञ् हो, अण्को बाँधकर (स्वरमें अन्तर) द्वीपी (बाघ) तस्य विकारः **चर्म द्वैपं** व्याघ्र चर्म उससे पूर्णरूपसे ढ़का हुआ रथ **द्वैपः** है । घेरनेमें समर्थ साधन द्वेपसे अञ् आदि । व्याघ्रके चर्मको **वैयाघ्र** उससे घिरा रथके घेरनेमें समर्थसे अण् आदि । न य्वाभ्यां से ऐच् (१४) **कौमार** (तेन परिवृतो रथः) रुक गया, निवृत्तः । **कौमार** से अपूर्व पति अर्थमें अण् आदि हो ' अविभक्तिकका लुप्त प्रथमा अर्थ । अपूर्वशब्द भावप्रधान । कुमारी अपूर्वपतिके पास पहुंची, **अपूर्व पतिमुपन्ना** अर्थमें प्रथमान्त कुमारीसे अण् एक अर्थ । दूसरा न पूर्वः पतिः यस्याः अपूर्वपती उससे विवाहित पति अर्थमें-**कुमारीमुपयतवान्** अर्थमें द्वितीयान्त-कुमारीसे अण् हो अपूर्व अर्थमें निपातन सूत्र है । यथा-जिसका पति पहले नहीं था उस कुमारीको प्राप्त किया । कुमारीसे अण् आदि । **कौमारः** पतिः । विवाहसे प्राप्त हुआ प्रत्ययार्थ है । प्रथमका उदाहरण--**यद्वा** अपूर्वः पतिर्यस्या सा कुमारी पतिके पास पहुंची, कुमारी **भार्या** अण् आदि । अपूर्वपतिको प्राप्तस्त्री अर्थमें प्रत्यय । पहलेमें स्त्रीको प्राप्त पति अर्थमें प्रत्यय । पतिको पत्नी मिली, पत्नीको पति मिला । कर्ता कर्मका फेर है ।

।१२१५ । **तत्र** सप्तम्यन्तपद हो **अमत्रेभ्यः**-पात्रभोजन वर्तनवाचक शब्द हो , उससे **उद्धृतं**=थाल परातमें उझिला निकाला हुआ, उद्धार किया हुआ । जैसे--कड़ाही बटलोही आदिसे दाल भात कढ़ी निकाला जाय, ऐसे

ममत्रेभ्यः ४।२।१४।। शरावे उद्धृतः शाराव ओदनः । उद्धरतिरिहोद्धरणपूर्वक निधाने वर्तते । तेन सप्तमी । उद्धृत्य निहित इत्यर्थः । **१६ स्थण्डिलाच्छयितरि व्रते ४।२।२५।।** तत्र इत्येव। समुदायेन चेद् व्रतं गम्यते। स्थण्डिले शेते स्थाण्डिलो भिक्षुः । **१७ संस्कृतं भक्षाः ४।२।१६।।** सप्तम्यन्तादण्स्यात्संस्कृतेऽर्थे, यत्संस्कृतं भक्षाश्चेत्ते स्युः । भ्राष्टे संस्कृताः भ्राष्ट्रा यवाः । अष्टसु कपालेषु संस्कृतोऽष्टाकपालः पुरोडाशः । **१८ शूलोखाद्यत्**

पात्र वाचक शब्दसे अण् आदि प्रत्यय हो । यथा शरावे—थाल पत्तल वर्तन या परातमें निकाला हुआ ओदन भात, ऐसा पात्रवाचक सप्तम्यन्त शराव-उससे अण् आदिवृद्धि आदि **शारावः**। थालीमें निकाला हुआ भात । अत्र शङ्का-उद्धरण निकालना अगल करना अर्थमें शराब अपादान है । अलगावकी अवधि उसमें सप्तमी कैसे ? तब कहा । **उद्धरति** यहाँ उद्धरणपूर्वके निधाने निकालकर रखनेके अनुकूलक्रिया अर्थः । इससे आधारका लाभ सप्तमी । उद्धृत निहितः निकालकर आधारमें रखा हुआ अर्थ है। वृत्तिकार शारावः का उच्छिष्टः अवशिष्टः अर्थ (करते हैं **उच्छिनष्टि न सर्वं जुहोति**) इस कल्प सूत्र प्रमाणसे ।

।१६। **स्थण्डिल** शब्द सप्तम्यन्त हो, **व्रत**के निमित्तसे शयनका कर्ता हो, ऐसे अर्थमें उचित प्रत्यय हों । **तत्र इत्येव**-सम्यन्त पदसे ही हो प्रकृतिप्रत्यय समुदायसे व्रत अर्थ निकलता हो तब । यथा—स्थण्डिले शेते खुले स्थानमें निर्जन चौतरे पर सोता है । अर्थमें अण् आदि वृद्धि **स्थाण्डिलः** व्रतकर्ता भिक्षुः । यदृक्षालाभ सन्तोषी । भूमिशयनव्रती (१७)**संस्कृतं**—भक्षन्ते इति भक्षाः खानेकी वस्तु अर्थमें घञ्। तत्र आया । सप्तम्यन्तशब्दसे संस्कारकिया हुआ अर्थमें अण् हो । खानेकी वस्तु होने पर । संकृतम् एकवचन व्यापक भावका सूचक । भक्षाः में बहुवचन विशेषभावका सूचक । या जातिके अभिप्रायसे । **पाकादिना गुणविशेषाधानं संस्कारः** पकाकर सींचकर विलक्षण रोचक स्वाद पैदाकरना संस्कार हैं । **भ्राष्टे** भाड़में पकाया अपूर्वस्वाद पैदा किया हुआ, जौ भूना हुआ चना । भूनने के संस्कारसे अपूर्व स्वाद हुआ । अण ओदिवृद्धि । आठ कसोरोंमें संस्कृतः पकाया हुआ । पुरोडाश खीर हविष तद्धितार्थोत्तरपदके अण् का द्विगोर्लुक् हुआ । भक्षाः=खाने की वस्तु हो, ऐसा **क्यों** ? पुष्प पुटे संस्कृतं **वस्त्रं**, फूलके रङ्गसे रंगा वस्त्र, भक्ष्य नहीं, अण् नही । (१८) **शूल** और उखासे पकाया हुआ अर्थमें यत् हो, अण् को बाँधकर । संस्कृतं भक्षाः आता है । शूलञ्च उख-

४।२।१७।। अणोऽपवादः। शूले संस्कृतं शूल्यं मांसम्। उखा पात्रविशेषः। तस्यां संस्कृतमुख्यम्। १९ दध्नष्ठक् ४।२।१८।। दध्नि संस्कृतं दाधिकम्। १२२० उदश्विदन्यतरस्याम् ४।२।१९।। ठक् स्यात्। पक्षेऽण्। २१ इसुसुक्तान्तात्कः।३।५१।। इस् उस् उक् त् एतदन्तात्परस्य ठस्य कः स्यात्। उदकेन श्वयति वर्धते इत्युदश्वित्। तत्र संस्कृतः औदश्वित्कः-औदश्वितः। इसुसोः प्रतिपदोक्तयोर्ग्रहणान्नेह। आशिषा चरत्याशिषिकः। उषा चरति

ञ्च अनयोः समाहारः। समास करके पञ्चमी सप्तम्यन्त हो, शूल या उखा हो, उससे संस्कार कर खाने की वस्तु अर्थमें यत् हो। शूले-छड़में लपेटकर पकाया गया मांस अर्थमें यत्।अकारलोप आदि। शूल्यं पिठरं स्थाली उखा कुण्डमित्यमरः थार परात बड़े पात्रमें पकाया हुआ अर्थ, यत्।उखा-य, भसंज्ञा आलोप। उख्यः अग्नि अर्थ कैसे ? भक्ष नहीं है। यदि ऐसा दिशादि मानकर भव अर्थमें यत्।

। १९। सप्तम्यन्त दधिशब्दसे संस्कार किया हुआ खानेकी वस्तु अर्थमें ठक्। अण् बाँधकर। दहीके आधारमें दधनि दहीमें सींचा दहीवाड़ा अर्थमें प्रत्यय। ठक् इक यस्येति इकारलोप, आदिवृद्धि दाधिकम्। संस्कारकस्तु इह लवणादिना। दधि–तु करणमात्रं, यदि केवल संस्कार किया हुआ अर्थ रहेगा। तब प्राग्वहतेष्ठक्। दध्ना संस्कृतं दाधिकमेव तृतीयान्तसे ठक्।।

।१०२०। उदस्वित् शब्दसे संस्कार किया हुआ अर्थमें ठक् विकल्पसे हो पक्षमें अण् भी (२१) उस् उक्=उ ऋ लृ और त अन्तमें हो जिनके, उनसे परे ठ को क हो। त में अ उच्चा०। ठक् में क इत् अ उच्चारणार्थ। किन्तु ठ के स्थानमें क अकारसहित रहेगा। उदकेन श्वयति वर्धते जल डालनेसे बढ़े, मठ्ठा छाछ है उदश्वित्। क्योंकि (टू ओश्वि गतिवृद्धयोः) बढ़नेके अनुकूल क्रिया अर्थ वालेसे क्विप्, तुक्। तत्र संस्कृतः, उस मठ्ठे में भिगोया हुआ अर्थमें सूत्रसे ठक्। उदकस्य उद आदेशः।उदस्वित् आदिवृद्धिः। यहाँ तसे परे ठ को क हुआ औदश्वित्कः तक्रंहि उदश्वित् मथितं पादाम्बु अर्धाम्बु निर्जलमित्यमरः। पक्षमें अण् आदि औदस्वितः। मट्ठेमें सींचा हुआ, काला नमक जीरा। सूत्रमें प्रतिपदोक्त=साक्षात् उच्चरित लिया जाय। अतः शास् धातुसे क्विप् आशासः क्वौ उपधाको इत्व आशिष, आशिषा चरति बड़ोंके कृपाके बलपर विचरति स्वच्छेचारी हो गया। यहाँ साक्षात् इस प्रत्यय नही है, ठ को क नही हुआ उषा चरति प्रातःकाल टहलता है। उषासे ठक् इक आदिवृद्धि औषिकः (वा०) इस सम्बन्धमें दोषशब्दसे ठ को क कहें। दोर्भ्यां भुजाओंसे जो

श्रौषिकः ।* 'दोष उपसंख्यानम्' दोर्भ्यां चरति दौष्कः । २२ क्षीराड्ढञ् ४।२।२०।। अत्र संस्कृतमित्येव सम्बध्यते, न तु भक्षा इति । तेन यवाग्वामपि भवति । क्षैरेयी । २३ सास्मिन्पौर्णमासीति ४।२।२१।। इतिशब्दात् 'सञ्ज्ञायाम्' इति लभ्यते । पौषी पौर्णमास्यस्मिन्पौषो मासः । २४ आग्रहायण्यश्वत्थाट्ठक् ४।२।२२।। अग्रे हायनमस्या इत्याग्रहायणी । प्रज्ञादेराकृतिगणत्वादण् । 'पूर्वपदात्सञ्ज्ञायामिति णत्वम् । आग्रहायणी पौर्णमास्यस्मिन्नाग्रहायणिको मासः । अश्वत्थेन युक्ता पौर्णमास्यश्वत्थः । निपातनात्पौर्ण-

---

चलता है या तैरता है दौष्कः तरतिसे ठक् उसको क हुआ ।

। २२ । क्षीरसे तृतीयान्तसमर्थ होनेपर किया हुआमें ढञ् हो । यहाँ संस्कृतं ही सम्बन्धित है भक्षा नहीं । चबाकर लीलना भक्ष है । पीने अर्थमें यह सूत्र। क्षीरे संस्कृता।(दूधमें मिलाई हुई यवागू च्यवनप्रास हलुआ)क्षीरवाचक शब्दात् ढञ्–एय, टिढ्ढा० से ङीप् क्षैरेयी । यदि भक्ष आता तो, यहाँ ढञ् न होता । क्योंकि खीर पेय है । खाद्य नहीं अतः यवागू अर्थमें भी होता है । (२३) सास्मिन् सा पौर्णमासी अस्मिन्नर्थे इस महीना, आधार कालमें है । उसकावाचक प्रथमान्तसे अण् आदि हो । इति शब्दके उच्चारणसे संज्ञा नाममें निश्चित । पुष्येण युक्ता पौषी पुष्य नक्षत्रसे जुड़ी हुई पूस महीनाकी पौर्णमासी सा यस्मिन्मासे (वह जिस महीनामें हो) उसका नाम पौषः । पौषीशब्दसे सोस्मिन्नर्थमें अण्, यस्येति इलोपे आदि, । पूर्णो मासोऽस्यां तिथौ । एवं मघाभिर्युक्तापौर्णमासी मघा नक्षत्रसे जुड़ी हुई पूर्ण महीनेकी तिथिका नाम माघी सा यस्मिन्मासे स माघः मासः । इसी प्रकार फाल्गुनी नक्षत्रसे जुड़ी हुई पूर्णिमा जिस मासमें हो फाल्गुनः मासः । चित्रा नक्षत्रसे जुड़ी पूर्णमासी वाला महीना चैत्रः । विशाखासे वैसाखः । ज्येष्ठासे पूर्ण तिथिका महीना ज्येष्ठः । आषाढ़ासे आषाढ़ः श्रवणसे श्रावणः, भाद्रपदसे भादँव महीना इत्यादि ।

। २४ । आग्रहायणी और अश्वत्थ से ठक् हो । सा अस्मिन्मासे अर्थमें अण् को बाँधकर । अग्रे आयनं गोवत्सरः सम्बसरो वत्सरो अब्दो हायनाऽस्त्री समाः । जिनके बाद वर्षका आरम्भ व पौर्णमासी अगहन महीनेकी, अण् ङीप् आदि । यदि ऐसा तब अण् से अदन्त होना चाहिए, तब कहा प्रज्ञादिश्च सूत्रसे आकृतिगण मानकर स्वार्थमें अण् । टिढढ़ा–से ङीप् पूर्वपदात् से णत्व, ऐसी पूर्णमासी जिसमें हो वह मास आग्रहायणिकः ठक् इक इलोप अगहन महीनेके बाद नया वर्ष सौरमासमें माना जाता है । अश्विनी (घोड़ी) नक्षत्र

मास्यामपि लुप्। आश्वत्थिकः। **१२२५ विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्रीभ्यः** ४।२।२३।। एभ्यष्ठग्वा, पक्षेऽण्। फाल्गुनिकः, फाल्गुनो वा मासः। श्रावणिकः, श्रावणः। कार्तिकिकः, कार्तिकः। चैत्रिकः--चैत्रः। **२६ साऽस्य देवता** ४।२।२४।। इन्द्रो देवता अस्येति ऐन्द्रं हविः। पाशुपतं बार्ह-

---

अश्वत्थः-आश्विन् महीना, नक्षत्र अर्थ में हुए अण् का लुबविशेषे सूत्रसे लुप्। परन्तु फाल्गुनी श्रवणा कार्तिकी चैत्री उच्चारणसे पौर्णमासी अर्थमें लुबविशेषे नहीं लगता, लुप् कैसे ? तब कहा निपातनात्=सूत्रमें स्वीकार करनेसे। पौर्णमासीमें लुप् होता है (पौर्णमास्यां लुप् न,) ऐसा ज्ञापन इस सूत्रसे अतिरिक्त विषयका है। अश्वत्थः (क्वारकी पौर्णमासी) अस्ति अस्मिन्मासे ठ-इक आदि **आश्वत्थिकः**।

।१२२५। **विभाषा** फाल्गुनी श्रवणा कार्तिकी चैत्री पौर्णमासी जिस महीनेमें हो, उसके वाचक शब्दसे ठक् विकल्पसे हो, पक्षमें अण् भी। फाल्गुनी=फाल्गुन नक्षत्रकी पूर्णमासी जिस मासमें हो फाल्गुनी। ठक् इक **फाल्गुनिकः**। पक्षमें अण् **फाल्गुनः** फागुनमहीना। एवं श्रवणनक्षत्रयुक्ता पौर्णमासी **श्रवणा** सा अस्मिन्मासे वर्तते ठक् **श्रावणिकः**।अण् श्रावणः। सावन महीना। कृत्तिकायुक्ता पूर्णमासी कार्तिकी सा अस्मिन् वर्तते **कार्तिकिकः**। ठक् आदि। पक्षे अण् **कार्तिकः**। चित्रायुक्ता चैत्री सा अस्मिन् वर्तते **चैत्रिकः** ठक् आदि, पक्षे अण् **चैत्रः**।

।२६। **साऽस्य**—सा देवता उससे अस्य=सम्बन्धित अर्थमें प्रथमान्तसे अण् आदि, यथायोग्य हों। प्रसङ्गमें सा आजाता, यहाँ 'सा' क्यों पढ़ा ? इसी सूत्रके निपातनसे। देवशब्दसे स्वार्थमें तल् होनेके लिए। इन्द्र हैं, देवता इसके इन्द्रात्मक देवतासम्बन्धी वस्तु हवि आदि अर्थमें इन्द्रसे अण् आदिवृद्धि, भसंज्ञा अकारलोप स्वादिकार्य। पाशुपत—पशूनां जीवानाँ पतिः रक्षकः पशुपतिः शङ्करः स देवता अस्य। शिवसम्बन्धी अर्थमें अण्, आदिवृद्धि, इकार लोप आदि **पाशुपतम्** अस्त्रं, शङ्करजी का। **बार्हस्पत्यं** बृहत्याः वाण्याः पतिः बृहस्पतिः स देवता अस्य सम्बन्धित वस्तु अर्थमें ण्यत् आदि। अत्र शङ्का-देवताशब्द संसारमें प्रसिद्ध जातिका वाचक है। उन्हींसे अण् आदि होगें, परन्तु पितरो देवता अस्य विग्रहमें देवता सम्बन्धी वस्तु अर्थमें यत् कैसे ? **पित्र्यम्** आदि नहीं बनेगें, तब कहा कि **त्यज्यमान**-दानकरने वाली वस्तुका जो उद्देश्य कामनाका विषय हो या मन्त्रस्तुतिका जो उद्देश्य हो (वह देवता

स्पत्यम्। त्यज्यमानद्रव्ये उद्देश्यविशेषो देवता, मन्त्रस्तुत्या च। ऐन्द्रो मन्त्रः। 'आग्नेयो वै ब्राह्मणो देवतया' इति तु शैषिकेऽर्थे 'सर्वत्राग्नि--' इति ढक्। २७ कस्येत् ४।२।२५।। कशब्दस्येदादेशः स्यात्प्रत्ययसन्नियोगेन। 'यस्य--' इति लोपात्परत्वादादिवृद्धिः। को ब्रह्मा देवता अस्य कायं हविः। श्रीर्देवता

पिण्डदान तर्पणदि) पित्र्यमें यत् हुआ। यदि ऐसा हविका शेषभाग ऋग्भ्योः ददाति, विप्राय गां ददाति आदिमें विप्र ऋत्विक् उद्देश्य, कामनाका विषय है। यहाँ देवता अर्थमें प्रत्यय क्यों नहीं होता? देय वस्तु साध्य हो, हमसे अप्रत्यक्ष हो, दिखाई न पड़े, फलका उपकारक हों, उसका आधार देवता विप्र आदिमें प्रत्यय हैं। अतः देवता अर्थमें मन्त्र स्तुत्या च। जिसके लिए मन्त्र उच्चारित हो स्तुति भी। देवता उद्देश्यक प्रयुक्त मन्त्रसे कामना का विषय भी। अग्निमीडे पुरोहितम् इत्यादि मन्त्रमें यज्ञ पुरोहितके गुणधर्म जिसमें हों वह भी देवता है। इन्द्रो देवता अस्य ऐन्द्रो मन्त्रः। इन्द्रकी स्तुतिका मन्त्र, यज्ञ पुरोहितके गुण है। ननु आग्नेयो देवताका धर्म होनेसे अग्नि भी ब्राह्मण है। अग्निदेवता, न हविके उद्देश्य, न मन्त्रके, स्तुति, आग्नेयः में ढक् कैसे? शेषे भवः शैषिकः। अस्मिन् अर्थे सर्वत्राग्नि-सूत्रेण ढक् आदिसे बना है। यहां अग्नि ब्राह्मण कैसे? देवता जाति, लोक वेदमें प्रसिद्ध है। तदभिमानको ब्राह्मणः।

। २७। कस्य—क शब्दके इत् आदेश हो अन्त्य अल् के स्थानमें, आगे प्रत्ययके रहने पर। साऽस्य देवतासे हुआ अण् परे हो तभी इकार हो। क का ब्रह्मा अर्थ, वह देवता हो (जिस हविके) अर्थमें अण्। क के अको इत्व, कि अ, इति दशायां यस्येति च से इकार लोप प्राप्त हुआ, उसको परत्वाद् विप्रतिषेधे परं कार्यं के बल पर आदिवृद्धि पर हुई। यद्यपि इकार विधानसे लोप न होता, यथापि वस्तुस्थिति कहा गया, आयकार्य। परत्वात् बाधका फल है। श्रायं—श्रीः देवता अस्य लक्ष्मी जिसकी स्वामिनी है। अण् यहाँ इकार लोप को बाँधकर आदिवृद्धि सफल, आयादेश स्वादिकार्यं। कायानु ब्रूहि प्रैषः प्रजापति के सर्वात्मा होनेसे कि सर्वनामसे भी (कस्मा अनुब्रूहि इत्येव सम्प्रैषः) इतिभाष्ये विष्णु सहस्रनाम में विश्व विष्णुः एको नैकः सवः कः किं ? यत्तत्पदमनुत्तमं, पढ़ा है। अतः विश्वस्मै नमः. विश्वाय नमः आदि प्रासङ्गिक है

॥ १२२८ ॥शुक्रसे घन् हो देवता सम्बन्धी देय अर्थ में। शुक्रो देवता अस्य शुक्रियम् बस्त्रं, शुक्र घ—इय आदि॥ २९॥ अपोनपात् और अपान्नपात्

अस्य श्रायम्। २८ शक्राद्धन् ४।२।२६।। शुक्रियम्। २९ अपोनप्त्रपांनप्तृभ्यां घः ४।२।२७।। अपोनप्त्रियम्-अपांनप्त्रियम्। अपोनपात् अपांनपाच्च देवता। प्रत्ययसन्नियोगेन तृक्तं रूपं निपात्यते। अत एव अपोनपातेऽपांनपातेऽनुब्रूहीति प्रैषः। १२३० च छ ४।२।२८।। योगविभागो यथासङ्ख्यनिवृत्त्यर्थः। अपोनप्त्रियम्-अपांनप्त्रीयम्, 'छप्रकरणे पैङ्गाक्षीपुत्रादिभ्य उपसङ्ख्यानम्' पैङ्गाक्षीपुत्रीयम्। तार्णबिन्दवीयम्।* 'शतरुद्राद्धश्च' चाच्छः। शतं रुद्राः देवता अस्य शतरुयिद्रयम्-शतरुद्रीयम। घच्छयोर्विधानसामर्थ्यात् द्विगोर्लुगनपत्ये' इति न लुक्। ३१ महेन्द्राद्घाणौ च ४।२।२९। चाच्छः। महेन्द्रियम् हविः, माहेन्द्रम्। महेन्द्रीयम्। ३२ सोमाट्टचण् ४।२।३०। सौम्यम्। टित्वान्ङीप्। सौमी ऋक्।३३ वाय्वृतुपित्रुषसो यत् ४।२।३१

देवता है। इनसे देय अर्थमें धन। उसकी उपस्थितिमें प्रथमको अपोनप्तृ द्वितीयको अपांनप्तृ आदेश। निपातनसे धको इय यण्। अत एव =ध के संयोगमें उक्त आदेश विधि, होनेसे अपोनपाते आदि में नही हुआ। प्रेषः अनुब्रूहि प्रेरणा करो। (१२३०) छ प्रत्ययभी हो उक्तविषयमें। पूर्वसूत्रमें धच्छौ पढ़ते। ख भी होता छ भी। यही अर्थ रहता, तब कहा कि नही, योग=सूत्रका विभाग संख्या क्रम निवृतिके वास्ते छको ईय रूप होकर (छके प्रसंङ्गमें पैङ्गाक्षीपूत्रः आदि से भी छ कहे) देवता सम्बन्धी देय अर्थमें। पैङ्गाक्षीपुत्रो देवता अस्य छ—ईय आदि। तार्णविन्दुः देवता अस्य विग्रहमें छ—ईय ओर्गुण आदि। शतरुद्रसे ध हो छ भी, शतंरुद्राः देवता अस्य शतरुद्र देवता है,ध-इय,छ-ईय रूप सिद्ध, शतशब्द अनन्त अर्थमें। तद्धितार्थ द्विगुसमासे। यदि ऐसा तब द्विगोलुंक्से अनपत्य अर्थमें लुक क्यो नहीं। ध और छ दोनोके विधान बल से, द्विगोर्लुक् यहां नही लगेगा ।।३१।। महेन्द्र से ध अण और छ हो। महेन्द्रो देवता अस्य विग्रहमें ध इय। अण=माहेन्द्, छ—ईय—३रुप महेन्द् सम्बन्धी वस्तु (३२) सोमसे देवता सम्बन्धी अर्थमें टचण् हो। सोमः चन्द्रः देवता अस्य विग्रहमें टचण् प्रत्यय, अनुबन्धलोपे आदिवृद्धि सौम्यम्। टित् होनेसे ङीप्। जिस मन्त्रके देवता चन्द्रमा हो (३३) वायु ऋतु पितृ उषस इनसे देवता सम्बन्धी अर्थमे यत् हो वायुः देवता यस्य वायव्यं वायुकोण यत्, ओर्गुणः वान्त अवादेश। ऋतुः देवता अस्य ऋतव्यं कामः। पिता देवता अस्य पित्र्यं मित्रम्। पिताको देवता मानता है पितृ-य इति दशायां (३४) रीङ्-अङ्ग का अधिकार (अयङ् यि क्ङित्) से यि आया। अकृत्सार्वधातुकयोः और च्वौ च सूत्र भी आये। अकृद्यकारे=कृदन्तका

वायव्यम् । एवम् ऋतव्यम् । ३४ रीङृतः ७।४।२७। अकृद्यकारेऽसार्वधातुके यकारे च्वौ च परे ऋदन्ताङ्गस्य रीङादेशः स्यात् । 'यस्येति च' पित्र्यम् । उषस्यम् । १२३५ द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोमवास्तोस्पतिगृहमेधाच्छ च ४।२।३२। चाद्यत् । द्यावापृथिवीयम्-द्यावापृथिव्यम् । शुनासीरीयम् शुनासीर्यम् । ३६ अग्नेर्ढक् ४।२।३३। आग्नेयम् । ३७ कालेभ्यो

य न हो, सार्वधातुक य न हो, ऐसे यकार परे और च्वि परे ऋदन्तअङ्ग को रीङ् आदेश हो, ङित्से अन्त्य अल् ऋ को रीङ् हुआ । यस्येति ईकारलोपे स्वादिकार्ये । पित्रीयति इत्यादि में अङ्गकार्ये कृते पुनर्नाङ्गकार्यमिति वचनात् दीर्घे अप्राप्ते ईकारोच्चारणम् । उषः देवता अस्य उषस्यं, वायु ऋतु से यत् । परन्तु भसंज्ञासे पदसंज्ञाका बाध, जिसका फल स को रुत्व आदि न होना (१२३५) द्यावा पृथिवीकी आकाश भूमि, शुनासीर—वायु सूर्य, मरुत्वत् (तेज वायु) अग्नी, सोम, वास्तोष्पति (वस्तुओंके स्वामी) गृहमे घर-घरका स्वामी, इनसे छ और यत् हो, अण् और पति उत्तर पदे, ण्य को बांधकर । द्यावापृथिवी देवता अस्य पूजनस्य । सूत्रसे छ—ईय पक्षमें यत् । दोनों स्थलमें यस्येति च से ईकार लोप । शुनश्च सीरश्च शुनासिरौ । देवता द्वन्द्वसे तौ देवते अस्य शुनासीर्यं, वेद भाष्यमें भट्टभास्कर—वायु आदित्यवान इन्द्र अर्थमें, शुनासीरो देवता अस्य, विग्रहमें कार्य । इन्द्र वयं शुनासीरमस्मिन्यज्ञे हवामहे । इन्द्र अर्थमें भी प्रमाण । मरुत्वान् देवता अस्य, वायु देवता है जिस पूजनके मरुत्वतीयं—छ—ईय होनेपर । यदा यत्, तदा मरुत्वत्यम् । अग्नीषोमौ देवता अस्य छ अग्निषोमीयम् । यत् अग्निषोम्यम् । वस्तुनः पतिः वास्तोष्पतिः रुद्रः शिवजी, समस्त गृह स्वामी । निपातनसे अलुक् षत्वभी । ब्राह्मणमन्त्रमें रुद्रः खलुवं वाष्तोष्पतिः । अमरकोशमें सुरपति इन्द्र अर्थः । देवता सम्बन्धी अर्थमें छ—ईय वाष्तोष्पतीयं प्रत्यम् । गृहमेधो देवता अस्य अकारान्त मरुद्भ्यो गृहमेधेभ्यः प्रमाणसे छ--यत् गृहमेधीयं, गृहमेध्यं। वेश्म भूर्वास्तुरस्त्रियाम् (३६) अग्नि से ढक् हो, तेन दीव्यति सूत्रके पहले, सभी अर्थोंमें । सर्वत्र अग्निकालिभ्यां वचन प्रमाणसे ।

। ३७ । कालवाची शब्दोंसे जितने प्रत्यय जिस विशेषणसे भव अर्थमें है वे सब साऽस्य देवता अर्थमें भी उन्हीं विशेषणोंके साथ वे प्रत्यय हों । यह अतिदेश सूत्र है (तेन तुल्यं क्रिया चेद्वत्तिः) मासः देवता अस्य मासिकं धर्मः । काला ठञ् मास-काल है उससे देवता सम्बन्धी अर्थमें ठञ् इक, मासिको धर्म

भववत् ४।२।३४। मासिकम् । प्रावृषेण्यम् । ३८ महाराजप्रोष्ठपदाट्ठञ् माहाराजिकम् । प्रौष्ठपदिकम् । ३९ देवताद्वन्द्वे च ७।३।३५ अत्र पूर्वोत्तर-पदयोराद्यचो वृद्धिः स्यात् ञिति णिति किति च परे । आग्निमारुतम् । १२ ४० नेन्द्रस्य परस्य ७।३।२२। परस्येन्द्रस्य वृद्धिर्न स्यात् । सौमेन्द्रः । परस्य किम् । ऐन्द्राग्नः ।४१दीर्घाच्च वरुणस्य७।३।२३। दीर्घात्परस्य वरुणस्य न वृद्धिः । ऐन्द्रावरुणम् दीर्घात् किम् ! आग्निवारुणम् । आग्निवारुणीमनड्वाहीमा-लभेत । 'तदस्मिन्वर्तत इति नवयज्ञादिभ्य उपसंख्यानम्' नावयज्ञिकः

का देवता माह है । प्रावृट् देवता अस्य वर्षा ऋतु से सम्बन्धित अर्थमें प्रावृषेण्य हुआ । ।।(३८)।। महाराज और प्रोष्ठ पदसे देवता सम्बन्धी अर्थमें ठक् ठञ् । सास्य देवता का अधिकार । वैश्रवणः महाराजः देवता अस्य, भूमेः वस्तुनः वा ठञ् इक इत्यादि । प्रोष्ठपदः गौः देवता अस्य प्रोष्ठपदिकं क्षीर, गोवासः । ठञ् ।।(१२३९) ।। देवता के द्वन्द्व समास में पूर्वपद उत्तरपद दोनो के आदि अच को वृद्धि हो किति, णिति ञिति परे (अचो) णिति किति च सूत्र भी । (तद्धितेषु अचामादि) हृद्भग से पूर्वपद आया. उत्तरपदस्य च भी । अग्निश्च मरुतश्च अग्नामरुतौ देवता द्वन्द्व से आनङ् हुआ । तौ देवते अस्य अग्निमारुतम् । सास्य देवता सूत्रेण अण् । इस सूत्रसे दोनों पदके आदि अचको वृद्धि हुई । अलौकिक विग्रहवाक्य आनङ्को बाधकर ईद्वृद्धौ से इत्व हुआ । । १२४० । नेन्द्रस्य=देवता द्वन्द्वे च सूत्रकी प्राप्ति दशामें, उत्तरपदमें इन्द्र-शब्द हो तब वृद्धि न हो । सोमश्च इन्द्रश्च सोमेन्द्रौ देवता अस्य भोजनस्य सौमेन्द्रः । अण् आदिः उत्तरपदमें इन्द्र है उसे वृद्धि नहीं । सौमेन्द्रः श्यामकं चरुमिति तैत्तिरीये । परस्य क्यों कहा ? इन्द्राग्नि देवता अस्य ऐन्द्राग्नः चरुः । यहाँ इन्द्र आदिमें है, परमें नहीं वृद्धिनिषेध नहीं हुआ ।

। ४१ । दीर्घसे परे वरुणको आदिवृद्धि नहीं होती । इन्द्रावरुणौ देवता अस्य विग्रहे आनङ् सहित इन्द्रावरुणसे आदिवृद्धि । दीर्घपरे वरुण है उसको न वृद्धि दीर्घ क्यों पढ़ा ? ह्रस्वसे परे आदिवृद्धिका निषेध न हो। आग्निवारुणम् यहाँ इद्वृद्धौ आग्निको आनङ् बाधकर इत्व करनेपर इत्वके दीर्घ न होनेसे उससे परे वरुणको वृद्धिका निषेध नहीं हुआ । अग्नि और देवता हो जिस गायकी उसको आलभेत - स्वीकार करें ।

यह प्रसंगकी बात हुई अब प्रकरण पर (वा) तदस्मिन् महाराजप्रोष्ठपदाठञ् सूत्रपर वार्तिक तदस्मिन्वर्तते अर्थमें नवयज्ञ आदि प्रथमान्तसे ठञ् हो ।

कालः। पाकयज्ञिकः। * 'पूर्णमासादण्वक्तव्यः' पूर्णो मासोऽस्यां वर्तत इति पौर्णमासी तिथिः। ४२ **पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः** ४।२।३६॥ एते निपात्यन्ते। * 'पितुर्भ्रातरि व्यत्'। पितुर्भ्राता पितृव्यः। * 'मातुर्डुलच्' मातुर्भ्राता मातुलः। * मातृपितृभ्यां पितरि डामहच्,। मातुः पिता मातामह। पितुः पिता पितामहः। * 'मातरि षिच्च'। मातामही। पितामही। 'अवेर्दुग्धे सोढदूसमरीसचो वक्तव्याः'। सकारपाठसामर्थ्यान्न षः। अविसोढम्। अविदूसम्। अविमरीसम्। 'तिलान्निष्फलात्पिञ्जपेजौ' तिलपिञ्जः। तिलपेजः। वन्ध्यस्तिल

नवयज्ञः नूतन धान्यद्रव्यकः (अगहन महीनेमें नया धान होनेपर यज्ञ किया जाता है उसका नाम **आग्रहायणाख्यः**) स यस्मिन्काले वर्तते उस कालका नाम **नावयज्ञिकः**। उसके बाद (नया संवत) नवयज्ञसे निश्चित कालक्रिया अर्थमें ठञ् इक आदि। पाकयज्ञः औपासनाग्निसाध्यः पार्वणस्थालीपाकादिः। स यस्मिन्काले वर्तते हवनकी वस्तु जिस कालमें, परिपक्वकी जाय, वह समय **पाकयज्ञिकः** ठञ् इक आदि (वा०) अस्मिन्वर्तते (इस कालमें क्रिया है) अर्थमें पूर्णमास प्रथमान्तसे अञ् कहें। मासः चन्द्रमा पूर्णश्चासौ मासश्च पूर्णमासः पूर्णचन्द्रः स यस्यां तिथौ वर्तते सा **पौर्णमासी** तिथिः। वर्तते अर्थमें अणादिः। टिड्ढासे ङीप्। यद्यपि पूर्णोमाहेन्द्रः पूर्णमासमें अण् ङीप् होकर पौर्णमासी वनता। परन्तु उक्तअर्थमें साधुतामान्य।

।४२। **पितृव्य** आदि निपातनसे सिद्ध हों। किस अर्थमें किसका निपातन तब लिखे कि **पिताके भाई अर्थमें व्यन्**का निपातन, पिताका भाई **पितृव्यः**। पितृसे भाई अर्थमें व्यन् स्वादिः। । **मातृसे** माताका भाई मामा अर्थमें डुलच् ड इत्, टिका लोप आदि। **मातुलः**। माताके पिता नाना। बाबा अर्थमें डामहच् हो, माताका पिता **मातामहः** नाना। मातृसे डामहच्, ड इत् टिलोप। पिताका पिता **पितामहः**। पितृसे डामहच् ऋका लोप। माता पिताके **माता** अर्थमें वह षित् हो जाय। षिगौरादिभ्यश्चसे ङीष् फल है। **मातामही** आदिमें सफल (वा०) **अविर्दुग्धे**=भेड़का दूध अर्थमें अविशब्दसे सोढ दूस मरीसच् प्रत्यय हों। परन्तु प्रत्ययका अवयव स को ष न हो सकार पढ़नेके सामर्थ्यसे। अन्यथा षोढ़ः पढ़ते। (वा०) **तिल** से निष्फल बन्ध्याअर्थमें **पिञ्ज** और **पेज** प्रत्यय हों। औषधि फल नहीं, जब निष्फल रहेगा, उसका सूचक प्रत्यय ही होगा। **तिलपिञ्जः तिलपेजः** निष्फल औषधिः (वा०) पिञ्जशब्द वेदमें डित् भी हो। ड इत् होनेसे ल में अ का लोप हुआ।

इत्यर्थः। 'पिञ्जश्छन्दसि डिच्च' तिल्पिञ्जः।४३ तस्य समूहः ४।२।३७॥ काकानां समूहः काकम्। बाकम्। ४४ भिक्षादिभ्योऽण् ४।२।३८॥ भिक्षाणां समूहो भैक्षम्। गर्भिणीनां समूहो गार्भिणम्। इह 'भस्याढे—' इति पुंवद्भावे कृते,। १२४५ इनण्यनपत्ये ६।४।१६४॥ अनपत्यार्थेऽणि परे इन्प्रकृत्या स्यात्। तेन 'नस्तद्धिते' इति टिलोपो न। युवतीना समूहो यौवनम्।

।४३। तस्य षष्ठी अन्तमें हो, प्रथमा से उच्चारित हो, उन शब्दोंसे तेन दीव्यति सूत्रके पहले सभी प्रत्यय (समूह अर्थमें)ठक्आदि। अनुदात्तादिसे अञ्, गोत्रप्रत्यय अन्तमें हो, उससे वुञ्। केदारसे यत्, समूह अर्थमें। यदि चेतन हो, आदि उदात्त हो, गोत्रान्त न हो, पतिपदोक्त-साक्षात् उच्चारण रहितके अपवाद विषय बोले—कौवोंके समूह झुण्ड काकं है। काकसे समूह अर्थमें अण्। वकानां समूहः वाकम् अण् आदिः। वृकानां समूहः वार्कं वृकसे अण् आदिः। (सियारोंका) 'प्राणिनां कुपूर्वं' से आदि उदात्त।

। ४४। भिक्षादिगणमें पढ़े शब्दसे उनके समुदाय अर्थमें अण् हो। अचित्त हस्तिके ठक्को बाधकर। भिक्षाकी ढ़ेर को भैक्षं भिक्षा सम्बन्धी समुदाय अण् आदिः। गर्भिणीका समुदाय एकता अर्थमें अण्। गर्भः अस्ति अस्यां शुक्रोणितधारणकी शक्तिशाली) मत्वर्थीय इन् आदि—उदात्तश्चसे इ,' उदात्तः। एकवर्यं पदम् अनुदात्तं से गर्भिन् अनुदात्त है, नान्त ङीप्, सुप्पितौ अनुदात्तौ। गर्भिणी भी अनुदात्त। समूह अर्थमें अनुदात्तादि मानकर अञ् प्राप्त, उसे बांधकर अण् गार्भिणम्। अण होनेपर भस्याढ़ेः भसंज्ञकको पुलिङ्ग हो तद्धितपरे। पुंवत्से ङीप् निवृत्त। गार्भिन् अ, इस दशामें नस्तद्धितेसे अन्का लोपः प्राप्तः।

। १२४५। इन् अपत्यसे भिन्न अर्थमें अण् हुआ हो, तब इन्को प्रकृतिभाव हो (जैसा था वैसा रहे) नस्तद्धितेसे टिलोप न हो। प्रकृत्यैकाच् से प्रकृत्या आया। यदि अञ् प्रत्यय होता टिलोप हो जाता। युवतियोंका जत्था समुदाय। यौति पतिं मिश्रयति युवतिः युवनस्तिः तिप्रत्यय आदि उदात्त, शेष अनुदात्तमानकर प्राप्त अञ्को बाधकर अण्। भिक्षादि मानकर समुदाय अर्थमें। युवति अ भस्याढ़ेः पुं०, तिः—निवृत्तः। अनका (प्रकृतिभावसे) लोप नहीं हुआ। आदिवृद्धि आदि। यौवनम्। शत्रन्तात्=यदि युधातुसे शतृप्रत्यय हो तब अनुदात्त मानकर अञ् प्राप्त था। तब भिक्षादिभ्योः अण् आदिः। यौवतम् (४६) गोत्र उक्षन्, उष्ट्र उरभ्र राजन्, राजन्य, राजपुत्र वत्स, मनुष्य

शन्नन्तातनुदात्तादेरञि यौवनम्। ४६ **गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराज्यपुत्रवत्समनुष्याजाद्वुञ्** ४।२।३६॥ एभ्यः समूहे वुञ् स्यात्। लौकिकमिह गोत्रं, तच्चापत्यमात्रम्। ४७ **युवोरनाकौ** ७।१।१॥ यु वु एतयोरनुनासिकयोः क्रमात् अन अक एतावादेशौ स्तः। ग्लुचुकायनीनां समूहो ग्लौचुकायनकम्। औक्षकमित्यादि। 'आपत्यस्य च' इति यलोपे प्राप्ते * प्रकृत्याऽके राजन्यमनुष्ययुवानः'। राजन्यकम् मानुष्यकम्। * वृद्धाच्चेति वक्तव्यम्'। वार्द्धकम्। ४८ **केदाराद्यञ्च** ४।२।४०॥ चाद् वुञ्। कैदार्यम्। कैदारकम्।*

अज इनसे परे वुञ् हो समुदाय अर्थमें इससूत्रमें लौकिकगोत्र जो प्रवर अध्यायमें परिगणित पुत्रपौत्रादिपूर्ण सन्तान अर्थ, केवल परिभाषिक नहीं। क्योंकि अपत्याधिकारादन्यत्र लौकिकमेव गोत्रं गृह्यते न तु परिभाषिकम्।

।४७। **युवुको** क्रमसे (अनुनासिकयोरिष्यते) वार्तिक बलपर अनुनासिक हो, पाणिनि प्रतिज्ञाका विषयहो,तब अन अक आदेश हो, अनुनासिक क्यों कहा ? ऊर्णानां समूहः उर्णायुः। यहांका यु अनुनासिक नहीं है। अक न हो। अघमिच्छति अघायुः। **ग्लुचुक** शब्दसे अपत्यअर्थ में फिन्। फ–आयन। ङीष् (इतो मनुष्यजातेः) ग्लुचुकायनिः से समुदाय अर्थमें वुञ् अक आदिवृद्धि, इलोप आदि। उक्ष्णां समूहः **औक्षकम्**। उक्षन्-से वुञ् युवोरनाकौसे वुको अक। टि अन्का लोप आदिवृद्धि। उष्ट्राणां समूहः **औष्ट्रकं** ऊँटोका झुण्ड। उरभ्राः। मेषाः तेषां समूहः **औरभ्रकं** भेंड़का झुण्ड। राज्ञां समूहः **राजकं राजन्यकम्**। यहां आपत्यस्य च सूत्रसे यलोपप्राप्त था उसका बाधक (वा०) **प्रकृत्या**-अक परे राजन्य, मनुष्य युवन्का प्रकृतिभाव हो, तब टि (अन्) का और य का लोप नहीं। एवं मनुष्याणां समूहः **मानुष्यकं** मनुष्यसे समुदाय अर्थमें वु-अक आदिवृद्धिः। प्रकृतिभावसे टिलोपः, यलोप नहीं। यूनो भावः **यौनकं** युवकों का जत्था। युवन्से वु–अक आदि। मनोज्ञादि मानकर वु। प्रकृतिभावसे टिलोप नहीं (वा०) **वृद्धसे** भी समुदाय अर्थमें वुञ् हो। यहाँ वृद्ध-जीर्ण मनुष्य है वृद्धानां समुह **वार्धकं** बुढ्ढ़ा दल। वुञ् आदिवृद्धि।

। ४८। **केदारात्**=केदारसे यञ् हो, वुञ् भी, समुदाय अर्थमें। केदाराणां समूहः (खेत कियारी कूल समुदाय) केदारसे यञ् आदि। र के अका लोप **कैदार्यम्**। जब वुञ् अक भी हुआ तब **कैदारकम्** (वा) **गणिका** अप्सराके समुदाय अर्थमें यञ् हो। वुञ् निवृत्त। यञ् पढ़नेसे गणिकानां समुहः अर्थमें यञ् आदि। यस्येति अकारलोप। (४९) **कवचिन्** और केदार शब्दसे समूह अर्थमें

गणिकाया यञिति वक्तव्यम्' गाणिक्यम् ४९ ठञ्कवचिनश्च ४।२।४१॥ चात्केदारादपि । कवचिनां समूहः कावचिकम् । कैदारिकम् । १२५० ब्राह्मण माणववाडवाद्यत् ४।२।४२॥ ब्राह्मण्यम् । माणव्यम् । वाडव्यम् ।* पृष्ठादुपसंख्यानम् पृष्ठयः (षडहः)। ५१ ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् ४।२।४३॥ ग्रामता ॥ जनता । बन्धुता ।* गजसहाभ्यां चेति वक्तव्यम् गजता। सहायता ।* 'अहः खः क्रतौ' अहीनः । अहर्गणसाध्यसुत्याकः क्रतुरित्यर्थः । क्रतौ किम्? आह्नः । इह खण्डिकादित्वादञ् । 'अह्नष्टखोरेव' इति नियमाट्टि-

ठञ् हो । चकारसे केदार आया । शरीर रक्षक कवचधारियोंका समुदाय **कावचिकम्** । कवचिन्से ठञ् ठस्य इक, टिलोप आदि । समुदाय अर्थमें केदारसे ही ठञ् आया । (१२५०) **ब्राह्मण** माणव, वाडवसे संगठन अर्थमें यत् हो । ब्रह्मणानां माणवानां वाडवानां समूहः । **ब्राह्मण्यं** यन् अलोप । मनोः अपत्यं **माणवः**: मनुका वंश । मनुसे तस्यापत्यम् अण् । उ स्थाने ओर्गुणे अवादेशे आदिवृद्धि, नस्य ण । निपातनादेव । अत्रभाष्ये अपत्ये **कुत्सिते मूढे मनोरौत्सर्गिकः मृतः । नकारस्य च मूर्धन्यः, तेन सिद्धति माणवः** । वाडवा-घोड़ी उसका समुदाय अर्थमें यत् । उकार को गुण अव् **माणव्यम्** । वडवा घोड़ीके समुदाय यञ् आदि । ये तीनो वृद्ध है यञ् होसकता था, परन्तु रूपमें स्वरमें कोई अन्तर नहीं, सब नपुंसक । अवृद्ध से भी यञ् को बाधकर यत् । दोनोंके लिए वार्तिक–**पृष्ठात्** । स्तोत्रका नाम पृष्ठ है उसका संग्रह अर्थमें यत् कहें । पृष्ठानां समूहः **पृष्ठयन्** । स्त्रोत्रसंग्रहः । षण्णाम् अह्नां समाहारः **षहडः** । समुदाय अर्थमें द्विगु, ठच् टिलोप । रथन्तर वृद्ध, वैरूप, वैराज, शाक्वर, रैवत स्तोत्र पृष्ठ नामक है । उनसे जुड़े दिन लक्षणासे पृष्ठ है । तेषां समूहः ।

॥ ५१ ॥ग्राम जन बन्धु से समूह अर्थमें तल् हो । तलन्तं स्त्रियाम् । इस लिङ्गानुशासन से स्त्री० । ग्रामाणां समूहः **ग्रामता** (मण्डल) तल, टाप् आदि । जनानां समुदायः जनता लोग । बन्धूनां सङ्घटनम् (एकता **बन्धुता**) भाइयो का मेल । सबमें तल् टाप् । इस सूत्र पर वार्तिक-**गजसहाय** से भी मेला अर्थमें तल् कहें । गजनां समूहः मेला **गजता** । **सहायता** सह अयते सुखदुःखेषु गच्छति सह योगं करोति **सहायः** मित्राणि, तेषां समूहः । अथवा सह अयनं सहायः तस्य भावः सहायता (वा०) **अहन्** से समुदाय अर्थमें ख हो, क्रतु–यज्ञमें वर्तमान रहनेपर । अनेकदिनमें साध्य सुत्या अभिषेक नामक क्रतु, में वर्तमान दिन इष्ट है । उनका समुदाय मान्य । अहन् से टिलोप । अहीनः । अहर्गणः साध्य

लोपो न ।* 'पर्श्वा णस् वक्तव्यः' **५२ सिति च १।४।१६।।** सिति परे पूर्वं पदसञ्ज्ञं स्यात् । अभत्वादेर्गुणो न । पर्शूनां समूहः पार्श्वम् ।**५३ अनुदात्तादेरञ् ४।२।४४।।** कापोतम् । मायूरम् । **५४ खण्डिकादिभ्यश्च ४।२।४५।।** अञ्स्यात् । खण्डिकानां समूहः खाण्डिकम् **१२५५ चरणेभ्यो धर्मवत् ४।२।४६।।** काठकम् । छान्दोग्यम् । **५६ अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् ४।२।**

ऋतु क्यों कहा? जहा यज्ञ न हो वहाँ, ख न हो। यथा आह्नां समूहः **आह्नः** दिन का समुदाय। यज्ञ अर्थ नही, **न खः । अचित्त** हस्तिसे ठक्की शङ्कामिटाने के लिये खण्डिकादिभ्यश्च से अञ-आदि : हो। यदि ऐसा अन्०को प्रकृतिभाव होगा ही नहीं, क्योंकि वह अण्परे करता है। तब टिलोप क्यों नहीं ? सूत्र ने नियम **किया अहन् से ट ख परे ही टिलोप हो।** यत्र ट, ख परे नास्ति न टि-लोपः, किन्तु अल्लोपो अनः। **आह्नः** उत्सवः (वा०) **पर्श से णस् हो, अण्को** बांधकर। उकारान्त स्त्रीलिङ्ग **पार्श्वगत** अस्थिवाची (बगलकी हड्डी पसली के) समुदाय अर्थमें णस् अनुबन्धलोप आदिवृद्धि। पर्शू अ ओर्गुणः से गुण होने चला तब (५२) सिति = स इत् हुआ हो' उसके परे रहते पूर्वको पदसंज्ञा हो। जो सुप्तिङन्तं से आया। यद्यपि स्वादिष्वसर्वनामस्थाने से **पदसंज्ञा** होती, यह सूत्र भसंज्ञा का बाधक है। **जिसका** फल **अभत्वात्**=भसंज्ञा न होनेसे ओर्गुणः नहीं हुआ। **यण् पार्श्वम्** इकोऽसवर्णे से ह्रस्व प्रकृतिभाव नहीं होगा। सिति च सूत्रपर वचनान्तरसे निषेध (५३) **अनुदात्त**–आदिमें हो तब झुण्ड अर्थमें अञ् हो। कपोतानां समूहः, मयूरणां वा कबूतर या मोरके झुण्ड, **लघावन्ते द्वयोश्च** सूत्रसे कपोत मयूर शब्द मध्य उदात्त, उससे आदि अनुदात्त सिद्ध, तत्र अञ् आदि। **आपूपिकं** और **शाष्कुलिकं** मालपूआ और पूड़ी का ढेर यहाँ उचित मानकर परत्वात् ठक् ही होता है (५४) **खण्डिकादिगणमें पड़े शब्द** से अञ् हो, ढेर अर्थमें। खाड़- राब की ढेर खाड़सारी अर्थमें अञ्। अचित्त-मानकर हो रहे ठक्को बांधकर, आदि उदात्त दशामें अञ् आदि॥

॥१२५५ **चरणाः** वेद शाखाओं के अध्ययनकर्ता गण, उनसे धर्मेण तुल्यं धर्मवत् प्रत्यय, समुदाय अर्थमें हो। धर्म अर्थमें जिन प्रकृतियोसे जो प्रत्यय कहे जायेगे, उन प्रकृतियों से समूह अर्थमें वे प्रत्यय हो। जैसे **गोत्रचरणाद वुञ्** धर्म में वुञ् कहता है वह समूहमें भी हो। **कठानां समूहः** कठशाखा अध्ययन कर्ता का समाज अर्थमें वुञ्-अक आदि हुए। **छान्दोग्यं** = छन्दांसि मन्त्राणि गायन्ति छन्दोगाः सामशाखिनः तेषां समाजः अर्थमें ञ्य (जो धर्म अर्थमें) छन्दोगौक्थिक

४६।। साक्तुकम् । हास्तिकम् । धैनुकम् । ५७ केशाश्वाभ्यां यञ्छ वन्यतरस्याम् ४।२।४८।। पक्षे ठगणौ । केश्य-कैशिकम् । अश्वीयम्-आश्वम् । ५८ पाशादिभ्यो यः ४।२।४६।। पाश्या । तृण्या । धम्या । वन्या । वात्या । ५६ खलगोरथात् ४।२।५०।। खल्या । गव्या । रथ्या ।१२६० इनित्रकट्यचश्च ४।२।५१।। खलादिभ्यः क्रमात्स्युः । खलिनी । गोत्रा । रथकट्या । 'खलादिभ्य इनिर्वक्तव्यः' डाकिनी । कुटुम्बिनी । आकृतिगणोऽयम् । ६१

सूत्रसे होता है । ॥ १२५६ ॥ अचित्त = जो चेतन न हों सत्तू काष्ठ, तण्डुल आदि उनके वाचकशब्दसे हस्ति और धेनुसे ढेर झुण्ड अर्थमें ठक हो । **सक्तूनां-समूहः** सतुआका ढेर अचेतन है, सक्तु से ठक, **इस उस** उक अन्त हो, ठ को क होता है, इक को बाधकर । **हस्तिनां समूहः** हाथियों का **झुण्ड** हस्तिन् से ठ-इक, इनलोप आदि । धेनूनां समूहः **धैनुकं** गायका मेला **अर्थमें** ठक । उक अन्त मानकर परत्वात् ठ को क आदि (१२५७)। **केश** और अश्वसे यञ् छ हो विकल्पसे केशसे । केशसे यञविकल्प, अश्व से छ विकल्प। पक्ष जब यञ् नही होगा, तब अचेतन मानकर ठक् । अश्वसेअण् । केशानां समूहः **कैश्यम्** । अत्र यञ् । यदा न, तदा ठक् आदिः **कैशिकम्** अश्वानां समूहः धोड़ी का मेला । अर्थमें छ-ईय अश्वीयम् यदा न छ तदा अणादिः **आश्वम्** ॥१२५८ **पाशा तृण** धूम वन वात **आदि** के समुदाय अर्थ में य हो समाज में सभी स्त्रीलिङ्गप्रसिद्ध है । पाशानां फन्दा बन्धन हथकड़ी के ढेर अर्थ में पाश से य टाप् पाश्या । तृणानां संग्रहः **तृण्या** । धूमांनामाशक्तिः **धूम्या** । बनानां समूहः **वन्या** । वातानां **वात्या** बवण्डल ।। ५६ ।। **खल गो रथ** इन-से समूह अर्थमें य हो खलानां समुदायः **खल्या** खलसे य टाप । गवां मेला **गव्या** गाय झुण्ड रथाना संग्रहः **रथ्या** पाशादिगण में इनको इसलिये नही पढा कि उत्तरसूत्रमें अलग से अनुवृत्ति हो सके ।। १२६० ।। **इनित्र**=कटयच्प्रत्यय खल गो रथ से क्रमशः हो यथा खलानां निर्दयानां समुदायः अर्थे इनि । नि में इ उच्चाण **खलिनः** । स्त्रीत्वं लोकात् । नान्त ङीप **खलिनी** दुष्टोकी संस्था । गवां समूह **गोत्रा** गोशाला, समूह गोत्रसे स्त्री० लोकसे, टाप रथानां **रथ कट्या** कट इत् नही, (लशकु) में अतद्धिते पढने से । टाप् ।(वा०)। **खल** आदि गणमें पढ़े शब्दसे इनि कहें । डाकानां समूहः **डाकिनी** । (डाइन का झुन्ड) अर्थ ठक् शब्दसे इन । डाकिन् नान्त ङीष् । कुटुम्बानां समुदाय कुटुम्बिनी (परिवार भरी गृहिणी) इन आदि । आकृति स्वरूप देखकर गण मान्य ।

विषयो देशे ४।२।५२।। षष्ठ्यन्तादणादयः स्युरत्यन्तपरिशीलितेऽर्थे स चेद् देशः। शिबीनां विषयो देशः शैबः। देशे किं। देवदत्तस्यविषयोऽनुवाकः ६२ **राजन्यादिभ्यो वुञ् ४।२।५३ ।।** राजन्यकः। ६३ **भौरिक्याद्यैषुकार्यादिभ्यो विधल्भक्तलौ ४२ ५४ ।।** भौरिकीणां विषयो देशः भौरिकिविधम्। भौलिकिविधम्। ऐषुकारिभक्तम्। सारसायनभक्तम् ६४ **सोऽस्यादिरिति च्छन्दसः प्रगाथेषु ४।२।५५ ।।** अण्। पङ्क्तिरादिरस्येति पाङ्क्तः प्रगाथः

।६१। **विषयो समूहः** निमित्त, तस्य आया। षष्ठी अन्तका विषय हो, तब प्रथम उच्चारित षष्ठी अन्त पदसे प्रत्यय यथा योग्य हों। विषय का अर्थ बोले कि **अत्यन्त परिशोलिते**=बहुत परिचित देश पूर्णरूपसे जाना हुआ। **देवदत्तविषयोऽनुवाकः**। यदि ऐसा अनुवाक मन्त्र देवदत्तसे परिशीलित है यहाँ अण् क्यों नहीं ? अतिव्याप्तिवारण के लिए बोले-**स चेद्देशः सःप्रत्यन्त परिशीलितो अर्थः देशश्चेति**। देश अर्थ खुलता हो तब। विषय वहुत हो सकते हैं, परन्तु देशकी प्रधानता कहीं ग्राम समूह जनपद मान्य। सामन्तस्य राज्ञो विषयो अनेन लब्धः कहीं इन्द्रियग्राह्यः, यथा **चक्षुर्विषयः रूपम्** कहीं आवृत्तिमें है। मत्स्यनां विषयो जलम्। शिबीनां=शिबि जातिवालोंका बहुत परिचित देश अर्थमें अण् आदि **शैबः**। देश क्यों पढ़ा ? देवदत्तका विषय अनुवाक बहुत परिचित मन्त्र। अण् न हो जाय। विषय क्यों कहा देवदत्तका गन्तव्य मार्ग, विषय नहीं है।

(६२) **राजन्य** आदि देश से **वुञ्** हो। राजान्यानां विशेषो देशः अत्यन्त परिचितः अर्थमें वुञ जो उक्त अर्थ को कहता है। वु को अक **राजन्यकः**।

।६३। **भौरिक** आदि और एषुगारिक आदि शब्दोंसे विघल भक्तल् प्रत्यय हो। विषय देश अर्थमें भौरिकीणां विषयो देशः अर्थमें विधत् भौलिको देशः ऐषुगारिणां विषयो देशः, सारसायनानां विषयो देशः, अर्थमें भक्तल् प्रत्यय ये गण अन्वेषणीय है। (६४) **सोऽस्यादिः** स पङ्क्ति आदिशब्द आरम्भमें हो, जिस प्रगाथके वह प्रथमान्त हो, छन्द विशेष का वाचक ही उससे अण् आदि प्रत्यय हो। **छन्द** क्या है अक्षर मन्त्रविशेष (इतने वर्णों अक्षरों का होना) गायत्री वृहती आदि छन्द है। यत्रद्वे ऋचौ आवृत्या त्रिस्रः क्रियन्ते **सप्रगाथः** दो मन्त्र की आवृत्ति कर तीन बनाना। इति छन्दोग सूत्रे। षष्ठी स्थाने सप्तमी बहुवचनमार्षम्। प्रगथते इति प्रगाथः। ग्रन्थ संदर्भे। कर्ममें घञ् पृषोदरान्न लोप। अथवा प्रगीयते प्रगाथः (गै शब्दे) शेष थ्यन्। पंक्तिनामक छन्दकी ऋचा आदिमें हो, इस **अर्थ** में अण् पंक्ति अका इकार लोप।**पाङ्क्तः**। स्वार्थ इति।

*। स्वार्थं उपसंख्यानम् 'त्रिष्टुबेव त्रैष्टुभम्'। १२६५संग्रामे प्रयोजनयोद्धृभ्यः ४।२।५६ ॥ 'सोऽस्य' इत्यनुवर्तते। सुभद्रा प्रयोजनमस्य संग्रामस्येति सौभद्रः। भरता योद्धारोऽस्य संग्रामस्य भारतः। ६६ **तदस्यां प्रहरणमिति क्रीडाया णः** ४।२।५७ ॥ दण्डः प्रहरणमस्यां क्रीडायां दाण्डा। मौष्टा ६७ **घञः सास्यां क्रियेति ञः** ४।२।५८ ॥ घञन्तात्क्रियावाचिनः प्रथमान्तादस्यामिति सप्तम्यर्थे स्त्रीलिङ्गे ञप्रत्ययः स्यात्। घञ इति कृद्ग्रहणाद् गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम्। ६८ **श्येनतिलस्य पाते ञे** ६।३।७१ ॥ श्येन तिल

छन्द वाचक शब्दसे स्वार्थं। प्रकृतिके अर्थमें, अण् आदि हो। त्रिष्टुभं नपुंसक लिङ्ग। लोपसे, त्रिपाद्विभूति अर्थमें अण् आदि।]

। १२६५। **संग्रामे** षष्ठी अर्थमें सप्तमी (अस्य संग्रामस्य प्रयोजनम् अस्य संग्रामस्य योद्धार) इत्यर्थः। प्रथमान्त प्रयोजनवाची, युद्धकर्ता वाचीशब्दसे अण् आदि हो। यथा युद्ध का फल प्रयोजन **सुभद्रा हों** उस संग्रामका नाम **सौभद्रः**। प्रथमान्त सुभद्रासे उक्त अर्थमें अण् आदि। भरत वंशी युद्ध करने वाले जिस संग्रामके उसका नाम भारतः भरतसे अण् आदि। जिसके योद्धा भरत वंशी तद्धितार्थं। संग्राम क्यों पढा? सन्तोषः प्रयोजनस्य भोजनस्य, युद्धनहीं, न अण्। प्रयोजन क्यों सुभद्रा प्रेक्षिका अस्य संग्रामस्य।

। ६६। **तदस्यां** क्रीडायां प्रहरणं (जिस खेलमें जिस साधनका प्रयोग हो वह प्रथमान्त हो, प्रहार करनेका वाचक हो ण हो। सप्तम्यन्तका अर्थ क्रीडा खेल हो। प्रह्रियते अनेन जिससे आक्रमण प्रहार किया जाय, वह आयुध अस्त्र दण्ड मुक्का प्रहरण है। यथा दण्ड है मार करनेका साधन जिस क्रीडा खेलमें उसका नाम **दाण्डा** क्रीडा (हाकी) दण्डशब्दात् तदस्याँ प्रहरणं अर्थे ण-अ। आदिवृद्धि, अलोपे, टाप्। यदि अण् होता ङीप् हो जाता। मुष्टिः प्रहरणमस्यां क्रीडायां **मौष्टा** मुक्केबाजी, मुक्का प्रहारका खेल।- मुष्टिसे ण वृद्धि इलोप, टाप्। प्रहरण क्यों पढ़ा! माला भूषणमस्यां—क्रीडा क्यों! खड्गः प्रहरणमस्यां-क्रीडायां तलवारयुद्धकी सेना, यह खेल नही वास्तविक मार है।

६७। **घञ्**। सा क्रिया अस्यां मृगयादि क्रियायां अर्थमें घञ् अन्तमें हो, ऐसे क्रियावाची प्रथमान्तसे सप्तम्यन्त अर्थमें स्त्री से ञ हो। स्त्री० विशेष्यका अध्याहार। घञ्से कृत् लिया गया। इससे गतिसंज्ञक प्रपरा-आदि और कारक कर्मकरण आदि पूर्वमें हो वे भी मान्य।(६८) **श्येन** और तिल इन दोनोंको मुम् आगम हो ञ् परे, पात शब्द उत्तरभागमें हो। (सा अस्यां) अर्थमें अरु-

एतयोर्मुमागमः स्यात्, ञप्रत्यये परे पातशब्दे उत्तरपदे। श्येनपातोऽस्यां वर्तते श्यैनम्पाता मृगया। तिलपातोऽस्यां वर्तते तैलम्पाता स्वधा। श्येनतिलस्य किं? दण्डःपातोऽस्यातिथौवर्तते दाण्डपाता तिथिः। ६९ **तदधीते तद्वेद** ४। २। ५९॥ व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः १२७० **क्रतूक्थादिसूत्रान्तट्ठक्** ४। २। ६० क्रतुविशेषवाचिनामेवेह ग्रहणम्। तेभ्यो मुख्यार्थेभ्यो वेदितरि, तत्प्रतिपादकग्रन्थपरेभ्यस्त्वध्येतरि। आग्निष्टोमिकः। वाजपेयिकः। उक्थं सामविशेषस्तल्लक्षणपरो ग्रन्थविशेषो ल-

---

द्विषुसे मुम् आया। उत्तरपदका अधिकार है। पतनं पातः गिरना फैलना पत्लृ पतने धातुसे भावे घञन्त पात है। श्येन=बाझको फेका जाय जिस क्रियामें या बाझ झपटे जिसमें वह मृगया **श्येनम्पाता** श्येनपातसे (घञन्त पात परे) ञ अनुबन्धलोप। आदिवृद्धि, मुम्, अनुस्वारपरसवर्ण। यद्यपि पातशब्द ही घञन्त है, तथापि कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वकी भी मान्यता है। तिलका पतन गिरना हो जिस क्रियामें उसका नाम **तैलम्पाता:** स्वधा, जो स्त्रीलिङ्ग है पितृ क्रियामें है। नमः स्वधायैके प्रमाणसे। स्वधा कहनेसे क्रीडाका सम्बन्ध हटा। तिलपातसे ञ–अ, मु–म्, अनुस्वार आदि। सूत्रमें श्येनतिल क्यों पढ़ा! इसलियेकि दण्डका पतन जिसतिथि में **दण्डपाता** यहां मुं न हो।

६९। **तदधीते** तद्वेत्ति-गुरुमुखसे उच्चारित अक्षरानुकूल पढ़ना कण्ठकरना अध्ययन है। शब्दार्थके साथ उपयोगका ज्ञान स्वाध्याय प्रवचन, वेदन बोध है। इन दोनों अर्थके रहते द्वितीयान्तसे अण् आदि होते है। विद्याके चार काल है आगम काल, स्वाध्यायकाल, प्रवचन और आचरणकाल, प्रथमकाल अध्ययन है। ३ काल वृत्तिबोध करने कराने में है। कतिपय मीमांसक अर्थज्ञानपर्यन्त अध्ययन मानते हैं, परन्तु महर्षि पाणिनीके निर्णयसे भेद स्पष्ट है। व्याकरणमधीते शब्द अर्थ (सम्बन्धके अनुकूल ज्ञान साधनको) पढ़ता है। गुरुमुखसे अक्षरानुकूल स्वीकार करता है, वेद=स्वाध्याय प्रवचन आचरणसे सफल बोध करता है। इस अर्थमें द्वितीयान्त व्याकरण शब्दसे अण्–अनुबन्ध लोप। आदिवृद्धि प्राप्त था, उसे बाधकर 'न' य्वाभ्यां से, य के पहले ऐच्=ऐ हुआ आदिः। भसंज्ञा यस्येति अकारलोपे। तद्धितान्तत्वात्प्रा० संज्ञा स्वादिकार्ये (१२७०) **क्रतु उक्थादि** सूत्रान्त इनसे अधीते और वेद अर्थमें ठक् हो। सूत्रके शब्दोंको नहीं लिया जायगा। किन्तु उनके विषयमें विशेषवाचक शब्द ही मान्य। नहीं तो उक्थादिगणमें ही आता। ननु अक्षर पढ़नेके अनु-

क्षणया –उक्थम्। तदधीते वेद वा–औक्थिकः। *मुख्यार्थात्तूक्थशब्दाट्ठगणौ-नेष्यते। न्यायं-नैयायिकः। वृत्ति-वार्तिकः। लोकायतं-लौकायतिक इत्यदि। * सूत्रान्तात्त्वकल्पादेरेवेष्यते। सांग्रहसूत्रिकः। अकल्पादेः किम्?। काल्पसूत्रः। * विद्यालक्षणकल्पान्ताच्चेति वक्तव्यम्। वायसविद्यिकः। गौलक्षणिकः। आश्वलक्षणिकः। पाराशरकल्पिकः। * अङ्गक्षत्रधर्मत्रिपूर्वाद्विद्यान्तान्नेति वक्तव्यम्। आङ्गविद्यः। क्षात्त्रविद्यः धार्मविद्यः त्रिविधाविद्या – त्रिविद्या, तामधीते वेद

कूलक्रिया अध्ययन है। यज्ञका अध्ययन इस अर्थमें अण् कैसे? अक्षरार्थ ज्ञान नहीं है तब कहा–तेभ्यः क्रतु अर्थमें अग्निष्टोमादिमुख्य है। यज्ञ प्रतिपादकग्रन्थ अर्थमें गौण है। मुख्य अर्थवाचकशब्दसे वेत्ति बोध अर्थमे अण् आदि हो। जब ग्रन्थपरक अर्थ होगा तब अध्ययन अर्थमें भी अणादि होंगे। तत्प्रतिपादक= अग्निष्टोम आदिके बोधक ग्रन्थ। अग्निष्टोमं क्रतुं वेत्ति। तत्प्रतिपादकग्रन्थमधीते। यज्ञका बोध करते हैं या उसके ग्रन्थको पढ़ने है। अर्थमें द्वितीयान्त प्रकृति अग्निष्टोमसे ठक् इक। किति च आदिवृद्धिः। आग्निष्टोमिकः। उक्थ शब्द सामलक्षण ग्रन्थ अर्थमें गौण हैं, साम अर्थमें मुख्य। गौणसे ठक् अथवा स्तोत्रविशेष—अग्निष्टोमः स्तोत्रात्परं यत्सामधीयते। वृत्तिकारने कहा—जो सामविशेष लक्षण से ग्रन्थ है वही लक्षणासे उक्थ। उसको अधीते वेद अर्थमें ठक् आदि औक्थिकः (वा०) मुख्य अर्थसे सामवाची उक्थशब्दसे ठक्, अण् दोनों इष्ट नहीं है। उक्थादिगणमें पढ़े हुए शब्दोंका उदाहरण–न्यायं तर्क शास्त्रमधीते वेत्ति वा न्यायको गुरुमुखसे पढ़े या ठीकसे बोध करे। अर्थमें ठक् इक। न्याय इक। य्वाभ्यांसे य के पूर्वमें ऐच् आदि। नैयायिकः। वृत्ति= वररुचि रचनां वेत्ति अधीते वा वार्तिकः द्वितीयान्तकी प्रकृति वृत्तिसे उसी अर्थमें ठक् इक आदिवृद्धि, रपर, इलोप। लोकायतं भूगोल समाजिकताको गुरुसे पढे या स्वयं ज्ञान करे अर्थमें ठक् आदि (वा०) सूत्र अन्तमें हो किन्तु कल्प आदिमें न हो। उससे ही ठक् इष्ट है। संग्रहनामकं सूत्रमधीते वेत्ति वा अर्थे ठक् आदि। कल्प आदिमें न हो ऐसा क्यो? कल्पसूत्रमधीते वेत्ति वा काल्पसूत्रः। यहां ठक् न हो, किन्तु अण् (वा०) विद्या, लक्षण, कल्प अन्तमें हो उनसे अध्ययन और बोध करने अर्थमें ठक् हो। वायस विद्यामधीते वेत्ति वा धूर्त चपल कौवा के विषयमें अध्ययन करे, जाने वह व्यक्ति। गायका लक्षण समझे समझावे, गोलक्षणसे ठक आदि। घोड़ेके लक्षणको जो सुनें समझे। अश्व लक्षणसे ठक् आदि। पराशर कल्पको जो पढता हो,

वा त्रैविद्यः । * आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च । यवक्रीतमधिकृत्य कृतमाख्यानमुपचाराद्यवक्रीतं, तदधीते वेत्ति वा– यावक्रीतिकः । वासवदत्तामधिकृत्य कृता आख्यायिकेति । वासवदत्ता । 'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे' 'वृद्धाच्छः' । तस्य 'लुबाख्यायिकाभ्यो बहुल' मिति लुप् । ततोऽनेन ठक् । वासवदत्तिकः । ऐतिहासिकः। पौराणिकः ।* सर्वादेः सादेश्च लुग्वक्तव्यः । सर्ववेदानधीते सर्ववेदः । सर्व-

---

समझता हो । ठक् आदि । (वा०) अङ्ग क्षत्र, धर्म त्रि ये पूर्वमे हो विद्या अन्तमें हो ऐसे समाससे ठक् नहीं होता, किन्तु अण् । अङ्गविद्यामधीते (हस्त रेखा, ललाट भुजा आदि अङ्ग लक्षणक ज्ञानको जो सुने समझे अर्थमें) प्राप्त ठक् का वार्तिकसे निषेध, किन्तु तद्धीते से अण् । क्षात्रविद्यामधीते । क्षत्रियोंके देशरक्षण विद्याको जो पढे जाने, धर्मविद्याको सुने समझे, वह धार्मविद्यः । ठक् निषेध । अण्का विधान आदिसे । त्रिविधा विद्या, या तिस्रः विद्या शाक पार्थिवादि मानकर मध्ययमपद 'विद्या'का लोप यदि तिस्रः विद्या त्रिविद्या कहनेपर अण्का द्विगोर्लुक् होगा । त्रिविद्य. वनेगा । ३ विद्याको जो (पढ़ें समझे) अर्थमें अण् आदि । त्रैविद्यः । त्रिविद्यामधीते वेद वा । (वा०) आख्यान । कथा प्रबन्ध वाचक आख्यायिका कहानी किस्सा दृष्टान्त, इतिहास इति–ऐसा, ह—निश्चय रूपसे, आस—था । यथार्थघटना पुनरावृत्तिः पुराण-सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि । वंशानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम् । इतिहास पुराणका स्वरूपगणमान्य । इन चारोंसे अधीते वेद अर्थमें ठक् हो । आख्यान—यवक्रीतं जौ खरीददारी के आधार पर किया हुआ आख्यान नियम विधि ही उपचारात् व्यवहार भावसे यवक्रीत है, उसको अधीते शिक्षकके मुंहसे सुने वेत्ति–बोध, उपयोग, आचरण करे, अर्थमें यवक्रीतसे ठक् ठस्य इक, आदिवृद्धि अल्लोप यावक्रीतिकः खरीददारी विषयक ग्रन्थका ज्ञाता, उपयोग कर्ता । वासवदत्ताकी कहानी पर अधिकारकर की हुई आख्यायिका नाटिका का नाम लक्षणासे वासवदत्ता है । अधिकृत्य अधिकार करके बनाया हुआ ग्रन्थ अर्थमें वृद्धाच्छ सूत्रसे (वासवक्ताको आदि अच् वृद्धसंज्ञक जानकर) छ प्रत्यय । उसका आख्यायिकाभ्योः बहुलंसे लुप् । ततः अधीते वेत्ति वा अर्थमें वासव दत्तासे ठक् इक आलोप आदि वासदत्तिकः वासदत्ताके विषयमें बनाये ग्रन्थको गुरुमुखसे सुनने जानने वाला । इतिहासमधीते वेत्तिवा पुरानी घटनाओं की सुनने, समझने वाला । पुराणमधीते वेत्तिवा पौराणिकः । सृष्टि वंश मन्वन्तर परम्परा चरित्रका ग्रन्थको सुनने समझने वाला (वा०) सर्व आदिमें हो, सादेः=

तन्त्रः । सवार्तिकः, द्विगोर्लुगिति लुक् । द्वितन्त्रः । * इकन्पदोत्तरपदाच्छतषष्ठेः षिकन्पथः । पूर्वपदिकः । उत्तरपदिकः । शतपथिकः । शतपथिकी षष्ठिपथिकः षष्ठिपथिकी ७१ क्रमादिभ्यो वुन् ।४।२।६१ क्रमकः । क्रम पद शिक्षा, मीमांसा क्रमादिः ७२ अनुब्राह्मणादिनिः ४।२।६२॥ 'तदधीते तद्वेदेत्यर्थे । ब्राह्मणसदृशो ग्रन्थोऽनुब्राह्मणं, तदधीते अनुब्राह्मणी । मत्वर्थीयेनैव सिद्धे अण्बाधनार्थमिदम् ।

स आदिमें हो उससे ठगादि प्रत्ययका लुक् कहें । सादि कहना पर्याप्त था । सर्वादिग्रहण अर्थवत् परिभाषा ज्ञानके लिए । सम्पूर्ण वेदों को गुरुमुखसे सुने बोध आचरण करने अर्थमें तद्वेदसे अण् । सर्वादि मानकर लुक्, जिससे आदि-वृद्धि नहीं । **सर्ववेदः** । सर्वाणि तन्त्राणि अधीते, वेत्ति **सर्वतन्त्रः** अण् लुक् आदिवृद्धिका अभाव । वार्तिकेन सह **सवार्तिकं**, सूत्रमधीते वेद वा । तेन सह-से समास । वा उपसर्जनस्यसे सह को स । ठ- इक । वार्तिक सहित सूत्रको सुनने समझने वाला । द्वे तन्त्रे यधीते वेत्ति-वा अर्थमें द्वितन्त्रसे अण् उसका द्विगोःलुक् क्योंकि संख्यापूर्व द्विगु है । लुक् आदिवृद्धि का अभाव (वा०) **इकन्** पदशब्दः उत्तरभागमें तब अधीते वेत्ति अर्थमें इकन् हो । **शत** और षष्टिसे परे पथिन् शब्द हो तब उक्त अर्थमें षिकन् प्रत्यय हो। पूर्वपदमधीते वेत्तिवा अर्थमें पूर्वपदसे इकन् **पूर्वपदिकः** । उत्तरपदमधीते वेत्ति वा **उत्तरपदिकः** । शतपथं वाजसनेयि ब्राह्मणमधीते वेति वा अर्थमें शतपथसे षिकन् । षित् का फल ङीष्भी है । वा-जसनेयि शाखाका ज्ञाता जानने वाली एवं षष्ठिपथमधीते वेत्ति वा । साठ शा-खाओंको गुरुमुखसे सुनने आचरण करने वाला षष्ठिपथसे षिकन् । स्त्री इच्छामें ङीष् **षष्ठिपथिकी** । साठ रास्ता जाननेवाली ।

। ७१ । **क्रमादि** गणमें पढ़े शब्दसे अधीते वेद अर्थमें वुन् हो । क्रममधीते वेत्ति वा **क्रमकः** । क्रमसे वु अक आदि । वेदमें क्रम, पद, शिक्षा, मीमांसा ये क्रमादि है पदमधीते वेत्ति वा **पदकः** मीमांसामधीते वेत्ति वा गुरुमुखसे अक्षरानु पूर्वी सुनें शब्दार्थका ज्ञान करें वह **मीमांसकः** ।

। ७२ । **अनुब्राह्मणसे** अक्षरके अनुकूल श्रवण, शब्दार्थज्ञान, भावमें इनि प्रत्यय हो । इकार उच्चारणार्थ, नकार उपदेशान्त नहीं रहा, न इत्संज्ञा । वेद का ब्राह्मणभागके समान ग्रन्थका नाम **अनुब्राह्मण** हैं । उसको गुरुमुखसे पढ़ें (सही शब्दार्थ समझें] अर्थमें इनि आदि अनुब्राह्मणी । यद्यपि यह कार्य मत्वर्थ (अत इन्ठनौ) के इन से सिद्ध था, यह सूत्र स्वाभाविक अण्को बाधनेके लिए । भाष्ये तु प्रत्याख्यतमेव इदम् । (७३) **वसन्तादि** गणमें पढ़े शब्दोंसे उक्त अर्थमें

७३ वसतन्दिभ्यष्ठक् ४।२।६३ ॥ वासन्तिकः। अथर्वाणमधीते आथर्वणिकः 'दाण्डिनायने'ति सूत्रे निपातनाट्टिलोपो न ।७४ प्रोक्ताल्लुक्।४।२।६४।प्रोक्तार्थकप्रत्ययत्परस्याध्येतृप्रत्ययस्य लुक स्यात् । पणनं पणः। 'घञर्थे कविधान' मिति कः सोऽस्यास्तीति पणी तस्य गोत्रापत्यं पाणिनः ७५। गाथिविदथिकेशिगणिपणिनश्च ।६।४ १६५। एतेऽणि प्रकृत्या स्युः । इति टिलोपो न। ततो यूनि इञ्। पाणिनिः ७६ ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि ठगणिञोः ।२।४।५८ ण्यप्रत्यान्तात्

ठक् हो, वसन्त वर्णन परो ग्रन्थः तमधीते (शिक्षकसे सुनें शब्दार्थ समझें) अर्थमें ठक् आदि वासन्तिकः वसन्तऋतुविषयकग्रन्थको सुनने समझने वाला। अथर्वणा प्रोक्तो वेदो लक्षणया अथर्वा, तमधीते वेत्ति वा अर्थ, ठक् इक आदिः। आथर्वणिकः। वस्तुतः प्रोक्तप्रत्यय ऋषिभ्यो लुग्वक्तव्यः। आथर्वणिकःमें अथर्वन् देखकर नस्तद्धिते से टिलोप क्यों नहीं? तब कहा दाण्डिनायनहास्तिनायन सूत्रके निपातनसे टिलोप नहीं होता प्रोक्तात्–पाणिनि शब्दकी व्युत्पत्ति खोलने के लिए सूत्र–प्रोक्तार्थ (उच्चारण किया हुआ अर्थमें) प्रत्यय हुआ हो, उससे परे गुरुसे अध्ययन अर्थमें, वेदितृ शब्दार्थज्ञान अर्थमें हुए प्रत्ययका लुक् हो। पाणिनिशब्दकी भूमिका-पणनं पणः स्तुतिः व्यवहारः (पण स्तुतौ व्यवहारे च) हलश्चसे घञ्। उपधावृद्धिवारणके लिए कहा-घञर्थे=घञ्के अर्थमें क का विधान है। कित्से क्ङिति च से वृद्धिका निषेध। सो अस्य=पणः स्तुतिः अस्ति अस्य मत्वर्थमें (अत इन्ठनौसे) इनि। पणी—स्तुतिवाला। पणिनः गोत्रापत्यं 'तस्यापत्यं' से अण्। पणिन् अ आदिवृद्धि पाणिनः (स्तुतिकर्ता पणीका वंश) अपत्य अर्थमें अण् होनेसे इनणि अपत्यर्थे। इनणि अनपत्य से प्रकृतिभाव नहीं होगा टिलोप प्राप्त—उसका निषेध सूत्र। (१२७५) गाथिविदथि–(अपत्य अर्थमें भी) प्रकृतिभाव के लिए सूत्र, (अणि आया प्रकृत्या भी) गाथिन् विदथिन् केशिन्, गणिन, पणिन्, इनसे परे अपत्य अर्थमें अण् रहे तब तबभी प्रकृतिभाव हो, टिलोप न हो। इस निषेधसे पाणिनःमें टिलोप नहीं हुआ (गाथा गानं अस्ति अस्य गाथी, तस्यापत्यं गाथिनः। विदथिनः अपत्यं वैदथिनः। केशिनः अपत्यं कैशिनः। गणः गणना अस्ति अस्य गणी तस्य अपत्यं गाणिनः) ततो यूनि=पाणिनः युवापत्यं, मूलपुरुष पणी, उनसे चौथी पीढ़ी युवसज्ञक है। पाणिनसे गोत्रापत्य अणन्तसे युवापत्य चौथी पीढ़ी अर्थमें इञ् आदिः, पाणिनिः रूप बना। पणीके पुत्र पाणिनसे तृतीय पीढ़ी गोत्रापत्य अर्थमें इञ् नहीं होगा। एकोगोत्रे के नियम से गोत्रापत्य अर्थमें एक ही प्रत्यय है। इञ् लुक्की आशङ्का -

क्षत्रियगोत्रप्रत्ययान्तादृष्यभिधायिनो गोत्रप्रत्ययान्ताञ्ञितश्च परयोर्यूवाभिधायिनोरणिञोर्लुक् स्यात् । कौरव्यः पिता । कौरव्यः पुत्रः ।श्वाफल्कः पिता श्वाफल्कः पुत्रः । वाशिष्ठः पिता वाशिष्ठः पुत्रः । तैकायनिः पिता । तैकायनिः पुत्रः । एभ्यः किम् ? । शिवाद्यण् । कौहडः । [पिता] तत इञ् । कौहडिः पुत्रः । यूनि किं ? वामरथ्यस्य छात्राः वामरथाः ।। [कण्वादिभ्य इत्यण] । इति अणो लुक् तु न भवति, आर्षग्रहणेन प्रतिपदोक्तस्य ऋष्यण एव ग्रहणात् । पाणिनिना

। ७६ । ण्य क्षत्रिय आर्ष ञित् ये गोत्र प्रत्ययान्त मान्य । गोत्राद्यूनि पढ़ने से । विशद अर्थ—ण्य प्रत्यय अन्तमें हो, क्षत्रिय गोत्रप्रत्ययान्त हो, ऋषि अर्थमें अण् आदि हुआ हो, तब गोत्रप्रत्ययान्त और ञित्से परे युवापत्य अर्थमें हुए अण्, इञ् का लुक् हो । यथा कुरोर्गोत्रापत्यं कौरव्यः (कुरुवंश परम्परा कुर्वादिभ्यो) ण्य अन्तमें है । कौरव्यस्य अपत्यं युवा उसकी सन्तान अर्थमें इञ् उसका इसी सूत्रसे लुक । कौरव्यः पुत्र अर्थमें इञ् का लुक् था । जो लुप्त हुआ उसके अर्थ-पुत्र को भी कहेगा । अतः पिता पुत्र दोनों कौरव्यः । क्षत्रिय का उदाहरण—श्वफल्कस्य गोत्रापत्यं श्वाफल्कः । ऋषि—अन्धकसे अण् जो गोत्र अर्थमें है । उससे युवापत्य चौथी पीढ़ी अर्थमें अत इञ् हुआ, उसका इसी सूत्रसे लुक । अतः पिता श्वाफल्कः पुत्र भी । क्योंकि पुत्रका वाचक इञ्का लुक् हुआ शेष-लुक् हुएके अर्थ को भी कहता है । आर्षप्रत्यय—वशिष्ठस्य गोत्रापत्यं वाशिष्ठः ऋषि मानकर अण् । तस्य युवापत्यं उनकी चौथी पीढ़ी अर्थमें इञ् जो प्रपौत्र का वाचक है उसका इसी सूत्रसे लुक् । पिता पुत्र दोनों वाशिष्ठः प्रपौत्र प्रत्ययका लुक्, अर्थ कहनेसे । ञित्=तैकायनिः तिकस्य गोत्रापत्यं तिकादिभ्यः फिञ् । फ को आयन । तस्य युवापत्यं तिकसे प्रपौत्र अर्थमें अण् उसका लुक् । फल हुआ कि पिता पुत्र दोनों तैकायनिः । एभ्यः इहीं को हो, ऐसा क्यों ? अन्यसे होनेपर लुक् न हो । जैसे कुडहस्य गोत्रापत्यं कौडहः । शिवादि अण् पिता अर्थ, उसकी सन्तान कहेगें तब इञ् होगा, उसका लुक न हो । कौडहिः पुत्रः । यूनि किं ? युवापत्य अर्थमें प्रत्ययका लुक् न हो । जैसे वामरथस्य गोत्रापत्यं वामरथ्यः उनके छात्र अर्थमें कण्वादिभ्यो गोत्रेसे छ को बाँधकर अण् उसका लुक् न हो, युवा अर्थमें न रहनेसे । यहाँ अण् का लुक् नहीं होता । क्योंकि सूत्रमें आर्ष पढ़ा है । ऋषि प्रतिपदोक्तस्य=साक्षात् ऋषि अर्थमें उच्चारित शब्दसे हुए अण् ही मान्य । पाणिनिःमें भी अण्से परे इञ् का लुक् नहीं होता । क्योंकि पाणिनिशब्दमें पणिन्से अण् हुआ । तस्यापत्यंसे

प्रोक्तं पाणिनीयम् । 'वृद्धाच्छः' 'इञश्च' इत्यण् तु न । गोत्रे य इञ् तदन्तादिति वक्ष्यमाणत्वात् । ततोऽध्येतृवेदित्रणी लुक् । स्वरे स्त्रियां च विशेषः । पाणिनीयः । पाणिनीया । ७७ सूत्राच्च कोपधात् ४।२।६५।। सूत्रवाचिनः ककारोपधादध्येतृवेदितृप्रत्ययस्य लुक् स्यात् । अप्रोक्तार्थ आरम्भः । अष्टाध्यायाः परिमाणमस्य अष्टकं पाणिनेः सूत्रम् । तदधीयते विदन्ति वा अष्टकाः

ऋषिवाचक होनेपर भी प्रतिपदोक्त साक्षात् उच्चारित न होनेसे इञ् का लुक् नहीं हुआ । ण्य क्षत्रियार्षमें रुढ़ ऋषिमान्य पणिन् या पाणिनि शब्दमें औत्सर्गिक अण् हैं । **पाणिनिना प्रोक्तं** व्याकरणशास्त्रस्य सूत्रं **पाणिनीयं** तेन प्रोक्त के अण्को बांधकर वृद्धसंज्ञासे छ-ईय आदेश पाणिनीय बना । ननु पाणिनि शब्दसे तद्धितकी इच्छामें यूनि लुक्से इञ्का लुक् होनेपर भी प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणकार्यसे इञ् अन्तमानकर छ का बाधक अण् हो जाय ! तब कहा इञश्चसे अण् तो नहीं होता । गोत्र अर्थमें इञ् अन्त होना अनिवार्य कहा जायगा । पाणिनिमें इञ्-युव अर्थमें है । गोत्रअर्थमें नहीं । युवसंज्ञासे गोत्रसंज्ञा का बाँध होनेसे । यहाँ पारिभाषिक गोत्र मान्य है । इञश्च सूत्रपर कहेंगे । पाणिनीयमधीते, वेत्ति वा पाणिनिउपदिष्ट शास्त्रको गुरुमुखसे सुनते है । शब्दार्थ समझते है । उपयोग करें, पुण्य लाभ हो वे **पाणिनीय** है । पाणिनीयसे (तदधीते तद्वेदसे) अण् । प्रोक्त अर्थमें उसका लुक् **पाणिनीयः** । स्त्री इच्छामें टाप् । यदि अध्ययन वेदन अर्थमें अण्का लुक् न हो, तबभी पाणिनीयः बनेगा, तब कहा स्त्रींलिङ्गमें और स्वरमें अन्तर है । जब लुक् नहीं होगा तब प्रत्यय स्वरसे अन्त उदात्त । स्त्री-इच्छामें ङीप् होगा । लुक् होनेपर छ-को ईय, ई को प्रत्यय स्वरसे उदात्त, तब टाप् होगा । इसलिए दो रूप दिया ।

।७७ । **सूत्राच्च** अल्पाक्षरेण बहु- अर्थान् संवेष्टयति **सूत्रं** थोड़ा अक्षर, अर्थ ढेर, ऐसे सूत्रका वाचक हो, क उपधा अन्त्य-अलका पूर्ववर्ण हो उससे अध्ययन अध्येतृ=गुरुमुखसे श्रवणके अनुकूल पढ़ने, वेदितृ-अर्थका सत्यज्ञान, सत्य बोध अर्थमें हुए प्रत्ययका लुक् हो, प्रोक्तलुक् हो सकता था, यहसूत्र अप्रोक्तार्थः जहाँ उच्चारित अर्थ नहीं, वहाँके लिए । बिना प्रोक्तका प्रत्ययभी लुक्के लिए आरम्भ-यथा आठ अध्याय है, परिमाण मात्रा सीमा अस्य, इस पाणिनि सूत्रके, वह **अष्टकम्** अष्टाध्यायी । परिमाण अर्थमें संख्यासे संज्ञा सङ्घ सूत्र अध्ययन अर्थमें कन् । तदधीते-उस सूत्रसमुदाय (अनेक अध्याय) को जो पढ़ता है सुप्रयोग जानता है अर्थमें अण् । उसका सूत्राच्चसे लुक् । क उपधामें है ।

'सङ्ख्याप्रकृतादिति वाच्यम्'। नेह। माहावार्तिकः। कालापकः। '७८ छन्दो-ब्राह्मणानि च तद्विषयाणि ४।२।६६॥ छन्दांसि ब्राह्मणानि च प्रोक्तप्रत्ययान्तानि तद्विषयाणि स्युः। अध्येतृवेदितृप्रत्ययं विना न प्रयोज्यानीत्यर्थः। कठेन प्रोक्तमधीयते कठाः। वैशम्पायनान्तेवासित्वाणिणिनिः। तस्य 'कठचरकात्–' इति लुक्। ततोऽण्। तस्य 'प्रोक्ताल्लुक्'। इति रक्ताद्यर्थाः

अष्टकः अष्टकौ: अष्टकाः अष्टाध्यायीके अध्येता, वक्ता। इस सूत्रपर रोक लगाते है कि जहाँ संख्या प्रकृतिका अर्थ हो, जैसे आठ अध्याय मात्र प्रकृतिका अर्थ हैं उसीसे परे सुनने समझने अर्थके अण् आदिका लुक् हो। जहाँ संख्या अर्थ न खुलता हो, वहाँ लोप न हो। जैसे महावार्तिक सूत्रका नाम हो, उसको अधीते वेत्ति गुरुमुखसे सुनते है, और प्रवचन करते है, अर्थमें अण् आदि। **माहावार्तिकः**। अण्का लुक् नहीं हुआ, संख्या अर्थ न खुलनेसे। कलापमधीते वेत्ति वा गुरुमुखसे सुने समझें अण् आदि **कालापकः**।

७८। **छन्दो** छन्दांसि=मन्त्रभाग, ब्राह्मणानि विधिवाक्य, दोनों भाग वेद हैं। उनका द्वन्द्व। **मन्त्रब्राह्मणयोर्वेद नाम होगा**। छन्द और ब्राह्मण भागके शब्दसे प्रोक्तअर्थमें प्रत्यय हो तब **वेद तद्विषयाणि**=तत् शब्दसे अधीते वेत्ति, अर्थमे प्रत्यय इष्ट है। तैः विषयः तद्विषयः अविनाभावो येषां तानि, अध्ययन आदि अर्थमें प्रत्ययका विषय अवश्य हो विशिष्य सयो बन्धः विषयः (षिञ् बन्धने) अर्थात् प्रोक्तप्रत्यान्त, मन्त्र और ब्राह्मणभाग अध्येतृ गुरुमुखसे आनुपूर्वी पढ़नेसे वेदितृ=वेदन बोध ज्ञान अर्थके प्रत्यय विना प्रयोग न किये जाँय। मेढक उछालन्यायसे प्रोक्त आया, लक्षणासे प्रत्यय अर्थ निकला। पाणनीयं पाणनीयाः इस अनियम पर नियमार्थ सूत्र है। **पाणनिना प्रोक्तं पाणनीयम्** आदि नियमित हुए। कठ ऋषिसे प्रोक्त उच्चारित उपदिष्ट **मन्त्रका अध्ययन** करने वाले अर्थमें तेन प्रोक्तके अण्को बाधकर वैशमायनान्तेवासिभ्यश्चसे णिनि। उसका कठ चरकात्से लुक् तब कठेन प्रोक्तः वेदभागः कठः। उससे (अधीते अर्थमें तस्य=अध्ययन अर्थके) अण्का प्रोक्तात् लुक् हुआ, तद्विषय बना रहा। छन्दसे ब्राह्मण भागका ज्ञान होता ही है। चिरन्तन प्रोक्त ब्राह्मणका विषय मान्य। छन्द ब्राह्मण क्यों ! पाणनीयं व्याकरणम् चकार अनुक्तसंग्रहार्थ अतः कस्यपिनः कौशिकिनः। कल्प भी अध्ययन ज्ञानके प्रत्ययका विषय है। प्रोक्तार्थमें णिनि। ततः अण्का लुक्।

इति प्रभाकरमिश्रकृतायां प्राभाकर्यां रक्ताद्यर्थकाः।

अथचातुरर्थिकाः

७६ तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि४।२।६७।। उदुम्बराः सन्त्यस्मिन्देशे औदुम्बरः ।१२८० तेन निर्वृत्तम् ४।५।६८। कुशाम्बेन निर्वृता कौशाम्बी नगरी ।८१ तस्य निवासः ४।२।६९।। शिबीनां निवासो देशः । शैवः । ८२ अदूरभवश्च ४।२।७०।। विदिशाया अदूरभवं नगरं वैदिशम् । चकारेण प्रागुक्तास्त्रयोऽर्थाः सन्निधाप्यन्ते, तेन वक्ष्यमाणप्रत्ययानां चातुरर्थिकत्वं

अथ चातुर्थिकाः—चतुर्णाम् अर्थानां समाहारः चार अर्थों का मेला । चातुरर्थी, तस्यां भवाःचातुर्थिकाः । अध्यात्मादिः ठञ् । कोई कहते हैं चतुर्णां सूत्राणामर्थाः चतुर्थाः तत्र भवाः चातुर्थिकाः । तद्धितार्थ द्विगु होता, द्विगोर्लुक से ठञ्कालुक् हो जाता । १२७९ । **तदस्मिन्नस्ति** (वह इस देशमें) अण् आदि हों । जिनके होनेसे प्रसिद्ध देश अर्थ होता हो, मतुप् को बाधकर । आधुनिक देशका नाम न हो । किन्तु सकललोक प्रसिद्ध हो, यह इतिका अर्थ है । देशे तन्नामिकका अधिकार आगे बढ़ेगा । उदुम्बराः गुलरके पेड़ फल जिस देशमें हो, उस प्रसिद्ध देशकानाम **औदुम्बरः** उदुम्बरसे उक्त अर्थमें अण् आदि ।

१२८०। तेन **निर्वृत्तम्** अर्थमें तृतीयान्तशब्दसे अण् आदि हों । तन्नामिक देशे-उसके नामसे वह देश प्रसिद्ध हो । **निर्वत्यते इति निर्वृत्तं** कर्ममें क्त प्रेरणा अर्थमें णिच्, भीतर अन्तर्भावित है । निपूर्वक वृत धातुका निर्माण करना बनाना अर्थ । यथा कुशाम्बसे बनायी गयी नगरी **कौशम्बी** तृतीयान्त कुशाम्ब से अण् आदि ङीप्भी । इन्द्रेण निर्वृत्ता **ऐन्द्री** अमरावती । कुबेरेण निर्वृत्ता कौबेरी अलका (८१) **तस्य**=षष्ठी विभक्ति अन्तमें हो इससे अण् आदि हो, निवास अर्थमें, प्रसिद्ध देश अर्थ खुलने पर । निवाससे अपना हो या परायेका, स्वत्व अस्वत्व साधारण है । शिबि जातिका निवास रहनेका देश **शैबः** । आङ्ग्लानां निवासो देशः **आङ्ग्लः** (इङ्गलैण्ड) यवनानां निवासः **यावनः**' यमन । ८२ **अदूर भव** (दूर न होना) समीप अर्थमें । तस्य, तन्नाम्नि, देश आये । षष्ठी अन्तमें हो उससे अण आदि हो, समीप अर्थमें, विख्यात देश अर्थ खुलने पर । विदिशा के पास के नगर **वैदेशं** विदिशा से अण् (आदिवृद्धि) यस्येति आकार लोप । वाराणसः अदूरभवं निकटं निगरं **वाराणसेयं** जौनपुरमण्डलम् । सूत्र में च क्यों पढ़ा, चार अर्थ अदूरभव प्रागुक्तः=पहले कहे गये । तीन अर्थपुनः उपस्थित होगें, मिलकर चार अर्थ में ऐसा क्यो होगा, तब कहा तेन = चारो अर्थ होने से वक्ष्यमाण = आग कहें जाने वाले प्रत्ययों का चार अर्थ सिद्धि के लिए चारो सूत्रोके अर्थ में होंनेवाले प्रत्यय चातुरथिक है ।(८३) **ओरञ्**= उकार

सिद्धचति । ८३ **ओरञ्** ४।२।७१॥ अणोऽपवादः । कक्षतु–काक्षतवम् । नद्यास्तु परत्वान्मतुप् । इक्षुमती ८४ **मतोश्च बह्वजङ्गात्** ४।२।७२॥ बह्वच् अङ्गं यस्य मतुपस्तदन्तादञ् । नाण् । सैध्रिकावतम् । बह्वच् इति किम् ! आहिमतम् । अङ्गग्रहणं बह्वच् इति तद्विशेषणं यथा स्यात् मत्वन्तविशेषणं मा भूत् । १२८५ **बह्वचः कूपेषु** ।४।२।७३॥ अणोऽपवादः दीर्घवरत्रेणनिर्वृत्तः दीर्घवरत्रः कूपः ८६ **उदक्च विपाशः** ४।२।७४॥ विपाशः उत्तरे कूले ये कूपास्तेष्वञ् । अबह्वजर्थं आरम्भः । दत्तेन निर्वृत्तो दात्तः कूपः । उदक् किं ! दक्षिणतः कूपेष्वणेव ८७

अन्त में हो, प्रथमउच्चारित उन् विभक्ति के अन्त में रहते उनसे अञ् हो, अण बाध कर । कहे गये चारो अर्थ अञ् का अधिकार सुवास्वादिभ्योअण् तक है कक्षतु = अस्ति अस्मिन जिसमें हो वह **काक्षतवं** कक्ष तु से उ अन्त देखकर अञ् अण् बाधकर आदिवृद्धि आदि । **नद्यां तु** =वह उकारान्त नदीसंज्ञक हो, तब परत्वात्परकार्यके लिए अञ् को बाधकर मतुप् होगा । इक्षुः अस्ति अस्मिन्देशे इक्षुमान् गन्नावाला देश, **इक्षुमती नगरी** नदीसंज्ञक है अञ् बाधकर मतुप् । उगित् ङीप् इक्षुणा निर्वृत्तमिष्ठान्नं इक्षुमत् । (८४) **मतो**-बहु अच् वाला अङ्ग है जिसका, ऐसा मतुप् अन्तमें हो, उससे अञ् हो, अण् नहीं । सिध्रका वान् अस्मिनस्ति (देश अर्थमें) अण् आदिवृद्धि । **सैध्रकावनम्** उनका निवास, बना देश उसके अदूर-समीपका नगर आदि चारो अर्थ यथायोग्य हो । बहु अच् क्यों कहा ! जहां दो अच् हों उससे अञ् न होनेके लिए । यथा अहिमान् अस्मिन्नस्ति सपेरा जिसमें है वह देश । यहां अहिशब्द दो अच वाला है अञ् नही हुआ । यही बहु अच्का फल है । अङ्ग पढा गया । उसमें बहु अच् विशेषण हो मतुप् अन्तमें विशेषण हो यही अङ्ग का फल है । अङ्ग नहीं होता तब मत्वन्त में विशेषण होता ही तब अहिमत् मे अतिप्रसङ्ग दोष होता १२८५) बहुअच् के प्रतिपदिकसे अञ् हो चारो अर्थो में अण् बाधकर, कूपअर्थं निकलने पर । दीर्धवरत्र से बनवाया गया कुआं का नाम **दैधवरत्रम्** अण् बाधकर अञ् आदि ॥ (८६) ॥ । **उदक्** विपाशा नदीके उत्तर तट पर जो कूप है उससे अञ् हो । विपाश शब्द सकारान्त नदी अर्थमें है जो बहुअचनही उ उनके लिए सूत्रका आरम्भ । दत्तनामक व्यक्तिसे बनवाये कुआं **दात्तः** । दत्तसे अणादि । उदक क्यों पढा ? दक्षिणदिशा के कुयें, इतना ही अर्थ रहे तब अण् ही हो, अञ् नही ॥(८७)॥ सकलादिगण में पढे शब्द से निर्माण कि-

सङ्कलादिभ्यश्च ४२।७५। कूपेषु इति निवृत्तम्। सङ्कलेन निर्वृत्तं साङ्कलम् पौष्कलम्।८८ स्त्रीषु सौवीरसाल्वप्राक्षु४।२।७६।। स्त्रीलिङ्गेषु देशेषु वा च्येष्वञ्। सौवीरे, दत्तामित्रेण निर्वृत्ता दात्तामित्री नगरी। साल्वे वैधूमाग्नी। प्राचि, माकन्दी ८६ सुवास्त्वादिभ्योऽण्।४।२।७७।। अञोऽपवादः। सुवास्तोरदूरभवं सौवास्तवम्। वर्णु वार्णवम्। अण्ग्रहणं नद्यां मतुपो बाधनार्थम्। सौवास्तवी। ६०। रोणी ४।२।७८।। रोणीशब्दात्तदन्ताच्चाण्। कूपाञोऽपवादः। रौणः। आजकरौणः। ६१ कोपधाच्च ४।२।७६ ॥ अण्। अञो-

---

या हुआ अर्थमें अञ् हो। कूपेषु अर्थ रुक गया व्याख्यान से। सकलनामके व्यक्ति से निर्मित नगर साकलं नगरम् अणादि। पुष्कलेन निर्वृत्तं नगरं पौष्कलम् अणादि ॥(८८)। स्त्रीषु स्त्रीलिङ्ग में विराजमान सौवीर शाल्व प्राक्-से देश अर्थ खुलते हो तब अञ् हो जाय। प्रमाण=दत्तामित्र से बनवायीं नगरी दातामित्रम् अण् आदिवृद्धि टिड्ढा० ङींप् सौवीर देश अर्थ खुला। शाल्व देशअर्थमें उदाहरण—विधूमाग्निना निर्वृत्तं वैधूमाग्नी। अञ् आदि। ङीप प्राची देशका उदाहरण=माकन्देन निर्वृत्ता नगरी माकन्दी ।। ८६। सुवास्तु आदि शब्दसे अण् हो, अञ् बाधकर सुवास्तुसे अदूर नगरी पासके अर्थमें अण् आदि, ओर्गुणे, सौवास्तवम् वर्णोः अदूरभवं नगरं वार्णवम्। अत्र शंका,-वार्णवंकी सिद्धि ओरञ्से (उवर्णान्त मानकर) अञ्से होती, पुनः अण् विधानके सामर्थ्यसे अञ्की अनुवृत्ति नहीं होती, तब अणसे सिद्ध होता पुनः अण् क्यों पढ़ा ? अण् ग्रहणम्=अण् का ग्रहण नदीसंज्ञा होने पर मतुप्को बाधनेके लिए किया। अण् न होता नदीसंज्ञकसे मतुप् होता, तब सौवास्तवी नगरी अर्थ न बनता। सुवास्तु उकारान्त नदीसंज्ञक है अण् हो, मतुप् न हो, यही फल है। अण् से ङीप्। १२९०। रोणी शब्दसे और रोणी अन्तसे भी अण हो, येन विधि-सूत्रस्थ भाष्यसे प्रत्ययविधिमें भी तदन्तविधि मान्य। कूप अर्थमें अञ्को बाधकर। रोण्या निर्वृत्तः कूपः रौणः रोणीसे हुआ अर्थ में अणादि। तदन्तका उदाहरण अजकरोण्या निर्वृत्तः आजकरौणः अण् आदि (९१] कोपधात् क उपधा अन्त्य अल् का पूर्व हो, उस शब्दसे परे निर्वृत्त कूप अर्थमें अण् हो, अञ्की बाधकर। कर्णछिद्रकेण निर्वृत्तः कूपः बनाया कुआँ अण्। अञ्को बाधकर। क उपधामें है, कुआँ अर्थ भी खुल रहा है। आदि कृक्वाकुना निर्वृत्त कूपः अर्थमें कृक्वाकु से अण् आदि वृद्धि उकारस्य गुणे अव

ऽपवादः । कार्णछिद्रकः कूपः । कार्कवाकवं त्रैशङ्कवम् । ९२ वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ण्ययफक्फिञिञ्ञ्यकक्ठकोऽरीहणकृशाश्वकार्श्यकुमुदकाशतृणप्रेक्षाश्मसखिसङ्काशबलपक्षकर्णसुतङ्गमप्रगदिन्वराहकुमुदादिभ्यः ४।२।८०॥ सप्तदशभ्यः गणेभ्यः सप्तदश क्रमात्स्युश्चतुरर्थ्याम् । अरीहणादिभ्यो । वुञ् । अरीहणेन निर्वृत्तमारीहणकम् । कृशाश्वादिभ्यश्छण् । कार्शाश्वीयम् । ऋश्यादिभ्यः कः ऋश्यकम् । कुमुदादिभ्यष्ठच् । कुमुदिकम् । काशादिभ्य इलः । काशिलः । तृणादिभ्यः सः । तृणसम् । प्रेक्षादिभ्य इनिः । प्रेक्षी ।

देशः । त्रिशङ्कुना निर्वृत्तः कूपः त्रैशङ्कवं त्रिशंकुसे निर्मितका नामकुप । ९२ । वुञ्छण् क, ठच्, इल् स इनि र ञ्यञ्, ण्य, य, फक्, फिञ्, इञ् कक्, ठक् इन सत्रह प्रत्ययोंका द्वन्द्व प्रथमा बहुवचन । उच्चारण-क्रमसे-अरीहण कृशाश्व ऋष्य, कुमुद, काश, तृण, प्रेक्ष, अस्मन्, सखि, संकाश बल, सुतङ्गम, प्रगदिन्, वराह, कुमुद, इनमें द्वन्द्व समास । इन्हीसे उक्तप्रत्यय क्रमसे हो । संख्या क्रममें प्रमाण–दोनों कुमुदशब्द हैं प्रगदिन्के नकारका लोप नही किया, इकारान्त भ्रम न हो जाय । वार्तिकसे सूत्रके सभी प्रकृतिप्रत्यय तद्धितार्थका निर्णय–अरीहरण आदि शब्दोंसे चारों अर्थोंमें वुञ् आदि प्रत्यय क्रमसे हो । अरीहणसे निर्मित नगर अर्थमें वुक् अक आदि । कृशाश्व आदिगणमें पढ़े शब्दों से छण् हो तदस्मिन्नस्ति देशे तन्नाम्नि, तेन निर्वृत्तः, तस्य निवासः, अदूर भव चारो अर्थोंमें प्रथम उच्चारित विभक्ति अन्तसे यथायोग्य प्रत्यय हों । इस गण में चेतन अचेतन दोनों है । कृशाश्व से चारों अर्थोंमें छण । छको ईय आदि । ऋश्य आदिगणसे उन अर्थोंमें क हो । ऋश्यका निवास, बनाया हुआ, समीप और देश अर्थमें क ऋश्यकम् । कुमुद आदिगणमें पढ़े शब्दसे अर्थोंमें ठक् हो । कुमुदाः सन्ति अस्मिन्, कुमुदानां निवासः, सरः, आदि कुमुदिकं ठक् इक । काशगण पठित शब्द से इल् हो । काशसे बनाई झोपड़ी । काश का निवास, काशके पास, काश जिस देशमें हो, सब्र काशिल । तृण आदिगणमें पढ़े शब्दसे स हो । तृणानां निवासः तृणसम् तृणसे बनी छाया, देश, या समीप । प्रेक्षाआदि गण पढ़ेसे इनि हो । प्रेक्ष्यते इति प्रेक्षः निरीक्षकः । तेन निर्वृत्तः, प्रेक्षया निर्वृत्तः देखने वालीसे बनाया हुआ उनका निवास, उनके पास, उनके देश आदि अर्थमें इन् । आलोप प्रेक्षिन्से प्रेक्षी बना । अश्मआदिगण पढ़े शब्द से चारों अर्थमें र हो । अस्मना नृर्वृत्त लीहेसे बनाया गया, लोह गोदाम,

अश्मादिभ्यो रः। अश्मरः। सख्यादिभ्यो ढञ्। साखेयम्। सङ्काशादिभ्यो ण्यः। साङ्काश्यम्। बलादिभ्यो यः। बल्यम्। पक्षादिभ्यः फक्। पाक्षायणः 'पथः पन्थ च' पान्थायनः। कर्णादिभ्यः फिञ्। कार्णायनिः। सुतङ्गमादिभ्य इञ्। सौतङ्गमिः। प्रगद्यादिभ्यो ञ्यः। प्रागद्यः। वराहादिभ्यः कक्। वाराहकः। कुमुदादिभ्यष्ठक्। कौमुदिकः। ९३ **जनपदे लुप्** ४।२।८१॥ जनपदे वाच्ये चातुर्थिकस्य लुप्स्यात्। ९४ **लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने**।१।२।५१॥ लुपि सति प्रकृतिवल्लिङ्गवचने स्तः। पञ्चालानां निवासो जनपदः पञ्चालाः। कुरवः।

लोहके पासका स्थान, खान। लोहका देश, अर्थमें र हो, नकार लोप **अस्मरः**। **सखी आदिगण** पठितसे ठक् हो। सखीनां निवास सखियोंके ठहरने का स्थान समीपस्थानं, सखी से बनाया हुआ मित्रका देश, आदि अर्थ में ढ-ऐय आदि-साखेयम्। सङ्काशगण के शब्दसे ण्य हो चारों में। सङ्काशसे बनवाया, देश, निवास, समीप अर्थमें ण्य—य, आदिवृद्धि **साङ्काश्यम्**। **बलादि** गणमें पढ़े शब्द से चार अर्थ में य होता है। बल का निवास, समीप आदि अर्थ में यप्रत्य, अ-लोप। **पक्षादिगण** में पढे से फक् आयन। पक्षेण निवृ`तः पाक्षायणः। पक्षका निवास निकट ग्राम देश। (ग)पथ के स्थान में पन्थ आदेश हो चार अर्थ में। पथो अदूरभवः ग्रामः **पान्थायनः** पथ से फ, आयन- पन्थ आदेश। पक्षादिका गणसूत्र है **कर्णादिसे** फिञ् हो कर्णस्य निवासः निकट ग्राम **कार्णायनः** फको आयन आदि। सुतङ्गम आदि से इञ्हो, निवास निकट बनाया हुआ **ग्राम स्थान**, देश अर्थमें इञ् आदि। **प्रगदिन** आदिसे ण्य हो, निकट निवास आदि अर्थमें टिलोप आदि। वराह **आदि** से कक् हो वराहस्य निवासः निकट **वाराहकः** कित से आदिवृद्धि **कुमुद** आदिसे ठक् देश निवास निकट स्थान, आदि अर्थ मे ठ-इक आदि **कौमुदिकः** (९३) = **जनपद** = प्रान्त अर्थ होता हो तव **चारो अर्थमें** हुए प्रत्यय का लुप् लोप हों। जिस नामसे प्रत्यय हो उसी नामसे जनपद होना चाहिये। ब्राह्मणाः सन्ति अस्मिन्। ब्राह्मणः जनपदः यहां लुप नही। जनपदमें एक वचन होनेसे।एकवचन प्राप्त उसमें बहुवचन लाने के लिये अतिदेश सूत्रएककी विशेषताका दूसरे में आरोप (९४) **लुपि** लुप होने पर **युक्तवत्** प्रकृतिवत युक्त का प्रकृति अर्थ है। व्यक्तिका अर्थ लिग, वचन का संख्यां प्राचीन आचार्य सम्मत। लुपसे अदर्शन समझे। प्रत्ययसे पहले प्रकृतिका जो लिङ्ग वचन हैं उसका लोप होने पर रहे प्रत्ययके अर्थके

अङ्गाः। वङ्गाः। कलिङ्गाः। १२९५ तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वात्।१।२।५।। युक्तवद्वचनं न कर्तव्यम्। संज्ञानां प्रमाणत्वात्। ९६ **लुब्योगाप्रख्यानात।१।२।५४।।** लुबपि न कर्तव्योऽवयवार्थस्येहाप्रतीतेः। ९७ **योगप्रमाणे च तदभावेऽदर्शनं स्यात्।१।२।५५।।** यदि हि योगस्यावयवार्थस्येदं बोधकं स्यात्तदा तदभावे न दृश्येत। ९८। **प्रधानप्रत्ययार्थवचनमर्थस्यान्यप्रमाण**

अनुसार नहीं। **व्यक्तिवचन क्यों पढ़ा ?** शिरीषवनम्। यहाँ वनस्पतिके आरोप से [बीमार] औषधि वनस्पतिभ्यःसे णत्व न हो। शिरीषाणामदूरभवो ग्रामः शिरीषः। तस्य वनम्। लिङ्गके आरोपका फल कटुबदरी-निकट ग्रामः कटु बदरी पंजाबियो के राजा के निवास का स्थान जनपदका नाम। **पञ्चालाः।** पंचाल में बहुवचन या तस्य निवासः से अण् होने पर भी वही लिङ्ग संख्याका आरोप हुआ। व्यक्तिवचने लिंगसमर्थे **युक्तवत् प्रकृतिवत् अभवतान्।** एवं कुरूणां निवासः जनपदः अर्थमें कुरुसे अण लुप् बहुवचन। कौरवोंके रहनेका स्थान। अङ्गानां (उडिसा के राजा का) निवास जनपद अङ्गसे अण लुप् बहुवचन। एवं बङ्गानां बंगालियोके राजाका बङ्गःकालिङ्गः (केरल देशके) राजाका निवास। **लुपि युक्तवत्सूत्रको** पणिनि खण्डन करते है।।

१२९५। **तदशिष्यं-तत्**=युक्तवत् प्रकृतिके लिङ्गवचन अशिष्य=शासन विधानका वचन (सू॰) न करें। संज्ञाओंके बहुवचनमें प्रमाण होनेसे। पञ्चालाः अङ्गाः वङ्गाः इत्यादिकी बहुवचनान्त संज्ञा ही है। उसमें प्रयत्नसे लिंग सख्या न लायें। जैसे आपः, द्वारा, कति, त्रि, चतुर आदिशब्द स्वभावसे बहुवचन हैं। इनमें बिना शास्त्रके लिंग संख्या अर्थ का ज्ञान होता है। लोक व्यवहार प्रमाणसे। व्यक्ति वचनका खण्डन कर लुप् का भी खण्डन करते हैं।

(९६) **लुप्** भी न करें। **योगः**= अवयव अर्थ जान पड़ता ही नहीं, क्योंकि **अप्रख्यानात्**= अप्रतीतेः। जनपदके सम्बन्धसे पञ्चालाः आदिमें प्रत्ययका ज्ञान ठहरता ही नहीं। लुप् शब्दसे जनपदे लुप्, वरणादिभ्यश्च दो सूत्र, उसमें दोष देते हैं (९७) **योगः प्रमाणे** =पंचाल अङ्ग बङ्ग आदि शब्दोंमें यदि योग=अवयवका अर्थ प्रमाणित होता, बोध होता, तब **तदभावे**=उस प्रत्ययके सम्बन्धके अभावमें क्षत्रिय सम्बन्धके बिना प्रयोग होता, परन्तु **न दृश्येत**। इस लिए वे शब्द जनपद विशेषमें केवल रूढ़ है। अन्यआचार्योका भाषण मिटाते है (९८) **प्रसङ्ग** से अन्यपूर्वाचार्यके भाषणका खण्डन- **प्रधानप्रत्ययार्थ**=जहाँ

त्वात् ।१।२।५६।। 'प्रत्ययार्थः प्रधानम्' इत्येवंरूपं वचनमप्यशिष्यम् कुतः । अर्थस्य लोकत एव सिद्धेः ।९९ **कालोपसर्जने च तुल्यम् ।१।२।५७।।** अतीतायाः रात्रेः पश्चार्धेनागामिन्याः पूर्वार्धेन च सहितो दिवसोऽद्यतनः, विशेषणमुपसर्जनम्, इत्यादि पूर्वाचार्यैः परिभाषितम् । तत्राप्यशिष्यत्वं समानम् । लोकप्रसिद्धेः । १३०० **विशेषणानां चाजातेः १।२।५२।।** लुबर्थस्य विशेषणानामपि तद्वल्लिङ्गवचने स्तो जातिं वर्जयित्वा । पञ्चाला रमणीयाः । गोदौ रमणीयौ । अजातेः किं ! पञ्चालाः जनपदः । गौदौ ग्रामः । * 'हरीतक्यादिषु

प्रकृति प्रत्यय हो, वहाँ प्रत्ययका अर्थ प्रधान है **प्रकृतिप्रत्ययौ सहार्थं ब्रूत, तयोः प्रत्यार्थः प्रधानम्** । यहाँ पूर्वाचार्योंका वचन अशिष्य=शासनके योग्य नहीं क्यों नहीं है !तब बोले **अर्थस्य**=अर्थका निर्णय व्यवहार करता है। जो ज्ञानका शिरोमणि है । अन्यो लोकः व्यवहारः प्रमाणं तस्य भावः तस्मात् **अन्यप्रमाणत्वात्** (९९)। **कालश्च** उपसर्जनश्च समाहार द्वन्द्वः । विषय सप्तमी । अशिष्यम् आया । भाव प्रधानके शरणागत हुआ कालके विषयमें, उपसर्जनके विषयमें, पूर्वाचार्योंका विशेष वचन भी **तुल्यम्** (अनुशासनीय न होनेसे) समान है । वह विशेष वचन क्या है । **अतीतायाः रात्रेः** पिछले आधी रातसे लेकर **आगामिन्याः** आने वाली रातके पूर्वभाग १२ बजे तकके साथ २४ घंटेका समय वह अद्यतनकाल है । यह भी लोकव्योहारसे प्रमाणित । उसके लिए शासन सूत्रकी आवश्यकता नहीं। पूर्व आचार्योंने उपसर्जनको विशेषण कहा, भाषण कियाकि **तत्रापि**=वहाँभी शासन आवश्यक है लोक प्रसिद्धेः समाजमें विशेषणके रूपमें उपसर्जन माना ही जाता है इस प्रकार लिङ्गवचन विशेषण आदिका निर्णय, व्यवहार शिरोमणिसे ही सिद्ध है ।

१३०० । **विशेषणानां** लुप्के अर्थके विशेषण होने पर भी तद्वत् = उसी प्रकार प्रकृतिका ही लिङ्ग वचन हो, (जातिको छोड़कर) जैसे पञ्चालानां निवासः जनपदः रमणीयाः पञ्चालसे देश, निवास, राजा अर्थमें अण् उसका जनपदे लुप्से लोप हुआ जो जनपदमें विशेषण है । तथापि रमणीय शब्दमें पञ्चालका लिङ्ग बहुवचन हुआ । गोदयोः निवासः (गूजर लोगोंका आवास जनपदप्रत्ययका अर्थ है, जो विशेषण है तथापि प्रकृति-गोदौका लिङ्ग द्विवचन होकर **रमणीयौ** बना । सूत्रमें **अजातेः** क्यों पढ़ा ? जाति अर्थमें जनपद हो, तब प्रकृतिके समान लिङ्ग वचन न हो । **पाञ्चालाः जनपदः**में जाति

व्यक्तिः' हरीतक्याः फलानि हरीतक्यः ।* 'खलतिकादिषु वचनम्' खलतिकस्य पर्वतस्यादूरभवानि खलतिकं वनानि । * मनुष्यलुपि प्रतिषेधः' मनुष्यम् लक्षणे लुबर्थे विशेषणानां न । लुबन्तस्य तु भवतीत्यर्थः । चञ्चा अभिरूपः ।
०१ **वरणादिभ्यश्च** ४।२।८१। अजनपदार्थ आरम्भः । वरणानामदूरभवं नगरं वरणाः । ०२ **शर्कराया वा** ४।२।८३। अस्माच्चातुरर्थिकस्य वा लु-

---

है । एकवचन हुआ । एवं **गोदौ ग्रामः** गूजरो का गांव ग्राम जातिवाची है प्रकृति का द्विवचन उसमें नही हुआ, निषेध होने से। (वा०)हरीतकी आदि गण पठित शब्दो से लुप हुआ हो, तब व्यक्ति = लिङ्ग, प्रकृतिके तुल्य हो। किन्तु वचन उसके तुल्य न हों । यथा हरीतक्याः हर्रै के फल अर्थमें अण्, उसका हरीतक्यादिभ्यश्चसे लुप । प्रत्ययका अर्थ फल प्रधान होना चाहिए, किन्तु वार्तिकसे प्रकृतिका स्त्रीलिङ्ग ही रहा, एकवचन नही । (वा०) **खलतिकादिगण** पठितशब्दों से लुप होने पर प्रकृति कीं तरह वचन हो लिङ्ग नही । खलतिक-नामक पहाड़ के निकट अनेक वन अर्थमें अण् उसका वर्णादिभ्यश्च मे लुक् । तब प्रकृतिका एकवचन ठहरा, लिङ्ग नही । लुप होने पर आदिवृद्धि नही होती । (वा०) मनुष्यका लक्षण धोखा नकलीरूप जान पड़ता हो, लुप हुए प्रत्ययके अर्थमे जितने विशेषण है उनमे प्रकृति के समान लिङ्ग वचन न हो ! किन्तु लुप् अन्तका हो, यथा तृणमयीं प्रतिमा चञ्चा उस के सदृश मनुष्य अर्थमें चञ्चासे कन् । इवेप्रतिकृतौ के अधिकार में संज्ञायां कन् । उसका मनुष्य अर्थमें लुप प्रकृतिका लिङ्ग हुआ । उसका विशेषण अभिरूप का लिङ्ग नही हुआ । चञ्चा तृणमयः पुमान् इति युक्तवद्भावः । अथ प्रसङ्गः। १३०१ ।। **वरणादिगण** में पढे शब्दो से चारो अर्थ में हुए प्रत्ययका लुप हो । यह लुप जनपदे से सिद्ध था यह सूत्र **अजनपदार्थः** = जो प्रान्त नही है उसके लिए ! वरणा (वरूणा नदी) काशी के उत्तरदिशामें है (पूजार्थ बहुवचन) उसके अदूरभव निकट नगरी वरणाः (वाराणसी) निकट अर्थ में हुए अण्का लोप होनेपर प्रत्यय का नगर अर्थकी उपेक्षाकर प्रकृतिका स्त्री लिङ्ग बहुवचन **वरणा** । अनुक्त संग्रह के लिए चकार पढा, जो आकृतिगण का सूचक है

।। १३०२ ।। शर्करा (चीनी शक्कर) से चातुरर्थिक प्रत्यय का लुप् हो विकल्पसे (०३) **ठक्छौ च** शर्करासे ठक् और छ प्रत्यय हो । कुमुदादिसे ठक्

ष्स्यात् । ०३ **ठक्छौ च ४।२।८४।** शर्करााया एतौ स्तः । कुमुदादौ वराहादौ च पाठसामर्थ्यात्पक्षे ठच्ककौ । वाग्रहणसामर्थ्यात्पक्षे औत्सर्गिकोऽण् । कस्य लुब्विकल्पः । षड् रूपाणि । शर्करा शार्करम् शार्करिकम्-शर्करीयम् शर्करिकम् शार्करकम् ।०४ **नद्यां मतुप् ४।२।८५।** चातुरर्थिकः । इक्षुमती ।१३०५ **मध्वादिभ्यश्च ४।२।८६।** मतुप्स्याच्चातुरर्थिकः । मधुमान् । अनद्यर्थं आरम्भः ।

वराहादिसे कक् भी हो । गणपाठकी शक्तिसे (वा०) पढ़नेके सामर्थ्यसे । पक्षमें औत्सर्गिक स्वभाविक अण् हो । उसका लुप् विकल्पसे । ६ रूप हुए शर्कराः सन्ति अस्मिन्देशे उसका नाम **शर्करा**। शर्कराभिः निर्वृत्तं चीनीसे बनी मिठाई **शर्कराः** । अण् लुप् प्रकृतिभाव लिङ्ग वचन । अण् का लोप नही तब **शार्करम्** । ठक् इक आदि हुए । **शार्करिकम्** । छ—ईय हुआ **सार्करीयम** ठच् इक् शर्करिकम् । कक् होनेपर **शार्ककरकम** ।

।०४। **नद्या** नदीसंज्ञकसे चारों अर्थोमें मतुप् हो । इक्षवः सन्ति अस्मिन् या इक्षुणा निर्मिता इक्षुमती भेली बट्टी नगरी । नदीसंज्ञक इक्षुसे अण् उसका लुप् आदि (१३०५) **मधु** आदि गण पठित शब्दोंसे चतुर्थमें मतुप् हो मधूनां निवासः **मधुमान् ग्रामः** । शहदका स्थान मधुसे मतुप् इत्यादि । यह कार्य नद्यां मतुप् से भी होता, यह सूत्र बिना नदी संज्ञाके भी मतुप् होनेके लिए ।६ **कुमुद** नड वेतस इनसे चतुरर्थमें ड्मतुप् हो। अनुबन्धलोप । मत् शेष । यह केवल मत्वर्थ है । कुमुदाः सन्ति अस्मिन् विग्रहमें कुमुदसे ड्मतुप् आदि कुमुद बहुल स्थान । झयःसे म को व, स्वादिकार्य (कुमुद्वान् कुमुदप्राये) नडाः सन्ति अस्मिन् नरकट नरह का स्थान । यहाँ भी मतृके म को ब । झयःसे । बेतसाः अस्मिन्सन्ति (इस आधारमें वेत हैं) । यहाँ भी मतुप्के म को मादुपधा' यश्चासे व । वस्तुतः नड्वतृमें झयः को बाँधकर मादुपधायाः लग जाय, प्रकरणे पूर्वयोगं प्रति परस्य असिद्धत्वम् (वा) **महिष**-से भी ड्मतुप कहें। महिषाः अस्मिन्सन्ति **महिष्मान् देशः** । महिषसें मत् प्रत्यय । टित्से टिलोप, अल्लोपके स्थानिवाद्भावसे जश्त्व नहीं, सवर्ण अनुनासिक होने से । प्रत्यये भाषायां नित्यं नहीं लगा । स्वादिकार्ये (भैंसाका प्रसिद्ध देश) ।

।०७। **नड शाद** बलच् हो चार अर्थोमैं । नडाः अस्मिन्सन्ति नाड्वलः नरकट का देश या नष्ट जाति का देश । नडसे बलच् आदि । शाद=जम्बाल

०६ **कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप्** ४।२।८७। कुमुद्वान् । नड्वान् । वेतस्वान् । आद्ययोः 'झयः' इति, अन्त्ये 'मादुपधायाः' इति वक्ष्यमाणेन वः । *'महिषाच्चेति वक्तव्यम्' महिष्मान्नाम देशः । ७ **नडशादाड्वलच्** ४।२।८८। नड्वलः । 'शादो जम्बालघासयोः' इत्यमरः । शाद्वलः ।०८ **शिखाया: बलच्** ४।२।८९। शिखावलम् । ०९ **उत्करादिभ्यश्छः** ४।२।९०। उत्करीयः । १३१० **नडादीनां कुक्च** ४।२।९१। नडकीयम् । 'क्रुञ्चा ह्रस्वत्वं च' क्रुञ्चकीयः । 'तक्षन्नलोपश्च' तक्षकीयः ।१३११ **बिल्वकादिभ्यश्छस्य लुक्** ६।४।१५३। नडाद्यन्तर्गता बिल्वकादयः, तेभ्यश्छस्य लुक्तद्धिते परे । बिल्वा यस्यां सन्ति सा बिल्वकीया । तस्यां भवा बैल्वकाः । वेत्रकीयाः—वैत्रकाः छस्य किं छमात्रस्य लुग्यथा स्यात्कुको निवृत्तिर्मा भूत् । अन्यथा 'सन्नियोगशिष्टानामिति कुगपि निवर्तेत ।

और हरे घासका नाम (शादाः अस्मिन्सन्ति) शाद से बलच् । द अन्त्य है, कोइ ड उपधा कहते है । नड़प्राये **नड्वान्** । **नड्वलः शाद्वलः** शादहरिते । (०८) शिखासे भी वलच् कहें । निवृ त्त आदि अर्थमें, देश प्रधान हो, तन्नाम्नि अण् बाँधनेके लिए । दन्तशिखात्संज्ञायांसे विना देशके भी **शिखावलः** रूपके लिऐ । शिखाः सन्ति अस्मिन्स्थाने **शिखावलम्** ।

(१३०९) **उत्कर** आदि गणमें पढ़े शब्दसे चातुर्थिक **छ** प्रत्यय हो । उत्करे देशे निवासः, उत्करेण निवृ त्तं तस्य निवासः अदूरभव अर्थमें छ-ईय **उत्करीयः** (१०) **नड प्लक्ष** बिल्व वेणु वेत्र वेतस आदिसे छ हो, चार अर्थ में । प्रकृतिसे कुक्भी । नडाः सन्ति अस्मिन् **नडकीयं** स्थलं नडक-छ-ईय--स्वादिः । नडादिगण सूत्र है । **क्रुञ्चा** शब्दसे छ हो प्रकृतिको कुक् । आ को अ भी । क्रुञ्चाः अस्मिन्सिन्ति क्रौञ्च पक्षी जिस देशमें हों । छ-ईय कुक् ह्रस्व **क्रुञ्चकायः** । (ग०) **तक्षन्** शब्दसे छ हो कुक्, नकार लोप भी । तक्षाणः सन्ति अस्मिन् **तक्षकीयः** तक्षन्से छ-ईय । क, न-लोप । (१३११) **बिल्वकादि** गणमें पढ़े शब्दसे छ प्रत्ययका लुक् हो । नडादिके भीतर कुक्सहित बिल्वक पढ़ा गया । कमें अ उच्चारणार्थ । बिल्व वृक्ष हों जिस स्थानमें नडादिनां कुक् च से छ कुक् भी **बिल्वकीया** नगरी उसमें उत्पन्न । तस्यां भवाः अर्थमें अण् । उससे परे छ प्रत्ययका लुक् इत्यादि । **बैल्वकाः** । एवं वेत्राणि अस्यां सन्ति वेंत का देश । नडादिसे छ कुक् भी हो । छको ईय **वेत्रकीया** स्थली । तस्यां भवा अर्थमें वेत्रकीयसे अण् उसके परे छका लुप् **वेत्रकाः** । **छस्य किं** ? छका ही

लुग्ग्रहणं सर्वलोपार्थम् । लोपो हि यमात्रस्य स्यात् ।

॥ इति चातुरर्थिकप्रकरणम् ॥

लुक् क्यों कहा इसलिए केवल छका ही लुक् लोप हो, कुक्का लोप नही क्यो ? **सन्नियोगानां सहैव निवृत्ति सहैव प्रवृत्तिः** इस न्यायसे दोनों निवृत्त न हो। अन्यथा कुक् भी लौटता है। ढ़ेः लोपो अकदसे लोप आता लुप् क्यों ? सर्व-लोपार्थ=प्रत्ययका अदर्शन अश्रवण लुक्का अर्थ है। सम्पूर्णका लोप हो अन्त्य यमात्रका लोप न हो। उपधाके अका, आदेः परस्यसे ई का लोप न हो अतः लुक् पढ़ा ॥

इति **प्रभाकरमिश्रकृतायां प्राभाकर्यां**

चातुरर्थिकाः पूर्णाः ॥

॥ सत्यमेव जयते ॥

नवा दिशा नवा शैली नव प्रेरणा सत्य ग्रो...

प्रकाशित एवं प्रकाश्य पु...—

१– वै० भूषणसार:		हिन्दी, संस्कृत टीका	७०।–८०
२– "लघुसिद्धान्तकौमुदी"		,, ,, ,,	५०।–३''
३– "वै० सिद्धान्तकौमुदी" प्रथम खण्ड		,, ,, ,,	५०)
४– केवल "कारक"		,, ,, ,,	१०)– मा
५– "वै० सिद्धान्तकौमुदी" द्वितीय खण्ड		,, ,, ,,	४०)–
६– ,, ,,	तृतीय खण्ड	,, ,, ,,	
७– ,, ,,	चतुर्थ खण्ड	,, ,, ,,	

तृतीय और चतुर्थ खण्ड छप रहा है
प्रतिवर्ष एक पुस्तक का प्रकाशन तथा व्याकरण के
समस्तग्रन्थों नवीनीकरण संकल्पित है ॥

परत भारतकी शैली इतनी रूक्ष है कि उसमें रुचिवर्धन, विका... क्षमता नहीं रह गयी । प्राचीन सिद्धान्तोंका पालन नहीं मिलता । वैया... से वेदकी रक्षा और भाष्योक्तप्रयोजनोंका पालन होना चाहिए... कमल खिलें, वैयाकरणको देखकर शब्द खिले । घूँघ... सामने अनावृत होती है, एवं अधिकारी वैयाकरणको देखकर प्रकृ... सरस्वती] प्रत्ययका पर्दा उठाती है । वैदिक लौकिक शब्दोंके अर्थ खुल जायें संस्कृत भाषण वाक्पटुता, सरसता, धर्म, सत्यबोधकी शास्त्रपरम्परापा... नवा शैली । [प्रामाकरी हिन्दीसंस्कृतटीका सहिता]